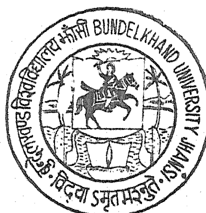
Comperative study of John Dewey And Mahatma Gandhi As Educators And Their Relevance To Education In Modern India.

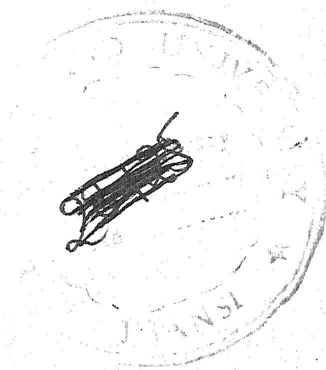
शिक्षाशास्त्री के रूप में जान डिवी और महात्मा गाँधी का एक तुलनात्मक अध्ययन तथा वर्तमान भारत में शिक्षा हेतु उनकी संगति ।

बुन्देलखण्ड विश्व-विद्यालय, झाँसी के शिक्षा शास्त्र में
डॉक्टर ऑव फिलॉसफी की उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध—प्रबन्ध

निर्देशक—
डा० सरयू प्रसाद चौबे,
एम०ए०एम०एड० (इलाहाबाद)
एड० (इण्डियाना यू०एस०ए०)
डी० लिट् (लखनऊ)
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,
शिक्षा विभाग, गोरखपुर, विश्व विद्यालय,
गोरखपुर

शोध-कर्ता—
दयाशंकर दुबे
एम०ए०एम०एड० प्रवक्ता,
बी० एड० विभाग,
बुन्देलखण्ड कालेज, झाँसी ।





बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी
1991–92

This is to certify that this Thesis entitled "A Comperative Study of John Dewey And Mahatma Gandhi As Educators And Their Relevance To Education In Modern India" has been completed by Shri D.S.Dubey, Lecturer, B.Ed. Deptt. Bundelkhand College, Jhansi, for the Degree of Ph.D. in Education of the Bundelkhand University, Jhansi, Under my guidance and supervision and that he has put on the requisite number of years to complete this work. I, further, certify that to the best of my knowledge and belief this is his original work and that he has not submitted it elsewhere for any other degree.

(Dr. S.P.Chaube)
Retired Professor and Head,
of the Department of Education
Gorakhpur University,
Gorakhpur.

Dated: 2.7.91

आभार - प्रदर्शन

मेरा यह प्रयास डॉ० सरयू प्रसाद चौबे के निर्देशन में पूर्ण हुआ है, एतदर्थ मै हृदय से उनका आभारी हूँ ।

मै अपने महा-विद्यालय के प्राचार्य का कृतज्ञ हूँ , जिन्होंने मेरे शोध प्रबन्ध हेतु पुस्तकों की व्यवस्था की ।

मै अपने विश्व-विद्यालय, महा-विद्यालय एवं जिला पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष एवं कर्मचारियों का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस शोध प्रबन्ध हेतु पुस्तकों, संदर्भ ग्रन्थों एवं मौलिक कृतियों को मेरे लिए उपलब्ध किया ।

वास्तव में मै उन सब लेखकों का कृतज्ञ हूँ, जिनकी कृतियों का इस अध्ययन में मैनें सहायता ली है । मै जॉनडिवी, महात्मा गाँधी और अन्य लेखकों का भी ऋणी हूँ, जिनकी कृतियों से उद्धरणों को मैनें लिया है ।

अन्त में मै उन सभी लेखकों को साभार धन्यवाद व्यक्त करता हूँ, जिनके मूल्यवान विचारों ने मेरे इस कार्य के सम्पादन हेतु समझ, अन्तर्दृष्टि एवं ज्ञान प्रदान करने में सहायता दी है ।

। दया शंकर दुबे ।

आमुख

जॉन डिवी अमेरिका के तथा महात्मा गाँधी भारत के सर्वाधिक प्रभावशाली शिक्षा दार्शनिक हैं । दोनों शिक्षाशास्त्रियों ने जीवन की तात्कालिक समस्याओं के समाधान की व्यावहारिक प्रविधि प्रस्तुत करने की चेष्टा की है । शिकागों विश्वविद्यालय में जॉन डिवी के मूलभूत मौलिक विचारों का प्रादुर्भाव हुआ था और शनैः शनैः वे यह अनुभव करने लगे थे कि मात्र सैद्धान्तिक विचारों से किसी भी जीवन सम्बन्धी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, जब तक उसके लिये किसी व्यावहारिक प्रविधि का प्रारूप न प्रस्तुत किया जाय । इसी लिये उन्होंने सदैव प्रयोग व परीक्षण की आवश्यकता की अनुभूति की थी, और विचारों का परीक्षण प्रयोगात्मक ढंग से प्रस्तुत करने पर बल दिया था । उनका दृढ़ विश्वास था कि दर्शन की सर्वाधिक उपयोगिता व महत्व सामाजिक समस्याओं के हल के लिये है । अपनी इस अवधारणा को पूर्ण करने हेतु अपने "प्रयोगात्मक स्कूल" में सतत प्रयत्नशील रहे हैं । उनकी इस निरन्तर प्रयत्नशीलता का प्रतिफल ही उनका शिक्षा दर्शन है ।

महात्मा गाँधी का सम्पूर्ण दर्शन, जीवन की तात्कालिक समस्याओं के समाधान हेतु निरन्तर संलग्न रहा है । उनका यह निजी अनुभव था कि जीवन की तात्कालिक समस्याओं के समाधान के बिना, सर्वोच्च अथवा जीवन के अन्तिम लक्ष्य की उपलब्धि सार्थक व सम्भव नहीं है । उनका दृढ़ विश्वास था,

कि " शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम् " ही है । शरीर मन्दिर में वर्तमान, अतीत एवं भविष्य तीनों निहित हैं । इनके अनुसार अतीत को आधार मानकर वर्तमान व भविष्य का निर्माण केवल वैचारिक प्रक्रिया से सम्भव नहीं है, वरन् इसे व्यवहार परक बनाने हेतु प्रयोगीय परीक्षण नितान्त आवश्यक है । इसी लिये महात्मा गाँधी जी अपने विचारों को व्यवहार परक बनाने के लिये टॉलस्टॉय फार्म, फोनिक्स बस्ती तथा साबरमती आश्रम में प्रयोग करते रहे हैं । इन्हीं प्रयोगों और परीक्षणों की उपज ही महात्मा गाँधी का शिक्षा-दर्शन है । समाज की समस्त समस्याओं के हल के लिये ही वे विचारों को महत्त्व देते हैं । इसलिए उनके शिक्षा-दर्शन का महत्वपूर्ण पहलू सामाजिक दर्शन ही है ।

महात्मा गाँधी ने सामाजिक सेवा को धार्मिक कर्तव्य के रूप में विकसित किया है । वे भारतीय परम्परा एवं तात्कालिक प्रबोधन के प्रतीक हैं । वे भारत की प्राचीन संस्कृति के मूल सिद्धान्तों में विश्वास करते थे । उनमें पीड़ित व्यक्तियों के प्रति असीम प्रेम था तथा जाति प्रथा, वर्ग-भावना एवं अस्पृश्यता के वे विरोधी थे । महात्मा गाँधी उदारवादी दृष्टिकोण के थे, उनके शान्तिवाद पर ईसा मसीह द्वारा पर्वत पर दिये हुये उपदेशों तथा टॉलस्टॉय के विचारों का प्रभाव दृष्टिगत होता है । अपने सामाजिक संदर्भ में वे सदैव रूढ़िगत परम्परावादी विचारों की अपेक्षा नवीन विचारों के प्रवर्तक थे । महात्मा गाँधी ऐसे मनीषी थे जिन्होंने भारतीय विचारधारा को

" लोक प्रिय एवं समानतावादी सामाजिक व्यवस्था " की ओर मोड़ने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है । इन्होंने शताब्दियों तक निष्क्रिय पड़ी भारतीय संस्कृति को एक नवीन दिशा एवं जीवन दिया है ।

हमारे इस प्रयास का लक्ष्य जॉन डिवी तथा महात्मा गाँधी के शिक्षा-दर्शन का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत करना है । हमनें देखा है कि इनके शिक्षा दर्शन के विचार इनके सामान्य जीवन-दर्शन से उद्‌भूत हुये हैं । हमारे वर्तमान विश्लेषण का सम्बंध जॉन डिवी के दर्शन, तर्क, ज्ञान और मूल्य जैसे विभिन्न विषयों के प्रति विचारों का सारत्व प्रस्तुत करने से है ।

यह नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है कि हम यह इंगित करें कि हमारा प्रयास किस सीमा तक ज्ञान के क्षेत्र में एक मौलिक योगदान है । इस प्रकार की प्रकृति के कार्य हेतु तथ्यों के प्रस्तुतीकरण में किसी भी व्यक्ति द्वारा मौलिकता का दावा नहीं किया जा सकता है, क्योंकि एक अन्वेषक को इस सम्बन्ध में प्रतिपादित किये गये विचारों एवं सिद्धान्तो पर ही आधारित रहना पड़ता है, किन्तु एक शोधकर्ता को इन विचारों एवं सिद्धान्तो को विभिन्न संदर्भों में मौलिक रूप में पुनर्विश्लेषित एवं पुनः संकलित करना पड़ता है, इसी में उसकी मौलिकता निहित होती है । शोधकर्ता ने वास्तव में, इस शोध-प्रबन्ध में यही किया है और यह आशा की जाती है कि अध्येता को सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध में अनेक संगत पूर्ण स्थलों पर यह देखने को

मिलेगा ।

शोधकर्ता ने विशेषकर षष्ठम्, सप्तम्, अष्टम्, नवम्, दशम्, एकादश एवं द्वादश अध्यायों में अपने दृष्टिकोण को विभिन्न संदर्भों जैसे विद्यालय, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि एवं अनुशासन आदि में अभिव्यक्त किया है । नवम् अध्याय में शोधकर्ता ने जॉन डिवी तथा महात्मा गाँधी के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन तथा दशम् अध्याय में जॉन डिवी के शिक्षा में मौलिक योगदान व विश्व विचार में उनके स्थान की विवेचना अपने दृष्टिकोण से ही है । " जॉन डिवी तथा महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचारों की भारत में शिक्षा हेतु संगति " नामक एकादश अध्याय में तथा "निष्कर्ष" नामक द्वादस अध्याय में शोधकर्ता स्व-मौलिकता का दावा कर सकता है, क्योंकि व्यवस्थित रूप में इस प्रकार के औचित्य पूर्ण विचारों को अब तक प्रकट नहीं किया गया है । इस अध्याय में हमने दोनों शिक्षा शास्त्रियों के उन मौलिक विचारों को प्रकट करने का प्रयास किया है, जिनका भारत की शिक्षा, जनतंत्र, मूल्यों एवं राष्ट्र की पुनर्रचना में विशेष महत्व है । हमें उन विचारों को ध्यान में रखकर राष्ट्र व समाज के सदस्यों की दक्षता, कुशलता, उनके दृष्टिकोण व व्यवहार को भावी नागरिक के रूप में निर्मित करने के लिये प्रयोग करना चाहिये ताकि हमारा लोकतंत्र सुरक्षित, सुदृढ़ एवं प्रगतिशील रह सके ।

दिनांक - 2/7/91

(दया शंकर दुबे)

अनुक्रमणिका

अध्याय-1

अध्ययन का लक्ष्य, प्रयुक्त विधि एवं क्षेत्र

लक्ष्य -

प्रस्तुत अध्ययन का लक्ष्य जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी की दार्शनिक एवं शैक्षिक विचार धाराओं की व्याख्या करना तथा वर्तमान समय की आवश्यकताओं एवं शैक्षिक समस्याओं के संदर्भ में मूल्यांकन करना है, और यह देखना है कि हमारी जनतंत्रात्मक सामाजिक व्यवस्था को पुष्ट करने में इनके विचारों की क्या संगति है।

जहाँ तक जॉन डिवी का सम्बन्ध है, वे वर्तमान सदी के अमेरिकी शिक्षा के इतिहास के प्रमुख शिक्षा दार्शनिकों में निश्चय ही एक महान व्यक्तित्व सम्पन्न शिक्षा शास्त्री हैं। शिक्षा और दर्शन के पारस्परिक सम्बन्धों को अभिव्यक्त करने में जॉन डिवी ने मुख्य रूप से सहयोग प्रदान किया है। इसलिये हम उन्हें दार्शनिक, शिक्षा दार्शनिक एवं शिक्षा शास्त्री के रूप में देखते हैं। जॉन डिवी ने दर्शन, शिक्षा, ज्ञान व सामाजिक शिक्षा आदि क्षेत्रों में तथा लोकतंत्रीय शैक्षिक संगठन के सम्बन्ध में बहुत सुदृढ विचारों का प्रतिपादन किया है। इसलिये जॉन डिवी को भारत में अच्छी तरह जानने व समझने की महती आवश्यकता है।

जॉन डिवी अतीत के ख्याति प्राप्त शिक्षा शास्त्रियों की भाँति अपने विषय के महान ज्ञाता, आधिकारिक रचना कर्ता

तथा मानव रुचियों के प्रकांड ज्ञाता थे । जीवन की इन विशिष्टताओं ने उन्हें जीवन सत्य के निकट पहुँचने में पर्याप्त सहयोग दिया था और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्ति से है और व्यक्ति ही स्वयं शिक्षा है । जॉन डिवी ऐसे शिक्षा-शास्त्री हैं जिनके विचारों ने यह प्रमाणित किया है कि

> "ऐतिहासिक परिस्थितियों के संदर्भ में मानव की अन्तर्दृष्टि एवं अमूर्त कल्पना की उपज ही शिक्षा सिद्धान्त है ।"

जॉन डिवी के विचारों ने अन्वेषक को आकर्षित किया है कि इनके समस्त विचारों में से उन विचारोंकी सम्यक व्याख्या करें और यह देखें कि वे विचार हमारे लिये कहाँ तक लाभप्रद हैं,और हमारे वर्तमान भारत के निर्माता महात्मा-गाँधी के विचारों से उनकी क्या समानता है, क्योंकि महात्मा-गाँधी के विचार भी वर्तमान कालिक ज्वलन्त समस्याओं के समाधान में एक मील के पत्थर की भाँति हैं । महात्मा गाँधी के विचार हमारे जनतंत्रात्मक समाज की पुनर्रचना तथा नयी सामाजिक व्यवस्था के संगठन में विशेष महत्व रखते हैं । महात्मा गाँधी ने केवल भारत के संदर्भ में ही नहीं बल्कि विश्व की सामाजिक पुनर्व्यवस्था हेतु सम्यक विचारों को अभिव्यक्त किया है । वे भारत के लिये ही नहीं बल्कि सर्व काल एवं सर्व देशीय विचार के उद्गारक हैं ।

जॉन डिवी का विश्वास था कि मनुष्य के विचार

व अनुभव मानव जीवन और उनके कार्यों को स्थापित एवं निरूपित करते हैं। विश्व परिवर्तनशील है अतः मानव के विचार भी तत्कालीन परिस्थिति में परिवर्तित होते रहते हैं। डिवी के अनुसार दर्शन का कार्य है कि इस परिवर्तनशीलता की विशिष्टताओं की उचित जाँच व अन्वेषण ।इन्क्वारी। करे। इस प्रकार सामाजिक चिन्तनकी प्रक्रिया में स्वतंत्रता व मुक्ति की आवश्यकता होती है। सामाजिक चिन्तन को नापना कठिन है। क्योंकि समाज परिवर्तनशील है इसलिये चिन्तन भी परिवर्तनशील है, यही कारण है सामाजिक चिन्तन स्थिर नहीं होता है और नाप की सीमा से परे होता है। किन्तु यदि विचार संस्थाओं के स्वाभाविक विकास में सुधार अपेक्षित हो तो सामाजिक दर्शनिक का कार्य, समाज के वाँछित लक्ष्य के विकास हेतु मूल्यांकन करने के उत्तरदायित्व को वहन करना हो जाता है।

जॉन डिवी की कृतियों का मुख्य जोर आधुनिक अनुभव में जनतांत्रिक विशेषताओं के सम्बन्ध में वैध कथन और समझ को प्रदान करने में सतत प्रयत्न करना रहा है।

महात्मा गाँधी ने भारत के प्रत्येक भाग में भ्रमण कर हर क्षेत्र की ज्वलन्त समस्याओं को जान व समझ लिया था। वैज्ञानिक, औद्योगिक एवं तकनीकी विकास एवं उसकी उपलब्धियों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था तथा यह अनुभव कर रहे थे कि जब तक मानव चिन्तन को संकुचित दायरे से निकाल कर विस्तृत नहीं किया जाता तब तक आधुनिक भारत का निर्माण असम्भव

है, और साथ ही उन्हें वैज्ञानिक एवं औद्योगिक उन्नति की प्रविधि का ज्ञान भी न होगा तथा इसके अभाव में भारत की पुनर्रचना का संकल्प व कार्य सम्पन्न न हो सकेगा। इसलिये वे अंध विश्वास, छुआछूत, वर्ग-भावना, जाति-भावना, धनी-निर्धन के द्वैत भाव को समाप्त करने में जीवन भर प्रयत्न करते रहे हैं। इस अध्ययन में हमने देखा है कि दोनों शिक्षाशास्त्री के चिन्तन का केन्द्र वैज्ञानिक विधि की खोज करना रहा है। दोनों प्रयोग पर सत्य की परख का मापदंड निर्धारित करते हैं। कहने का तात्पर्य है कि मानव सम्पन्नता जो वैज्ञानिक विधि द्वारा हमें सुलभ हुई है उसे हम तब तक नहीं प्राप्त कर सकते जब तक हम अपने को अंध विश्वास से मुक्त नहीं कर लेते है। अंध विश्वास ने शताब्दियों से हमारी उन्नति को अवरुद्ध कर रखा है। इसीलिये हम अपने को तथा विश्व को भिन्न रूप में देखते रहे हैं। जॉन डिवी के अनुसार आधुनिक मानव के लिए यह परमावश्यक है कि वह अपने भीतर नयी समझ पैदा करे, क्योंकि वह अब ऐसे विश्व मे रह रहा है जिसका निर्माण तकनीकियों एवं उद्योगों से हुआ है। इस तथ्य को भूल कर हम विश्व को अतीत के अर्थों एवं विश्वासों तथा मान्यताओं की दृष्टि से देखने लगते है, परन्तु महात्मा गाँधी की विचारधारा अतीत की मान्यताओं को वैज्ञानिक दृष्टि से देखते हुये भी उसे व्यवहार परक बनाने में बल प्रदान करती रही है, और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि ईश्वर सत्य है, सत्य स्थिर है, सत्य

परिवर्तनशील नहीं है केवल सापेक्षिक सत्य ही परिवर्तनशील है । सापेक्षिक सत्य का महत्व निरपेक्ष सत्य की अनुभूति के लिये है । अत: सापेक्षिक सत्य को भी सत्य, अहिंसा व प्रेम की आधार शिला पर खड़ा करना होगा । इस विश्व में केवल भौतिक उन्नति का ही महत्व नहीं है, क्योंकि बिना आध्यात्मिक उन्नति के भौतिक उन्नति का आधार असत्यता, हिंसा तथा द्वेष हो जायेगा, और मानवीय एकता, ज्ञान की अखंडता, विश्व प्रेम तथा सहयोग, मातृत्वभाव, समानता एवं स्वतंत्रता का कोई महत्व न रह जायेगा । महात्मा गांधी की विचार धारा भौतिकता एवं आध्यात्मिकता में समन्वय स्थापित करने पर बल प्रदान करती है ।

दोनों शिक्षाशास्त्री सामाजिक दार्शनिक हैं, दोनों ने शिक्षा के सामाजिक पक्ष पर बल प्रदान किया है, किन्तु वैयक्तिकता का अनादर नहीं करते हैं ।

आज समाज रोगी है । इस रोग को उत्पन्न करने वाली हमारी जीवन की संस्थायें है । सम्पूर्ण समाज में विरोध और असत्य का द्वैत फैला हुआ है । आज हम अपने बच्चों को एक ओर सहयोग के आदर्श की शिक्षा देते है, तो दूसरी ओर अपने बच्चों को प्रतिस्पर्द्धात्मक संसार के लिये भी तैयार करते हैं । इस प्रकार की द्वैत भावना के कारण हम भ्रमित है, और आपस में बटे हुये हैं तथा संसार के संघर्ष में व्यष्टि को खो दिया है, क्योंकि कट्टर धार्मिक भावना एवं पारम्परिक दासता

का बढ़ावा संसार में होता जा रहा है । इसी कारण जॉन-डिवी तथा महात्मा गाँधी दोनों समाज की और शिक्षा की पुर्नरचना करना चाहते हैं । अतः दोनों शिक्षा शास्त्री के पुर्नरचना सम्बन्धी विचारों को अध्ययन करना भी हमारा और इस अध्ययन का लक्ष्य है ।

हम आज एक लोकतंत्र प्रभु सम्पन्न देश में रह रहे हैं । अतः इस लोकतंत्र की सुरक्षा का उत्तरदायित्व भी हमारा ही है । इसलिए लोकतंत्र की व्यवस्था, सुरक्षा एवं स्थायित्व के प्रति दोनों शिक्षा-शास्त्रियों के क्या विचार है, इसका ज्ञान प्राप्त करना भी इस अध्ययन का उद्देश्य है । हम जानते हैं कि दोनों देश अमेरिका व भारत जनतंत्रात्मक राष्ट्र हैं । अतः जनतंत्र एक परीक्षित शब्द सा प्रतीत होता है । जनतंत्र एक क्रान्तिकारी विचार धारा है । जनतंत्र एक नये प्रकार के मानव की क्षमताओं को विकसित करता है, जिस प्रकार आधुनिक प्रविधियों ने तकनीकी व नये औद्योगिक क्षमताओं का विकास किया है । वैज्ञानिक एवं तकनीकी औद्योगिकी के कारण समाज की पुर्नरचना करने की आवश्यकता है । साथ ही इसे निरन्तर जारी रखने की भी जरूरत है । जॉन-डिवी तथा महात्मक गाँधी दोनों से हमें यह शिक्षा मिलती है कि लोकतंत्र मात्र एक राजनैतिक व्यवस्था ही नहीं है, बल्कि एक नैतिक आदर्श तथा अहिंसक समाज की जीवन शैली है, जिसकी आवश्यकता समस्त मानव के लिये है ।

दोनों शिक्षा शास्त्रियों की शैक्षिक योजना में हम मानव स्वभाव को सीमित और स्थिर रूप में नहीं देखते हैं, बल्कि मानव स्वभाव वाँछित लक्ष्य के लिए परिवर्तित होने वाला असीमित तथ्य है । जॉन डिवी के अनुसार अनुभव मानव को ही होता है, अतः हमें जीवन में अनुभव प्राप्त करना चाहिए । अनुभव के अभाव में मानव समूह भेड़ो के समूह की भाँति हो जाता है । इसलिए हमें चिन्तन भी करना चाहिये । अपनी अन्तर्आत्मा की आवाज सुनने के लिये मानव को स्वयं तैयार रहना चाहिये । ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए महात्मा गाँधी के अनुसार हमें सत्य, अहिंसा, प्रेम व पवित्र जीवन को धारण करना चाहिये । महात्मा गाँधी का कथन है कि हमें हस्त, मन तथा हृदय की संस्कृतियों में सामन्जस्य स्थापित करना पड़ेगा, तभी जीवन का सर्वांगीण विकास सम्भव होगा ।

जॉन डिवी कहते हैं कि हमें तर्क व चिन्तन की आवाज को सुनने के लिये तैयार रहना चाहिये, किन्तु परासत्य के निरूपण के सम्बन्ध में प्रयुक्त तर्क व चिन्तन की आवाज सुनने के लिए हैमें तैयार होने की आवश्यकता नहीं है । हमें मात्र वर्तमान भौतिक संसार पर बल देना है, क्योंकि अतीत मृत है, और भविष्य अनिश्चित है, हमारे लिए वर्तमान का ही महत्व है । जॉन डिवी के अनुसार हमें उस चिन्तन व तर्क को महत्व देना चाहिये जो हमारी समस्याओं के समाधान की विधि के रूप में प्रकट होकर हमें ज्ञान देता है ।

हमें ज्ञान अर्जित व धारण करना है किन्तु उस अचल, स्थिर सत्य रूपी ईश्वर के ज्ञान के रूप में नहीं । हमें परिवर्तित व परिवर्तनशील संसार के साथ सम्बन्ध स्थापित करके ज्ञान को धारण करना है । महात्मा गाँधी की विचार धारा तथा जॉन डिवी की विचार धारा में इस संदर्भ में असमानता है । जैसा कि सत्य के सम्बन्ध में गत पृष्ठों में महात्मा गांधी की विचार धारा का वर्णन किया गया है ।

दोनों शिक्षा शास्त्री शिक्षा ग्रहण करने पर बल देते हैं और कहते हैं कि हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये, किन्तु इस अर्थ में नहीं जिस प्रकार विधालयों में निश्चित पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा दी जाती है, बल्कि एक प्रक्रिया के रूप में जो वैयक्तिकता के विकास में सहयोग देती है, और उस प्रक्रिया के रूप में जिसमें हमारी समस्त सामाजिक संस्थायें अपनी भूमिका का निर्वाह करती है ।

वर्तमान अध्ययन भारतीय परिवेश में सर्वथा संगति पूर्ण है, क्योंकि यह हमें स्मरण दिलाता है कि राजनैतिक प्रजातंत्र सफलता पूर्वक किस प्रकार कार्य कर सकता है । यह अध्ययन हमें यह भी बताता है कि भारत के नागरिकों को बुद्धिमता और जिम्मेदारी से सामाजिक कार्यों में क्यों और कैसे भाग लेना चाहिए । तात्पर्य यह है कि इस अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि हम भारतीयों को बौद्धिक एवं उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार की रीति जीवन में अपनानी चाहिये ।

हमें यह भी ध्यान में रखना है कि सैद्धान्तिक रूप से हमारी शैक्षिक व्यवस्था जो हमें उपलब्ध करा रही है, और कराना चाहती है, उसकी सफलता व असफलता की जाँच भी हमें करनी चाहिये ।

जॉन डिवी की शिक्षा के प्रति हम पूर्ण विश्वस्त है, क्योंकि इनके शैक्षिक विचारों ने असंख्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व मन व मस्तिष्क को समान रूप से क्रियात्मकता ग्रहण करने के लिये मुक्त किया है । इनके विचारों ने मानव समुदाय को समस्त भलाई के सहयोगी कार्यों में जिम्मेदारी के साथ भाग लेने के लिए तैयार करने पर बल दिया है ।

महात्मा गांधी का शैक्षिक विचार मानव में सहयोगी सामाजिक प्रकृति के विकास पर बल प्रदान करता है । महात्मा गांधी की शैक्षिक विचार धारा, सामाजिक सेवा, सामाजिक एवं वैयक्तिक श्रम को जीवन में प्रतिस्थापित करने पर जोर देती है । ये समाज सेवा द्वारा आत्मानुभूति एवं ईश्वरानुभूति करना व कराना चाहते हैं ।

प्रस्तुत अध्ययन इस हेतु भी किया गया है, ताकि हम शिक्षा के प्रति दोनों की विचार धाराओं में उचित दृष्टि-कोण व अन्तर्दृष्टि की खोज कर सके । जॉन डिवी का शिक्षा सिद्धान्त तर्कशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र, नीतिशास्त्र, ज्ञान, चिन्तन मूल्य और दर्शन के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र का विश्लेषण प्रस्तुत करता है । जॉन डिवी द्वारा इन विषयों का विश्लेषण करना स्वाभाविक

था, क्योंकि इनका शैक्षिक विचार "साधन वाद" का अनुसरण करता है ।

ज्ञानात्मक रूप में इस अध्ययन में हमने जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के शैक्षिक विचारों की तुलना को शामिल किया है । दोनों की मौलिकता को खोजने का प्रयास किया गया है । दोनों के विचारों का शिक्षा क्षेत्र में क्या मौलिक योगदान है, इसका अध्ययन किया गया है, इस अध्ययन का एक मुख्य लक्ष्य यह भी है कि भारतीय परिस्थितियों में जॉन डिवी के विचारों की क्या संगति है, और हम इससे किस प्रकार लाभान्वित हो सकते हैं । इसके साथ ही इस अध्ययन का यह भी लक्ष्य है कि भारतीय परिस्थिति में किसके विचारों की विशेष संगति है तथा दोनों के विचारों में क्या समानता व विषमता है ?

यह अध्ययन यह भी उद्घाटित करता है कि कोई विचारक जीवन के अनुभवों के प्रति कैसी प्रतिक्रिया करता है । इस अध्ययन ने हमे यह समझने की प्रेरणा दी है कि जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी ने जीवन की घटनाओं के सम्बन्ध में असाधारण साहस के साथ अपने विचारों पर पहुँचने के लिए किस प्रकार प्रयास किया था । हम देखते हैं कि इस प्रयास से जॉन डिवी यह कहने में समर्थ हो सके कि वस्तुयें सामान्य रूप से तथा विशिष्टतायें मानव को वंशानुक्रम से ही प्राप्त होती है । दोनों शिक्षा शास्त्री वंशानुगत विशेषताओं और पर्यावरण पर

समान रूप से जोर देते हैं ।

प्रस्तुत अध्ययन में प्रयुक्त विधि -

प्रस्तुत अध्ययन ऐतिहासिक अनुसंधान का एक भाग है । किसी समाज का इतिहास प्राय: वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का आधार होता है । सामाजिक समस्याओं के समाधान में प्रयुक्त वैज्ञानिक विधि की अनुप्रयुक्ति ही ऐतिहासिक अन्वेषण है । हमने देखा है कि प्रस्तुत अध्ययन का लक्ष्य हमारे अतीत के शिक्षा शास्त्रियों की विचार धाराओं को वर्तमान के संदर्भ में मूल्यांकन करना है । इसलिए इस अध्ययन में ऐतिहासिक विधि का प्रयोग किया गया है । ऐतिहासिक विधि का तात्पर्य अतीत के अनुभवों का अध्ययन करना है तथा इसके द्वारा मानव विचार तथा व्यवहार के उन विकास क्रमों की खोज करना होता है, जिससे किसी सामाजिक गतिविधि के आधार का पता लगता है । वैसे ऐतिहासिक विधि का प्रयोग मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा शास्त्र में विशेष होता है । शिक्षा में इस विधि के प्रयोग का लक्ष्य शिक्षा सम्बन्धी दार्शनिक विचार धाराओं, पद्धतियों, आवश्यकताओं तथा आदर्शों की जानकारी उपलब्ध करना होता है तथा उसके संदर्भ में वर्तमान समय में शिक्षा जगत की समस्याओं एवं व्यवस्थाओं का संदर्भ निकालना होता है । जैसा कि हमने देखा है कि प्रस्तुत अध्ययन का लक्ष्य महात्मा - गांधी व जॉन डिवी के विचारों का वर्तमान काल की आवश्यकताओं के संदर्भ में मूल्यांकन करना ही है । इसलिए ऐतिहासिक

विधि का प्रयोग करना समीचीन हो जाता है ।

प्रस्तुत अध्ययन में हमने अनेक साक्ष्यों, साधनों एवं अभिलेखों का प्रयोग किया है, ताकि कथन की विश्वसनीयता व वैधता को प्रमाणित किया जा सके । प्रस्तुत अध्ययन में प्रयुक्त साधनों, साक्ष्यों तथा अभिलेखों की यथार्थता तथा परिशुद्धता उच्च वैज्ञानिक स्तर की है । इनके प्रयोग से हमें विशिष्ट जानकारी उपलब्ध हुई है और उसके संदर्भ में ही हमने वर्तमान का यथार्थ ज्ञान उपलब्ध करने तथा भविष्य के सम्बन्ध में अनुमान लगाने का प्रयास किया है ।

अध्ययन के स्रोत

प्रस्तुत अध्ययन में हमने ऐतिहासिक विधि के दो स्रोतो का उपयोग किया है :-

1- प्राथमिक स्रोत -

प्राथमिक स्रोत का सम्बन्ध प्रदत्त के मूल व मौलिक साधनो से है । यह विषय वस्तु का मूल भण्डार होता है तथा महत्त्वपूर्ण अवसर का मौलिक अभिलेख होता है । इसलिये हमने जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी की मौलिक कृतियो का आधार लिया है । इनके द्वारा लिखी हुई अनेक पुस्तकों, लेखों, अभिभाषणों तथा अनेक पत्रिकाओं को अपने अध्ययन का मुख्य आधार माना है ।

2- अप्रमुख स्रोत -

हम जानते हैं कि अप्रमुख स्रोत वे स्रोत है जो मौलिक व

व मूल स्रोत से भिन्न होते हैं, इनमें मूल स्रोत का अभाव पाया जाता है, परन्तु अध्यन की विषय वस्तु के सम्बन्ध में अन्य साधनों से विवरण प्राप्त होता है । इस प्रकार के स्रोत में हम उन साधनों को शामिल करते हैं जिनका लेखक, दार्शनिक व शिक्षा शास्त्री स्वयं निर्माता नहीं होता है, बल्कि उनके विचारों एवं दार्शनिक चिन्तनों के प्रति अन्य व्यक्तियों द्वारा विचार अभिव्यक्त किये जाते हैं । इसलिये हमने उन महान आलोचकों एवं समालोचकों द्वारा महात्मा गांधी व जॉन डिवी के सम्बन्ध में लिखे गये ग्रंथों को भी आधार माना है । इन ग्रन्थों के अध्ययनोपरान्त ही हम प्रस्तुत अध्ययन की विषय वस्तु में समझ व अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर सके हैं, जिसका परिणाम यह शोध प्रबन्ध है ।

अध्ययन का क्षेत्र -

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में हमने जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के शैक्षिक विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन एवं मूल्यांकन करने के साथ ही दोनों के विचारों की समानता व असमानता के समालोचनात्मक दृष्टिकोण को शामिल किया है । वास्तव में उनके शैक्षिक विचार उनके जीवन के सामान्य दर्शन के हिस्से हैं । उनके जीवन दर्शन और शिक्षा दर्शन के क्रमिक विकास में तत्कालीन परिस्थितियों का क्या प्रभाव पड़ता है और इस प्रभाव ने उनके विचारों को किस प्रकार प्रभावित एवं परिवर्तित करने में अहं भूमिका अदा की है, इस तथ्य की जाँच व खोज के प्रयास को भी हमने अध्ययन क्षेत्र में शामिल किया है । हम प्रायः यह

अनुभव करते हैं कि मानव का प्रारम्भिक एवं वर्तमान जीवन जिस प्रकार के पर्यावरण, सामाजिक व पारिवारिक परिस्थितियों में व्यतीत होता है उसका प्रभाव ही उसके जीवन दर्शन के निर्माण में महत्वपूर्ण होता है, ये प्रभाव ही उसकी विचार धारा को स्थापित करते हैं जिसे हम उनकी कृतियों, लेखो एवं व्यवहारों में देखने में समर्थ होते हैं। दोनों शिक्षा शास्त्री यह चाहते थे कि उन्हें एक ऐसी सुन्दर व्यवस्था उपलब्ध हो जहाँ वे अपने विचारों को प्रयोगीय कसौटी पर परीक्षित कर सके। इसलिए दोनों शिक्षा शास्त्रियों के विचार इस प्रकार के प्रयोगीय प्रयत्न से ही आविर्भूत हुये हैं। इसलिए इनके विचारों को इनके सामान्य जीवन दर्शन से अलग करके समझा नहीं जा सकता है।

हमारे अध्ययन के द्वितीय एवं तृतीय अध्याय का सम्बन्ध जॉन डिवी तथा महात्मा गाँधी के जीवन वृत तथा उनके कृतत्व से है। इन अध्याओं में हमने इनके पारिवारिक स्थिति शिक्षा तथा उसके प्रभाव के विषय में विवरण प्रस्तुत किया है और यह खोजने का प्रयास किया है कि इनके जीवन दर्शन के निर्माण में इनका क्या योगदान व प्रभाव रहा है। यह भी देखने का प्रयास किया गया है कि किन प्राणियों के सम्पर्क व प्रभाव ने इन्हें चिन्तन करने व अपने विचारों को लिपिबद्ध करने की प्रेरणा दी।

इनके जीवन वृत से सम्बन्धित तथ्यों के विश्लेषणोपरान्त अध्याय चतुर्थ में जॉन डिवी के दर्शन का हमने विवरण प्रस्तुत किया है और प्रयोजनवाद के सामान्य दर्शन से सम्बन्ध स्थापित किया है

जॉन डिवी के प्रारम्भिक प्रभावों और उनके अन्तिम दृष्टिकोण से भी प्रयोजनवाद के सामान्य दर्शन से उनके विचारों की संगति बैठाने का प्रयास किया गया है । इस प्रकार यह चतुर्थ अध्याय उनके मौलिक दार्शनिक विचारों से सम्बन्ध रखता है । हमारे अध्ययन के पंचम अध्याय का सम्बन्ध महात्मा गांधी के मौलिक दार्शनिक विचारों का विवरण प्रस्तुत करने से है । सत्यं शिवं एवं सुन्दरं के प्रति, जो जीवन के शाश्वत मूल्य समझे जाते हैं, महात्मा गांधी की क्या अवधारणा है, इस सम्बन्ध में विवरण प्रस्तुत किया गया है ।"सत्य" के प्रति उनके विचार, उसकी अनुभूति की व्यवहारिक प्रविधि के सम्बन्ध में विचार किया गया है । हमने यह भी देखा और अनुभव किया है कि आज तक महात्मा गांधी के शिक्षा सिद्धान्त एवं व्यवहार तथा दार्शनिक विचारों के प्रति राष्ट्र को जैसा ध्यान देना चाहिये था वैसा नहीं दिया गया है । अत: यह आवश्यक हो जाता है कि महात्मा गांधी के दार्शनिक विचारों की वर्तमान भारत के संदर्भ में खोज की जाय और उसकी संगति बैठाई जाय । हम जानते हैं कि महात्मा गांधी कोई व्यावसायिक अध्यापक कभी भी नहीं रहे है, किन्तु वे पूरे जीवन मानव के अध्यापक बने रहे, उन्होंने इस पृथ्वी तल पर रहने वाले समस्त प्राणियों के प्रत्येक पहलू को, जीव के विकास व प्रगति को प्रभावित करने वाले कारकों की खोज की थी । हमने देखा है कि महात्मा गांधी के दार्शनिक विचार किसी नये सत्य के सिद्धान्त के प्रतिपादन

के लिए नहीं है बल्कि उन्होने उसी पुराने सत्य पर नया प्रकाश डाला है और उसकोसमाज के सामुदायिक जीवन में व्यवहार परक बनाने तथा आधुनिक युग के अनुकूल बनाने का प्रयास किया है । उन्होंने एक ऐसी प्रविधि की खोज की है जिसके द्वारा सत्य, अहिंसा व प्रेम तथा सत्याग्रह को सामुदायिक जीवन में व्यवहार परक बनाने में सहयोग मिल सकता है । जिस प्रकार गीता हमें"कर्म" करने की प्रेरणा देती है,उसी प्रकार गांधी जी ने भी हमें शिक्षा में " कर्म " के सिद्धान्त का मार्ग दिखाया है । महात्मा गांधी के अनुसार समस्त मानव " कर्म " से ही " शिव " की प्राप्ति करता है । हमारा कर्म सहयोगी कर्म होना चाहिये, और हमें एक दूसरे का आदर करना चाहिये । इस आध्याय में हमने महात्मा गांधी की दार्शनिक शिक्षाओं के महत्व को देखने का प्रयास किया है, और हमने महात्मा गांधी के दार्शनिक विचारों का विस्तृत एवं आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत करने और शिक्षा के क्षेत्र में उनके आदर्शवादी विचारों को व्यावहारिक एवं सामुदायिक जीवन में प्रयोगीय बनाने के औचित्य की खोज का प्रयास किया है ।

हमारे अध्ययन का षष्ठम अध्याय जॉन डिवी के शिक्षा सिद्धान्त से सम्बन्ध रखता है । इस अध्याय में हम देखते हैं कि जॉन डिवी ने दर्शन व शिक्षा के आपसी सम्बन्ध को प्रकट किया है और शिक्षा को, समाज को प्रभावित एवं

परिवर्तित करने, उसकी पुनर्रचना व पुनर्संगठन करने का एक शक्ति-शाली कारक माना है । वे पारम्परिक शिक्षा का विरोध करते है, तथा शिक्षा की पुनर्रचना हेतु नया विचार प्रस्तुत करते हैं । जॉन डिवी के शैक्षिक विचारों की तुलना यत्र तत्र, रूसो, पेस्टा-लजी तथा फ्रोबेल आदि से की गई है, ताकि उनके विचारों के समान व विरोधी तत्वों को इन दार्शनिकों के विचारों से खोजा जाय और यह पता लगाया जाय कि जॉन डिवी का दर्शन किस प्रकार मौलिक है,तथा विश्व दर्शन हेतु उनके विचारों की क्या संगति है । जॉन डिवी के दर्शन, शिक्षा, तर्क, ज्ञान, चिन्तन, मूल्य, नीतिशास्त्र, चरित्र आदि के सम्बन्ध में उनके विचारों की परख की गई है । शिक्षा के लक्ष्य, पाठ्यक्रम, विधि, विद्यालय, अध्यापक, बालक एवं अनुशासन आदि के सम्बन्ध में जॉन डिवी के क्या विचार है और ऐसा क्यों है, की खोज की गई है । शिक्षा, विद्यालय, पाठ्यक्रम एवं अध्यापक एवं बालक की अवधारणाओं को सामाजिक शिक्षा के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण संदर्शों को खोजने का प्रयास किया गया है ।

सप्तमें अध्याय का प्रयोग महात्मा गांधी के शिक्षा सिद्धान्त के क्रमिक विकास का विवरण प्रस्तुत करने के लिये किया गया है । इस अध्याय में यह खोजने का प्रयास किया गया है कि क्या महात्मा गांधी का शिक्षा सिद्धान्त किसी प्राचीन अथवा आधुनिक शैक्षिक आन्दोलन के अध्ययन का परिणाम है ? अथवा मौलिक है ? या जीवन के अनुभव व प्रयोग का परिणाम है ?

हमने देखा है कि महात्मा गांधी का शिक्षा सिद्धान्त देश की राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश की तथा जीवन के विस्तृत अनुभव को उपज है । टालस्टॉय फार्म, फोनिक्स बस्ती साबरमती आश्रम आदि स्थानों पर उनके द्वारा प्रयोग कियेगये परिणामों की उत्पत्ति है । साथ ही भारतवर्ष की तत्कालीन शिक्षा पद्धति में व्याप्त दोषों के विरोध में महात्मा गांधी ने अपने शिक्षा सिद्धान्त की खोज की थी । वास्तव में महात्मा गांधी एक क्रान्तिकारी विचारक थे, बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत करने से पूर्व ही वे राजनैतिक व सामाजिक क्षेत्र में अपने विचारों से क्रान्ति उत्पन्न कर चुके थे, इसलिए इनके शिक्षा सिद्धान्त ने अनेक विद्वानों को विचार करने के लिये आकृषित कर लिया था ।

प्रस्तुत अध्ययन का अष्टम अध्याय महात्मा गांधी के बेसिक शिक्षा या बुनियादी शिक्षा के दार्शनिक विचारों की खोज के लिए चुना गया है और यह देखने का प्रयास किया गया है कि इस बुनियादी शिक्षा के क्या उद्देश्य है । इस शिक्षा के पाठ्य क्रम, विधि, विद्यालय, बालक, शिक्षक एवं अनुशासन के प्रति उनकी क्या अवधारणायें हैं । बेसिक शिक्षा का दर्शन हमें यह बताता है कि इसकी योजना की नींव आधुनिक शिक्षा के दोषों को दूर करने के लिए रखी गयी है । यह योजना उत्तम दर्शन एवं आधुनिक मनोवैज्ञानिक खोजों की विशिष्टताओं से युक्त योजना है इस योजना का दर्शन गांधी दर्शन पर ही केन्द्रित है ।

गांधी दर्शन के अनुसार सच्ची शिक्षा का सम्बन्ध बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की क्षमताओं के विकास से है ।

अध्याय पंचम व षष्ठम में हमने यह भी देखा है कि जॉन डिवी ने अपनी अनेक कृतियों द्वारा लोकतंत्रात्मक शिक्षा की अवधारणा के लिए सदैव नया विचार देने का प्रयत्न करते रहे हैं, और अपनी विचित्र शैक्षिक पुनर्व्यवस्था द्वारा पारम्परिक शिक्षा के विरूद्ध विद्रोह करते रहे हैं जिसके कारण शिक्षा के नये चिन्तन के प्रत्येक पहलू के प्रमुख प्रतीक बन गये थे । हम देखते हैं कि इनके विचारों में लोकतंत्र का भविष्य निहित है । जॉन डिवी के विचारों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि एक जनतंत्रात्मक समाज का अस्तित्व या उसका जीवन, समाज व राष्ट्र की शिक्षा के गुणों व विशिष्टताओं पर निर्भर है, जिसे एक देश व समाज अपने बच्चो को देने के लिए व्यवस्था करता है । एक लोकतंत्रात्मक समाज की शिक्षा निश्चित रूप से क्रियात्मक मूल्यों के आश्रयाधीन है, जिसे हम " वैल्यू कन्डीशन्ड एक्टिवटी " कहते हैं । जनतंत्रात्मक शिक्षा को प्रभावी बनाने के लिए उसे मूल्यों को परिभाषित करना होगा, ताकि बच्चे उसे जीवन में धारण कर सके और उसके लिए प्रयत्नशील हों । शिक्षा को बालकों के लिए उत्तरदायित्व स्वतंत्रता, देशभक्ति तथा ईमानदारी की मौलिक नैतिकता से सम्बन्धित व्यवहार को प्रदान करना चाहिये ।

हमने देखा है कि लोकतंत्रात्मक सामाजिक व्यवस्था

की शिक्षा की व्याख्या में प्रश्नात्मक मूल्यों । क्वेश्चन्ड वैल्यूत। का स्थान केन्द्र में है । अष्टम् अध्याय में मेरे द्वारा महात्मा गांधी के सामाजिक शिक्षा, अहिंसक समाज के निर्माण तथा राज्य विहीन अहिंसक लोकतंत्रात्मक समाज हेतु शिक्षा का विवरण प्रस्तुत किया गया है,और यह देखा व अनुभव किया गया है कि महात्मा गांधी जी की शिक्षा हस्तकला केन्द्रित, समाज व प्रकृति केन्द्रित है । इसके अतिरिक्त इनके विचारों से रूसो, पेस्टालॉजी, फ्रोबेल आदि शिक्षा शास्त्रियों के विचारों की तुलना की गयी है ।

प्रस्तुत अध्ययन के नवम्" अध्याय में जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के शैक्षिक व दार्शनिक विचारों की आलोचनात्मक तुलना की गयी है ।

दशम् तथा एकादश अध्यायों में हमने जॉन डिवी के मौलिक योगदान व विश्व विचार में उनके स्थान तथा उन तत्वों की खोज की है, जिनसे जॉन डिवी व महात्मा गांधी के विचारों की भारत की शिक्षा के विस्तृत क्षेत्र में विशेष संगति व महत्व पूर्ण स्थान निर्धारित होता है । वास्तव में यह विचार जॉन डिवी के सम्बन्ध में विशेष अर्थ पूर्ण है, क्योंकि जॉन डिवी के विचार हमारी शिक्षा के लिए विशेष महत्व व संगति पूर्ण हैं । इस अध्ययन में यह भी खोजने का प्रयास किया गया है कि जॉन डिवी के विचार भारतीय परिवेश के किन क्षेत्रों में संगतपूर्ण हैं ।

अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि वास्तव में ये क्षेत्र लोकतंत्र, मूल्य व शिक्षा है । हमने देखा है कि भारत के लोकतंत्र का भविष्य जॉन डिवी व महात्मा गांधी के विचारों की गहराई में निहित है, परन्तु यह भी सत्य है कि लोकतंत्र का भविष्य इस तथ्य में निहित है कि हम उसे सुरक्षित रखने के लिए किस प्रकार तैयार होते हैं ।

द्वादस अध्याय का प्रयोग समस्त अध्यायों का सारांश प्रस्तुत करने में किया गया है ।

हमने इस अध्ययन से यह भी आशा की है कि जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के विचारों की अन्य क्षेत्रों में अध्ययन करने की लोगों को प्रेरणा मिलेगी । हम जानते है कि देश की पुनर्रचना में शिक्षा का योग सर्वाधिक महत्व का है ।

अध्याय-2

जॉन डिवी का जीवन वृत्त एवं कृतित्व

। 1859 - 1952 ।

सन् 1859 एक महत्वपूर्ण वर्ष था । डॉर्विन ने "ओरिजिन ऑव स्पीसिस" तथा मॉर्क्स ने क्रिटिक ऑव पोलिटिकल इकनामी" नामक ग्रन्थों की रचना इसी वर्ष की थी । यह वह समय था जबकि विश्व में अपने दार्शनिक व शैक्षिक विचारों से क्रान्ति लाने के लिए जॉन डिवी ने 20 अक्टूबर सन् 1859 मे न्यू इंग्लैण्ड स्थित "वरमान्ट" कस्बे में जन्म लिया था । "वरमान्ट" नगर ऐसा नगर था जिसमें लगभग 150 वर्षों से अब तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ था । इस नगर की सम्पूर्ण विशेषतायें पुरातन थीं । यह चतुर्दिक पहाड़ियों से घिरा मनोरम स्थान था ।

इनके माता-पिता एक मध्यम वर्गीय परिवार के थे, पिता पंसारी का व्यापार करते थे । जॉन डिवी अपने माता-पिता की तीसरी संतान थे, इनकी बाल्यावास्था एक ग्रामीण अंचल में ही बीती थी, जहाँ दैनिक जीवन मे धर्म व राजनीति के पुरातन रीति-रिवाज ही प्रचलन मे थे । जॉन डिवी ने अपने दोनों भाइयों " डेविसरिच डिवी तथा चार्ल्स माइनर डिवी" के साथ प्रारम्भिक शिक्षा अपनी जन्मभूमि के विद्यालय में ही ग्रहण किया था । वह वास्तव में एक पब्लिक स्कूल था, जहाँ वर्ग भेद व असमानता का अभाव था, यहाँ

सभी परिवार के बालकों को समान रूप से शिक्षा प्रदान की जाती थी, विद्यालय का सम्पूर्ण वातावरण प्रजातंत्रात्मक था ।

जॉन डिवी परिवार :-

जॉन डिवी की परिवार, उत्तम प्रकार की बुनाई में निष्णात बुनकरों [जुलाहों] के साथ "फ्लेन्डर्स" से आकर "न्यू इंगलैण्ड" मे बस गया था । वे "चरागाह का"[1] के नाम से प्रसिद्ध हो गये । डिवी के पिता का नाम "आँरकी बाल्ड स्प्रेग डिवी" था । इनके पिता "थामस डिवी" सन् 1630-33 के मध्य "मैसा चुसेट" से आकर यहाँ बसे थे । जॉन डिवी के पिता इस वंश की चौथी पीढ़ी के थे । डिवी के पिता "आरकी वाल्ड स्प्रेग डिवी" का जन्म सन् 1811 में "उत्तरी वरमान्ट " में हुआ था । अपनी आयु का लगभग अर्ध भाग बिता कर इन्होने "लुसीनारिच" नामक महिला से विवाह किया, जो अपने पति से लगभग 20 वर्ष आयु में छोटी थी । इनसे इन्हे चार संतानें प्राप्त हुई । उस समय इनके पिता की आयु लगभग 50 वर्ष की थी । इनके पिता सामान्य कृषक परिवार के होते हुये भी व्यापारी थे । इनकी विद्यालयीय शिक्षा सामान्य थी, किन्तु साहित्यिक रूचि व व्यावहारिक

1- फ्रॉम बाइग्राँफी आँव जॉन डिवी, बाई जेम, एम० डिवी, पॉल आँर्थर शिल्पस बुक, एडिडेट, द फिलॉसफी आँव जॉन डिवी- पृष्ठ-4 [नार्थ वेस्टर्न यूनीवर्सिटी, शिकागो] 1939

ज्ञान अधिक था । वे "शेक्सपियर" व मिल्टन" की कृतियों को पढ़ना पसंद करते थे । उनमें भाषण देने की स्वाभाविक योग्यता थी, इसीलिए उन्होने अपने भाषण देने की कला से स्थानीय प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी ।

जॉन डिवी की माता "लुसीना आरटीमेसिया रिच" धनी परिवार की थी । इनमें मिशिनरी (प्रचारक) उत्साह बहुत था । ये पति की अपेक्षा ज्यादा महत्वाकांक्षी थी । माँ की प्रेरणा व प्रभाव से सभी बच्चों ने पारिवारिक परम्पराओं को तोड़कर कॉलिज की शिक्षा ग्रहण की । इनका पारिवारिक वातावरण साधारण परन्तु स्वास्थ्यप्रद था । जॉन डिवी अपने अन्य भाइयों की अपेक्षा ज्यादा शर्मीले स्वभाव के थे । जॉन डिवी पर परिवार के धार्मिक वातावरण का गहरा प्रभाव पड़ा था, इसलिए उनमें धर्म के प्रति आस्था थी ।

जॉन डिवी ने सन् 1879 में 20 वर्ष की आयु में "न्यू इंग्लैण्ड" स्थित "वरमान्ट" कॉलिज से "स्नातक" की उपाधि प्राप्त की । इस परीक्षा में इन्होने विशेष योग्यता प्राप्त की, तथा एक वर्ष तक दर्शन के गहन अध्ययन में लगे रहे । विभिन्न विश्व-विद्यालयों में इन्होने दर्शन के प्राध्यापक के रूप में अपनी सेवाये दीं । सन् 1882 में जॉन डिवी ने "जॉन - हॉपकिन्स विश्व-विद्यालय बाल्टीमोर" मे उच्च शिक्षा के लिए प्रवेश लिया ।

प्रभाव व कृतित्व :-

प्रारम्भिक प्रभाव :-

जॉन डिवी के शैक्षिक सिद्धान्तों पर उनके बाल्यकाल का प्रभाव पड़े बिना न रहा, प्रत्येक शिक्षा शास्त्री व दार्शनिक के जीवन पर प्राय: उसके बचपन का प्रभाव अवश्य पड़ता है, इस लिए उन्होने अपने बाल्यकाल मे ही यह अनुभव किया था कि ग्रामीण अंचल के लोग घरेलू कार्य, कृषि कर्म और औद्योगिक कार्यों के दैनिक क्रिया-कलापों मे कैसे लगे हुये अपने उत्तरदायित्व का वहन करते थे । विद्यालयीय जीवन इसके विपरीत आनन्द रहित था, यद्यपि न्यू इंग्लैण्ड के ग्रामीण विद्यालयों में पर्याप्त परिवर्तन हो चुका था, फिर भी शिक्षा मुख्यत: पुस्तकीय थी तथा वहाँ का अनुशासन कठोर था, ऐसे तथ्यों का अवलोकन करने के पश्चात डिवी ने अनुभव किया कि शिक्षा की महत्वपूर्ण बाते कक्षा व पुस्तक द्वारा न प्राप्त कर बाहरी जीवन के विभिन्न अनुभवों से प्राप्त ज्ञान अधिक सार्थक है । बाह्य जीवन के अनुभवों से ही वास्तविक शिक्षा व बौद्धिक स्वानुशासन प्राप्त हो सकता है । इन दोनों प्रभावों से जॉन डिवी के मन मे दो विश्वास जाग्रत हुये :-

1- पुस्तकीय अथवा परम्परागत तरीकों से प्रदत्त शिक्षा बालकों का कोई भी हित नहीं कर सकती ।

2- दैनिक जीवन में मानव सम्पर्क महत्वपूर्ण स्वाभाविक एवं गतिशील "सीखने की स्थिति" का साधन है ।

"वरमान्ट" के उस छोटे समाज में सामूहिक चेतनता की शक्ति का अनुभव उन्हे अपने पिता की दुकान पर आने वाले लोगों की बातचीत व सामयिक घटनाओं के सम्बन्ध मे की गई आलोचनाओं के श्रवण करने से हुआ । इसी ग्रामीण अंचल में रहते हुये ही उन्हे उद्योग व विज्ञान से होने वाले परिवर्तनों की जानकारी प्राप्त हुई थी ।

सन् 1879 में "वरमान्ट" कॉलिज में अध्ययन करते समय टी०एच० हक्सले द्वारा लिखित पुस्तक "फिजियोलाजी" के अध्ययनोपरान्त उन्हे यह ज्ञात हुआ कि समस्त जीवित प्राणियों में एकता है । अंग्रेजी समाचार पत्र, जो "द थ्योरी ऑव इवोल्यूशन" वाद-विवाद व व लेख प्रस्तुत करते थे, ने इनकी बुद्धि को उत्प्रेरित किया । अत: वे विज्ञान व पुराने रीति-रिवाजों के विरुद्ध संघर्ष करने में विशेष रूचि लेने लगे ।

जॉन हापकिन्स विश्व-विद्यालय में :-

सन् 1882 में जॉन डिवी उच्च शिक्षा हेतु "जॉन हापकिन्स विश्व-विद्यालय, वाल्टीमोर गये। इस विश्व-विद्यालय से इन्होने "कॉन्ट के दर्शन" पर पी०एच०डी० की उपाधि प्राप्त की । यहीं पर उनका सम्पर्क "प्रोफेसर जार्ज एस० मॉरिस तथा डा० जी० स्टेनहाल" से हुआ । "प्रोफेसर मॉरिस का जॉन डिवी" पर विशेष प्रभाव पड़ा , "मार्टिन जी०व्हाइट ने इस संदर्भ में लिखा है :-

"उनका डिवी परसबसे अधिक प्रभाव यह था कि डिवी कुछ विशेष दार्शनिक विचारों के अनुयायी हो गये और कुछ के विरोधी।"[1]

"मॉरिस" वास्तव में वह यंत्र थे जिन्होने डिवी को हीगल के आदर्शवाद की ओर उन्मुख किया। "मॉर्टन जी व्हाइट" ने आगे भी डिवी के विषय में कहा है :-

"डिवी एक आदर्शवादी नहीं है, वे आदर्शवादी तब बनते हैं जब वे आधुनिक जीव विज्ञान, मनो विज्ञान व सामाजिक विज्ञान के परिणामों को अपने लेखों मे समाविष्ट कर लेते हैं।"[2]

जॉन डिवी ने अपने दार्शनिक दृष्टिकोण मे पर्याप्त परिवर्तन किया, किन्तु "मॉरिस" के द्वारा "हीगल" के आदर्शवाद" का जो निदेश उन्हें मिला, उसका प्रभाव इनके ऊपर से प्राय: कभी नहीं हटा।

मिशिगन विश्व-विद्यालय मे :-

प्रोफेसर "मॉरिस" ने जॉन डिवी को इस विश्व-विद्यालय में "दर्शन का प्राध्यापक" बनाया। इस विश्वविद्यालय का वातावरण मित्रतापूर्ण था, विभाग के अन्य प्राध्यापकों

1- मॉर्टन, जी0 व्हाइट : "द ओरिजन ऑव डिवीज इन्स्ट्रूमेन्टलिज्म, पृष्ठ- 12 ।

2- तदैव - पृष्ठ-12 ।

ने इन्हें बड़ा महत्व, ममत्व व प्रेम प्रदान किया । उन्हें विभाग का प्रौढ़ व जिम्मेदार सदस्य माना गया । इस वातावरण का प्रभाव इन पर इस प्रकार पड़ा कि इनका विश्वास प्रजातंत्र की शक्ति मे बढ़ता गया । विचारों की ऐसी श्रृंखला जगी कि उनका शैक्षिक सिद्धान्त इससे प्रभावित हो गया ।

"एन आरबर " मे डिवी का सम्पर्क "एलिस चिपमैन" से हुआ, दो वर्ष पश्चात सन् 1886 में डिवी ने "एलिस" से विवाह कर लिया । "एलिस चिपमैन" एक भावुक एवं कुशाग्र बुद्धि की महिला थीं, इन्होने समकालीन जीवन की समस्याओं के अध्ययन मे जॉन डिवी की दार्शनिक रुचि को बढ़ावा दिया ।

" आउट लाइन्स ऑव ए क्रिटिकल थ्योरी ऑव इथिक्स" 1891 तथा " स्टडी ऑव इथिक्स" 1894 की पुस्तकें उनके दार्शनिक सिद्धान्तों में क्रमश: आये हुये परिवर्तनों की द्योतक हैं । प्रथम पुस्तक में इन्होने बुद्धि के कार्यों का मानव कार्य क्षेत्र में व्यावहारिक, वैयक्तिक व सामाजिक दशाओं की व्याख्या की है, तथा दूसरी पुस्तक में इन्होने "यंत्रवाद व व्यावहारिकतावाद के मौलिक सिद्धान्तों का समावेश कर बुद्धि के ध्यान योग के मूल संवेदनाओं (नेटिव इम्पलसिस) के प्रयोग के परिणामों का विवरण दिया है । मिशिगन विश्व-विद्यालय में जॉन डिवी ने सन् 1894 तक अध्यापन कार्य किया ।

"स्टनलेहाल" तथा विलियम जेम्स का प्रभाव :-

डिवी के दार्शनिक विचारों पर कई दार्शनिकों का

प्रभाव पड़ा था । प्रारम्भ में इन पर "जार्ज मॉरिस" का प्रभाव पडा था, जिसके कारण जॉन डिवी "हीगल" की आदर्शवादी विचारधारा से प्रभावित हुये और अपने दर्शन को "प्रयोगात्मक आदर्शवाद" की संज्ञा दी । "हॉल" के व्याख्यानों से इन्हे प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के निर्माण कार्य हेतु मनोविज्ञान और दर्शन के निकट सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त हुई । वह एक ऐसा समय था जबकि तार्किक मनोविज्ञान का दर्शन से परम्परागत सम्बन्ध का विरोध चला आ रहा था, नये प्रयोगात्मक दृष्टिकोण के कारण उसे त्याग दिया गया था ।

सभी प्रारम्भिक प्रभावों में "विलियम जेम्स" का प्रभाव -जॉन डिवी" पर सर्वाधिक था । "जेम्स" के दार्शनिक विचारों से प्रभावित हो डिवी पूर्णरूपेण प्रयोगवादी हो गये । उनके विचारों ने डिवी के विचारों को मूर्तरूप दिया । "जेम्स" लिखित "प्रिंसपुल ऑव साइकालॉजी" तथा जीव विज्ञान पर आधारित मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के लक्ष्यों के बारे में "जॉन डिवी ने लिखा है :-

> " यह पुस्तक मेरे विचारों को अधिक से अधिक प्रभावित करती रही और इसने फरमेन्ट की तरह पुराने विश्वासों व विचारों को परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।"

जब डिवी "मिनीसोटा विश्व-विद्यालय" में प्रोफेसर हुये तब "मॉरिस" की मृत्यु हो गयी । निःसन्देह यह उनके

लिए एक व्यक्तिगत क्षति थी । "मॉरिस" की मृत्यु के बाद वे मिशिगन विश्व विद्यालय में आकर प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हो गये । यहाँ डिवी सन् 1894 तक रहे । मनोविज्ञान में उनकी रूचि दिन प्रतिदिन बढ़ती गयी, बाद के वर्षों में "एन आडवर" मे रहते हुये " जॉन डिवी; टीचर्स इन्स्टीटयुट और कन्वेन्सन्स" मे चिन्तन, कल्पना, याददाश्त या स्मृति जैसे विषयों पर भाषण दिया करते थे ।

शिकागों विश्व-विद्यालय में इनके मूलभूत विचारों का प्रादुर्भाव

धीरे-धीरे जॉन डिवी को यह अनुभव हुआ कि केवल सैद्धान्तिक विचारों से किसी भी समस्या का हल नहीं निकाला जा सकता, इसलिए उन्होने निरन्तर प्रयोग की आवश्यकता की अनुभूति की, और विचारों का परीक्षण प्रयोगात्मक ढंग से करने पर बल दिया । वर्तमान शिक्षा पद्धित की त्रुटियों से वे भिज्ञ थे, क्योंकि वह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित नहीं थी, इस विश्वास से उन्होने यह अनुभव किया कि दर्शन की सर्वाधिक उपयोगिता व महत्त्व सामाजिक समस्याओं के हल के लिए है । सामाजिक प्रयोग व परीक्षण के महत्त्व ने डिवी के मन में एक "प्रयोगात्मक स्कूल" खोलने की प्रेरणा दी ।

सन् 1894 में जॉन डिवी ने दर्शन के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष के रूप में शिकागों विश्व विद्यालय में कार्य प्रारम्भ किया, यहाँ पर उन्होने दर्शन व शिक्षा दोनों विषयों का अध्ययन किया था, यहाँ पर सन् 1903 तक कार्य करते रहे । सन्

1903-4 मे ये शिक्षा निदेशक भी थे । जब इन्होने शिकागो विश्व विद्यालय में कार्य प्रारम्भ किया तब उनका "प्रयोगात्मक स्कूल" वाला स्वप्न साकार हुआ । उन्होने परम्परागत शिक्षा पद्धति से असन्तुष्ट अभिभावकों के सहयोग से एक प्रारम्भिक विद्यालय खोला, बाद में यह स्कूल "लेवरोटरी स्कूल" या डिवी के स्कूल के नाम से जाना गया, डिवी के छः बच्चे थे, जिनके साथ खेलकर इन्होने दर्शन व शिक्षा की समस्याओं का हल ढूंढने का प्रयत्न किया था, जो हल इन्हे इससे प्राप्त हुआ, उसका प्रयोग इन्होने अपने "लेवरोटरी स्कूल" में किया । इस विद्यालय में इन्होने 4 से 13 वर्ष तक के बालकों पर प्रयोग किया था । अपने अनुभव, अन्तर्दृष्टि एवं प्रयास से डिवी एक योग्य अध्यापक दार्शनिक एवं शिक्षा शास्त्री हुये । जे०एम०डिवी ने इस विद्यालय के बारे में लिखा है :-

> " इस विद्यालय का शिक्षण विभाग से वही सम्बन्ध है जो प्रयोगशालाओं का भौतिक विज्ञान के शिक्षण मे है ।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि डिवी के विचारों को निश्चित करने में, जिन पुस्तकों को उन्होने पढ़ा था उनसे कहीं अधिक उनके निजी सम्पर्कों का प्रभाव था । सन् 1899 की उनकी प्रसिद्ध पुस्तक "स्कूल एण्ड सोसाइटी" उनके उस निजी सम्पर्क का परिणाम थी, जो स्कूल के लिए धन संग्रह करते समय

सामाजिक प्राणियों से हुआ था । इस "लेब्रोटरी स्कूल" ने न केवल शिक्षा के शोध में महत्वपूर्ण योगदान दिया, वरन् इसने डिवी के शिक्षा के विषय में दार्शनिक सिद्धान्तों पर पूर्णत: विश्वास एवं निश्चितता प्रदान की । परिणाम स्वरूप शिक्षा और दर्शन की निकटता बढ़ती गई और वे दोनों एक दूसरे में समाहित हो गये । शिक्षा और दर्शन दोनों का विषय मनुष्य एवं वातावरण हो गया । इनका प्रयोगात्मक अध्ययन भी होने लगा । प्रयोगात्मक अध्ययन का तात्पर्य था, व्यक्ति अपना व अपने वातावरण का स्वयं अध्ययन करें ।

"एला फ्लेग यंग" तथा "जेन एड्मंस" से सम्पर्क :-

शिकागो मे ही जॉन डिवी का सम्पर्क इन दो महिलाओं "एला फ्लेग यंग" तथा "जेन एडम्स" से हुआ । इनका सम्पर्क जॉन डिवी के लिए परम लाभकारी सिद्ध हुआ । इ0एफ0 यंग से निकट का सम्पर्क व भिन्नता होने के कारण डिवी के शिक्षा सिद्धान्त दृढ़ एवं स्पष्ट होते गये, "एला" सिटी स्कूल की "जिला अधीक्षिका" थी । इन्होने विद्यालय के व्यावहारिक प्रशासन में प्रजातंत्र की महत्वपूर्ण भूमिका से डिवी को परिचित कराया । यह विचार कि "प्रजातंत्र वास्तव में नैतिक व मानवीय जीवन का तरीका है ।" डिवी के लिए परम सार्थक हो गया, विशेषकर उस समय जब इनका सम्पर्क "हेल हाउस" तथा "जेन एडम्स" से हुआ । "हेल हाउस" एक सामाजिक बस्ती थी, जिसमें विभिन्न धार्मिक विश्वासों के लोग निवास करते थे

परन्तु प्रत्येक के जीवन का तरीका प्राय: एक सा ही था । संक्षेप मे यह बस्ती लघु रूप में प्रजातांत्रिक समाज थी । इन दो सम्पर्कों से डिवी को विश्वास हो गया था कि शिक्षा में प्रजा-तंत्र एक निर्देशन शक्ति है ।

शिकागो मे डिवी ने अनेक सेमिनार उन लोगों के लिए चलाये, जो किसी तार्किक विषय पर "डॉक्ट्रेट" की उपाधि हेतु अध्ययनशील थे । इनके एक सेमिनार में "लाट्जे" का तर्क" विवाद के लिए विषय रूप में चुना गया । डिवी ने इसका विश्लेषण व अर्थपूर्ण विवरण सन् 1899 में "स्टडी इन लॉजिकल थ्योरी" की पुस्तक के प्रारम्भिक पृष्ठों मे दी है । विलियम जेम्स" ने इस पुस्तक के प्रकाशन पर जॉन डिवी को बधाई दी थी । कई दृष्टिकोण से इनकी यह पुस्तक "यंत्रवादी सिद्धान्त" का प्रारम्भिक रूप थी । कालान्तर मे डिवी ने हीगल के आदर्शवाद को त्याग दिया । शिकागों के अनुभव के आधार पर जॉन डिवी ने कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें जैसे सन् 1896 में "इन्ट्रेस्ट ऐज रिलेटड टू विल, सन् 1897 मे "माइ पेडागॉजिक क्रीड", 1900 में, द एलीमेन्ट्री स्कूल रिकार्ड", 1902 में, द "चाइल्ड एण्ड करीक्यूलम", 1904 मे, "रिलेशन ऑव थ्योरी टु प्रेक्टिस इन द एजूकेशन ऑव टीचर्स । लिखी ।

सन् 1904 में जॉन डिवी ने शिकागो विश्वविद्यालय से लेबरोटरी स्कूल" के प्रबन्ध व संगठन के विषय में विश्वविद्यालय के प्रेसीडेन्ट से मतभेद होने के कारण स्तीफा दे दिया तथा अपने

पुराने मित्र "मैकीन" की सहायता से "कोलम्बिया" विश्व विद्यालय में दर्शन के प्रोफेसर हो गये ।

कोलम्बिया में उनके कार्य :-

कोलम्बिया निवास मे डिवी ने प्रचुर मात्रा में लेखन कार्य किया । विदेशों में कई आयोगों तथा शिक्षा सम्बन्धी कार्यों को भी सम्पादित किया । इस काल की लिखी हुई इनकी पुस्तके अनेक संस्थाओं मे दिये गये भाषणों पर आधारित थीं तथा कुछ उनके शिकागो अनुभव के आधार पर आधारित थीं। जैसे सन् 1907 में "द स्कूल एण्ड चाइल्ड" और "मॉरैल प्रिंसिपिल्स ऑव एजूकेशन", सन् 1910 में "हाउ वी थिंक" सन् 1913 में " इन्ट्रेस्ट एण्ड एफर्ट इन एजूकेशन" सन् 1915 में " स्कूल ऑव टुमारो" तथा "आर्ट एण्ड एक्सपीरियन्स" सन् 1916 में " डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" सन् 1915 में ही जॉन डिवी "डा0 एलबर्ट सी0 बोरनिस" के सम्पर्क में आये, उसके फलस्वरूप उन्होने "आर्ट एण्ड एक्सपीरियन्स" पुस्तक लिखी थी। यह प्रमुख ग्रन्थ अनेक संस्थानों में दिये गये भाषणों पर आधारित था ।" रिकन्सट्रक्शन इन फिलॉसफी" जो 1920 में प्रकाशित हुई तथा सन् 1922 मे "ह्यूमन नेचर एण्ड कन्डक्ट" तथा इन्ट्रोडक्शन टू सोसल साइकॉलजी" 1925 में एक्सपीरियन्स एण्ड नेचर तथा 1922 मे ही "द पब्लिक एण्ड इट्स प्राब्लम्स" "जर्मन फिलॉसफी एण्ड पोलिटिक्स", लिबरेलिज्म एण्ड सोसल एक्शन" प्रकाशित हुई ।

डिवी का सम्पर्क अपने अनेक विद्यार्थियों से जैसे "लवज्वाय", टॉनी", "रोल्डम", "हरॉल", "चैपमैन", "ब्राउन" से हुआ, जिन्होने बाद में बुश, स्नेडर, रैन्डल, एडमैन, किल-पैट्रिक, गुडरोल, वाइल्स, इस्टमैन, हुक, रेटनर, के साथ डिवी के कार्यों में सहयोग दिया ।

वर्तमान शताब्दी के प्रथम दशक में जॉन डिवी के विचार उनकी कृतियों तथा अनुयायियों के द्वारा विदेशों में प्रसारित होते गये । प्रो0 जे0जे0 फिन्डले ने इंग्लैण्ड में, "जार्ज बर्टियर" ने फ्रान्स में", "एडवर्ड क्लपरेड" ने स्विटजरलैण्ड और "जार्ज कर्सेयेन्सिटीनियर" ने जर्मनी में जॉन डिवी के विचारों को लोक प्रिय बनाया । डिवी ने चीन व जापान की यात्रा की, वहाँ पर आपने दर्शन व शिक्षा पर भाषण दिये । यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि "कमेनियस" के समय से किसी भी शिक्षा विद् ने इतनी सार्वभौमिक ख्याति प्राप्त नहीं कीथी ।

चीन व जापान की यात्राओं ने डिवी के राजनैतिक व सामाजिक विचारों में महत्वपूर्ण विकास किया । "एन आर्वर में पढ़ाते समय डिवी ने "पोलिटिकल फिलासफी" पर व्याख्यान दिया था । यह उनकी दार्शनिक रूचियों से अलग व स्वतंत्र थी । वे जानते थे कि दार्शनिक सिद्धान्तों की सही परख उसके सामा-जिक परिप्रेक्ष्य में प्रयोग ही है ।

सन् 1924में डिवी ने टर्की और सन् 1926 में

मैक्सिको की अनुभव पूर्ण यात्रायें की । उनका विश्वास बल पाता गया कि शिक्षा ही मानव कल्याण का परम साधन है । "लूना चार्स्की" के शिष्यत्व में डिवी ने सन् 1923 से 1933 तक रूसी विद्यालयों को प्रभावित किया ।

रूस द्वारा आमन्त्रित :-

सन् 1928 में जॉन डिवी ने रूस की यात्रा की । इस यात्रा से पूर्व 1926 में इन्होने "द क्वेस्ट फार सरटेनिटी" तथा "अ स्टडी ऑव द रिलेशन ऑव नॉलिज एण्ड एजूकेशन" का प्रणयन व प्रकाशन किया । रूस में उनकी लगभग आधी दर्जन पुस्तकें रूसी भाषा में छापी गयीं । जब इन्होने रूस पर कई लेख प्रकाशित किये, तो उनका सम्बन्ध अनेक शिक्षा विदों से हुआ । उनके इन लेखों के कारण उन्हें "बाल शिविक" कहा गया । इनके लेख सहानुभूति पूर्ण होते हुये भी संकीर्ण विचारधारा वाले प्रेस ने इनकी काफी आलोचना की ।

सन् 1930 में सेवा मुक्त होने से पूर्व जॉन डिवी ने "क्वेस्ट फार सरटेनिटी" तथा "सोर्सेज ऑव साइन्स एजूकेशन" पुस्तकों का प्रकाशन 1929 में कर दिया था । 1930 में जॉन डिवी सेवा मुक्त हो गये, परन्तु "एमीरिट्स" प्रोफेसर के रूप में कार्य करते रहे । सेवा मुक्त होने के बाद भी उनका लेखन कार्य चलता रहा । उनकी रूचि मनोविज्ञान , नीतिशास्त्र व राजनीति शास्त्र में बनी रही । उनकी पुस्तकों से उनकी असाधारण गम्भीरता व रूचि का ज्ञान होता है । सन् 1931

में "फिलासफी एण्ड सिविलीजेशन", 1938 में "एक्सपीरियन्स एण्ड एजूकेशन", 194C में "एजूकेशन ऑव टुडे" तथा 1946 में "प्राब्लम्बस ऑव मेन" का प्रणयन व प्रकाशन किया ।

"ट्रॉसकी " द्वारा सोवियत सरकार के विरूद्ध मैक्सिको में रचित षड्यन्त्रों की खोज करने वाले आयोग के वे 80 वर्ष की आयु मे अध्यक्ष बने । 87 वर्ष की आयु मे जॉन डिवी ने दूसरी शादी की और दूसरा परिवार बसाया । सन् 1949 में 90 वर्ष की आयु मे "आर्थर टी0 वैन्टले" के साथ मिलकर "नोइंग एण्ड द नोन" पुस्तक प्रकाशित की । 92 वर्ष की आयु में निमोनिया की बीमारी से "जॉन डिवी" की मृत्यु हो गयी । किन्तु उस समय भी वे शरीर व मस्तिष्क से चुस्त व दुरूस्त थे । वे अपने जीवन के अन्तिम समय तक लेखन का कार्य करते रहे ।

"होमर" के शब्दों में "जॉन डिवी" के विषय में ऐसा कहा जाता था :-

> " जो आदमी कहता कुछ है और दिल में कुछ और रखता है वह मेरे लिए नरक के दरवाजे की तरह घृणा का पात्र है ।"

"जॉन डिवी" अगुआ एवं क्रान्तिकारी विचारों के व्यक्ति थे, किन्तु कार्य मे साहित्यिक रूप से प्रकाश युक्त नहीं थे । वे धैर्यशाली एवं नम्र स्वभाव के थे । उन्होने अपने व्यक्तित्व की जादू की कला का प्रयोग कभी नहीं किया । इतिहास का

निर्णय चाहे जो कुछ हो किन्तु डिवी को एक अच्छा आदमी ही कहा जायेगा । "मैक्स इस्टमैन" ने युवक डिवी का इस प्रकार वर्णन किया है :-

> " उन दिनों "डिवी" राबर्ट लुईस, स्टीवेन्सन" के चित्र की भांति दिखायी देते थे । उन्ही की तरह उनके चिपटे बालथे, काली मूँछ थी, चमकीली आँखे थी, जिनमें ज्ञान की रोशनी चमकती थी, वे अपनी कक्षा मे ऐसी टाई पहनकर आते थे जो कालर से बाहर होती थी, उनके पतलून की एक टाँग ऊपर लटकी रहती थी । एक बार वे एक फटे हुये कोट को एक हफ्ते तक स्कूल मे पहनकर आये, उस कोट के छेद से एक कपड़े का टुकड़ा ऐसा बाहर निकला रहता था, मानों वह फरिश्ता का पंख हो । उनके बाल ऐसे दिखाई देते थे मानो उन्होने तोलिया से कंधी किया हो। "

ऐसा वर्णन अन्यत्र कठिनाई से ही मिल पायेगा । डिवी जीवन पर्यन्त दिल से "न्यू इंग्लैण्ड" के ग्रामीण वातावरण, अपने खेत व बगीचों से प्रेम करते रहे ।

जॉन डिवी के समस्त विचार उनके नहीं थे, किन्तु उनका जीवन विचारों से अलग नहीं था । उनका विचार उनके अनुभवों पर सदैव आलोचनात्मक बना रहा । इसलिये उनके विचारों का ढाँचा पूर्ण न होते हुये भी क्षेत्र में विस्तृत एवं गहन था । "इमरसन" ने अपने अनुभव कविता में किन्तु डिवी ने दर्शन में अभिव्यक्त किये । "पॉल के0कानकिन" ने इनके विषय में लिखा है :-

> " उनसे अधिक योग्य,उत्तेजक और अच्छा भाषण देने वालों मे किसी भी अमेरिकन ने इतना अनुभव नहीं प्राप्त किया था, न तो इतना विद्वान व विचारक ही था, इसके परिणाम स्वरूप वे हमारे

सबसे अच्छे रीति रिवाजों के न केवल आलोचक वरन् उनका बचाव करने वाले उत्साही व्यक्ति थे। डिवी सबसे ज्यादा धार्मिक प्रवृत्ति के थे, जो अ इस खोज मे लगे थे कि व्यक्ति मूल्यों की स्वीकृति, आजादी व आशा को क्यों निरन्तर समर्थन देता है।"[1]

सन् 1952 मे जब डिवी की मृत्यु हुई, तब वे विश्व मे श्रेष्ठ दार्शनिक व शिक्षा शास्त्री तथा शिक्षक के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। सन् 1931 मे टर्की की सरकार ने विद्यालयों के संगठन व शिक्षा पद्धति को पुनर्गठित करने हेतु आमन्त्रित किया। इस कार्य को उन्होने बखूवी सम्पादित किया।

डिवी की अन्य क्षेत्रों मे रूचि :-

दर्शन व शिक्षा के अतिरिक्त जॉन डिवी की रूचि मानव कल्याण से सम्बन्धित प्रत्येक विषय में थी। उनके द्वारा लिखित पुस्तकों की संख्या आश्चर्य में डाल देने वाली है। भाग्य ने भी उन्हे अन्य विचारकों की अपेक्षा अधिक समय लेखन हेतु प्रदान किया। सेन्टेनियल बिब्लीयोग्रैफी ने उनकी पुस्तकों व लेखों की सूची 153 पृष्ठों मे दी है, और उन पर अन्य लेखकों द्वारा लिखित कृतियों की सूची 140 पृष्ठों मे दी है। अत: यह स्पष्ट है कि उनका स्तर बहुत ऊँचा था। शिक्षा का वर्तमान विद्यार्थी, व्यावहारिक शिक्षा पर उनका जो प्रभाव उनके देश मे ही नही बल्कि सारे संसार मे पड़ा, इन्कार नहीं कर सकता है।

1- पॉल के० कॉनकिन : प्युरीटन्स एण्ड प्रैग्मेटिस्ट्स" पृष्ठ-402 लॉयल बुक डिपो, लुधियाना। इण्डियन एडिशन, 1970 ।

डिवी के आधार भूत विश्वास और शैली से हमें यह ज्ञात होता है कि इन्होने इस बात पर बल दिया कि सत्य, सिद्धान्त व जीवन के अनुभव दोनों पर आधारित है । अत: उनकी कुल उपलब्धि समस्या की गहराई को समझने व उसके हल करने के प्रयास मे ही थी । यह तथ्य उनके दार्शनिक व शैक्षिक विचारों मे स्पष्ट दिखाई देता है ।

जॉन डिवी के प्रमुख विचारों का सार

निम्नलिखित पंक्तियों मे उनके दार्शनिक विचारों का सार प्रस्तुत किया गया है :-

" केवल सबसे श्रेष्ठ, सारगर्भित व सम्भव अनुभव ही मानव के लिये उत्तम है । इस उद्देश्य की पूर्ति को मात्र सुधारकों की विशेष समस्या न समझकर मानव का सामान्य उद्देश्य मानना चाहिये ।"[1]

इन्ही तथ्यों के विषय में अगले अध्यायों मे चर्चा की गई है । मानव का जीवन के विभिन्न पहलुओं एवं क्षेत्रों में संलग्न होना ही उनके विचारों की मौलिक आधार भूत परिभाषा है । इस प्रकार डिवी यह स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं कि बुद्धि जीवियों तथा शिक्षकों की इस संदर्भ में विशेष जिम्मेदारी है । इसका उद्देश्य मानव परिस्थितियों की प्रकृति को स्पष्ट करना

1- जॉन डिवी: इक्सपीरीयन्स एण्ड नेचर"- पृष्ठ-412
डब्ल्यू0 डब्ल्यू0 नार्टोनन्द कम्पनी, न्यूयार्क 1920 ।

तथा मानव जीवन की पूर्णता हेतु साधन को अन्वेषित करना है । अपने जीवन काल में अपने लेखन के बहुत से क्षेत्रों में जैसे- तर्क में, सामाजिक दर्शन में, नीतिशास्त्र में, सौन्दर्य शास्त्र में तथा शिक्षा में यही प्रयास किया है । "ऑर्थर एच० विर्थ" ने लिखा है :-

> " एक व्यक्ति के लिये यह कोई सामान्य प्रयास नहीं है, और उनका यह प्रयास ही संसार के दर्शन के लिये महत्वपूर्ण देन हो गयी ।"[1]

डिवी को वैज्ञानिक प्रभाव के कारण होने वाले परिवर्तनों का पूर्ण ज्ञान था । विज्ञान के प्रभाव को स्वीकार करते हुये वे कहते हैं :-

> " आधुनिक विज्ञान, आधुनिक उद्योग और राजनीति ने इतने अधिक मात्रा में विचार हमारे सामने प्रस्तुत किये है जो पाश्चात्य के बौद्धिक व महत्त्व पूर्ण नैतिक विचारों से सर्वथा भिन्न हैं । वर्तमान कालीन बौद्धिक उलझन व अस्पष्टता का कारण यही है । वर्तमान दार्शनिक समस्या यही है और आगे आने वाले वर्षों में भी बनी रहेगी ।"[2]

इसलिए डिवी ने यह अनुभव किया कि बुद्धिजीवियों का मुख्य कार्य विज्ञान की खोजों के अनुरूप वैचारिक नवीन एकीकरण में सहयोग देना है । डिवी सक्रिय रूप से अपने समय की विभिन्न शक्तियों एवं घटनाओं मे रूचि रखते थे । और उसी में रहकर उन्होने अपने जीवन के समस्त कार्यों को किया था । वे उन दार्शनिकों की भाँति नहीं थे, जो संसार से दूर रहकर

1- ऑर्थर एच० विर्थ : "जॉन डिवी ऐज एजूकेटर", पृष्ठ-19 विली इस्टर्न प्राइवेट लिमिटेड, न्यू दिल्ली, 1969 ।

2- जॉन डिवी : इक्सपीरियन्स एण्ड नेचर, पृष्ठ-11 ।

अन्तिम सत्य परमेश्वर के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किया करते थे। डिवी का यह तरीका नहीं था। उनकी प्रकाशि पुस्तकों तथा उनकी सक्रिय रूचियों का तत्कालीन बौद्धिक विकास व व्यवहारिक समस्याओं से सम्पर्क बना हुआ था। "जेफरशन" की भाँति डिवी उस समय के शैक्षिक, राजनैतिक, दार्शनिक और मानव सम्बन्धी समस्याओं के अध्ययन में नेतृत्व करते थे।

डिवी ने "थियोडोर रूजवेल्ट" को अमेरिका के प्रेसीडेन्ट बनाने मे सन् 1912 में अपना सहयोग व समर्थन दिया था और 1915 में वे स्वयं अमेरिकन एसोसियेशन ऑव यूनिवर्सिटी प्रोफेसर के प्रेसीडेन्ट के रूप में सेवा की। डिवी ने विभिन्न देशों की यात्रा की, और संसार में शिक्षा के क्षेत्र में सिद्धान्त व प्रयोग को प्रभावित किया। सेवा निवृत्त होने के बाद भी डिवी अपनी पुस्तकों का लेखन व प्रकाशन मृत्यु पर्यन्त सन् 1952 तक करते रहे।

इस प्रकार इस अध्याय में जॉन डिवी के विचारों को किन परिस्थितियों तथा जीवन की घटनाओं ने प्रभावित किया है, उसका संक्षेप में अध्ययन किया गया है। अगले अध्यायों में जॉन डिवी के दार्शनिक विचारों तथा शैक्षिक आशय पर प्रकाश डाला जायेगा।

अध्याय-3

गाँधी जीवन एवं कृतित्व

। 1869 - 1948 ।

ऐसा प्रतीत होता है कि सन् 1869 का वर्ष समाज शिक्षा व राजा व्यवस्था में विश्व को नवीन विचार - सिद्धान्त प्रदान करने, सत्य अहिंसा, प्रेम व करुणा को व्यावहारिकता प्रदान करने, शोषण , उत्पीड़न, विषमता , सामाजिक , आर्थिक , अन्याय के विरुद्ध क्रान्ति पैदा करने, पूर्वाग्रहों को परिवर्तित करने तथा व्यक्तिगत व सामूहिक कर्तव्य शक्ति को जाग्रत करने वाले किसी सर्वोदयी दार्शनिक को अपने अन्तिम चरण में समर्पित करने आया हो । भारत वर्ष के लिये यह वर्ष महत्वपूर्ण वर्ष था । इसी वर्ष महान क्रान्तिकारी,राजनीतिज्ञ, युगदृष्टा, मानवतावाद के पोषक ही नहीं अपितु समाज सुधारक, मौलिक विचारक, त्यागी तपस्वी, बलिदानी व्यवाहरिक दार्शनिक एवं प्रतिष्ठित शिक्षा-शास्त्री महात्मा गांधी का जन्म सम्वत् 1925 भाद्रपद कृष्णपक्ष द्वादशी दिनांक 2 अक्टूबर सन् 1869 ई0 में गुजरात प्रदेश के पोरबन्दर, सुदामापुरी नामक स्थान पर मोढा बणिक परिवार में हुआ था । इनका पूरा नाम मोहन दासकरम चन्द गाँधी था, भारतीय इन्हें श्रद्धा व प्रेम से " राष्ट्रपिता" अथवा " बापू" कहा करते हैं ।

गाँधी-परिवार -

उत्तम चन्द गाँधी अथवा ओता गाँधी इनके दादा थे ।

इनसे पूर्व के पारिवारिक सदस्य व्यापारी थे, इनके नीचे की तीन वंश परम्परायें दीवानगीरी करती थीं, ओता गांधी की दो शादियाँ हुई थी । पहली पत्नी से चार तथा दूसरी से दो पुत्र हुये थे । इस प्रकार करम चन्द अपने पिता के पाँचवे पुत्र थे, लोग इन्हें कबा गांधी भी कहा करते थे । गांधी जी के पिता करमचन्द्र गांधी के छोटे भाई का नाम तुलसी दास गांधी था । दोनों भाइयों ने बीकानेर तथा राजकोट में दीवान गीरी की थी । मृत्यु के समय गांधी जी के पिता करमचन्द राजकोट दरबार से पेन्शन पाते थे ।

करमचन्द गांधी के चार विवाह हुये थे । प्रथम दो पत्नियों से दो कन्यायें तथा अन्तिम से एक पुत्री एवं तीन पुत्र पैदा हुये थे । भाइयों में महात्मा गांधी सबसे छोटे थे, इनके पिता परिवार प्रेमी, सत्यवादी, शूर, उदार, न्यायी एवं ईमानदार व्यक्ति थे । इनकी शिक्षा सामान्य थी, किन्तु इनका अनुभव एवं व्यावहारिक ज्ञान उच्च कोटि का था । ये धार्मिक प्रवृत्ति के थे । इस सम्बन्ध में गांधी जी ने लिखा है -

> " पिताजी की शिक्षा अनुभव की थी, ---
> - गुजराती की पाँचवी पोथी की पढाई किये थे,-- इतिहास व भूगोल के ज्ञान से तो बिल्कुल कोरे थे, फिर भी उनका व्यावहारिक ज्ञान ऊँचे दर्जे का था ।---
> धार्मिक शिक्षा नहीं के बराबर थी-- पर मन्दिर में जाने, कथा सुनने से -- उन्हें सहज ज्ञान मिला था ।" ।

गांधी-आत्मकथा- अनुवादक महावीर प्रसाद पोद्दार, पृष्ठ-2, सस्ता साहित्य मंडल, न्यू दिल्ली, 1951

गांधी जी की पूज्य माता पुतली बाई साध्वी, भावुक, धर्म निष्ठ, उपासना परायण, व्रती, व्यवहार कुशला, एवं बुद्धिमती महिला थी । व्रत व उपवास उनके जीवन के अभिन्न अंग थे । माता-पिता दोनों धर्म परायण थे । गांधी जी के जीवन पर परिवार के धार्मिक वातावरण, माता-पिता के विचारो, आदर्शों एवं सिद्धान्तों का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा था ।

शिक्षा -

गांधी जी की प्रारम्भिक शिक्षा पोरबन्दर में हुई थी, पिता के पोरबन्दर से राजकोट चले जाने के पश्चात सात वर्ष की आयु में गांधी जी ने राजकोट के ग्रामीण विद्यालय में अध्ययन प्रारम्भ किया ।

गांधी जी शर्मीले स्वभाव के थे । उन्हें किसी भी व्यक्ति व सहपाठी से वार्तालाप करने में रूचि नहीं थी । इस कारण इनके कोई मित्र इस काल में नहीं बने थे । बचपन में गांधी जी ने अपने अध्यापक के प्रति आदर का भाव था, अध्यापक को धोखा देना या उनसे असत्य भाषण करना उनके स्वभाव के प्रतिकूल था । पारम्भिक कक्षाओं में गांधी जी साधारण कोटि के विद्यार्थी समझे जाते थे । परन्तु मेधावी छात्र न होते हुये भी इन्हें उत्तम आचरण, आज्ञा-पालन व गुजरात प्रान्त के छात्रों के लिए निर्धारित छात्रवृति कक्षा-5 व 6 में क्रमशः 4 व 10 रूपये प्राप्त हुई थी ।

हाईस्कूल में प्रवेश के समय इनकी आयु 13 वर्ष की थी। 13 वर्ष की अल्पायु में सन् 1881-82 में गांधी जी का विवाह "कस्तूर बाई" के साथ हुआ। पत्नी कस्तूर बाई स्वतंत्र विचार वाली, मित भाषिणी, परिश्रमी एवं सरल स्वभाव की महिला थी। वे निरक्षर थी। गांधी जी ने इन्हें पढ़ाने के लिए शिक्षक का सहयोग लिया, किन्तु इनका प्रयास निष्फल रहा, मात्र पत्र लेखन व गुजराती भाषा का ही ज्ञान प्राप्त कर सकीं। इस सम्बन्ध में गांधी ने लिखा है -

> " मेरी विषय वासना कार्य में बाधक थी।
> -- शिक्षक द्वारा पढ़वाने की कोशिश भी बेकार रही। नतीजा यह हुआ कि आज कस्तूरबाई मुश्किल से चिट्ठी भर लिख और साधारण गुजराती समझ सकती है।" 1

हाई स्कूल की कक्षा में गांधी जी मन्दबुद्धि विद्यार्थी नहीं थे। वे अपने बड़ो के दोष को देखना पसंद नहीं करते थे। अन्य छात्रों की नकल करना उनके स्वभाव के विपरीत था। शिक्षा विभाग के इन्सपेक्टर "जाइल्स" के द्वारा विद्यालय निरीक्षण के समय दिये गये " केटल" शब्द की वर्तनी को शुद्ध

1- गांधी, आत्म कथा- अनुवादक महावीर प्रसाद पोद्दार पृष्ठ-13-14, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1951

रूप में लिखने हेतु अध्यापक द्वारा आगे के छात्र की स्लेट से देखने हेतु दिये गये संकेत को न मानना उनके उपर्युक्त स्वभाव का द्योतक है । अध्यापक के नीति विरुद्ध कार्य से उनके मन में उनके प्रति अनादर का भाव नहीं जाग्रत हुआ । गांधी जी अपने आचरण के प्रति सदैव सतर्क रहते थे, प्रारम्भिक काल में वे शिक्षण व व्यायाम के पारस्परिक सम्बन्ध को मान्यता नहीं देते थे किन्तु बाद में शारीरिक शिक्षा का मानसिक शिक्षा की भाँति महत्व है, समझाने लगे । गांधीजी के शब्दों में -

> " बाद को समझ में आया कि विद्या अभ्यास में व्यायाम अर्थात शारीरिक शिक्षा का मानसिक शिक्षा के बराबर ही स्थान होना चाहिये ।" [1]

लगभग 18 वर्ष की आयु में सन् 1887 में गांधी जी ने हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की । इस परीक्षा के उत्तीर्ण करने के बाद उच्च शिक्षा के लिये गांधी जी ने "भावनगर के श्याम लाल" कालेज में प्रवेश लिया । कालेज के प्रथम सत्र की समाप्ति पर गांधी जी घर वापस आ गये । यहाँ की पढ़ाई में इन्हें रस नहीं मिल रहा था । इसी समय गांधी जी के परिवार के सलाहकार व मित्र "मावजीदवे" की राय से तथा चाचा व माताजी की अनुमति से बैरिस्ट्री पढ़ने हेतु

1- गांधी आत्म कथा- अनुवादक महावीर प्रसाद पोद्दार पृष्ठ-16 सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1951 ।

इग्लैण्ड जाने का उनका विचार दृढ़ हो गया । अतः गांधी जी 4 सितम्बर सन् 1888 में बम्बई बन्दरगाह से इग्लैण्ड के लिए चल दिये ।

इग्लैण्ड पहुँचकर इनके समक्ष " बैरिस्टरी " की परीक्षा उत्तीर्ण कर तीन वर्ष के पश्चात स्वदेश वापस आने का लक्ष्य था । " बैरिस्टर " बनने के लिए अंग्रेजी की समझवज्ञान आवश्यक था, इस हेतु इन्होंने लन्दन का "मैट्रिकुलेशन" पास करने का निश्चय किया । इस परीक्षा में " लैटिन " और एक अन्य भाषा अनिवार्य थी । गांधी जी ने लैटिन व फ्रेन्च इन दो भाषाओं को लेकर यह परीक्षा दो प्रयत्नों में उत्तीर्ण की । इस सम्बन्ध में गांधी जी ने लिखा है -

> " एक मित्र ने सलाह दी और कहा- तुम्हे कोई कठिन परीक्षा ही देनी हो तो तुम लंदन का मैट्रिकुलेशन पास कर लो, -- और इससे साधारण ज्ञान बढ़ेगा, ---
> वकील के लिए लैटिन बड़े काम की चीज है जो लैटिन जानता है वह कानूनी किताबें आसानी से समझ लेता है - - लैटिन भाषा जानने से अंग्रेजी भाषा पर अधिकार भी बढ़ता है । " 1

तीन वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद 10 जून सन् 1891 में गांधी जी "बैरिस्टर" की उपाधि से अलंकृत हो गये । 11 जून को इग्लैण्ड हाई कोर्ट" में ढाई शिलिंग जमा कर, वकालत का प्रमाण-पत्र ले, 12 जून 1891 को भारत में

1- गांधी- आत्म कथा- अनुवादक राम प्रसाद पोद्दार पृष्ठ-67, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1951 ।

वकालत प्रारम्भ करने हेतु स्वदेश वापस हुये । इंग्लैण्ड से भारत लौटते समय जहाज पर ही इन्होने " हिन्द स्वराज्य " नामक प्रथम पुस्तक लिखी थी । जिसका प्रकाशन सन् 1908 में हुआ । इस पुस्तक में इन्होने पश्चिमी सभ्यता का नग्न चित्र खींचा था, भारतीयों को इससे बचने का निर्देश भी दिया है । यह पुस्तक गांधी-वाद की कुंजी है । गांधी जी के शब्दो में ब्रज कृष्ण चॉदीवाल ने लिखा - " भारत की मुक्ति इसी में है कि गत पचास वर्षों में जो कुछ उसने सीखा है उसे वह भुला दे । -- सादा किसान जीवन अपनाना होगा और उसी जीवन को सच्ची खुशी का स्रोत समझना चाहिये ।" [1]

प्रारम्भिक प्रभाव -

प्रत्येक दार्शनिक का भावी जीवन व शिक्षा सिद्धान्त उसके बाल काल की घटनाओं, अनुभवों एवं प्रत्यक्ष अनुभूतियों से प्रभावित होता है । ये अनुभूतियाँ बीज रूप में उनके प्रारम्भिक कालो में संगठित होती हैं, और समय पाकर उनसे विचार रूपी फल प्रकट हो विश्व को प्रभावित कर देता है । गाँधी जी के जीवन पर उनके पारिवारिक वातावरण का गहन प्रभाव पड़ा था । इस प्रभाव ने गांधी के विचारों में निश्चितता प्रदान की । माता-पिता की धर्म निष्ठता ने इन्हे धर्म के प्रति उन्मुख कर धार्मिक बनाया । पारिवारिक वातावरण के ममत्व, स्नेह,

---

1- ब्रज कृष्ण चॉदीवाल " बापू के चरणों में" पृष्ठ-153 सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1949 ।

सहानुभूति, दया, करूणा, सत्य वादिता का प्रभाव बालक गांधी के जीवन पर भी पड़ा । इनके पिता और चाचाओं के मध्य आपस में प्रेम व आज्ञाकारिता विधमान थी, इसका प्रभाव गांधी पर पड़ा, वे आपसी प्रेम को अपने जीवन में अपनाने के लिये सदैव तत्पर रहते थे । पिता सत्यवादी व ईमानदार थे, अतः गांधी जी ने भी "सत्य व ईमानदारी" को जीवन में महत्व दिया । गांधी जी स्वयं अपने माता-पिता के विषय में लिखते हैं -

> " पिताजी कुटुम्ब प्रेमी, सत्य प्रिय, शूर और उदार किन्तु क्रोधी थे, -- वह रिश्वत से दूर भागते थे, इसलिए शुद्ध न्याय करते थे ।"
> मेरे मन पर यह छाप है कि माताजी साध्वी स्त्री थी, बड़ी भावुक पूजा पाठ के बिना भोजन न करती।" [1]

मातृ पितृ भक्ति एवं सत्य की अनुभूति -

गांधी जी का मन यद्यपि पुस्तकों के पढ़ने में नहीं लगता था, किन्तु कक्षा में निर्धारित पुस्तकें तो पढ़नी ही पड़ती थी । विषय से इतर पुस्तक पढ़ने का प्रश्न ही नहीं उठता था, किन्तु इनके पिता द्वारा खरीदी पुस्तक " श्रवण पितृ भक्ति " को इन्होंने बड़े प्रेम से पढा । इसी दृश्य को इन्होंने तत्कालीन प्रचलित " वाइस कोप " [2] द्वारा भी देखा । उसका प्रभाव गांधी जी पर ऐसा पड़ा कि जीवन पर्यन्त मातृ पितृ भक्त हो गये ।

1- गांधी जी- आत्म कथा- पृष्ठ-2 व 3 , सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1951

2- काष्ठ के बक्स मे शीशों द्वारा चित्र दिखाने वाला यंत्र ।

गांधी जी अपने माता-पिता की आज्ञा के बिना कोई भी कार्य नहीं करते थे। उनके बाल काल में एक नाटक कम्पनी आई थी, जो "हरिश्चन्द्र की कथा" पर नाटक खेल रही थी। इसे देखने के लिए पिता की अनुमति ले वहाँ गये। इस नाटक ने बालक गांधी के जीवन में "सत्य की अनुभूति" की प्रेरणा दी। और "सत्य" के शोधक बनने का प्रयत्न करने लगे। इस सम्बन्ध में गांधी जी ने स्वयं लिखा है -

> " परन्तु पिताजी की खरीदी एक पुस्तक "श्रवण पितृ भक्ति " नाटक पर मेरी नजर पडी। --बड़े अनुराग और चाव से मैंनें उसे पढ़ा। इन्हीं दिनों काठ के बक्स में शीशों से तस्वीर दिखाने वाले भी फिरा करते थे। उनमें मैंने श्रवण का अपने माता-पिता को काँवर में बैठाकर यात्रा के लिए ले जाने वाला चित्र देखा। दोनों का मुझ पर गहरा असर पड़ा। मन में श्रवण के समान होने के विचार उठते।" [1]

> " इस नाटक को देखनेसेमेरी तृप्ति नहीं होती थी हरिश्चन्द्र के सपने आया करते। ---- यही धारणा होती कि हरिश्चन्द्र के जैसी विपत्तियाँ भोगना और सत्य का पालन करना ही सच्चा सत्य है। -- मेरे हृदय में हरिश्चन्द्र आज भी जीवित है।" [2]

अहिंसा की अनुभूति -

गांधी जी अपने विद्यार्थी जीवन में आचरण के प्रति सदैव जागरूक रहे, किन्तु किंचित मित्रों के प्रभाव से उनमें अल्प काल में कुछ दुर्गुण भी प्रवेश कर गये थे किन्तु उससे उन्हें शीघ्र

1- गांधी जी "विद्यार्थी जीवन के कुछ अनुभव" - पृष्ठ-9, "बापू की सीख" साहित्य प्रकाशन, सस्ता साहित्य मंडल-नई दिल्ली, 1952

2- तदैव - पृष्ठ-10

छुटकारा प्राप्त हो गया । मित्र के प्रभाव में आकर माँस भक्षण, धूम्रपान व चौर कर्म को भी करना पड़ा, किन्तु इस कार्य को वे मन से कभी भी मान्यता नहीं प्रदान किये । अपनी उपर्युक्त त्रुटियों के लिए उन्होंने पत्र द्वारा पिता से क्षमा याचना माँगी कृत्य कर्म हेतु दण्ड की याचना भी की थी । उन्हें विश्वास था कि पिताजी अवश्य कोई न कोई दंड देंगे । किन्तु पत्र पढ़कर पिताजी रोने लगे । पत्र को फाड़कर फेंक दिया और शान्त हो सो गये । पिता के इस व्यवहार ने गांधी जी पर गहरा प्रभाव डाला । उन्होने पिता के मानसिक कष्ट का अनुभव किया । गांधी जी के लिए यही अहिंसा का प्रथम पाठ व उसकी अनुभूति थी । गांधी जी ने लिखा है -

> " उस समय मैं सिवा पितृ प्रेम के और कुछ न देख सका था, पर आज उसे मैं शुद्ध अहिंसा का नाम दे सकता हूँ । ऐसी अहिंसा के व्यापक रूप धारण कर लेने पर उसके स्पर्श से कौन अछूता रह सकता है ।" 1

सर्व धर्म निष्ठता, निर्भयता व प्रायश्चितता की अनुभूति -

पिछले पृष्ठों पर यह कहा गया है कि गांधी जी धर्म के प्रति रूझान उनके पारिवारिक धार्मिक पर्यावरण के कारण हुआ था । धर्म की शिक्षा उन्हें वातावरण से सदैव मिलती रही यद्यपि 16 वर्ष की आयु तक कोई औपचारिक शिक्षा धर्म की उन्हें नहीं मिली थी, मन्दिरों से उन्हें धर्म की वास्तविक शिक्षा नहीं

1.गांधी - आत्म कथा पृष्ठ- 33 , सस्ता साहित्य मंडल, नई - दिल्ली, 1951 ।

मिली, धर्म के बीज का वपन गांधी जी की नौकरानी " रम्भा " ने किया था । " भय " से मुक्ति का मार्ग " राम का जप " है, गांधी जी भूत प्रेत के भय से अपने को बचाने के लिए बाल्य काल में ही " राम नाम " का जप किया करते थे । गांधी जी ने राम रक्षा स्तोत्र का पाठ व रामायण का पारायण भी किया था । श्री मद्‌भागवत की कथा का श्रवण भी उन्होंने किया था । इस हेतु अल्प वय में ही गांधी जी पर शुभ संस्कारों का प्रभाव पड़ चुका था । राजकोट में रहते हुये इन्हें सभी धर्मों व सम्प्रदायों के प्रति समान भाव रखने की शिक्षा मिली थी । इनके पिताजी के पास जैन, मुस्लिम व पारसी सभी सम्प्रदायों के लोग आते थे, उनसे इन धर्मों की मूलबातें सुनने को मिलती थी। इसलिए इनके मन में सब धर्मों के प्रति समान भाव उत्पन्न हो गया था ।

अपराध व पाप कर्म करने के पश्चात गांधी जी उसकी पुनरावृत्ति जीवन में नहीं करते थे, ऐसा स्वभाव उनका बचपन का था । इसे ही वे शुद्ध प्रायश्चित मानते थे । उन्होंने लिखा है -

> " अधिकारी के सामने जो आदमी स्वेच्छा पूर्वक खुले दिल से और फिर न करने की प्रतिज्ञा के साथ अपना दोष स्वीकार कर लेता है, वह शुद्धतम प्रायश्चित करता है ।" [1]

1- गांधी- आत्म कथा- पृष्ठ-33, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1951 ।

इस सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर गांधी जी ने अपनी माँ के समक्ष मांस, शराब, व पर स्त्री संग न करने की प्रतिज्ञा ले ली थी । यह उनके दृढ चरित्र का प्रतीक था ।

गांधी जी की रूचि संस्कृत व गणित विषयों में अधिक नहीं थी । संस्कृत का सम्यक ज्ञान न प्राप्त करने का गांधी जी को जीवन भर पश्चाताप रहा ।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि गांधी जी को बाल्यकाल से ही सत्य प्रिय था, जब से उन्होंने हरिश्चन्द्र और प्रहलाद की कथा पढ़ी थी तभी से उनमें सत्य की निष्ठा जाग्रत हो उठी थी, और प्रहलाद की जीवनी से वे इतने प्रभावित हुये कि उस बालक की दृढ़ता के आधार पर ही उन्होंने सत्याग्रह के प्रयोग का अविष्कार किया । निर्भयता की शिक्षा उन्होंने अपनी दायी से ग्रहण की थी ।

इग्लैण्ड के अनुभव -

इग्लैण्ड में गांधी जी को अनेक भारतीयों तथा विदेशियों से सम्पर्क स्थापित करने का अवसर मिला । इन सम्पर्कों ने उनके जीवन को बहुत प्रभावित किया । डा०-प्राण जीवन मेहता, दलपत राय शुक्ल, प्रिंस रणजीत सिंह जी तथा दादा भाई नौरोजी व उनके इग्लैण्ड यात्रा के साथी त्र्यम्बक राय मजूमदार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

डा० मेहता -

अन्य की वस्तु बिना आज्ञा न छूना, किसी को

"सर" कहकर सम्बोधित न करना, आदि यूरोपीय रीति रिवाजों की डा० मेहता ने गांधी जी को शिक्षा प्रदान की । इस सम्बन्ध में डा० मेहता ने कहा है -

" इस देश में आकर पढ़ने के बजाय यहाँ के जीवन का अनुभव प्राप्त करना ही अधिक आवश्यक है ।"[1]

दलपत राय शुक्ल -

भारत निवास काल में गांधी जी ने किसी भी पत्रिका समाचार पत्र व साप्ताहिक पत्रों का अध्ययन नहीं किया था । इंग्लैण्ड में दलपत राय शुक्ल के प्रभाव से इन्होंने "डेली न्यूज" "डेली टेलीग्राफ" और पेलमेल गजट" का अध्ययन करना प्रारम्भ किया । इससे उनके सामान्य ज्ञान व विदेशी रीति रिवाजों का अनुभव प्राप्त हुआ ।

साल्ट, हावर्ड विलियम, श्रीमती अना किंग्स फर्डकी, व डा०-- एलिन्सन द्वारा शाकाहार के औचित्य की पुष्टि -

गांधी जी शुद्ध शाकाहारी थे । इस प्रवृत्ति को इंग्लैण्ड में भी संजोये रखे । क्योंकि वे इस हेतु प्रतिज्ञा बद्ध थे । अत: इसके औचित्य को प्रतिपादित करने के लिये इन्होंने "साल्ट" द्वारा लिखित "अन्नाहार की हिमायत ।प्ली फॉर वेजीटेरिइजम। हावर्ड विलियम । की "आहार नीति" । द इथिक्स ऑव डाइट। "श्रमती अना किंग्सफर्डकी" उत्तम आहर की नीति । द परफेक्ट वे इन डाइट । पुस्तकों का गहन

1- गांधी- आत्म कथा- पृष्ठ-57, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1951 ।

अध्ययन किया । " डा0 एलिन्सन " के " आरोग्य विषयक लेखों " ने भी इनके विचारों की पुष्टि की । इस सम्बन्ध में गांधी जी ने स्वयं लिखा है व इन सारी पुस्तकों के पढ़ने का परिणाम यह हुआ कि मेरे जीवन में भोजन के प्रयोगों ने महत्वपूर्ण स्थान ले लिया । इन प्रयोगों मे पहले आरोग्य दृष्टि की प्रधानता थी, बाद को धार्मिक दृष्टि सर्वोपरि हो गयी ।" [1]

थियोसोफिस्ट से परिचय व धर्म की प्रेरणा -

गांधी जी का परिचय दो थियोसोफिस्ट सगे भाइयों से हुआ । इनके सम्पर्क व सहयोग से गांधी जी ने संस्कृत गीता व आर्नल्ड द्वारा लिखित " गीता का अनुवाद " का अध्ययन किया । गीता के दूसरे अध्याय के अन्तिम श्लोकों का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा । इन्हीं की प्रेरणा से गांधी जी ने ओर्नल्ड" का "बुद्ध चरित" ।लाइट आव एशिया। व "मैडम ब्लेवट्स्की" की पुस्तक "की टू थियासोफी" का अध्ययन किया । इन पुस्तकों ने गांधी जी को हिन्दू धर्म की पुस्तकों के पढ़ने की प्रेरणा दी । "त्यागमेंधर्म है" इस तथ्य का ज्ञान उन्हें "बाइबिल" के "ओल्ड टेस्टामेन्ट" तथा "न्यू टेस्टामेन्ट" के अध्ययन से हुआ । गांधी जी ने "कार्लाइल" की "विभूति"

1- गांधी- आत्म कथा- पृष्ठ-61, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1951

तथा "विभूति पूजा" ‡हीरोज एण्ड हीरो वरशिप‡ का अध्ययन किया जिससे उन्हें "पैगम्बर हजरत मोहम्मद" की महानता व तपस्या का ज्ञान प्राप्त हुआ । इसी प्रकार इन्होंने "नारायण हेमचन्द्र" तथा "कार्डिनल मैनिंग" के जीवन से सादगी व हृदय की स्पष्टता का ज्ञानप्राप्त किया ।

वर्धा सम्मेलन से पूर्व के अनुभव व प्रयोग

गांधी जी वास्तव में युग पुरुष थे , जीवन के समस्त क्षेत्रों का अनुभव उन्होने प्राप्त किया था । शिक्षा के क्षेत्र में उनकी समस्त देन "उनके स्वानुभूति" का परिणाम थी । परीक्षण व खोज ये दो तत्व ऐसे थे जिनमें इनका पूर्ण विश्वास था । गांधी जी अपनी सम्पूर्ण शैक्षिक विचार धाराओं का उल्लेख यद्यपि वर्धा सम्मेलन में किया है, किन्तु इसका परीक्षण खोज व स्वानुभूति को उन्होंने विभिन्न स्थानों पर रहते हुये किया था । इस दिशा में उनका मस्तिष्क बहुत दिनों से सक्रिय रहा था । शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न स्थानों में जो कुछ उन्होने चिन्तन, मनन व अवलोकन किया उसे हम निम्न उपशीर्षकों में प्रकट कर सकते हैं ।

डरबन के प्रयोग -

1893 के अप्रैल माह में गांधी जी ने भारत से दक्षिणी अफ्रीका के लिए प्रस्थान किया । एक माह की लम्बी यात्रा के पश्चात गांधी जी मई माह के अन्त में नेटाल पहुँचे । नेटाल बन्दरगाह "डरबन" बन्दरगाह के नाम से भी प्रसिद्ध था ।

डरबन में गांधी जी 1904 में गये । सन् 1894 में इन्होने नेटाल काग्रेस की स्थापना की थी । "डरबन " पहुँचने पर सन् 1904 में " इण्डियन ओपिनियन" नामकेएक साप्ताहिक पत्र का संपादन करनाप्रारम्भ किया । इसके सम्बन्ध में गांधी जी के विचार को ब्रज कृष्ण चाँदीवाल ने उन्ही के शब्दों में इस प्रकार लिखा है -

> " इसमें मैं प्रतिमाह अपनी आत्मा को उड़ेलता हूँ और उस चीज को समझाने का प्रयत्न करता हूँ जिसे मैं सत्याग्रह नाम से पहचानता हूँ ।"[1]

डरबन आते समय गांधी जी के मित्र पोलक ने इन्हें "रस्किन की पुस्तक" "अन्टू दिस लास्ट" को पढ़ जाने की सलाह दी । उनकी सलाह से इस पुस्तक के पढने के पश्चात गांधी जी के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये, उन्होंने इस पुस्तक का भाषान्तर "सर्वोदय" के नाम से किया । इस पुस्तक के सम्बन्ध में गांधी जी ने लिखा है -

> " इन पुस्तकों में से जिसने मेरे जीवन मे तत्काल महत्व का रचनात्मक परिवर्तन करा दिया हो वैसी तो यही पुस्तक कही जायेगी । -- मेरा यह विश्वास है कि जो चीज मुझमें गहराई से भरी हुई थी,उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब मैनें " रस्किन " के इस ग्रन्थ रत्न में देखा । -- उसने विचारों पर अमल कराया ।"

डा० रसाल ने गांधी जी द्वारा समझे गये इस पुस्तक के सारत्व को निम्न प्रकार अपनी अनुवादित पुस्तक में उल्लेख किया

1- ब्रज कृष्ण चाँदीवाल- "बापू के चरणों में" पृष्ठ-161, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली- 1949 द्वितीय संस्करण ।

है । -

1- "व्यक्ति का हित सबके हित में निहित है ।

2- एक वकील के काम का मूल्य वही है, जो एक नाई के काम का और इस अर्थ में कि अपने कार्यों के द्वारा जीविका के उपार्जन का अधिकार सबको एक सा है ।

3- श्रम का जीवन, अर्थात खेत जोतने वाले और कल-कला कुशल का जीवन ही श्रेष्ठ है ।" [1]

गांधी जी ने दूसरे दिन से ही इस पुस्तक की शिक्षाओं के अनुसार जीवन यापन प्रारम्भ कर दिया । शिक्षा के सम्बन्ध में इन्होंने इस पुस्तक से निम्न सार ग्रहण किया । -

1- बालकों की शिक्षा में चरित्र का महत्वपूर्ण स्थान होना चाहिये ।

2- बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ श्रम-शिक्षा का भी स्थान होना चाहिये ।

3- शिक्षा के अनौपचारिक साधन गृह का भी योग अनिवार्य रूप से होना चाहिये ।

4- सादगी व सेवा भाव भी शिक्षा का साधन हो ।

सन् 1897 में जब गांधी जी "डरबन" पहुँचे तब उनके साथ उनके तीन बच्चे व दस वर्षीय भतीजा था । इन बच्चों के पढ़ाने का प्रश्न उनके सामने आ उपस्थित हुआ । ईसाई विद्यालयों

1- अनु0 डा0 रसाल, मेरा प्रारम्भिक जीवन" पृष्ठ-74

के अथवा अन्य भारतीय विद्यालयों की शिक्षा पद्धति उन्हे पसंद नहीं थी । अतः घर पर ही उनके अध्ययन की व्यवस्था करनी पड़ी । उनका विचार था कि जो शिक्षा बालक घर के वातावरण से सहज ही प्राप्त कर लेते हैं, वैसी शिक्षा विद्यालय व छात्रावास से सम्भव नहीं है । उन्हे यह दुखः बना रहा कि वे अपने अनुसार जैसी शिक्षा देना चाहते थे नहीं दे पाये ।

जोहांस वर्ग के प्रयोग -

यहाँ पर गांधी जी के जीवन में सादगी ने प्रवेश किया, "सर्वोदय" के विचारों ने इन्हे प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया था । जीवन में निम्नलिखित परिवर्तन हुये,।-

1- घर पर ही रोटी बनाना शुरू किये ।

2- हाथ से पिसा आटा प्रयोग करने लगे ।इससे तीन लाभ हुये सादगी, स्वास्थ्य, व धन की बचत ।

3- हाथ की चक्की में श्रीमती पोलक, बच्चे, गांधी जी व कस्तूरबाई सभी सहयोग देते थे । इससे स्वावलम्बन की भावना का विकास हुआ ।

4- घरेलू कार्य जैसे सफाई, धुलाई व टट्टी का कमरा स्वयं धोते थे, जिसके कारण उनके बच्चे में इन कार्यों से कभी भी घृणा उत्पन्न न हुई ।

5- सेवा के कार्य स्वयं करते तथा बच्चे भी हाथ बटाते थे ।

6- बच्चों को अपने साथ कार्यालय ले जाते, जिससे बच्चों की 5 मील पैदल यात्रा से अच्छा व्यायाम हो जाता था,

रास्ते में बच्चों को पढ़ाते जाते व दफ्तर में भी पढ़ने का काम दे देते थे ।

7- जो माता-पिता अपने बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाते थे वे देश द्रोह करते हैं, तथा बालकों का अहित करते हैं, ऐसा गांधी जी मानते थे, उन्होंने अपने बच्चों को मातृ भाषा का सामान्य ज्ञान दे दिया था ।

यहीं पर इनका सम्पर्क श्री रामचन्द्र भाई से हुआ । इनके चरित्र से इन्होंने व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त की । ये सत्य के अन्वेषक एवं चरित्रवान व्यक्ति थे । इस प्रभाव के कारण गांधी जी बालक की शिक्षा में चरित्र को विशेष महत्व देने लगे । इस प्रकार इन प्रयोगों ने गांधी जी की बुनियादी या बेसिक शिक्षा सिद्धान्तों की नींव रखी । जिज्ञासु एवं शिक्षक के रूप में गांधी जी सदैव सच्चे ज्ञान हेतु प्रयोग करते रहे । इन विचारों का बेसिक शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ा ।

फिनिक्स आश्रम के प्रयोग -

गांधी जी चाहते थे कि आश्रम का प्रत्येक व्यक्ति स्वयं परिश्रम करे, समान वेतन भोगी हो एवं अवकाश के समय प्रेस की देखभाल करे । इस कारण वे इण्डियन ओपिनियन"प्रेस को एक विस्तृत क्षेत्र में स्थापित करने के लिए डरबन से 13 मील दूर एवं फिनिक्स रेलवे स्टेशन से दो मील की दूरी पर 100 एकड़ भूमि को क्रय कर लिया । इस प्रकार इस आश्रम का संपूर्ण वातावरण परिश्रम मय हो गया । गांधी जी इस आश्रम में

अपने सहयोगियों के साथ रहकर अपना प्रयोग कर रहे थे । यहीं इनके सहयोगियों व कर्मचारियों के बच्चे भी निवास करते थे, इनकी शिक्षा की समस्या का प्रश्न इनके सामने था । बच्चों की कुल संख्या लगभग 30 थी । इस समास्या के समाधान हेतु इन्होने "श्रम के समन्वय" से शिक्षा देने का प्राविधान किया, और इस हेतु गांधी जी ने निम्नलिखित कार्यक्रम प्रस्तुत किया । -

1- 3 घण्टे पढाई होगी ।

2- 2 घण्टे कृषि कार्य ।

3- रात्रि में पुन: पढ़ाई ।

गांधी जी "ज्ञान के विस्तार" हेतु कार्य करना, किसी पुस्तक व घटना पर आपस में सम्बन्धित विषय पर विचार विमर्श करना व अन्य शंकाओं का समाधान करना ही शिक्षा का साधन मानते थे । इस आश्रम में गांधी जी स्वयं शिक्षक का कार्य करते थे । "हिन्द स्वराज्य" पुस्तक में गांधी जी ने इस समय के अनुभव जन्य विचारों को संग्रहीत किया है, उनके यह प्रयोग ही बुनियादी शिक्षा के आधार बने । गांधी जी ने यह भी अनुभव किया था कि शिक्षा, मन व बुद्धि पर आनुवंशिकता का विशेष प्रभाव पड़ता है । बुद्धि जन्मजात होती है, वातावरण भी अपना प्रभाव डालता है , किन्तु आनुवंशिकता का बुद्धि पर गहरा व महत्वपूर्ण असर होता है । गांधी जी ने इस सम्बन्ध में स्वयं कहा है :-

"बच्चों को माँ-बाप की सूरत-शक्ल की विरासत
जैसे मिल ती है वैसे उनके गुण-दोषों की विरासत
भी जरूर मिलती है । उसमें आसपास के वातावरण
के कारण अनेक प्रकार की कमी वेशी जरूर हो जाती
है, पर असली पूँजी तो वही होती है, जो उन्हें
बाप-दादों की ओर से मिलती है । -- ऐसे दोषों
की विरासत से कुछ लड़के अपने आपको बचा लेते
है । यह आत्मा का मूल स्वभाव है, उसकी बलि-
हारी है ।"[1]

टालस्टॉय आश्रम -

अपने सहयोगियों की सहायता से गांधी जी ने सन् 1911 में "ट्रान्सवाल" में "टॉलस्टॉय आश्रम" की स्थापना की । प्रारम्भ में इस आश्रम में 10 स्त्रियों व 60 पुरुषों के रहने की व्यवस्था थी। शिक्षण हेतु एक मकान पाठशाला के रूप में परिव-र्तित किया गया था । " मि० केलन बेक " ने मुफ्त इस आश्रम हेतु 1100 एकड़ भूमि प्रदान की थी । इस स्थल से एक मील की दूरी पर "लाली" रेलवे स्टेशन तथा 21 मील की दूरी पर जोहां-सवर्ग स्थित था । यहाँ समस्त सत्याग्रही परिवार के लोग आपस में प्रेम पूर्वक रहते थे । गांधी जी ने अपने सहयोगियों व वहाँ के निवासियों के बच्चों को पढ़ाने की व्यवस्था की थी । गांधी जी स्वयं शिक्षक के रूप में कार्य करते थे । यहाँ प्राय: सह शिक्षा की व्यवस्था की गयी थी, किन्तु स्त्रियों को पुरुष से अलग रखा गया था, शेष लड़के व लड़कियाँ साथ-साथ शिक्षा ग्रहण करते थे । ईसाई, हिन्दू, पारसी, मुसलमान के लड़के तथा हिन्दू लड़कियाँ

1- गांधी - आत्म कथा- पृष्ठ- 392, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1951 ।

अध्ययनरत थीं,। विद्यार्थियों की संख्या लगभग 84 थी, जिसमें 40 युवक, 4 वृद्ध, 5 स्त्रियाँ, 30 बच्चे तथा 5 कुमारी लड़कियाँ थी । गांधी जी की इस शिक्षा व्यवस्था से असन्तुष्ट होकर केनल बेल ने कहा -

> " आपका यह सिलसिला मुझे कतई पसंद नहीं है । इन लड़को के साथ आपके लड़के रहेगें, तो इसका बुरा परिणाम होगा । इन आवारे लड़कों की सोहबत से ये बिगड़े बिना कैसे रह सकते हैं ।" [1]

गांधी जी का उत्तर उनकी सूझबूझ व निष्पक्ष न्याय का स्पष्ट प्रतीक है, गांधी जी ने लिखा है -

> " आपके व इन आवारे लड़को में मैं भेदभाव कैसे रख सकता हूँ, अभी तो दोनों की जिम्मेदारी मुझ पर है । --- मेरे लड़को को यह भेदभाव सिखाया जाय कि वे औरों से ऊँचे दर्जे के हैं ।-- इस स्थिति में रहने से उनका जीवन बनेगा, स्वयं भले बुरे की परीक्षा करने लगेगें ।" [2]

गांधी जी ने यहाँ के प्रयोगों के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकाला :-

1- माता-पिता के सन्निकट से ही बालक वास्तविक शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं ।

11-हृदय की शिक्षा, चरित्र की शिक्षा ही शिक्षा है ।

1- गांधी - आत्म कथा- पृष्ठ-478-479, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1951 ।

2- तदैव - पृष्ठ- 479

111- इसी आश्रम में गांधी जी ने शारीरिक शिक्षा और उससे सम्बन्धित दस्तकारी व उद्योग का श्री गणेश किया था ।

4 - पुस्तकीय ज्ञान केवल तीन घण्टे प्रदान किये जाते थे । हिन्दी, तमिल, गुजराती, उर्दू, अंग्रेजी, भूगोल, इतिहास, गणित की शिक्षा की व्यवस्था थी ।

5- गुजराती, हिन्दी व संस्कृत का ज्ञान सभी के लिए अनिवार्य था ।

6- शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा था ।

7- पुस्तक व शिक्षक ही विद्यार्थियों के पाठ थे ।

8- शरीर, मन व आत्मा की शिक्षा ही मुख्य है ।

9- शारीरिक दण्ड का शिक्षा में स्थान नहीं होना चाहिये ।

10- स्वस्थ वातावरण, उत्तम स्वास्थ्य बर्द्धक भोजन छात्रो को मिलना चाहिये ।

11- सादा जीवन उच्च विचार उनकी शिक्षा का मूल मंत्र था ।

टॉलस्टॉय आश्रम का कार्य समाप्त कर गांधी जी सन् 1914 में इग्लैण्ड चले गये । इसी वर्ष प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हो गया था । कार्य की अधिकता के कारण गांधी जी बीमार हो गये और सन् 1915 में उन्हें भारत वापस होना पड़ा ।

शान्ति निकेतन

भारत आने के बाद गांधी जी को लगभग एक सप्ताह तक "शान्ति निकेतन" में रुकना पड़ा । यही पर इनका परिचय "एड्रुज एवं पियर्सन" से हुआ । काका कालेलकर से इनका प्रथम

मिलन भी हुआ । "शान्ति निकेतन के छात्र व अध्यापक सदैव गांधी जी से प्रेम करते थे । गांधी जी व उनकी मंडली की देख रेख का उत्तरदायित्व मगन लाल गांधी पर था । यहाँ पर फिनिक्स आश्रम के नियमों का यथावत पालन किया जाता था विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के मध्य भ्रातृत्व प्रेम का भाव फैल चुका था । प्रेम, लगन और सहनशीलता की मधुर गंध सम्पूर्ण वातावरण में प्रसारित हो चुकी थी । शारीरिक श्रम एवं कार्य का मधुर समन्वय दृष्टिगत हो रहा था । स्वयं बर्तन मलना, भोजन बनाना, अनाज साफ करना ये समस्त कार्य दैनिक कार्य हो गये थे । गांधी जी ने यहाँ पर सादगी, कला व प्रेम का सुन्दर समन्वय देखा । गांधी जी ने यहाँ पर भी शारीरिक श्रम के प्रयोग के आधार पर "स्वराज्य" व स्वावलम्बन की शिक्षा प्रदान करना आरम्भ कर दिया । गांधी जी ने इस सम्बन्ध में विद्यार्थियों को बताया :-

> " इसमें स्वराज्य की कुंजी है । --- ऐसे प्रयोगों से प्रधान पाकालय को स्वावलम्बी बनाने का का प्रयोग आरम्भ हो सका ।" [1]

<u>साबरमती आश्रम</u> :-

इस आश्रम की स्थापना 25 मई सन् 1915 में अहमदाबाद में की गयी । गांधी जी ने अपनी बैसिक शिक्षा की

1- गांधी - आत्म कथा, पृष्ठ-479-480, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1951 ।

योजना को भारत की जनता के सामने रखने का कार्य यहीं प्रारम्भ किया । कताई, बुनाई व बढ़ई का कार्य सबके लिए अनिवार्य था । घरेलू उद्योगों को शिक्षा का आधार माना गया और उसे विकसित किया गया ।

गुजरात विद्यापीठ :-

सन् 1920 में इन्होने इस पीठ की स्थापना की । इस पीठ के 12 उद्देश्य निर्धारित किये गये थे । मुख्य निम्न हैं :-

1- इस पीठ में अपनी भाषा को प्रमुख स्थान व उसी के माध्यम से समस्त शिक्षा प्रदान की जायेगी ।

2- राष्ट्र भाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी का प्रमुख स्थान होगा ।

3- ग्रामीण आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही पाठ्यक्रम निर्मित किया जायेगा ।

4- व्यायाम व शारीरिक श्रम की शिक्षा शारीरिक विकास हेतु अनिवार्य होगी ।

इस पीठ का उद्देश्य कर्तव्य परायण, चरित्रवान एवं शक्ति युक्त कार्य कर्ता तैयार करना था । इस पीठ के शैक्षिक उद्देश्य इस कारण भी महत्वपूर्ण थे, क्योंकि वर्धा योजना के लिए यह एक प्रकार से आधार शिला थी । शिक्षा कैसी हो, उसका क्या स्वरूप हो, इन बिन्दुओं पर प्रथम बार इस समिति में महत्वपूर्ण विचार विनिमय किया गया और यथाशीघ्र उन्हें कार्यरूप भी प्रदान किया गया ।

वर्धा योजना :-

गांधी जी के सम्पूर्ण जीवन के अनुभवजन्य शैक्षिणिक तत्व इस योजना में संगठित हुये हैं । अपने शिक्षा सम्बन्धी बिचारों को गांधी जी ने सन् 1937 में "हरिजन" द्वारा प्रकाशित करना प्रारंभ किया । शंकाओं एवं प्रत्यालोचनाओं के निवारणार्थ 22 अक्टूबर 1937 को मारवाड़ी हाई स्कूल वर्धा के वार्षिकोत्सव पर शिक्षा शास्त्रियों एवं विद्वानों की एक समिति आहूत की गयी । गांधी जी ने जो विचार प्रकट किये उसकी संक्षिप्त रूपरेखा निम्न प्रकार थी :-

1- गांधी जी ने प्राथमिक शिक्षा को मुख्य स्थान दिया ।

2- हस्त कला द्वारा शिक्षण पर बल प्रदान किया गया । साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान सभी की शिक्षा इसके माध्यम से देने पर जोर दिया गया ।

3- दस्तकारी की शिक्षा से शिक्षक का खर्च निकल आयेगा, इस बात को स्पष्ट किया गया ।

4- इस शिक्षा से धर्म के मूल "स्वावलम्बन धर्म" को सिखाना था ।

5- शिक्षा सभी वर्गों के व्यक्तियों को समान रूप से दी जाय ।

6- शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा ही रहेगा ।

7- सरकारी विश्व विद्यालय परीक्षण संस्था रहे और अपना खर्च परीक्षा शुल्क से निकाले ।

8- शिक्षा के समस्त क्षेत्रों को ध्यान में रखकर विभिन्न विभागों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण व स्वीकृति का दायित्व विश्व-

विद्यालय ले ।

9- प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम कम से कम सात वर्ष के लिये हो ।

10- राष्ट्र की आवश्यकता व अनिवार्यता पर उच्च शिक्षा अव-
लम्बित होनी चाहिये ।

गांधी जी के उक्त विचार धारा पर समिति ने निम्न प्रस्ताव पारित किये :-

1- बच्चों के लिये सात वर्ष की अनिवार्य नि:शुल्क शिक्षा की
व्यवस्था हो ।

2- शिक्षा का माध्यम बालकों की मातृभाषा हो ।

3- शिक्षा स्वावलम्बी हो, वह किसी उद्योग पर आधारित हो,
ताकि शिक्षक का खर्च निकल सके ।

गाँधी जी अपने तीस वर्ष की कठिन तपस्या एवं प्रयोगों का सारतत्व वर्धा योजना में उड़ेल दिया है । साथ ही उसे सर्वप्रिय सर्वोदयी भावना की ओर प्रेरित किया है । गाँधी जी की शैक्षणिक विचारधारा भारत की आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल ही प्रकट की गयी है । यहाँ पर उनकी शिक्षा के विषय में जो कुछ कहा गया है वह उनके शैक्षिणिक प्रयोगों व सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर कहा गया है । वर्तमान काल मे बेसिक शिक्षा की व्याव-हारिकता के सम्बन्ध में अगले अध्यायों में उचित स्थानों पर विवे-चना की जायेगी ।

गाँधी जी के राष्ट्र, समाज, शिक्षा तथा धर्म के प्रति किये गये कार्यों का मूल्यांकन करना मानव के लिए दुष्कर कार्य है ।

क्योंकि उन्होंने अपने को भारत भूमि के कण-कण से आत्मसात कर लिया था । उनके महान कृत्यों को देखकर भारतीय ही नहीं वरन् विदेशी विचारक भी चिन्तन में पड़ जाते थे ।

"रोम्या रोला" ने लिखा है :-

" महात्मा गांधी वह मनीषी थे जिन्होंने तीस करोड़ भारतीयों को क्रान्ति की प्रबल प्रेरणा दी, जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य" की जड़े हिला दी, तथा जिन्होंने अतीत की दो हजार वर्षों की मानव राजनीति में सबसे अधिक शक्तिशाली ।अस्त्र। धार्मिकता का पुट ला दिया ।"

गांधी जी शिक्षा के क्षेत्र में सिद्धान्त व व्यवहार के प्रयोग के प्रारम्भिक बिन्दु थे । गांधी जी शिक्षा को राजनैतिक सामाजिक, व धार्मिक प्रगति का आधार मानते थे । गांधी जी के शिक्षा सम्बन्धी विचार किसी एक ग्रन्थ में क्रमबद्ध रूप से उपलब्ध नहीं होते हैं । अपने साप्ताहिकी - पहले "यंग इण्डिया" व " नव जीवन " तथा बाद में " हरिजन ", " हरिजन बन्धु" और " हरिजन सेवक " द्वारा इन्होंने देश में एक नये जीवन का संचार किया । इस प्रकार समय-समय पर दिये गये भाषण व लेख ही वे स्रोत हैं जिनसे उनके शैक्षिक विचारों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । " नव जीवन " में इन्होंने "विद्यार्थियों के बीच गांधी जी"[1] " सूत के धागे से स्वराज्य "[2] "गुजरात महा विद्यालय का भाषण", " असहयोग व पढ़ाई"[3]

1- नव जीवन, 15-11-20 को प्रकाशित ।
2- - तदैव - 2-2-21 को प्रकाशित ।
3- - तदैव - 15-1-22 को प्रकाशित ।

" विद्यार्थी क्या करें "[1] " असहयोग व शिक्षा", शिक्षा व अस्पृश्यता"[5] इन सभी शीर्षकों का प्रकाशन किया था ।

गांधी जी ने "क्रानिकल" साप्ताहिक पत्र में भी अपने शैक्षिक विचार अभिव्यक्त किये थे । प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार उन्होने अपनी पुस्तक "एजूकेशनल - रीकन्स्ट्रक्शन" भाग प्रथम व द्वितीय में प्रस्तुत किये हैं । उन्होंने लिखा है :-

" मै समझता हूँ कि हम लोग कुछ दिनों के लिए उच्च शिक्षा के प्रश्न को टाल सकते हैं, किन्तु प्राथमिक शिक्षा की समस्या को एक क्षण के लिये भी नहीं टाला जा सकता । "[3]

गांधी जी बालकों की रचनात्मक शक्तियों के विकास पर बल देते हैं, इस सम्बन्ध में उन्होने लिखा है :-

" मै बच्चों को सर्व प्रथम उपयोगी हस्तकारी सिखाना चाहूँगा, ताकि जिस समय से शिक्षा प्राप्त करना आरम्भ करे, उसी समय से उत्पादन करना भी शुरू कर दे । "[4]

1- नवजीवन 23-11-24 को प्रकाशित ।

2- नवजीवन 30-5-26 को प्रकाशित ।

3- गांधी, एम0के0- एजूकेशनल रीकन्सट्रक्शन पेज-96 ।

4- - तदैव - पेज-4 ।

गांधी जी ने अपने शैक्षणिक विचार "शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति", मेरे प्रयोग, "आत्म कथा", "सच्ची शिक्षा" तथा इण्डियामाई ड्रीम" ग्रन्थों में भी भी प्रकट किये हैं ।

गांधी जी के विचारों से युक्त लेख अपनी ही भाषा मे नहीं, बल्कि विदेश की अन्य भाषाओं में छपते थे । इस सम्बन्ध में ब्रज कृष्ण चाँदीवाल ने लिखा है :-

" भारत के सब मुख्य दैनिक इनके लेखों को अपने अंको में उद्धृत करते थे -- उनके लेख भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी भिन्न-भिन्न भाषाओं में छपते थे ।"[1]

गांधी जी की रचनाओं के सम्बन्ध में इन्होने एक जगह इस प्रकार लिखा है :-

" गांधी जी द्वारा लिखित और गांधी जी के सम्बन्ध में लिखित व प्रकाशित पुस्तकों की सूची तैयार की जाय तो उनकी संख्या तीन हजार से ऊपर होगी । इनके लिखे पत्रों, प्रवचनों, भाषणों व लेखों का जब पूरा संग्रह प्रकाशित होगा तो वह दस पन्द्रह हजार पृष्ठों से कम नहीं होगा ।"[2]

इससे अवगत होता है कि गांधी साहित्य बिखरा हुआ है ।

गांधी जी की लेखन शैली सरल, बोधगम्य एवं ओज, प्रसाद युक्त थी । यह मृतक व्यक्ति के जीवन में भी नूतन

1- ब्रज कृष्ण चाँदीवाल- "बापू के चरणों में"-पृष्ठ-152, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1949 ।

2- - तदैव - - पृष्ठ-153

विचारों को सृजित कर देती थी । अच्छे-अच्छे अंग्रेज विद्वान भी उनके समान अच्छी अंग्रेजी नहीं लिख पाते थे । गांधी जी के विचार उनके अन्तःस्थल से निःसृत होते थे । ब्रज कृष्ण चाँदीवाल ने लिखा है :-

" एक बार लिख लेने पर गांधी जी अपने लेखों में क्वचित ही कोई काँट छाँट करते थे, क्योंकि उनके विचार निर्णयात्मक परिपक्व और सम्बद्ध होते थे । "[1]

गांधी जी का सम्पूर्ण जीवन रचनात्मक कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिए ही समर्पित था । अपने कार्यक्रम को सम्पादित करने के लिए उन्होने पाँच मुख्य संस्थाओं का निर्माण किया और कार्यक्रम के 18 विभाग बना दिये थे, जैसे :-

1- <u>चरखा संघ</u> :-

इस संघ का अभिप्राय भारत को अपने पैरों पर खड़ा होना सीखना था । स्वावलम्बन की शिक्षा देना उनका मुख्य लक्ष्य था । उनके रचनात्मक कार्यों में चरखे का स्थान वही था जो सौर मंडल में सूर्य का है । इस कार्य से भारतीय स्वाश्रयी व स्वावलम्बी होकर दासता से मुक्त होने का सम्बल प्राप्त करेंगें ।

1- ब्रज कृष्ण चाँदीवाल- बापू के चरणों में" पृष्ठ-158, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1949 ।

2- ग्राम उद्योग संघ :-

इसका उद्देश्य अनेक मृत प्राय अथवा अर्ध मृत धंधो को जीवित कर उन्हे दस्तकारी के धंधे में लगाना था । वे नवीन भारतवर्ष की सच्ची राष्ट्रीय अभिरूचि को जाग्रत करना चाहते थे । इसके कई विभाग बनाये गये थे जैसे " देहात सफाई " "आरोग्य" और स्वास्थय विज्ञान" गांधी जी प्राकृतिक चिकित्सा के महत्व से ग्रामीणों को परिचित कराना चाहते थे ।

3- तालीम संघ :-

गांधी जी ने अपनी नई शिक्षा का नाम बुनियादी तालीम रखा था । ग्रामीण बच्चों को आदर्श नागरिक बनाना था । वे शरीर, मन व बुद्धि तथा आत्मा का प्रशिक्षण देना चाहते थे । इस कार्य के लिये उन्होने अनेक उपविभाग बना दिये थे । "प्रौढ़ शिक्षा", राष्ट्रभाषा", स्वभाषा प्रेम" आदि ।

4- हरिजन सेवक संघ :-

इसका उद्देश्य छुआछूत तथा नीच ऊँच की भावना को हिन्दू समाज से उखाड़ फेकना था ।

5- गो सेवा संघ :-

ग्रामों में गोधन की हीन दशा देखकर इस संघ की स्थापना कर गांधी जी कृषि के लिए पुष्ट और सुन्दर बैल व उत्तम खेती की समस्या का समाधान करने में सफल हुये । उनके रचनात्मक कार्यों के निम्न अंग थे जैसे - जाति एकता, आर्थिक समानता, कृषक सम्पति, मजदूर शक्ति, विद्यार्थी-स्त्री शिक्षा,

पिछड़ी जातियों का उद्धार, शराब बन्दी, कोढ़ियों की सेवा आदि । इन सब के माध्यम से उन्होंने भारतीय समाज की अपूर्व सेवा की थी ।

30 जनवरी 1948 का काला दिन :-

यह तिथि भारतीय इतिहास में काले दिवस के रूप में समझा जायेगा । किसी को यह ज्ञात ही नहीं था कि इस दिन बापू जी हमें छोड़कर चले जायेगें । किन्तु मनीषी गांधी जी को इसका पूर्वाभास था । अपने निर्वाण के दो दिन पूर्व 28 जनवरी 1948 को राजकुमारी जी से वार्तालाप करते हुये उन्होंने कहा था -

" यदि मुझे किसी पागल आदमी की गोली से मरना है तो मुझे हँसते-हँसते मरना चाहिये । मेरे अन्दर कोई रोष न हो और ईश्वर मेरे हृदय में तथा ओठों पर रहे ।"[1]

उनकी यह भविष्य वाणी दिनांक 30 जनवरी सन् 1948 को सायं दिन शुक्रवार को 5 बजकर 17 मिनट पर सत्य रूप में घटित हो गयी । दो बार " हे राम " का उच्चारण करते हुये निर्वाणपद को प्राप्त हो गये ।

1- ब्रज कृष्ण चाँदीवाल- बापू के चरणों में" पृष्ठ-98, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1949 ।

बापू जी की ज्योति जिस विश्वात्मा से निकली थी, वह उसी में अन्तर्निहित हो गयी ।

गांधी जी की महानता, उनकी लोक प्रियता, उनके जीवन की सफलता का रहस्य, उनकी सत्यता और न्याय-निष्ठा में, उनकी सतत जागरूकता में, उनकी विश्व प्रेम की भावना में और उनकी निर्भयता में निहित थी । वे एक क्रान्तिकारी, सुधारक एवं उच्च कोटि के शिक्षा शास्त्री थे ।

अध्याय-4

"जॉन डिवी का मौलिक दर्शन"

जॉन डिवी प्रगतिशील,औदार्य, तार्किक विवेचन व प्रबोधन के प्रतीक

कोलम्बिया विश्व विद्यालय के दर्शन के प्रोफेसर "चार्ल्स फ्रेन्किल" ने "जॉन हायकिन्स विश्व विद्यालय" में जॉन डिवी शताब्दी समारोह" सन् 1959 के अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में "जॉन डिवी" के सम्बन्ध में निम्न लिखित विचार प्रस्तुत किया था :-

> " जॉन डिवी ने अपने जीवन काल में प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना किया था, जिसे देखकर यह प्रतीत होता है कि "दर्शन" में अधिक प्रभावशाली व्यक्ति के लिए ईश्वरीय शक्तियों ने यह सुरक्षित रख छोड़ा हो ।"

- व्यक्ति के रूप में वे शून्य में विलीन होकर एक प्रतीक के रूप में उभरे । यह कहा जा सकता है कि प्लेटो ने अपनी कृतियों के माध्यम से अपनी विकसित होती हुई मूर्ति को संरक्षित किया और इस बात पर बल दिया कि जो कुछ उन्होंने सिखाया है उसे किसी सिद्धान्त के रूप में सीमित नहीं किया जा सकता । "कार्ल मॉर्क्स" ने भी प्रसन्नता से अपने मित्रों को याद दिलाया कि वे स्वयं "मॉर्क्सिस्ट" नहीं थे, और अब यह कहना कठिन है कि जॉन डिवी एक व्यक्ति थे और संस्था नहीं थे, वे एक दार्शनिक थे और न कि

सामाजिक क्रान्तिकारी ।"[1]

इस प्रकार जॉन डिवी का व्यक्तित्व इन सबका प्रतीक बन गया था और उनका व्यक्तित्व इन सभी क्षेत्रों में विलीन हो गया था । प्रगतिशील औदार्य, तार्किक विवेचन और प्रबोधन के जॉन डिवी प्रतीक बन गये थे । जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में वे साहसी एवं संकोची स्वभाव के थे । वे बच्चों से प्रेम करते थे और स्त्रियों के मताधिकार समर्थन जुलूस में हिस्सा लेते थे तथा श्रम-आन्दोलन के नेता थे, क्योंकि उनके प्रभावशाली विचारों ने उन्हें अमर कर दिया था । जॉन डिवी 19 वीं शदीं के छठे दशक में उत्पन्न हुये थे, उस काल का संसार हमारे वर्तमान काल के संसार से बिलकुल भिन्न था ।

19वीं शताब्दीमें अमेरिका (वर्तमान यू0एस0ए0) की स्थिति :-

19 वीं शदीं तूफानी परिवर्तन व विरोधी प्रवृत्तियों का युग था । अमेरिका (वर्तमान यू0एस0ए0) भी इनसे अछूता नहीं था । कला, राजनीति व समाज के दार्शनिक दृष्टिकोण में नाटकीय विरोधाभास दिखाई देता था । अमेरिका के दर्शन में उनके उत्तराधिकारियों के विचारों का मिश्रण था । 16वीं तथा 17 वीं शदी में इंग्लैण्ड तथा यूरोप से येप्यूरीटिन क्रिश्चियन जब देश से निकाले गये तब से वे अमेरिका (वर्तमान

1- चार्ल्स फ्रेन्केल :"जॉन डिवी"व्हेयर ही स्टैण्डस; द जॉन हॉपकिन्स मैगजीन दिसम्बर 1959, पृष्ठ-7

यू०एस०ए०। में आकर बस गये । यहाँ की उन्हें प्रत्येक वस्तु तथा जीवन नवीन एवं विरोधी प्रतीत हुआ । वहाँ उनके समक्ष कोई पुरानी परम्परा नहीं थी, और उस समय की उपस्थित यूरोपीय जीवन की गति विधियों से उनका विश्वास समाप्त हो चजा था, क्योंकि वहाँ से वे बहिष्कृत हो चुके थे उनके सामने नवीन समस्याओं ने जन्म लिया, और उन समस्या ओं को हल करने के लिए इन प्यूरीटन्स ने अपने ढंग से सोचना आरम्भ किया । उन्होंने नये-नये अनुभव किये, और इन नूतन अनुभवों से नवीन विचार धारा ने जन्म लिया, इस प्रकार अमेरिकन स्वतंत्र थे ।

पारम्परिक दृष्टि से वे निश्चित रूप से प्राचीन सिद्धान्तो व जीवन के दृष्टिकोण व तरीकों पर अमेरिकन अंध विश्वास नहीं रखते थे । इनके निर्वसन के समय यूरोप में ज्ञान विज्ञान में पुनरूत्थान एवं सुधार वाद का प्रभाव था । ये प्युरीटन्स इस प्रभाव से प्रभावित थे । इसलिए वे अपने जीवन में उसे ही स्वीकार करते थे । जिसका पहले ही परीक्षण कर लिया गया होता था । जो वस्तु जीवन में लाभ व उपयोग के प्रतिकूल होती थी उसे वे परित्याग व अस्वीकार कर देते थे ।

अमेरिका कीं 19 वीं शदी के दार्शनिक परम्पराओं का विश्लेषण करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कुछ वाद जैसे - अध्यात्मवाद।ट्रान्सेनडेन्टलिजम।, विकास वाद

।यूवोल्युत निजम। और आदर्शवाद ।आइडियलिजम। एक दूसरे को प्रभावित किये हुये थे । परन्तु इनमें एक दूसरे के विरोध की ही प्रवृत्ति प्रचलित थी, किन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि धार्मिक, आदर्शवादी व मानवेत्तर सिद्धान्तों और वैज्ञानिक धर्म-निरपेक्ष व प्राकृतिक सिद्धान्त के मध्य एक-दूसरे के प्रति एक निश्चित झुकाव था ।

विज्ञान की कसौटी पर आदर्शवाद एवं प्रकृतिवाद के सिद्धान्तों का परीक्षण करके प्रयोग वाद ने अपना दार्शनिक क्षेत्र तैयार किया है, इस प्रकार की पृष्ठ भूमि में ।9 वीं शदी के अन्त में प्रयोग वाद :-

> "चान्सीराइट के डार्विन के सिद्धान्त के साथ चार्ल्स सेन्डर्स पीयर्स का अध्यायत्मवादी वास्तव वाद तथा विलियम जेम्स का नैतिक, धार्मिक अनुरोध विकसित हुआ ।"[1]

और प्रयोग वाद 20 वीं शताब्दी में जॉन डिवी के साधनवाद ।इन्स्ट्रूमैन्टैलिज्म। के साथ पूर्णत: विकसित हो गया ।

डिवी ने अपने दर्शन को "प्रयोजन वाद " का नाम न देकर उसे "साधन वाद" अथवा "प्रयोग वाद ।एक्सपेरीमेंटलिजम।

1- कार्ल्टन, एच0 बोयर: फिलॉसफिकल पर्सपेक्टिक्स फॉर एजूकेशन" पृष्ठ-272 ।स्कॉट फोरमैन एण्ड कम्पनी, ।970।

कहा था । प्रयोजन वाद एक लचीला शब्द है जिसके आन्तरिक अर्थ की व्याख्या की आवश्यकता है ।

प्रारम्भ में यह कहा जा सकता है कि "प्रयोग वाद" या"प्रयोजन वाद" परिणामों का दर्शन है । यह निर्णय की कसौटी के रूप में अपने परिणामों का प्रयोग करता है, किन्तु यह कथन अपूर्ण है । दर्शन में तकनीकी शब्द के रूप में "पियर्स" महोदय ने इसका प्रयोग किया है, किन्तु यह विचार इनके प्रयोग से भी पुराना है, क्योंकि "पियर्स" स्वयं मध्य युगीन व बाद के विचारकों का ऋणी था ।

"प्रयोजन वाद रूपी नदी के मुहाने पर अनेक जल स्रोत हैं" ।

पियर्स ने पुनः आगे कहा :-

" ऐसी धाराओं को इच्छित व्यक्ति पुरातन काल में ढूँढ सकते हैं ।"[1]

प्रयोजन वाद की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि :-

आज प्रत्येक दार्शनिक एवं शिक्षा शास्त्री प्रयोजन वाद को आधुनिक दर्शन के रूप में स्वीकार करता है । विशेष रूप से अमरीकी आधुनिक दर्शन के रूप में ।

1- [illegible] : " द कलेक्टेड पेपरस ऑव चार्ल्स सैन्डर्स पियर्स, हार्ट शौर्न एण्ड वीस । हरवार्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1931-35, वैल्यूम पंचम पृष्ठ-11 ।

इस आधुनिक दर्शन की कुछ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है । और यह एक प्राचीन विचार धारा है । अतः इसकी जड़ इतिहास के पृष्ठों में निहित है । यदि हम कुछ प्राचीन विचारकों के वैचारिक तरीको को देखें तो हमें इतिहास के सभी युगों में प्रयोजन वादी विचार के अनेक उदाहरण उपलब्ध हो जायेगें, क्योंकि वर्तमान भूत से निर्मित हुआ है । इसलिए कोई भी वस्तु नई नहीं है । प्रयोजन वाद के चिन्ह हमें f निम्नलिखित विचारकों से दृष्टिगत होते हैं ।

1- प्रयोजन वादी एवं हेरा क्लाइटस दोनों के ही विचारों में परिवर्तन का प्रत्यय या विचार मौलिक है की समानता ‖कान्सेप्ट ऑव चेन्ज इन फण्डा मेण्टल‖ पायी जाती है । हेरा क्लाइटस के विचारों में सर्व प्रथम इसका प्रयोग पाया जाता है । इनका समय ‖ 536 बी०सी० से 470 बी०सी०‖ 5वीं व 6वीं शताब्दी ईसा पूर्व माना गया है ।

हेराक्लाइटस ने अपनी पुस्तक " द फिलास्फर ऑव फ्लक्स" में सत्य निरन्तर परिवर्तन शील है का उदाहरण निम्न प्रकार से दिया हैं :-

> " सत्य एक नदी के परिवर्तित जल प्रवाह के समान है । उस एक ही जल में दुबारा कोई डुबकी नहीं लगा सकता, क्योंकि ज्योहीं आप डुबकी लगायेगें वैसे ही पानी सर्वत्र बिखर जाता है, और जो पानी पुनः एकत्रित हो रहा है वह पानी वही नहीं है, बल्कि परिवर्तित होकर आ गया है । इस प्रकार समय भी परिवर्तित होता रहता है ।

हेरा क्लिटस के विचार से वास्तविक वस्तुएँ परिवर्तन शील हैं। इसलिए सत्य शाश्वत नहीं हो सकता है। प्रयोजन वादी भी इस सिद्धान्त को मानता है। हेराक्लिटस ने जो "आइडिया ऑफ प्रॉसिस" का विचार व्यक्त किया है उसके विषय में यह धारणा है कि यह विचार हेरा क्लिटस का नहीं है। फिर भी यह विचार "आइडिया ऑव प्रासिस", "प्रत्यय या विचार की प्रक्रिया" को प्रकट करता है।

2- इस विचार के पश्चात हमें "सो फिस्ट" के विचार मिलते हैं। ये भ्रमणशीज अध्यापक थे। इनके विचारों को उच्च नहीं माना गया था, किन्तु दर्शन के क्षेत्र में इनकी पहुँच थी। प्लेटो ने "प्रोटो गोरस" पुस्तक में प्रोटो गोरस सोफिस्ट का वर्णन किया है। प्रोटोगोरस व गोर जियस ने अपने शिष्यों के साथ जनता व तत्कालीन विद्यालयों से मिलने का प्रयास किया। इससे सिद्ध होता है कि जन वाद या प्रजातंत्र वादी धारणा इनकी देन हैं। 5वीं शदी बी0सी0 में प्रोटो गोरस ने यह विचार प्रकट किया कि सभी वस्तुओं का माप मनुष्य है और मनुष्य ही मूल्य का निर्णायक व वास्तविकता का केन्द्र हैं। ज्ञान को उत्तेजना व प्रतिक्रिया के सिद्धान्त पर इन्होंने ही आधारित किया। ज्ञान का आधार इन्द्रिय प्रत्यय है। डिवी ने इनके विचारों को परिवर्तित करके ग्रहण किया है। वे सभी चिन्तन को एक प्रयोग मानते थे। व्यक्ति के स्थान पर सामाजिक मन को सभी वस्तुओं का मापदण्ड माना

था । बहुत पहले ही जब इन सोफिस्टो ने प्लेटों के "विचार रूप" का परित्याग किया तभी से संसार में प्राकृतिक दृष्टि कोणों पर प्रयोजनवादी प्रभाव दिखलायी देने लगे ।

3- प्रयोजन वादी विचार की पूर्व छाया हमें रूसों की बाल केन्द्रित शिक्षा तथा फ्रोबेल की आत्मानुभूति की शिक्षा में प्रतिबिम्बित होती है ।

4- 16वीं शदी में भी प्रयोजन बाद का रूप दिखाई देता है । फ्रांसिस बेकन ‖ 1561-1626 ‖ ने अपने लेखों जैसे "एडवान्स आँव लर्निंग", नोबम आर्गेनम" तथा "न्यू एटलांटिक्स" में आगमन की प्रयोजन वादी प्रणाली को समाज के पथ प्रदर्शक के रूप में तथा वैज्ञानिक खोज को निधि रूप में समाज को सुर-क्षित रखने के लिए तथा विज्ञान को सामाजिक अनुसंधान-क्रिया के रूप में मानने की सलाह दी थी । डिवी ने इसे स्वयं स्वी-कार किया था ।

5- 18 वीं शदी में आँगष्ट कॉमटे ‖ 1798-1857 ‖ उन विचारकों में से एक थे जिन्होंने मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों पर प्रयोजनवाद के प्रभाव का पूर्वानुमान लगाया था । इन्होंने अपनी कृति "पाजिटिव फिलासफी" में विज्ञान के अध्ययन पर बल दिया और प्रत्येक विज्ञान को मानव क्रियाओं से सम्बन्धित किया । इस प्रकार व्यावहारिक क्षेत्र से काल्प-निक ‖स्पेकुलेशन‖ विचार तिरोहित होता गया ।

इसके परिणाम स्वरूप धार्मिक एवं मानवेत्तर

(थॉलाजिकल एण्ड सुपर नेचुरल) विश्वासों का असर कम होता गया । आध्यात्म शास्त्र को व्यावहारिकता प्रदान कर उसे सामाजिक सम्बन्धों से जोड़ दिया गया ।

6- भारतीय दर्शन भी प्रयोजन वादी विचार से शून्य नहीं है । भारतीय दर्शन में ज्ञान की प्राप्तिके अनेक श्रोत बतलाये गये हैं । न्याय शास्त्र ने ज्ञान को जानने के कई श्रोतों में आगमन निगमन तर्क को भी महत्व दिया है । बौद्ध दर्शन के योगाचार सम्प्रदाय के दर्शन मे भी इसकी झलक मिलती है । जो व्यक्ति जिन वाहय पदार्थों को देखता है वह उसे वैसा ही अनुभव होता है । अनुभव उसके प्रयोग पर आश्रित हैं ।

संसार के इतिहास में प्रयोजन वादी विचार धारा के अनेक उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु हमें अमेरिका में इसके विकास के सम्बन्ध में अध्ययन करना है । इस आन्दोलन की उत्पत्ति इस विश्वास के साथ हुई थी कि चिन्तन अथवा विचार तथा कार्य में निकट का सम्बन्ध हैं । इस विचार धारा को मान्यता प्रदान करने बाले न्यू इंग्लैण्ड के विचारकों में "चार्ल्स सेन्डर्स पियर्स" जेम्स तथा जॉन डिवी मुख्य थे । इन विचारकों ने प्रयोजन वाद के सम्बन्ध में अलग-अलग दृष्टिकोण इस प्रकार से व्यक्त किये कि समान धारणा का निश्चित रूप से विरोध प्रकट होता है । वह यह कि प्रयोजन वादी सैद्धांतिक विचार धारा को मान्यता न देकर केवल कार्य को ही पूर्ण करने की चिन्ता करते थे । इनमें से कोई भी दार्शनिक चिन्तन

करने के ऐसे तरीकों को महत्व नहीं देता था जो दैनिक जीवन में कोई परिवर्तन न ला सके, किन्तु उन सबका विश्वास था कि अर्थ पूर्ण व्यवहार । मिनीगफुल विहैवियर । विचार पर आधारित था । ध्यान देने योग्य वस्तु यह है कि मौलिक प्रयोजन वादियों ने व्यवहार शब्द का "विचार का तरीका क्रिया में कैसे काम करता है" के अर्थ में प्रयोग किया ।

<u>प्रयोजनवाद एक जाँच की प्रणाली ।मेथड ऑव इनक्वायरी। है ।</u>

प्रयोजन वाद निःसन्देह एक जाँच की प्रणाली है और यह भौतिक विज्ञान से प्राप्त सच्चाई व अर्थ के सिद्धान्त का दर्शन में प्रयोग है । यह एक काल्पनिक, वैचारिक व दार्शनिक पद्धति नहीं है । जैसा कि 17 वीं व 18 वीं शताब्दी में प्रचलित आदर्शवाद था, दर्शन की पारम्परिक समस्याओं के पुनर्परीक्षण से जो एकता ~~प्रश्न~~ यह प्राप्त करता है उसका श्रोत "फैंक थिली" के शब्दों में निम्न प्रकार है :-

> " प्रयोग सिद्ध प्रयोजन वादी विधि से निःसृत और प्रयोगवादी सिद्धान्तों की जाँच व अर्थ के अनुमोदन के कार्य को जिसका विश्लेषण विलक्षण सैद्धान्तिक परम शुद्ध रूप में सी0एस0 पियर्स ने किया और जिसका विकास व प्रयोग जेम्स, डिवी एवं सी0 आई0 लेविस ने किया ।"[1]

1- फ्रैन्कथिली: "अ हिस्ट्री ऑव फिलॉसफी" पृष्ठ-634 ।सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1965 ।

डिवी के दर्शन को भली-भाँति समझने के लिए तथा उसका उचित मूल्याकंन करने के लिए हमें प्रयोजनवाद के विकास में "पीयर्स" और "जेम्स के योगदान का अध्ययन करना आवश्यक है ।

"कार्लटन एच०बोयर"[1] का विचार है कि प्राय: लोग चान्सी राइट" ‖ 1830 से 1875 ‖ का नाम प्रयोजन वाद के सम्बन्ध में विस्मृत कर जाते हैं, लेकिन पियर्स एवं जेम्स के अनुसार उनका भी प्रयोजनवाद पर प्रभाव अधिक है ।"[2]

राइट की जाँच की भावना व उनका अनुभववाद शिक्षा के उद्देश्य पर जोर देता है कि शिक्षा ऐसा ज्ञान दे, जिससे ज्ञान क्षेत्र विकसित हो और मानसिक अनुशासन हो । ये सम्पूर्ण तथ्य उनके प्रयोजनवाद के प्रति सम्मान व झुकाव को अभिव्यक्ति करते हैं । इसका प्रभाव "पियर्स" तथा "जेम्स" की विचार प्रणाली पर पड़ा है ।

1-कार्ल्टन,एच०बोयर, "फिलासिपिकल पर्सपेक्टिवस फार एजूकेशन पृष्ठ-273-74 ‖स्कॉट फार्स मैन एण्ड कम्पनी, 1970‖ ।

2-फिलिप,पी०वीनर : इबोल्युशन एण्ड द फाउन्डरस ऑव प्रैग्मैटिज्म, कैम्ब्रिज मॉस, हरवार्ड यूनीवर्सिटी प्रेस 1949 इन्होने अपनी पुस्तक में चान्सी राइट के विचारों के सम्बन्ध में कुछ पृष्ठ प्रयोग किये हैं । प्रयोजनवाद की पृष्ठ भूमि हेतु इसे संदर्भ के रूप में अध्ययन किया गया है ।

<u>चार्ल्स सेन्डर्स पियर्स ॥ 1839 - 1914 ॥</u>

पियर्स ने अर्थ के प्रयोजन वादी सिद्धान्त को अपने लेख "हाउ टू मेक ऑवर आयडिया क्लियर" में सन् 1878 में प्रकाशित किया । ऐसा कहा जाता है कि इस लेख की जानकारी लोगों को अपेक्षाकृत कम थी । परन्तु 20 वर्ष बाद जब इसका प्रकाशन हुआ और "विलियम जेम्स" ने अपने भाषणों में इसका उल्लेख किया तब लोगों का ध्यान इस तरफ आकर्षित हुआ ।[1]

<u>प्रयोजनवाद शब्द ॥ द वर्ड प्रैगमेटिज्म ॥</u>

" पियर्स ने अपने "लॉजिकल एनल्सिस" के सिद्धान्त अथवा सच्ची परिभाषा की व्याख्या करने के लिए प्रयोजनवाद ॥प्रैगमेटिज्म॥ शब्द का निर्माण किया था । ग्रीक शब्द "प्रेग्मा" प्रेग्मेटिकोस से प्रयोजनवाद की उत्पत्ति मानी जाती है । जिसका तात्पर्य "व्यवहार" या क्रिया" कार्य ॥ऐक्ट आर डीड॥ है । यही पियर्स के सिद्धान्त का आधार है । शब्द और विचार अपने किसी किस्म के कार्य से अर्थ ग्रहण करता है । हिन्दी में प्रयोजनवाद इस कारण कहा जाता है, क्योंकि यह विचारधारा किसी उद्देश्यपूर्ण क्रिया को महत्व प्रदान करती है । और सत्य को प्रयोजन की कसौटी पर कसती है ।

1- बोयर : फिलासिफिकल पर्स पोक्टिवज फार एजूकेशन पृष्ठ- 275 ।

प्रैग्मेटिज्म शब्द को " पियर्स " ने "कॉन्ट" से लिया है ।[1] "प्रैग्मेटिज्म" शब्द कुछ काल तक लेखों में प्रकाशित नहीं हुआ । "कान्ट" ने प्रैग्मेटिकइज्म शब्द का प्रयोग जेम्स तथा अन्य विचारकों के "प्रैग्मेटिज्म" से अन्तर प्रकट करने के लिए किया था । अपने प्रयुक्त शब्द प्रैग्मेटिकइज्म् में उन्होंने आई०सी०वर्ण इसलिए जोड़ दिया ताकि "अपहरण कर्ताओं" से यह अभद्र शब्द ।अगली वर्ड। सुरक्षित रह सके ।[2]

अपने सिद्धान्त की पियर्स द्वारा परिभाषा :-

"पियर्स" का योगदान "ज्ञान-दर्शन" के क्षेत्र में है । इन्होंने विचारों का प्रयोगवादी अर्थ निश्चय करने की कसौटी को निर्धारित किया । भविष्य में इस तत्व को विस्तारित जेम्स व डिवी ने किया । पियर्स ने विचारों को वस्तु निष्ठता प्रदान करने का प्रयास किया । विचारों को वस्तु निष्ठ बनाने में इन्होंने विज्ञान तर्क, गणित के सिद्धान्तों को काम में लिया । कॉन्ट के आत्मगत मानसिक प्रक्रिया तथा संसार की वस्तुगत यथार्थताओं को पियर्स ने अपने विचारों में महत्व दिया । पियर्स का कथन था कि बौद्धिक विचारों के अर्थ को निश्चित करने के लिए जगत को यथार्थ वस्तुओं के साथ क्रियात्मक परीक्षण

1- एफ० डब्ल्यु० गॉर फोर्थ : डिवीज एजूकेशनल राइटिंग्स" पृष्ठ-4 ।हीनेमन, लन्दन, 1966 ।

2- पीयर्सेज कलेक्टेड पेपरस, वैल्यूम पंचम, पृष्ठ-414

करना चाहिये । परिणाम चाहे जो हो, पियर्स ने अपने सिद्धान्त की परिभाषा इस प्रकार की :-

> " किसी बौद्धिक अवधारणा के अर्थ को निश्चित करने के लिये उसके वास्तविक प्रभावों पर विचार करना चाहिये, और व्यवहारिक परिणाम का अनुमान विचार की सत्यता पर आधारित होना चाहिये। और इस प्रकार इन सब परिणामों का योग उस विचार के सम्पूर्ण अर्थ को निर्मित करेगा ।"[1]

इस परिभाषा को सामान्य रूप से इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :-

> " यदि विचारों को कार्य की योजना मानी जाय और उसकी परिभाषा परिणामों के आधार पर की जाय तथा योजनायें कार्य रूप में परिवर्तित कर दी जाय तो शब्दावलियों की सहमति हो जायेगी । पियर्स का सिद्धान्त यह था कि विचारों का भूतकाल की अपेक्षा भविष्य में सम्बन्ध होना चाहिये । जो कार्य लिया जाय उसके परिणाम को अवश्य ध्यान में रखा जाय । इस प्रकार की कार्य योजना को अंगीकृत कर लेने पर प्रयोजन वाद का अर्थ सबके लिए एक सा हो जायेगा तथा विचारों की वैधता अनुभव में स्थापित हो जायेगी। पियर्स ने स्वयं कहा कि "सामान्यत:" यह पुराने तार्किक नियम का एक प्रयोग है ।इसके परिणामों से ही हम उसे जान सकते हैं ।[2]

<u>कुछ महत्वपूर्ण सारांश</u> :-

1- सिद्धान्त की अनुभव वादी प्रकृति व्यवहारिक संसार में अनुभव के महत्व व अर्थ को प्रतिपादित करती है ।

1- पीयर्सेज कलेक्टेड पेपरस, वैल्यूम पंचम, पृष्ठ- 465 ।

2- पीयर्सेज कलेक्टेउ पेपरस" वैल्यूम पंचम, पृष्ठ- 465 ।

2- अर्थ स्थिर नहीं है । भविष्य में अधिक अनुभव के माध्यम से इसे विकसित, परिवर्तित किया जा सकता है । यह विकासशील व परिवर्तन शील है ।

3- इसका परिणाम यह है कि हम कभी भी किसी विचार का सम्पूर्ण अर्थ क्या है ? नहीं जान सकते । ऐसी स्थिति को पियर्स ने "फैले विलिब्म" का नाम दिया है । निश्चितता की उच्चतम श्रेणी पर पहुँचने के लिये हमें अपने सिद्धान्त को दूसरे व्यक्ति के अनुभव की कसौटी पर परखना चाहिये ।

4- पियर्स के अर्थ के सिद्धान्त का महत्वपूर्ण परिणाम व्यक्ति विशेष के द्वारा नहीं निकाला जा सकता वरन् समाज या समुदाय के अन्वेषकों द्वारा निकाले गये परिणाम महत्वपूर्ण हैं । अर्थ, ज्ञान और सत्य सार्वजनिक हैं न कि व्यक्तिगत व निजी आधिपत्य ।

<u>जेम्स के प्रयोजनवाद का आधार</u>

जेम्स का प्रयोजनवाद एक प्रत्यय के अर्थ का साधारण सिद्धान्त है और उन्होंने इसे सच्चाई के सिद्धान्त के रूप में परिवर्तित किया, जो उनके प्रयोजनवाद का आधार बना । आधुनिक प्रयोजनवाद वास्तविकता की परख सन्निकटता से करता है तथा व्यावहारिक जीवन की परिस्थितियों में सच्चाई की खोज करता है, और ऐसे व्यावहारिक सिद्धान्तों का पता लगाता है जिसमें अधिकांश लोगों का अधिक लाभ हो ।

यह कहा जा सकता है कि अपनी व्यक्तिगत सनकों के कारण पियर्स की योग्यता छिपी रही, क्योंकि उनके जीवन काल में प्रकाशकों ने उनकी पुस्तकों को प्रकाशित करने में रूचि नहीं ली । जब उनके लेख छः पुस्तको में [1] प्रकाशित हुये तो लोगों की रूचि पियर्स के दार्शनिक योगदान मे बढ़ गयी । कुछ अन्य विचारकों की सम्मति में "पियर्स" की गणना "सुकरात" सेन्ट अंगस्टाइन और लिबनीज जैसे ‖जर्मिनल‖ अन्वेषकी विचारकों के मध्य की जा सकती है । जिसके दार्शनिक उपजाऊ मस्तिष्क ने भविष्य में आने बाले दार्शनिकों के लिए अनेक दिशाओं एवं विचारों को प्रस्तुत किया ।

विलियम जेम्स ‖ 1842 - 1910 ‖

"जेम्स" ने भी पियर्स" की भाँति अपना जीवन एक वैज्ञानिक के रूप में प्रारम्भ किया । सन् 1869 में एम0डी0 की उपाधि प्राप्त करके "हारवर्ड विश्व विद्यालय" में शरीर रचना शास्त्र ‖स्नाटेमी‖ तथा शरीर विज्ञान ‖फिजियोलॉजी‖ के प्रशिक्षक के रूप में नियुक्त हो गये । शीघ्र ही उनकी रूचि मनो-विज्ञान के क्षेत्र में उत्पन्न हो गयी । और मनोविज्ञान का अध्ययन सन् 1875 में प्रारम्भ कर दिया । सन् 1890 में उन्होंने "प्रिंसिपुल

1- चार्ल्स हार्टशोर्न एण्ड पॉलवी सेडसकलेक्टेड पेपरस ऑव चार्ल्स सेन्डर्स पियर्स, ‖हरवार्ड यूनीवर्सिटी प्रेस 1931-1935‖ बैल्यूम -1-6, ए0डब्ल्यू0 बर्कस, द्वारा प्रकाशित दो अतिरिक्त बैल्यूमस 1958 में उपलब्ध हुये थे ।

आॅव साइकालाजी" नामक पुस्तक दो भागों में प्रकाशित की । लोगों ने इसे उस विषय की एक स्टैण्डर्ड पुस्तक के रूप में मान्यता प्रदान की । इन्हीं कालों में इनकी रूचि दर्शन की ओर झुकी, परिणाम स्वरूप इस रूचि ने सभी रूचियों पर आधिपत्य जमा लिया, तथा जीवन के अन्तिम 20 वर्षों में यही जीवन का केन्द्र बिन्दु रहा । सन् 1897 मे वे हारवर्ड विश्व विद्यालय में दर्शन के प्रोफेसर के रूप में कार्य करने लगे ।

जेम्स की धार्मिकता :-

जेम्स गरिमामयी महान व्यक्तित्व वाले प्राणी थे । गहन धार्मिक प्रवृत्ति की ओर इनकी धार्मिक भावना का प्रमाण उनके लेखों से उपलब्ध होता है । वास्तव में उनके आन्तरिक दार्शनिक प्रेरणा की उपज, धार्मिक भावना एवं दृढ़ अनुभववादी दृष्टिकोण के मध्य संघर्ष का प्रतिफल है । वे लिखते हैं :-

> " प्रत्यक्ष अनुभव अथवा इन्द्रिय जनित ज्ञान चट्टान की भाँति अचल है और विचारों की गणितीय रेखा की सीमा निर्धारित करती है । "[1]

पारम्परिक अध्यात्म विद्या (मेटाफिजिक्स) के काल्पनिक विचारों का जेम्स के दृष्टिकोण मे कोई स्थान नहीं था, यद्यपि बाद में पियर्स की भाँति वे अपनी पद्धति पर आगे बढ़ते गये ।

1- विलियम, जेम्स : प्रिंसिपुल्स ऑव साइकलॉजी" (मैकामिलन 1890) वैल्यूम द्वितीय, पृष्ठ-7 ।

जेम्स ने विचार किया कि उन्हें प्रयोजनवाद के रूप में एक ऐसा साधन उपलब्ध हुआ है जिससे काल्पनिक विचारों के बुलबुलों को नष्ट कर अनुभव जन्य धर्म तथा ज्ञान दोनों की माँग को सन्तुष्ट किया जा सकता है । प्रयोजनवाद के सम्बन्ध में उन्होने लिखा :-

> " तार्किकवाद की भाँति प्रयोजनवाद भी धार्मिक रह सकता है, परन्तु तत्कालीन स्थिति में आध्यात्मवाद की भाँति प्रयोगवाद तथ्यों से अत्यधिक निकटता बनाये रख सकता है ।"[1]

जेम्स के अनुसार प्रयोजनवाद की व्याख्या :-

जेम्स ने प्रयोजनवाद की व्याख्या इस प्रकार की है :-

> "किसी वस्तु विचार में पूर्ण स्पष्टता प्राप्त करने के लिए हमें उस वस्तु में अन्तर्निहित व्यावहारिक प्रभावों तथा इससे हमें कैसी संवेदना की आशा है उसी का मात्र विचार करना चाहिये । तथा साथ ही होने बाली प्रतिक्रिया के प्रति अवश्य तैयार रहना चाहिये । प्रभावों के अनुभव चाहे तात्कालिक हो या दूर के, वही हमारी पूर्ण वस्तु की अवधारणा हैं । जहाँ तक इस वस्तु का सम्बन्ध है वही सकारात्मक महत्व का भी है ।"[2]

"पियर्स" की तरह "जेम्स" के लिए भी प्रयोजनवाद अर्थों को स्पष्ट करने का साधन व्यवहारिक परिणाम के आधार पर प्रत्येक विचार की व्याख्या व अन्तर स्पष्ट करने बाला विचार है ।

1- विलियम जेम्स: "प्रैग्मेटिज्म" पृष्ठ-33 ।लॉन्गमैन्स ग्रीन, 1907।

2- - तदैव - पृष्ठ-46-47

जेम्स द्वारा प्रयोजन वाद के क्षेत्र का विस्तार :-

जेम्स ने प्रयोजनवाद को "विचारों के स्पष्टीकरण" से और आगे विस्तृत किया । "द विल टु विलिव" जिसका उत्तम शीर्षक जेम्स ने स्वयं स्वीकार किया, "द राइट टु विलीव" नामक लेख में इन्होंने प्रयोजनवाद को धार्मिक विश्वास की समस्याओं को हल करने में प्रयुक्त करने की धारणा के रूप में प्रस्तुत की । "जोय पारकिन" ने जेम्स के प्रयोगवाद के सम्बन्ध में लिखा है :-

> " वह रहस्यवादी अनुभवों को भी मान लेगा यदि वे व्यवहारोपयोगी परिणाम वाले हैं, वह उस ईश्वर को मानेगा जो व्यक्तिगत तथ्यों के धूल में निहित है ।"[1]

जेम्स का तर्क था कि धार्मिक मान्यता को तर्क द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता, किन्तु कभी-कभी ऐसे अवसर उपलब्ध हो जाते हैं,जबकि परिणामें द्वारा समर्थित सत्य मान्यता प्राप्त कर लेता है । धार्मिक उप कल्पना सत्य एवं असत्य दोनों होती है, किन्तु जो व्यक्ति इनमें से एक का चुनाव करता है उसका परिणामों पर आधारित होना उचित है । इसी लिए सत्य की समस्याओं के हल के लिए जेम्स को प्रयोजनवाद का उपयोग

1- विलियम जेम्स कोटेड वाई जोय पारकिन । द फिलॉसफी ऑव एजूकेशन ।

करना आसान होगा । जेम्स इसी विचार को सत्य मानते थे जो कार्यरूप में परिवर्तित हो जाय और सफलता पूर्वक एक अनुभव से दूसरे अनुभव तक जहाँ तक विस्तृत होना चाहिये, हमें ले जा सके ।

सत्य विचार वही है जो सर्वजन के विश्वास के लिए श्रेष्ठ हो ।

सत्यता के इस वर्णन से निम्नलिखित तथ्य प्रकट होते हैं :-

1- प्रथम तथ्य यह है कि सत्य स्थिर नहीं है, सत्य परिवर्तनशील है, सत्य विकसित होता है । सत्य विकास की प्रक्रिया में है, घटनाओं के घटित होने से जो अनुभव होता है वह अनुभव विचार ही सत्य है । सत्य देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है । जो आज सत्य है वह निश्चित नहीं कि कल भी सत्य रहे ।

जेम्स ने ठीक कहा है :-

"सत्यता किसी विचार में निहित उसका स्थायी गुण नहीं है । वह तो अकस्मात विचार में निर्वासित होता है । यह घटनाओं द्वारा सत्य बनाया जाता है ।"[1]

2- दूसरी बात यह है कि सत्य की अवस्थाएं होती हैं । कोई विचार या विश्वास जिस सीमा तक कार्य करता

1- जेम्स "द विल टू बिलीव" ।लॉन्ग मैन्स ग्रीन, 1897 ।

है उसी सीमा तक उसमें सच्चाई होती है । अतः पूर्णतः सत्य नहीं है ।

3- तीसरी बात यह है कि सत्य को उपयोगियता से अलग रखकर मूल्यांकित नहीं किया जा सकता है जो विचार उपयोगी नहीं है वह सत्य नहीं है । सत्य की कसौटी उपयोगिता है । उपयोगियता को ही कार्यों में सफलता पूर्वक मार्ग दर्शन में श्रेष्ठता से युक्त होना सत्य मानना है । वास्तव में "प्रोफेसर पासमोर" के अनुसार "सत्य अच्छाई की एक उप श्रेणी है ।"[1]

जेम्स ने प्रयोजनवादी सिद्धान्त को नैतिक विचार धारा में प्रयोग कर उसका और विस्तार किया ।

"उनके अनुसार अच्छाई का सार केवल आवश्यकताओं की संतुष्टि है ।"[2]

आगे उन्होंने पुनः कहा कि ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे अन्तिम सत्य माना जाय । कोई नैतिक दर्शन अंध विश्वास पर आधारित कर पहले से नहीं बनाया गया । नैतिक शास्त्र में कोई अन्तिम सत्य नहीं है जैसा कि भौतिक शास्त्र में है । सत्य अन्तिम तब तक नहीं हो सकता जब तक कि अन्तिम व्यक्ति ने

1- कोटेड बाई पॉसमोर, जे0.ए हन्ड्रेड इयरस ऑव फिलॉसफी पृष्ठ-113 फ्रॉम "माइन्ड" 1904, ह्यूमैनिज्म एण्ड ट्रूथ ।

2- जेम्स: द विल टू विलीव, पृष्ठ-201 (लान्गमैन्स ग्रीन, 1897)

उसे अनुभव करके प्रकट न कर दिया हो ।"[1]

पुन: यह कहा जा सकता है कि नैतिक सत्यता की जाँच उसके कार्यों के परिणामों में है और वह "सत्य है नहीं", बन जाता है । उसकी वैधता उसकी संप्रमाणता की प्रक्रिया में है ।

जेम्स का योगदान :-

जेम्स ने प्रयोजनवाद को उच्च स्थान पर पहुँचाकर दार्शनिकों के लिए अध्ययन हेतु उसे एक विषय के रूप में ही नहीं बल्कि पियर्स को अज्ञान के अंधकार से निकाल कर प्रतिष्ठित स्थान पर पहुँचा दिया, तथा प्रयोजनवाद का निश्चित रूप से विस्तार किया, जो पियर्स की मान्यताओं से बहुत आगे था । उन्होंने पियर्स के प्रेग्मेटिकइज़्म को बदल कर प्रेग्मेटिज़्म कर दिया । दोनों इस बात पर एक मत थे कि प्रयोजनवाद "अर्थ का सिद्धान्त है" । अन्तर यह था कि पियर्स ने प्रयोजन वाद के तार्किक या विचारों के उपकाल्पनिक परिणामों पर बल दिया था, जबकि जेम्स ने कार्य में उसके परिणाम पर महत्व दिया । पियर्स परिणामको सार्वजनिक सबके लिए खुला हुआ मानते थे । जेम्स ने उसे सार्वजनिक व व्यक्ति के लिए निजी भी माना । हमनें यह भी देखा कि जेम्स ने प्रयोजन वाद का प्रयोग सत्यम् व शिवम् की समस्याओं के हल में किया ।

1- जेम्स: "द वि टू विलीव" पृष्ठ-184 ।लान्गमैन्स ग्रीन, 1897।

पियर्स एवं जेम्स का प्रारम्भिक परिचय डिवी के दर्शन को जानने में उपयोगी होगा । तथा इनका व इनके सम कालीन दार्शनिकों का डी०वी० के दर्शन पर क्या प्रभाव पड़ा यह समझने में भी सहायता मिलेगी ।

जॉन डिवी का दर्शन :-

यह सर्व मान्य सत्य है कि अन्य सभी मानवीय कार्यों की भाँति दर्शन भी सामाजिक व ऐतिहासिक संदर्भ से सम्बन्ध रखता है, जो इसकी प्रकृति व दिशा को निर्धारित करता है । "पियर्स" व "जेम्स" की भाँति डिवी ने अपने विचारों को तत्कालीन सामाजिक व ऐतिहासिक शक्तियों व प्रभावों के मध्य ही निर्मित किया था ।

समकालीन शक्तियों व प्रयोजनवाद का सामान्य सिद्धान्त :-

जैसा पूर्व में कहा गया है कि प्रयोजनवाद के सामान्य सिद्धान्त पर विज्ञान के विकास व इसके निरीक्षण व प्रयोग का प्रभाव पड़ा था । इस कारण प्रयोजनवाद भी अपने सिद्धान्त में निरीक्षण व प्रयोग पर जोर देता है ।

> "कुछ सीमा तक प्रयोजनवाद विस्तार की वायु से प्रभावित हुआ था । यह विस्तार भौगोलिक, औद्योगिक व सामाजिक था । 19वीं शदी के मध्य अमेरिकी समाज की यही विशेषता थी, जिसने साधनों की खोज व व्यवहारिक कार्यकुशलता पर बल दिया ।"

इस सामाजिक वातावरण के अतिरिक्त डिवी कुछ प्रमुख स्रोतो के भी ऋणी थे, जिसने उनके विचारों की दिशा निर्धारित की । यहाँ यह बतला देना उचित होगा । यद्यपि डिवी,[1] ने स्वयं स्वीकार किया है कि उन्होंने बहुत अधिक दार्शनिक लेखों व कृतियों का अध्ययन किया थाजो कि तकनीकी प्रकृति की थी, परन्तु उनके विचारों पर सबसे अधिक प्रभाव उन व्यक्तियों काजिनसे उनकी भेंट, वार्तालाप या विचार विनिमय हुआ तथा उनके स्वयं के अनुभव का था ।

दार्शनिक डिवी की स्वाभाविक ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि :-

मुख्य विचार धारा जिसने डिवी की चिन्तन प्रक्रिया को प्रेरित व नियन्त्रित किया था, वह एक महत्वपूर्ण विचार था, जिसे डिवी ने "पैटर्न आँव इन्क्वायरी" के नाम से उद्घोषित किया । डिवी का इस तथ्य में विश्वास था कि मनुष्य की विचित्रता व उसकी विशिष्टता विचार करने की शक्ति में निहित है । सम्पूर्ण अनुभव व समाज का तभी कुछ अर्थ है जबकि व्यक्ति स्वतंत्र रूप से खोज के कार्यों में संलग्न हो । डिवी के अनुसार "द पैटर्न आँव इन्क्वायरी" अपनी उत्पत्ति,

---

1- फ्रॉम एब्सोल्युटिज्म टू इक्सपेरीमेन्टलिज्मबाई जॉन डिवी फ्रॉम " कॅन्टेम्पोरेरी अमेरिकन फिलॉसफी" परसनल स्टेटमेन्ट्स एडीटर्स जी0पी0एडक्स एण्ड डब्ल्यु पी0 मॉन्टेग वैल्यूम- द्वितीय । 1930। न्यूयार्क, रसेल एण्ड रसेल, 1962 ।

विकास व प्रभाव में विचारों का स्वयं एक ढाँचा है । अतः किसी व्यक्ति के दार्शनिक विचारों के विकास को अन्वेषित करने के लिए उसके प्रारम्भिक प्रभावों की खोज करनी चाहिये जिसने उसके विचारों को मूर्तरूप दिया हो ।

जॉन डिवी की बौद्धिक जीवनी :-

हम वास्तव में भाग्यशाली हैं, क्योंकि हमें जॉन डिवी की बौद्धिक जीवनी की जानकारी सन् 1930 में प्रकाशित उनके लेख :

"फ्राम इब्सोल्यूतिज्म टू एक्सप्रेरीमेन्टलिज्म"

से प्राप्त होती है ।

अधिक समय व्यतीत हो जाने पर भी अपने प्रारम्भिक बौद्धिक प्रभावों का विकास डिवी ने उक्त पुस्तक में इतनी वस्तुनिष्ठता से लिखा है मानों डिवी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति ने लिखा हो । इसके अतिरिक्त डिवी ने इस कृति में यह संकेत दिया है कि समय के साथ-साथ बहुत सी वस्तुएं विचार दृष्टि से ओझल हो जाती हैं, किन्तु कुछ विचार बिन्दु है जो कि उनके स्मरण में आ जाते हैं व प्रारम्भिक बौद्धिक विकास को मुख्य रूप से प्रभावित करते हैं । "वरमान्ट विश्व विद्यालय" में बी०ए० कक्षा में पढ़ाये जाने वाले विशेष विषयों के प्रभावों को पुनर्स्मरण करके डिवी ने विवरण प्रस्तुत किया है । उनका कहना था कि यह कोर्स ऐसे छात्रों के लिए प्रारम्भ किया गया था, जिन्होंने तीन वर्ष

तक भाषा व विज्ञान में विशेष योग्यता प्राप्त की थी और विचारों की दुनियाँ से परिचित हो गये थे । व्यक्तिगत रूप से यह विषय उन्हें लाभदायकवप्रेरक रहा ।

जॉन डिवी की डार्विन के विकास वाद में रूचि :-

डिवी ने अपने विश्व विद्यालयीय जीवन के एक कोर्स का उदाहरण देते हुये कहा था कि उस कोर्स ने डार्विन के विकास वादी सिद्धान्त में उनकी रूचि उत्पन्न कर दी थी यही उनके दार्शनिक रूझान का प्रारम्भिक बिन्दु व स्त्रोत है । "पी०एच० हक्सले" "फिजियोजॉजी" की पाठ्य पुस्तक से डिवी को "सभी प्राणियों में एकता है" का ज्ञान हुआ, और इसी तिथि से उनकी दर्शन के प्रति रूचि जाग्रत हो गयी । इसी काल का अन्य प्रभाव"ऑगस्ट कॉम्टे" के लेखों का पड़ा । इन लेखों से उनकी रूचि राजनैतिक व सामाजिक दर्शन में भी हो गयी ।

एच० ए० पी० टॉरी के शिक्षण का प्रभाव :-

डिवी के भावी जीवन पर प्रोफेसर एच० ए० पी० टॉरी के शिक्षण का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा । डिवी ने "स्काटिस कामन सीन" जर्मन अन्तर्ज्ञानवाद ‖जर्मन इनटयुसिजम‖ तथा कान्ट के पूर्वगामी ‖अप्रायर‖ दर्शन के सम्बन्ध में प्रो० टॉरी से ज्ञान प्राप्त किया । डिवी ने लिखा है कि वे एक उच्च कोटि के अध्यापक थे, इन्होंने डिवी की विचारधारा को दर्शन की तरफ मोड़ा था । एक वर्ष तक डिवी निश्चित रूप से प्रो०टॉरी

से पढ़ते रहे । इसके बाद स्नातक कोर्स की पूर्णता के लिए उन्होंने "जान हापकिन्स विश्व विद्यालय" में प्रवेश लिया । यह उस समय के लिए नवीन बात थी ।

हीगल के आदर्शवाद के अनुयायी अमेरिकी दार्शनिक पत्रिका "जनरल ऑव स्पेकुलेटिव फिलासफी" के प्रमुख सम्पादक "डा० डब्ल्यु० टी० हेरिश" ने जॉन डिवी" को इस दिशा में उत्साहित व उत्प्रेरित किया था । डिवी ने अपने अनेक दार्शनिक लेखों को "डॉ० हेरिश" के पास भेजा था ।

जिन्हें पढ़ने के बाद उन्होंने डिवी को दर्शन के अध्यापक के रूप में जीवन प्रारम्भ करने की सलाह दी ।

<u>जॉन डिवी पर जी० एस०ण्मॉरिस का स्थायी प्रभाव</u> :-

"जॉन हापकिन्स विश्वविद्यालय" में "जार्ज सिलवेस्टर मॉरिस" के प्रभाव से डिवी नव्य हीगल आदर्शवादी सिद्धान्त के मानने वाले हो गये, डिवी ने मॉरिस के बारे में लिखा है :-

> "मैने ऐसे सरल एकाग्रचित्त तथा सच्चे हृदय वाले व्यक्ति को कभी नहीं जाना था, जो सम्पूर्ण जीवन भर सरल रहा हो, जब मैं बहुत दिनों बाद उनके दार्शनिक विश्वास से अपनी विचार धारा को दूसरी ओर लगाया तब भी मैं यह विश्वास करके प्रसन्न हूँ कि उनके अध्यापन का प्रभाव मेरे लिये अपिरिवर्तनीय प्रभाव के रूप में बना रहा ।"[1]

1- फ्रॉम एब्सोल्युहिज्म टू इक्सपेरीमेन्टेलिज्म" एडिटेड बाई बर्न्स टीन, आर०जे० । लिबरल आर्टस प्रेस न्यूयार्क, 1960।

"मार्टन जी0 व्हाइट" ने डिवी पर "मॉरिस" के प्रभाव के बारे में इस प्रकार कहा है :-

> "उनका डिवी पर सबसे बड़ा प्रभाव यह हुआ कि वे कुछ प्रमुख दर्शन के अध्ययन में प्रवृत्त हो गये जिससे डिवी किन्हीं दार्शनिक विचारों के भक्त तथा किसी के विरोधी हो गये। इसका प्रतिफल यह हुआ कि डिवी की प्रारम्भिक दार्शनिक कृतियाँ प्रमाणिक हो गयी। इस प्रभाव ने डिवी के प्रथम पन्द्रह वर्षों के कार्यों को लगभग विशेष रूप से क्रमिक रूप दिया। उनके बाद के दर्शन को भी इसने सामान्य रूप से प्रभावित किया।"[1]

मॉरिस "ब्रिटिश दर्शन" का विरोधी तथा जर्मन दर्शन" का भक्त या मानने वाला था। इन दर्शनों में "मॉरिस" संवेगात्मक रूप व बौद्धिक रूप से इतने लीन थे कि "सत्य" के प्रसार के लिए उन्होंने क्रम से अनेक पुस्तकेंलिख डाली।

"मॉरिस" की "जर्मन फिलासफिक क्लैसिक्स फॉर इंग्लिश रीडरस एण्ड स्टूडेन्टस्" नामक प्रथम सीरीज 1882 में प्रकाशित हुयी। यह पुस्तक "कॉन्टस क्रिटिक ऑव प्योर रीजन" के नाम से भी विख्यात थी। इस पुस्तक में "मॉरिस" ने "कान्ट" के द्वैतवाद की आलोचना की है। "मारिस" की "ब्रिटिश थॉट एण्ड थिंकरस्" और कॉन्टस किटिक ऑव प्योर रीजन" नामक दोनों पुस्तकें डिवी के साधनवाद (इन्स्ट्रूमेन्टेलिजम) के दो केन्द्रिय सिद्धान्तों- कार्यवाद (ऐक्टीविजम) और द्वैतवाद के विरोध (एन्टीटयूलिजम) का आश्चर्य जनक चित्र प्रस्तुत करती है।

1- मार्टन, जी0व्हाइट: द ओरिजिन ऑव डिवीज इन्स्ट्रूमेन्टलिज्म" पृष्ठ-69 (कोलम्बिया यूनीवर्सिटी प्रेस, 1943)

वास्तव में सन् 1884 से 1890 तक जॉन डिवी का जीवन मॉरिस तथा अन्य आदर्शवादियों के विचारों से प्रभावित रहा । परन्तु मार्टन जी0 व्हाइट के कथन का सार यह है कि:-

"एक ऐतिहासिक तथ्य को ध्यान में रखना चाहिये कि जब डिवी आधुनिक समाज शास्त्र या डार्विन के जीव विज्ञान या मनोविज्ञान के विकास के लिए विस्तृत रूप से वर्णन करने में लगे हुये थे, उसके पहले से ही वे द्वैतवाद के विरोधी हो गये थे । डिवी ने मॉरिस, हीगल तथा ब्रिटिश नव्य हीगलवाद से जो प्रभाव ग्रहण किया, उसका भी लक्ष्य द्वैतवाद तथा अन्य नास्तिक वाद का विरोध करना ही था ।"[1]

केवल मॉरिस ही हीगलवाद की ओर ले जाने वाले स्रोत नहीं थे :-

डिवी ने स्वयं लिखा है कि :-

"18वीं तथा 19वीं शदी में ब्रिटिश विचारों में नवीनता का प्रवेश होने लगा था । आणविक व्यक्तिवाद और संवेदनात्मक अनुभव वाद का विरोध इस काल में पूरे जोर पर था । यह "थामस हिल" व वालेस" नामक दो क्यूरइस का समय था । इसी काल में "एसेज इन फिलॉसिफिकल क्रिटिसिज्म" प्रकाशित हुये । जिसे कुछ युवकों ने लार्ड हिल्डेन के नेतृत्व में लिखे थे, दर्शन में यह आन्दोलन बहुत ही महत्त्वपूर्ण व रचनात्मक था। स्वाभाविक रूप से इसका प्रभाव प्रोफेसर मॉरिस में पुष्ट हुआ है ।"[2]

---

1. मार्टन जी0 व्हाइट: द ओरिजिन ऑव डिवीज इन्स्ट्रूमेन्टलिज्म पृष्ठ-69 (कोलम्बिया यूनीवर्सिटी प्रेस, 1943)

2. जॉन डिवी "फ्रॉम एब्सोल्युटिज्म टू एक्सपेरीमेन्टलिज्म, 1960 पृष्ठ-18 लिबरल आर्टस प्रेस, न्यूयार्क, 1960 ।

डिवी का " न्यू मनोविज्ञान " के साहित्य से परिचय -

यह सत्य है कि " प्रो0 मॉरिस " ने डिवी को "हीगल के आदर्शवाद" की ओर उन्मुख किया, किन्तु इसी समय इन्हें "जी0स्टेनलेहाल" भी प्रभावित कर रहे थे, डिवी न्यू मनोविज्ञान के साहित्य के सम्पर्क में आ रहे थे। डिवी ने 1887 में "मनोविज्ञान" पुस्तक प्रकाशित कराई, जिसका विषय था "आदर्शवाद" एवं "मनोविज्ञान" के पारस्परिक सम्बन्ध को प्रकट करना।

सन् 1887 से पूर्व भी डिवी ने कुछ लेख प्रकाशित कराये थे जो इसी विकास को अभिव्यक्त करेत थे। सन् 1884 में उनके दो लेख "कान्ट एण्ड फिलॉसफिक मेथड" और " न्यू साइकॉलाजी " प्रकाशित हो चुके थे। प्रथम लेख में हीगल के आदर्शवाद की व्याख्या को तथा दूसरे में नवीनतम मनो वैज्ञानिक विचारों को प्रकट किया गया है। इस तर्क को आगे बढ़ाने के लिए यह कहा जा सकता है कि प्रथम लेख "मॉरिस" के प्रति द्वितीय लेख "स्टेनलेहाल" के प्रति श्रद्धा भक्ति का प्रदर्शन है।

परन्तु डिवी के लिए यह एक परेशानी की स्थिति थी, वे दर्शन एवं मनोविज्ञान के पारस्परिक सम्बन्ध की जान कारी प्राप्त करने के लिए स्वयं बाध्य थे।

सन् 1886 में प्रकाशित दो लेख "द साइकलॉजिकल स्टैण्ड प्वाइण्ट" और साइकलॉजी ए इज फिलॉसफिक मेथड" मनोविज्ञान और दर्शन के आपसी सम्बन्ध के विषय में डिवी

की स्थिति को प्रकट करते हैं :-

इस सम्बन्ध में व्हाइट की निम्नलिखित धारणा है-

" सिद्धान्तों की जाँच यह निश्चय करने के लिए की जाती है कि वे व्यवहार में कार्यशील हैं या नहीं और यह भी देखने के लिए कि ये विचार रचना के तरीकों के अनुकूल है या नहीं । इस प्रकार के कथनों की प्राप्ति के अतिरिक्त भी यह नहीं कहा जा सकता है कि डिवी 1890 में एक साधनवादी थे ।"[1]

डिवी के विचारों में क्रमशः परिवर्तन :-

उस निश्चित क्षण को इंगित करना कठिन होगा जबकि डिवी आदर्शवादी विचारधारा को छोड़कर वर्तमान स्थिति में आये । इस समय जॉन डिवी हिगेलियन साधनवादी (इन्स्ट्रूमेण्टल हेगेलियन) थे । क्योंकि उस समय डिवी खुले आम हीगले के तार्किक सिद्धान्त की प्रशंसा करते थे तथा उसके प्रबल समर्थक थे । सन् 1894 में डिवी ने अपने दर्शन को प्रयोगवादी आदर्शवाद (एक्सपेरीमेण्टल आइडियलिजम) कहा है ।

वर्ष 1890 का महत्व :-

1890 का वर्ष बहुत महत्वपूर्ण था । डिवी के विचारों में इस समय कुछ अर्थपूर्ण सार्थक साधनवादी ध्वनि सुनाई देने लगी थी । सन् 1891 में प्रकाशित "आउट लाइन्स ऑव एक्रिटिकल थ्योरी ऑव इथिक्स" में उन्होंने इस विचार को अभिव्यक्त किया है और यह ढंग प्रकट किया गया है कि साधनवाद किस प्रकार आदर्शवाद के प्रारम्भिक प्रभावों को छोड़ देता है ।

1- मार्टन, जी0 व्हाइट : द ओरिजिन ऑव डिवीज इन्स्ट्रूमेन्टलिज्म" पृष्ठ-69 (कोलम्बिया यूनीवर्सिटी प्रेस, 1943)

डिवी द्वारा 1903 में "विलियम जेम्स" को लिखित पत्र के संदर्भ में जेम्स ने डिवी के सम्बन्ध में इस बात की पुष्टि की है कि "आउट लाइन्स" जो कि 1891 में प्रकाशित हुईथी - डिवी के विचारों के विकास में एक प्रमाणित बिन्दु थी । इस सम्बन्ध में जेम्स ने लिखा है कि :-

" जहाँ तक इस दृष्टिकोण का सम्बन्ध है हम सभी बारह वर्षों तक इस पर विचार व कार्य करते रहे ।" [1]

सन् 1894 में जब डिवी ने "द स्टडी ऑफ इथिक्स" एक पाठ्य चर्चा नामक पुस्तक प्रकाशित की तो उसमें हम देखते हैं कि डिवी ने " ग्रीन के थोथे सार्वभौमिक स्व" और व्यक्ति निष्ठ अध्यात्मवाद" को तिलांजलि दे दिया है ।

परिवर्तन के बिन्दु :-

जॉन डिवी का वास्तविक रूप हमें उस समय दिखाई देता है जब उनकी पुस्तक "सिलैबस" प्रकाशितहुयी । अपनी वर्तमान स्थिति को प्राप्त करने व वर्तमान समय में प्रसिद्धि प्राप्त करने में इस पुस्तक ने उन्हें पूर्ण सहयोग दिया । इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में उन्होंने लिखा :-

" विज्ञान व कला के मध्य वर्तमान विरोध असहनीय है ।-- विज्ञान हमें "जानना" नहीं सिखाता है, परन्तु "जानना" ही विज्ञान है, कला हमें करना

1- "द थॉट एण्ड कैरेक्टर ऑव विलियम जेम्स", पेरी द्वितीय-520

नहीं सिखाती बल्कि "करना ही कला है ।"[1]

जैसा कि मार्टन जी व्हाइट लिखते हैं :-

"अबसे आगे प्राचीन आदर्शवादी विचार या तो त्याग दिये गये थे, या बनाये रखे गये थे, यदि बनाये रखे गये थे तो हीगल के आदर्शवाद के रूप में नहीं बल्कि नये प्राकृतिक तर्कों पर आधारित कर संशोधित रूप में स्वीकार किये गये थे ।"[2]

यहाँ तक कि जाॅन डिवी अपने बौद्धिक विचार धारा के इस परिवर्तनशील बिन्दु पर भी अपना सम्बन्ध भूतकाल की विचारधारा से बनाये हुये थे । सन् 1894 में जाॅन डिवी ने अपने दर्शन को "आदर्शवाद" ही कहा था किन्तु यह एक विशेष प्रकार का आदर्शवाद था । उन्होंने इस आदर्शवाद का नाम "प्रयोगात्मक आदर्शवाद" रखा । वास्तव में जाॅन डिवी इस बिन्दु पर कोई वैकल्पिक चुनाव नहीं कर सकते थे, क्योंकि उनका आदर्शवाद प्रयोगवाद की ओर बढ़ रहा था । कुछ लोग यह अनुभव करते हैं कि अपने दर्शन में आदर्शवाद शब्द को बनाये रखने का तात्पर्य जाॅन डिवी का "ग्रीन" के प्रति पवित्र श्रद्धा प्रकट करना था क्योंकि "ग्रीन" जाॅन डिवी के युवावस्था के "आदर्श" थे ।

1- जाॅन डिवी "सिलैबस" फर्स्ट चैपटर

2- मार्टन जी0व्हाइट, ओरिजन आॅव डिवीज इन्स्ट्रूमेन्टलिज्म" पृष्ठ-148 ।कोलम्बिया यूनीवर्सिटी प्रेस, 1943 ।

सन् 1903 में प्रकाशित "स्टडीज इन लॉजिकल थ्यौरी के चार लेखों से हम जॉन डिवी के जीवन के महत्वपूर्ण परिवर्तनों से परिचित हो जाते हैं। विलियम जेम्स के अनुसार ये लेख एक नयी विचारधारा से युक्त हैं और इनमें जॉन डिवी के नवीन विचारों का प्रथम विस्तृत वर्णन निहित है। इस प्रकार 1903 तक जॉन डिवी नीतिशास्त्र, मनोविज्ञान और तर्कशास्त्र में (इक्सआयडियलिस्ट) भूतपूर्व आदर्शवादी थे। आदर्शवादी दर्शन से जॉन डिवी का यह अन्तिम सम्पर्क था।

हम यह देख चुके हैं कि 1900 तक जॉन डिवी जिस आदर्शवादी निर्बल सूत्र से "मारिस", ग्रीन" व केअरड" से बंधे हुये थे, दस साल के कठिन प्रयास के पश्चात वे उन आदर्शवादी गाँठों को काटने में समर्थ हो सके।

साधनवाद (इन्स्टूमेन्टलिजम) का निश्चित रूप :-

इसके आगे के कालों में जॉन डिवी के दर्शन ने जिसे हम "साधनवाद" कहते हैं एक निश्चित रूप धारण कर लिया था। सन् 1938 में प्रकाशित पुस्तक "लॉजिक" में वही सब निहित है जिसका सुझाव 1900 में जॉन डिवी ने रखा था। तथा 1903 में कुछ सीमा तक उसे व्यवहार क्षेत्र में प्रयोग भी किया था।

अपने बौद्धिक विकास में जॉन डिवी जर्मन दार्शनिक हीगल, चार्ल्स, डार्विन तथा विलियम जेम्स के ऋणी थे। हीगल के आदर्शवादी विचार से प्रभावित हो जॉन डिवी ने अपने दर्शन को "प्रयोगात्मक आदर्शवाद" भी कहा, जब बाद में उन पर डार्विन

के विचारों एवं सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ा तो उनके दार्शनिक विचारों में प्रकृतिवादी लक्षण दिखाई देने लगे । बाद में जेम्स के विचारों से प्रमाणित हो वे पूर्ण रूप से प्रयोगवादी हो गये । इस कारण लोग उन्हें "साधनवादी" एवं प्रयोगात्मक वादी" ।इन्स्ट्रूमेण्टलिस्ट एण्ड एक्स पेरीमेण्टलिस्ट। कहने लगे ।

जॉन डिवी को साधनवादी इस कारण कहा जाता है क्योंकि उन्होंने विचार, ज्ञान, भावनायें, सिद्धान्त सभी को साधन माना है । इन साधनों से मनुष्य ऊपर उठता है और जीवन लक्ष्य प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है । जॉन डिवी किसी भी दार्शनिक के मत के विरोधी नहीं थे । बल्कि उसे भी अपने विचारों में शामिल करते गये, फिर भी वे प्रयोगा-त्मक वादी और साधन वादी ही बने रहे । जिनका दार्शनिक जीवन आदर्शवाद में विश्वास करने वालों की भाँति प्रारम्भ हुआ था । ऐसे आदर्शवादी डिवी को पियर्स के "प्रयोगशालीय मस्तिष्क" जेम्स के जीव वैज्ञानिक दृष्टिकोण व प्रयोगवादी विधि तथा उनके निजी जीवन दर्शन और शिक्षा के अध्यापन कार्य ने नितान्त प्रयोगवादी बना दिया था ।

हीगल, चार्ल्स डारविन और विलियम जेम्स का जॉन डिवी पर प्रभाव :-

इसके पूर्व यह कहा जा चुका है कि जब जॉन डिवी जॉन हायकिन्स विश्व विद्यालय में स्नातकीय उपाधि हेतु अध्ययन रत थे, तभी वे हीगल के दर्शन के सम्पर्क में आ गये थे ।

हीगल के विचारों के प्रबल समर्थक एवं अनुयायी प्रो० मॉरिस ने अपने विचारों व अध्यापन कार्य से जॉन डिवी को इतना प्रभावित किया कि उनके हीगल वाद में अस्थाई परिवर्तन हो गया । वास्तव में शादी की समाप्ति पर अमेरिका व इंग्लैण्ड में हीगल की सर्वोच्च स्थिति को कोई चुनौती नहीं दे सकता था । उनका "सभी सम्बन्धों की अनिवार्यता" का सिद्धान्त तत्कालीन समस्त प्रारम्भिक पुस्तकों में स्थान पा चुका था । जॉन डिवी के विद्यार्थी जीवन काल में ही अमेरिका व इंग्लैण्ड के दर्शन पर हीगल का "पूर्ण आदर्शवाद" छाया हुआ था ।

जॉन डिवी का हीगल के प्रभाव की स्वीकारोक्ति :-

एक लेख में डिवी ने हीगल के प्रभाव को इस प्रकार स्वीकार किया है :-

"मैं कभी यह सोच भी नहीं सकता कि मैं इस तथ्य को इंकार करूँ कि हीगल के ज्ञान ने मेरे विचारों पर स्थायी प्रभाव छोड़ा ।"[1]

जॉन डिवी की विचार धारा के प्रत्येक स्तर पर भिन्न-भिन्न तरह से हीगल के प्रभाव की पृष्ठभूमि को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, और उनके प्रारम्भिक लेखों से अनेक

1- जी०पी० एडम्स एण्ड डब्ल्यु० पी० मॉन्टेग (एडीटरस) कन्टेम्पोरेरी अमेरिकन फिलॉसफी (न्यूयार्क, मैक मिलन, 1930) पृष्ठ-21

उद्धरण इस प्रभाव की पुष्टि के लिए चुने जा सकते हैं । हम यह भी जानते हैं कि बाद में जॉन डिवी हीगल के प्रभाव से अन्य दिशा की ओर मुड़ गये थे । डिवी के इस प्रकार के परिवर्तन के सम्बन्ध में "फलेड मैन" ने लिखा है :-

> "बाद में डिवी की विचार धारा का स्वभाव पहले से और अधिक वास्तविक हो गया । क्यों कि बहुत समय से "आदर्शवाद" के आध्यात्मिक और बौद्धिक अर्थों से, जिनसे वे जुड़े हुये थे, उन्हें त्याग दिया ।"[1]

परन्तु जॉन डिवी इस बात का अनुभव करते रहे कि वे हीगल के ऋणी हैं । इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है :-

> "अगर मेरे लिये यह सम्भव हो कि मैं किसी पद्धति का पुजारी रह सकूँ, तो मैं यहविश्वास करता हूँ कि "हीगल" के अन्दर और किसी एक नियमित दार्शनिक की अपेक्षा अधिक अन्तर्दृष्टि की सम्पन्नता और विभिन्नता पायी जाती है यद्यपि कि जब मैं यह कहता हूँ तो यह कथन "प्लेटो" पर लागू नहीं होता है, क्योंकि वह आज भी मेरा प्रिय दार्शनिक है ।"[2]

1- डब्लू0टी0 फेल्डमन: "फिलॉसफी ऑफ जॉन डिवी" पृष्ठ-13

2- जॉन डिवी: "ऑन एक्सपीरियन्स नेचर एण्ड फ्रीडम, पृष्ठ-12 । सलेक्शन्स, इडीटर, वन्सेंटीन, आर0 जे0 लिबरल आर्ट प्रेस 1960 ।

<u>डार्विन का प्रभाव</u> :-

दूसरा महत्वपूर्ण प्रभाव डार्विन का था । जॉन डिवी के जन्म के वर्ष में प्रकाशित डार्विन की पुस्तक "ओरिजिन ऑव स्पीसिज" ने बौद्धिक वातावरण में विरोध उत्पन्न कर दिया था । डार्विन के जीव उद् विकासवाद के सिद्धान्त के प्रतिरूप दर्शन में भी दिखाई देने लगे । इन प्रतिरूपों में "नीटजे" का दर्शन तथा 19 वीं शताब्दी के विकासवादी नीतिशास्त्र बहुत महत्वपूर्ण थे, परन्तु डार्विन की उपकल्पना को जॉन डिवी ने ज्ञान दर्शन में ॥इपिस्टेमोलॉजी॥ पूर्ण रूप से लागू किया । इसका प्रमाण जॉन डिवी के लेखों में स्पष्ट दिखाई पड़ता है । डार्विन का प्रभाव जॉन डिवी पर इतना अधिक था कि सन् 1900 से 1910 के दशक में जॉन डिवी यह पूर्ण विश्वास करने लगे थे कि "प्रयोजनवाद डार्विन का ही सिद्धान्त है" । जिसे दर्शन में स्थानान्तरित किया गया है । यहाँ तक कि जॉन डिवी ने अपनी एक पुस्तक का नाम "दर्शन तथा अन्य लेखों पर डार्विन का प्रभाव" रखा था । जो डार्विन के प्रभाव का स्पष्ट प्रमाण है ।

इस प्रभाव के सम्बन्ध में हमें और निकटता से खोज करनी चाहिये । जॉन डिवी ने कहा कि किसी वस्तु की प्रकृति को समझने के लिए हमें वस्तु की उत्पत्ति की अव दशाओं की खोज करनी चाहिये । तथा यह क्या कार्य करता है, यह भी जानना चाहिये ।

बुद्धि तथा ज्ञान के अध्ययन में उस काल में इस सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता था । ऐसी परिस्थितियाँ जिसमें प्रतिबिम्बित विचार ।रिफ्लेक्टिव थाट। हो इस तथ्य के उत्तम उदाहरण माने जाते थे । किस परिस्थिति या स्थिति में विचार उत्पन्न होते हैं ?

विचार की प्रेरणा तथा उत्तेजना क्या है ? विचार कैसे समाप्त होता है ? इन प्रश्नों का उत्तर जॉन डिवी ने इस प्रकार दिया है :-

प्रतिबिम्बित विचार उस समय उत्पन्न होता है जब हमारे अभ्यस्त व्यवहार में किसी संकट के कारण कठिनाई की अनुभूति होती है । ऐसी स्थिति में जीव विभिन्न मार्गों व कठिनाइयों का सामना करता है । विचारक को कुछ क्षण विचार ग्रहण करने के लिए रूकना पड़ता है । इसके बाद इस परिस्थिति में जो सबसे अधिक संतोषजनक समाधान होता है वह उसी का ही चुनाव करता है ।

<u>जीव विज्ञान सम्बन्धी प्रकरण में बुद्धि के कार्य</u> :-

इस सिद्धान्त को हम "डार्विनियनिज्म" कह सकते हैं क्योंकि जॉन डिवी ने यह कहने का प्रयास किया है कि बुद्धि जीव-विधा-सम्बन्धी प्रकरण में ही कार्य करती है । इसलिए बुद्धि की यह परिभाषा दी जा सकती है कि बुद्धि प्रकृति में जो जीव है उनकेउद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक साधन है ।

जॉन डिवी ने लिखा है :-

> " डार्विनवाद के अनुसार यदि सांसारिक प्राणी के समक्ष कठिनाई न उत्पन्न हो तो विचार उत्पन्न ही नहीं होगा । इसलिए ज्ञान की प्राप्ति भी नहीं हो सकेगी। इन कठिनाइयों का समाधान केवल विचार विधि से ही उत्तम रूप से किया जा सकता है ।"[1]

ज्ञान का सम्बन्ध व्यक्ति की रूचियों, प्रेरणाओं यहाँ तक कि मूल प्रवृत्तियों की आवश्यकताओं से है । व्यक्ति अपने को जीवित रखने के लिए नाना प्रकार की कठिनाइयों जैसे भूख, प्यास, रहन-सहन, आदि से संघर्ष करता है । ये उत्तेजनायें उसे वातावरण से ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होती हैं । अत: मूल प्रवृत्तियों के कारण उत्तेजना प्रतिक्रिया से व्यक्ति की बुद्धि का विकास होता है ।

विचार या चिन्तन का कोई न कोई कारण अवश्य होता है । यदि व्यक्ति के जीवन के समस्त व्यापार सुगमता से हो जाय तो विचार की कोई आवश्यकता ही न पड़े, किन्तु बाधा या कठिनाई के उपस्थित हो जाने पर ऐसी समस्या के हल के लिए विचार प्रक्रिया प्रारम्भ हो जायेगी ।

अत: व्यक्ति की क्रियाशीलता समस्या के समाधान पर निर्भर करती है विचार की उत्पत्ति समस्या के उठने तथा

1- जॉन डिवी : "द इन्फल्युन्स ऑव डार्विन ऑव फिलॉसफी एण्ड अदर एसेज" पृष्ठ- 213 ।
  [हेनरी हाल्ट 1910, पीटर स्मिटी, 1951]

विचार की समाप्ति समस्या के हल से होती है । इसलिए जॉन डिवी ने चिन्तन की क्रियाशीलता को एक कार्य कहा है । डिवी चिन्तन की प्रक्रिया पर विशेष ध्यान देते हैं न कि उसके परिणाम पर ।

" प्रो० मीड "[1] के अनुसार "जॉन डिवी" ने एक महत्वपूर्ण कार्य किया है कि उन्होंने ज्ञान को वास्तविकता ॥रियाल्टी॥ के चरित्र ॥कैरेक्टर॥ को प्रकट करने की आवश्यकता से स्वतंत्र कर दिया । इसका प्रतिफल यह हुआ कि :-

> " जॉन डिवी" ने इस नये विरुद्ध बौद्धिकतावाद को निश्चित रूप से जैविकीय सामाजिकता से जोड़ा है । इनका प्रयोग कार्यों से, किया-कलापों से प्राथमिक प्रदत्तों के रूप में जो जैवकीय सामाजिक प्रकृति के थे, जैवकीय प्रतिक्रिया और अनुकूलन के लिये किया । ज्ञान के दृष्टिकोण से इसको सभी नमूनों,ढाँचों में जो विकसित होने वाले व रुचि के अनुसार क्रियाशील होने वाले उद्देश्यों में इन प्राथमिक क्रियाओं को मार्गदर्शन व सम्पन्न करने के लिए व्यवहृत किया है ।"[2]

बाद में हम यह देख सकते हैं कि विचारों के साथ-साथ जॉन डिवी ने डार्विन के "एन्टी इन्टलेक्युलिज्म" को त्याग दिया ।

1- मीड : ॥ जॉन डिवी" द मैन एण्ड हिज फिलॉसफी पृष्ठ-102

2- जनरल ऑव फिलॉसफी, सप्तम् ॥ 1910॥ पृष्ठ-478

जॉन डिवी ने अपने चिन्तन में समाज को मुख्य स्थान दिया है । सामाजिक वातावरण में ही मनुष्य अपनी समस्याओं का समाधान करता है । जॉन डिवी के अनुसार दर्शन वही कहा जा सकता है जो जीवन की समस्याओं का समाधान करने के साथ-साथ उसका पुनर्निर्माण भी करे । जॉन डिवी मन की क्रियाओं को विकास का परिणाम मानते हैं । सामाजिक मन महत्वपूर्ण है । ज्ञान एवं विचार की उत्पत्ति इसी मन से होती है । मनुष्य विचार व ज्ञान की प्राप्ति अपने वातावरण के साथ अनुकूलन तथा नियंत्रण की प्रक्रिया से करता है ।

इससे सिद्ध होता है कि जॉन डिवी के अनुसार ज्ञान क्रिया से प्राप्त होता है, और क्रिया का स्थान अनुभव के बाद आता है । अतः अनुभव ज्ञान का स्रोत हुआ । जॉन डिवी के अनुसार अनुभव क्रिया-ज्ञान यह क्रम चलता है ।

व्यक्ति "स्व" को सामाजिक एवं प्राकृतिक वातावरण से अनुकूलन करने में चिन्तन प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप समर्थ होता है । उसका विकास इसी अनुकूलन पर आधारित है ।

<u>डार्विन के प्रभाव के किंचित निष्कर्ष</u> :-

कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष जिसके द्वारा हम जॉन डिवी के दर्शन को अच्छी तरह समझ सकते हैं वह निम्न हैं :-

1- डार्विन के सिद्धान्तों को जॉन डिवी ने अपने दर्शन में सीमित प्रयोग किया ।

2- उन्होंने इसका प्रयोग निषेधात्मक अभिप्राय हेतु ऐसे हथियार के रूप में किया है जो आध्यात्मिक दर्शन एवं ज्ञान दर्शन के व्यर्थ की कल्पनाओं का विरोध करता है ।

3- जॉन डिवी ने अपने सकारात्मक सिद्धान्तों के विकास के लिए इसे उचित तथा पर्याप्त नहीं समझा ।

4- अन्त में बाध्य होकर जॉन डिवी ने मौलिक रूप से ऐसे दृष्टिकोण को अपनाया जो डार्विन के कट्टर सिद्धान्तों के विरोध में था ।

विलियम जेम्स :-

जॉन डिवी पर सभी प्रभावों से सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रभाव विलियम जेम्स का था । "विलियम जेम्स" ने जॉन डिवी को दार्शनिक रूप के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक रूप में अधिक प्रभावित किया था । सन् 1890 में प्रकाशित उनकी पुस्तक "प्रिंसिपुलस् ऑव साइकोलॉजी" की यद्यपि कटु आलोचनायें हुयी, पुनश्च उसे एक महान कृति माना गया । मानव के बौद्धिक जीवन के इतिहास के रूप में यह पुस्तक अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी गयी । मानव व्यवहार के प्रति "जेम्स" का जीव विज्ञान सम्बन्धी दृष्टिकोण, प्राणी का अपने वातावरण के साथ अनुकूलन प्राप्त करने के तरीकों का सावधानी पूर्वक खोज, तथा अपनी आवश्यकताओं के अनुसार वातावरण को परिवर्तित कर लेने सम्बन्धी सभी विचारक जॉन डिवी के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण थे ।

अपनी पुस्तक में जेम्स ने इस विचार की आलोचना

की कि तीन अलग-अलग तत्व- "संवेदना", "कल्पना", और "विचार" मिलकर इस संसार के प्राणियों के ज्ञान व अनुभव को निर्मित करते हैं ।

इसके विपरीत इन्होंने मानव चेतना के क्रमिक रूप पर जोर दिया, इसे उन्होंने "चेतना की धारा" ॥ द स्ट्रीम ऑव कान्सेसनेस ॥ और अनुभवों का सम्बन्धित होना कहा ।

मस्तिष्क का गुण प्रक्रिया है न कि किसी तथ्य का विशेष कथन करना । इस बिन्दु तक जेम्स, हीगेल तथा डार्विन के विचारों का ही समर्थन करते हैं, किन्तु उनका क्षेत्र भिन्न है क्योंकि जेम्स एक प्रशिक्षित शरीर वैज्ञानिक थे । इसलिए उनके लिए यह स्वाभाविक था कि वे दूसरे के कार्यों को एक दूसरे से सम्बन्धित करके समझें । इस प्रकार उन्होंने मन के जैवकीय विचारों को नूतन अर्थ व शक्ति प्रदान की । जेम्स ने इस विचार को विकास वादी सिद्धान्त से जोड़ा । और यह सुझाव रखा कि मन एक यन्त्र है जो प्राणी को वातावरण से अनुकूलन कराने का कार्य करता है ।

> " बौद्धिक तथ्यों का उचित अध्ययन भौतिक पर्यावरण से अलग करके नहीं किया जा सकता है । जिस वातावरण को वे जानते व पहचानते है --- मन व संसार ---- दोनों एक दूसरे में निहित होकर साथ-साथ विकसित होते हैं। और इसके परिणाम स्वरूप एक दूसरे से पारस्परिक सम्बन्ध रखते हैं । "[1]

1- टेक्सट बुक ऑव साइकॉलाजी" ॥मैक मिलन,1892॥ पृष्ठ-3,4

इस विश्वास के सम्बन्ध में उन्होंने आगे कहा :-

" बौद्धिक जीवन मुख्य रूप से "विद्या सम्बन्धी हैं । अर्थात हमारे अनुभव करने और चिन्तन के विभिन्न तरीके इस प्रकार से विकसित हुये हैं कि वे बाहरी दुनिया के प्रति हमारी प्रतिक्रियाओं को मूर्तरूप देने में उपयोगी हैं ।"[1]

इस दृष्टि कोण से बुद्धि को एक प्रकार का व्यवहार प्राणी व वातावरण के मध्य प्रभाव डालने वाली विधि कहा जा सकता है । इसी बात को उन्होंने इस प्रकार से अभिव्यक्त किया है :-

" इस प्रकार भावी उद्देश्यों के लिए और उनको प्राप्त करने के लिए साधनों के चुनाव का अनुसरण ही एक घटना मे बौद्धिकता की उपस्थिति का सिद्धान्त व प्रतीक है ।"[2]

यदि हम यह कहें कि जॉन डिवी के विचार समस्त क्षेत्रों में जैसे तर्कशास्त्र, नीति शास्त्र, कला, शिक्षा शास्त्र तथा अन्य क्षेत्रों में बुद्धि के इस वर्णन के प्रभाव को समझने का प्रयास है तो कोई अत्युक्ति न होगी ।

1- टेक्सट बुक ऑव साइकॉलाजी । मैक मिलन। पृष्ठ-4 ।

2- पिंसिपुल्स ऑव साइकॉलजी" वैल्यूम प्रथम, पृष्ठ-8 ।मैक मिलन, 1890 ।

<u>विलियम जेम्स ने जॉन डिवी के समक्ष सार्वभौमिक संसार प्रस्तुत किया :-</u>

जेम्स से सम्पर्क होने के पश्चात डिवी के समक्ष अपने दार्शनिक कार्यों के लिए एक विस्तृत संसार प्राप्त हुआ । यदि मानव व्यवहार जैवकीय आधार पर समझाया जा सकता है और यदि मन एवं शरीर अलग-अलग नहीं है तो हीगेल का आदर्शवाद अथवा उस उद्देश्य हेतु अन्य किसी भी प्रकार का आदर्शवाद, बौद्धिक रूप से आवश्यक नहीं है । विचार एवं ज्ञान केवल साधन हैं जिनका विकास जीवित प्राणी द्वारा इस संसार में अपना रास्ता बनाने व प्रशस्त करने के लिए किया गया है । अतः "प्रिंसिपुल ऑव साइकालाजी" के विचारों ने जॉन डिवी के प्रारम्भकेहीगेल के आदर्शवाद के प्रति भक्ति के विरुद्ध प्रतिक्रियात्मक रूप प्रदान किया । जेम्स के जैवकीय प्रभाव व उनका इस बात पर बल देना कि मनुष्य पूर्ण रूपेण प्रक्रिया का एक भाग है उनके विचार का एक दृष्टि कोण था । जिसने जॉन डिवी को सबसे अधिक प्रभावित किया । जॉन डिवी ने कहा है कि:-

> "कार्य के रूप में जीवन को सोचना ही विलियम जेम्स के लिए सुरक्षित था।"[1] संक्षेप में ये ही वे प्रभाव थे, जिसने जॉन डिवी के विचारों को मूर्त रूप प्रदान किया ।

1- जॉन डिवी : इट वाज रिजर्व्ड फार विलियम जेम्स टू थिंक ऑव लाइफ इन टर्म ऑव एक्शन ।"

उनके सामाजिक, राजनैतिक दर्शन को प्रभावित करने वाले ये ही मात्र "स्रोत"[1] नहीं थे, बल्कि अन्य स्रोतों से भी वे प्रभावित रहे हैं। पुनश्च यह कहा जा सकता है कि इन तीन व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करते हुये जॉन डिवी अपने साधनवाद ‡इन्स्ट्रूमेण्टेलिज़्म‡ की ओर अग्रसर हुए।

जॉन डिवी का साधनवाद ‡डिवीज इन्स्ट्रूमेण्टेलिज़्म‡ :-

जॉन डिवी ने अपने "प्रयोजनवाद" को "साधनवाद" या "प्रयोगवाद" नाम दिया और इसके आधार भूत उद्देश्य एवं विधियों का इन शब्दों में वर्णन किया :-

> "साधनवाद, विचारों के यथार्थ तर्कशास्त्र सम्बन्धी सिद्धान्त के निर्माण करने का, निर्णय का, उनके विभिन्न रूपों में अनुमान लगाने का, प्राथमिक रूप से चिन्तन द्वारा भावी परिणामों के प्रयोगिक निश्चय में विचार किस प्रकार कार्य करते हैं, का एक प्रयत्न है।"[2]

1- मैक्विस्के, एन0जी0 : "पब्लिक स्कूल एण्ड मॉरल एजूकेशन" पृष्ठ- 201-2 ‡कोलम्बिया यूनीवर्सिटी प्रेस, 1958‡

2- स्टडीज इन द हिस्ट्री ऑव आइडियाज" वैल्यूम द्वितीय, पृष्ठ-353-71, रीप्रिन्टेड इन डी0एस0 रॉबिन्सन एन्थोलॉजी ऑव रीसेन्ट फिलॉसफी" पृष्ठ-431-445, एण्ड डी0डी0रूनेस, "ट्वन्टियथ सेन्चुरी फिलॉसफी पृष्ठ- 451-468 ।

परिणामों का प्रकरण :-

प्रयोजनवाद के साधनवाद की मुख्य विशेषता परिणामों का प्रकरण है :-

> " प्रयोजनवाद पद का तात्पर्य सिर्फ सभी विचारों के प्रमाणों के नियम तथा सभी प्रतिबिम्बित विचारों के अन्तिम अर्थ व परीक्षण के परिणामों से है ।"[1]

अतः निर्णय का तात्पर्य भविष्य में घटित होने वाले परिणामों में ही है । जॉन डिवी ने अपने "साधनवादी सिद्धान्त को अपने प्रारम्भिक तार्किक निबन्धों में अभिव्यक्त किया है, तथा उसके भावी सिद्धान्त को सन् 1929 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "द क्वेस्ट फार सर्टेन्टी" में प्रकट किया है, तथा उसका क्रमबद्ध रूप "लॉजिक" जो सन् 1938 में प्रकाशित पुस्तक "द थ्यौरी ऑव इन्क्वायरी" में दर्शाया गया है ।

फ्रैंक थिली ने इस प्रकार कहा है :-

> "डिवी का साधनवाद" प्राचीन दार्शनिक विचारों के तीव्र संशोधन के लिए दबाव डालने में जेम्स के प्रयोग वाद की अपेक्षा कम क्रान्तिकारी व मौलिक नहीं है। डिवी पारम्परिक अध्यात्म विद्या और इपीस्टीमालोजी की विधियों एवं निष्कर्षों का विरोध करने में थकते नहीं हैं । आत्म तत्व रूपी ज्ञान को

1- जॉन डिवी : एसेज इन एक्सपेरीमेन्टल लॉजिक पृष्ठ-330

> वे प्रकृति की प्रक्रिया से परे एवं यथार्थता से पीछे है ऐसा समझते हैं और अनुमान तथा ज्ञान की सामान्य विधियों को तार्किक रूपों के जरिए इन यथार्थताओं की खोज जारी किये रहते हैं ।.[1]

सत्यता ।रियाल्टी। निश्चित पद्धति नहीं है :-

सत्यता की कोई निश्चित विधि नहीं है, विकास वादियों की भाँति प्रयोजनवादी के लिए सत्य एक पूर्ण व निश्चित पद्धति नहीं है । सत्य स्थाई नहीं है और न ही वह एक पद्धति है, बल्कि परिवर्तनशील व विकासशील है । दर्शन को पूर्ण सत्य की उत्पत्ति को खोजने का प्रयास त्याग देना चाहिये ताकि वह विशेष मूल्यों व उन परिस्थितियों की, जो उन मूल्यों को उत्पन्न करती है, खोजकर सके । ज्ञान का उद्देश्य पूर्ण लक्ष्य एक निश्चित परिवर्तन है जो खोज की वस्तु को उत्पन्न करता है और साथ ही उसके परिणामों का अध्ययन करता है ।

प्रयोजनवाद दर्शन में सांसारिक मनोवृत्ति को स्थापित करता है जो अनुभव वादी मनोवृत्ति कहलाता हैं । प्रयोजनवाद का मूल सिद्धान्त है कि अनुभव ही सब वस्तुओं की वास्तविक कसौटी है । इस कसौटी पर परीक्षणोपरान्त जो अपने को सर्व उत्तम सिद्ध कर सके उसे ही सत्य कहा जायेगा । इस दृष्टि से प्रयोजन वाद पूर्व निश्चित सिद्धान्तों में विश्वास नहीं करता । सत्य गतिशील व परिवर्तनशील है

1- फ्रैंक थिली : अ हिस्ट्री ऑव फिलॉसफी" पृष्ठ-648 ।सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1965 ।

न कि चिरन्तन । सत्य अमूर्त, अव्यवहार्य व शाब्दिक नहीं है । प्रयोजनवादी का झुकाव, ठोसपन, पर्याप्तता, तथ्य, क्रिया एवं शक्ति की ओर है । प्रयोजनवाद की मुख्य विशेषता सत्य की परिवर्तनशीलता, मूल्यों एवं आदर्शों की उपयोगिता, परीक्षण तथा परीक्षण के लिए सामाजिक जीवन का उपयोग है ।

जेम्स ने इस प्रकार व्यक्त किया है :-

" वह [प्रयोजनवादी] अव्यवहारिकता और अमूर्तता से तथा मौखिक या शाब्दिक समाधान से अलग रहता है । वह ठोसपन और पर्याप्तता, तथ्यों क्रियाओं और शक्ति की ओर झुक जाता है ।"[1]

अनुभव अनेक व परिवर्तनशील हैं । अत: शाश्वत, अन्तिम व वैध विचार प्रणाली ऐसी नहीं हो सकती जिसमें हम मूल्य को स्थिर मान सकें । विचारों व मूल्यों का निर्माण प्राणी सामाजिक परिस्थिति के अनुसार स्वयं निर्मित करता है। अत: दैवी सत्य अस्तित्व में है ही नहीं । प्रयोजनवाद ने आत्मा को भी क्रियाशील माना है । आत्मा व्यवहार का प्रतीक है तो सामाजिक स्थितियों के प्रतिफल के रूप में प्रकट होता है । इसका स्थायित्व सामाजिक परिस्थिति पर आधारित है । मन भी प्रयोजन वादियों के अनुसार सामाजिक व व्यवहारिक है । इनके अनुसार मन न तो पदार्थ है न विचार

1- जेम्स : प्रैग्मेटिज्म" [लान्ग मैन्स ग्रीन, 1907]

मात्र, वरन् मन भी आत्मा की भाँति क्रिया रूप है । मन का गुण परिवर्तनशीलता है क्योंकि यह भी सामाजिक आधार पर निर्भर है ।

विकासवादी दार्शनिक के लिए महत्त्वपूर्ण रूचिकर प्रश्न व्यवहारिक, सजीव, नैतिक और सामाजिक प्रश्न है ।

फ्रैन्क थिली ने लिखा है :-

> "विशिष्ट परिवर्तन का कैसे समर्थन करते हैं या ठोस उद्देश्यों को कैसे नष्ट करते हैं, वस्तुयें किसी विशेष बुद्धि को अब भी कैसे बना रही है । प्रसन्नता और प्रत्यक्ष न्याय बुद्धि को कैसे अनुभव किया जाय कि जिससे वर्तमान काल की दशा में बौद्धिक प्रशासन उत्पन्न कर सके और वर्तमान लापरवाही अथवा अज्ञानता को नष्ट या कम कर सके । विश्व को विस्तार से अनुभव करने के लिए और सप्रमाण सिद्ध करने के लिए जिम्मेदारी के बोझ को अति श्रेष्ठ के कन्धों से हटाकर मानव की बुद्धि पर आश्रय प्रदान किया जाना चाहिये ।"[1]

हम विश्व को अपने लक्ष्य के अनुसार निर्मित करते हैं :-

संसार निर्माणाधीन-प्रक्रिया में है । यह सदैव निर्मित होता रहेगा । हम इसे अपने उद्देश्य के अनुसार रूप प्रदान करते हैं, और इस प्रक्रिया में चेतन व्यक्ति के विचार

1- फ्रैन्कथिली : " अ हिस्ट्री ऑव फिलॉसफी" पृष्ठ-648 (सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1965)

व विश्वास एक क्रियाशील भूमिका अदा करते हैं । जॉन डिवी के लिए महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि "जानना एक मात्र वास्तविक अनुभव की विधि नहीं है । सभी वस्तुओं की स्थिति हम जैसा उनका अनुभव करते हैं वैसी ही है । इस प्रकार हमारा प्रत्येक अनुभव कोई न कोई वस्तु होती है । जानी हुई वस्तुओं का ही हम अनुभव करते हैं । उनका अनुभव हम सौन्दर्यात्मक, नैतिक, आर्थिक एवं तकनीकी दृष्टि से भी करते हैं । अतः किसी वस्तु का सही वर्णन करना यह प्रकट करना है कि किसी विशेष वस्तु का हमनें क्या अनुभव किया है । तात्कालिक अनुभव की यही आधार भूत मान्यता है । यदि हम किसी दार्शनिक शब्दावली व्यक्ति निष्ठ, वस्तु निष्ठ, शारीरिक, मानसिक, विश्व पदार्थ, कारण, द्रव्य, उद्देश्य, क्रियाशीलता बुराई, प्राणी, मात्रा आदि के अर्थ को खोजना चाहे तो हमें इनका अनुभव करना चाहिये और अनुभव में वे क्या होते हैं, यह भी जानना चाहिये । मनुष्य जो कुछ, जहाँ कहीं और जब कभी अनुभव करता है, उन्हीं के आधार पर सत्य, मूल्य, विश्वास एवं विचार बनते हैं । अतः ये सभी परिवर्तनशील हैं ।

अनुभव के केन्द्रिय प्रत्यय :-

यदि हम जॉन डिवी के साधनवाद के आन्तरिक परिसीमा में प्रवेश करना चाहते हैं तो हमें अनुभव के प्रत्यय को समझना होगा ।

अनुभव क्रमिक है, भूत से वर्तमान में होता हुआ भविष्य की ओर संचरण करता है । अनुभव की प्रक्रिया स्थायी नहीं है बल्कि गतिशील व संचरणशील है । जॉन डिवी के अनुसार अनुभव एकांगी नहीं है वरन् व्यावहारिक व सार्वजनिक है ।

"अनुभव की प्रकृति को समझने के लिए हमें यह ध्यान में रखना होगा कि क्रियात्मक एवं अक्रियात्मक दोनों तत्व विशेष रूप से अनुभव में समाहित हैं । क्रियाशील तत्व के रूप में अनुभव एक प्रयत्न है जिसका अर्थ प्रयोग करने पर स्पष्ट हो जाता है । अक्रियाशील तत्व के रूप में अनुभव "सहना" या जैसा है वैसा मान लेना है । जब हम किसी वस्तु का अनुभव करते हैं तो हम कोई न कोई क्रिया करते हैं । इसके साथ हमारा व्यावहार होता है तब हम या तो परिणामों को सहन करते हैं या कष्ट उठाते हैं, हम उस वस्तु के साथ कार्य करते है वह भी हमें बदले मे कुछ प्रदान करता है ।"[1]

जॉन डिवी ने अन्यत्र भी लिखा है :-

> "प्राणी और वस्तु के मध्य व्यवहार व क्रिया के कारण ही अनुभव होता है प्राणी का वातावरण ही अनुभव को निर्मित करता है ।"[2]

1- जॉन डिवी: " डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-163 (द मैक मिलन कम्पनी, न्यूयार्क, 1916)

2- जॉन डिवी: "इक्सपीरियन्स एण्ड एजूकेशन पृष्ठ-43 (मैक मिलन, लन्दन, 1938)

अत: यह कहा जा सकता है कि विचार अनुभव का विरोधी नहीं है बल्कि उसका एक भाग है "विचार व्यक्ति व उसके वातावरण का एक दूसरे पर प्रभाव की उपज है तथा उसी काल में वह वातावरण को परिवर्तित करने का एक साधन है। "ज्ञान" कोई अलग व स्वयं में पूर्ण वस्तु नहीं है। वह उसी प्रक्रिया में निहित है जिससे जीवन कायम है और विकसित होता है।"[1]

बुद्धि के कार्य :-

अनुभव के प्रक्रियात्मक व व्यावहारिक प्रत्यय के अन्तर्गत ही साधनवाद मन व बुद्धि के कार्यों का वर्णन करता है। वास्तव में वातावरण प्राणी के विकास व बुद्धि में यथार्थ रूप से अनुकूल नहीं होता है। वह कठिन, समस्या मूलक एवं संदिग्ध होता है। इसलिए जीवन सरलता से व्यतीत नहीं होता है। रूकावटें व बाधायें उत्पन्न होकर प्राणी के अग्रिम विकास को पीछे ढकेल देती हैं। ऐसी बाधाओं को दूर करने के लिए प्राणी को प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया द्वारा शारीरिक प्रयास करना पड़ता है। जब प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया बाधाओं को दूर करने में असफल हो जाती है, प्राय: ऐसा होता है, तब अप्रत्यक्ष प्रतिक्रिया करने की आवश्यकता प्रतीत होती है।

1- जॉन डिवी : रीकन्स्ट्रक्शन इन फिलॉसफी" पृष्ठ-87 (हेनरी हॉल्ट एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, 1920)

एफ०डब्ल्यू गारफोर्थ के अनुसार :-

"संघर्ष के बाद भी अनुभवकर्ता प्राणी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वातावरण से समायोजन करते समय बुद्धि का ही प्रयोग करता है ।"[1]

बुद्धि के कार्यों के सम्बन्ध में हमें यह ध्यान देना चाहिये "तुच्छ प्राणी द्वारा वातावरण से किया गया अनुकूलन -- भिन्न होता है , क्योंकि मनुष्य को हेतु विद्या सम्बन्धी ज्ञान के लिए समायानुकूल विचार करना पड़ता है । विचार वातावरण के प्रति एक अप्रत्यक्ष प्रतिक्रिया है, और परोक्ष उपाय का तत्व स्वयं महान व जटिल हो जाता है । इसका उद्गम जैवकीय अनुकूलित व्यवहार है तथा इसके ज्ञान सम्बन्धी दृष्टिकोण का अन्तिम कार्य वातावरण की परिस्थितियों का एक दूरदर्शी नियन्त्रण है, बुद्धि का कार्य वातावरण की वस्तुओं की नकल करना नहीं है बल्कि भविष्य में इन वस्तुओं से हमारा सर्वाधिक लाभकारी एवं प्रभावशाली सम्बन्ध स्थापित होना है।"[2]

1- एफ०डब्ल्यू गारफोर्थ : डिवीज एजूकेशनल राइटिंग्स" पृष्ठ-19-20 (हीनेमन, लन्दन, 1966)

2- जॉन डिवी: द डवलपमेन्ट ऑफ अमेरिकन प्रैग्मेटिज्म", फिलॉसफी एण्ड सिवलाइजेशन" पृष्ठ-30 (कोलम्बिया यूनीवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1925)

इस प्रकार बुद्धि आवश्यक रूप से दूरदर्शिता के गुणों से युक्त है । यह भूतकाल के अनुभवों का सर्वेक्षण और समकालीन परिस्थितियों से सम्बन्ध रखते हुए भविष्य की योजना को बनाना चाहती है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनुभव की धार को तीव्र करती है । इसी भाव को जॉन डिवी ने निम्न प्रकार लिखा :-

> " संक्षेप में ज्ञान का कार्य एक अनुभव को स्वतंत्रतापूर्वक दूसरे अनुभवों के लिए प्राप्य बनाना है । "स्वतंत्रतापूर्वक" शब्द ज्ञान तथा आदत के सिद्धान्तों का अन्तर स्पष्ट करता है, आदत का अर्थ है कि व्यक्ति में अनुभव द्वारा परिष्कार हो जाता है, जिस परिष्कार से ऐसे पूर्व संस्कार का निर्माण होता है, जो भविष्य में उसी दिशा के कार्यों को अधिक सरल तथा प्रभाव पूर्ण बना देता है । --- किन्तु ज्ञान से अलग आदत में परिस्थितियों के परिवर्तन तथा नवीनता के लिए कोई स्थान नहीं है ।" [1]

<u>जॉन डिवी के दर्शन का विकल्प नाम-प्रयोगवाद [एक्सपेरीमेन्टलिज्म]</u>

विचार मात्र सैद्धान्तिक नहीं है बल्कि क्रियात्मक है । रूकावटों को दूर करने के लिए पहल करने हेतु विचार एक कार्य है । उपकल्पना रूप में यह कहा जा सकता है कि विचार कार्य

1- डिवी / "शिक्षा दर्शन की भूमिका" पृष्ठ-49। [कोलम्बिया विश्व विद्यालय, न्यूयार्क, 1915] हिन्दी संस्करण, लीडर प्रेस, इलाहाबाद ।

में ही परीक्षित किये जा सकते हैं। यदि कार्य द्वारा परीक्षण होने पर उनके परिणाम सफल हुये तो यह अनुभव एक स्तर और आगे बढ़ जाता है। इन कल्पनाओं को कार्य में ही प्रयोग करने पर बल दिया गया है। इसलिए इसके वैकल्पिक नाम "प्रयोगवाद" का सुझाव दिया जाता है। जॉन डिवी ने अपने दर्शन में भी इस नाम का प्रयोग किया था।

1- रैन्डल का मत है :-

> "प्रारम्भिक रूप से डिवी का प्रयोगवाद प्रयोगशाला विधि पर आधारित नहीं है। यह तुरन्त व्यवहारिक सामान्य अनुभव का प्रयोगवाद है और सामाजिक विज्ञानों के प्रत्ययों और आलोचनात्मक प्रविधियों से सबसे उत्तम स्वज्ञान की प्राप्ति है। वृहद अर्थ में यह कहा जा सकता है कि यह मानव शरीर रचना शास्त्री का, संस्कृति और मानव संस्थाओं के अध्येता विद्यार्थियों का प्रयोगवाद है। आदतों की मौलिक भूमिका द्वारा और उन तरीकों से जिसमें वे आदतें परिवर्तित हो जाती है, मानव व समाज दोनों प्रभावित होते हैं।"[1]

अनुभव एक सतत पुनर्निर्माण की प्रक्रिया है। वर्तमान काल की समस्याओं को हल करने के लिए हम भूतकाल के अनुभवों

1- जॉन हरमन रैन्डल जूनियर /"डिवीज इन्टर प्रेटेशन ऑव द हिस्ट्री ऑव फिलॉसफी, ॥संदर्भ : द फिलॉसफी ऑव जॉन डिवी, एडिटेड पॉल आर्थर शिल्प॥ पृष्ठ-82 वैल्यूम संख्या प्रथम, ॥नार्थ वेस्टर्न यूनीवर्सिटी, इवान्स्टन एण्ड शिकागो 1939॥

पर निर्भर करते हैं । इससे हम एक नवीन विधि का निर्माण करते हैं । जो हमारे भविष्य के अनुभव के लिए आधार बन जाता है । यही पुनर्निर्माण जब एक चयनित नियन्त्रित वातावरण में कार्य करता है, उसी को जॉन डिवी ने शिक्षा कहा है । जॉन डिवी शिक्षा को पुनर्निर्माण की प्रक्रिया मानते हैं ।

बुद्धि की दूरदर्शिता और इसकी उप कल्पनाओं की जाँच से प्राप्त महत्वपूर्ण परिणाम जॉन डिवी के साधनवाद को प्रयोजनवाद की सामान्य कोटि में ला देता है । परन्तु "पियर्स" व जेम्स के विशेष प्रभाव पर बल देने की अपेक्षा उससे भिन्न है । जॉन डिवी की "प्रयोजनवाद" की परिभाषा से यह तथ्य स्वयं स्पष्ट हो जाता है ।

"(प्रयोजनवादी) सिद्धान्त वह है जो यह व्यक्त करता है कि सत्यता व्यवहारिक विशेषता धारण करती है और इस विशेषता को बुद्धि के कार्य में सर्वाधिक इष्ट फल प्रद ढंग से व्यक्त किया गया है ।"[1]

प्रयोगात्मक अनुभव ही सत्य है इस सम्बन्ध में जॉन डिवी ने लिखा है :-

" हम क्रियात्मक प्रयोग द्वारा यह पता लगाकर ही, कि अमुक वस्तु क्या करेगी तथा उसके साथ क्या किया जा सकता है और क्या नहीं किया जा सकता, यह जान सकते हैं कि वह कठोर है अथवा कोमल । --- हमारे कार्यों के परिष्कार में कौन-कौन सी वस्तुएं कार्य

1- जॉन डिवी : फिलॉसफी एण्ड सिविलीजेशन" पृष्ठ-39-40 (मिन्टन बाल्च, 1931, पेपर बैंक एडिशन, कैपरीकॉर्न बुक्स, 1963)

करती है, जो कुछ क्रियाओं को आगे बढ़ाती है तथा अन्य को रोकती है तथा नियन्त्रित करती है तथा नवीन परिवर्तनों के उत्पन्न करने में,हम उनके साथ क्या कर सकते हैं, इसी के योग से अनुभव का निर्माण होता है ।--- प्रयोगात्मक विधि के प्रयोग से यह स्पष्ट हुआ कि नियन्त्रित परिस्थितियों में की गयी ऐसी क्रियायें ही, ऐसी विधियाँ है जिनके द्वारा प्रकृति के बारे में सफल भावों की प्राप्ति तथा उनका परीक्षण किया जा सकता है ।"[1]

साधनवाद के दार्शनिक उलझाव :-

एक शब्द में यह कहा जा सकता है कि साधनवाद के उलझाव दूरगामी होते हैं । यह उन लोगों के लिए भी परेशानी उत्पन्न करने का कारण है जो "प्लेटो" और अरस्तू की परम्पराओं को मानने वाले हैं, क्योंकि मन एवं बुद्धि की जड़े विकासवादी प्रक्रिया में निहित हैं और उनकी उत्पत्ति समस्याओं को हल करने के लिये होती है, इसी लिये वे अनुभव के एक अंग हैं, जो अनुभव को विस्तृत एवं परिष्कृत करते हैं । यह कहा जा सकता है कि साधनवाद दर्शन में जैसे मन सबसे तीव्र बौद्धिक व विवेकपरक प्रक्रिया है और उसकी उत्पत्ति व कार्य भी समान है का अनुसरण करता है । इसकी उत्पत्ति

1- जॉन डिवी : शिक्षा दर्शन की भूमिका" पेज, 398 - 99 हिन्दी संस्करण, लीडर प्रेस, इलाहाबाद ।

मानव के सामाजिक उद्देश्यों व आकांक्षाओं के टकराव से और उत्तराधिकार से प्राप्त ज्ञान संस्थाओं का समकालीन प्रवृत्ति के मध्य संघर्ष से होती है । दर्शन केवल एक शुष्क एकाधिकार रूपी पूर्ण व अन्तिम सत्य के व्यवहार से सम्बन्धित नहीं है, परन्तु इसका सम्बन्ध "प्रबोध देने वाली उन शक्तियों से है जो मानव को गतिशील बनाती हैं और मानव की आंकाक्षाओं की पूर्ति में सहयोग देती हैं ताकि वे अनुदेशित और बौद्धिक प्रसन्नता को प्राप्त कर सके ।"[1]

दर्शन की प्राचीन उच्च कोटि की साहित्यिक परम्परायें :-

दर्शन की प्राचीन उच्च कोटि की साहित्यिक परम्परा में आदर्श संसार की कल्पना वास्तव में एक स्वर्ग है जहाँ प्राणी को जीवन के संघर्षों व तूफानों का सामना नहीं करना पड़ता है बल्कि आराम मिलता है, परन्तु साधनवादी के लिए "वह काल्पनिक सम्भावनाओं का एक समूह है जो प्राणी को नये प्रयास और अनुभवों के लिए प्रेरित करता है ।"[2]

अतः दर्शन का मुख्य उद्देश्य "अनुभव की सम्भावनाओं को ज्ञानपरक आधार प्रदान करना है, विशेषकर आधार प्रदान करना है, विशेषकर सामूहिक मानव अनुभवों को ।"[3] अत: दर्शन

1- जॉन डिवी : रीकन्स्ट्रक्शन इन फिलॉसफी" पृष्ठ-25-27 (हेनरी हॉल्ट, 1920)

2- जॉन डिवी "रीकन्स्ट्रक्शन ऑफ फिलॉसफी" पृष्ठ-118 (हेनरी हॉल्ट, 1920)

3- - तदैव - पृष्ठ-122 ।

अपने उद्देश्य में व्यवहारिक है न कि सैद्धान्तिक ।

साधनवाद में द्वैतवाद लुप्त हो जाता है :-

इसके अतिरिक्त साधनवाद में द्वैतवाद जिसने पारम्परिक दर्शन को प्रभावित कर रखा था, लुप्त हो जाता है । मन का शरीर से विरोध नहीं है, वरन् कार्य प्रविधि में एक साथ दोनों जुड़े हुये हैं और इस प्रकार एक दूसरे से अभिन्न हैं । प्रयोगकर्ता व प्रयोज्य वस्तु एक दूसरे में इस प्रकार समाहित होकर कार्य सम्पादित करते हैं जिससे अनुभव प्राप्त होता है । दर्शन में "आदर्श" ।आइडियल। व सत्य ।रियल। दोनों समरूप व एक रूप माने जाते हैं जो भविष्य की उपकल्पनाओं में प्रकट होती है और उसकी जाँच कार्य में ही होती है । इसका प्रभाव तर्कशास्त्र पर भी पड़ता है । विषय वस्तु की सच्चाई को अलग करके यह केवल तर्क के शुद्ध औपचारिक नियमों तक ही सीमित नहीं है ।

द्वैतभाव, पूर्व सिद्धान्तों में मौलिक विभाजन अथवा प्रविधिक शब्दों में निहित है जैसे धनी-निर्धन, स्त्री-पुरूष, ऊँच-नीचआदि । ये विभाजन निश्चित रूकावटों के कारण ही उत्पन्न होते हैं । अत: इन रूकावटों के कारण स्वतंन्त्र व सरल सम्पर्क का अभाव हो जाता है । द्वैत में प्रयोगात्मक तथा उच्च विवेकात्मक ज्ञान में विरोध होता है । प्रयोगात्मक का सम्बन्ध प्रतिदिन के व्यवहार से है तथा विवेक पूर्ण ज्ञान का सम्बन्ध उससे है जो बुद्धि को उच्चता प्रदान करता है । जॉन डिवी ने

लिखा है :-

"सर्व प्रथम प्रयोगात्मक तथा उच्च विवेकात्मक ज्ञान का विरोध आता है । प्रथम का सम्बन्ध प्रतिदिन के व्यवहार से है । यह उन साधारण व्यक्तियों के प्रयोजनों की पूर्ति करता है जिनको कोई विशिष्ट बौद्धिक कार्य नहीं करना होता तथा उनकी आवश्यकताओं को, तात्कालिक वातावरण के साथ कुछ काम करने वाले सम्बन्धों में लाता है --- - विवेकपूर्ण ज्ञान को कुछ ऐसा समझा जाता है, जो सत्य को इसके चरम स्वरूप में बौद्धिक रूप से स्पर्श करता है । ----- सभी व्यवहारिक प्रयोजनों के लिए ये दो स्वतन्त्र सार व्यक्त करते हैं ।"[1]

दूसरा द्वैत रूप ज्ञान प्राप्ति के सम्बन्ध में है । ज्ञान हमें पुस्तकों या विद्वान व्यक्तियों के सम्पर्क से मिलता है अथवा स्वयं व्यक्ति अध्ययन करके प्राप्त करता है । जॉन डिवी ने लिखा है :-

" एक ओर तो ज्ञान प्राप्ति पुस्तकों तथा ज्ञानवान व्यक्तियों से दिये गये, ज्ञात तथ्यों का योग है। -- सत्य पूर्व निश्चित रूप में कहीं स्थित होता है, -- दूसरी ओर ज्ञान प्राप्ति का अर्थ वह है, जो कुछ व्यक्ति अध्ययन करके करता है । यह स्वकीय रूप से परिचालित क्रियाशील विषय है । ---- यहाँ द्वैत ---- वस्तु निष्ठ ज्ञान तथा ---- व्यक्तिनिष्ठ तथा आत्मिक रूप की ज्ञान प्राप्ति में है ।"[2]

1- डिवी- "शिक्षा दर्शन की भूमिका" पृष्ठ-484, हिन्दी संस्करण, लीडर प्रेस, इलाहाबाद ।

2- - तदैव - पृष्ठ- 484- 85

द्वैत हमें ज्ञान प्राप्ति हेतु क्रिया व निष्क्रियता में दिखाई देता है। बुद्धि व संवेगों में द्वैत स्थिर है। जॉन डिवी ने लिखा है :-

"बुद्धि शुद्ध प्रकाश है, संवेग अव्यवस्थित कर देने वाला ताप। मन सत्य को ग्रहण करने के लिए बहिर्गत होता है, संवेग वैयक्तिक लाभ तथा हानि पर विचार करने के लिए अन्तर्मुखी होता है।"[1]

मन व शरीर में विरोध नहीं है। ऐसा पूर्व में कहा गया है। साधनवाद ने समस्त द्वैत को समाप्त कर दिया जॉन डिवी ने लिखा है :-

"उन सभी (द्वैतरूपी) प्रतिवादों का अन्त ज्ञान तथा क्रिया, सिद्धान्त और मन तथा कार्य के साधन तथा आत्मा के रूप में मन और इसके साधन तथा अंग के रूप में शरीर के एक मात्र प्रतिवाद में होता है ------ हम केवल उन शक्तियों का सारांश देकर संतोष धारण कर लेगें, जो इस धारणा की निर्मूलता व्यक्त करती हैं ---- किन्तु वास्तव में स्नायु व्यवस्था केवल सभी शारीरिक क्रियाओं को एक साथ कार्य करती हुई कायम रखने के लिए एक विशिष्ट यांत्रिक संघटन है ---- इसलिए ज्ञानके ऐसे सिद्धान्त का विकास होना चाहिये, जो ज्ञान में वह विधि देखता है, जिसके द्वारा एक अनुभव, दूसरे को निर्देश तथा अर्थ प्रदान करने के लिए आवश्यक बौद्धिक साधन प्रदान करते हैं।"[2]

1- डिवी: "शिक्षा दर्शन की भूमिका" 485, हिन्दी संस्करण लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

2- -तदैव - पृष्ठ- 486- 497

<u>मूल्य परिवर्तनशील है :-</u>

जहाँ तक मूल्यों का सम्बन्ध है वह आध्यात्मिक रूपों (प्लाटोनिक फार्म) की तरह स्थायी व अपरिवर्तनशील नहीं है । वे परिवर्तित परिस्थितियों के साथ बदलते हैं । शाश्वत मूल्यों में प्रयोजनवाद का विश्वास नहीं है, समय परिवर्तनशील है, समाज परिवर्तनशील है, फिर शाश्वत मूल्यों का क्या कार्य, इसलिए समाज के लिए समय की माँग के अनुरूप उपयोगी मूल्यों का निर्धारण करना होगा । विज्ञान की भाँति नैतिकता का विषय भी विस्तृत रूप से कुछ काल के लिए ही मान्य है,लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पूर्णत: परिवर्तनशील है, कुछ मूल्य जिनको प्राचीन काल के लम्बे अनुभवों द्वारा परीक्षित किया गया है, वह अन्य मूल्यों की अपेक्षा दृढ़ता पूर्वक स्थापित हो चुका है परन्तु वे भी अल्पकालीन है और अन्वेषण के लिए है, अन्तिम नहीं हैं । किसी मूल्य की परीक्षा उसके परिणाम से होती है । किसी मूल्य का विकल्प उचित है यदि व्यवहार रूप में हमारी समस्या को छ हल कर देता है और इस प्रकार हमारे अनुभव को अग्रिम स्तर पर पुनर्निर्माण के लिए स्वतंत्र कर देता है । यही सिद्धान्त सत् पर भी लागू है । प्रयोग परिणामों पर आधारित है तथा जो परिकल्पना उस प्रायोगिक स्थिति में कार्य करती है वही सत्य है ।

<u>दर्शन को अपने विचार व प्रत्यय को बदलना चाहिये :-</u>

वैज्ञानिक जानकारी की कार्य प्रणाली व उसकी

प्रयोगात्मक विशेषता ही दर्शन के लिए उलझन की वस्तु है ।

इस सम्बन्ध में जॉसेफ रैटनर ने लिखा है :-

> "दर्शन को अपनी प्रकृति उस रूप से परिवर्तित नहीं करना चाहिये और न स्वयं प्रयोगिक व प्रयोजक होना चाहिये, जिस रूप में प्रयोगशाला । विज्ञान प्रयोगात्मक है, परन्तु दर्शन को अपना विचार व प्रत्यय अवश्य परिवर्तित करना चाहिये, यही एक उलझन की वस्तु है ।"[1]

इसी कारण "रिकन्स्ट्रक्शन ऑव फिलॉसफी" शीर्षक बिना तर्क-वितर्क के उस तथ्य की पुष्टि करती है ।

जॉन डिवी का विश्वास मानव क्रियाओं के लिए वैज्ञानिक विधि में था । समस्या या बाधा या रूकावट ही मानव को चिन्तनशील बनाती है । अतः मानव समस्या के हल के लिए क्रियाशील होता है । चिन्तन क्रियाशीलता का एक कार्य है । विचार की शुरूआत समस्या की उत्पत्ति व समाधान उसकी समाप्ति पर ही होती है । अतः मानव को कुछ प्रयोग व अनुभव करने पड़ते हैं । इस प्रायोगिक प्रक्रिया के पाँच तत्व जॉन डिवी ने बताये हैं :-

1- समस्या की अनुभूति ।

2- समस्या का विश्लेषण व उसके केन्द्र बिन्दु की खोज ।

3- समाधान ढूँढना व निश्चित हल के लिए प्रयोग करना ।

1- जॉसेफ रैटनर : डिवीज कन्सेप्शन ऑव फिलॉसफी", (संदर्भ : शिल्पस" द फिलॉसफी ऑव जॉन डिवी) वैल्यूम-1 पृष्ठ-64 ।

4- सभी समाधानों की जाँच व सर्वोपरि समाधान व प्रयोग करना ।

5- हल को निर्धारित करने के लिए पुनर्निमार्ण और प्रयोग करना जो भविष्य में काम आ सके ।

यही जाॅन डिवी की विचार प्रक्रिया की वैज्ञानिक विधि थी, जो वैज्ञानिक विधि से समानता रखते हुये भी अभौतिकीय पदार्थ की विषय वस्तु के कारण भिन्न है ।

जाॅन डिवी द्वारा दर्शन का पुनर्निर्माण :-

यही दर्शन है जिसका जाॅन डिवी पुनर्निर्माण कर रहे हैं । इस पुनर्निर्माण का प्रभाव संसार को परिवर्तित करना है या संसार के कुछ अंश या अंग को बदलना है । यह परिवर्तन मनुष्य के मन व विचारों द्वारा सम्भव है, परन्तु दर्शन जो कुछ अन्तिम परिवर्तन संसार में उत्पन्न करेगा, वह विचारों के परिवर्तन द्वारा ही सम्भव है । ये विचार या तो बनाये जायेगें या उनका पुनर्निर्माण किया जायेगा । जाॅन डिवी दर्शन में अनुभव के पुनर्निर्माण पर बल प्रदान करते हैं । उनके अनुसार मानव के अनुभव में क्षण-प्रतिक्षण परिवर्तन आते रहते हैं, नई समस्यायें उत्पन्न होती रहती हैं, हम उनका समाधान करने का प्रयत्न करते हैं । बहुत सी उपस्थित वैकल्पिक वस्तुओं में से किसी एक को जो उचित होती है, चुन लेते हैं, इस प्रकार हमारे विचारों में सदैव समस्या समाधान का दृष्टिकोण रहता है और हम पुनर्व्यवस्थापन हेतु तैयार हो जाते हैं । अनुभव को विकसित परिवर्तित

व संशोधित करना ही दर्शन का कार्य है । दर्शन शिक्षा को एक ऐसी प्रक्रिया मानता है जो सतत रूप से अनुभवों का नवनिर्माण तथा पुनर्संगठन करती है । यह पुनर्संगठन तथा नव निर्माण की प्रक्रिया सदैव चलती रहती है ।

मानव के समस्त क्रिया कलापों के खुले क्षेत्र में दर्शन प्रभावी है :-

डिवी का यह आधार भूत या मौलिक विचार है कि दर्शन मानव के समस्त कार्यों के बाहर या उससे ऊपर गुप्त व शान्ति रूप में अपना कोई स्थान नहीं बनाता है बल्कि प्राणी के समस्त क्रिया-कलापों के खुले क्षेत्र में कार्यरत हो प्रभाव डालता है । हम उसके क्षेत्र व कार्य में अन्तर कर सकते हैं किन्तु वह मानव कार्यों से भिन्न नहीं है ।

अगर हम दर्शन की पद्धति को यह समझते हैं कि कोई औपचारिक या सैद्धान्तिक पद्धति बनाना है तो जॉन डिवी की कोई ऐसी पद्धति नहीं थी । उनका ऐसी पद्धति के बनाने का कोई उद्देश्य भी नहीं था । यदि हम उनकी दार्शनिक क्रियाओं के क्षेत्र की रूपरेखा को देखना चाहे तो उनकी पुस्तक "स्टडीज इन लॉजिकल थ्योरी" में देख सकते हैं । यह पुस्तक दार्शनिक योजना की धूमिल रूप-रेखा की प्रकृति है । हम यह देख सकते हैं कि जॉन डिवी का सम्पूर्ण साहित्य उस योजना को नियमित रूप से पूरा करने, विस्तृत करने, पुनरीक्षित करने, गहराई में देखने व अनुभव करने के लिए है । इस प्रकार उनका समस्त साहित्य एक पद्धति को प्रकट करता है,

किन्तु यह पद्धति नवीन अर्थ में और एक नवीन विधि से बनाई गयी है । इसका निर्माण भूत व भविष्य को देखकर अनुभव के एक क्षेत्र का दूसरे क्षेत्र के प्रभाव को समझकर किया गया है और क्रम बद्धता के धागे से बुनकर यह पुनर्निर्माण की रचनात्मक प्रक्रिया बनाई गई है । प्रत्येक दर्शन के लिए जॉन डिवी ने कहा है :-

> "कुछ ग्राहय उद्देश्य व नीतियों की योजना के आधार पर दर्शन मनुष्य व प्रकृति के स्पष्ट उद्देश्यों की व्याख्या में यदि प्रभावी न हो तो भी प्रत्येक दर्शन कुछ न कुछ प्रभावी होता ही है । मानव चरित्र के प्राकृतिक निर्देशन के रूप में प्रत्येक दार्शनिक पद्धति कुछ निश्चित किस्म के मूल्यों की स्पष्ट स्वीकृति है । यही दर्शन की जातिगत परिभाषा कही जा सकती है । क्योंकि दर्शन मानव की समस्याओं व मूल्यों से सम्बन्धित है, न कि मानव के मात्र अस्तित्व से ।"[1]

इस व्याख्या के अनुसार यह कहना कठिन न होगा कि "पुनर्निर्माण" जॉन डिवी के लिए एक प्रिय शब्द है । विचारों का जीवन अपनी अधिक ऊँचाइयों पर नम्रतापूर्वक उस पदार्थ का पुनर्निर्माण है जो उसे उस काल में प्राप्त होता है ।"[2]

जॉन डिवी मूर्ति भंजक नहीं हैं :-

ऐसे बहुत से आलोचक हैं जो यह समझते हैं कि डिवी

1- "इन्साइक्लोपिडिया ऑव द सोशल साइन्सेज" वैल्यूम-12 पृष्ठ-122 ।

2- "जूनियर रैन्डल, जॉन हरमन: "इन्टर प्रेटेशन ऑव हिस्ट्री ऑव फिलॉसफी" । संदर्भ शिल्पस वैल्यूम-1, पृष्ठ-87 ।

मूर्तिभंजक हैं और वे प्राचीन परम्पराओं की मूर्ति पूजा को नष्ट करना चाहते हैं, किन्तु यह कहना सच्चाई से दूर जाना है, क्यों कि अपनी शदी के दार्शनिकों में डिवी सबसे बड़े परम्परावादी थे। पारम्परिक धार्मिक विश्वासों में भी आस्था रखते थे, क्यों कि उन्होंने ऐतिहासिक स्त्रोतों का दर्शन में प्रयोग किया है।

जॉन डिवी महान परम्परावादी थे :-

एक सच्चा परम्परावादी यह अच्छी तरह समझता है कि अपनी वर्तमान समस्याओं को हल करने में परम्पराओं का कैसे प्रयोग किया जाता है। ऐतिहासिक स्त्रोतों का दर्शन में प्रयोग करने में जॉन डिवी का कोई प्रतिद्वन्दी नहीं है।

जॉन डिवी के लिये यह मौलिक बात है कि परम्परा वह विषय वस्तु है जिसके अन्तर्गत दर्शन की आलोचनात्मक पद्धति को कार्य करना चाहिये। जॉन डिवी ने लिखा है :-

> "एक दार्शनिक जो अपनी विचारधारा को वर्तमान सभ्यता की औद्योगिक एवं तकनीकी विशेषताओं से इसकी प्रबलता में सम्बन्ध रखेगा, (वह) इन आन्दोलनों को (18 वीं शताब्दी के हेतु वाद, जर्मन के आदर्शवाद, यूरोप के धार्मिक एवं दार्शनिक परम्पराओं के आन्दोलन) उपेक्षित नहीं कर सकता है। इससे भी अधिक उस ग्रीक और मध्य युगों में निर्मित अति उत्तम परम्पराओं के विचार को त्यागने की अपेक्षा स्वीकार करना चाहिये। यदि वह परम्पराओं की उपेक्षा करता है तो उसके विचार सारहीन व खोखले हो जायेगें।

परन्तु उन विचारों का कुछ भाग उन्हें उपयोग में लाना होगा और उन विचारों का आदर करना होगा तथा उन्हें नये शब्द सौष्ठव से सजाना होगा ।[1]

अतः वर्तमान परम्परायें एवं वर्तमान वास्तविकतायें दोनों ही दार्शनिक विचारों के लिए तथा अध्ययन के लिए अति आवश्यक हैं । दार्शनिक कार्य अति प्राचीन व अति नवीन दोनों है, और उन्हें एकत्रित करना अति महत्वपूर्ण व लाभदायक है ।

जॉन डिवी के दर्शन की मुख्य विषय वस्तु :-

रावर्ट जे0राय[2] का दृष्टिकोण है कि यदि हम जॉन डिवी के साहित्य की व्याख्या करते हैं तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जॉन डिवी के दर्शन की मुख्य विषय वस्तु आत्मानुभूति (सेल्फ रिलायजेशन) है, जिसकी प्राप्ति प्रकृति व प्राणी को एक दूसरे के प्रभाव से होती है अर्थात प्राणी प्रकृति को प्रभावित करता है और प्रकृति प्राणी को, इस प्रभाव रूपी प्रतिक्रिया से ही आत्मानुभूति प्राप्त होती है । जॉन डिवी के लिए "आत्मानुभूति" का तात्पर्य मानव की क्षमताओं एवं शक्तियों के अनुसार प्राणी के व्यक्तित्व को विकसित करना है, परन्तु प्राचीन काल में व्यक्तित्व के विकास के लिए जो प्रबन्ध किये गये थे उसे वे यथार्थ नहीं मानते थे । यद्यपि वे

------ --

1- वेदर मैनकाइण्ड, एडीडर, चार्ल्स बेयरड, चैप्टर-13" फिलॉसफी ।

2- रावर्ट जे0राय, "जॉन डिवी एण्ड सेल्फ रिलायजेशन" पृष्ठ-17-22 ।

इसे महत्त्व प्रदान करते थे । इसका महत्त्व "मानव के व्यक्तित्व के विकास के लिए परिस्थितियों के अध्ययन"[1] में था ।

प्राचीन दार्शनिक ने प्रत्येक स्तर पर अलगाव व अन्तर प्रकट किया है । जैसे- मानव और प्रकृति, आत्मा और पदार्थ (पुद्गल) मन और शरीर, ज्ञाता और ज्ञेय, आदर्शों और वास्तविकताओं में । इसी कारण प्राणी और इस संसार की स्थितिनेजॉन डिवी के मन को आच्छादित कर लिया था और इनके विचारों को मूर्तरूप प्रदान किया ।

यदि हम व्यक्तित्व की पूर्णता के अर्थ को जॉन डिवी के अनुसार जानना चाहेतो हमें जैवकीय स्तर से प्राणी को समझना प्रारम्भ करना होगा और इसके विश्लेषण को उच्च स्तरीय मानव को जानने में प्रयोग करना होगा । जॉन डिवी ने "उचित अनुकूलन" वाक्यांश का प्रयोग, आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हेतु वातावरण से सामान्जस्य का, मानव एवं प्रकृति के मध्य अन्तर का, उच्छेदन, प्राणी व वातावरण के बीच के अन्तर को समाप्त कर वैयक्तिकता की वृद्धि के वाक्यांशों का प्रयोग किया है और वातावरण से प्राणी का पूर्ण व्यक्तित्व विकसित होता है । यही जॉन डिवी के पूर्ण व्यक्तित्व के विकास का मन्तव्य है ।

1- जॉन डिवी : इन्डीविजुअलिज्म ओल्ड एण्ड न्यू" पृष्ठ-99, 146, 148 (एलेन एण्ड अनविन, लन्दन, 1931)

प्रयोजनवाद में व्यक्ति या समाज और वातावरण दोनों अत्यन्त उपयोगी हैं। व्यक्ति एक जैवकीय एवं सामाजिक प्राणी है। प्राणी की जैवकीय आवश्यकताओं की पूर्ति समाज या सामाजिक वातावरण से ही होती है। यह प्राणी के विकास में महत्वपूर्ण योग देता है। सामाजिक वातावरण से व्यक्ति अपनी संस्कृति एवं सम्पदा से परिचय ग्रहण ककरता है। इसलिए वातावरण से और वातावरण के अभ्यन्तर ही प्राणी संगठित, समान रूप एवं महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के विकास को प्राप्त करता है। सामाजिक एकता, सामान्जस्य, समानता आदि पर प्रयोजनवाद बल प्रदान करता है।

प्रयोजनवादी मन की भाँति आत्मा को भी क्रिया रूप मानते हैं। मन व आत्मा एक व्यवहारिक चिन्ह हैं। आत्मा की अन्य परिकल्पना व्यर्थ है। यह सामाजिक स्थिति में कार्य करने के लिए सदैव निर्भर है।

मानव के लिए शिव क्या है ? :-

जॉन डिवी ने लिखा है :-

"मानव के लिए जीवन में सर्वोत्तम सबसे अधिक बहुमूल्य एवं पूर्ण अनुभव ही "शिव" है। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। इस प्रकार के अनुभव की प्राप्ति को "सुधारकों" को विशिष्ट समस्या के रूप में विचार नहीं करना चाहिये, अपितु मानव के सामान्य उद्देश्य के रूप में विचार करना चाहिये।"[1]

1- जॉन डिवी : इक्सपीरियन्स एण्ड नेचर, पृष्ठ-412 ओपेन कोर्ट पब्लिसिंग कम्पनी शिकागो, 1929

जॉन डिवी के इस कथन की आलोचना करते हुये आर्थर जी० विर्थ कहते हैं :-

"डिवी की शिव की परिभाषा का तात्पर्य मानवों के सर्वश्रेष्ठ विश्राम काल से है । बुद्धि जीवियों और शिक्षाशास्त्रियों का एक विशिष्ट उत्तरदायित्व था कि वे मानव की दशाओं की प्रकृति के सम्बन्ध में स्पष्टता की खोज करें और मानव की पूर्णता के कार्य हेतु विजय प्राप्त करने के लिये यंत्रों को तीव्र करना और उसके लिए उचित साधनों को परिभाषित करना भी उनका कार्य होना चाहिये ।अपने जीवन के छोटे से छोटे कार्य में तर्क में, सामाजिक दर्शन में, नैतिकता में, सौन्दर्य शास्त्र में, और शिक्षा में उन्हें अपना कार्य प्रारम्भ करना चाहिये । किसी व्यक्ति के लिए यह छोटा कार्य नहीं होगा बल्कि यह विश्व दर्शन के लिए महत्वपूर्ण योगदान होगा।"[1]

<u>मानव का स्थायी पेशा व्यक्तित्व की पूर्णता है :-</u>

"मानव व्यक्तित्व की पूर्णता" जो जॉन डिवी के अनुसार मनुष्य का स्थायी पेशा है, एक निष्क्रिय प्रक्रिया नहीं है, क्योंकि व्यक्तित्व पूर्णतः वातावरण से ही निर्मित नहीं होता है, न तो व्यक्ति स्वयं में स्थिर है, न तो पूर्ण प्रदत्त है, बल्कि गतिशील है । वैयक्तिकता का अर्थ "सूत्रपात" अविष्कार करने की शक्ति, विभिन्न साधन सम्पन्नता, व्यवहार और

1- आर्थर एच०विर्थ : जॉन डिवी ऐज एजूकेटर, पृष्ठ-19
(जॉन विले एण्ड सन्स, न्यूयार्क, 1966)

विश्वास के चुनाव में मान्य उत्तरदायित्व".[1] प्राप्त करना है ।

अत: व्यक्ति पूर्ण नहीं है, बल्कि गतिशील है ।

"मानव गतिशील , परिवर्तित, अलग और सबसे बढ़कर अन्तिम की अपेक्षा सूत्रपात करने वाला है।"[2]

मानव अनुभव का अन्य दृष्टिकोण यह है कि साधनों की पूर्ति के अर्थ को समझना आवश्यक है, यही कलात्मक एवं सौन्दर्यात्मक अनुभव का प्रत्यय है ।

जॉन डिवी ने लिखा है :-

"कला ।मानव। प्रकृति की पूर्ण उच्चता है जो अर्थ पूर्ण क्रियाशीलता का तरीका तथा तुरन्त ही आनन्द प्रदान करने की सामर्थ्य धारण करती है ।[3]

और कलात्मक अनुभव में ही प्राणी अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है । इसी तथ्य के कारण जॉर्ज गेगर ने यह अभिव्यक्त किया है कि कलात्मक या सौन्दर्यात्मक अनुभव ही जॉन डिवी की विचारधारा का मुख्य विषय है ।

1- जॉन डिवी : रीकन्स्ट्रक्शन इन फिलॉसफी, पृष्ठ-194 ।हेनरी हॉल्ट एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, 1920।

2- जॉन डिवी : एक्सपीरियन्स एण्ड नेचर" पृष्ठ-215

3- - तदैव -

वे लिखते हैं :-

"उनका शैक्षिक, सामाजिक, वैज्ञानिक और तार्किक अनुभव के सभी विचार की देन प्रविधिक रूप से इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये है।"[1]

किन्तु हमें यह नहीं विस्मृत करना चाहिये कि जॉन डिवी मानव की पूर्णता के लिये परिस्थितियों के अध्ययन में संलग्न थे, न कि उस पूर्णता की सही परिभाषा देने में।

अपनी पुस्तक "फिलॉसफी एण्ड सिविलीजेशन" के अध्याय "द इन्क्लियुसिव ऑव फिलॉसाफिक आइडिया" में उन्होंने वस्तुओं के विकास के सामाजिक क्षेत्र की सीमाओं की महत्ता को प्रकट किया है अथवा जिसे वे दार्शनिक वर्ग में "सामाजिक" मानते हैं, उसके महत्व को प्रकट किया है।

जॉन डिवी ने इस सिद्धान्त को मुख्य माना है। मनुष्य स्वयं का विकास दूसरों से उचित सम्बन्ध स्थापित करके ही कर सकता है। जॉन डिवी ने लिखा है :-

"प्राणी के स्व कापूर्ण व विस्तृत विकास सामाजिक क्रिया में भाग लेने से ही होता है न कि एकान्त अथवा दूसरों के उद्देश्यों व आवश्यकताओं के विरोध से युक्त क्रियाओं में भाग लेने से।"[2]

1- जॉर्ज, एस0गीगर" जॉन डिवी इन पर्सपेक्टिव पृष्ठ-20 ।ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1958।

2- जॉन डिवी : "इथिक्स" पृष्ठ-335 ।अमेरिकन कॉरपोरेशन, वैल्यूम दशम् न्यूयार्क, 1929।

प्रयोजनवाद के अनुसार सेल्फ (स्व) भी क्रिया करता है किन्तु यदि उसकी क्रिया सामाजिक परिप्रेक्ष्य में हो तो, एकान्तिक क्रिया को प्रयोजनवादी महत्व नहीं देते हैं। वे इस प्रकार की क्रियाशीलता से पूर्ण "स्व" का विकास असम्भव मानते हैं।

जॉन डिवी के विचार की सामाजिक स्थिति :-

इस प्रकार जॉन डिवी के विचार का मुख्य भाग "सामाजिक दर्शन" है। उनके विचार की सामाजिक पूर्व स्थिति इस प्रकार स्पष्ट है कि उनके विषय में आलोचना करना, उनकी महत्ता कम करना होगा।

जॉन डिवी के अनुसार प्राणी का सामाजिक वातावरण उसके चारों तरफ का पर्यावरण नहीं है वरन् वे वस्तुयें हैं जो उससे सम्बन्धित हैं, वातकवरण बन जाती है। किसी प्राणी के लिए उसका सामाजिक वातावरण उन तत्वों से बनता है जिनके साथ वह कार्य, अनुभव व विचार करता है, क्योंकि प्राणी अपना कोई भी कार्य समाज से परे नहीं कर सकता। उसके कार्यों का महत्व सामाजिक परिप्रेक्ष्य में है। जब प्राणी किसी अनुभव को ग्रहण करने के लिए हिस्सा लेता है तभी इस सामाजीकरण का वास्तविक अर्थ है। सामाजिक निर्देश के दो पक्ष हैं। प्रथम प्रत्यक्ष तथा द्वितीय अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष सामाजिक नियन्त्रण वैयक्तिक तथा कभी-कभी घटित होता है। अप्रत्यक्ष सामाजिक नियन्त्रण अवैयक्तिक तथा निरन्तरतायुक्त है।

प्रयोजनवाद द्वितीय सामाजिक वातावरण को मुख्य मानता है । एक सामाजिक मन वह है जो वस्तुओं के अर्थ को जानता है । वस्तुओं का अर्थ उस समय ज्ञात होता है जब वह उस वस्तु का प्रयोग करता है । जॉन डिवी के अनुसार -

"बच्चे वस्तुओं या चीजों से नहीं सीखते वरन् वे चीजों के प्रयोग से सीखते हैं ।"[1]

जब बच्चे उन वस्तुओं का वही अर्थ समझ जाते हैं जो अर्थ लोग समझते हैं तभी वे सामाजिक समूह के अंग होते हैं ।

हमें अब इस संदर्भ में केवल उनकी पुस्तक "रीकन्स्ट्रक्शन इन फिलॉसफी"[2] के प्रमुख अंशो का अध्ययन करना है ।

जॉन डिवी की विचारों की सामाजिक स्थिति पर बल देने का यह तात्पर्य नहीं है कि "व्यक्ति समूह में बिल्कुल घुलमिल जाता है ।" बल्कि व्यक्ति की क्रियाशीलता पर बल प्रदान करने के महत्व में हैं ।[3]

सम्पूर्ण सामाजिक प्रबन्ध प्राणी के निर्माण हेतु है :-

जॉन डिवी अपने को किसी अन्ध विश्वास से सम्बन्धित नहीं रखते है और न तो वे किसी का अन्धानुकरण करते हैं ।" डिवी का विचार यह है कि सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था व परिस्थितियॉं प्राणी के निर्माण हेतु साधन मात्र हैं ।[4]

1- जॉन डिवी / डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन, न्यूयार्क, मैकमिलन कम्पनी 1916 चैपटर-111

2- - तदैव - चैपटरपंचम पृष्ठ-123, एण्ड चैपटर अष्टम

3- ए करेन्ट थीम ऑव"इन्डी विजुअलिज्म ओल्ड एण्ड न्यू ।

4- जॉन डिवी"रीकन्स्ट्रक्शन इन फिलॉसफी"पृष्ठ-194

इसी कारण जॉन डिवी उन सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियो में, जिसमें प्राणी रहता है, रूचि रखते थे। इन्होंने मजदूरी की समस्या, झुग्गीझोपड़ियों की समस्या, सांस्कृतिक कार्यों के सम्पादन हेतु अवकाश के अभाव की समस्या के प्रश्नों के हल में अपनी रूचि व्यक्त की।

इन तथ्यों से यह स्वयं प्रकट हो जाता है कि जॉन डिवी की प्रत्येक स्तर के प्राणी के दुखों के साथ सहानुभूति थी जो उन्हें व्यग्र किये रहती थी।

<u>जॉन डिवी के दार्शनिक दृष्टिकोंण का एक महत्वपूर्ण भाग-विज्ञान</u>

जॉन डिवी के दर्शन का मुख्य दृष्टिकोंण वैज्ञानिक है। वैज्ञानिक दृष्टिकोंण का तात्पर्य दर्शन व विज्ञान के पारस्परिक सम्बन्ध से है। वास्तव में जॉन डिवी के सम्पूर्ण विचारधारा में विज्ञान इतना महत्वपूर्ण है कि कोई भी यह कह सकता है कि दर्शन व विज्ञान इनके लिये पर्यायवाची शब्द हैं। दर्शन का सम्बन्ध लक्ष्य व मूल्यों से है, जिसके लिए मानव क्रिया करता है। इस अर्थ में दर्शन विज्ञान को दिशा व अर्थ प्रदान करता है जॉन डिवी के अनुसार :-

> "दर्शन शैक्षिक उद्देश्यों को निश्चित करने से सम्बन्धित है जबकि शिक्षा का विज्ञान शिक्षा में प्रयुक्त होने वाले साधन को निश्चित करता है।"[1]

1- जॉन डिवी : सोर्सेज ऑव साइन्सेज ऑव एजुकेशन

केवल इस या उस व्यावहारिक कार्यों में प्रयोग करना ही विज्ञान नहीं है वरन् जॉन डिवी सामाजिक उद्देश्यों के लिए विज्ञान को योजनाबद्ध प्रयोग कहते हैं । वे विज्ञान के मूल्यों पर मानव की पूर्णता की प्राप्ति के लिए बल प्रदान करते हैं । वे विज्ञान के सांस्कृतिक परिणामों" यहाँ तक कि विज्ञान द्वारा आध्यात्मिकता के उद्धार के विषय में विचार व्यक्त करते हैं ।

जॉन डिवी के अनुसार इसके अतिरिक्त विज्ञान और अधिक कार्य करता है । विज्ञान प्राचीन काल के उत्तराधिकार प्राप्त विचारों, को वैज्ञानिक खोजों के आधार पर मान्यता देता है, या संशोधित करता है या अस्वीकृत कर देता है । इस प्रकार विज्ञान दर्शन के श्रेष्ठतम आलोचनात्मक कार्य को पूर्ण कर दर्शन का सहयोग करता है ।

ज्ञान के प्रति जॉन डिवी के दृष्टिकोण -

1- प्रयोजनवाद का सम्बन्ध ज्ञान की विधि से है :-

यदि कहा जाय कि प्रयोजनवाद ज्ञान का दर्शन है तो अनुचित न होगा क्योंकि ज्ञान का दर्शन कहने का कुछ अर्थ है वह अर्थ ज्ञान की विधि के रूप में मान्य है । हमें विश्लेषण से ज्ञात होगा कि जॉन डिवी के ज्ञान की अवधारणा ज्ञान के साहित्यिक विश्लेषण से भिन्न है । जॉन डिवी के विचारों का मौलिक सम्बन्ध तो कार्य की वस्तु से है तथा वर्तमान मूल्यों को अनुभव करने से है । यद्यपि प्रारम्भ में जॉन डिवी

का दर्शन ज्ञान का सिद्धान्त ही रहा है ।

ज्ञान की समस्या :-

वास्तव में "मैं सन्देह करता हूँ " और "मै जानता हूँ" के मध्य के विवाद ने मानव को ज्ञान की खोज करने की ओर प्रेरित किया था । प्राय मुझे संदेह है" मैं विश्वास करता हूँ" मेरी राय है" " मैं सोचता हूँ", मेरे पास कुछ ज्ञान है: आदि कथन ज्ञान की खोज के विषय में ही संकेत करते हैं ।

मानव अपने चेतन जीवन में संदेह से विश्वास, राय व ज्ञान की ओर बढ़ता है और पुनः लौट भी आता है । इसलिए ज्ञान के सम्बन्ध में प्रायः विचार विमर्श होता चला आ रहा है । ज्ञान का अर्थ भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के दृष्टि-कोण से अलग-अलग होता है । इस प्रकार विचार-विमर्श ,तर्क-वितर्क ने मानव जाति को विनाश के खतरे से भी बचाया है । इस प्रकार जब कोई व्यक्ति यह कहता है कि "मैं जानता हूँ" तो उसके पास ऐसा कहने का प्रमाण होता है । इसलिए मानव को सन्तुष्ट करने के लिए यदि किसी के पास प्रमाण उपलब्ध हो तो उसे अवश्य साधिकार कहने में कि "मैं जानता हूँ" संकोच नहीं करना चाहिये ।

ज्ञान के लिये तथ्यात्मक प्रमाण की आवश्यकता है :-

इस प्रकार हम देखते हैं कि "मैं जानता हूँ" इस कथन की सार्थकता के लिए व अन्य को सन्तुष्ट करने के लिए हमारे पास पर्याप्त प्रमाण होना चाहिये तथा इसे तथ्यात्मक

प्रमाण की मजबूत आधार शिला पर आधारित भी होना चाहिये। इसलिए मानव के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह यथार्थ कार्यों को करना सीखे।

ज्ञान शब्द प्राय: सामान्य वार्तालाप में प्रयोग होता रहता है। इसलिए "ज्ञान" शब्द को परिभाषित करना आवश्यक हो जाता है। कुछ लोग अन्तिम सत्य को ज्ञान मानते हैं, वह सार्वभौमिक सत्य है वही ईश्वर है। कुछ लोग सूचनाओं के संग्रह मात्र को ज्ञान मानते हैं", ज्ञान के प्रति पारम्परिक दृष्टिकोण प्राय: आध्यात्मिक है। ज्ञान के प्रति विभिन्न विद्वानों के विचारों को जब हम अध्ययन करते हैं तो हम पाते है कि कोई विश्वास करने को तथा अन्य लोग जानने को ज्ञान का साधन मानते हैं।

प्रयोजनवाद और ज्ञान :-

प्लेटो के अनुसार तर्क पूर्ण सम्मतिहीज्ञान है। इससे यह प्रकट होता है कि ज्ञान एक प्रकार की सम्मति है। एक निर्णय है या किसी के विषय में सोचा गया तथ्य है। दूसरे ज्ञान का स्तर सत्यता है। ज्ञान को सत्य होना चाहिये। तीसरे जो व्यक्ति इसे सत्य मानता है उसके पास ऐसा मानने का पर्याप्त कारण होना चाहिये। यदि विचार किया जाय तो इन तीनों में मौलिक ज्ञान तो प्रथम प्रकार का ही है। किसी वस्तु के प्रति तर्क पूर्ण सम्मति ही ज्ञान का मौलिक बिन्दु है। यह कथन स्वयं को संकेत नहीं करता है बल्कि किसी

अन्य के लिए संकेतात्मक बिन्दु है । इस प्रकार ज्ञान आध्यात्मिक हो जाता है । जैसा कि प्रेट महोदय ने कहा है :-

> "आध्यात्मिक (ज्ञान) का सामान्यत: यही अर्थ है कि जब हम जानते हैं अथवा अन्य कुछ के लिए तात्पर्य रखते हैं तब हमारे विचार की वस्तु स्वयं हमारा विचार नहीं होता है । वरन् हमारे अनुभव के बाहर भूत वर्तमान व भविष्य की वस्तु की ओर संकेत करता है ।"1x

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ज्ञान हमारे अनुभव के बाहर की वस्तु है । प्रयोजनवादी इस कथन को प्रश्नात्मक दृष्टि से देखता है और कहता है कि "एक मनोवैज्ञानिक स्थिति अपने से बाहर किस प्रकार जा सकती हैं ? ज्ञान हमसे बाहर की वस्तु कैसे हो सकती है ? जबकि यह ज्ञान तो केवल हमारा ही है ।

<u>प्रयोजनवाद मे यथार्थ अनुभव की प्रक्रिया ही ज्ञान है</u> :-

प्रयोजनवादियों द्वारा प्रस्तुत ज्ञान के सिद्धान्त की मुख्य विशेषता आध्यात्मिक के बचाव का प्रयत्न है और प्राणी के चेतन जीवन में मूर्त या यथार्थ अनुभव की प्रक्रिया को ज्ञान मानना है । मूर्त अनुभव ही ज्ञान का साधन है । अनुभव के तन्तुओं में ज्ञान निहित होता है । ज्ञान अर्जित किया जाता है । इसका अर्जन स्वयं के सम्बन्धो से होता है ।

1- जेम्स बी0 प्रेट : व्हाट इज प्रैग्मेटिजम," पृष्ठ-138

जॉन डिवी का साधनवाद और ज्ञान :-

जॉन डिवी कहते हैं कि :-

"वह जो संतोषजनक जाँच की प्रक्रिया को पूर्ण करता है उसे ज्ञान के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यही ज्ञान है क्योंकि यह जाँच प्रणाली को बन्द कर देता है।"[1]

जॉन डिवी के अनुसार प्राचीन ज्ञान के सम्बन्ध में विचार जो ज्ञाता को ज्ञेय से अलग करता है और दार्शनिक को विचार सम्प्रत्य के राज्य के अनुभव से दूर बहका ले जाता है, वह भ्रम उत्पन्न करने का कारण होता है और हमें ज्ञान की आवश्यक समस्या से दूर हटा देता है।

जॉन डिवी ज्ञाता और ज्ञेय में अन्तर नहीं मानते :-

ज्ञेय से ज्ञाता के वियोग को जॉन डिवी स्वीकार नहीं करते हैं क्योंकि उनकी मान्यता है कि "जानना" और "जानकारी प्राप्त करना" परिस्थिति जन्य हैं। जिसमें व्यक्ति और पर्यावरण दोनों शामिल होते हैं। यह एक प्राकृतिक तथ्य है जिसे क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप में वर्णन किया जाता है। इस प्रकार ज्ञाता (प्राणी) और ज्ञेय (पर्यावरण) की क्रिया- प्रतिक्रिया जाँच के द्वारा घटित होती है। जब संदेह उत्पन्न हुआ जाँच प्रणाली प्रारम्भ हो जाती है इस

1- जॉन डिवी : लॉजिक "द थ्योरी ऑव इन्क्वायरी" पृष्ठ-8 ।

प्रकार की क्रिया को जॉन डिवी तर्क ।लॉजिक। कहते हैं ।
इस प्रकार हम देखते हैं कि जॉन डिवी के शब्दों में संदेह की खोज के उत्तर के रूप में अनुभव प्राप्त होता है । ।ए डाउट इन्क्वारी आन्सर एक्सीरियन्स। यही अनुभव ज्ञान है ।

जब हमारे तथ्य यथार्थ और संतोषजनक होते हैं तब ज्ञान की उत्पत्ति होती है । ज्ञान एक निश्चित व्यावहारिक कार्य है । जिसे हम अनुभवों का पुनर्संगठन कहते हैं । जो निश्चित और हमारे अनुभवों को समनरूप तथा संतोषजनक बनाता है ।

जॉन डिवी के साधनवादी विचार से प्रारम्भिक रूप में तात्कालिक अनुभव ज्ञान नहीं होता है, ज्ञान के रूप मेंफलित होने के लिए प्राथमिक स्तर पर हमारे अनुभव को किसी न किसी रूप में अप्रर्याप्त एवं असमनरूप होना चाहिये । इसे स्वयं अपने लिए नहीं बल्कि अन्य प्रकार के अनुभव को उत्पन्न करना चाहिये । क्योंकि उपलब्ध होने वाला अनुभव ही समनरूपताउत्पन्न करता है ।

<u>जानने के तीन स्तर हैं</u> :-

जॉन डिवी के अनुसार जानने की प्रक्रिया के तीन स्तर हैं । प्रथम है "सन्देह" जो तथ्यों के अनुभव को स्वयं असमन रूप से प्रकट करता है । जिसे पुनर्संगठन करने की आवश्यकता पड़ती है । द्वितीय स्तर "जाँच", एक विचार अथवा कार्य की योजना अथवा उपस्थित या अनुपस्थित को

परीक्षित करने हेतु पुनर्संगठन करना है । तीसरे स्तर पर इस योजना का कार्यान्वयन है । जिसके परिणाम स्वरूप अनुभव पुन: समनरूप मे प्रकट हो जाता है ।

इस प्रकार हमने देखा कि वैज्ञानिक एवं प्रयोगीय पहलुओं की उत्पत्ति तो हो गयी थी किन्तु जॉन डिवी की खोजों ने उन्हें प्रयोगशालीय विज्ञान की ओर प्रेरित न किया, क्योंकि जिस विधि का उन्होंने विकास किया था वह व्यक्ति व पर्यावरण से सम्बन्धित थी । हमनें यह भी देखा है कि जॉन डिवी ने पारम्परिक द्वैतवाद (ज्ञाता-ज्ञेयकों) को अस्वीकृत कर दिया है । जॉन डिवी की मान्यता है कि मैं तो यह देखता हूँ कि मनुष्य क्या कर सकता है ? हमनें यह भी अनुभव किया है कि मानव समस्याओं का सामना किस विधि से करता है और अपने कार्य को करते हुये समस्याओं का समाधान कैसे करता है ? इन अनुभवों के निर्माण से ही मानव जाँच विधि का विकास करता है । जब उसके कार्य की विधि की प्रक्रिया समस्याओं को संतोषजनक ढंग से प्रकट करने में असफल हो जाती है तब मनुष्य पुन: इस तथ्य की जानकारी व विश्लेषण करता है कि वह कौन सी कठिनाई थी जिसने संतोषजनक अनुभव प्रदान करने में बाधा डाली है ।

विचार ही ज्ञान के साधन हैं :-

विचार ही वह साधन है जो वर्तमान की अनिश्चितता से हमें भविष्य की निश्चितता की ओर ले जा रहा है ।

यही अनोखा विचार जॉन डिवी के प्रयोजनवाद का आधार है जिसे हम साधनवाद के नाम से भी जानते हैं । हमनें देखा है कि जॉन डिवी का दर्शन मानव क्षेत्र के लिए प्राकृतिक संसार को निश्चित रूप प्रदान करने का प्रयास करता रहा है । जॉन डिवी के अनुसार उपस्थित प्राकृतिक विश्व को जानने, समझने खोज के लिए ही समस्त मानव को प्रयास करना चाहिये । इस लिए मनुष्य का अनुभव है - प्रकृति का अनुभव, प्रकृति में अनुभव और अन्त में प्रकृति के लिए अनुभव । जॉन डिवी कहते हैं कि कोई आलौकिक वस्तु है ही नहीं जिसके लिए हमें प्रयास करना पड़े । प्रकृति स्वयं अपने में अनिश्चितता, अपूर्णता को लिये हुये है । यही समस्यात्मक परिस्थिति का निर्माण करती है । विचार से ही एक समस्यात्मक परिस्थिति से दूसरी समस्यात्मक परिस्थिति की निरन्तरता बनी रहती है । जानना और ज्ञान "संघर्षात्मक परिस्थित "[1] में ही घटित होता है जो मूल्यों के चुनाव का आधार प्रदान करता है ।

जॉन डिवी का मानना है कि मानव बुद्धि स्वाभाविक रूप से विकसित होते हैं । इनका उद्‌विकास जीवन की विभिन्न व्यावहारिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से मानव की क्रियाशीलता के मिलाप से होता है । इसलिए मन एक प्रभावशाली यंत्र है इसके प्रयोग से मानव अन्य की अपेक्षा ॰

1- जॉन डिवी : "एक्सपिरियन्स एण्ड नेचर, पृष्ठ-67 ।

ज्यादा उन्नति कर सकता है ।

जॉन डिवी के अनुसार ज्ञान मन से अलग नहीं है । विचार ही मन का क्रियाशीलन है । ये संतोष देने, कष्ट दूर करने, पर्यावरण के पदार्थों को नियन्त्रित करने में मानव को सहयोग देते हैं और इसी सहयोग के लिए इनका विकास होता है । जैसे यह माना जाता है कि ज्ञान क्रिया को आगे बढ़ाता है पर यह सत्य नहीं है वरन् सत्य तो इसका उल्टा है । अर्थात क्रिया ज्ञान को बढाती है । कार्य हमेशा अनुभव प्रदान करता है यही अनुभव ज्ञान का स्रोत है । इस प्रकार ज्ञान कार्य पर निर्भर करता है । ज्ञान कार्य की उपज है, यह अर्जित है, ज्ञान बनाया जाता है ।

फ्रेडरिक एबी कहते हैं :-

"सामान्य अवधारण यही है कि ज्ञान कार्य से अलग उत्पन्न होता है, इसका स्वतंत्र अस्तित्व है, उदाहरण स्वरूप "वांशिग्टन संयुक्त राज्य की राजधानी है" यह सर्वमान्य सत्य है । यह एक निश्चित ज्ञान है । यह अध्येता के कार्य से अलग ही अस्तितत्व रखता है । परन्तु जॉन डिवी के अनुसार यह तथ्य तो अध्येता के कार्य से सम्बन्धि है और दूसरे व्यक्ति के अध्ययन करने वाले कार्य से भी सम्बन्धित है ।"[1]

1- फ्रेडरिक एबी : डिवलपमेन्ट आँव माडर्न एजूकेशन, पृष्ठ-613 द्वितीय संस्करण प्रेन्टिस हाल, 1959 ।

वास्तव में हमारी शिक्षा में इस प्रकार के ज्ञान की अवधारणा का सर्वाधिक महत्व है । "जीवन के लिए संघर्ष" के आधार पर ही मानव ज्ञान प्राप्त करता है । यह साधनवादी विचार धारा का अन्य महत्वपूर्ण बिन्दु है । इसी संघर्ष के कारण मानव जाति ने भोजन, वस्त्र, आवास की प्राप्ति की है । कार्य किया है,और इन वस्तुओं की प्राप्ति का ज्ञान ग्रहण किया है । ज्ञान सदैव एक सामाजिक यंत्र है, जॉन डिवी के शब्दों में --

> "जो कुछ ज्ञान है उसकी उत्पत्ति वस्तुओं के स्वाभाविक कोर्स की क्रिया से होती है ।"[1]

वास्तव में यदि मानव की समस्त क्रियायें आराम से तथा बिना बाधा के सम्पन्न होती रहे और पर्यावरण से समरूपता होती रहे तो वहाँ न तो ज्ञान ही होगा और न तो चेतनता ही होगी, इस प्रकार की परिस्थिति में ज्ञान उत्पन्न ही नहीं होता है । जॉन डिवी के शब्दों में :-

> " जब हम अस्तित्व, सत्यता आदि तथ्यों को पहले से ही प्राप्त किये रहते हैं तब हमें इन तथ्यों के प्रति कोई कार्य अथवा कम या अधिक अपूर्ण क्रिया करने की आवश्यकता ही नहीं होती है ।"[2]

1- जॉन डिवी : एसेज इन एक्पेरीमेन्टल लॉजिक, पृष्ठ-127 ।

2- - तदैव - पृष्ठ-232 ।

जॉन डिवी पुनः कहते हैं कि :-

"निश्चित सन्तुलन के लिए निरन्तर गतिशीलता ही एकमात्र विचार परिस्थिति है।"[1]

ज्ञान की भूमिका साधनवादी है यह -

"एक सापेक्षिक संघर्षात्मक अनुभव के कार्य से एक सापेक्षिक संगठित अनुभव का" परिचय कराती है।[2] जॉन डिवी के अनुसार संवेदना व प्रत्यक्षीकरण स्वयं मे ज्ञान नहीं है। सामान्य व्यक्ति जिन आवाजों को सुनता है और जिन रंगों को देखता है ध्यान नहीं देता है क्योंकि "मानसिक अस्तित्व जो वस्तु ज्ञात है जिन वस्तुओं को जानना है, वे वस्तुएं जो उसके लिए लाभप्रद है-- को ग्रहण करने के लिये तैयार नहीं होता है।"[3]

परन्तु जब मानसिक अस्तित्व उसे प्रत्यक्षीकरण व अनुभव करने के लिये तैयार हो तो वह ज्ञान हो जायेगा।

जॉन डिवी कहते हैं :-

" जब ज्ञान होगा तब एक दूसरा सम्बन्ध जुड जाता है, उस वस्तु का अर्थ होता है और दूसरी वस्तु का महत्व स्थापित हो जाता है।"[4]

1- जॉन डिवी : एसेज इन एक्सपेरीमेन्टल लॉजिक, पृष्ठ-123

2- - तदैव - पृष्ठ-170

3- - तदैव - पृष्ठ-297

4- - तदैव - पृष्ठ-246

कानकिन ने कहा है कि :-

"ज्ञान की खोज के लिए सभी अलगाव के बिन्दुओं पर डिवी जोर देते हैं और सत्यान्वेषी को सर्वोत्त विशेषताओं से युक्त करने पर बल देते हैं और नैतिक राज्य के गुणात्मकता की ओर लौट आते हैं।"[1]

कानकिन के अनुसार जॉन डिवी ज्ञान के सम्बन्ध में दो विचार बिन्दुओं से प्रभावित थे। प्रथम यह कि उनका सम्बन्ध ज्ञान के उन मूल्यों से था जो मानव उद्देश्यों को प्रभावित करता है और दूसरे का सम्बन्ध नियन्त्रित अन्वेषण की आन्तरिक प्रक्रिया से है। इस प्रकार वे वैज्ञानिक विधि से सम्बन्ध रखते हैं।

जॉनडिवी का विश्वास था कि ज्ञान एक प्रतीकात्मक व्यवस्था रखता है। ज्ञान सूचनाओं हेतु निर्माण का कार्य करता है, निर्णय के लिए तैयार रहता है इससे प्रतीत होता है कि ज्ञान एक प्रतीक है,प्रतीक का तात्पर्य अर्थ है, अतः ज्ञान अर्थ है।

जॉन डिवी के साधनवादी विचारधारा के ज्ञान के निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त किये गये, जो इस प्रकार हैं :-

1- ज्ञान का कार्य एक अनुभव को स्वतंत्रता से दूसरे अनुभव के लिए सुलभ करना है।

1- पॉल के० कानकिन : "प्यूरिटन्स एण्ड प्रेग्मेटिस्टस" पृष्ठ-370 ।

2- ज्ञान अपने सम्बन्धों के द्वारा किसी भी दिशा से किसी तत्व पर पहुँचता है ।

3- ज्ञान के दो पहलू हैं, एक नियन्त्रण का, दूसरा अर्थ का ।

4- ज्ञान के द्वारा अनुभव का अर्थ सिखाया जाता है ।

5- ज्ञान के कोष का सम्बन्ध अतीत से है और ज्ञान का सम्बन्ध भविष्य के लिए है ।

6- ज्ञान का प्रयोग ज्ञान की वैधता के परीक्षण के लिये है । और अंत में ।

7- ज्ञान का प्रयोग सदैव होता रहता है ।

जॉन डिवी के साधनवादी सिद्धान्त के ज्ञान का सार यह है कि वह जानने की निरन्तरता पर बल देता है ताकि उद्देश्यपूर्ण क्रियाशीलन पर्यावरण को संशोधित कर सके । एच0एच0हार्न के अनुसार - यह समाज का जनतंत्र ही है जिसने ज्ञान के प्रयोगवादी सिद्धान्त का विकास किया था । क्योंकि जनतंत्रात्मक समाज में स्वतंत्र आदान प्रदान और सामाजिक निरन्तरता पाई जाती है । जॉन डिवी का विश्वास है कि सभी निष्कर्ष प्रयोग सिद्ध है और समस्त ज्ञान निरन्तर पुनरा-वृत्ति के आधीन है ।

जॉन डिवी सत्य को स्थिर व अन्तिम नहीं मानते है, जैसे जैसे आवश्यकतायें उत्पन्न होती है वैसे वैसे हम सत्य का निर्माण करते हैं । दर्शन के क्षेत्र में प्रथम बार परिणाम को

सत्य की कसौटी पर रखने के विचार को प्रस्तुत किया गया है ।

ज्ञान सीखने व सिखाने की प्रक्रिया के प्रत्यक्ष सम्बंध पर आधारित है । ज्ञान समस्या समाधान विधि पर आधारित है । जॉन डिवी के अनुसार पाठ्यक्रम सम्मिलित करने वाला पाठ्य क्रम होता है न कि पूर्व निश्चित । विद्यार्थियों की आवश्यकतायें पाठ्यक्रम निर्माण का आधार प्रस्तुत करती हैं । ज्ञान का कार्य पर्यावरण को नियन्त्रित करना है । विश्व में मन प्रक्रिया का एक हिस्सा है । ज्ञान व्यवहारिक है । ज्ञान मनुष्य को शिव की प्राप्ति में सहयोग देता है । जीवन की भाँति जीवन का शिव गतिशील है । कल क्या घटित होगा कोई नहीं जानता है ।

चिन्तन की अवधारणा पर जॉन डिवी के विचार :-

जॉन डिवी की पुस्तक "हाऊ वी थिंक" उन परिस्थि-तियों की व्याख्या करती है जिससे मन या मस्तिष्क चिन्तन करता है । गत पृष्ठों में जिस प्रकार ज्ञान को साधनवादी प्रकृति का माना गया है उसी प्रकार चिन्तन भी साधनवादी प्रकृति का है । चिन्तन समस्यात्मक परिस्थितियों में ही उत्पन्न होता है जॉन डिवी के अनुसार चिन्तन एक स्वाभाविक व्यवहार है प्राचीन अवधारणा के अनुसार विचार और तर्क एक विशिष्ट शक्तियाँ है, यद्यपि वे ऐसी नहीं है फिर भी माना जाता है प्राचीन विचार के अनुसार चिन्तन वह प्रक्रिया है जो जीवन से अलग घटित होता है ।

रिक्तता में चिन्तन नहीं होता है :-

चिन्तन अचानक नहीं होता है । यह रिक्तता में नहीं घटित होता है । प्लेटो और अन्य आदर्शवादियों के विश्वास के अनुसार चिन्तन पवित्र विचारणा का प्रतिफल है जबकि जॉन डिवी ऐसा नहीं मानते हैं । जॉन डिवी के अनुसार चिन्तन को उत्पन्न होनें के लिए कुछ कारण होना चाहिये, कुछ ऐसे तत्व होनें चाहिये जो ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करें कि प्राणी चिन्तत करने के लिए विवश हो जाय । इस प्रकार हम देखते हैं कि चिन्तन के लिए समस्या का होना आवश्यक है चिन्तन की जड़ में क्रिया निहित हैं । हमें चिन्तन के लिए उस समय बाध्य हो जाना पड़ता है जब कोई समस्या हमारे सामने आती है, इस प्रकार चिन्तन हेतु समस्या आवश्यक दशा है । जॉन डिवी व्याख्या करते हैं :-

> "हमें एक प्रश्न का उत्तर देना है, अस्पष्टता को निश्चित करना है । हमें इसके लिए एक लक्ष्य निर्धारित करना चाहिये, और एक निश्चित मार्ग से उस लक्ष्य की ओर विचारों को ले चलना चाहिये । प्रत्येक निर्देशित निष्कर्ष को इस नियमित लक्ष्य के लिए इसके परिणामों से और उपस्थित समस्याओं की आवश्यकता के अनुसार परीक्षित करना चाहिये ।"[1]

1- जॉन डिवी : हाऊ वी थिंक पृष्ठ-11-12 बोस्टन, डी0सी0 हीथ 1910 ।

विचार के प्रति जॉन डिवी का कथन है कि :-

"प्रथम रूप से "थॉट" विस्तृत अर्थ में प्रयोग होता है न कि संकुचित अर्थ में, प्रत्येक वस्तु जो मन में आती है और हमारे मस्तिष्क में जाती है वह विचार है ।"[1]

जॉन डिवी ने चिन्तन को एक कार्य के रूप में परिभाषित किया है जिसमें वर्तमान लक्ष्य दूसरे लक्ष्य को इस प्रकार से प्रस्तुत करता है मानों वह पूर्व तथ्य के आधार पर बाद वाले तथ्य पर विश्वास प्रकट कर रहा हो । जॉन डिवी के अनुसार समस्या विचारों के साध्य को निश्चित करती है और साध्य चिन्तन की प्रक्रिया को क्रियान्वित व नियन्त्रित करता है । जॉन डिवी विचारों को प्रशिक्षित करने और सुरक्षित करने की आवश्यकता पर बल देते हैं, क्योंकि ऐसा न करने पर चिन्तन गलत दिशा में चला जायेगा । चिन्तन मानसिक अनुशासन प्रदान करता है ।

जॉन डिवी विश्वास करते हैं कि शिक्षा के कार्यों में शिक्षा का यह भी कार्य है कि वह परिस्थितियों का निर्माण करे ताकि उन परिस्थितियों के द्वारा मन व मस्तिष्क को उचित रीति से कार्य में लगाया जाय और उचित चिन्तन को प्राप्त करने के लिए आदतों का निर्माण किया जाय । चिन्तन

1- जॉन डिवी : हाउ वी थिंक पृष्ठ-1 -1 बोस्टन, डी0सी0 हीथ 1910 ।

वह है जो हमारें अन्दर उत्पन्न होता है । जॉन डिवी ने अपनी पुस्तक "हाऊ वी थिंक" में चिन्तन को चार प्रकार का कहा है । वे हैं, मूर्त, अमूर्त, प्रयोगसिद्ध और वैज्ञानिक चिन्तन । महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि चिन्तन के प्रति जॉन डिवी का दृष्टिकोण उनके साधनवादी दर्शन से अलग नहीं है ।

अध्याय-5

महात्मा गांधी के मौलिक दार्शनिक विचार

महात्मा गांधी की महानता एवं विश्व में स्थान :-

महात्मा गांधी ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होने स्वयं अपने अनुभव, मन व हृदय की विशेषताओं एवं गुणों से तथा अपने कर्मों से अपना मार्ग प्रशस्त करते हुये एक इतिहास का निर्माण किया है । वे भारत के पुनर्निर्माता हैं । इन्होंने राष्ट्रीय नेता के रूप में अपने प्रभावी व्यक्तित्व से नये भारत का निर्माण किया है । नूतन भारत के निर्माण हेतु अपने प्रयोग जन्य अनुभव से एक ऐसी शिक्षा पद्धति को प्रस्तुत किया है जो भारतीय परिवेश में सवर्था उपयुक्त है । अपने नूतन विचारों से चाहे वह शिक्षा, दर्शन, राजनीति, धर्म, या प्रजातंत्र में हो, प्रत्येक क्षेत्र में उन्होने क्रान्ति मचा दी थी । इस प्रकार एक अन्तर्राष्ट्रीय विचारक व चिन्तक के रूप में सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित करके महान ख्याति प्राप्त कर चुके थे ।

इस विश्व में अनेक बुद्धि सम्पन्न प्राणियों ने जन्म लिया है, किन्तु कोमल हृदयी व्यक्ति का प्रायः अभाव ही पाया जाता है । इसी कोमल हृदयी व्यक्तित्व में इनकी महानता का सार छिपा है । महात्मा गांधी का प्रादुर्भाव ऐसी परिस्थिति में हुआ था जबकि नैतिक मूल्य दिन-प्रतिदिन घटते जा रहे थे । ऐसी स्थिति में इन्होंने नये मूल्यों को देश के समक्ष रखने का संकल्प लिया । महात्मा गांधी जी ने अनुभव

कर लिया था कि मानव को इस विकट स्थिति से बाहर निकालने का कार्य केवल नये मूल्य ही कर सकेंगें, इसलिए वे अकेले ही समाज में व्याप्त समस्त बुराइयों की सामूहिक शक्ति से संघर्ष करते रहे। विरोध, धमकी, गलत प्रदर्शन तथा कलंक की परवाह किये बिना सत्य, अहिंसा व प्रेम का दृढ़ता से अवलम्बन लिये हुये भारतीय राष्ट्र को शान्ति व सुरक्षा प्रदान की थी।

प्राय: यह अनुभव किया गया कि महान पुरूषों एवं शान्ति दूतों को उनके जीवन काल में न तो समझा गया और न तो आदृत किया गया किन्तु महात्मा गांधी जी के सम्बन्ध में उपर्युक्त तथ्य निराधार है, क्योंकि उनके जीवन काल में ही उनकी प्रशंसा व उनके क्रान्तिकारी विचारों की ध्वनि विश्व के प्रत्येक कोने में फैल चुकी थी, सांसारिक प्रलोभन एवं उपहारों से विमुख हो शाश्वत सत्य की ओर उन्मुख होने के कारण ही वे विश्व प्रसिद्ध महान पुरूष बन सके।

विश्व में गांधी जी के स्थान के सम्बन्ध में भविष्य वाणी करना हमारे लिए तो प्राय: असम्भव ही है, परन्तु महात्मा गांधी को महान पथ प्रदर्शकों, शिक्षकों, मनुष्य मात्र के हितैषियों में एक महान पथ प्रदर्शक, शिक्षक, मानव हितैषी के रूप में आने वाले कालों में समझा जाता रहेगा। उन्हें पूर्ण रूप में जानने के लिए सतत अन्वेषण, समझ एवं निरन्तर प्रयत्नशील रहने की आवश्यकता है।

वे जीवन पर्यन्त सत्य, अहिंसा, प्रेम, न्याय, समानता एवं सुधार के कार्यों में सलग्न रहे हैं, अपनी शिक्षाओं के कारण वे असंख्य पीढियों तक स्मरण किये जाते रहेगें । उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जैसे दर्शन से लेकर जन्म नियन्त्रण तक के विषयों के सम्बन्ध में अपने श्रेष्ठ विचारों की अभिव्यक्ति की है और उसे अपनी लेखनी द्वारा लिपिबद्ध भी किया है ।

गांधी जी की महानता, उनकी लोक प्रियता, उनके जीवन की सफलता का रहस्य, उनकी सत्यता और न्याय निष्ठा में, उनकी सतत् जागरूकता में, उनके विश्व प्रेम की भावना में और उनकी निर्भयता में निहित थी । वे एक क्रान्तिकारी, सुधारक एवं उच्च कोटि के शिक्षा शास्त्री थे । गांधी जी के विचारों से युक्त लेख भारतीय भाषाओं में ही नहीं बल्कि विश्व की अन्यान्य भाषाओं में भी छपते थे । इस सम्बन्ध में ब्रज कृष्ण चाँदीवाल ने लिखा है :-

> "भारत के समस्त मुख्य दैनिक इनके लेखों को अपने अंको में छापते थे ---- उनके लेख भारत में ही नही बल्कि अन्य देशों में भी भिन्न-भिन्न भाषाओं में छपते थे ।"[1]

1- ब्रज कृष्ण चाँदीवाल "बापू के चरणों में" पृष्ठ-152, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1949 ।

महात्मा गांधी के महान कृत्यों को देखकर भारतीय ही नहीं वरन् विदेशी विचारक भी चिन्तन करने के लिए बाध्य हो जाते थे। रोम्यां रोला ने लिखा है :-

"महात्मा गांधी वह मनीषी थे जिन्होने तीस करोड़ भारतीयों को क्रान्ति की प्रबल प्रेरणा दी, जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य की जड़े हिला दी तथा जिन्होंने अतीत की दो हजार वर्षों की मानव राजनीति में सबसे अधिक शक्तिशाली अस्त्र धार्मिकता का पुट ला दिया।"

महात्मा गांधी का दर्शन एवं दार्शनिक मत :-

अब हमें महात्मा गांधी के बिखरे लेखों एवं वक्तव्यों में उनके दार्शनिक विचारों की खोज करनी है और यह देखना है कि क्या वे दार्शनिक शैली का निर्माण करते हैं ? शिक्षा व दर्शन के अभिप्राय एवं उनके पारस्परिक सम्बन्धों की खोज किये बिना इस प्रश्न का उत्तर देना आसान न होगा।

"प्लेटों ने अपनी पुस्तक "रिपब्लिक" में दार्शनिक की परिभाषा इस प्रकार की है :-

" वह जो प्रत्येक प्रकार के ज्ञान का प्रेमी है, जो सदैव जानने के लिये लालायित है और कभी ज्ञान से सन्तुष्ट नहीं होता, वही वास्तव में दार्शनिक है।" [1]

1- प्लेटो : "द रिपब्लिक ऑव प्लेटो, "अनुवादक बी जोवेट, ऑक्सफोर्ड ,1888, पृष्ठ-252 ।

प्लेटो ने उसी क्रम में पुनः स्पष्ट करते हुये कहा है :-

"वह ज्ञान के एक भाग का नहीं बल्कि सम्पूर्ण ज्ञान का प्रेमी होता है ।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि दर्शन का विषय सत्य का अन्वेषण करना है । मानव एक विचार शील प्राणी है । हक्सले की मान्यता थी कि इस विश्व में मानव अपने जीवन दर्शन तथा संसार के प्रति अपने विचार के अनुसार जीवन यापन करता है, जीवन यापन के पीछे सत्य, आदर्श, मूल्य व सिद्धान्त जो कुछ होते हैं, वही उस प्राणी का जीवन दर्शन कहा जाता है । वैयक्तिक विभिन्नता के कारण प्रत्येक प्राणी के जीवन दर्शन व दार्शनिक मत विभिन्न रूप में अभिव्यक्त हुये हैं । जॉन डिवी ने दर्शन को बौद्धिक ज्ञान की प्राप्ति एवं चरित्र को प्रभावित करने का कारण मानते हुये लिखा है :-

"जब कभी दर्शन को गम्भीरता से समझने का प्रयास किया गया तो इसे हमारे जीवन चरित्र को प्रभावित करने वाले बौद्धिक विकास की प्राप्ति के रूप में ही ग्रहण किया गया है ।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जॉन डिवी ने मानव विकास हेतु व्यावहारिक दर्शन का प्रतिपादन किया है । इसी

1- प्लेटो : "द रिपब्लिक ऑव प्लेटो", "अनुवादक वी जोवेट, ऑक्सफोर्ड 1888 पृष्ठ-252 ।

2- जॉन डिवी; डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन, न्यूयार्क, मैकमिलन, 1916 पृष्ठ 378

तथ्य को जैसा कि कहा गया है आल्डुअस हक्सले ने इस प्रकार कहा है :-

" व्यक्ति अपने जीवन दर्शन और संसार के प्रति अपने विचार के अनुसार जीवन यापन करता है ।"[1]

महात्मा गांधी ने जीवन में सत्य को अंगीकार किया और अहिंसात्मक पथ का अनुसरण कर अहिंसा के दर्शन को विश्व के समक्ष रखा । चार्वाक ने जीवन में आनन्द उठाने, उमर ख्याम ने मदिरा में मस्त रहनेके जीवन दर्शन का प्रचार किया । हम देखते हैं कि उपर्युक्त चार्वक एवं उमरखयाम के भोग वादी दर्शन एवं जीवन से ऊबकर कष्ट मय जीवन पद्धति अपनाने के लिए योगदर्शन का जन्म हुआ । यहाँ तक कि उस परम सत्य रूपी ईश्वर के प्रति अनेक मत मतान्तर प्रचलन में आये । ईश्वर के एक रूप को मान्यता देने के कारण एकत्ववाद, दो रूप को मान्यता देने के कारण द्वयतवाद और बहुत्व की कल्पना ने बहुत्ववाद को प्रचारित किया ।

दर्शन विचारणा का प्रतिफल है । इसीलिए वस्तुओं की सम्यक विचारणीय कला को पैट्रिक ने दर्शन का नाम दिया था । विश्व की प्रत्येक वस्तु के सम्वन्ध में मानव अतीत से आज तक विचार करता चला आ रहा है । इस प्रकार के

1- हक्सले, आल्डुअस, "एन्डस एण्ड मीन्स, लन्दन, चैटो एण्ड विन्डस पृष्ठ-252 ।

विचार से अनेक अनुभव उसे प्राप्त होते हैं । यही अनुभव ही उसकी जीवन शैली का निर्माण करते हैं । जॉन डिवी भी दर्शन को विचारने का परिणाम मानते हैं । प्रत्येक दार्शनिक सत्य का अन्वेषण करता है । उसे जानने की इच्छा रखता है । सत्य को व्यवहृत बनाना चाहता है ।

जहाँ तक महात्मा गांधी का सम्बन्ध है हम देखते है कि उनका सम्पूर्ण जीवन "सत्य की खोज" की एक प्रयोगशाला है ।

शिक्षा और दर्शन :-

दार्शनिक विचारों के प्रयोगोपरान्त जो संशोधित स्वाभाविक विकास होता है वही शिक्षा के रूप में मान्य है, अत: दर्शन शैक्षिक प्रयत्न के रूप में प्रतिफलिक होता है । इसी कारण जॉन एडमस का विश्वास था कि :-

" शिक्षा दर्शन का गतिशील पहलू है । "[1]

कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा दार्शनिक विश्वासों का क्रियात्मक पहलू तथा जीवन आदर्शों की प्राप्ति का व्यवहारिक साधन है । शिक्षा और दर्शन में पारस्परिक घनिष्ठ सम्बंध है । दर्शन व शिक्षा एक ही तत्व के दो पक्ष हैं यदि प्रथम सैद्धान्तिक है तो द्वितीय क्रियात्मक पक्ष है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि शिक्षा मौलिक रूप से दर्शन पर आधारित है । इसी कारण महान

1- एडम्स, सर जॉन: इवोल्युशन आॅव एजूकेशनल थ्योरी, लन्दन, मेक्मिलन चैप्टर-1 ।

दार्शनिक, महान शिक्षा शास्त्री भी रहे हैं । प्रायः यह देखा गया है कि जो दार्शनिक स्वप्नदृष्टा एवं चिन्तनशील रहे हैं वे ही आगे चलकर उच्च कोटि के शिक्षा शास्त्री भी बने । पश्चिमी देशों में सुकरात, सैलैकर, जॉन डिवी तथा पूर्व में स्वामी शंकराचार्य से लेकर महात्मा गांधी तक के सभी दार्शनिकों की शिक्षाओं व जीवन से हमें यह प्रमाण मिलता है कि शिक्षा दर्शन पर आधारित है । सुकरात ने नैतिकता के न्याय के मापन हेतु एक मानक की आवश्यकता का अनुभव किया , तथा विश्वास व्यक्त किया कि प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में विश्व की वैधता का विचार निहित है । इस तथ्य को जन-जन तक पहुँचाने के लिए उन्होने सम्पर्क में आने वाले सभी प्राणियों के मस्तिष्क में इस विचार को लाने के लिए अपने जीवन को लगा दिया । इस प्रकार एक सिद्धान्तवादी दार्शनिक क्रियाशील शिक्षाशास्त्री बन गया । और सभी काल का उन्हें महान शिक्षक माना गया । जो सत्य गौतम बुद्ध, अद्वैतवादी शंकराचार्य व मुहम्मद साहब के लिये था उसे ही ईसा मसीह व महात्मा गांधी ने धारण किया । इसी आधार पर प्रत्येक ने अपने जीवन दर्शन का निर्माण किया था । इन महान दार्शनिकों एवं शिक्षकों की शिक्षाओं से हम आज भी और भविष्य में भी लाभान्वित होते रहेगें ।

हम यह जानते हैं कि मानव मन समस्त अच्छाइयों व बुराईयों का जन्म स्थल है अतः उत्तम संसार के निर्माण के

लिए जो भी मानव मन में अच्छाइयाँ अन्तर्निहित है उसे विकसित करने के साधन की खोज करना नितान्त आवश्यक हो जाता है अतः शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव किया गया ।

आधुनिक युग में जार्ज बरनार्डशा एच0डब्ल्यु वेल्स, बर्ट्रेन्ड रसेल, आल्डुअस हक्सले, रवीन्द्रनाथ टैगोर, जॉन डिवी महात्मा गाँधी इन सभी ने प्रथमतः जीवन के तरीकों को जाना पहिचाना, अनुभव किया तथा जीवन की कसौटी पर प्रयोग किया इसके पश्चात ही अपने शिक्षा दर्शन को जगत के समक्ष प्रस्तुत किया ।

जॉन डिवी का विश्वास था कि दर्शन शिक्षा से ही निःसृत है । दर्शन यदि व्यावहारिक है एवं कार्य में प्रयोग करने के योग्य है तो वह शिक्षा का सिद्धान्त है, जो व्यावहर में कार्य करता है वही सत्य है । वे शिक्षा को जीवन की प्रक्रिया मानते हैं न कि भविष्य की तैयारी । इनके दर्शन से हमें औद्योगिक क्रान्ति और प्रजातंत्र के विकास की सुगंध आती है इन्होंने अमेरिकी दर्शन को जर्मन के आध्यात्मवादी दर्शन से मुक्ति दिलाई ।

दर्शन एवं राजनीति :-

अब हमें यह भी विचार कर लेना उचित है कि दर्शन व राजनीति में क्या सम्बन्ध है ? यदि शिक्षा कार्य में दर्शन है तो राजनीति भी कार्य में दर्शन ही है । राजनैतिक पद्धति दार्शनिक स्थिति की उपज है । राजनैतिक पद्धति अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने हेतु शिक्षा के सिद्धान्त व प्रयोग दोनों को अपनाती

है । इस प्रकार मूर्त रूप में राजनीति दर्शन ही है । कोई भी शैक्षिक सिद्धान्त तब तक मूर्तरूप धारण नहीं कर सकता जब तक इसका प्रतिपादन योग्य दार्शनिक व एक शक्तिशाली राजनैतिक पद्धति द्वारा न किया गया हो । अतः प्रत्येक दर्शन में राजनैतिक पद्धति व शिक्षा पद्धति का पाया जाना सामान्य तथ्य है। अरस्तू की कृतियों में दर्शन, शिक्षा व राजनीति तीनों का पारस्परिक सम्बन्ध बड़े ही रोचक व सुन्दर ढ़ग से स्थापित किया गया है । सत्यं में "शिवं" तथा शिवं में सुन्दरं के गुण निहित है । ठीक रहने की अपेक्षा ठीक करना श्रेष्ठ गुण है । ठीक रहने की कला को जानना नीति है तथा ठीक करने का लक्ष्य ही राजनीति है । इसलिए सुकरात की राजनीति दर्शन ही है ।

उपलब्ध परिस्थितियों में कार्य करने की पद्धति को निश्चित करने के लिए जो भी प्राणी अपने ज्ञान व अनुभव का प्रयोग करता है वही दर्शन के क्षेत्र में प्रविष्ट हो जाता है । इस प्रकार जीवन की समस्याओं के हल हेतु अपने ज्ञान, अनुभव व क्रमिक दृष्टिकोण के प्रयोग व व्याख्या से दर्शन का सम्बन्ध है । अपनी इस खोज के आधार पर ही मानवनेजीवन के प्रति एक अवधारणा का निर्माण किया और दैनिक जीवन के व्यवहार क्षेत्र में उसका प्रयोग करना आरम्भ कर दिया । जिसके प्रतिफल के रूप में हमें कला, संगीत, व्यवहार व शिक्षा दर्शन की प्राप्ति हुई ।

महात्मा गांधी का जन्म ही पीड़ित व्यक्तियों के उद्धार के लिये हुआ था । उनका जीवन दर्शन चिरस्थायी सत्य पर आधारित है । उनका विचार है कि जब इस सत्य का साक्षात्कार मानव अपने जीवन में कर लेगा तो उसे सम्पूर्ण मानवीय आत्माओं से प्रेम हो जायेगा । इसीलिए वे राजनीति एवं समाज दोनों को सत्य रूपी धर्म पर अवलम्बित करने का प्रयास करते हैं । गांधी जी ने अपने दार्शनिक मत की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है :-

> " मुझे इस नश्वर पृथ्वी का स्वराज्य नहीं चाहिये मैं स्वराज्य के लिए प्रयत्न कर रहा हूँ, जिससे मुक्ति मिलती है । मेरी समझ में मुक्ति अपने देश और मानव मात्र की सेवा करने से मिलती है, मैं अपने को प्राणी रूप में देखना चाहता हूँ । --- इसलिए मेरी समझ में धर्म के विना कोई राजनीति ठीक नहीं होती है और धर्म के बिना राजनीति मृत्यु के जाल जैसी है जो आत्मा को मार देती है ।"[1]

हम देखते हैं कि महात्मा गांधी जी "स्वराज्य" का विस्तृत अर्थ धारण करते हैं । धर्म के विपरीत "स्वराज्य" की वे कल्पना भी नहीं करते हैं । राजनीति, मानव समाज तथा जीवन का प्रत्येक क्षेत्र गांधी जी के अनुसार धर्म समन्वित होना चाहिये, परन्तु उनका धर्म संकुचित धर्म नहीं है । वह तो सम्पूर्ण विश्व को अपने में समेटे हुये है । अतः स्वराज्य भी इसी में शामिल है ।

1- यंग इण्डिया: अक्टूबर 11, 1928 ।

महात्मा गांधी आध्यात्मिक शक्ति की एकता में पूर्ण विश्वास करते थे । सत्य का आधार समस्याओं के हल तथा कर्म करने में होना चाहिये । जिस काम में किसी भी प्राणी के अनिष्ट का रंच मात्र भी प्रवेश हुआ तो वह कर्म अहिंसक कर्म न होगा । गांधी जी के इसी दर्शन पर उनकी शिक्षा बेसिक शिक्षा आधारित है । इनका यह शिक्षा दर्शन एक देशीय न होकर सर्व देशीय है । इस सम्बन्ध में एम०एस० पटेल ने लिखा है :-

" यदि दर्शन जीवन की समस्याओं के लिए प्रासंगिक तथ्यों को यथाक्रम तथा तथ्यपूर्ण दृष्टिकोण एवं व्याख्या और यथार्थवाद से सम्बन्धित है तो निःसंदेह गांधी जी विश्व के महान दार्शनिकों की श्रेणी में हैं । "[1]

महात्मा गांधी ने सत्य अहिंसा व प्रेम को एक ऐसा आधार स्तम्भ माना है जिससे व्यक्ति, समाज, राष्ट्र,अन्तर्राष्ट्रीय व पारस्परिक स्वावलम्बन, व निर्भरता, श्रम निष्ठा के भाव को प्रतिपादित किया जा सकता है और एक सार्वलौकिक स्वतंत्र मानव लोक की स्थापना की जा सकती है । महात्मा गांधी जी एक ऐसे दार्शनिक थे जो अपने दार्शनिक विचारों को व्यवहार की कसौटी पर कसने के लिए सदैव तैयार रहते थे ।

1- पटेल, एम०एस० : "द एजूकेशनल फिलॉसफी ऑव महात्मा गांधी, अहमदाबाद ।

उनके समस्त दार्शनिक विचार प्रयोगीय थे । उन्होंने भारतीय दर्शन को व्यावहारिक रूप प्रदान किया है ।

सत्य के प्रति महात्मा गांधी के विचार :-

महात्मा गांधी ने जीवन में नये मूल्यों की सृष्टि की थी । मानव समाज की सेवा करना उनका धर्म हो गया था । इसीलिये वे भारत माता व सम्पूर्ण समाज का अपने को तुच्छ सेवक मानते थे । गांधी जी किसी नये धर्म की स्थापना व नये सत्य का प्रतिपादन करना नहीं चाहते थे । महात्मा गांधी सम्पूर्ण जीवन सत्यान्वेषी रहे हैं । विश्व के महान दार्शनिकों में महात्मा गांधी जी वह दार्शनिक थे जिन्होने लोगों का ध्यान परिवर्तित होने बाले मूल्यों, तथ्यों एवं आदर्शों की ओर आकर्षित किया था , और समग्र मानव जाति को वर्तमान जीवन में सत्य की अनुभूति करने की प्रेरणा दी थी । उनके जीवन का लक्ष्य यह था कि "सत्" को वह जैसा जाने व अनुभव किये थे वैसा ही उसे समस्त मानव के समक्ष प्रस्तुत करना चाहते थे । वे पुराने सत पर नया प्रकाश डालना चाहते थे । इस प्रकार वे सत् के शोधक व साधक थे । उन्होंने पुराने सिद्धान्तों को नये रूप में प्रस्तुत किया है यही उनकी विशेषता है । जिन मूल्यों को इन्होंने अपने जीवन में अनुभव किया तथा प्रयोग किया एवं खोजा था उन्हें अपनी पुस्तक"मेरे सत्य के प्रयोग" में अंकित किया है । उनका सम्पूर्ण जीवन प्रयोगमय था । महात्मा गांधी ने स्वय सत्य के प्रति अपने विचार प्रकट करते हुये लिखा

है :-

" मैं तो पुजारी सत्य रूपी परमेश्वर का हूँ, वही एक सत्य है और अन्य सब मिथ्या है --सत्य मुझे मिला नहीं है पर मै इसका शोधक हूँ ---सत्य के शोधक को रजकण से भी छोटा होकर रहना पड़ता है।"[1]

ब्रज कृष्ण चाँदीवाल ने महात्मागांधी जी के सम्बन्ध में इसी तथ्य को इस प्रकार प्रकट किया है :-

" गांधी जी ने कभी यह दावा नहीं किया कि वे कोई अवतारी पुरूष थे --उन्होंने कभी किसी नये पंथ को स्थापित करने की इच्छा नहीं की। वह किसी नये सत्य का प्रतिपादन करने नहीं आये थे वे पुराने सत् पर नया प्रकाश डालना चाहते थे -- वे पुराने सिद्धान्त को फिर से संसार के सामने रखना चाहते थे।"[2]

महात्मा गांधी जी की दार्शनिक विचारधारा गीता के दर्शन पर आधारित है। महात्मा गांधी जी के दार्शनिक विचारों के बीज हमें वेद, गीता, उपनिषद, जैन, बौद्ध तथा पाश्चात्य दर्शनों में भी उपलब्ध होते हैं। गांधी जी अद्वैतवादी दार्शनिक है। भारतीय दर्शन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है। गांधी जी भी शिक्षा व जीवन का अन्तिम व सर्वोच्च

1- महात्मा गांधी : आत्म कथा -प्रस्तावना, पृष्ठ-6-7 ।

2- ब्रज कृष्ण चाँदीवाल-बापू के चरणों में" स०सा०मं०, नईदिल्ली, 1949 पृष्ठ-104-5

लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति, आत्मानुभूति तथा सत्य का साक्षात्कार करना मानते हैं ।

वे ईश्वर व सत्य में भेद नहीं मानते है । उनके लिए ईश्वर सत्य है और सत्य ही ईश्वर है, किन्तु ईश्वर सत्य है कहने की अपेक्षा वे सत्य ही ईश्वर है कहना ज्यादा उचित मानते हैं, क्योंकि ऐसा कहने से वे नास्तिक जो ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते हैं वे सत्य की शक्ति को इन्कार नहीं कर सकते हैं । गांधी जी समस्त मानव को सत्य की मात्र चिनगारी मानते हैं, ईश्वर को प्रेम पूर्ण मानते हैं, उनके अनुसार मानव सेवा समाज सेवा, देश सेवा, ईश्वरीय सेवा का एक भाग हैं । इन सेवाओं से ही व्यक्ति ईश्वर की अनुभूति कर सकता है । महात्मा गांधी का विचार है कि यदि कोई अहिंसक ढ़ंग से सत्य को नहीं बोल सकता है तो सत्य न बोलना ही ठीक है । महात्मा गांधी के अनुसार मानव को अपने व्यक्तिगत "स्व" को सम्पूर्ण मानव के "स्व" के साथ एकीकरण करके ही आत्म लाभ करना चाहिये ।

गांधी जी ने लिखा है :-

> " सत्य शब्द "सत्" से बना है । सत् का अर्थ है " अस्ति" सत्य अर्थात अस्तित्व । --- परमेश्वर का सच्चा नाम ही "सत्" अर्थात सत्य है । इसलिए परमेश्वर सत्य है । --- सत्य के साथ ज्ञान, शुद्ध ज्ञान अवश्यंभावी है । जहाँ सत्य नहीं है वहाँ शुद्ध ज्ञान की सम्भावना नही है । इससे ईश्वर नाम के साथ चित् अर्थात ज्ञान

शब्द की योजना हुई है और जहाँ सत्य ज्ञान है वहाँ आनन्द ही होगा। ---- इसी लिये ईश्वर को "सच्चिदानन्द" कहा जाता है।"[1]

उन्होंने आगे भी कहा है कि :-

"साधारणतः सत्य का अर्थ सच बोलना मात्र ही समझा जाता है, लेकिन हमने विशाल अर्थ में सत्य का प्रयोग किया है। विचारों में, वाणी में, और आधार में सत्य का होना ही सत्य है।"[2]

महात्मा गांधी जी के उपर्युक्त कथन से यह प्रतीत होता है कि वे सत्य को दो रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं, एक निरपेक्ष तथा दूसरा सापेक्षिक सत्य। सापेक्षिक सत्य प्रयोगीय, सार्वजनिक एवं वस्तु निष्ठ सत्य है। यह प्रत्यक्ष ज्ञान को महत्व देता है किसी अतीन्द्रिय ज्ञान से उसका कोई प्रयोजन नहीं है। महात्मा गांधी सापेक्षिक ज्ञान के माध्यम से निरपेक्ष ज्ञान की ओर मानव को ले जाना चाहते हैं। सत्य को बिना व्यवहार में लाये निरपेक्ष सत्य की अनुभूति नहीं हो सकती है। महात्मा गांधी का सापेक्षिक सत्य जैन दर्शन के "स्यादवाद" शिलर के तथा जॉन डिवी के साधनवाद व व्यावहारवाद, प्रोटोगोरस के विज्ञानवादी सापेक्षवाद, व्हाइट हैड के वस्तुवादी सापेक्षवाद तथा पीरो के संशयवाद के समान है। व्यावहारवाद, साधनवाद तथा महात्मागांधी

1- "बापू की सीख" सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1952, पृ0-29
2- - तदैव - पृष्ठ-30

का सापेक्षिक सत्यवाद, विज्ञानवादी है, जबकि स्यादवाद वस्तुवादी है । महात्मागांधी सापेक्ष सत्य को विशेष महत्व नहीं देते है, बल्कि उसे निरपेक्ष सत्य की अनुभूति का साधन मानते हैं । सापेक्षिक सत्य के सम्बन्ध में राधा कृष्णनने लिखा है :-

> "इससे हमें केवल आपेक्षिक अथवा अर्ध सत्य का ही ज्ञान हो सकता है,---- स्यादवाद हमें अर्ध सत्य के पास लाकर पटक देता है और इन्हीं सत्यों को पूर्ण सत्य मान लेने की प्रेरणा करता है -- वह पूर्ण सत्य नहीं कहा जा सकता है ।"[1]

हमने पहले ही देखा है कि गांधी जी का दर्शन गीता के दर्शन पर आधारित है । बिना सम्यक कर्म के कोई भी व्यक्ति ज्ञान सम्पन्न नहीं हो सकता है । गीता के इस संदेश को "कर्मण्ये वाधिकारस्ते मां फलेषु कदाचन"[2] तथा "योगस्थः कुरू कर्माणि संग व्यक्त्वा धनन्जय।"[3] महात्मा गांधी ने जीवन में आत्मसात कर लिया था ।

गांधी दर्शन में गीता की भाँति विश्वास,कर्म व ज्ञान की त्रिवेणी पाई जाती है । इसीलिये गांधी जी कहते हैं कि :-

> "गीता शास्त्रों का दोहन है ।---- सारे उपनिषद का निचोड है --- । आज मेरे लिए गीता केवल बाइबिल नहीं है, केवल कुरान नहीं है, मेरे लिए माता हो गयी है । ---- गीता निराश होने

1- डॉ0 राधा कृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग-प्रथम,पृष्ठ-305-63

2- गीता, 2।47

3- गीता, 2।48

बाले को पुरूषार्थ सिखाती है आलस्य व व्यभिचार का त्याग बताती है ।"[1]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि महात्मा गांधी जी पूर्ण सत्य के पक्षधर है, इनके अनुसार सत्य का ही वास्तविक अस्तित्व है । ईश्वर इन्द्रिय एवं बुद्धि से परे है । इसलिए महात्मा गांधी जी चाहते हैं, कि मानव का अनुभव बुद्धि से परे भी होना चाहिये, किन्तु इसके लिए आवश्यक है कि मानव में जीवन्त विश्वास हो । महात्मा गांधी जी कहते हैं कि :-

"विश्वास छठी इन्द्रिय की भाँति है वह उन तत्वों को सुलझाने में भी काम करता है जो तर्क की सीमा से भी परे हैं ।"[2]

महात्मा गांधी जी सुकरात की भाँति विश्वास करते हैं कि मनुष्य को स्वाभाविक रूप से भौतिक संसार से स्वतंत्रता की खोज करनी चाहिये,परन्तु महात्मा गांधी जी व सुकरात के विश्वास में अन्तर है । महात्मागांधी जी इस बात में विश्वास नहीं करते हैं कि जब तक आत्मा स्वयं को इस शरीर के बन्धन से एक बार अलग नहीं कर लेती तब तक बुद्धि विचार प्रक्रिया से पूर्णता प्राप्त नहीं की जा सकती बल्कि उनका विश्वास है कि इस संसार में रहकर, पाशविक

1- गांधी- " बापू की सीख" सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली 1949, पृष्ठ-85, 86, 87 ।

2- हरिजन- 6-3-37 ।

वासनाओं पर संयम प्राप्त कर इन्द्रियजित होकर पूर्ण सत्य का साक्षात्कार किया जा सकता है । महात्मा गांधी जी के इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि शरीर श्रम या क्रियाशीलता की उपेक्षा की जावे । वे तो "कर्म" को जीवन में ईश्वरानुभूति का माध्यम मानते हैं । वे सामाजिक सेवा के जीवन को ही ईश्वर के जानने व, अनुभव करने का सच्चा मार्ग व साधन मानते हैं । इसीलिए जीवन में शरीर -श्रम को महत्व देते हैं । उनकी मान्यता थी कि ईश्वर को उसकी सृष्टि में उसके कार्यों में ही खोजा व पाया जा सकता है । "सत्य" को "कर्म" से ही प्राप्त किया जा सकता है । उनका विचार है कि ईश्वर को सदैव सक्रिय, क्रियाशील समझते हुये दृढ़ता पूर्वक जीवन में क्रियाशील रहकर ही तथा उसकी सृष्टि की सेवा करके ही उसे अनुभव किया जा सकता है ।

महात्मा गांधी की दृष्टि में ईश्वर "सत्यं, शिवं, व सुन्दरम् है, क्योंकि ये मूल्य शाश्वत तथा वस्तु निष्ठ मूल्य हैं । इनका निर्माण मानव मन से नहीं होता है । मानव को क्रियाशील होकर सत्यं, शिवं तथा सुन्दरम् जीवन व्यतीत करके इसकी अनुभूति करनी चाहिये । महात्मा गांधी के अनुसार बौद्धिक क्रियाशीलता तभी औचित्यपूर्ण कही जा सकती है जब विचार क्रिया में बदले जायें ।

महात्मा गांधी जी शाश्वत मूल्य का अस्तित्व न तो मानव मन का प्रक्षेपण मानते हैं और न तो सामाजिक

प्रक्रिया की उपज। उस दर्शन को जो सत्यता को पूर्ण निरा-कारी मानता है,उसे गांधी जी मान्यता नहीं देते है, क्यों कि वह व्यक्तिगत मूल्यों और नैतिकता के विनाश के रूप में भी घटित हो सकता है और उन मानक स्तरों को समाप्त कर सकता है जो व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

महात्मा गांधी सत्य की अनुभूति संसार में रहकर करना व कराना चाहते हैं। यह अनुभव जीवन की निरन्तरता में निहित है। जब तक जीव को पूर्ण सत्य का अनुभव नहीं होता है तब तक मानव के जीवन की निरन्तरता चलती रहती है। सत्यानुभूति को ही वे ब्रहम समझते है, जो व्यवहार से परे नहीं है। उनके दृष्टिकोण से वर्तमान जीवन ही अन्तिम नहीं है, बल्कि प्राणी प्रत्येक जीवन में उस पूर्णता की प्राप्ति का प्रयास करता रहता है इसलिए वह पूर्णता ही सत् व ब्रहम है। इस ब्रहम की अनुभूति पंच कोषोंपर निर्भर है।

महात्मा गांधी जी ने इन कोषों को जीवन में विजित कर लिया था, अनुभव कर लिया था और अपने जीवन रूपी प्रयोगशाला की प्रायोगिक कसौटी पर परख लिया था। यही सर्वश्रेष्ठ अद्वैतवादी अनुभूति की उनकी व्यावहारि-कता एवं भौतिकता थी। अन्नादि, भौज्यपदार्थ तथा वस्त्रादि कापरित्याग कर केवल शरीर रक्षार्थ उनके प्रतीकों को धारण कर अन्नमय कोष की अनुभूति, पत्नी के साथ सहयोगी भावना का निर्माण कर कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण तथा प्राणायाम द्वारा

निद्रा को वश में कर प्राणमय कोष की अनुभूति कर ली थी। ब्रहमचर्य व्रत का पालन कर महात्मा गांधी जी अपनी कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों के सम्राट बन चुके थे। मन की एकाग्रता व बुद्धि की सजगता का उन्हें स्वाभाविक अभ्यास हो चुका था। इसी-लिए उनके कार्यों की कोई पूर्व योजना नहीं बनती थी, बल्कि समयानुकूल तुरन्त कार्य प्रारम्भ हो जाता था, किसी भी समस्या के प्रति समाधानात्मक निर्णय लेने मे बिलम्ब नहीं लगता था उनकी यह प्रकृति मनोमय एवं विज्ञानमय कोषों की अनुभूति की परिचायिका है।

महात्मा गांधी जी मानव मात्र में एक ही आत्म तत्व की अनुभूति करते थे। दिल्ली उपवास काल में उन्होने स्वयं कहा था।:-

"प्राणी मात्र में एक ही आत्मा है, अत: मैं निर्दय व्यक्ति की आत्मा से भी अपने को अलग नहीं रख सकता हूँ मैं अपने ही ढंग से उसी में तल्लीन हूँ।" [1]

महात्मा गांधी जी एकेश्वरवादी थे। उन्होने लिखा है :-

"मैं ईश्वर की पूर्ण एकता में और इसीलिए सारी मानवता की पूर्ण एकता में भी विश्वास करता हूँ। शरीर की भिन्नता होते हुये भी मुझमें आत्मा एक है।" [2]

1- यंग इण्डिया, 11-10-28 ।

2- - तदैव -

महात्मा गांधी जी सम्पूर्ण मानव को आत्मधारी होने के कारण समान समझते थे । महात्मा गांधी जी संसार के सभी प्राणियों का भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास करना आवश्यक मानते हैं । यही गांधी के गीता दर्शन की नूतन व्याख्या है । इसी पर गांधी दर्शन व गांधीवाद या सर्वोदय दर्शन आधारित है ।

गांधी का सर्वोदय दर्शन, दर्शन का वह विचार सम्प्रत्य है जो ईश्वर को सृष्टिकर्ता तथा उसे जगत में व्याप्त मानकर आत्मा को ईश्वर का अंश स्वीकार करते हुये जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष या ईश्वर प्राप्ति या अनुभूति करना स्वीकार करता है । महात्मा गांधी जी चाहते थे कि मानव अपने व्यक्तिगत अहं को सारे जगत के साथ एकाकार करके आत्म लाभ प्राप्त करें । ज्ञान, इच्छा व कर्म की जीवन त्रिवेणी है । सत्य बोलनाही सत्य नहीं है अपितु विचार, भाव, भाषण व कर्म में सत्यता का पाया जाना आवश्यक है । उनका कथन है :-

" केवल ईश्वर ही सत्य है, संसार माया है,
सृष्टि के परिवर्तन में केवल वही स्थिर है । "[1]

अपनी ईश्वर के प्रति आस्था को प्रकट करते हुये उन्होने लिखा है :-

---

1- यंग इण्डिया 11- 10- 28

" यदि कोई मेरी आँखे निकाल ले, नाक काट ले, मैं नहीं मर सकता हूँ, किन्तु यदि कोई मुझ से ईश्वर के प्रति विश्वास को हटा लें, तो मैं शीघ्र ही मर जाऊँगा ।"[1]

महात्मा गांधी जी के मतानुसार ईश्वर में विश्वास करने वाला सभी धर्मों में समान रूप से विश्वास रखता है । ईसा व मुहम्मद साहब के जीवन से उन्हें प्रकाश मिला था, उन्होने सभी धर्मों के प्रति समान विश्वास एवं श्रद्धा उत्पन्न कर ली थी सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने लिखा है :-

" गांधी जी एक नितान्त धार्मिक पुरूष हैं । उन्हें मानवता की एकता में अटूट विश्वास है । हम लोग चाहे जिस जाति, यौन, धर्म, या देश के हो, हम सभी उसी परमपिता परमेश्वर की संतान है, प्रत्येक धार्मिक पुरूष सारी मानवता के साथ अपने सम्बन्ध में विश्वास रखता है ।"[2]

अहिंसा :-

महात्मा गांधी की अहिंसा की विचारधारा जैन दर्शन के अहिंसक विचार से पर्याप्त समता रखती है । जैन दर्शन मन, मन, शरीर व बचन तीनों से हिंसा का परित्याग करना ही अहिंसा मानता है । जैन दर्शन में अहिंसा मुखय है । इसलिए हिंसा इनके यहाँ दो प्रकार की मानी गयी है ।

1- द्रव्य हिंसा ।

2- भाव हिंसा ।

1- गांधी जी, "हरिजन" मई 16, 1938 ।

2- राधा कृष्णन-" अकेजनल स्पीचेस एण्ड राइटिंगस पृष्ठ-247 ।

प्राणी का वध करना या पीड़ा पहुँचाना द्रव्य हिंसा है और अपने मन में प्राणी के वध या कष्ट पहुँचाने का विचार करना भाव हिंसा है । महात्मा गांधी का अहिंसा के प्रति विचार कुछ ऐसा ही है, परन्तु महात्मा गांधी ने अहिंसा के क्षेत्र को जैन दर्शन से अधिक व्यापक बना दिया है । इनके अनुसार अहिंसा कोई स्थूल वस्तु नहीं है । किसी को न मारना ही अहिंसा नहीं है, दुष्ट विचार, असत्य भाषण, बुरा चाहना और किसी वस्तु पर कब्जा करना भी हिंसा है । अहिंसा सत्य रूपी ईश्वर की प्राप्ति का साधन है । अहिंसा साधन और सत्य साध्य है इसलिए साध्यरूपी सत्य का साक्षात्कार अहिंसा रूपी साधन से ही होता है । महात्मा गांधी के शब्दों में :-

> " यह अहिंसा स्थल वस्तु नहीं है । ----कुविचार मात्र हिंसा है । --- मिथ्या भाषण हिंसा है किसी का बुरा चाहना हिंसा है । जगत के लिए जो आवश्यक वस्तु है उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है ----- अहिंसा के बिना सत्य की खोज असम्भव है ।----- अहिंसा को साधन और सत्य को साध्य मानना चाहिये । "[1]

महात्मा गांधी जी के अनुसार साधन का बराबर ध्यान रखने से साध्य की प्राप्ति हो जाती है । गांधी जी अहिंसा के दो पक्ष मानते हैं :-

1- निषेधात्मक जैसे उपरोक्त अहिंसक विचार ।

1- गांधी जी : "बापू की सीख - मंगल प्रभात से, सस्ता साहित्य मंडल, सत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 1952, पृ0-34

2- रचनात्मक - ईश्वर प्रेम, उसका साक्षात्कार एवं सत्य को जीवन के प्रत्येक क्रिया कलावों में भाषित करना ही रचनात्मक अहिंसा है । गांधी जी सम्पूर्ण जीवन को सत्य के लिए एक प्रयोग मानते थे , इस प्रयोग में अहिंसा ही साधन है ।

पिता की प्रतिक्रिया से अहिंसा की अनुभूति उन्हे बाल्यावस्था में ही हो गयी थी । इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी जी ने कहा है :-

> " मेरे लिए यह अहिंसा का प्रथम पाठ था । -- आज मै उसे शुद्ध अहिंसा का नाम दे सकता हूँ । ऐसी अहिंसा के व्यापक रूप धारण कर लेने पर उसके स्पर्श से कौन अछूता रह सकता है ? ऐसी व्यापक अहिंसा की शक्ति की नाप तौल करना असम्भव है । "[1]

महात्मा गांधी जी ने अहिंसा का प्रयोग अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में किया था । यहाँ तक वर्ण व्यवस्था में भी उन्होंने अहिंसा का प्रयोग किया है । इस सम्बन्ध में विनोवा जी ने लिखा है :-

> " वर्ण व्यवस्था की पुरानी कल्पना में नया अर्थ भर कर अथवा उस कल्पना में निहित मूलभूत विचार को ध्यान में रखकर गांधी जी ने उसे स्वीकार किया है मै समझता हूँ कि यह उनका एक अहिंसा का प्रयोग है । "[2]

1- गांधी जी - आत्म कथा - पृष्ठ-33, सस्ता साहित्य मण्डल द्वितीय संस्करण नई दिल्ली- 1951 ।

2- विनोवा- तीसरी शक्ति -पृष्ठ-12, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 2 अक्टूबर 1969 ।

अहिंसा के प्रति महात्मा गांधी जी का विचार उस समय और दृढ़ हो गया जब उन्होने " टालस्टॉय" के ग्रन्थों का विशेष कर इनकी 1893 की पुस्तक "द किंगडम ऑव गॉड एज विदिन यू" का अध्ययन किया । गांधी जी ने स्वयं इसे स्वीकार करते हुये कहा है :-

" उस समय तक मुझे हिंसा से परहेज नहीं था, इस पुस्तक के पढ़ने के बाद मेरा संदेह निवारण हुआ और मैं अहिंसा में दृढ विश्वास करने लगा ।"

महात्मा गांधी "टालस्टाय" को अपना शिक्षक व गुरू मानते थे । दोनों एक दूसरे से पूर्णतः प्रभावित थे । दोनों स्वप्न दृष्टा थे । दोनों ने भविष्य के कुछ स्वप्न सँजोये थे । इनके विचारों व दर्शन की उपादेयता इस समय सबसे अधिक है जब विनाशकारी मानवता के अस्तित्व के लिए जटिल समस्या बनती जा रही है । 19 वीं शदी के अन्तिम वर्षों में महात्मा गांधी जी ने अपनी जीवन पद्धति बदल दी, अपने भौतिक सुखों का त्याग कर दिया और अपने आपको मानव कल्याण के लिए समर्पित कर दिया । महात्मा गांधी जी शारीरिक श्रम में आनन्द की खोज करने लगे, सत्याग्रही परिवार के लिए बनाये गये "केलीन बैग फार्म" को टॉलस्टॉय फार्म के रूप में बदल दिया

सत्य के लिये अहिंसा को साधन बनाकर महात्मा गांधी जी एक ऐसे निर्भय समाज का निर्माण कर रहे थे, जिसमें न धर्म-भेद हो, न जाति भेद और न वर्ण भेद, जिसमें न कोई

ऊँच हो न नीच, न अमीर न गरीब और न शासक हो न शासित । महात्मा गांधी के अनुसार जो व्यक्ति अहिंसक होता है वह निर्भय व विनम्र भी होता है । शान्ति सैनिक का हथियार अहिंसात्मक सत्याग्रह है ।

निर्भीकता :-

हिंसा का मार्ग भय पर निर्भर है । अहिंसा का निर्भयता पर । अहिंसा में विश्वास करने वाला न किसी से भयभीत होता है, न किसी के हृदय में भय पैदा करता है । वह मृत्यु को वरण करने का नियम सीखता है न कि मारने का । सत्य, अहिंसा के पुजारी के लिए निर्भयता आवश्यक है । गांधी जी मानते थे कि अहिंसा व सत्य की उपलब्धि निर्भयता से ही हो सकती है । निर्भीक होकर मृत्यु व चोट का भय त्याग कर हरेक व्यक्ति को अन्य का हृदय प्रेम व दया से जीतना चाहिये । भय व कायरता महात्मा गांधी जी के शब्द कोष में नही था । अपने जीवन में महात्मगा गांधी जी ने सभी का वीरता पूर्वक सामना किया था । उनकी यह लड़ाई असत्य, हिंसा व पशुबल से थी । महात्मा गांधी जी की महानता उनकी निर्भयता में निहित थी । इनके अनुसार अहिंसा, सत्य और निर्भयता के गुण उसी व्यक्ति में होते हैं जिसमें चरित्र बल होता है । इसीलिए उन्होंने ब्रहमचर्य व्रत पालन पर विशेष जोर दिया था ।

महात्मा गांधी जी के अनुसार मानव का कर्तव्य है

कि वह पाप से असहयोग करे, अन्याय व अत्याचार का विरोध करे परन्तु अत्याचारी के प्रति प्रतिकार का भाव निर्मित करना स्वयं पर आक्रमण करने के समान है । पापी से घृणा न कर पाप से घृणा करनी चाहिये । पापी व अत्याचारी भी एक मानव होने के कारण दैवी शक्ति सम्पन्न हैं । इनका अपमान करना, उसमें निहित दैवी शक्ति का अपमान है । महात्मा गांधी जी के अनुसार निर्भीकता का अर्थ समस्त वाहय भयों जैसे बीमारी, शारीरिक आघात, मृत्यु, पदच्युत आदि के भय से मुक्त होना है । शान्ति महात्मा गांधी जी को प्राण थे, वे बाहय एवं आंतरिक शान्ति के मनोरम वातावरण में विचरण करने के अभ्यस्त हो गये थे । वे समस्त विश्व को एक ही प्रेम सूत्र में बाँधना चाहते थे, यहाँ तक कि महात्मा गांधी जी अंग्रेज जाति से भी घृणा नहीं करते थे, बल्कि उनका विरोध शासक वर्ग की नीति से था । महात्मा गांधी जी "विश्वात्मा" में विश्वास करते थे । इस सम्बन्ध में कृपलानी ने लिखा है :-

> " विश्व में सर्वत्र व्याप्त सत्य का साक्षात दर्शन पाने के लिए सृष्टि में जो सबसे हीन है उसको भी अपने ही जैसा मानना होगा । "[1]

कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने गांधी दर्शन के सम्वन्ध में निम्न पंक्तियाँ लिखी है :-

---

1- आचार्य कृपलानी- " गांधी दर्शन" - पृष्ठ-42

" मनुष्यत्व का तत्व सिखाता, निश्चय
हमको गांधी वाद ।
सामूहिक जीवन-विकास की साम्य,
योजना है अविवाद ।"

समाज में रहकर मानव मात्र से प्रेम करना व सेवा करना ही महात्मा गांधी जी ईश्वर सेवा मानते थे । इस आदर्श को जीवन पर्यन्त निभाते रहे हैं ।

सर्वधर्म समन्वयवादिता :-

महात्मा गांधी जी प्रवृति धर्म के प्रति बचपन से ही थी । उन्होने किसी नवीन धर्म को प्रचारित नहीं किया है ।वे सनातनी थे, किन्तु वर्तमान सनातन धर्म की संकीर्णता का परित्याग कर उसकी विशालता को ही सच्चा सनातम धर्म मानते थे । उनके नूतन सनातन धर्म में प्रेम का स्थान प्रमुख था अमित्रता को उन्होंने कभी भी प्रश्रय नहीं दिया । इस कारण यदि उन्हें मानवता का अवतार माना जाय तो कोई भी अत्युक्ति न होगी ।

तत्कालीन सनातन धर्म में व्याप्त अस्पृश्यता, लघुता व बड़प्पन की भावना को महात्मा गांधी जी समाज के लिए विष तुल्य व कालरूप में मानते थे । उनका मत था कि यदि हिन्दू धर्म अपना महत्व बनाये रखना चाहता है तो उसे सवर्ण अवर्ण का अन्तर समाप्त करना होगा । वे सर्वधर्म समानता को मानने वाले थे । उनके मत से प्रत्येक धर्मएकहीं सत् की ओर ले

जाने वाले भिन्न-भिन्न मार्गों का प्रतिपादन करते हैं ।

तत्कालीन हिन्दू धर्म की कमियाँ उन्हें खटक रही थी, इस सम्बन्ध में उन्होने लिखा है :-

" हिन्दू धर्म की --- अस्पृश्यता यदि हिन्दू धर्म का अंग हो तो वह सड़ा हुआ फालतू अंग जान पड़ा । अनेक सम्प्रदायों तथा अनेक जाति, उपजातियों के अस्तित्व का औचित्य मै नहीं समझ सका --- वेद ईश्वर प्रणीत हैं तो बाइविल और कुरान क्यों नहीं ?"[1]

उपर्युक्त कथन उनकी सर्व धर्म समानता की जिज्ञासा को प्रकट करता है । सर्वधर्म समानता की भावना को पुष्ट करने के लिए ही उन्होने प्राय: सभी धर्म के धर्म ग्रन्थों जैसे "सेल" का कुरान टीका, किंग्स फोर्डके की "उत्तम मार्ग", बाइविल का नया अर्थ", टालस्टॉय की "बैकुण्ठ तुम्हारे हृदय में" व "नव विधान का सार" और "क्या करें" कविराय चन्द्रकी प्रेषित पुस्तकें "पंचीकरण, मणिरत्न माला, योग वासिष्ट का "मुमुक्ष प्रकरण", हरि भद्र सूरि का "षडदर्शन समुच्चय", नर्मदा शंकर का "धर्म विचार" मैक्स मूलर की "भारत क्या सिखाता है," थियो सोफिकल सोसाइटी द्वारा प्रकाशित "उपनिषदों का भाषान्तर वाशिंगटन अरविंग कृत "मुहम्मद का चरित्र" कार्लाइल की "मुहम्मद स्तुति" "जरथुस्त के बचन", तथा "लाइट ऑव एशिया" आदि का मनन व चिन्तन किया था ।

1- गांधी जी-आत्म कथा भाग-2, "धार्मिक मन्थन", पृष्ठ-172
सस्ता साहित्य मण्डल, दसवां संस्करण, 1951 ।

"इन पुस्तकों ने मेरे हृदय पर गहरा असर डाला। विश्व प्रेम मनुष्य को कहाँ तक ले जा सकता है इसे मैं अधिकाधिक समझने लगा।"

सत्याग्रह :-

पिछले पृष्ठों में यह कहा गया है कि महात्मा गांधी जी ने अपने बाल्यकाल में ही "सत्य" और "अहिंसा" की शिक्षा प्राप्त कर ली थी। यद्यपि इस शिक्षा का प्रारम्भिक रूप सैद्धान्तिक था। इन सिद्धान्तों को अपने भावी जीवन में व्यावहारिकता प्रदान करने के लिए उन्होंने इनका हर स्थिति एवं परिस्थिति में चाहे वह सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं राजनैतिक रही हो, प्रयोग किया था।

महात्मा गांधी जी ने संसार को एक नया दर्शन प्रदान किया था। वह "अहिंसात्मक प्रतिरोध" तथा एक नूतन मंत्र "सत्याग्रह" था "आत्म शुद्धि ब्रहमचर्य व्रत" उनके जीवन में अप्रत्यक्ष रूप से "सत्याग्रह" की सृष्टि कर रहे थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है :-

> "----- जो आत्म शुद्धि मैनें की, वह मानों सत्याग्रह के लिए ही हुई हो। आज मैं पाता हूँ कि ब्रहमचर्य व्रत लेने तक की मेरे जीवन की मुख्य घटनावली मुझे अप्रत्यक्ष रूप से उसी के लिये तैयार कर रही थी।"[1]

1- गांधी - एम0के0- "सत्याग्रह की उत्पत्ति" आत्मकथा-पृष्ठ-401 सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली-5।

दक्षिण अफ्रीका के जीवन तथा वहाँ के संग्राम का इतिहास ही महात्मा गांधी जी के सत्य के प्रयोगों का इतिहास है । इन्होंने सत्य की रक्षा के लिये अपना जीवन बलिदान कर दिया । सत्य के पथ पर चलने वाले को बलिदान की कसौटी पर आरूढ़ होना ही पड़ता है । "टालस्टॉय" को भी सत्य हेतु अपने जीवन का बलिदान करना पड़ा । सत्य के लिये "सुकरात" को विषपान करना पड़ा, परतंत्रता के विरूद्ध संघर्ष करने वाले " लिंकन " को भी हत्या की गई । नागरिक अधिकारों के लिये संघर्षरत " मार्टिन लूथर किंग " मारे गये । महात्मा गांधी जी को भी इस प्रकार " सत्य " " अहिंसा " एवं "सत्याग्रह" का संदेश बिखेरते हुये अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी । महात्मा गांधी जी एक क्रियावादी क्रान्तिकारी थे । परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ उनके क्रिया कलाप भी बदलते गये ।

महात्मा गांधी जी सत्याग्रह को आत्मा की शक्ति मानते थे। आत्म संयम, प्रार्थना, एवं आत्म बुद्धि से ही सत्याग्रह की शक्ति प्राप्त होती है ।

महात्मा गांधी ने स्वयं प्रार्थना के विषय में लिखा है :-

"स्तुति, उपासना, प्रार्थना वहम नहीं है । ---- प्रार्थना वाणी का विलास नहीं है । उसका मूल कंठ नहीं हृदय है । अतः यदि हमारा हृदय

निर्मल हो जाय, हृततंत्री के तारों को हम सुसंगठित रखें तो उससे निकलने वाला सुर गगनगामी होता है।"[1]

महात्मा गांधी जी वैज्ञानिक, औद्योगिक तथा सामाजिक उन्नति यहाँ तक की वास्तविक स्वराज्य को भी सच्चे रास्ते से ही प्राप्त करना चाहते थे। वे नीति मार्ग के अवलम्बन कर्ता तथा मानव सद्गुणों के विकास के पक्षधर थे। सद्गुण सत्याग्रह से ही प्राप्त हो सकते थे। इसलिये गांधी जी ने इस सम्बंध में लिखा है :-

"स्वर्ण बनाने वाला पारस मणि दो अक्षरों में अन्तर्निहित है और वह है "सत्य" और "आग्रह"। यदि प्रत्येक भारतवासी "सत्य" का ही आग्रह करेगा तो भारत को घर बैठे स्वराज्य मिल जायेगा।"[2]

महात्मा गांधी जी की विचारधारा व दार्शनिकता के बिन्दु सत्य, अहिंसा, निर्भयता व सत्याग्रह हैं। सत्य की प्राप्ति अहिंसा व प्रेम ही से सम्भव है। गांधी जी के अनुसार जो अहिंसक होता है वही सत्याग्रही है। सत्याग्रही निर्भीक व विनम्र होता है। कोई भी शक्ति शान्ति सैनिक के समक्ष टिक नहीं सकती है। शान्ति सैनिक, शोषण, अन्याय, दासता कुरीति, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, तथा राजनैतिक विषमता

1- गांधी- "आत्म कथा" पृष्ठ-91-92, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली-1951 ।

2- गांधी- "सर्वोदय" (रस्किन के अन्टु दिस लास्ट" का सार) पृष्ठ-48, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, 1952, नवम् संस्करण ।

के प्रति सत्याग्रही होता है । सत्याग्रह ही उसका अस्त्र है । असत्य, धोखा, गोपनीयता का युद्ध क्षेत्र में वह स्थान नहीं देता है ।

इस प्रकार महात्मा गांधी शान्ति, प्रेम, वर्गहीन समाज के पोषक थे और अस्पृश्यता को कलंक मानते थे । सभी उसी ईश्वर की संतान है फिर भेदभाव कैसा ? श्रम के महत्व के प्रतिपालक एवं सच्चे अर्थों में वे एक क्रियावादी थे । उनकी कथनी करनी में एक रूपता थी । वे वास्तव में कर्मयोगी थे । हिन्दू धर्म की गहनता का उन्हें ज्ञान हो गया था । हिन्दू धर्म किसी भी प्राणी में भेदभाव, द्वेष का भाव नही पैदा करता है । वह वास्तव में समस्त धर्मों का प्रवर्तक है । ऐसे हिन्दू धर्म के बारे में उन्होने लिखा है :-

> "निष्पक्ष रूप से विचार करने पर मुझे यह प्रतीति हुई कि हिन्दू धर्म में जैसे गूढ़ व सूक्ष्म विचार हैं, आत्मा का जैसा निरीक्षण है, दया है, वैसा दूसरे धर्म में नही ।"[1]

वे सच्चे अर्थ में सत्यवादी, अहिंसावादी व सत्याग्रही थे । वे गीता के अनन्य उपासक थे । महात्मा गांधी जी के अनुसार कर्मों को उचित ढंग से पालन करने से ही व्यक्ति सिद्धि प्राप्त कर सकता है । गांधी के गीता दर्शन को ही

1- गांधी - आत्म कथा- "धार्मिक मंथन" पृष्ठ-172, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली-1951 ।

"गांधीवाद" कहकर पुकारते हैं । गीता का भाष्य उनके भौतिक विचारों व अनुभवों का द्योतक है ।

महात्मा गांधी के जीवन दर्शन की सबसे बड़ी विलक्षणता यह थी कि वे जो वाणी से उच्चारित करते थे उसे कार्य में प्रकट भी करने की शक्ति रखते थे । उनका कथन उनकी आंतरिक अनुभूति का प्रतिफल होता था । वे सचमुच एक युग पुरुष एवं युग सृष्टा थे । उनकी परम आस्था "परीक्षण" व खोज"में थी । जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उन्होंने जो देखा व सुना तथा अनुभव किया उसका पूर्ण मन्थन, चिन्तन व मनन करने के बाद ही उसे प्रकट किया । यही उनके जीवन की विलक्षणता थी ।

<u>ब्रहमचर्य</u> :-

बहमचर्य की महत्ता के सम्बन्ध में उन्होने लिखा है :-

> "ब्रहमचर्य के सम्पूर्ण पालन का अर्थ ब्रहमदर्शन है । ब्रहमचर्य में शरीर रक्षण, बुद्धि रक्षण, और आत्मा का रक्षण है । --- इसका मुझे दिनवादिन अधिका-अधिक अनुभव होने लगा ।"[1]

महात्मा गांधी जी ने ब्रहमचर्य के तात्विक अर्थ की व्याख्या करते हुये लिखा है :-

---

1- महात्मा गांधी - आत्म कथा- पृष्ठ- 260-61

"ब्रहमचर्य अर्थात ब्रहम की - सत्य की- शोध में चर्या, अर्थात तत् सम्बन्धी आचार । इस मूल अर्थ में सर्वेन्द्रिय-संयम-रूपी विशेष अर्थ निकलता है केवल जननेन्द्रिय संयमरूपी अधूर अर्थ को हमें भूल जाना चाहिये ।"[1]

महात्मा गांधी जी ने ब्रहमचर्य की महिमा को भलीभाँति जान लिया था । यह भक्ति की एक पूर्वावस्था है । भक्ति के लिए मन की पवित्रता, विचार की स्वच्छता, शारीरिक, मानसिक, शुद्धि हेतु किया गया व्रत ही ब्रहमचर्य है । मनुष्य की मनुष्यता अपनी इच्छा से अपने को संयमित करने में है । स्व नियन्त्रण ब्रहम प्राप्ति की पूर्वपीठिका है । गांधी जी ने निम्न प्रकार व्यक्त किया है :-

"वह ।ब्रहमचर्य। शारीरिक वस्तु नहीं है -- शुद्ध ब्रहम चर्य में तो विचार की मलिनता भी नहीं होनी चाहिये, पूर्ण ब्रहमचारी के मन में स्वप्न में भी विकार युक्त विचार नहीं आते और जब तक ऐसे विकारी विचार स्वप्न में आते हों तब तक ब्रहमचर्य को अति अपूर्ण मानना चाहिये ।"[2]

इस प्रकार महात्मा गांधी जी अपने जीवन में ब्रहमचर्य व्रत, उपवास, प्रायश्चित, आदि को सबसे अधिक महत्व देते थे । महात्मा गांधी के अनुसार ईश्वर दर्शन से समस्त संशय निवृत हो जाते हैं ।

1- "बापू की सीख" मंगल प्रभात से" पृष्ठ-39 सस्ता साहित्य प्रकाशन, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली-1952 ।

2- गांधी आत्म कथा, पृष्ठ-399

अतः भारतीय दर्शन में जीवन को जितना संस्कारित बनाने के लिए आवश्यक था उन आवश्यक तत्वों को उन्होने अपने जीवन में अपनाया था । ज्ञान व सत्य के शोधक के लिए यह आवश्यक भी है ।

महात्मा गांधी जी ने सर्वव्यापी एकात्म तत्व को ही ब्रहम की उपाधि से युक्त किया है । उनका अद्वैत वेद विहित अद्वैत ही है । महात्मा गांधी जी की दार्शनिक विचार धाराओं का जो विवरण अब तक प्रस्तुत किया गया है उसके इस रूप की आज हमें खोज करनी है कि महात्मा गांधी ने सत्य, अहिंसा, प्रेम, सत्याग्रह, मानवसेवा, श्रम आदि विचारों को व्यवहार में किस प्रकार प्रकट किया है । क्योंकि जब तक कोई भी विचार व्यावहारोपयोगी नहीं बन जाता तब तक हम उसे वास्तविक शिक्षा की परिधि में शामिल नहीं कर सकते हम जानते हैं कि सिद्धान्त व विचार का महत्व तभी है जब वह सर्व जन प्रयोगीय हो सके, हमें महात्मा गांधी जी के समस्त दार्शनिक मतों को जीवन में कैसे प्रयोग किया जाय, और व्यवहार में लाने के लिए गांधी जी ने कौन सी विधि व प्रक्रिया का वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत किया है, देखना, खोजना व अनुभव करना है ।

महात्मा गांधी द्वारा मानव की अवधारणा :-

महात्मा गांधी जी व्यक्ति के व्यक्तित्व को महत्व प्रदान करते हैं । महात्मा गांधी जी की दृष्टि में मानव हाड़

मांसका पुतला ही नही है बल्कि आत्मयुक्त चेतन प्राणी है ।
उनके जीवन के प्रत्येक विचार में आत्म तत्व के विचार का
भाव निहित है । जब महात्मा गांधी जी कहते हैं कि :-

"व्यक्ति सर्वोत्तम विचारणीय प्राणी है ।"[1]
तब वे मानव आत्मा के महत्व पर जोर देते है ।
मानव व्यक्तित्व को महात्मा गांधी जी पवित्र
मानते है क्योंकि मानव में जो आत्मा है वह
ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । यही उनका
अद्वैत में विश्वास है । वे मानते हैं कि प्रत्येक
मनुष्य अनिवार्य रूप से उसी ब्रह्म से बंधा हुआ है
और अभिन्न है । इनके अनुसार "यह आत्म स्वरूप
ईश्वर मानव को ईश्वर सृष्टि का दास बनाती
है न कि इसका स्वामी ।"[2]
इसका यह तात्पर्य है कि जो कुछ एक शरीर के
लिए घटित होता है वही सम्पूर्ण पुद्गल और
समस्त जीव को प्रभावित करता है ।"[3]
यही कारण है कि महात्मा गांधी जी विश्वास
करते है कि "जब एक मानव आध्यात्मिक शक्ति
को प्राप्त करता है तब सम्पूर्ण मानव समुदाय
उसी सीमा तक उसे प्राप्त करता है और यदि
एक मानव पतित हो जाता है तो उसी सीमा
तक सम्पूर्ण मानव पतित हो जाता है ।[4]
महात्मा गांधी जी के इन तथ्यों में विश्व शिक्षा
का सार निहित है ।

1- यंग इण्डिया, 13-11-24
2- हरिजन, 26-12-36
3- वही 26-11-38
4- यंग इण्डिया 4-12-24

गांधी दर्शन में मानव के मध्य की एकता का विचार सार्वभौमिक एकता की अवधारणा से लिया गया है । उनका कथन है :-

"मेरी विचारधारा से उच्च खानदान या वंश परम्परा से प्राप्त श्रेष्ठता नहीं है । मै मूल अद्वैत सिद्धान्त में विश्वास करता हूँ ।--- इसलिए किसी भी मानव पर अपनी श्रेष्ठता प्रकट करना मेरे लिये अमानवीय कार्य होगा । --- जो व्यक्ति अपने को दूसरों से श्रेष्ठ समझता है वह उसी मानव की कोटि से अपने को नीचे गिरा लेता है और मानव कहलाने का अधिकारी नहीं रहता है ।"[1]

जैसा कि प्रो0 एनीरिन रीड कहते है :-

"मानव वास्तव में समान नहीं है और न तो सभी मनुष्य 5 फीट 10 इंच के हैं अथवा समान रूप से बुद्धिमान । परन्तु एक वास्तविक तथ्य है कि अंत [illegible] में सभी मनुष्य समान है, तथ्य व मूल्य एक दूसरे से बँधे हुये है । यही ईसाई धर्म भी कहता है कि प्रेम के ईश्वर ने सभी मनुष्य को व्यक्तिरूप में उत्पन्न किया है । इसलिए प्रत्येक व्यक्ति बहु-मूल्य है । उत्पन्न हुये प्रत्येक व्यक्ति की यह महत्व पूर्ण कृतज्ञता है कि वह प्रत्येक से उसी तरह प्यार करे जैसे ईश्वर पुत्रों से ।"[2]

1- यँग इण्डिया, 29-9-47 ।

2- रीड एल0ए0"समफन्डामेन्टल क्वश्चेन्स रेज्ड वाई ऐजूकेशंस, न्यू रोल डबिन्सन इडिशनइन ए चेन्जिगवर्ल्ड, आक्सफोर्ड, 1951, पृ0-118

इसी एकता के सम्प्रत्य को महात्मा गांधी जी ने की थेहन को लिखे पत्र में इस प्रकार व्यक्त किया है :-

"सभी मानव समानरूप से पैदा हुये हैं, कोई एक दूसरे से शारीरिक एवं मानसिक रूप से मजबूत व कमजोर हो सकता है इसलिए बाहय रूप से दो के बीच एकता नहीं है परन्तु उनमें एक आवश्यक एकता उपस्थित है । ---- अणुओं के मध्य यह पूछना कि कौन सा अणु बडा है, व्यर्थ है,उसी तरह मानवों में कौन बड़ा है पूछना व्यर्थ है । वंशानुक्रम से हम समान हैं । जातीय अन्तर, वर्ण अन्तर, मन शरीर का अन्तर, जलवायु और प्रकृति का अन्तर क्षण भन्गुर है ।"[1]

पूर्व जन्म के कर्म एवं स्वतंत्र इच्छा शक्ति :-

हिन्दू दर्शन मानवों की असमानता का कारण कर्म को मानता है । मानव के वर्तमान जीवन की घटनाये एवं परिणाम भूतकाल अथवा अतीत जीवन में किये गये कर्मों का परिणाम है । इसलिए वर्तमान उसी का बनाया हुआ है । हिन्दू दर्शन की परम्परा के अनुसार महात्मा गांधी भी "कर्म के सिद्धान्त" अथवा पुनर्जन्म के सिद्धान्त" में विश्वास करते हैं ।"[1] महात्मा गांधी जी इस सिद्धान्त को मानव के आत्मा विकास के लिए मान्यता देते है न कि उस पुनर्जन्म के रूप में जो जन्मान्तर की की श्रृंखला का निर्माण करती है ।

1- हरिजन- 13-3-37

2- यंग इण्डिया, 5-6-24 ।

"पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुसार इस जीवन का थोड़ा सा भी प्रयत्न व्यर्थ नहीं जाता है ।"[1]

क्योंकि यह मानव को बार-बार प्रयत्न करने का अवसर प्रदान करता है जो इस जीवन में आत्मानुभूति नहीं कर पाता वह पुनः अवसर प्राप्त करता है । कार्य का नियम नैतिक निरन्तरता का नियम है । यह इस तथ्य को प्रकट करता है कि वर्तमान कर्म हमारे भविष्य को उत्पन्न करता है । जैसे आज का हमारा वर्तमान भूतकाल के कर्म का परिणाम है । इसीलिये महात्मा गांधी जी कहते हैं कि

> "कर्म का नियम अपरिहार्य व अनमनीय है और इससे बचना असम्भव है । ईश्वर मानव कर्म में किसी भी प्रकार का अवरोध नहीं डालता है, उसने तो नियम बना दिये और अवकाश ले लिया ।"[2]

महात्मा गांधी जी ने लिखा है कि :-

> "किसी ईश्वरीय नियम को तोड़ना उसका परिणाम भोगना है । हम अपने भाग्य के निर्माणक स्वयं है । हम वर्तमान को सुधार अथवा वर्बाद कर सकते हैं और इसी पर भविष्य निर्भर है ।"[3]

महात्मा गांधी जी मनुष्य के जीवन और उसके क्रिया कलापों को पूर्व निर्धारित नहीं मानते हैं । वास्तव में यही कर्म के सिद्धान्त के प्रति महात्मा गांधी जी का विचार था ।

1- यंग इण्डिया, 5-6-24

2= महात्मा गांधी- आत्म कथा "सत्य के मेरे प्रयोग" वैल्यूम-1 गुजराती से अनुवाद, महादेव देशाई, एन0पी 1927, पृष्ठ-563

3= हरिजन, 8-6-47

उनकी मान्यता थी कि यदि मनुष्य का जीवन एवं उसके क्रिया कलाप को पूर्व निश्चित मान लिया जाय तो सभी नीतिशास्त्र सम्बन्धी अथवा बौद्धिक आचरण सम्बन्धी अधिकार समाप्त हो जायेगें। क्योंकि मानव समय प्रक्रिया के भीतर और बाहर दोनों जगह पाया जाता है वह भावात्मक एवं सकारात्मक दोनों है। प्रथम दृष्टिकोण से मानव घटनाओं की श्रृंखला से आबद्ध है और दूसरे दृष्टिकोण से वह स्वतंत्र अर्थात समय प्रक्रिया से स्वतंत्र है, क्योंकि उसी क्षण में वह वही नहीं रहता है, सोचने की योग्यता के कारण वह उससे भी आगे चला जाता है और समय प्रक्रिया को पार कर जाता है अर्थात समय प्रक्रिया को इस प्रकार देखता है मानो वह उसके ऊपर हो। हमारे इस कथन का तात्पर्य यह है कि मानव घटनाओं की तात्कालिक उत्तेजनाओं के अन्दर ही कार्य नहीं करता है वरन् ज्ञान के प्रकाश और कल्पनाओं के अन्दर भी कार्य करता है और अतिंम विचारों के संदर्भ में भी कार्य करता है। मानव में ईश्वर अस्तित्व के सम्बन्ध में महात्मा गांधी जी यह विश्वास करते है कि मनुष्य के पास स्वतंत्र इच्छा शक्ति, तर्क, सद्विवेक और प्रेम भी है। यदि मनुष्य अपने तर्क को प्रयोग करने का चुनाव करता है और अपनी चेतना के अनुसार कार्य करता है तथा मानव के प्रति प्रेम व अपनत्व का भाव हृदय में धारण करता है तो वह ईश्वरानुभूति कर सकता है। इच्छा शक्ति की स्वतं-त्रता को महात्मा गांधी जी नैतिकता के प्रमाण के लिए आवश्यक

मानते हैं । महात्मा गांधी जी की आत्मानुभूति का प्रायोगीय स्वरूप यही है ।

वास्तव में प्रश्न यह नहीं है कि व्यवहार स्वतंत्र है या पूर्व निश्चित , क्योंकि सभी व्यवहार उपलब्ध उत्तेजना के प्रति प्रतिक्रिया ही है । इसलिए कुछ सीमा तक पूर्व निर्धारित ही होता है, परन्तु प्रश्न यह है कि व्यवहार निर्धारित कैसे होता है ? जब हम कहते हैं कि व्यवहार स्वतंत्र है तो हमारा यह अभिप्राय नहीं होता है कि यह अनिर्धारित है । जब "स्व" पूर्ण रूप से क्रियाशील हो, ज्ञान के स्रोतो, कल्पनाओं को संयुक्त कर कार्य को अपना बनाकर तथा उसका पूर्ण उत्तरदायित्व ग्रहण कर कार्य सम्पादित करता है तो वही "स्व मानव" हो जाता है । इस प्रकार से स्व मानव के व्यवहार की तुलना उत्तेजना के प्रति किये गये व्यावहार से की जाय तो व्यक्तिगत इच्छा को प्रथम प्रकार के व्यवहार में हम देख सकते हैं । केवल यांत्रिक कार्य व व्यावहार नैतिक नहीं हो सकता है । नैतिकता के लिए चेतना या सद्‌विवेक तथा स्व इच्छा का होना जरूरी है । महात्मा-गांधी ने इसे निम्न लिखित ढ्ग से व्यक्त किया है । :-

> "कोई भी कार्य जो ऐच्छिक नहीं है वह नैतिक नहीं होगा । जब तक हम यंत्रवत् कार्यशील रहते हैं तब नैतिकता का प्रश्न ही नही उठता । यदि हम किसी कार्य को नैतिक कहना चाहते है तो वह सद् विवेक से कर्तव्य समझकर किया जाना चाहिये ।"[1]

1-गांधी: "इथिकलरिलिजन",अनुवादक ए० रमैयर गनेशन,मद्रास,1922 पृष्ठ-8

वास्तव में इच्छा शक्ति की स्वतंत्रता और कर्म के नियम में कोई अर्थ भिन्नता नही है । कर्म का सिद्धान्त स्वतंत्रता के भाव को ही प्रकट करता है , क्योंकि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है । अतीत के कार्य की निरन्तरता व्यक्ति की क्रियात्मक स्वतंत्रता को सूचित करती है । नि:सन्देह हमारे पूर्व कर्म हमारी स्वतंत्र इच्छा शक्ति के कार्य क्षेत्र को निर्धारित करते हैं । कुछ ऐसी भी सीमायें है जिन्हें पूर्ण रूप में विजित नहीं किया जा सकता । जैसे वे सीमायें जिनसे मनुष्य उत्पन्न होता है और वे आदतें जो उसे क्रियाशील रखती है । इस प्रकार गांधी जी मानते हैं कि :-

> "स्वतंत्र इच्छा शक्ति जिसका हम आनन्द लेते हैं वह उस आनन्द से भी कम है जो यात्री जहाज में डेक पर भीड़ में खड़ा होकर प्राप्त करता है ।"[1]

अत: महात्मा गांधी जी व्यावहार के लिए स्वेच्छा का होना आवश्यक मानते हैं, परन्तु इन सभी सीमित प्रभावों के अतिरिक्त अपने क्षेत्र में मनुष्य अपनी इच्छा को प्रयोग करने की पर्याप्त स्वतंत्रता रखता है तथा अपने शरीर, मन और पर्यावरण को सुधारने में उसका स्वतंत्रता से प्रयोग कर सकता है । जो स्वतंत्रता हमारे पास है वह अल्प ही क्यों न हो, किन्तु वास्तविक इस अर्थ में है कि हम बन्धन रहित होकर, कारण व

1- हरिजन, 23-3- 1940 ।

प्रभाव से मुक्त होकर निर्णायक कार्य करने में समर्थ हो जाते हैं। स्वतंत्रता गलती करने तथा गलती का सुधार करने के लिए और उन्नति करने की आवश्यक दशा है। हम जानते हैं कि यदि मनुष्य इच्छा करे और दृढ निश्चय करें तो वह अपनी आदत को बदल सकता है और अपने भाग्य का निर्माण कर सकता है। इस लिए मानव विकास व प्रगति के लिए इच्छा शक्ति की स्वतंत्रता नितान्त आवश्यक है।

महात्मा गांधी जी ने कहा है कि :-

"यद्यपि हमारी इच्छा शक्ति स्वतंत्र है, परन्तु हम अपने कार्य के परिणाम को नहीं जानते, केवल कर्तव्य ही कर सकते हैं।"[1]

उन्होंने पुन: कहा है कि :-

"मनुष्य अपना स्वभाव बदल सकता है, उसे नियन्त्रित कर सकता है, किन्तु उसे समूल नष्ट या उखाड़कर फेंक नहीं सकता है, क्योंकि ईश्वर ने मानव को इतनी स्वतंत्रता प्रदान नहीं की है, -- मनुष्य अपनी आध्यात्मिक विशेषताओं का केवल सुधार कर सकता है।"[2]

महात्मा गांधी का मत है कि :-

"मनुष्य पूर्ण विराग की प्राप्ति से नि:सन्देह अतीत की गल्तियों के प्रभाव को रोक सकता है।"[3]

1- हरिजन, 6-5-39

2- महात्मा गांधी, एम0के0, "दक्षिणी अफ्रीका मे सत्याग्रह से" अनुवादक वी0जी0देसाई, गनेशन, मद्रास, 1928, पृष्ठ-219।

3- हरिजन, 7-4-46 ।

यंग इण्डिया में महात्मा गांधी ने लिखा है कि व्यक्ति अपने प्रारम्भिक शिक्षा के तथा पर्यावरण के प्रभाव रोक तो सकता है किन्तु समूल नष्ट नहीं कर सकता है ।

"विरागी बनने के लिए महान प्रयत्न करके भी कोई व्यक्ति अपने पर्यावरण अथवा प्रारम्भिक शिक्षा के प्रभाव को नष्ट नहीं कर सकता है ।"[1]

अत: यह स्वीकार करना पड़ता है कि व्यक्ति अपने पर्यावरण द्वारा नियन्त्रित होता है । एम0के0 बोस के शब्दों में:-

"गांधी जी स्व निर्देशन द्वारा जीवित रहना पसंद करते हैं न कि मात्र आदत से ।"[2]

कहने का तात्पर्य यह है कि महात्मा गांधी जी मानव को नैतिक स्तर पर कार्य करते हुये जीवित रहने के लिए विशेष जोर देते हैं । वे पूर्ण स्वतंत्रता में विश्वास नहीं करते हैं । विशेषकर उस स्वतंत्रता में विश्वास नहीं करते है जो मानव को स्वयं से अथवा परिवर्तित सुष्ठ स्वभाव से प्रथक करने के योग्य बनाती है, क्योंकि ऐसी स्वतंत्रता का अर्थ मात्र विप्लव है । मनुष्य को अपने अधिकार क्षेत्र में ही स्वतंत्रता से त्रुटियों को सुधार करने का प्रयत्न करना चाहिये ।

1- यंग इण्डिया. 30-1-30 ।

2- बोस, एम0के0, "स्टडीज इन गांधीज्म, इण्डियन एसोसियेटेड पब्लिसिंग कम्पनी, कलकत्ता, 1947, पृष्ठ-203 ।

साध्य, साधन तथा सेवा द्वारा आत्मानुभूति

मानव सेवा द्वारा आत्मानुभूति :-

गांधी दर्शन में और साथ ही गांधी शिक्षा में साधन और साध्य दोनों परिवर्तनशील पद हैं , अविभाज्य रूप से दोनों आपस में गुथे हुये हैं, अतः दोनों को पवित्र होना चाहिये । गीता के निष्काम कर्मयोग के सिद्धान्त के अनुसार शुभ कर्म शुभ परिणाम देते हैं,गीता की इस शिक्षा के आधार पर महात्मा गांधी जी की मान्यता है कि :-

> "यदि कोई साधन के चयन की परवाह करे तो साध्य तो साध्य स्वयं अपनी परवाह करता है ।"[1]

साध्य साधन से ही उत्पन्न होता है महात्मा गांधी जी ने लिखा है कि :-

> "साधन का सम्बन्ध बीज से और साध्य का सम्बन्ध वृक्ष से है ---- इस प्रकार साधन व साध्य में बीज व वृक्ष की भाँति अत्याज्य सम्बन्ध है ।"[2]

साधन पर जोर इस हेतु दिया जाता है, क्योंकि मानव केवल प्रयत्न करने का अधिकारी है न कि कर्म के परिणाम का ।

जीवन का अन्तिम लक्ष्य यहाँ तक शिक्षा का भी अन्तिम लक्ष्य आत्मानुभूति या मोक्ष प्राप्त करना है अर्थात अपने "सत्य स्व" को जानना है । यही वह लक्ष्य है जो सर्वश्रेष्ठ है और मानव को पूर्ण रूप से वहाँ पहुँचने के लिये प्रयत्न करना

1- हरिजन- 11-2-39 ।

2- गांधी एम0के0, हिन्द स्वराज्य गनेशन, मद्रास, 921, पृष्ठ-60 ।

चाहिये , प्लेटो की भाँति महात्मा गांधी जी भी यह बार-बार स्वीकार करते हैं कि मानव जीवन में पूर्णता अप्राप्य है वे कहते हैं कि :-

> "जब तक जीव शरीर में आबद्ध है तब तक वह कोई पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकता । इसका सामान्य कारण यह है कि जब तक कोई अपने अहं को विजित नहीं कर लेता तब तक आदर्शात्मक स्थिति प्राप्त करना असम्भव है और अहं से तब तक छुटकारा नहीं पाया जा सकता जब तक कि वह शरीर से आबद्ध है ।"[1]

महात्मा गांधी जी ने लिखा है कि :-

> "शरीर से आबद्ध होने के कारण लक्ष्य हमसे दूर होता जाता है और इस दिशा में हमारी जितनी उन्नति होगी उतनी ही अपनी कमियों को पहिचानने का अवसर मिलेगा ।"[2]

इसलिये आदर्श स्थिति वही है जो पूर्ण स्थिति है,उसे "शरीर के मात्र अमिश्रण से"[3] ही प्राप्त किये जा सकते हैं । इस प्रकार आदर्श एवं व्यवहार के मध्य "पुल रहित खाई हमेशा होनी चाहिये जब यह अनुभव के लिये सम्भव हो जाता है तब आदर्श आदर्श न रहकर व्यवहार हो जाता है ।"[4] वास्तव में संतोष तो प्रयत्न मे है न कि प्राप्ति में, पूर्ण प्रयत्न को ही महात्मा गांधी जी पूर्ण विजय मानते हैं । मानव का कर्तव्य है कि बड़ी

1- यंग इण्डिया- 20-9-28 ।
2- यंग इण्डिया- 9-3-22 ।
3- हरिजन - 17-4-37 ।
4- हरिजन - 14-10-39 ।

से बड़ी उन्नति के लिए सदैव प्रयत्न करते रहना चाहिये, यद्यपि कि मानव पूर्ण पूर्णता को अपने जीवन में कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता है फिर भी प्रयत्न उसके अधीन होना चाहिये । अप्राप्य आदर्श हेतु निर्विघ्न प्रयत्न करना मानव का कर्तव्य है, हम जानते हैं कि स्वर्ग का राज्य इस पृथ्वी पर कभी नहीं हो सकता, किन्तु हमारा तो कर्तव्य है कि उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करें । मात्र प्रयत्न नहीं बल्कि प्रयत्न में हमारी पूर्ण निष्ठा होनी चाहिये । आत्मा के युद्ध को तो हम जीत नहीं सकते किन्तु इसे खो भी तो नहीं सकते । इसलिए उत्तमतर के लिए हमारा प्रयत्न होना ही चाहिये ।

हमनें देखा है कि महात्मा गांधी मानव की प्रकृति की अखण्डता में विश्वास नहीं करते हैं, किन्तु उसकी परिपूर्णता में अवश्य विश्वास करते हैं । इसीलिये सभी मानव समान रूप से सम्भावित विकास की क्षमता रखते हैं क्योंकि :-

"सभी में आत्मा एक है ।"[1]

इसलिए प्रत्येक स्त्री व पुरूष उस आत्मा को प्राप्त कर सकता है जिसे गांधी जी ने अपने जीवन में प्राप्त किया था, किन्तु उन्हें वही उच्च आदर्श धारण करना पड़ेगा और वैसा ही प्रयत्न करना पड़ेगा जैसा महात्मा गांधी ने किया था । गांधी जी की मान्यता है कि :-

---

1- हरिजन, 18-5-40 ।

> "मानव मात्र का आरम्भिक व्यवहार सबसे तुच्छ प्राणी द्वारा किये गये व्यवहार सा ही होता है। यही सार्वभौमिक सम्भावना है, यही मानव को ईश्वरीय सृष्टि से अलग करती है।"[1]

इनके विश्वास का परिणाम ही था कि अपने आश्रम वासियों के लिए जिस नैतिक अनुशासन को वे देना चाहते थे वे वही प्रमुख गुण थे जिससे उनका व्यक्तित्व संगठित रूप से विकसित हो सका।

यह बात नहीं है कि महात्मा गांधी जी इस बात को न जानते हों कि किसी भी व्यक्ति के स्वभाव को संयमित और परिवर्तित करना कठिन है। अपने पुरानें "संस्कारों"[2] से पूर्णत: छुटकारा पाना मानव शक्ति के बाहर है। कठिन प्रशिक्षण व परिश्रम के द्वारा ही कोई व्यक्ति "अहिंसा की मानसिक दशा"[3] को प्राप्त कर सकता है। वर्तमान काल में इस अहिंसक दशा को प्राप्त करना अधिक कठिन हो गया है, क्योंकि आधुनिक सभ्यता ने मानव में गलत मूल्यों, शरीर सौष्ठव, की प्राप्ति, स्पर्द्धा और अन्य बुराइयों पर जोर देकर नैतिक भ्रम की उपज कर दी है। ऐसी दशा में हमें क्या करना चाहिये ? यह प्रश्न विचारणीय है। सम्भवत: हम सभी को आशा व विश्वास के साथ अपनी योग्यता को प्रकट करने का प्रयास करना चाहिये।

आदर्शों की प्राप्ति के लिये किसी पर गलत दबाव

1- हरिजन, 18-5-40 ।

2- यंग इण्डिया, 5-6-24 ।

3- - तदैव - 1-10-31 ।

हमें नही डालना चाहिये । प्रत्येक प्राणी को आदर्श प्राप्ति के अभिलाषा का एक स्तर अवश्य बनाये रखना चाहिये किन्तु उसे सीमा से अधिक ऊँचा न उठने देना चाहिये क्योंकि यही व्यक्तित्व को नीचे गिरा देता है । अतः इससे हमें बचने का प्रयास करना चाहिये । महात्मा गांधी जी ने मीरा बहन को लिखते हुये कहा है :-

> " प्रत्येक दशा में व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य से बाहर नहीं जाना चाहिये । इसकी अधिकता ही सत्य को तोड़ना है । "[1]

गांधी जी के अनुसार किसी भी व्यक्ति की सामान्य गति पर दबाव डालना उसे कष्ट पूर्ण व्यवहार करने के लिए प्रेरित करना है । यदि उसकी गति मंद व धीमी गति से चलने वाली है तो वह उन्नति के मार्ग पर बढ़ सकता है । अतः विकास की स्वाभाविक गति पर दबाव नहीं डालना चाहिये । इस प्रकार उनका पुनर्जन्म का विश्वास इस स्थल पर सहयोगी हो जाता है ।

गांधी जी नैतिक व आध्यात्मिक विकास के लिए त्याग व कष्ट को महत्व देते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि :-

---

1- गांधी एम०के०, "बापूस लेटर टू मीरा, एन०पी०एच० 1949 पृष्ठ-75 ।

"आत्मा की शक्ति का विकास उसी सीमा तक होगा जितना कि शरीर को नियन्त्रित किया जायेगा।"[1]

महात्मा गांधी जी इसके आगे भी कहते हैं कि :-

"ईश्वर साक्षात्कार आमने सामने तो सम्भव नहीं है जब तक कि आप इन्द्रियों को सयंमित न कर लें। यही वह प्रथम वस्तु है जिसे आपको करना है।----- यदि इन्द्रिय संयम को इन्कारा जाता है तो इन्द्रियों के वस में होना ही दूसरी बात है।"[2]

मानव शरीर सेवा के लिए है न कि अनुग्रह या कृपा पाने के लिए। अतः प्रसन्नता का रहस्य "त्याग" में निहित है। इस कारण हमें अपनी आवश्यकता को बस में रखकर जीव की सेवा करनी चाहिये। त्याग व संयम साधन के रूप में हैं स्वयं में ये साध्य नहीं है। वास्तव में इनका अधिक अभ्यास हानि कारक है, क्योंकि यह शरीर सेवा के लिए पूर्ण प्रयोग करने के लिए व्यक्तियों को रोकती है। गांधी जी ने लिखा है :-

"दुख उठाने की भी स्वयं की एक सुपरिभाषित सीमा है। दुख उठाना अच्छा व बुरा दोनों है और जब यह अपनी सीमा पर पहुँच जाय तो इसे आगे बढ़ाना मूर्खता ही नहीं वरन् मूर्खता की चरम सीमा होगी।"[3]

1- यंग इण्डिया - 23-10-24 ।

2- हरिजन - 10-12-38 ।

3- यंग इण्डिया - 12-3-31 ।

अतः जब व्यक्ति को त्याग व संयम के अभ्यास से अपनी शरीर व इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण करने की योग्यता प्राप्त हो जाय तो उसे त्याग व संयम के अभ्यास को रोक कर आत्मा की खोज में लग जाना चाहिये, अर्थात शरीर को समाज सेवा का योग्य साधन बना लेना चाहिये। महात्मा गांधी जी के विचार से त्याग वर्तमान जीवन की माँग की अवहेलना करना, संन्यास लेकर जंगल जाना दूसरे संसार के लिए विचार केन्द्रित करना नहीं है। वे कहते हैं कि :-

> " दूसरे संसार के रूप में कोई वस्तु नहीं है, सभी विश्व एक है। कोई संसार यहाँ अथवा वहाँ नहीं है।"[1]
>
> "इसलिए कार्य न करना त्याग नहीं है बल्कि यह जड़ता है।"[2]

महात्मा गांधी जी सभी मानवों में त्याग की भावना का विकास करना चाहते है। जिससे कार्य सेवा में बदला जा सके। इससे हम प्रेम व सेवा करने के योग्य हो सकते हैं। महात्मा गांधी जी समर्पित जीवन व्यतीत करने वाले वह व्यक्ति थे जिन्होंने अपनी समस्त योग्ताओं को त्याग की भावना से सेवा में लगा दिया था।

1- हरिजन 26-7-42 ।

2- हरिजन 20-4-35 ।

"मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति है अथवा मोक्ष है, और समस्त क्रिया कलाप सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक ईश्वर दर्शन के अन्तिम लक्ष्य से निर्देशित होने चाहिये ।"[1]

हम पहले ही देख चुके हैं कि गांधी जी के अनुसार उनकी ईश्वर के प्रति कल्पना भावात्मक सत्ता के रूप में नहीं है बल्कि वह तो पूर्ण सत्य है । वह वास्तविक है तथा मानव में आत्म रूप में विद्यमान है । अपने में और मानवता की आत्मा में ईश्वर की उपस्थित के अनुभव द्वारा ही उत्तम रीति से आत्मानुभूति अथवा ईश्वरानुभूति सम्भव है ।

ईश्वर प्राप्ति हेतु मानव सेवा एवं ईश्वर से एकाकार होना ही गांधी जी का मन्तव्य था । इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि :-

"समस्त मानवता की तुरन्त सेवा मानव प्रयत्न का आवश्यक भाग है । सामान्यत: ईश्वर प्राप्ति का तरीका ईश्वर को उसकी सृष्टि में देखना और उससे एकाकार होना है । यह सभी की सेवा करने से ही सम्भव है ।"[2]

महात्मा गांधी जी ने अपने जीवन में मानव सेवा द्वारा ही ईश्वर की खोज करने का प्रयास किया था तथा इसी प्रक्रिया द्वारा सत्य का अनुभव भी किया था । एकांत वास द्वारा मोक्ष की प्राप्ति गांधी जी के लिये पूर्णत: विदेशी थी ।

1- हरिजन 29-8-36 ।
2- हरिजन 29-8-36 ।

डी0एम0दत्ता ने इस सम्बन्ध में अपने विचार अभि-व्यक्त करते हुये लिखा है कि :-

"भारतीय परम्परा में मानव सेवा द्वारा ईश्वरा-नुभूति की विचार धारा नवीन नहीं है । ईशा पूर्व के युग में बुद्ध ने ---- अद्वैतवादी शंकर ने सेवा के क्रियाशील दर्शन का प्रचार किया ।--- किन्तु बाद में शकर आदि के दार्शनिक सकारात्मक एवं रचनात्मक तत्वों को विस्तृत कर दिया गया। -- जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत विचारा-त्मक दर्शन व माया मोह से उपेत हो पराजय की खाई में जा गिरा ।--- समय से विवेकानन्द ने घोषित किया कि "यदि तुम ईश्वर प्राप्त करना चाहते हो तो मानव सेवा करों ।---- रवीन्द्रनाथ टेगोर ने भी रचनात्मक सामाजिक सेवा की शिक्षा दी ।--- गांधी जी ने इन समस्त तत्वों को अपने दार्शनिक विचारों में समाहित करते हुये भारत में अपने नूतन सकारात्मक विचारों का प्रयोग कर तथा अपने जीवन में उपयोग करउन्हें सामाजिक व राजनैतिक रूप प्रदान किया ।"[1]

ईश्वर ही एक मात्र स्थायी सत्य है जो अपने को जन्म मरण व विनाश के परिवर्तित तत्व के द्वारा अभिव्यक्त करता है । महात्मा गांधी जी के अनुसार इस स्थायी सिद्धान्त हेतु ईश्वरीय कार्य करना ही मात्र कार्य है । महात्मा गांधी जी

दत्ता, डी0एम0 "द फिलॉसफी ऑव महात्मागांधी, यूनीवर्सिटी ऑव विश कान्सन प्रेस कनाडा, 1953 पृष्ठ-62-7।

कहते हैं कि हम जानते व अनुभव करते है कि :-

> "हम मृत्यु के मध्य निवास कर रहे हैं । अत: अपनी योजनाओं के लिए कार्य करने का क्या महत्व है, जबकि अन्त में वे कुछ नहीं रह जाते ---- हम चट्टान की भाँति अपने को मजबूत अनुभव करते हैं पर जब हम यह सत्यता के साथ घोषित कर सकें कि हम ईश्वर के लिये तथा उसकी योजना के लिये कार्य करते हैं तो ऐसी दशा में कुछ भी नष्ट नहीं होता ।"[1]

यही ईश्वरी इच्छा के प्रति नेक समर्पण है । जब कोई व्यक्ति पवित्र हृदय वाला होता है तब उसकी विवेक शक्ति जो कुछ करने के लिये प्रेरित करती है । ऐसी ही प्रेरणा ईश्वर इच्छा है । मानव एकता के लिए मनुष्य में प्रेम व शक्ति की सर्वोत्म प्रेरक शक्तियाँ जो कार्य करती हैं वे ईश्वर की ही पर्यायवाची हैं । इसलिए प्रभु के हाथों का यंत्र होने का अर्थ नि:स्वार्थ प्रेरक शक्ति के आधीन रहना व समस्त के कल्याण हेतु कार्य करना है ।

प्रश्न है कि अपनी इच्छा को ईश्वर की इच्छा से युक्त कैसे किया जाय तो महात्मा गांधी जी का मन्तव्य है कि आसक्ति रहित कर्म ही ईश्वर की इच्छा का यंत्र है । यही महात्मा गांधी का आदर्श था । यही वह पथ है, जिस पर चलकर कर्म की सफलता तथा श्रमिकों को संतोष मिलता है ।

1- यंग इण्डिया, 23-9-26 ।

स्वार्थ पूर्ण आनन्द के लिए जो व्यक्ति जितना चिन्तन करेगा, उतना ही वह अपने कार्य पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकेगा । अतः ईश्वरीय इच्छानुकूल कार्य करना ईश्वरी विधि है । यही कार्य सम्पादन की सर्वोत्तम विधि कही जाती है । यदि उत्तम रीति से कार्य सम्पादित किया जाता है तो परिणाम भी उत्तम ही होता है फिर भी हमें परिणाम का उत्तरदायित्व ईश्वर को ही वहन करने देना चाहिये । डी०एम० दत्ता ने लिखा है :-

> "त्याग का अर्थ गांधी जी के लिये संसार से भागना नहीं है और मोक्ष के लिए चीर फाड़ करने का लक्ष्य नहीं है । सच्चा त्याग स्वार्थ रहित उद्देश्य से कार्य करना है । सच्चा मोक्ष स्वार्थ पूर्ण उद्देश्यों एवं वासनाओं के बन्धन से स्वतंत्र होना है ।"[1]

एक सेवा पूर्ण जीवन बाला व्यक्ति अपने में विश्वात्मा का पोषण करता है इसलिए उसमें गतिशील एवं स्वाभाविक नम्रता की स्वाभाविक उत्पत्ति हो जाती है । विनम्रता से तथा स्वार्थ रहित क्रियाओं से व्यक्ति में स्थायी आनन्द की उपज होती है । महात्मा गांधी जी ने इसी प्रकार का भाव व्यक्त करते हुये कहा है :-

> "सेवा का जीवन नम्रता का जीवन होना चाहिये--मानवता की सेवा के लिये किया गया कठिन एवं

---

1. डी०एम० दत्ता : द फिलासफी आॅव महात्मा गांधी, यूनीवर्सिटी आॅव विस कान्सिन, कनाडा, 1953, पृष्ठ-44 ।

> सतत परिश्रम ही सच्ची नम्रता का तात्पर्य है । ईश्वर क्षण भर विश्राम किये बिना लगातार परिश्रमरत है, यदि हम ईश्वर की सेवा करें या उससे एकाकार हो जाय तो हमारे कर्म भी उसी की तरह न थकाने वाले होगें । -- इस प्रकार की व्याकुलता ही वास्तविक विश्राम की रचना करती है । इस प्रकार का न रूकने वाला आन्दोलन स्थायी शान्ति की कुन्जी है ।"[1]

महात्मा गांधी के अनुसार परित्याग की भावना से व्यक्ति समाज सेवा में सलग्न रहे तो व्यक्ति व समाज के मध्य कोई भी संघर्ष न उत्पन्न हो । इसी विचारधारा में वास्तविक स्वतंत्रता व समुदाय का रहस्य छिपा है । महात्मा गांधी जी के संन्यास एवं विराग में विरोध व दबाव का कोई स्थान नहीं है । उनका प्रतिरोध,प्रतिरोध के लिए नहीं है, बल्कि "उच्चतम आदर्श" प्रेम का आदर्श", जिसका स्वरूप सेवा है और जिसे प्रत्येक मानव जानता है, अनुभव करने का अनिवार्य साधन है । सच्चा त्याग जीवन की कुण्ठाओं एवं निराशा से ग्रसित करने की अपेक्षा आनन्दमय बना देता है । अतः शिक्षा इस प्रकार प्रदान की जाय ताकि मानव में जीवन के प्रति ऐसा दृष्टिकोण विकसित हो कि सेवाभाव वास्तविक आनन्द का स्रोत हो जाय ।

1-बोस, एन0के0, सेलेक्शन्स फ्राम गांधी, एन0पी0एच0, 1948 पृष्ठ-10

"स्व" का तात्पर्य स्व प्रकाशन/आत्माभिव्यक्ति :-

स्वतंत्र इच्छा शक्ति का दुरुपयोग बुराई उत्पन्न करता है । गांधी जी के अनुसार :-

"ईश्वर के लिये कोई भी वस्तु न तो अच्छी है और न तो बुरी, परन्तु मानव उन्नति हेतु अच्छाई बुराई का महत्व है, दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं, क्योंकि एक प्रकाश तथा दूसरा अन्धकार का प्रतीक है ।"[1]

अच्छाई स्वयंभूहै परन्तु बुराई ऐसी नहीं है । बुराई केवल अच्छाईयों के उलझाव द्वारा उत्पन्न होती है और बढ़ती है जो उसी में सन्निहित होती है और उसी में समाप्त हो जाती है । यह तब होता है जब उसकी सहायता वापस ले ली जाती है । महात्मा गांधी जी कहते हैं कि :-

"पवित्रता ही वह सुरक्षित साधन है जो बुराईयों को कम कर सकता है, बुराईयों को विजित करने के लिए व्यक्ति को अपरिवर्तित अच्छाइयों की मजबूत आधार शिला पर आधारित रहना चाहिये।"[2]

मानव शरीर प्रकृति की उपज है इसी लिए वह शारीरिक है, किन्तु सद विवेक,तर्क, इच्छा शक्ति, भावना और इसी प्रकार के दूसरे गुण व शक्तियाँ जो मानव के पास हैं, वे सब आत्मा की ही अभिव्यक्ति हैं । "सत्य स्व" ही आत्मा है ।

1- हरिजन, 20-2-37 ।

2- यंग इण्डिया, 23-2-21 ।

लोभ व वासना के कारण यह मुख्य "स्व" नहीं रह पाता ।
"गांधी जी ने आत्माभिव्यक्ति को इसी सीमित अर्थ में प्रयोग
किया है न कि प्रकृति वादियों के अनुसार प्रयुक्त अर्थ में ।

> "असत्य स्व" को प्रकाशित होने के लिए कभी भी
> आज्ञा नहीं देनी चाहिये । हाँ जब वह अभिव्यक्त
> होने के लिए प्रयत्न करे तो समझाना चाहिये कि
> यही उपद्रव है । परन्तु जब "सत्य स्व" प्रकाशित
> होगा तभी "सत्याग्रह" की उत्पत्ति होगी ।--
> अत: हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम सत्य को
> जाने,पहिचाने । उसे जानने के बाद ही उसका
> प्रयोग करे । इसका प्रयोग ही "सत्य स्व" का
> प्रयोग है ।"[1]

क्रमिक विकास वाद के सिद्धान्त में विश्वास करने
बाले की तरह महात्मा गांधी जी मानव के पशु उत्पति के प्रति
सचेत हैं । इसलिए वे वर्डस बर्थ के दृष्टिकोण को मान्यता नहीं
देते हैं क्योंकि वर्डस वर्थ बालक को स्वर्गीय गुणों से युक्त, स्वर्ग
से अवतरित व मनुष्य को सभी अच्छाइयों से युक्त तथा देवदूत
के रूप में पैदा हुआ मानते हैं । गांधी जी इस सम्बन्ध में कहते
है कि :-

> "हम सभी प्राय: जन्म से पशु हैं,---- हम सब
> क्रमिक विकासवाद की मंद प्रक्रिया के द्वारा
> पशु से मनुष्य बने हैं ।"[2]

1- पी०टी०राजू,आडियलिस्ट थॉट ऑव इण्डिया, एलेन एण्ड
अनविन,लन्दन,1953, पृष्ठ-294 एफ०

2- हरिजन- 2-1-38 ।

> "इसका कारण यह है कि मानव अपने में पशु को गुप्त रखे हुये हैं जो बड़े आसानी से उच्च मार्ग की अपेक्षा निम्न मार्ग का अनुसरण कर लेता है विशेषकर उस समय जब निम्न मार्ग सुन्दर रूपों में सजा हुआ उसके समक्ष उपस्थित होता है।"[1]

इस प्रकार महात्मा गांधी जी के अनुसार :-

> "प्रत्येक व्यक्ति में अच्छाई व बुराई का समिश्रण है। सभ्य और असभ्य में अन्तर केवल मात्रा का है।"[2] जब तक मानव शरीर बन्धन में रहेगा तब तक वह अपूर्ण ही रहेगा चाहे वह कितना ही महान क्यों न हो।"

महात्मा गांधी जी ने लिखा है कि :-

> " कोई भी व्यक्ति दोष रहित नहीं है यहाँ तक कि ईश्वर के बंदे भी। वे ईश्वर के वन्दे इसलिए नहीं है कि वे निर्दोष है बल्कि वे अपनी कमियों को जानते हैं ---- और उन्हे सुधारने के लिए तत्पर रहते हैं।"[3]

महत्व तो इस बात का है कि मनुष्य केवल पशु नहीं है बल्कि वह एक आत्मा है। यहाँ तक कि असभ्य व्यक्ति के पास भी अच्छाइयों को सम्पादित करने की सामर्थ्य होती है, यही स्व विवेक युक्त प्रेरणा जो उसके अन्दर विद्यमान है उसे ईश्वरानुभूति की प्रेरणा देती है। पशु व मानव में अन्तर इसी कसौटी के आधार पर किया जाता है।

1- हरिजन- 1-2-35 ।
2- -तदैव - 10-6-39 ।
3- -तदैव - 28-1-39 ।

महात्मा गांधी जी कहते हैं कि :-

> "हम पशु शक्ति सम्पन्न पैदा हुये थे परन्तु हमारा जन्म इस कारण भी हुआ है कि जो ईश्वर हमारे भीतर विद्यमान है उसे अनुभव भी करें। यह सुविधा प्रभु प्रदत्त मात्र मनुष्य को है। यही पशु सृष्टि एवं मानव सृष्टि का अन्तर है।"[1]

महात्मा गांधी जी ने इसके आगे भी अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा है कि :-

> "मनुष्य पशु के समान ही हिंसक है परन्तु आत्मा रूप में अहिंसक है।"[2]

इस प्रकार अच्छाई तो मानव प्रकृति में वंशानुगत है मानव में जो ईश्वरीय गुण है वे यह इंगित करते है कि मनुष्य की सामाजिक प्रवृत्ति बुरा बनने की अपेक्षा अच्छा होने में है। गांधी जी का यह दृढ विश्वास है कि :-

> "स्वाभाविक रूप से मनुष्य ऊपर उठता रहता है।"[3]

वे आगे कहते हैं कि :-

> "मैं विश्वास करता हूँ कि मानव जाति की सम्पूर्ण ऊर्जा हमें नीचे नहीं गिराती है बल्कि ऊपर ही उठाती है यही निश्चयात्मक परिणाम है।"[4]

मानव ने अपने निम्न भावनाओं को संयमित कर और उनके स्थान पर प्रेम व कल्याणकारी गुणों को स्थान देकर मानव सभ्यता को सम्भव बनाया है।

1- हरिजन 2-4-38 ।

2- -तदैव - 11-8-40 ।

3- -तदैव - 18-5-40 ।

4- -तदैव - 12-11-31 ।

महात्मा गांधी जी कहते हैं :-

> "यदि हम विश्वास करें कि मानव धीरे-धीरे अहिंसा की ओर अग्रसर हो रहा है तो अहिंसक मानवता और अधिक आगे बढ़ने लगेगी क्योंकि संसार में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है बल्कि गतिशील है यदि उन्नति न हो तो मानवता निश्चय ही अवनति की ओर चली जायेगी ।"[1]

महात्मा गांधी के अनुसार नयी पीढ़ी के शिक्षा शास्त्रियों का यह परम कर्तव्य है कि इस चैलेन्ज को स्वीकार कर देश को प्रगति मार्ग पर आगे बढ़ावें ।

गांधी दर्शन - कार्यशीलन प्रधान दर्शन है :-

भारत की संस्कृति की सर्व प्रमुख विशेषता एवं विलक्षणता मानव के सर्वांगीण विकास की रही है । भारत मानव के ऐहिक व पारलौकिक दोनों प्रकार की उन्नति का प्राचीन काल से प्रतिपादक रहा है । चार पुरूषार्थों की प्राप्ति प्रत्येक प्राणी के लिए आवश्यक थी, ये है, धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष । इसीलिये प्राचीन भारत के मानव न तो धर्म व मोक्ष की उपेक्षा कर सकते थे और न काम व अर्थ को प्रमुखता ही दे सकते थे । जब तक भारतीय संस्कृति में इन चारों पुरूषार्थों में सामान्जय बना हुआ था तब तक भारतीय संस्कृति का उत्कर्ष एवं सम्बर्द्धन होता रहा । जब दोनों में सामंजस्य समन्वय में संकीर्णता, व कमी आयी तभी से भारतवासियों का पतन प्रारम्भ हुआ ।

1- हरिजन - 11-8-40 ।

मानव को आत्म निर्भर बनाने तथा राष्ट्र को आर्थिक दृष्टि से सबल बनाने के लिये एवं जीवन की व्यावहारिकता को पूर्ण रूप से महत्त्व देने के लिए सोलहवीं शताब्दी से यथार्थवादी दार्शनिकों तथा शिक्षा शास्त्रियों ने विचार करना प्रारम्भ किया , किन्तु भारत में वैदिक, ब्राह्मण व बौद्ध तीनों दार्शनिक प्रणालियों में बाह्य रूप से व्यावहारिक पक्ष पर बल दिया गया था, किन्तु इनका आन्तरिक स्वरूप, आध्यात्मिक ही था । वे शिक्षा की प्रक्रिया को पूर्ण जीवन की तैयारी मानते थे । वैदिक काल में अध्यात्म के साथ-साथ जीवनोपयोगी तत्त्वों पर भी बल प्रदान किया जाता था । यजुर्वेद व ऋगुवेद दोनों में इस प्रकार के मंत्र व ऋचायें उपलब्ध होती है :-

"इषमूर्जमावद" [1]

"त्वया वयं संघातं जेष्म ।"[1]

" अर्थं हस्य तरणि ।" [2]

<u>प्रथम ऋचा</u> :-

विद्यार्थियों को इस प्रकार का निर्देश देना चाहिये ताकि वे अपने जीवन में "इष" अन्नादि पदार्थों की बहुतायत से प्राप्ति कर सके जिससे वे बलिष्ट, ओजस्वी, होकर अपनी दशा सुदृढ़ कर सकें । अर्थात विद्या अर्थकारी अवश्य हो ।

1- यजुर्वेद- 1/16

2- ऋगवेद- 3/11/3

बालक विद्यार्थी व समस्त मानव दासता से घृणा व पराधीनता से द्वेष करना सीख ले । बडी से बड़ी सेना को विजित कर सकें ।

द्वितीय ऋचा :-

सामाजिक व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए धन महत्वपूर्ण साधन है । धनाभाव अव्यवस्था उत्पन्न करता है ।

इसीलिये शास्त्रों में कहा गया है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति के लिए ही मानव के समस्त क्रिया कलाप होने चाहिये । वैदिक काल में ऋषि आश्रम वास्तव में जीवन की प्रयोगशालायें थे । इन प्रयोगशालाओं में वे जीवन की समस्याओं के समाधान की कार्य विधि का अध्ययन करते थे । उन्हें जीवनोपयोगी कौशल का ज्ञान दिया जाता था। इस प्रकार वे जीवन के संघर्षों का जमकर सामना करना सीख जाते थे ।

वर्तमान युग "भौतिक वादी युग" तथा वर्तमान सभ्यता "भौतिक सभ्यता के नाम से कही जाती है । भौतिक वस्तुओं को पाने के लिये हर प्राणी प्रयत्नशीन है । आज प्राणियों में धर्म और मोक्ष के वजाय धन प्राप्त करने की प्रबल भावना है । धर्म व मोक्ष की भावना जितनी प्राचीन व मध्य युग में थी उतनी वर्तमान युग में नहीं है । इसका कारण यूरोप की धार्मिक भावना की संकीर्णता ही मानी जायेगी । धर्म के नाम पर यूरोप में बहुत काल तक युद्ध चलते रहे । जिसका फल यह हुआ कि सुकरात को विषपान, ईसा को फाँसी का वरण

करना पड़ा ।

भारत में ऐसी धर्म असहिष्णुता कभी नही थी, परन्तु सौ डेढ़ सौ वर्ष पूर्व जो धार्मिक आस्था थी, वह वर्तमान काल में मन्द पड़ गई है, परन्तु इसका सर्वथा अभाव नहीं है । इस मंद दशा का प्रमुख कारण वैज्ञानिक अनुसंधान व अन्वेषण ही है जिसने लोगों के विचारों को विज्ञान परक बनाया है । तर्क व विचार ही सत्य की कसौटी बन गया है । प्राचीन धारणाओं को वर्तमान चिन्तन, तर्क, मनन एवं विचार ने गम्भीर चोट पहुँचायी है । और वे वस्तुये तथा विचार धारायें वास्तविक वसत्य मानी जाती है जो तर्क की कसौटी पर खरी उतरती हैं ।

16 वीं सदी में यूरोप में यथार्थवाद की लहर फैल गयी थी । जिसने अनेक शिक्षा शास्त्रियों ; वैज्ञानिकों तथा समाज सुधारकों को प्रादुर्भूत किया । इनके विचारों ने परम्परागत विचारों व विश्वासों में क्रान्ति मचा दी । जिसके कारण मानव जीवन के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक यहाँ तक की सारे क्षेत्र प्रभावित हुये थे । नये विचार, नई चेतना, वस्तु की यथार्थता का परिज्ञान तथा वैज्ञानिक अनुसंधानों की प्रवृति का जागरण हुआ । इस प्रकार वैज्ञानिक अन्वेषणों एवं अविष्कारों ने हमारे दृष्टिकोण बदल दिये ।

यथार्थवाद केवल उन्ही वस्तुओं को सत्य मानता है जिसका अस्तित्व प्रत्यक्ष रूप में हैं । उनके विचार से भौतिक

जगत की वस्तुओं में सफलता प्राप्त करना मानव का मुख्य कर्तव्य है । संसार को समझना सत्य को प्राप्त करना है ।

मानव जीवन की इस भौतिक वादी सभ्यता के प्रतिक्रिया रूप में स्वामी दयानन्द जी ने :-

"वेदों की ओर लौटो"

तथा महात्मा गांधी ने :-

"गाँव की ओर मुड़ो"

का नारा लगाया । इन महा पुरूषों की इन वाक्यों की मूल भावना यह थी कि हमारा जीवन भौतिक वादी हो गया है इसलिए जीवन को सरल बनाना चाहिये । मानव को सक्षम व शक्तिशाली बनाने के लिए व्यावसायिक आदर्श स्वीकार करना पड़ेगा । व्यावसायिक आदर्श अपनाने का यह अर्थ नही है कि हम अपने धार्मिक व पारलौकिक आदेश को भूल जायें । मानव के सर्वांगीण व्यक्तित्व के विकास का अर्थ होता है मानव को धर्म, अर्थ, काम, व मोक्ष प्राप्ति के लिये चेष्टा करना ।

महात्मा गांधी का व्यक्तित्व व उनके विचार यथार्थवादी दृष्टिकोण से :-

महात्मा गांधी जी एक समाज सुधारक एवं उच्च कोटि के दार्शनिक थे, वे विचार को मात्र सैद्धान्तिक रूप में ही मान्यता नहीं देते थे बल्कि उसे व्यावहारिकता प्रदान करना चाहते थे । इसलिए उनके विचार व्यवहार मय हो गये थे । वे तात्कालिक प्रयोजन की महत्ता समझते थे । और

सामयिक विचारधारा की नसों की पहिचान कर ली थी, इस हेतु उनके विचार बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल प्रकट हुये थे। वे मानव की सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक प्रगति के आकांक्षी थे। वे जानते थे कि दीन, हीन, दुखी व दरिद्र भारतीयों की दशा का सुधार तभी सम्भव होगा जब वे अपनी परम्परागत व्यावसायिक दक्षता को पुनः प्राप्त कर आत्म निर्भर व स्वाबलम्वी बन सके। वर्तमान अर्थ प्रधान समाज में प्रत्येक सामाजिक प्राणी को अर्थोपार्जन के योग्य होना नितान्त आवश्यक है।

महात्मा गांधी जी स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक थे। वे स्वतंत्रता की भावना को प्रत्येक प्राणी में गहराई से समझाने की सामर्थ्य पैदा करना चाहते थे। वे मानव की शक्तियों एवं योग्यताओं के विकास के लिए स्वतंत्रता को आवश्यक मानते थे। वे मनुष्य मात्र की रचानात्मक शक्तियों के विकास को महत्व देते थे। उनका मन्तव्य शिक्षित व्यक्तियों के भीतर से बेरोजगारी की समस्या को समाप्त करना था। इसीलिये उन्होने लिखा है :-

> "मै बच्चों को पहले पहल उपयोगी दस्तकारी सिखाऊँगा, ताकि जिस समय से वह शिक्षा प्राप्त करना आरम्भ करें, उसी काल से उत्पादन करना भी शुरू करें।"[1]

1- गांधी जी: एजूकेशनल रीकन्स्ट्रक्शन, पृष्ठ-4

महात्मा गांधी जी ने आगे कहा :-

> "हिन्दुस्तान हमारे हाथ से इसलिए गया कि हमने स्वदेशी को छोड़ दिया । सूत कातना कोई अलग धन्धा नहीं था । कुछ मर्द भी कातते थे, सूत कातना धर्म या कर्तव्य समझा जाता था ।----
> पहले की भाँति कातने का काम फिर हाथ में लेना पड़ेगा । और इसी से हिन्दुस्तान का उद्धार होगा ।"[1]

महात्मा गांधी जी मानव के शरीर,मन व आत्मा के पूर्ण विकास को ही व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास मानते थे । वे चाहते थे कि मानव अपने वास्तविक स्वरूप को, अपनी योग्यताओं को समझ सके । वे चाहते थे कि प्रत्येक प्राणी आत्मानुभूति व आत्माभिव्यक्ति की क्षमता प्राप्त कर सके । आत्माभिव्यक्ति रचनात्मक होनी चाहिये । इसीलिये वे मानव के जीवन में श्रम व "क्रिया" को विशेष महत्व देते थे । ये तत्व ही मानव की रचनात्मक प्रवृत्ति को विकसित कर सकते हैं, इसी से वे स्वावलम्बी व आत्मनिर्भर हो सकेगें ।

ज्ञान :-

ज्ञान उनके लिए पूर्ण ईकाई था । चाहे वह सांसारिक ज्ञान हो या पारलौकिक । वे दोनों प्रकार के ज्ञान को खण्डान्वित रूप में विभक्त नहीं मानते थे । महात्मा गांधी जी ने दोनों प्रकार के ज्ञान में सन्तुलन व सामन्जस्य चाहते थे । मानव के चिन्तन एवं तार्किक शक्ति से ही अभिव्यक्ति की क्षमता का

1- गांधी जी-"गुजरात महा विद्यालय के व्याख्यान से" दिनांक 13-1-1921

उदय होगा । वे जीवन के कर्म में समन्वयात्मक दृष्टिकोण धारण करते थे प्रत्येक प्राणी में सेवा भाव का जागरण व इस भाव का स्थायित्व करना ही ईश्वर की सेवा, भक्ति, उपासना मानते थे इसलिए उनका रचनात्मक कार्य, सांसारिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के ज्ञान का समन्वयात्मक रूप ही था ।

महात्मा गांधी जी भविष्य दृष्टा थे । वे भारत की गरीबी को दूर करना चाहते थे, वे भारतीयों में भोजन, वस्त्र व आवास की कमी को दूर करने के लिए कृत संकल्प थे । इसीलिये उन्होंने भारतीय बालक बालिकाओं के लिए व्यावहारिक एवं मनावैज्ञानिक शिक्षा पद्धति पर बल दिया था । वे व्यावहारिक शिक्षा को "करके सीखने पर" व अनुभूति द्वारा प्रदान करना चाहते थे । क्रिया द्वारा प्राप्त ज्ञान ही वास्तविक, व्यावहारिक एवं व्यावसायिक है ।

उनका विचार ऐसे नागरिकों के निर्माण से था जो राष्ट्र हित के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव की पूंजी भी बटोर सके । उनका दृष्टिकोण विश्व मानवता का था । वे "सर्वे भवन्तु सुखिन, सर्वं सन्तु निरामयः" सिद्धान्त के पोषक थे ।

महात्मा गांधी जी मानव की उत्पादनशीलता को बढाने के पक्षपाती थे, किन्तु यह कभी नहीं चाहते थे कि उनका चरित्र बल समाप्त हो । इसलिए मानव के चरित्र पर विशेष बल देते थे । चरित्र बल व उत्पादनशीलता के साथ-साथ महात्मा गांधी जी मानव के व्यैयक्तिक व सामाजिक पक्षों के विकास पर

भी बल देकर उनमें सामाजिक कुशलता उत्पन्न करने के हिमायती थे । वे ज्ञान को, करके, प्रयोग करके" "अनुसंधान करके" निरीक्षण करके" अपनी विवेक शक्ति के विकास से प्राप्त करने पर बल देते थे । स्वानुभव को उन्होंने स्वयं अपने जीवन में अपनाया था । महात्मा गांधी पर तत्व को भी स्वानुभव का ही विषय मानते थे ।

वे मानव को अहिंसक, प्रेमी, विनम्र,अपरिग्रही,सत्यवादी, कमठ, परिश्रमी, तथा मनुष्य मात्र से प्रेम करने वाला समाज सेवी बनाना चाहते थे । महात्मा गांधी जी के जीवन के उद्देश्य आदर्शवाद के निकट तथा उनकी कार्य प्रणाली व्यावहारवाद के निकट पहुँच गई है । इनका दर्शन मध्यममार्गीय है । पूर्व व पाश्चात्य दर्शन का समन्वयात्मक रूप ही महात्मा गांधी जी का दर्शन है । उनका विश्वास था कि हस्तकला सामाजिक कुशलता,उद्योग व्यवसाय को अपनाकर ही प्राप्त की जा सकती है, क्योंकि किसी भी देश के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास की यह जड़ है । स्वतंत्रता को महात्मा गांधी जी जीवन के विकास की प्रथमावस्था समझते थे । चिन्तन प्रक्रिया को इन्होने मनावैज्ञानिक आधार प्रदान किया, इसलिये वे प्रकृतिवादी भी हैं ।

इस सम्बन्ध में एम०एस०पटेल ने लिखा है :-

"गांधी जी का दर्शन अपने स्थापना में प्रकृतिवादी आदर्शों में आदर्शवादी और अपनी विधियों एवं

कार्य योजना में प्रयोजनवादी है ।"[1]

महात्मा गांधी जी इन सम्प्रदायों में जो कुछ उत्तम है उसे लेकर अपने संगठित दर्शन का प्रतिपादन करते हैं जिसमें नवीनता के साथ-साथ पुरातन के उत्तम तत्वों को भी समाविष्ट किया गया है । वे मूल रूप में आदर्शवादी हैं किन्तु उनका दृष्टिकोण प्रकृतिवादी व प्रयोजनवादी ही है ।

महात्मा गांधी के दर्शनमेंव्यक्ति,समाज व लोकतंत्र को समान महत्व वर्तमान एवं इतिहास का प्रभाव :-

विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में तीन शताब्दियों की उन्नति ने ही मानव में गलत धारणाओं को उत्पन्न किया है । शिक्षा के क्षेत्र में बौद्धिक प्रशिक्षण को अन्तिम लक्ष्य के रूप में देखा जाने लगा । हमने देखा है कि विज्ञान ने मानव को प्रकृति की दासता से और जीवन के अभावों से मुक्त किया है और समस्त मानवों में सुन्दरता,ज्ञान, आनन्द और स्वास्थ्य की सम्भावनाओं की कम से कम श्रीवृद्धि तो अवश्य की है किन्तु वैज्ञानिक भौतिकवाद अभिरूचि का वरदान सिद्ध न हो सका है । हम देखते है कि सामाजिक प्रक्रियायें तथा औद्योगिक क्षेत्र अधिकाधिक जटिल एवं तकनीकी होते जा रहे हैं । मानव में सद् विवेक एवं सुष्ठ विचार समाप्त होते जा रहे हैं और मानव जीवन एक कमरे में यंत्रवत हो बन्द हो गया है । वह केवल यंत्रवत ही नहीं हुआ है बल्कि अशिष्ट और व्यक्तित्व भाव से हीन भी हो गया है केवल तकनीकी ज्ञान की खोज और विकास होने लगा है । मानव

1- एम0एस0पटेल : द एजूकेशनल फिलॉसफी ऑव महात्मागांधी, अहमदाबाद, नव जीवन, पृष्ठ-176 ।

के आध्यात्मिक मूल्यों के ह्रास का यही कारण है । मानव का स्वतंत्र महत्व समाप्त हो गया । परिणाम यह हुआ कि सारी शिक्षायें तकनीकी ज्ञान तक सीमित हो गयी और साध्य की अपेक्षा साधन पर अधिक बल दिया जाने लगा ।

शनैः शनैः अन्तिम शताब्दी में यह स्वयं अनुभव होने लगा था कि औद्योगिक उपलब्धि, उन्नति, विकास व प्रगति की अपेक्षा हानि प्रद सिद्ध हो रही है । ऐसी परिस्थिति बन गई थी कि मानव में तर्क शक्ति समाप्त हो गयी थी, व्यक्तित्व के सभी पक्षों की उपेक्षा की जाने लगी थी, मानव में कठोर व असहनीय दृष्टिकोण का विकास होने लगा था । इसलिए यह अनुभव किया गया कि तार्किक व्यक्ति को मानव बनाने के लिए उसकी भावनायें एवं कल्पनाओं को उचित दिशा में निर्देषित कर शिक्षित किया जाय ।

पं0 जवाहर लाल नेहरू के अनुसार :-

> "प्रजातंत्र की एक प्रवृति है कि वह नेता उत्पन्न करती है जो या तो तानाशाह अथवा निष्ठुर दृढ और असंवेदनशील राजनैतिज्ञ होते हैं । ऐसे तानाशाहों और रानीतिज्ञों के हाथ में मानव प्रतिष्ठा दुख उठाने के लिये बाध्य हो जाती है शिक्षा, विचार एवं चिन्तन की शक्ति के प्रसार से ही इसे रोका जा सकता है । अतः इन्हें अवश्य विकसित किया जाना चाहिये ।"[1]

1- जवाहरलाल नेहरू :साइटेड इन यूनेस्को प्रॉजेक्टस इन इण्डिया मिनीस्ट्री ऑव एजूकेशन, दिल्ली, 1953, पृष्ठ-70 ।

महात्मा गांधी जी के अनुसार पुस्तकीय शिक्षा व बौद्धिक शिक्षा पर किसी भी प्रकार से जोर व तर्क प्रदर्शित नहीं करना चाहिये। प्रत्येक प्राणी के व्यक्तित्व का आदर किया जाना चाहिये। शिक्षा का कार्य है कि प्रत्येक प्राणी में सामान्य आदर्शात्मक समझ उत्पन्न करे। आवश्यकता इस बात की है कि वर्ग भेद, व अलगाव की प्रवृत्ति को रोका जाय और राष्ट्रीय एकता की भावना को प्रोत्साहित किया जाय। वर्तमान परिस्थितियों में समस्त राष्ट्रो के मध्य हम-भावना का विकास किया जाय। शिक्षा के द्वारा पारम्परिक आस्था जैसे सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रयत्न किया जाय। शिक्षा द्वारा भारतीय युवको में स्वतंत्रता और सेवा की भावना को भरने का प्रयत्न करना चाहिये। और स्वर्ग के राज्य के निर्माण में हमारी शिक्षा को संलग्न होना चाहिये। हमें लोगों को व्यक्ति बनने की शिक्षा देनी चाहिये न कि तकनीकी यंत्र बनने की। बालक का निर्माण सही दिशा में सोचने के लिये किया जाय तथा इसकी उत्पत्ति हृदय की गहराइयों की आस्था से होनी चाहिये। श्रम के महत्व को समझाते हुये उनमें सामाजिक सेवा की भावना को उत्पन्न किया जाय। महात्मा गांधी के अनुसार "शिक्षा जीवन से सम्बन्धित होनी चाहिये तथा विचार कार्य में बदले जाये।

जब तक उपर्युक्त सामान्य आवश्यकताओं को शिक्षा सन्तुष्ट नहीं करती तब तक कोई भी शैक्षिक तरीका प्रभावशाली

नहीं हो सकता है । शिक्षा का प्रसार भारत की आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिये । अतः महात्मा गांधी जी ऐतिहासिक तथ्यों एवं समय की माँग व पुकार को पहिचानते, जानते व समझते थे । उनके शैक्षिक उद्देश्य स्वयं इस तथ्य को प्रकट करते हैं यद्यपि महात्मा गांधी जी एक आदर्शवादी दार्शनिक है, परन्तु एक व्यावहारवादी की भाँति उन्होने अपने समस्त व्यवहारों व आचरणों को उपलब्ध निश्चित नियम के अनुसार नियमित कर लिया था । इतने अधिक व्यवहारिक होते हुये भी महात्मा - गांधी अपने चारो ओर की वास्तविकताओं की उपेक्षा नहीं कर सके । इस प्रकार महात्मा गांधी जी :-

> "मात्र काल्पनिक नहीं है बल्कि एक व्यावहारिक आदर्शवादी हैं ।"[1]

इसी तथ्य ने महात्मा गांधी को सदैव सावधान रखा । हमने देखा है कि महात्मा गांधी अपने क्रान्तिकारी योजनाओं में भी सनातनी व्यावहारिक आदर्शवादी बने रहे । अपनी इस प्रवृति का प्रयोग इन्होंने शिक्षा तथा राजनीति दोनों क्षेत्रों में किया है । यदि यह कहा जाय कि समाज, शिक्षा और परिवार की त्रिवेणी में महात्मा गांधी की इस प्रवृति को देखना कठिन नहीं है तो अत्युक्ति न होगी ।

1- यंग इण्डिया- 11-[illegible]-30

महात्मा गांधी का अहिंसक समाज :-

महात्मा गांधी ऐसे दार्शनिक थे जो राज्य को समाज से अलग नहीं मानते थे इसलिए राज्य को भी नैतिक समाज की भाँति नैतिक ही मानते हैं । इसीलिए नैतिक दृष्टि से उस राज्य को अस्वीकार करते हैं जिसकी नीवं हिंसा पर खड़ी हो । एम0के0बोस ने लिखा है कि :-

"संगठित एवं व्यवस्थित रूप से राज्य हिंसा को प्रदर्शित करता है, राज्य आत्म विहीन मशीन है जो राज्य हिंसा का समर्थन व कर्जदार हो उस राज्य से हिंसा कभी समाप्त नहीं हो सकती है ।"[1]

महात्मा गांधी अहिंसक राज्य में पूर्ण विश्वास रखते थे ।महात्मा गांधी जी का यह दृढ विश्वास था कि :-

"यदि अहिंसक राज्य की उत्पति विश्व में हुई तो यह भारत में ही उदय होगा । परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि भारत पहले अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करे । देश की स्वतंत्रता केवल उसकी ही उन्नति के लिए आवश्यक नहीं है बल्कि दूसरों की उन्नति के लिए भी जरूरी है। एक देश का अन्य देश पर नियन्त्रण प्रजातंत्र के विनाश का द्योतक है । यही एक दूसरे को युद्ध की ओर ले जाता है । स्वतंत्रता सत्यता का एक भाग है और जब तक कोई राष्ठ्र स्वतंत्र नहीं हो ता तब तक वह सत्य रूपी ईश्वर की की उपासना नहीं कर सकता ।"[2]

1- बोस, एन0के0, स्टडीज इन गांधीइजम" पृष्ठ-202 ।
2- यंग इण्डिया- 3-4-24 ।

"इसलिए प्रत्येक राष्ट्र को अपने ही शासन के लिए स्वतंत्र होना चाहिये।"[1]

इसी दृष्टिकोण को धारण करके महात्मा गांधी जी ने भारत की स्वतंत्रता प्राप्त की थी।

वास्तविक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए उन्होने अहिंसक साधनों का ही प्रयोग किया था। इसी कारण उन्होनें अपनी समस्त लड़ाई अहिंसक रूप में लड़ी। उनके दृष्टिकोण से भारत की स्वतंत्रता अनाश्रितता से भी अधिक महत्वपूर्ण थी। "स्वराज्य" शब्द "वैदिक शब्द" है जिसका अर्थ है अपना राज्य, अथवा आत्म नियन्त्रण। "स्वराज्य" का मूल अर्थ "आत्म शासन" है। इसका अर्थ है अधिकारों को जनता व श्रमिकों को समर्पित करना। अहिंसक प्रजातंत्र में व्यक्ति को आत्मशुद्धि व नैतिकता को अपने भीतर उत्पन्न करना पड़ता है।

यदि भारत अहिंसा के मार्ग को स्वीकार करे तो जो प्रजातंत्रात्मक राज्य उद्‌भूत होगा वह अहिंसा और सत्य के आदर्शों द्वारा प्रेरित होगा। महात्मा गांधी जी कहते हैं कि:-

"केन्द्रिय शक्ति, राजनैतिक और अनुशासित बुद्धिमान मतदाताओं द्वारा सार्वजनिक मतदान से चुनी हुई स्थिति पर आधारित होगी।"[2]

1- यंग इण्डिया- 15-10-31।

2- हरिजन, - 13-10-40।

महात्मा गांधी जी के अनुसार परिणाम प्रजातंत्र का परीक्षण नहीं है । गांधी जी ने लिखा है कि :-

" वास्तविक प्रजातंत्र का सम्बन्ध उन कुछ मनुष्यों से नहीं है जो लोगों की आशाओं, भावनाओं व महत्वाकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं । "[1]

गांधी जी की इच्छा थी कि प्रजातंत्र राज्य का शासन जनता द्वारा चुने हुये प्रतिनिधियों द्वारा किया जाना चाहिये तथा इस शासन को जनता की इच्छा द्वारा परिवर्तित भी किया जा सके ।

गांधी जी ने लिखा है कि :-

"अप्रत्यक्ष चुनाव अप्रजातान्त्रिक नहीं समझा जाता है ।---- सार्वजनिक मतदान का अधिकार सम्पत्ति बालों को न देकर श्रमिकों को दिया जाना चाहिये ।"[2]

श्रमिको को मताधिकार का अधिकार, जीविका श्रमिकों का आदर्श राजनीति में प्रयोग है ।

"अहिंसा, अपने सत्याग्रह एवं असहयोग की तकनीकी के कारण, ग्रामीण समुदायका आश्रय होगा ।ग्राम रक्षकों को अनिवार्य रूप से सेवा करनी होगी तथा इन ग्राम रक्षकों का चयन ग्राम में बनाई गई पंजिका

1- बी0पट्टा भी सीता रमइया, हिस्ट्री ऑव कांग्रेस, बैल्यूम-1 कांग्रेस वर्किंग कमेटी, इलाहाबाद, 1935, पृष्ठ-982 ।

2- यंग इण्डिया- 26-12-24 ।

> से क्रमानुसार होता रहेगा । गाँव का शासन गाँव के पाँच व्यक्तियों की पंचायत द्वारा चलाया जायेगा ।"[1]

अहिंसक राज्य एक धर्म निरपेक्ष राज्य है जहाँ पर किसी एक धर्म का पक्ष नहीं लिया जाता । छुआछूत का बहिष्कार, जातिवाद की कठोरता का ढीलापन तथा सामाजिक एकता का व्यवस्थापन इस राज्य की प्रारम्भिक शर्त है । सम्पूर्ण आर्थिक जीवन को पहले से प्रचलित हस्त शिल्प पर ही संगठित एवं आधारित करना चाहिये । हम जानते हैं कि व्यक्ति निष्ठता के विनाश द्वारा राज्य मनुष्य का सबसे अधिक नुकसान करता है । इसीलिए महात्मा गांधी जी का आदर्श राज्य विहीन (स्टेट लेस डेमोक्रेसी) प्रजातंत्र का निर्माण करना था । एक ऐसा राज्य जो ज्ञान युक्त आराजक राज्य हो । (ए स्टेट ऑव इनलाइटेन्ड अनारकी)

> "इस राज्य में (आदर्श राज्य) प्रत्येक व्यक्ति अपना शासक होता है । वह नियमों का पालन इस प्रकार करता है कि पड़ोसी के किसी कार्य में रूकावट का कारण नहीं बनता है । आदर्श राज्य में कोई भी राजनैतिक शक्ति नहीं होती है क्योंकि वहाँ राज्य का अस्तित्व ही नहीं रहता है ।"[2]

1- हरिजन - 26-7-42 ।

2- यंग इण्डिया- 2-3-31 ।

महात्मा गांधी के अनुसार आदर्श राज्य स्वशासित ग्रामीणों का स्वेच्छिक संगठन होता है । इस संगठन के व्यक्ति अहिंसा, आत्म संयम व आध्यात्मिक वास्तविकता से सावधान होकर आदर्श सत्याग्रही के स्तर पर पहुँचते हैं । समाज सेवा, त्याग एवं सादा जीवन के रूप में जीवन यापन करते हैं । इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी जी कहते हैं कि :-

"मात्र अहिंसा पर आधारित समाज ही ग्रामीण अंचलों में रहने वाले ग्रामीणों का समूह होगा जिसकी प्रमुख शर्त ऐच्छिक सहयोग से शान्तिमय सह अस्तित्व को बनाये रखना है ।"[1]

महात्मा गांधी के अनुसार प्रत्येक गाँव एक गणतंत्र होगा अथवा पंचायत होगी । जिसे पूर्ण अधिकार प्राप्त होगें । स्वयं सेवकों को अपने कार्य व क्षेत्र की स्वयं व्यवस्था करनी होगी यहाँ तक कि अपनी स्वयं की सुरक्षा का उत्तरदायित्व भी उन्हें वहन करना होगा । प्रत्ये कार्य सहयोग, समानता की भावना से सम्पन्न होगा । स्वतंत्रता का बृहत क्षेत्र सभी के लिए उपलब्ध होगा । प्रत्येक गणतंत्र ग्राम दूसरे ग्राम से सहयोग की भावना से जुड़ा रहेगा ।

"असंख्य गाँवों में इस प्रकार के बने हुये ढाँचे में ---
जीवन एक स्तूप की भाँति ही धरातल से नहीं टिका रहेगा बल्कि यह सागरीय केन्द्र होगा

1- हरिजन- 13-1-40

जिसका केन्द्र व्यक्ति होगा जो ग्राम की रक्षा हेतु बलिदान होने के लिए तैयार रहेगा।"[1]

गांधी जी शरीर श्रम के विषय मेंअपने विचार व्यक्त करते हुये कहते हैं :-

"व्यक्ति अपने निर्वाह एवं रक्षा हेतु शरीर श्रम अवश्य करे। अपनी जीविका कमाने हेतु उसे बौद्धिक एवं शारीरिक श्रम करना चाहिये तथा समाज कल्याण हेतु प्रत्येक व्यक्ति को श्रम से प्रेम भी करना चाहिये।"[2]

महात्मा गांधी जी के अनुसार सत्याग्रही यह भली-भाँति जानता है कि उसे क्या चाहिये। वह ऐसी किसी भी वस्तु की माँग नही करता, जिसे अन्य लोग समान रूप से प्राप्त नहीं कर सकते। "जीविका श्रम" (ब्रेड लेवर)[3] व अहिंसात्मक मूल्यों में अनुशासित सत्याग्रही अन्याय का विरोध करने के लिए नैतिक शक्ति अर्जन कर व स्वदेशी भावना से आबद्ध हो पड़ोसी की सेवा में सलग्न रहता है।

"जीविका श्रम" व्यवसायी चिकित्सकों का महत्व कम कर देगा, क्योंकि जो रोग आधुनिक मानवता को कष्ट दे रहे हैं वे श्रमिकों में अदृश्य हो जायेगें। महात्मा गांधी जी ने लिखा है कि :-

---

1- हरिजन - 28-7-46 ।

2- -तदैव - 1-6-35 ।

3- द टर्म "ब्रेड लेवर" वाज क्वान्ड वाई द रसियन राइटर वोन्डारी फैन्ड, द आइडिया वाज प्रोपुलराइज्ड वाई रस्किन एण्ड टॉलस्टाय ।

"जब सत्याग्रही आन्तरिक संयम को प्राप्त कर लेगा तो उनका ग्राम विश्व की ताकतों को ललकारने के योग्य हो जायेगा, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी मर्यादा, इज्जत व ग्राम की रक्षा के लिए सदैव मृत्यु का वरण करने के लिए तैयार रहेगा।"[1]

महात्मा गांधी के अनुसार केन्द्रिय उत्पादन और यान्त्रिक वाहनों के विषैले प्रभाव व प्रेरक लाभ को पूर्णतः दूर किया जाना चाहिये। लघु समूहो, ऐच्छिक संगठनों तथा नैतिक नियन्त्रण पर जोर दिया जाना चाहिये। इन्हे सामाजिक न्याय तथा आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करनी होगी। धवन के अनुसार :-

"अहिंसक प्रजातंत्र मानव की अब तक की खोजों में सर्वश्रेष्ठ राज्य व्यवस्था है।"[2]

जब ऐसा राज्य भारत में स्थापित हो जायेगा तो यह विश्व की राजनीति में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रारम्भ करेगा। अहिंसक राष्ट्रवाद स्वस्थ राष्ट्रवाद की अनिवार्य पूर्व शर्त है। इस प्रकार के प्रजातंत्र के विस्तार से मानवता की सेवा और लाभ को प्राप्त करने में सहयोग मिलेगा। गांधी जी ने लिखा है कि :-

"भारत सभी पड़ोसी देशों के साथ मित्रता से रहने का प्रयत्न करेगा। और किसी विदेशी सीमा को अधिग्रहण करने की लालच नहीं करेगा।"[3]

1- हरिजन - 26-7-42 ।

2- गोपीनाथ धवन, द पॉलिटिकल फिलॉसफी ऑव महात्मा गांधी एन०पी०एच०, 1951, पृष्ठ-340 ।

3- हरिजन - 20-4-40 ।

गांधी जी आशा करते हैं कि :-

"भारत जो कुछ अपनी इच्छा से करेगा, उसका उसका तात्पर्य है कि प्रत्येक राष्ट्र भी वैसा ही करेगा ।"[1]

गांधी जी ने आगे भी कहा है कि :-

"यदि प्रत्येक राष्ट्र अहिंसा को अंगीकार कर लें तो एक नूतन विश्व व्यवस्था की स्थापना के साथ ही विश्व शान्ति में भारत का महान योगदान होगा ।"[2]

महात्मा गांधी जी व्यक्ति व समाज के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को आवश्यक मानते हैं । महात्मा गांधी जी असीमित व्यक्तिवाद जो सामाजिक कृतज्ञता व सामूहिक दृष्टिकोण की उपेक्षा करता है और सामाजिक मशीन में व्यक्ति को मात्र एक पहिए के दाँतों तक सीमित करता है,उसेअस्वीकार करते हैं । महात्मा गांधी जी कहते हैं :-

"मैं व्यक्ति की स्वतंत्रता को महत्व देता हूँ ।परन्तु तुम्हें यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि मनुष्य एक महत्वपूर्ण प्राणी है ।--- असीमित व्यक्तिवाद तो जंगल के जानवरों का नियम है । सामाजिक प्रतिबन्ध और व्यक्ति की स्वतंत्रता के मध्य औसत निकालना हम सीख चुके हैं । समाज की भलाई को दृष्टि में रखकर स्वेच्छा से व्यक्ति को समाज को समृद्धशाली बनना है ।"[3]

1- हरिजन 20-4-40

2- -तदैव- 21-6-42

3- -तदैव- 27-5-32

महात्मा गांधीके दर्शन में समाज व व्यक्ति दोनों में व्यक्ति का स्थान प्रथम है । मानव सर्वश्रेष्ठ विचारणीय प्राणी है । मनुष्य आत्मा है किन्तु समाज आत्मा नहीं है । अहिंसक प्रजातंत्र की उत्पत्ति अहिंसक व्यक्ति पर आधारित है । तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति अहिंसक विचार का है तथा व्यक्तिगत स्वराज्य की प्राप्ति में सलग्न है उन्ही को अहिंसक प्रजातंत्र की अधिकतम उन्नति के लिए अधिक से अधिक अवसर दिया जाना चाहिये । यदि अहिंसक व्यक्ति अपने लक्ष्य में असफल हो जाय तो भी उसे उसी पर आधारित रहना चाहिये । यही उसका कर्तव्य है । उसे लगातार समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को याद रखना चाहिये । ऐसा करने के लिए उसे अपनी अतिरिक्त नैतिकता तथा समाज के धर्म को भी ध्यान में रखना चाहिये । गोपीनाथ धवन का कथन है कि :-

"अहिंसात्मक समाज का धर्म अथवा नीति --- उसकी चेतना को शक्ति प्रदान करती है । सामाजिक संयोग को अपनाने के लिए यह एक महत्वपूर्ण कारक है । आदर्शात्मिक अहिंसक वातावरण मे उत्पन्न हुये और शिक्षा पाये हुये बालक स्वाभाविक रूप में अपने भीतर नवीन नैतिकता को धारण करते हैं ।"[1]

महात्मा गांधी चाहते हैं कि व्यक्ति अपनी योग्यता को सबकी भलाई व अपने विकास के लिए प्रयोग करे और समाज भी उन्हे अधिक से अधिक अवसर विकास हेतु प्रदान करे ।

1- गोपीनाथ धवन, द पॉलिटीकल फिलॉसफी ऑव महात्मागांधी एन0जी0एच0 1951 पृष्ठ- 324 ।

महात्मा गांधी जी की रामराज्य की परिकल्पना अब तक के सभी शासन पद्धति का अतिक्रमण करती है, किन्तु उनकी यह परिकल्पना प्राचीन भारत के ग्रामीण समुदाय की विचारधारा के निकट है । इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी जी ने कहा है कि :-

> "अहिंसा पर आधारित सभ्यता का भारतीय ग्रामीण गणराज्य से निकट का सम्बन्ध है । --- - ------ मैं यह जानता हूँ कि मेरी परिभाषा व विचारधारा के अनुकूल उस ग्रामीण गणराज्य में अहिंसा का स्थान नहीं था, परन्तु उसके बीज उसमें निहित थे ।"[1]

> "महात्मा गांधी जी पृथवी पर स्वर्ग लाना चाहते थे इस स्वर्ग में "न तो दरिद्र होगें, न ऊँच-नीच, न करोड़पति मालिक, न अर्द्ध-विबुक्षित नौकर, न तो नशीली दवाईयाँ, या मदिरा आदि के पान करने बाले मानव, इस स्वर्ग रूपी पृथ्वी पर पुरूष व स्त्री समान रूप से आदृत होगें । --------- यहाँ छुआ छूत का भांव न होगा प्रत्येक धर्मावलम्वी समान रूप से समादर पायेगा । वे स्वाभिमान प्रसन्नता व स्वेच्छा से जीविका श्रमिक"कहलायेगें ।"[2]

महात्मा गांधी जी की सामाजिक व्यवस्था वर्ग व राज्य रहित है । ऐसी सामाजिक व्यवस्था में पुलिस, सेना, डॉक्टर, वकील, भारी वाहन व केन्द्रिय उत्पादन का अभाव

1- हरिजन- 13-1-40 ।

2- एम0के0गांधी, दिल्ली डायरी, एन0पी0एच0,1948, पृ0-342

होगा । वे जानते थे कि यह केवल प्रेरणात्मक आदर्श है न कि शीघ्र प्राप्त होने वाला लक्ष्य । इसलिए महात्मा गांधी जी ने कहा है कि :-

"आदर्श पूर्ण रूप से जीवन में कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है ।"[1]

फिर भी हमें इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये ।महात्मा गांधी जी आशान्वित थे कि :-

"वर्तमान समय में मै ऐसे स्वर्ण युग की कल्पना नहीं कर सकता परन्तु मै निश्चित रूप से विशिष्ट अहिंसक समाज की सम्भावना में विश्वास करता हूँ ।"[2]

अहिंसक राज्य के कार्य :-

राज्य के सतत अस्तित्व का औचित्य इस तथ्य में निहित है कि सबके लिए सामान्य व शान्तिमय जीवन सम्भव बनाने के लिए राज्य प्रयत्न करे तथा व्यक्तियों के समाज विरोधी कार्यों को अवरोधित करे । जब इन्द्रिय संयम पूरे समूह में व्याप्त हो जायेगा ।तभी प्रजातंत्र का उदय होगा और जब सम्पूर्ण मानव समुदाय अहिंसा की भावना से ओतप्रोत होगा तब आध्यात्मिक प्रजातंत्र का उदय होगा ।

1- यंग इण्डिया - 2-7-31 ।

2- हरिजन- 9-3-40

महात्मा गांधी जी ने कहा है कि :-

"चेतना के सम्बन्ध में समूह के नियम [द लॉ आॅव मेजोरिटी] का कोई स्थान नहीं है ।"[1]

गांधी जी का कथन है कि :-

"प्रजातंत्र वह राज्य नहीं है जिसमें मानव भेड की तरह कार्य करता है । प्रजातंत्र में व्यक्ति के विचार स्वातन्त्रय और कार्य उत्साह से सम्पादित होते हैं । इसलिए मैं विश्वास करता हूँ कि अल्प संख्यक, बहुसंख्यक लोगों से भिन्न ढ़ग से कार्य करने का पूर्ण अधिकार रखते हैं ।"[2]

वास्तव में गांधी जी का विचार यह था कि :-

"यदि किसी व्यक्ति का विचार स्वस्थ है तो बहुसंख्यक लोगों को उसे दबाना नहीं चाहिये ।"[3]

गांधी जी चाहते थे कि लोग यह समझें कि कोई भी विचार सम्प्रदाय ठीक निर्णय प्रदान करने का एकाधिकार नहीं रखता है । मनुष्य त्रुटिपूर्ण है । अत: कोई भी गलत हो सकता है ।

1- यंग इण्डिया - 4-8-20 ।

2- - तदैव - 2-3-22 ।

3- गोपीनाथ धवन, द पॉलिटिकल फिलासफी आॅव महात्मा गांधी, एन0पी0एच0 1951 पृष्ठ-339 ।

महात्मा गांधी जी आगे कहते हैं कि :-

> "हमें जो करना चाहिये वह यह है कि हम अपने विरोधी की विचारधारा को भी समझने का प्रयास करें, और यदि हम उसकी विचारधारा को स्वीकार नहीं करते हैं तो उसका आदर तो हमें करना ही चाहिये। जैसे कि हम आशा करते हैं कि वह हमारी इज्जत करे।"[1]

जिस राज्य में नैतिक गुणों के विरोध में अत्याचार हों वहाँ बहुसंख्यक लोगों के निर्णय में अल्पसंख्यक लोगों को सहयोग देना ------ कर्तव्य हो जाता है। ऐसे सहयोग के अभाव में सामाजिक जीवन सम्भव न होगा।

राज्य महात्मा गांधी जी के लिये कोई पवित्र वस्तु नहीं है, यह तो साधनों में से एक साधन है, जिसके माध्यम से समस्त प्राणियों के लिये सर्वोत्तम भलाई प्राप्त की जाती है। राज्य मानव की कमियों की एक सुविधा है। व्यक्ति की स्वतंत्रता ही अधिक सत्य है। महात्मा गांधी जी उस राज्य की पूर्ण प्रभुसत्ता को मान्यता नहीं देते हैं। जो प्रभुसत्ता राज्य राज्य के नियमों को बिना प्रश्न किये मनवाना चाहता है। महात्मा गांधी जी विश्वास करते हैं कि :-

> "मानव की सम्प्रभुता पवित्र रूप से नैतिक अधिकारों पर आधारित है।"[2]

1- यंग इण्डिया- 17-4-24 ।

2- हरिजन - 2-1-37 ।

महात्मा गांधी जी कहते हैं कि :-

> "राज्य की भक्ति शर्त युक्त है । जो किसी की नैतिक चेतना पर आधारित है । कानूनों की अवेहलना करना चेतना के विरूद्ध है । इस प्रकार कानून मानना एक कर्तव्य हो जाता है न कि अधिकार । यही प्रजातंत्र की कुंजी है ।"[1]

इस प्रकार महात्मा गांधी जी के अनुसार :-

> "वास्तविक "स्वराज्य" कुछ लोगों द्वारा अधिकार प्राप्त करन लेने से नही आ सकता, परन्तु ---- जनमानस को उनकी सामर्थ्य के अनुकूल शिक्षित करने से स्वराज्य की प्राप्ति होती है ।"[2]

महात्मा गांधी जी के अनुसार राज्य का अन्तिम उद्देश्य सबकी भलाई करना है तथा उन्नति के लिए मनुष्यों को अधिक से अधिक अवसर प्रदान करना है । महात्मा गांधी जी कहते हैं कि :-

> " वह शासन पद्धति उत्तम है जो कम शासन करती है और कम शक्ति का प्रयोग करती है ।"[3]

गांधी जी का भाव यह है कि यदि लोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को नियमों में (कानूनी नियमों में) बाँधना चाहेगें तो स्वराज्य शासन दुख पूर्ण हो जायेगा ।

1- हिन्द स्वराज्य, पृष्ठ-71

2- यंग इण्डिया- 29-1-25 ।

3- हरिजन- 11-1-36 ।

"स्वशासन का तात्पर्य है सरकार के नियन्त्रण से स्वतंत्र होने का लगातार प्रयत्न करना ।"[1]

वे लोग जो स्वेच्छिक सहयोग की क्षमता का अर्जन कर चुके हैं, वे स्वेच्छिक संस्थानों के माध्यम से अपने सामाजिक जीवन को अधिक नियमित कर लेगें । राज्य तो स्वेच्छिक संगठन का एक भाग है । कार्यों की बहुलता वाले आधुनिक राज्य की विशेषताओं को अहिंसक राज्य ग्रहण नहीं करना चाहता है, क्योंकि अहिंसक राज्य में जीवन की सरलता, ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण पाया जाता है तथा युद्ध व हिंसक सघर्ष का अभाव होता है ।

"गांधी जी अपराध को एक रोग मानते हैं जो सामाजिक विफलता के कारण उत्पन्न होता है ।"[2]

यह अहिंसक राज्य में भी पाया जाता है । अहिंसक राज्य में भी अपराध हो सकते है किन्तु गांधी जी

"किसी को अपराधी के रूप में मान्यता नहीं देना चाहते ।"[3]

"गांधी जी सजा या दण्ड में विश्वास नहीं करते हैं परन्तु यह मानते हैं कि वर्तमान स्थिति में अपराधी को पूर्णतः छोड़ भी नहीं देना चाहिये ।उन्हें अहिंसक बनने के लिये प्रेरित करना चाहिये ।"[4]

1- यंग इण्डिया- 6-8-25 ।

2- गोपीनाथ धवन, द पालटिकल फिलासफी आॅव महात्मा गांधी एनवी०एच० ।95। पी०पी० ।73-75

3- हरिजन- 5-5-46 ।

4- हरिजन- 23-10-37 ।

उनका उद्देश्य पूर्णतः सुधारात्मक होना चाहिये ।

"एक कत्ली को सुधार गृह में भेजना चाहिये और वहाँ पर उसे अपना पूर्ण सुधार करने के लिऐ अवसर दिया जाना चाहिये ।"[1]

अहिंसा के विश्वासी महात्मा गांधी जी प्रत्येक परिस्थिति में बल के प्रयोग का विरोध करते हैं । आज के संसार में भी यह सिद्धान्त व्यवहारिक है । उनका व्यावहारिक ज्ञान उन्हें मानव की अपूर्णता के यथार्थ को देखने के लिए प्रेरित करता रहा है । महात्मा गांधी के अनुसार - आर्थिक साधन का आदर्श समान वितरण अथवा अनधि प्राप्ति ‡नान पोजीशन‡ की समानता केवल राज्य विहीन समाज में ही अनुभव की जा सकती है ।

अहिसंक राज्य न तो किसी का शोषण करता है और न तो किसी के द्वारा शोषित होता है । अतः ऐसे राज्य में सर्वत्र शान्ति ही रहती है । ऐसे राज्य की रक्षा के लिये हमें विश्व की कल्याणकारी भावना पर आधारित होना पडेगा । गांधी जी कहते है कि :-

"एक अहिंसक मनुष्य समुदाय या राज्य बिना कारण न तो किसी पर आक्रमण करता है और यहाँ तक कि आक्रमण करने की कल्पना भी नहीं करता है ।"[2]

1- हरिजन - 27-4-40 ।

2- हरिजन - 13-1-40 ।

आक्रमण के विरुद्ध अहिंसक राज्य का सबसे मजबूत दुर्ग उसकी आन्तरिक अर्थ व्यवस्था है, क्योंकि जब शत्रु ग्रामीण हस्त शिल्प को नष्ट करने के उपरान्त कुछ भी हस्तगत न करेगें तो नष्ट देश अपनी स्थिति को सुधारने में बहुत कम समय लगायेगा। महात्मा गांधी जी लिखते हैं कि :-

"यहाँ तक हिटलर जो स्वयं आक्रमण करने का ही विचार रखता था, वह भी सात सौ अहिंसक गाँवों का विनाश न कर सका, और आगे चलकर इसी प्रक्रिया से वह स्वयं अहिंसक बन गया ।"[1]

कोई भी सेना जब निर्दोष पुरुष व स्त्रियों की लाशों पर से चलेगी, वह भी इस क्रिया को दुहराने से इन्कार कर देगी । इस प्रकार यह कथन सत्य है कि :-

"सत्याग्रह में शस्त्र युक्त युद्ध की अपेक्षा युद्ध न करके हम जीवन प्राप्त करते हैं ।"[2]

<u>महात्मा गांधी के दार्शनिक विचारों का शिक्षा के संदर्भ में अध्ययन :-</u>

अब हमें महात्मा गांधी के गत पृष्ठों में वर्णित दार्शनिक विचारों को शिक्षा के संदर्भ में देखना है, क्योंकि हमने यह अनुभव किया है कि महात्मा गांधी जी का दर्शन कल्पनाओं और सनक की उत्पत्ति नहीं है, बल्कि यह मनोवैज्ञानिक अध्ययन के क्षेत्र में हाल के खोजो द्वारा निश्चित किये

1- हरिजन - 4-11-39 ।

2- हरिजन - 28-7-40 ।

गये स्वस्थ मनोवैज्ञानिक प्रदत्तों पर आधारित है । सामाजिक और आर्थिक पक्षों को गांधी दर्शन ने आकस्मिक रूप से स्पर्श नहीं किया है, बल्कि उन्हें मनोवैज्ञानिक दृष्ट से प्रस्तुत किया गया है ।

मनोवैज्ञानिक पक्ष :-

यद्यपि महात्मा गांधी जी ने न तो मनोविज्ञान विषय का अध्ययन किया था और न तो वे इस विषय के विद्यार्थी रहे हैं परन्तु वे मानव प्रकृति के सूक्ष्म दृष्टा थे,उन्होने मानव के व्यवहारों को उनके द्वारा किये गये कार्यों द्वारा ही अनुभव किया था, इस प्रकार आधुनिक मनोवैज्ञानिक की भाँति वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि मानव की शिक्षा व उनका चरित्र उनकी मानसिक तैयारी द्वारा ही निश्चित होते हैं । मानव वंशानुक्रम से क्षमताओं और सम्भावनाओं के रूप में कुछ मूल प्रवृ-तियों को लेकर आता है । मानव की स्वाभाविक रूचि व संवेदनात्मक प्रेरणायें अधिगम को प्रेरित करती है । अधिगम को प्रर्यावरण प्रभावित करता है । ज्ञान प्राप्ति व सीखने में मान-वीय क्षमतायें पर्यावरण व क्रिया कलाप व्यक्ति को सहायता देते हैं । इन बिन्दुओं को ध्यान में रखकर शिक्षक मनोवैज्ञानिक प्रदत्तों को स्वस्थ शिक्षा योजना के लिए खोज करता है ।

महात्मा गांधी जी बालक के मस्तिष्क को सभी प्रकार की सूचनाओं से भरने के पक्ष में नही हैं । उनका विश्वास था कि बालक बौद्धिक विकास क्रिया से ही प्राप्त कर

सकता है । स्वतंत्र क्रिया के प्रति बालक की मूल प्रवृत्तिकोशिक्षा से अलग नहीं मानते हैं अपितु इसे शिक्षा के केन्द्र के रूप में स्वीकार करते हैं, इसी क्रिया से बालक की मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों को विकसित किया जा सकती है । इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी जी ने स्वयं लिखा है :-

> "बालक की शिक्षा शारीरिक श्रम से प्रारम्भ हो किन्तु यह शरीर श्रम, शिक्षा से अलग नहीं बल्कि बौद्धिक प्रशिक्षण के मुख्य साधन के रूप में हो ।"[1]

महात्मा गांधी जी ने आगे पुनः कहा है कि :-

> "आपको बालकों को पेशे अथवा अन्य में प्रशिक्षित करना पड़ेगा इस विशिष्ट पेशे के लिए आपको उनके मन, शरीर को, उनके हस्तलेख को उनके कलात्मक भाव को और इसी प्रकार अन्य क्षमताओं को प्रशिक्षित करना होगा ।"[2]

इस प्रकार महात्मा गांधी जी बालक के शरीर श्रम व क्रियात्मक क्रिया कलाप पर जोर देते हैं । जिसमें बालक की रूचि का ही महत्व होता है । बालक की रूचियों की पूर्ति हेतु पूर्व बुनियादी शिक्षा की योजना की गई है उपयुक्त वातावरण

1- हरिजन - 18-9-37 ।

2- हरिजन - 18-9-37 ।

के सृजन द्वारा बालकों का सर्वांगीण विकास करने में योजना अपनी मनोवैज्ञानिक सुदृढ़ता का परिचय देती है । वस्तुओं द्वारा शिक्षा में उपयोगी, खेल योजना, क्रियाशीलता और समवाय पद्धतियों के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक महत्व अन्तर्निहित है । विभिन्न प्रकार के उद्योगों में बालक की मूल प्रवृत्तियों को उचित रूप से विकसित होने का अवसर मिलता है, उनका मार्गान्तरीकरण होता है । बालाकों की कल्पना व संवेगों को उचित निर्देशन द्वारा विकसित कर उनके व्यक्तित्व का गठन किया जाता है ।

महात्मा गांधी जी ने शिक्षा में शरीर श्रम को महत्व दिया है, क्योंकि हस्तकला शारीरिक दृष्टिकोण से बालक के शरीर का विकास करती है, थकान को सहने के योग्य शरीर को कठोर बनाती है । बालकों की कार्य कुशलता में वृद्धि करते हुये और अभ्यास की आदत डालते हुये विभिन्न कला और व्यापार में निष्णात् बनाकर सामाजिक जीवन को पुष्ट करती है ।

बौद्धिक दृष्टिकोण से हस्तकला की शिक्षा बालक में भौतिक ज्ञान विकसित करती है । उपयोगी एवं जरूरत के प्राकृतिक पदार्थों के प्रति बालकों के उचित दृष्टिकोण का निर्माण करती है । भाषा गणित, विज्ञान को कला के साथ-साथ पढ़ाया जाता है, जिससे मन व नेत्र में निश्चितता, तीव्रता और निरीक्षण की योग्यता का विकास होता है । यह विधि शरीर और हाथ को विभिन्न व्यापारों में प्रयोग होने वाले

यंत्रों के प्रयोग के योग्य बनाती है तथा प्रयोग का मूल्यांकन करने के लिए उनके मन व मस्तिष्क में योग्यता पैदा करती है । हृदय के विकास अथवा भौतिक दृष्टिकोण से हस्तकला बालकों को श्रम विभाजन, मानव रोजगार, पारस्परिक सहयोग जैसे महत्वपूर्ण परिणाम से भिज्ञ कराती है ।

शरीर श्रम के लाभों से महात्मा गांधी जी भिज्ञ व सचेत थे, इसीलिये वे शरीर श्रम को शिक्षा का माध्यम बनाने पर बल देते हैं । शरीर-श्रम बालक को केवल स्वाबलम्वी ही नहीं बनाता है, बल्कि बालक शरीर श्रम के निम्नलिखित लाभों से भी परिचित हो जाता है । :-

1- शारीरिक विकास :-

बालक किसी किस्म के हस्तकला के कार्य में संलग्न हो मजबूत व शक्ति सम्पन्न बनता है । प्रतिरोधक शक्ति व माँसपेशियों की पुष्टता के साथ ही बालक वातावरण को अनुकूल बनाने में समर्थ हो जाता है ।

2- मानसिक विकास :-

शरीर श्रम बालक को पदार्थ के संसर्ग में लाता है और पदार्थ की विभिन्न विशेषताओं से वह परिचित होता है । इस प्रकार उसे भौतिक तत्वों के क्रम का ज्ञान होता है । पदार्थ के साथ कार्य करते हुये बालक विभिन्न कच्चे पदार्थों व यन्त्रों जिनको कार्य में लाता है, साफ करता है व धार देता है, की उपयोगिता का अनुभव करता है इस प्रकार उसका मस्तिष्क

विज्ञान के अर्थ को समझने के लिए खुल जाता है ।

महात्मा गांधी जी के शब्दों में :-

> "मेरी योजना में हाथ लिखने या चित्र खीचने से पूर्व यंत्रों का उपयोग करते हैं । नेत्र अक्षरों के रूप और शब्दों के रूप को देखते है, जैसे वे जीवन में अन्य वस्तुओं को देखते है । कर्ण वाक्यों और वस्तुओं के नाम व अर्थ को सुनकर ग्रहण करते हैं ।"[1]

महात्मा गांधी जी ने साक्षरता के प्रशिक्षण को शरीर-श्रम से ही देने के लिए कहा है । उनका विचार है कि समस्त प्रशिक्षण स्वाभाविक प्रतिक्रियात्मक और तीव्रतम व सबसे ज्यादा सस्ता होना चाहिये । शरीर-श्रम बालक की निरीक्षण शक्ति को विकसित करता है, क्योंकि बालक बस्तुओं को निकट से देखता है, उसका विवरण विस्तृत रूप से संगठित करता है और ठीक-ठीक उसका मापन भी करता है, जिससे बालक का बौद्धिक विकास होता है । उसकी कल्पनाशक्ति का विकास वस्तु के निर्माण के समय वस्तु को प्रत्यक्ष में देखने की क्रिया द्वारा होता रहता है । बालक जिस वस्तु का निर्माण करता है वह उसके श्रम का प्रतिफल होता है । इस प्रकार उसके कार्य से उसे सौन्दर्य बोध की अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गांधी जी का शिक्षादर्शन मानव शरीर विज्ञान व मनोविज्ञान की जड़ में निहित है ।

1- हरिजन- 20-8-37

महात्मा गांधी जी का दृष्टिकोण है :-

> "प्रत्येक हस्तकला की शिक्षा यान्त्रिक रूप में जैसा कि आजकल दी जाती है नहीं दी जानी चाहिये बल्कि इसे वैज्ञानिक रूप में दिया जाय। बच्चा प्रत्येक प्रक्रिया के क्यों और कैसे को भी जानें।"[1]

बच्चे खेल या अनुकरण द्वारा सीखना प्रारम्भ करते हैं और धीरे-धीरे वे कुछ उपयोगी वस्तुओं का निर्माण करना सीख लेते हैं। महात्मा गांधी जी बालक की मूल प्रवृति को उपयोग में लाने का लक्ष्य रखते हैं। इसीलिए महात्मा गांधी जी बच्चों की खेल प्रवृति की अवहेलना नहीं करते हैं, परन्तु वे मानते हैं कि मौलिक हस्तकला को खेल के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिये। जो भविष्य में अर्थोपार्जन का माध्यम बन सके तकली से सूत कातने की गांधी की कल्पना में समस्त खेल के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त सम्मिलित है।

डा० एम०एस० पटेल ने लिखा है कि :-

> "गांधी जी द्वारा अन्वेषित बेसिक क्राफ्ट बालक को जीवन संघर्ष हेतु तैयार करता है। जब हस्तकला का अभ्यास खेल विधि से किया जाता है तब यह प्रकृति की शिक्षा हो जाती है। जब बालक सूत कातता है तब वह अपनी शरीर के अधिकार क्षेत्र में प्रवेश करता है, अपनी बौद्धिक शक्ति का प्रयोग करता है और रूचियों की खोज करता है जिनका उसके प्रौढ़ जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता है।"[2]

1- हरिजन - 31-7-37 ।

2- पटेल एम०एस०, एजूकेशनल फिलॉसफी ऑव महात्मा गांधीपृष्ठ-186

सामाजिक पक्ष :-

महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा योजना के अन्तर्गत श्रम के आयोजन एवं उद्योग की प्रधानता द्वारा वर्ग भेद की गहरी खाई को पाटने की व्यवस्था की गई है । शिक्षा क्षेत्र में पहले से प्रचलित वर्ग अनुकूल शिक्षा सिद्धान्त को समाप्त कर सामान्य एवं सार्वजनिक शिक्षा का आन्दोलन किया गया है । कार्य का समान रूप से बँटवारा करके समानता के आदर्श की रक्षा की गई है । श्रम की व्यवस्था और उद्योगों का चुनाव समाज में परिव्याप्त बेकारी की समस्याका उन्मूलन कर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से महात्मा गांधी की शिक्षा योजना सामाजिक कुशलता का निर्माण करती है । यह जीवन में सादगी उत्पन्न करती है, इनकी शिक्षा पद्धति में प्रचलित प्रजातंत्रात्मक शासन पद्धति में अनुशासनहीनता की समस्या उत्पन्न ही नहीं होती है ।

अहिंसक जनतंत्रात्मक समाज :-

मानव की जैविकीय एवं मनोवैज्ञानिक विशेषता शिक्षा व सामाजिक समुदाय को जन्म देती है और समाज बदले में उनके लिए शिक्षा की अनिवार्य व्यवस्था करता है । व्यक्तियों का मेल उनके प्रभावों का दूसरों पर प्रभाव, अन्दर छिपी हुई उनकी क्रियात्मकता, सामाजिक अनुकूलन की आवश्यकता का अनुभव कराती है । इस प्रकार शिक्षा सामाजिक कुशलता और उनका सामाजिक पर्यावरण से अनुकूल करने में सहयोग देती है ।

मनुष्य अनिवार्यतः एक सामाजिक प्राणी है । मानव का समुदाय में रहने का गुण सार्वभौमिक जातीय विशेषता है । सामुदायिक जीवन सुरक्षा के लिए जरूरी है और यह सहयोगी क्रिया कलापों का व सामूहिक अनुभव का माध्यम है । समाज वह माध्यम है जिसमें व्यक्ति जन्म लेता है, पोषित होता है और सामान्य मानव व्यक्तित्व के रूप में विकसित होता है । समाज व्यक्ति को प्रतिस्पर्धात्मक एवं सहयोगी कार्यों हेतु प्रोत्साहन भी देता है । इसलिए महात्मा गांधी जी शिक्षा को एक ऐसी प्रक्रिया मानते हैं जो व्यक्ति को एक अहिंसक समाज में उपयोगी भूमिका अदा करने के योग्य बनाती है । ऐसी ही सामाजिक व्यवस्था प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था कहलाती है । इस लिये वे चाहते हैं कि समाज के प्रत्येक सदस्य को मुफ्त स्वतंत्र व अनिवार्य सार्वजनिक शिक्षा कम से कम अवश्य दी जानी चाहिये। कोई भी प्रजातंत्रात्मक राज्य तब तक जीवित व स्थायी नहीं रह सकता जब तक कि उसके सदस्यों को अपना कर्तव्य पालन करने के योग्य शिक्षा न दी जाय । शिक्षित व्यक्तियों के हाथों में ही स्वतंत्रता सुरक्षित रह सकती है ।

नागरिकता का आदर्श गांधी की शिक्षा योजना में अन्तर्निहित है । लोगों से यह आशा की जाती है कि वे सार्वजनिक सेवा की उपयोगिता, जन सेवक के कर्तव्यों, सहकारी समितियों व पंचायत की कार्य प्रणाली, जिला परिषद व नगर पालिका के संविधान, मत के महत्व व उपयोग, प्रतिनिधि

संस्थाओं की महत्ता व उद्विकास से अच्छी तरह परिचय ग्रहण करें ।

महात्मा गांधी की शिक्षा योजना में प्रेम, सत्य, न्याय, सहयोगी प्रयास, राष्ट्रीय एकता, समानता, मानव मानव में बन्धुत्व के भाव के आदर्श पर विशेष जोर दिया गया है । गांधी जीकादर्शन उस जीवन दर्शन से कोई सम्बन्ध नहीं रखता है जो आत्म सम्मान हीन समाज या समुदाय को बढ़ाने में सहयोग देता है ।

श्रम की श्रेष्ठता में गहन आस्था रखने के कारण महात्मा गांधी जी हस्तकला को विद्यालयीय जीवन और शिक्षा का अभिन्न भाग मानते थे । गांधी जी ने नागरिकता को नया अर्थ प्रदान किया है । इस सम्बन्ध में टी०के०एन० मेनन ने लिखा है कि :-

> "इन सभी तथ्यों से महत्वपूर्ण बात यह है कि गांधी जी की शिक्षा योजना का लक्ष्य एक नये किस्म की नागरिकता का विकास करना है । वह शिक्षा जो दूसरों पर आश्रित, धनी या गरीब व्यक्ति का निर्माण करती है वह निदंनीय है । उनकी योजना का लक्ष्य ऐसे कारीगर को बनाना है जो सभी प्रकार के आदरणीय कार्यों को करने तथा अपने पैर पर खड़ा होने के लिए इच्छुक है ।"[1]

1- प्रो० टी०के०एन० मेनन : जनरल ऑव एजूकेशन एण्ड साइकॉलॉजी, अप्रैल 1948 ।

महात्मा गांधी जी के अनुसार जो बच्चे अपने को किसी किस्म के हस्तकला के कार्यों में लगाते हैं तो वे सामाजिक समानता और समाज सेवा में पाठ को केवल अपने देश के लिए ही नहीं बल्कि पूरे संसार के लिये पढ़ते व सीखते हैं, क्योंकि गांधी जी पूरे विश्व को परिवार समझते हैं । इस प्रकार गांधी जी का विश्वास था कि एक सरकार वह है जो सबसे कम शासन करती है । इस प्रकार इन्होंने एक प्रगतिशील अहिंसक समाज के प्रति अपनी आस्था को व्यक्त किया है । यह समाज ऐसा होगा जिसमें वर्ग व जाति का अभाव तथा शोषण अपराध और युद्ध का चिन्ह भी दृष्टिगत न होगा । ऐसे ही समाज को गांधी जी ने सर्वोदयी समाज कहा है ।

सर्वोदयी समाज की विशेषताओं का वर्णन करते हुये डा० एम०एस० पटेल ने लिखा है कि :-

> "गांधी जी का शिक्षा दर्शन भारतीय संस्कृति, सामाजिक दशा और भविष्य की आवश्यकताओं पर आधारित है, शिक्षा के उद्देश्यों में से एक उद्देश्य गांधी के सर्वोदयी समाज की अवधारणा के अनुसार समाज की रचना करना है, ऐसा समाज सत्य, न्याय, और अहिंसा पर आधारित होगा । --- इस प्रकार के सामाजिक व्यवस्था की उत्पत्ति स्वयं में लक्ष्य नहीं है, बल्कि जीवन के अन्तिम लक्ष्य "आत्मानुभूति" की प्राप्ति का साधन है ।"[1]

---

1 - पटेल एम०एस० : द एजूकेशनल फिलॉसफी ऑफ महात्मागांधी नवजीवन पब्लिसिंग हाउस, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण, 1953

आर्थिक पक्ष :-

गांधी जी की शिक्षा पद्धति बालक को स्वावलम्बी व आत्म निर्भर बनाना चाहती है । ताकि समाज व राष्ट्र में आर्थिक दृष्टि से उत्पन्न होने वाली विभिन्न समस्याओं को कुछ सीमा तक हल किया जा सके । गांधी जी का विचार था कि बालक जब विद्यालय छोड़े तो अपनी जीविका कमाने के योग्य हो और समाज में एक कमाऊ ईकाई के रूप में प्रकट हो । उन्होंने लिखा है :-

> "आपको इस धारणा को लेकर आरम्भ करना पड़ेगा कि यदि शिक्षा को अनिवार्य बनाना है तो भारत के ग्रामों की आवश्यकताओं को देखते हुये हमें अपनी ग्रामीण शिक्षा को आत्म निर्भर बनाना चाहिये ।"[1]

श्री जे0सी0 कुमारप्पा ने लिखा है :-

> "गांधी जी का आर्थिक दृष्टिकोण हिंसा और असत्य के शुद्धिकरण के पश्चात का आर्थिक विचार है ।"[2]

गांधी के अनुसार एक अहिंसक और अशोषक समाज आर्थिक वर्ग विभाजन पर आधारित नहीं होता है और साथ ही वह आर्थिक कार्यों की छीना झपटी भी नहीं करता है ।

1- हरिजन, 18 सितम्बर 1937 ।

2- श्री जे0सी0कुमारप्पा :सोशल एण्ड पॉलिटिकल आइडियाज ऑव महात्मा गांधी, पृष्ठ-36 ।

क्योंकि सामाजिक समूह के प्रत्येक सदस्य को अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कुछ कार्य करने पड़ते हैं । गांधी जी के अनुसार मनुष्य को दूसरों को रंचमात्र भी हानि न पहुँचाते हुये अपना कार्य करके लाभ प्राप्त करना है । प्रकृति से पूर्ण सामन्जस्य रखते हुये अपना कार्य करना ही मनुष्य का आदर्श है । क्योंकि :-

> "यदि मानव के मध्य शान्ति और भलाई को लाना है और प्राणी को सच्ची उन्नति की ओर अग्रसर करना है ---- तो आर्थिक क्रिया सरल व समरूप होनी चाहिये ।"[1]

उन्होंने आगे भी लिखा है :-

> "गांधी जी के आर्थिक आधार का लक्ष्य शुद्ध भौतिक लाभ प्राप्त करना ही नहीं है, बल्कि इस प्रकार की क्रिया में संलग्न प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास और चरित्र की दृढ़ता द्वारा उन्नति के मार्ग पर मानवता को विकसित करना है । किसी का आर्थिक, शारीरिक, नैतिक अथवा आध्यात्मिक लाभ किसी अन्य के आर्थिक शारीरिक, नैतिक अथवा आध्यात्मिक हानि का कारण नहीं होना चाहिये ।"[2]

1- जे0सी0 कुमारप्पा : सोसल एण्ड पॉलिटिकल आइडियाज ऑव महात्मा गांधी, पृष्ठ- 37-38 ।

2- - तदैव - पृष्ठ-51 ।

प्रमुख दार्शनिक प्रवृतियों का गांधी दर्शन में संगति :-

हमें यह खोजना है कि विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का महात्मा गांधी के शिक्षा के सिद्धान्त में अचेतन रूप से कैसे प्रयोग हुआ है । महात्मा गांधी जी ने कभी भी अपनी शिक्षा की योजना को बैठकर पूर्ण नहीं किया । हमें गांधी जी की शिक्षा योजना तथा अन्य दार्शनिक विचारों में समानता दिखाई देती है । किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि महात्मा गांधी जी ने विभिन्न दर्शनों का अध्ययन किया था, बल्कि यह तो उनके मस्तिष्क की उपज व खोजों का प्रतिफल था ।

प्रकृतिवाद :-

प्रकृति वाद के जिस रूप ने गांधी जी को आकर्षित किया वह था जैविकीय प्रकृतिवाद । इसका कारण यह है कि यह मानव प्रकृति पर बल देता है तथा बालक की प्रकृति का पूर्ण विकास करना चाहता है । इसलिए यह मानना कि गांधी जी पूर्ण प्रकृतिवादी थे, उचित नहीं है, परन्तु उनकी कृतियों में कुछ कथन व वर्णन इस प्रकार के हैं जो उन्हें प्रकृतिवादी बनाते हैं ।

रूसों की भाँति गांधी जी भी पारम्परिक शिक्षा के तरीकों का विरोध करते हैं । उस सभ्यता का विरोध करते है जो मनुष्य को प्राय: मानुषी अस्तित्व के लिए बनाती है । पारम्परिक शिक्षा व्यवस्था के विरूद्ध निन्दा वाक्य में महात्मा गांधी जी ने कहा है :-

"मैं विश्वस्त हूँ कि वर्तमान प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था केवल समय की बरबादी ही नहीं है बल्कि सम्भावित रूप से नुकसान देह है । अधिकांश छात्र अपने माता-पिता को छोड़ देते हैं और जिन पेशों में जन्म लेते हैं उन्हें भी खो देते हैं । बुरी आदतों को अपना लेते हैं और शहरी ढ़ंग तरीकों से प्रभावित हो जाते हैं । किसी भी विषय का अल्प ज्ञान तो हो सकता है किन्तु वह शिक्षा नहीं होती है ।"[1]

पाठ्य पुस्तक के सम्बन्ध में गांधी जी ने लिखा है :-

"जो पुस्तके उपलब्ध हैं उनका कोई विशेष लाभ है ऐसा मैं नहीं सोचता हूँ, मै यह भी आवश्यक नहीं समझता कि पुस्तकों की संख्या के भार से बच्चों को लाद दिया जाय । मैने सदैव महसूस किया है कि बच्चों की वास्तविक पाठ्य पुस्तक उसका अध्यापक है, मुझे बिल्कूल याद नहीं है कि मेरे अध्यापकों ने मुझे पुस्तकों से पढ़ाया था । पुस्तक की अपेक्षा स्वतंत्र रूप से मुझे जो उन्होंने बताया या सिखाया उन वस्तुओं का पुनर्स्मरण आज भी मुझे स्पष्ट रूप से अबगत है । अपनी आखों की अपेक्षा कानों के द्वारा बच्चों को अध्ययन करने में कम परिश्रम करना पड़ता है । मुझे यह भी याद नहीं है कि मेरे बच्चों ने किसी पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ का अध्ययन किया है ।"[2]

1- एजूकेशनल रिकन्स्ट्रक्शन, पृष्ठ-60 ।

2- गांधी जी आत्म कथा, पृष्ठ-411-412 ।

> "गांधी जी अपनी शैक्षिक योजनाओं में बालक को उचित स्थान प्रदान करते हैं । प्रचलित पाठ्य पुस्तकों से वे पूर्णतः असन्तुष्ट थे क्योंकि ये पाठ्य पुस्तकें लगभग अपने देश की सम्पूर्ण संस्कृति को त्याग कर विदेशी संस्कृति पर आधारित थी ।"[1]

गांधी जी हमारी शिक्षा व्यवस्था को विदेशी आयात की वस्तु समझते थे और इसलिए वह हमारे देश की संस्कृति के बिलकुल अनुपयुक्त है । गांधी जी शिक्षा को ग्रामीण हस्तकला के जरियें देना चाहते हैं ।

> "वे आशा करते है कि अध्यापक ग्रामीण बालकों को उन्हीं के गाँव में पढ़ायेगें ताकि कुछ चयनित हस्त-कला के द्वारा बलात लादे गये प्रतिबन्धों और बाधाओं से मुक्त पर्यावरण में उन ग्रामीण बच्चों की क्षमताओं को विकसित किया जा सके ।"[2]

गांधी जी की स्वतंत्रता के प्रति धारणा प्रकृतिवाद एवं आदर्शवाद के मध्य की है । प्रकृतिवादी स्वतंत्रता का नारा लगाते हैं जबकि आदर्शवादी अनुशासन का । गांधी जी दोनों की अतिवादिता से बचते हैं और दोनों के मध्यवर्ती मार्ग का अनुशरण करते हैं और कहते है कि व्यक्ति बह-काने वाली भावनाओं का अनुशरण करने के लिये स्वतंत्र नहीं है । ऐसी स्वतंत्रता स्वयं त्याग देना चाहिये । स्वतंत्रता में विवेक बुद्धि के उपयोग का भाव निहित है । उच्च स्वतंत्रता

1- यंग इण्डिया - 1-9-1921 ।

2- गांधी जी : फोरवर्ड टू बेसिक नेशनल एजूकेशन

प्राप्त करने का अर्थ है उस प्रकाश का अनुसरण करना जो उसके अन्तराल में छिपा हुआ है और जो उसकी तुच्छ प्रवृत्तियों की श्रृंखला से अनबद्ध है । गांधी जी केवल "स्वानुशासन" को ही स्वतंत्रता मानते हैं ।

> "वही व्यक्ति मुक्त है जो स्वयं के प्रति सचेत है जैसे नियमों का निर्मायक भी अपने द्वारा बनाये गये नियमों को मानता है ।"[1]

अनुशासन की आवश्यकता पर जोर देते हुये कहते है कि :-

> "यदि बालक बालिकायें अपने विद्यालयीय दिनों में अनुशासन नहीं सीखते है तो उनकी शिक्षा पर व्यय किया हुआ धन और समय सर्वाधिक राष्ट्रीय हानि माना जायेगा ।"[2]

यह अनुशासन बाहर से लाया गया नहीं होना चाहिये । इसे तो जीवन के आन्तरिक स्त्रोत से स्वाभाविक रूप में उत्पन्न होना चाहिये । गांधी जी के दृष्टिकोण में :-

> "स्वेच्छिक अनुशासन स्वतंत्रता की प्रथम आवश्यकता है ।"[3]

1- टी०एच०ग्रीन, कोटेड बाई लार्ड हॉलीफैक्स इन ए स्पीच टू ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी 27-2-40 ।

2- हरिजन 17-2-46 ।

3- हरिजन 18-8-46 ।

इस प्रकार "स्वेच्छिक अनुशासन" की अवधारणा को प्रतिपादित करके गांधी जी ने आदर्शवाद व प्रकृतिवाद के अनुशासन के रूपों के मध्य निर्मित खाई पर सेतु का निर्माण किया है । इस स्वेच्छिक अनुशासन के विषय में गांधी जी ने लिखा है :-

> "यदि बच्चे अपने "स्व" को खोजना चाहें तो उन्हें अत्यधिक मात्रा में स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिये यदि वे अपनी क्षमताओं का पूर्ण विकास करना चाहते हैं तो उन्हे उचित अनुशासन व प्रशिक्षण को स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिये ।"[1]

गांधी जी द्वारा हस्तकला पर अधिक जोर देने के कारण कुछ शिक्षा शास्त्रियों में गलत विश्वास पैदा हो गया कि गांधी की शिक्षा योजना पूर्णतया हस्तकला केन्द्रित है । यह सत्य है कि हस्तकला गांधी की शिक्षा योजना में एक मुख्य साधन है । साधन स्वयं में शिक्षा का केन्द्र नहीं हो सकता क्योंकि यह तो साधन ही है स्वयं में साध्य तो नहीं है । यह स्मरणीय तथ्य है कि गांधी जी बच्चों के महान प्रेमी थे, बच्चों के व्यक्तित्व को वे उच्च प्राथमिकता देते हैं । वे साहित्यिक प्रशिक्षण, विद्यालयों, पुस्तकों और शिक्षा उपकरणों को अधिक महत्व नहीं देते हैं जितना कि बच्चों को और उनके व्यक्तित्व को, जिसे हस्तकला के द्वारा समान रूप से विकसित

1- गांधी : हैन्ड बुक ऑव सजेशन्स, पृष्ठ-20 ।

किया जा सकता है । अतः यह स्वमेव सिद्ध हो जाता है कि गाँधी जी की शिक्षा योजना का केन्द्र बिन्दु हस्तकला नहीं वरन् बालक ही है । जाकिर हुसैन कमेटी के अनुसार :-

> "हम यह समझने में असफल हो जाते है कि यह योजना किस प्रकार क्रियाशीलता पर आधारित है और बालक के भौतिक व सामाजिक पर्यावरण के अध्ययन पर अवलम्बित हैं । यह योजना वर्तमान शिक्षा जो पूर्णतः पुस्तक केन्द्रित है की अपेक्षा निःसन्देह बाल केन्द्रित है ।"[1]

इस प्रकार महात्मा गाँधी जी का प्रकृतिवादी दार्शनिकों में महत्वपूर्ण स्थान सुनिश्चित हो जाता है । वे प्रचलित विद्यालयीय शिक्षा के विरोधी हैं । वे बालक की प्रकृति की भलाई में विश्वास रखते हैं । बालक की प्रकृति का अनुसरण करने पर बल देते हैं । क्रियाशीलता पर जोर देना बालक की प्रकृति को महत्व देना है । कृत्रिमता के वे विरोधी हैं ।

वे चाहते है कि बालक भाषा व साहित्य में भी निष्णात हो । वे किसी भी प्रकार अति प्रकृतिवादी नहीं कहे जा सकते । रूसो की भाँति वे प्रकृति व ग्रामीण पर्यावरण को आवश्यक शिक्षा अभिकरण मानते हैं, परन्तु रूसो से इस बात में भिन्न है कि वे इस बात को मान्यता नहीं देते हैं कि समाज व मानव के आवश्यक प्रभाव से बालक को अलग रखा जाय।

1- एजूकेशनल रीकन्स्ट्रक्शन , पृष्ठ-157 ।

गाँधी जी शिक्षा दर्शन में भौतिक व सामाजिक पर्यावरण एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं । विद्यालय की चहार दीवारी से शिक्षा की रक्षा करने के लिए उनका प्रयत्न क्रान्तिकारी है ।

आदर्शवाद मानव की प्रतिष्ठा और उसकी प्रकृति की विशिष्टता पर बल देता है । हम जानते हैं कि मानव व्यक्तित्व श्रेष्ठ व मूल्यवान वस्तु है और ईश्वर के श्रेष्ठ कार्यों का संगठन है । एडमस जोर देते हैं कि शिक्षा के बहुत से आदर्शों में :-

"आत्मानुभव एक वह आदर्श है जो आदर्शवाद से विशेष रूप से सम्बन्धित है ।"[1]

यह ध्यान देने योग्य बात है कि आदर्शवादी एवं प्रकृतिवादी उद्देश्यों में मुख्य अन्तर "आत्मानुभव" और "आत्म प्रकाशन" या आत्माभिव्यक्ति" का है । आत्मानुभव को संकुचित अर्थ में नहीं ग्रहण करना चाहिये और यह भी नहीं समझना चाहिये कि आत्मानुभव" "अलगाववादी दृष्टिकोण" या "स्व पूर्ण" रूख का प्रतीक है । "रस्क" ने इंगित किया है कि :-

"मनुष्य की उच्च अथवा आध्यात्मिक प्रकृति आवश्यक रूप से सामाजिक है ।"[2]

1- सर एडमस : द इवोल्यूशन ऑव एजूकेशनल थ्योरी, पृष्ठ-298

2- रस्क : द फिलॉसफीकल बेसिस ऑव एजूकेशन, पृष्ठ-43 ।

इसलिए कोई भी व्यक्ति अपनी पूर्ण सम्भावनाओं को समाज की गतिविधियों में भाग लेकर ही अनुभव कर सकता है । यदि हम आत्मानुभव के इस विश्लेषण को स्वीकार करते हैं तो शिक्षा में सामाजिक उद्देश्य के प्रति पूर्ण न्याय करते हैं ।

आदर्शवादियों का दृष्टिकोण है कि संस्कृति, कला नैतिकता और धर्म हमें हृदय की वास्तविकता की ओर ले जाते हैं इसीलिए शिक्षा को धार्मिक , नैतिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक होना चाहिये । आदर्शवादी शारीरिक शिक्षा के विरोधी नही है बल्कि वे विश्वास करते है कि यदि समनरूप से सन्तुलित व्यक्तितत्व प्राप्त करना है तो उपरोक्त सभी तत्वों में से किसी की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती है ।

महात्मा गांधी जी के अनुसार मानव सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य ईश्वरी ज्ञान को प्राप्त करना है और अपने को विश्वात्का से, जो सर्वत्र व्याप्त है, से पूर्णतः परिचित कराना है । महात्मा गांधी जी ने धार्मिक जीवन के पारम्परिक अवधारणा को पुनर्जीवित किया है । जीवन का लक्ष्य आत्मानुभव होना चाहिये । महात्मा गांधी जी सत्यान्वेषी से यह आशा नही करते हैं कि वह अपने को समाज से हटा ले और एकान्त सेवी हो, मानव भीड़ से दूर जीवन यापन करें । मनुष्य को समाज में रहना चाहिये और सत्याग्रह रूपी हथियार से उपद्रवी शक्तियों से समाज की रक्षा करने के लिय तैयार रहना चाहिये, जो उपद्रवी शक्तियाँ समाज की एकता को नष्ट करना

चाहती है, उन्हें अहिंसात्मक शस्त्र से ही शमन करना चाहिये । मानव प्रतिष्ठा व नैतिक मूल्यों की सुरक्षा के लिये सत्याग्रह को सदैव एक हथियार बनाना चाहिये । भौतिक लाभ हेतु सत्याग्रह का प्रयोग वर्जित है ।

महात्मा गांधी जी के शिक्षा के अन्तिम उद्देश्य में आदर्शवाद की झलक देखी जा सकती है ।

> "आत्मा शिक्षण शिक्षा का एक स्वतंत्र विषय है, यह बात मैने टालस्टॉय आश्रम के बालकों की शिक्षा आरम्भ करने से पूर्व समझ ली थी, आत्मा का विकास करने का अर्थ है चरित्र का गठन, ईश्वर का ज्ञान तथा आत्म ज्ञान प्राप्त करना, इस ज्ञान की प्राप्ति में बालकों की सहायता करना जरूरी है, और मैं यह मानता हूँ कि उसके बिना दूसरा ज्ञान व्यर्थ है और हानिकारक भी हो सकता है ।"[1]

अन्य आदर्शवादियों की भाँति शिक्षा द्वारा महात्मा गांधी जी समनरूप से संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण करना चाहते थे ।

पेस्टालजी :-

पेस्टालजी की भाँति महात्मा गांधी जी की शिक्षा योजना में बालक ही शिक्षा का केन्द्र है । उनका कथन था कि शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक का जन्मसिद्ध अधिकार है और शिक्षा

1- गांधी जी : आत्मकथा, पृष्ठ-427, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1951, अनुवादक महावीर प्रसाद पोद्दार ।

का लक्ष्यण्स्वाभाविक, समनरूप एवं प्रगतिशील रूप में मानव की मूलभूत प्रवृतियों का विकास है । महात्मा गांधी जी व पेस्टालजी शिक्षा के प्रति समान अवधारणा के पोषक है, दोनों शिक्षा को प्राथमिक स्तर पर अनिवार्य एवं सार्वभौमिक बनाने के पक्षधर हैं ।

हरबार्ट एवं महात्मा गांधी दोनों शिक्षा के उद्देश्य को नैतिक चरित्र का निर्माण करना मानते हैं । दोनों की अवधारणा है कि जब तक बालक क्रिया में रूचि नहीं लेता है तब तक शैक्षिक प्रगति सम्भव नहीं है । इस प्रकार गांधी जी ने बालको की रूचि को मौलिक हस्तकला के प्रति उत्प्रेरित किया है । हस्तकला में स्वावलम्बी बनने का गुण निहित है। दोनों दार्शनिकों ने वास्तविक जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप विद्यालयीय विषयों को समन्वित करने की आवश्यकता पर बल दिया है ।

फ्रोबेल की तरह गांधी जी भी व्यक्ति की अभिक्षमताओं को उसके मौलिक स्वभाव में सुप्त मानते हैं और यह शिक्षा का कार्य है कि वह इन सुप्त अभिक्षमताओं को जाग्रत करे और उनके पूर्ण विकास के लिये प्रेरित करे । दोनों ईश्वरीय योजना में विश्वास करते हैं । जिसका तात्पर्य है कि सभी क्रियाओं के पीछे आध्यात्मिक अर्थ व मूल्य निहित है । प्रतीकवाद से आगे बढकर दोनों ने स्वक्रियाशीलता के सिद्धान्त को शिक्षण विधि के रूप में विकसित किया है और बच्चों की

शिक्षा में क्रिया के महत्व पर बल दिया है । दोनों इस तथ्य को मानते हैं कि शैक्षिक प्रक्रिया के लिए सामाजिक पर्यावरण आवश्यक है । और विद्यालय को समाज का एक लघु रूप होना चाहिये ।

प्रयोजनवाद :-

प्रकृतिवाद और आदर्शवाद की अपेक्षा हाल में विकसित प्रयोजनवाद नवीन विचारधारा है । प्रयोजनवाद की अवधारणा यह है कि सत्य निर्णय वह है जो अनुभव में संतोषजनक परिणाम प्रदान करता है । यह संतोषजनक कार्य और उपयोगियता को सत्य और शिव का प्रमाण मानता है । सत्य वह है जो निर्णय से घटित होता है और यदि विश्वास कार्य करे तो हमें उस आध्यात्मिक विश्वास को सत्य मानने का अधिकार है ।

प्रयोजनवाद प्रकृतिवाद के व्यक्तित्व शून्य अस्तित्व की व्याख्या का विरोध करता है और आर्दशवाद के शैक्षिक निरंकुश राज्य के सिद्धान्त के विरोध में आन्दोलन भी करता है । यह आदर्शवाद एवं प्रकृतिवाद के मिलन बिन्दु का मध्यवर्ती दर्शन है । ब्रह्मवाद के सिद्धान्त से सम्बन्धित आर्दश वाद एवं प्रकृतिवाद दोनों के गुणदोष की प्रयोजनवाद विवेचना करता है । प्रयोजनवादी दोनों वादों के भौतिक उपयोगी एवं आदर्श प्रवृत्तियों से सर्वोत्तम तत्व को ग्रहण कर दर्शन का पुनर्निमाण करते हैं । इसीलिए सम्भवतः प्रयोजनवाद एक नये आदर्शवाद के मार्ग का पद है । आदर्शवादी दार्शनिकों के

विचार को प्रयोजनवादी मान्यता नहीं देते हैं, क्योंकि प्रयो-जनवाद बहुतत्ववादी सापेक्षवादी एवं प्रायोगिक है ।

प्रयोजनवाद एक दार्शनिक मनोवृत्ति ही नहीं बल्कि एक दार्शनिक विचारधारा है जो विज्ञान, तर्क, अनुभव व विवेक पर आधारित है । मानव अनुभव ही प्रयोजनवाद का केन्द्र बिन्दु है । उसी अनुभव से वह सत्य की खोज करता है, उनका निर्माण करता है । प्रयोजनवाद उसे ही सत्य मानता है जिसका जीवन में महत्व, प्रयोग व उपयोग हो । "पारकिन के उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि :-

> "प्रयोजनवाद एक मध्यस्थ एवं संयोजक है --- जो हमारे सिद्धान्तो को सरल करता है । वास्तव में न तो उसके कोई पक्षपाती विचार है, न कोई अवरोधक धारणायें, न कोई स्थिर सिद्धान्त --- वह कोई भी अनुमान स्वीकार कर सकता है और किसी साक्ष्य को ले सकता है ---- प्रयोगवाद किसी भी बात को मानने के लिए तर्क अथवा इन्द्रिय ज्ञान के आधार पर अत्यन्त साधारण और अत्यन्त वैयक्तिक अनुभवों पर विचार करने के लिए इच्छुक है । वह रहस्यवादी अनुभवों को भी मान लेगा यदि वे व्यवहारोपयोगी परिणाम वाले है । वह उस ईश्वर को मानेगा जो व्यक्तिगत तथ्यों के धूल में रहता है ।"[1]

1- विलियम जेम्स कोटेड बाई पारकिन, इन द फिलॉसफी ऑव एजूकेशन ।

मानवीय प्रयोजनवाद में वही सत्य होता है जो मनुष्य के प्रयोजन व इच्छाओं आदि की पूर्ति करे और उसके जीवन का विकास करे ।

प्रयोगात्मक प्रयोजनवाद :-

प्रयोगात्मक प्रयोजनवाद प्रयोग पर बल देता है जो वस्तुए काम की है वे ही सत्य हैं लेकिन वे प्रमाणित तभी मानी जाती हैं जब वे प्रयोग की कसौटी पर खरी उतरें । प्रयोग द्वारा उस वस्तु के लाभ को जब प्रमाणित किया जाय, तभी वह सत्य है और तभी वह स्वीकार्य है अन्यथा नहीं । इस प्रयोजनवाद पर विज्ञान का प्रभाव है ।

जीव वैज्ञानिक प्रयोजनवाद मानव की शक्ति पर बल देता है । वातावरण का महत्व है किन्तु मानव की शक्ति वातावरण को अनुकूल बना लेती है । यह प्रयोजनवाद आधुनिक युग की प्रबल विचारधारा है । यह मनुष्य को उसके वातावरण से ऊपर उठा देती है । इसे साधनवाद के नाम से भी पुकारते हैं । प्रयोजनवाद के अभ्युत्थान सम्बन्धी आन्दोलन में जॉन - डिवी का योगदान साधनवाद और प्रयोगवाद के रूप में मिलता है ।

महात्मा गांधी जी पूर्ण सत्य में विश्वास करते हैं किन्तु सत्य की अनुभूति के लिये प्रयोग आवश्यक है इसलिए महात्मा गांधी जी ने अपनी आत्म कथा को मेरे सत्य के प्रयोग की कहानी" कहा है । सामान्य रूप से वे सत्य के लिए

अपने असंख्य प्रयोगों की कहानी बताना चाहते हैं, क्योंकि उनके जीवन में कुछ भी नहीं है, यदि है तो वे प्रयोग ही हैं जो राजनैतिक होने के साथ-साथ नैतिक व आध्यात्मिक प्रवृत्ति के भी हैं ।.[1]

जिन प्रयोगों का वर्णन उन्होंने अपनी आत्मकथा में किया है। वे आध्यात्मिक व नैतिक है, क्योंकि उनकी दृष्टि में धर्म का सारत्व नैतिकता ही है । इन प्रयोगों के सम्बन्ध में उन्होंने किसी पूर्णता की मात्रा को साधिकार स्वीकार नहीं किया है । महात्मा गांधी जी ने लिखा है कि :-

> "अपने प्रयोगों के सम्बन्ध में मैं किसी तरह की सम्पूर्णता का दावा नहीं करता, जैसे विज्ञान शास्त्री अपने प्रयोग, नियम, विचार सहित और सूक्ष्मता पूर्वक करता है, फिर भी उससे उत्पन्न हुये परिणामों को अन्तिम नहीं कहता अथवा यह नहीं कहता कि यही सत्य परिणाम है, इस सम्बन्ध में वह सशंक नहीं, तटस्थ रहता है, वैसे ही अपने प्रयोगों के विषय में मेरा मानना है । मैंने खूब आत्म निरीक्षण किया है, प्रत्येक भाव को जाँचा है और उसका विश्लेषण किया है उससे उत्पन्न हुये परिणाम सबके लिए अन्तिम नहीं है अथवा यही सही है । ऐसा दावा मैं कभी नहीं करना चाहता, हाँ एक दावा जरूर करता हूँ कि मेरी नजर में यही सही है और इस समय तो

1- गांधी जी : आत्म कथा, पृष्ठ-4 ।

आखिरी से लगते है, यदि ऐसा न लगे तो मुझे इसकी बुनियाद पर कोई इमारत नहीं खड़ी करनी चाहिये । मै तो हर पद पर जिन वस्तुओं को देखता हूँ उनके त्याज्य, ग्राहय दो हिस्से कर लेता हूँ और ग्राहय के अनुसार अपना आचरण बनाता हूँ और इस प्रकार बनाया हुआ आचरण मुझे अर्थात मेरी बुद्धि को जब तक संतोष दे तब तक उसके शुभ परिणामों के विषय में अटूट विश्वास रखना ही चाहिये ।"[1]

प्रयोगवादी प्रयोजनवाद की भाँति गांधी जी इस तथ्य में विश्वास करते हैं कि जो कुछ प्रयोग की कसौटी पर खरा उतरे वह सत्य है, इस प्रकार के सत्य के सम्बन्ध में गांधी जी किसी भी प्रकार की पूर्णता का दावा नहीं करते हैं । कसौटी के योग्य सत्य गांधी जी के लिए सापेक्षिक सत्य है, इस प्रकार गांधी जी दो प्रकार के सत्य में विश्वास करते है । प्रथम सापेक्षिक सत्य जिसे प्रयोग की कसौटी पर कसा जा सकता है । दूसरा पूर्ण सत्य, शाश्वत सिद्धान्त अर्थात ईश्वर । उन्होंने आगे लिखा है कि :-

"परमेश्वर की व्याख्यायें अगणित है क्योंकि उनकी विभूतियाँ भी असंख्य हैं ----- मुझे तनिक देर के के लिए मोह भी लेती है । पर मैं तो पुजारी सत्यरूपी परमेश्वर का हूँ वही तो सत्य है और सब मिथ्या है, वह सत्य मुझे मिला नही है पर मै इसका शोधक हूँ । इसकी शोध में मैं अपनी प्यारी से प्यारी वस्तुओं को भी त्यागने के

1- गांधी जी आत्म कथा, पृष्ठ-56, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, अनुवादक महावीर प्रसाद पोद्दार, दसमसंस्करण, 1951

> लिए तैयार हूँ ---- पर इस सत्य का साक्षात्कार कर लेने तक मेरी अन्तरात्मा जिसे सत्य समझती है उस काल्पनिक अथवा सापेक्षिक सत्य को अपना आधार मानकर दीपक समझकर उसके आश्रय में अपना जीवन बिताता हूँ ।"[1]

जब महात्मा गांधी पूर्ण सत्य और आत्मानुभव अथवा मोक्ष की बात करते हैं तब वे प्रयोजनवादी नहीं प्रतीत होते हैं इस सम्बन्ध में यह ध्यान में रखना चाहिये कि प्रयोजनवाद और आदर्शवाद के मध्य अन्तर यह है कि जिस मूल्यों को अनुभव करने के लिए प्रयत्न किया गया है और जिनका मानव ने स्वयं परीक्षण कर लिया है उन मूल्यों के मानने में है । इस प्रकार प्रयोजनवाद गतिशील आदर्शवाद की सीमा के अन्तर्गत ही है ।

इस सम्वन्ध में रस्क ने कहा है :-

> "नये आदर्शवाद के विकास का प्रयोजनवाद मात्र एक स्तर है जो आध्यात्मिक व व्यावहारिक मूल्यों में एकता स्थापित करता है और सत्यता के प्रति प्रयोजनवाद एक ऐसा आदर्शवाद है जो पूर्ण न्याय करता है जिसका परिणाम संस्कृति है जो दक्षता का पुष्प है न कि इसके नकारात्मक रूप का ।"[2]

प्रयोजनवादी की भाँति महात्मा गांधी जी चाहते है कि बालक स्वयं ज्ञान और कार्य कुशलता प्राप्त करे, जो

1- गांधी : आत्म कथा, पृष्ठ-6 ।

2- रस्क : द फिलॉसफिकल बेसिस औव एजूकेशन पृष्ठ-33

वास्तविक जीवन की परिस्थितियों से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए आवश्यक है । प्रयोजनवादियों की प्रोजेक्ट विधि और महात्मा गांधी जी की हस्तकला शिक्षा में काफी समानता है दोनों विधियाँ क्रियात्मकता और रूचि के सिद्धान्त पर आधारित हैं । ये दोनों विधिया ँ बालक के बौद्धिक विकास और विभिन्न विषयों के ज्ञान प्राप्ति के साधन के रूप में है । प्रयाजनवादी की भाँति महात्मा गांधी जी मानते हैं कि हस्तकला का कार्य करते हुये उत्पन्न होने वाली समस्याओं को समाधान करते समय विभिन्न विषयों का ज्ञान बच्चों को प्राप्त करना चाहिये ।

जॉन डिवी की तरह महात्मा गांधी जी जनतांत्रिक विचारों के पोषक हैं । विचार व कार्य के मध्य त्याग के लिए उनका विरोध दार्शनिक व मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार का है, कारीगर और आफिसर ।अधिकारी। के रूप में समाज के विभाजन की भाँति महात्मा गांधी जी विचार व कार्य में अन्तर समझते थे । उनका विद्यालय कार्य करने का विद्यालय होगा । इसीलिए वह एक विचार का स्कूल भी है, क्योंकि विचार ही कार्य में परिणित होते हैं । गांधी जी प्रयास और रूचि को एक दूसरे का विरोधी नहीं समझते थे, विद्यालयीय कार्य में दोनों को समन्वित करना चाहते हैं ।

बेसिक शिक्षा और प्रोजेक्ट विधि में कुछ अन्तर है, प्रोजेक्ट की संख्या असीमित है, स्टीवेन्सन ने लिखा है कि :-

"प्रोजेक्ट एक समस्यात्मक कार्य है जिसे स्वाभाविक रूप से पूर्ण करना है ।"[1]

जबकि महात्मा गांधी जी बेसिक हस्तकला की संख्याओं को सीमित करना चाहते हैं और वे ही बेसिक हस्तकला में सम्मिलित की जा सकती है जो हमारी ग्रामीण जनसंख्या के पर्यावरण और आवश्यकताओं के अनुरूप हो, दूसरा अन्तर यह है कि बेसिक हस्तकला से धनोपार्जन किया जा सकता है जबकि प्रोजेक्ट से धनोपार्जन की आशा नहीं की जा सकती । प्रोजेक्ट विधि यह आशा करती है कि उचित प्रोजेक्ट के माध्यम से बालक अनेक विषयों का अध्ययन करे, जबकि महात्मा गांधी जी का दृष्टिकोण है कि बालक के पर्यावरण को दृष्टि में रखकर चुने गये किसी एक मूल हस्तकला से सभी विषयों का अध्ययन कराया जाये । प्रोजेक्ट विधि के अनुयायियों की भाँति महात्मा गांधी जी ज्ञान को मानव के जीवन से महत्वपूर्ण ढंग से सम्बन्धित करना चाहते है । प्रो० गॉड फ्रे थामसन व जाकिर हुसैन समिति के सुझावों की भाँति गांधी जी यह महसूस करते हैं कि आकस्मिक सीखना पर्याप्त नहीं है बल्कि शिक्षण व निर्देशन में तार्किक व्यवस्था और प्रबन्ध होना चाहिये । इसीलिये वे विषयों के एकीकरण और समन्वय के लिये कहते हैं । प्रोजेक्ट की भाँति बेसिक हस्तकला

1- स्टीवेन्सन : द प्रोजेक्ट मेथड ऑव टीचिंग, पृष्ठ-43

भी एक सामाजिक क्रियाशीलन है । जिसमें सामाजिक सम्बन्धो की हिस्सेदारी, श्रम का विभाजन और समुदाय के प्रति मान्य उत्तरदायित्व सम्मिलित है । सहयोग के लिए इसका महत्व बहुत अधिक है । जैसा कि श्री के0जी0 मसरूवाला ने कहा है कि :-

> "सामाजिक विज्ञानों और स्वास्थ्यकारी विषयों को कक्षा में विषय के रूप में नही पढाया जायेगा परन्तु संयुक्त और उनके सेवा के प्रबंध की योजना द्वारा सारे गामीणों को शिक्षित कियाजाना चाहिये । विद्यालय चतुर्मुखी समाज के लिए संस्कृति की किरण का केन्द्र होगा ।"[1]

इन सभी विवरणों से यह अनुभव किया जा सकता है कि शिक्षा के दर्शन में महात्मा गांधी जी का प्रयोजनवादी योगदान विशिष्ट कोटि का है । बेसिक हस्तकला शिक्षा का केन्द्र बिन्दु है, पाठ्यक्रम की पाठचर्या में समवाय और एकरूपता, वास्तविक जीवन से शिक्षा का घनिष्ठ सम्बन्ध करके सीखने की विधि वैयक्तिक क्रियाशीलता, सामाजिक उत्तर-दायित्व का ज्ञान, सत्य की खोज के साधन के रूप में प्रयोग पर जोर, ये ऐसे कुछ महात्मा गांधी के प्रमुख प्रयोजनवादी शिक्षा दर्शन की विशेषतायें हैं ।

अमेरिका बाले अपनी शिक्षा की व्यवस्था की योजना में जॉन डिवी के प्रयोजनवादी दर्शन को पथ प्रदर्शक

1- के0जी0 मसरूवाला : हरिजन, 4-12-37 ।

के रूप में स्वीकार कर रहे हैं। यह आशा की जाती है कि वह दिन दूर नहीं है जबकि सम्पूर्ण विश्व भर के शिक्षा-शास्त्री महात्मा गांधी जी के दर्शन की तरफ ध्यान देगें और शिक्षा की व्यवस्था से उन हानिकारक कीटाणुओं को निकाल कर उसे पुनर्जीवित कर सकने में समर्थ होगें।

गांधी दर्शन का ध्यान पूर्वक अध्ययन करने से हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृतिवाद आदर्शवाद और प्रयोजनवाद एक दूसरे के पूरक है न कि विरोधी। आदर्शवाद के मौलिक होने के कारण प्रकृतिवाद और प्रयोजनवाद इसके केवल सहयोगी हैं। क्या रूसो ने शिक्षा दर्शन में उलझे हुये सिद्धान्तों के सम्मिश्रण को प्रस्तुत नहीं किया है ? गांधी जी का शिक्षा-दर्शन उस समय प्रकृतिवाद हो जाता है जब वे बालक की प्रकृति और उसके अध्ययन के सम्बन्ध में विचार करते हैं। गांधी का शिक्षा दर्शन व्यवस्था में प्रकृतिवादी उद्देश्यों में आदर्शवादी और कार्य की योजना और विधि में प्रयोजनवादी है। उनके दर्शन के एक पक्ष पर जोर देना और अन्य पक्ष की अवहेलना करना उनके दर्शन के एक हिस्से को समझना है। शिक्षा दार्शनिक की हैसियत से गांधी जी की महानता इस तथ्य में है कि प्रकृतिवाद आदर्शवाद और प्रयोजनवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ उनके दर्शन में स्वतंत्र व अलग नहीं है, बल्कि वे एकता में गुथी हुई है और शिक्षा के सिद्धान्त का उत्थान करती हैं, जो मानव की उच्च आकांक्षाओं को सन्तुष्ट करने की सामर्थ्य

रखती है । यह वर्तमान की आवश्यकताओं के अनुरूप है यही उनकी महान उपलब्धि है न कि बेसिक शिक्षा की योजना की प्रस्तुति ।

अध्याय-6

जॉन डिवी का शिक्षा सिद्धान्त

जैसा कि हमें ज्ञात है कि जॉन डिवी ने अनेक लेख व पुस्तकें प्रणीत की हैं जो हमें उनकी शैक्षिक विचारधाराओं एवं प्रयोगों के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करते हैं । उनकी समस्त कृतियों में हमें उनका आशावादी दृष्टिकोण दृष्टिगत होता है, जो हमें यह अवगत कराता है कि शिक्षा के सम्बन्ध में उनकी आशायें सदैव एक सी रही हैं ।

जॉन डिवी की शैक्षिक विचारधारा उनके साधन-वाद की उपज है । जैसे-जैसे हम उनकी कृतियों व लेखों का अध्ययन करते हैं तो "अनुभव", "विकास", "प्रयोग" और "व्यवहार" के सम्बन्ध में उनका वही आधारभूत विचार पाते हैं । वास्तव में उनके दर्शन व शिक्षा में इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि जॉन डिवी :-

> "दर्शन को शिक्षा का सामान्य सिद्धान्त कहते हैं" और "शिक्षा को" वह प्रयोगशाला मानते हैं जहाँ दार्शनिक विचार परखे जाते हैं और अपनी श्रेष्ठता का मूर्त रूप धारण करते हैं ।"[1]

डिवी के अनुसार दर्शन का एक व्यावहारिक कार्य है जो आकांक्षाओं और उद्देश्यों से युक्त मानव

1- जॉन डिवी: डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन पृष्ठ- 303 - 4

जाति को एक "और अधिक नियन्त्रित और बौद्धिक सुख प्रदान करता है।"[1]

इस प्रकार डिवी के अनुसार :-

"शिक्षा वह साधन है जो हमारे व्यवहार को अतीत के अनुभवों एवं मूल्यों से प्रभावित करता हैअत: जॉन डिवी के अनुसार शिक्षा का अर्थ अतीत के अनुभव व मूल्यों की योजना हमारे व्यवहार को प्रभावित करती है।"[2]

से है। इस प्रकार शिक्षा व दर्शन "एक दूसरे के लिये आवश्यक हैं" क्योंकि दर्शन के बिना शिक्षा बौद्धिक निर्देशन विहीन हो जाती है और शिक्षा के बिना दर्शन व्यावहारिक रूप विहीन हो जाता है। जॉन डिवी की मान्यता है कि दर्शन शास्त्र का काम विश्व को जानना मात्र नहीं है वरन् उसे नियन्त्रित करके सुधारना भी है। इसी लिये वे कहते हैं :-

"दर्शन शास्त्र का क्षेत्र असामाजिक अभावों का अध्ययन करने से है जिनका जन्म जनतंत्र, व्यवसाय और शिक्षा के आपसी संघर्ष के कारण होता है।"[3]

5---

1- जॉन डिवी : "रीकन्स्ट्रक्शन इन फिलॉसफी" पृष्ठ-27 ।

2- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन, पृष्ठ-328-29 ।

3- हार्न एच0एस0: द फिलॉसफी ऑव एजूकेशन पृष्ठ-297 ।

मैक मीलन कम्पनी ।

इससे प्रकट होता है कि उनकी दार्शनिक विचारधारा प्रयोगात्मक है । हमें यह भी अबगत होता है कि अनुभव व प्रयोग दोनों शिक्षा दर्शन के केन्द्र हैं और इसी विचार को जॉन डिवी ने अपनी शिक्षा की परिभाषा का आधार बनाया है ।

शिक्षा की परिभाषा :-

1- "शिक्षा अनुभवों की पुनर्रचना एवं पुनर्संगठन है । जो अनुभव के अर्थ में बृद्धि और भविष्य में होने बाले अनुभवों को निर्देशित करने की योग्यता को बढ़ाती है ।"[1]

अपनी पुस्तक "माई पैडागाजिक क्रीड" में उन्होने संक्षेप में इस प्रकार परिभाषित किया है :-

2- "शिक्षा"अनुभव की निरन्तर पुनर्रचना है।"

(ए कान्टीनुइंग रिकन्स्ट्रक्शन आॅव एक्सपीरियन्स)

व्यक्ति को स्वानुभव से सीखना चाहिये और अपने अनुभवों को बार-बार सुधारना चाहिये इसलिए उसे अपनी रचनात्मक बुद्धि पर विश्वास करना चाहिये । डिवी दैवी शक्ति के बजाय व्यक्ति की शक्ति,व बुद्धि में विश्वास करते हैं ।

जॉन डिवी का कथन है :-

"ऐसा कहने का यह अर्थ नहीं है कि हमारी कल्पना दर्शनशास्त्र को उपयोगिता वाद के शिखर से नीचे

1- जॉन डिवी: डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन, पृष्ठ-89-90 ।

के धरातल पर पटकने वाली है । इससे तो व्यक्ति के अनुभव की सम्भावनायें अधिक तर्कपूर्ण और प्रमाणित होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति कल्पना की उडान में वास्तविक समस्याओं को भुलाने में समर्थ नहीं होगा ।"[1]

जॉन डिवी ने शिक्षा की परिभाषा के सम्बन्ध में इसी प्रकार विचार को दूसरे रूप में प्रकट करते हुये लिखा है :-

"शिक्षा का अर्थ वर्तमान में से विकास की मात्रा व प्रकार की प्राप्ति से है जो इसमें निहित है ।"[2]

अपनी पुस्तक "एक्सपीरियन्स एण्ड एजूकेशन" में शिक्षा का वर्णन इस प्रकार किया है :-

"बौद्धिक रूप से निर्देशित सामान्य अनुभवों में निहित सम्भावनाओं का विकास ही शिक्षा हैं ।"[3]

प्रश्न यह है कि जॉन डिवी के उपर्युक्त कथन का तात्पर्य क्या है ? डिवी का मन्तव्य है कि जीवित रहने का अर्थ यह है कि हम उस क्रिया में लीन रहे जिसे हम अनुभव की की संज्ञा देते हैं । यह जीवित सभी स्त्री-पुरूष, बच्चों पर समान रूप से लागू होता है । अनुभव एक प्रक्रिया है जो पुनर्रचना के एक स्तर से दूसरे स्तर तक सतत चलती रहती है,

---

1- जॉन डिवी : रीकन्स्ट्रक्शन इन फिलॉसफी, पृष्ठ-122 ।

2- - तदैव - पृष्ठ-184-85 ।

3- जॉन डिवी : एक्सपीरियन्स एण्ड नेचर पृष्ठ-89 ।

क्योंकि नई समस्यायें बौद्धिक विकास को प्रभावित करती है, और नये कार्य के लिए नये प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए बुद्धि को प्रेरित करती है। जॉन डिवी के अनुसार मनुष्य जीवन की विशेषता "विकास" है। इस विकास की कई दिशायें है जैसे सामाजिक, शारीरिक और मानसिक। व्यक्ति इस विकास से सामाजिक व प्राकृतिक पर्यावरण पर नियन्त्रण रखता है।

इस प्रकार जॉन डिवी के अनुसार शिक्षा व्यक्ति में उन समस्त अभिक्षमताओं का विकास है जो सभी को अपने वातावरण पर नियन्त्रण (चाहे वह पर्यावरण सामाजिक हो या प्राकृतिक) रखने और व्यक्ति की सम्भावनाओं को पूरा करने के योग्य बनावे। शिक्षा व्यक्ति के विकास के लिए महत्वपूर्ण वस्तु है क्योंकि जिस प्रकार शारीरिक विकास के लिए भोजन का महत्व है उसी प्रकार सामाजिक विकास के लिए शिक्षा का है। शिक्षा संस्कृति व सभ्यता की मूल व जननी है। जॉन डिवी के अपने ग्रन्थ "डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन में शिक्षा के अनेक पक्षों की विवेचना करते हुये अपना विचार व्यक्त किया है उनके अनुसार शिक्षा "जीवन के लिए एक आवश्यकता है, शिक्षा एक सामाजिक कार्य है" शिक्षा एक निर्देशन है, शिक्षा शक्तियों का प्रकटीकरण है, शिक्षा शक्तियों का प्रशिक्षण है, शिक्षा रूप निरूपण है, शिक्षा पुनरावृत्ति और पुनर्पेक्षण है और शिक्षा पुनर्निमाण है।"[1]

1- जॉन डिवी : वाइड डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन ।

उपर्युक्त विचार पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि शिक्षा व्यक्ति को हर प्रकार से पूर्ण बनाने की जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है । व्यक्ति शिक्षा से ज्ञान प्राप्त करता है और स्वयं की तथा जिस समाज का वह सदस्य होता है उसकी उन्नति, वृद्धि, विकास, निर्माण और सभी कार्य करता है । शिक्षा जीवन की भाँति विस्तृत एवं व्यापक भाव गरिमा युक्त जीवन से संयुक्त है और इसीलिये शिक्षा जीवन को आगे बढ़ाने के लिए तत्पर रहती है ।

शिक्षा और विद्यालयीय अध्ययन :-

जॉन डिवी के अनुसार विद्यालयीय पढ़ाई के अर्थ में शिक्षा एक विशिष्ट प्रकार का अनुभव है । इस प्रकार के विशेष अनुभव का लक्ष्य उस प्रक्रिया को निर्देशित करना है जो मानव को अधिक लाभप्रद हो । सम्पूर्ण अनुभवों में से अध्यापक को उन अनुभवों को चुन लेना चाहिये जो उसके विचार से बालक के भावी विकास में सहायक हों । विद्यालयीय परिवेश में यही अध्यापक का मुख्य कार्य है । इस प्रकार विद्यालयीय शिक्षा में विद्यार्थी के अनुभव के ढाँचे में निरन्तर पुनर्रचना और रूप निरूपण एवं पुनर्निरूपण का कार्य चलता रहता है । इस प्रकार के कार्य से भावी अनुभव के लिए नयी सम्भावनायें उत्पन्न होती रहती हैं । विद्यालयी परिवेश में मूलभूत अभिक्षमताओं को जाग्रत कर विद्यार्थी की उत्सुकता को उत्प्रेरित करके और मस्तिष्क, मन और शरीर की विभिन्न योग्यताओं के विकास के लिए प्रयोग

द्वारा उनकी अन्तदृष्टि एवं रूचि को जानकर सामाजिक सम्बंधों में भाग दिलाकर विद्यालयीय शिक्षा इस पुनर्रचना की प्रक्रिया को तीव्र करती है । हम जानते हैं कि उपर्युक्त कार्य जीवित होने से ही सम्भव है । इसलिये शिक्षा एक जीवन्त प्रक्रिया भी हो जाती है । इस प्रकार अनुभव का उद्देश्य नये अनुभव की सम्भावनाओं की वृद्धि करना है ।

शिक्षा में अनुभवों का केन्द्रीकरण व परिणाम :-

जॉन डिवी ने शिक्षा को अनुभव का केन्द्र बिन्दु माना है उनके इस प्रकार के वर्णन से हमें अनेक महत्वपूर्ण प्रायोगिक परिणाम उपलब्ध होत हैं । कुछ महत्वपूर्ण परिणाम निम्नलिखित है :-

1- बाल केन्द्रित शिक्षा :-

प्रयोजनवाद के अनुसार बालक मूल्यों का स्रष्टा होता है । वही शिक्षा का केन्द्र है; क्योंकि बालक स्वयं ही शैक्षिक प्रक्रिया में अपने वातावरण से व्यवहार करने में चेतन साधन है व स्वयं सीखने बाला है । अत: उसकी रूचि,आवश्यकता व शक्ति के अनुसार शिक्षा देनी चाहिये । इसलिए अध्यापक को बालक की आवश्यकताओं, अभिरूचियों और विकास की ओर ध्यान देना चाहिये न कि पाठ्यक्रम, परीक्षा अनुशासन अथवा ऐसी कोई वस्तु की ओर जो बालक के अनुभव से बाहर हो । जॉन डिवी कहते हैं :-

> "बालक की स्वयं की मूलभूत भावनायें और शक्तियाँ ही वह विषय वस्तु रूपी पदार्थ प्रस्तुत करती है जिससे सभी प्रकार की शिक्षा का प्रारम्भिक बिन्दु प्रारम्भ होता है।"[1]

यहाँ पर हम देखते हैं कि जॉन डिवी ने अनुभव की सामाजिकता पर जोर दिया है। वे व्यक्ति को समाज से अलग नहीं करते है, इन्हीं के शब्दों में :-

> "समस्त शिक्षा व्यक्ति द्वारा जाति की सामाजिक चेतना मे भाग लेने से विकसित होती है।"[2]
>
> इसलिए शिक्षा के समक्ष एक महत्त्वपूर्ण कार्य "व्यक्तिगत गुणों का सामाजिक उद्देश्यों एवं मूल्यों से सामान्जस्य स्थापित करना है।"[3]

अतः बालक की प्राकृतिक विशेषता यह है कि वह प्रत्येक कार्य करके सीखना चाहता है। वह स्वयं प्रयोग करता है, शिक्षा का कार्य है कि वह बालक को प्रयोग करने में उत्साह प्रदान करे। बालक प्रारम्भ से ही क्रियाशील होता है और सदैव कुछ न कुछ करके अपना विकास करता रहता है। कुछ बालक अपनी व्यक्तिगत विशेषता के कारण अन्य की अपेक्षा

1- जॉन डिवी : पेडॉगोगिक क्रीड", पृष्ठ-45 ।

2- - तदैव - पृष्ठ-44 ।

3- जॉन डिवी : द डिवी स्कूल" पृष्ठ-465 ।

आगे निकल जाते हैं, वे ही सामाजिक कार्यों में विशेष रूचि लेते है, वे ही सामाजिक नेता होते हैं । बालक मे ऐसी प्रवृत्ति का विकास करना है ताकि भविष्य में आने वाली समस्याओं का हल ढूढ़ सके तथा उसके लिए तैयार रहे, बीते हुये कल के नेता बन सके, समस्या के आने पर उदविग्न व किंकर्तव्य विमूढ़ न हो सके ।

2- शिक्षा का सम्बन्धित कारक अनुभव है :-

अगला परिणाम यह है कि शिक्षा में अनुभव एक सम्बन्धित कारक है, विद्यालयीय जीवन की एकता बालक के अनुभवों की आवश्यकता से उत्पन्न होती है क्योंकि वह अपने वातावरण से क्रिया प्रतिक्रिया के कारण अपनी शक्तियों का विकास करता है और अनुभवों को संचित करता है । इस प्रकार शिक्षा अनुभवों के विकास की प्रक्रिया हो जाती है । इस विकास की प्रक्रिया में निरन्तर अनुभवों का पुर्नगठन, पुन-र्रचना तथा पुनर्निर्माण होता रहता है । प्रश्न उत्पन्न होता है कि पुनर्निर्माण आदि किसके होते हैं ? प्रयोजनवादी का इस सम्बन्ध में उत्तर बड़ी ही स्पष्ट एवं संक्षिप्त शैली में उपलब्ध होता है :-

शिक्षा "संचित अनुभवों का पुनर्निर्माण "[1] करती है । हम जानते हैं कि पुनर्निर्माण के लिए एक प्रयोगशाला की आवश्यकता होती है । वह हमारा समाज है । जहाँ हम शिक्षाके प्रयोग व अनुभवों का पुनर्निर्माण करते हैं ।

1- जॉन डिवी "एक्सपीरियन्स एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-29 ।

3- विद्यालय शिक्षा से अलग नहीं है :-

तीसरा परिणाम यह है कि विद्यालय शिक्षा से अभिन्न है । विद्यालयीय अनुभव जीवन अनुभव की अनुरूपता तथा अनुकूलता के प्रतिकूल नहीं होता है । जॉन डिवी का कथन है कि विद्यालय अपने चारो ओर के संसार के प्रभाव से अलग नहीं रह सकता । अनुभव की प्रकृति निरन्तरता में निहित है । इसलिए विद्यालय व घर में सम्बन्ध की निरंतरता होनी चाहिये । इसलिए :-

> "यह सिद्धान्त कि अनुभव का विकास क्रिया प्रति क्रिया पर आधारित है का तात्पर्य है कि शिक्षा वास्तव में एक सामाजिक प्रक्रिया है ।"[1]

शिक्षा के सामाजिक पक्ष पर जॉन डिवी का बल :-

जॉन डिवी के शिक्षा सम्बन्धी विचार शिक्षा के सामाजिक रूप पर विशेष जोर डालते हैं । शिक्षा के सामाजिक पक्ष पर बल देना ही विद्यालयीय बच्चों तथा समाज में विद्यालय की स्थिति के सम्बन्ध में उनके विचारों को निर्धारित करते हैं । व्यक्ति और समाज एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते हैं। विद्यालय एक ऐसी सामाजिक संस्था है जहाँ शिक्षा के प्रयोग व अनुभवों का पुनर्निर्माण किया जाता है । यह पुनर्निर्माण सामाजिक जीवन के कल्याण के लिए ही होता है । इस प्रकार

1- जॉन डिवी : एक्सपीरियन्स एजूकेशन" पृष्ठ-58

शिक्षा और जीवन एक ही हो जाते हैं । प्रयोजनवाद शिक्षा के दो पक्ष मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक मानते हैं । इस प्रकार शिक्षा वह साधन है जिससे विद्यार्थी का सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक विकास किया जाता है । अत: व्यक्ति व समाज की अभिन्नता का लक्ष्य ही शिक्षा है । जॉन डिवी का विचार है :-

> "कोई भी जो वार्तालाप में स्वतंत्र आदान प्रदान में अन्य लोगों से जिस रूप में सम्बन्धित है उसी रूप में व्यक्ति है ।"[1]

इसका परिणाम यह है कि :-

> "बालक की शक्तियों को जिस सामाजिक परिस्थितियों में वह अपने को पाता है उसकी माँग द्वारा उत्प्रेरित करना एक मात्र सच्ची शिक्षा है ।"[2]

सामाजिक परिप्रेक्ष्य तथा अधिगम :-

इसका तात्पर्य है कि प्रभावशाली अधिगम चाहे वह कक्षा में हो या जीवन में, वह सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही घटित होता है । जॉन डिवी के अनुसार सीखना एक सहयोगी प्रक्रिया है, एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें शिक्षक व छात्र एक दूसरे से सामान्य कार्य के लिये जुड़े होते हैं । इस कार्य में व्यक्ति के बजाय समूह

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजुकेशन" पृष्ठ-143 ।

2- जॉन डिवी : पेडॉगागिक क्रीड" पृष्ठ- 45 ।

को ही एक इकाई के रूप में होना चाहिये । शारीरिक श्रम और विभिन्न पेशों का यही मूल्य है । ये पेशे या श्रम उन्हें आपस में मिल जुल कर कार्य के लिए प्रोत्साहन देते हैं । साथ ही ये पेशे व श्रम मौलिक आवश्यकताओं की कुछ अन्तर्दृष्टि एवं जानकारी भी प्रदान करते हैं । इसलिए वे :-

> "वह साधन है जिसके द्वारा वास्तविक रूप में विद्यालय स्वयं एक क्रियाशील सामुदायिक जीवन बना दिया जाता है ।"[1]

सामाजिकता के सिद्धान्तका प्रयोग अन्य पारम्परिक अध्ययनों जैसे इतिहास, भूगोल, में भी लागू होता है । ये अलग विषय नहीं है जो मानव को सम्पूर्ण सामाजिक अनुभव पर कोई अलग से प्रभाव डाले । ये विषय प्रकट करते हैं :-

> " ये वे तथ्य हैं जिनका सामाजिक जीवन के मुख्य उद्देश्य या प्रक्रिया के सम्बन्ध में संगठन किया गया है ।"[2]

इस प्रकार जॉन डिवी के अनुसार इन विषयों को उसी प्रकार पढाया जाना चाहिये ताकि वे पारस्परिक सम्बंध को और समाज के लिए अपने महत्त्व को प्रकट कर सके । यही आधिकारिक निर्णायक सिद्धान्त है जिसके अनुसार इन्हें पाठ्य

1- जॉन डिवी : माई पैडागागिक क्रीड" पृष्ठ-112

2- - तदैव - पृष्ठ- 88-89 ।

क्रम में सम्मिमजित किया गया है । इसमें कोई संदेह नहीं है कि समस्त ज्ञान का विकास सामाजिक परिपेक्ष्य में ही हुआ है, परन्तु इसका यह भी अर्थ नहीं है कि सभी ज्ञान का सामाजिक महत्व आज एक सा है । इसलिए अध्ययन हेतु विषयों का चुनाव वर्तमान समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप ही होना चाहिये और - " इसका उद्देश्य हमारे वर्तमान जीवन का सुधार करना है ताकि भविष्य अतीत की अपेक्षा अधिक उत्तम व श्रेष्ठ हो, --- एक ऐसे पाठ्यक्रम के लिए जो शिक्षा के सामाजिक उत्तरदायित्व को मानता है आवश्यक है कि ऐसी परिस्थितियाँ सामने प्रस्तुत करे जिनमें विषयों की समस्याओं और साथ-साथ जीवन में रहने की समस्या के मध्य संगति हो जिससे निरीक्षण और सूचना की गणना सामाजिक रूचि व अर्न्तदृष्टि के विकास के लिए हो सके ।"

जॉन डिवी के शिक्षा के उद्देश्य :-

जॉन डिवी के कथनानुसार विद्यालयीय प्रकरण की त्रिमूर्ति या विषय सामग्री ‖सब्जेक्ट मैटर‖ विधियाँ एवं प्रशासन हैं, परन्तु जॉन डिवी का उपर्युक्त कथन शिक्षा के उद्देश्यों के महत्व को किसी भी प्रकार कम नहीं करता है ।

उद्देश्यों को अपने क्रमिकवाद-विवाद या विवरण में जॉन डिवी प्रथमत: विकास, वृद्धि तथा प्रजातंत्र की विचार धारा को सुनिश्चित करते हैं । क्योंकि यही शिक्षा का सांस्कृतिक एवं सार्वभौमिक आदर्श है । दूसरे शब्दों में शिक्षा का

सार्वभौमिक व सांस्कृतिक आदर्श विकास व वृद्धि करना ही तो है । वे कहते हैं :-

"शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तियों को अपनी शिक्षा जारी रखने के योग्य बनाना है --अथवा अधिगम का लक्ष्य व पुरूस्कार विकास हेतु निरन्तर क्षमता-ओं को बढाना है - इसका तात्पर्य जनतंत्रात्मक समाज है ।"[1]

इस प्रकार शिक्षा के जिन उद्देश्यों से जाॅन डिवी का सम्बन्ध प्रमुख रूप से है वे शैक्षिक प्रक्रिया के अन्दर ही है न कि उसके बाहर की क्रिया में ।

उपर्युक्त तथ्यों के विवरण सेयह ज्ञात होता है कि शिक्षा के उद्देश्य को वे कम महत्त्व नहीं देते है कि यह तथ्य उस समय और स्पष्ट हो जाता जब वे कहते है :-

"किसी उद्देश्य के लिए कार्य करने का अर्थ बुद्धि-मता से उसके लिए कार्य करना है ----- उद्देश्य निर्धारित करने का तात्पर्य है किसी प्रयोजन व अर्थ पूर्ण क्रिया को करना न कि यान्त्रिक रूप से करना, इसका अर्थ है कुछ सप्रयोजन करना, और उसी अभिप्राय के भाव में वस्तु या क्रिया के अर्थ को समझना ।"[2]

जाॅन डिवी पुन: एक अच्छे उद्देश्य की विशेषता बताते हुये कहते हैं :-

---

1- जाॅन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन, पृष्ठ-117

2- - तदैव - पृष्ठ- 120-21

"वर्तमान अस्तित्व की परिस्थितियों से उत्पन्न होने वाला" उद्देश्य ही एक अच्छा उद्देश्य माना जाता है ।"[1]

ऐसा उद्देश्य लचीला होता है । उद्देश्य क्रिया में विलीन हो जाता है और कार्य करने वाली परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ उद्देश्य भी बदल जाता है । इस प्रकार यह स्वतंत्र क्रियाशीलन को अभिव्यक्त करता है । इस स्वतंत्र क्रियाशीलन की प्रक्रिया से हमारे मस्तिष्क में "कुछ प्रक्रियाओं के निष्कर्ष अथवा त्याग के लिए विचार उत्पन्न होते है, यह विचार कुछ "प्राप्त करने अथवा धारण करने की" अपेक्षा हमारी क्रियाशीलता को निर्देशित करने के लिये ही होता है । इस प्रकार कहा जा सकता है कि अच्छे उद्देश्य की ये विशेषतायें शिक्षा में भी लागू होती है और साथ ही अन्य किसी भी निर्देशित व्यवसाय में भी लागू की जा सकती है । जॉन डिवी के अनुसार शिक्षा शास्त्री, अभिभावक व अध्यापक को चाहिये कि वे स्वयं के उद्देश्य को बच्चो के विकास हेतु निश्चित न करें क्योंकि ऐसा करना व्यर्थ है क्योंकि परिस्थितियों के परिज्ञान के बिना पहले से ही बच्चों के लिए किसी शिक्षा के उद्देश्य को निश्चित नही किया जा सकता है ---
उद्देश्य तो केवल व्यक्तियों, माता-पिता और अध्यापकों के

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-126

होते हैं न कि शिक्षा के, और परिणाम स्वरूप उनके उद्देश्य अनिश्चित रूप से भिन्न भिन्न होते हैं। भिन्न-भिन्न विद्यार्थियों के भिन्न-भिन्न उद्देश्य होते हैं और शिक्षा प्रक्रिया में जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते जाते हैं तथा उनके अनुभव में बृद्धि होने लगती है, उनके व अध्यापक के उद्देश्य भी परिवर्तित होते जाते हैं।"[1]

जॉन डिवी का शिक्षा के उद्देश्यों के प्रति सुझाव :-

जॉन डिवी चेतावनी देते हैं :-

"यहाँ तक कि सर्वाधिक मान्य उद्देश्यों ने जिन्हें शाब्दिक रूप में शब्दवत प्रयोग किया गया है और यह न समझ लिया गया हो कि ये उद्देश्य नहीं हैं तब तक भलाई की अपेक्षा हानि ही अधिक पहुँचाई है। उद्देश्य तो वास्तव में शिक्षक के लिये सुझाव है कि किस प्रकार निरीक्षण करे, किस प्रकार आगे बढ़ने के लिए सोचे और जिन परिस्थितियों में वे अपने को पाते हैं उनको मूर्त रूप में लाने के लिये ऊर्जाओं को निर्देशित व स्वतंत्र करने के लिये कैसे चुनाव करें।"[2]

जॉन डिवी के शिक्षा सम्बन्धी विचार की व्याख्या प्रस्तुत करते हुये रावर्ट यूलिच ने लिखा है :-

---

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-125 ।

2- जॉन डिवी " - तदैव - पृष्ठ-126 ।

"डिवी ने शिक्षा को मुख्यत: सामाजिक प्रक्रिया माना है, उसने लिंकन की प्रजातंत्र सम्बन्धी सु-प्रसिद्ध धारणा को रूपान्तरित करते हुये कहा है कि शिक्षा व्यक्तियों की, व्यक्तियों के द्वारा और व्यक्तियों के लिए सम्पादित की जाने वाली प्रक्रिया है । अपनी इस धारणा के कारण उसने शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया माना है, जिसका समाज के सम्पूर्ण स्वरूप एवं समस्त कार्यों से अटूट सम्बन्ध है ।"[1]

जॉन डिवी ने शिक्षा के अर्थ को स्वयं अभिव्यक्त करते हुये लिखा है :-

"जो सम्बन्ध भोजन एवं सन्तोत्पादन का शारीरिक जीवन से है वही सम्बन्ध शिक्षा का सामाजिक जीवन से है ।"[2]

उपर्युक्त कथन यह प्रकट करता है कि जॉन डिवी शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया मानते हैं । जैसा कि हमने यह अनुभव किया है कि जॉन डिवी ने किसी पूर्व निश्चित उद्देश्य को मान्यता नही दी है । उनके अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों को स्थायी व सदैव के लिए निर्माण नहीं किया जा सकता है उनको व्यक्ति व समाज की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित किया जाना आवश्यक है । जॉन डिवी ने अपनी पुस्तक "डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन में पृष्ठ 126 से 129 तक अच्छे उद्देश्यों की निम्न-

---

1- यूलिच राबर्ट : हिस्ट्री ऑव एजूकेशनल थॉट, पृष्ठ-378

2- जॉन डिवी: डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-9

लिखित विशेषतायें बताई हैं :-

1- एक अच्छे शिक्षा के उद्देश्य को :-

"शिक्षा पाने बाले व्यक्ति की ----- आवश्यकताओं और आन्तरिक वास्तविक क्रियाशीलनों के आधार पर अवश्य आधारित होना चाहिये।"[1]

कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी की अन्तर्निहित क्रियाओं और आवश्यकताओं पर आधारित होना चाहिये जिसमें मूल प्रकृतियों और अर्जित आदतें भी शामिल हो।

2- उद्देश्यों को ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिये जो बालकों की स्वाभाविक क्षमताओं को मुक्त व संगठित कर सके।

3- इसे उन शिक्षा पाने बाले बालकों की क्रियाशीलता हेतु सहयोगी पद्धति में परिवर्तित करने के योग्य होना चाहिये।"[2]

4- यदि वास्तव में एक अच्छा उद्देश्य है तो "इसे साधन रहित आदर्शात्मक होने के बजाय वर्तमान कियाशीलता के क्षेत्र का बौद्धिक सर्वेक्षण करने के लिये होना चाहिये।"[3]

5- उद्देश्य -सामान्य व अन्तिम न होकर विशिष्ट एवं तात्कालिक होने चाहिये।

1- जॉन डिवी : "वाइड डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन"।

2- - तदैव -

3- - तदैव -

विशिष्ट व तात्कालिक उद्देश्य का तात्पर्य व्यक्ति को सामाजिक कुशलता की प्राप्ति मे सहायता देना है । जॉन डिवी के अनुसार व्यक्ति में सामाजिक कुशलता का अविर्भाव तभी हो सकता है जब उसमें निम्नलिखित गुण हो ।

1- व्यावसायिक कुशलता - व्यक्ति में अपनी जीविका पैदा करने की योग्यता होनी चाहिये ।

2- नागरिक कुशलता - व्यक्ति को अपने व दूसरे के अधिकार व कर्तव्यों की सम्यक जानकारी होनी चाहिये ।

3- निषेधात्मक नैतिकता - व्यक्ति में दूसरों की व्यावसायिक कुशलता में बाधा उत्पन्न करने की इच्छा न हो ।

4- विधेयात्मक नैतिकता- व्यक्ति के सामाजिक प्रगति में योग दान देने की इच्छा होनी चाहिये ।

इस सम्बन्ध में जॉन डिवी ने लिखा है :-

> "शैक्षिक उद्देश्य के रूप में सामाजिक कुशलता का अर्थ सहयोगी या सामान्य क्रियाओं में स्वतंत्रता पूर्वक एवं पूर्ण रूपेण सम्मिलित होने की शक्ति का विकास करना होना चाहिये ।"[1]

जैसा कि हम जानते हैं कि "प्लेटो" से लेकर आधुनिक युग के सभी परम्परावादी दार्शनिक शिक्षा के उद्देश्य

1- जॉन डिवी : "डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-123 ।

निश्चित करने में कोई कठिनाई का अनुभव नहीं करते हैं, परन्तु साधनवादी तथा परिवर्तन के प्रेमी दार्शनिक जॉन डिवी के लिए शिक्षा के निश्चित उद्देश्य के प्रति कथन करना बड़ा कठिन कार्य है । शिक्षा के उद्देश्य को निश्चित करने के कार्य को जॉन डिवी सरल नहीं बनाते हैं जब वे कहते हैं :-

"शिक्षा का कोई उद्देश्य नहीं होता है ।"[1]

परन्तु जो लोग पढ़ाते हैं उनके उद्देश्य होते हैं इस तथ्य को स्वीकार करने में निश्चय ही वे यथार्थवादी हैं । परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि उन्होंने अपनी समस्त कृतियों में प्रायः शिक्षा के उद्देश्य का लगातार वर्णन किया है ।

शिक्षा प्रक्रिया का कोई अन्तिम उद्देश्य नहीं होता है :-

जॉन डिवी कहते हैं कि यह निश्चित है कि शैक्षिक प्रक्रिया का कोई अन्तिम लक्ष्य नहीं होता है । एक दार्शनिक जो यथार्थ सत्य के अस्तित्व को इन्कार करता है, वह वास्तव में यथार्थता को ही ललकारता है क्योंकि पूर्ण (एब्सोल्यूट) मूल्य स्वयं जीवन के लिये अन्तिम लक्ष्य को अभिव्यक्त नहीं कर सकता है । इस कथन का तात्पर्य यह है कि शैक्षिक प्रक्रिया के बाहर वे किसी अन्तिम उद्देश्य का प्रस्ताव नहीं करते हैं । उनका कथन है :-

---

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-123

2- - तदैव - पृष्ठ-125

"शिक्षा के उद्देश्य के लिए, शिक्षा जिस शैक्षिक प्रक्रिया के आधीन है उसके बाहर किसी उद्देश्य का पता लगाने के लिए हमारी खोज का सम्बंध नहीं है । हमारी सम्पूर्ण अवधारणा इसे अस्वीकार करती है । हम तो प्रक्रिया के बाहर से स्थापित व अस्तित्व में रहने वाले शिक्षा के उद्देश्य का विरोध करते हैं और हमारा सम्बंध शैक्षिक प्रक्रिया के भीतर के उद्देश्य से है जिसमें छात्र हिस्सा लेते हैं ।"[1]

इस प्रकार की परिस्थिति में उन्हें केवल एक ही विकल्प चुनने के लिए शेष रह जाता है, वह यह है कि :-

"शिक्षा बचाने के लिए कोई ऐसी वस्तु नही है जिसके आधीन शिक्षा को रखा जाय ।"[2]

और जैसा कि पहले वर्णन किया गया है कि शिक्षा एक सतत प्रक्रिया है तो इस दशा में शैक्षिक अभिनेताओं को प्रत्येक व्यक्ति स्त्री व बच्चों के लिए जीवन पर्यन्त औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा को जारी रखते हुये आत्मानुभूति को ही स्वीकार्य लक्ष्य मानना चाहिये ।

जॉन डिवी की शैक्षिक उद्देश्यों के प्रति और स्पष्ट धारणायें

हमें तुरन्त इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचना चाहिये कि जॉन डिवी ने सामान्यतः शिक्षा के अन्तिम उद्देश्य को

1- जॉन डिवी : "डिमोक्रसी एण्ड एजूकेशन", पृष्ठ-117 ।

2- जॉन डिवी : "डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन, पृष्ठ-60 तथा ई0ई0 बागलेश प्रैग्रमेटिज्म इन एजूकेशन चैप्टर पंचम ।

अस्वीकार किया है और शिक्षा के तात्कालिक उद्देश्यों के विषय में विचार नहीं किया है । यद्यपि इस सम्बन्ध में पहले विचार किया गया है फिर भी जॉन डिवी के शिक्षा के उद्देश्य सम्बन्धी अवधारणा पर और अधिक समय देना आवश्यक है । जॉन डिवी प्रयोगवादी है इसलिए उनके अनुसार कोई पूर्व निश्चित और अन्तिम उद्देश्य नहीं हो सकता । जॉन डिवी का कथन है कि शिक्षा का तात्कालिक उद्देश्य हमेशा होगा और जहाँ तक क्रिया शैक्षिक होगी वह उस उद्देश्य को प्राप्त करेगी, फिर भी कोई क्रिया उद्देश्य विहीन नहीं होती है, चाहे उस क्रिया का उद्देश्य उसी क्रिया में क्यों न निहित हो इसी ध्येय से शिक्षा का उद्देश्य अनुभवों का पुनर्निर्माण है , क्योंकि शिक्षा की प्रक्रिया व्यावस्थापन की एक सतत प्रक्रिया है जिसका प्रत्येक अवस्था में उद्देश्य होता है विकास की क्षमता को प्रदान करना । इसलिए शिक्षा का उद्देश्य वातावरण के साथ अनुकूलन हुआ । अतः जॉन डिवी वातावरण पर अधिक जोर देते हैं ।

प्रथमतः जॉन डिवी परिणाम और उद्देश्य में अंतर स्थापित करते हैं । एक व्यक्ति पत्थर फेंकता है जो खिड़की को तोड़ देता है । इस कार्य का परिणाम है खिड़की अर्थात टूटी खिड़की । परन्तु पत्थर फेकने का वह उद्देश्य उस व्यक्ति का नहीं था, ,हो सकता है उसका उद्देश्य अपनी शक्ति का परीक्षण करना रहा हो । जॉन डिवी के अनुसार सामान्य परिणाम

व सप्रयोजन कार्य में मुख्य अन्तर यह है कि सप्रयोजन कार्य "वास्तविक निरन्तरता" के कारण विशिष्ट होता है । वे कहते हैं :-

> "एक सच्चे उद्देश्य में क्रमिक व व्यवस्थित क्रिया होती है एक तो उसमें प्रक्रिया की प्रगतिशील पूर्णता का क्रम होता है दूसरे क्रिया के लिए समय और समय के भीतर ही सामूहिक प्रगति प्राप्त करना निश्चित होता है । पहले से ही दूरदर्शी लक्ष्य अथवा सम्भावित परिणाम को प्रकट करना ही शिक्षा के उद्देश्य का अर्थ है ।"[1]

जॉन डिवी के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य ऐसे न हो जो सूक्ष्म हो और जिनका सम्बन्ध साधनों से न जोड़ा जा सके । अर्थात उद्देश्य तभी सार्थक है जब कि वे साधन के सहयोगी है और साधन की पहुँच के भीतर है । उद्देश्यों में व्यवहारिकता अवश्य होनी चाहिये । इसीलिये उन्होंने लिखा है :-

> "एक सच्चा उद्देश्य इस प्रकार कार्य की प्रक्रिया पर बाहर से न लादा गया हो, बाहर से लादा गया उद्देश्य जड़ और कठोर होता है, वह एक दी गई स्थिति में बुद्धि के लिये उत्तेजक नहीं होता बल्कि अमुक-अमुक वस्तुओं को करने के लिए बाहर से थोपा गया आदेश होता है ।"[2]

शिक्षा के उद्देश्य को निश्चित करने में हमें इन लक्षणों एवं विशेषताओं को ध्यान में रखना चाहिये ।

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन", पृष्ठ-119

2- - तदैव - पृष्ठ-120 ।

दूसरे उद्देश्य को वैध मानने से पूर्व इसे क्रिया को अनुदेश अवश्य देना चाहिये । समस्या समाधान की विधि के प्रयोग द्वारा इसे प्राप्त किया जाता है । इसलिए यह स्पष्ट है कि जब तक कोई बौद्धिक विधि का अनुशरण नहीं करता है तब तक वह सप्रयोजन क्रिया को करने के लिये विचार भी नहीं कर सकता है ।

अच्छे उद्देश्य के चुनाव का सिद्धान्त :-

उद्देश्यात्मक व्यवहार की विवेचना करने के उपरांत जॉन डिवी उन विशेषताओं का सुझाव देते हैं जिनके आधार पर एक अच्छे उद्देश्य का चुनाव किया जाता है ।

1- उद्देश्य को स्वयं समस्यात्मक परिस्थितियों से उत्पन्न होना चाहिये न कि परिस्थिति के बाहर से । डिवी के अनुसार वह शैक्षिक उद्देश्य व्यर्थ है जिसका प्रयोग प्रौढ़ों और बच्चों के लिए समान रूप से किया जाता है । अध्यापक द्वारा सोचा व निश्चित किया गया उद्देश्य सच्चा शैक्षिक उद्देश्य नहीं माना जा सकता है । जब तक यह छात्र की क्रिया के परिणाम के रूप में घटित न हो ।

2- दूसरा सिद्धान्त यह है कि उद्देश्य को लचीला होना चाहिये इसलिए जॉन डिवी कहते हैं -

> "उद्देश्य प्रयोगात्मक है और इसलिए निरन्तर उत्पन्न होता रहता है जैसे ही क्रिया का परीक्षण किया जाने लगता है ।"[1]

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन", पृष्ठ-119 ।

3- किसी उद्देश्य का तीसरा सिद्धान्त या विशेषता यह है कि यह व्यक्ति को दूसरे उद्देश्य के लिये दूसरा कार्य करने के लिए स्वतंत्र करता है। इसका अर्थ है कि किसी क्रिया का कोई अन्तिम लक्ष्य नहीं होता है। इस प्रकार प्रत्येक तात्कालिक उद्देश्य दूसरे उद्देश्य की ओर ले जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि साधन व उद्देश्य अलग-अलग नहीं है। एक क्रिया ‖एक साधन‖ दूसरी क्रिया ‖लक्ष्य‖ के लिए अनुदेशित होती है। जो पुनः दूसरे लक्ष्य के लिए अनुदेशित होती है। इस प्रकार लक्ष्य अन्तहीन श्रृंखला को जोड़ती है।

उपर्युक्त व्याख्या हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाती है कि जॉन डिवी के अनुसार शिक्षा में तात्कालिक उद्देश्य हो सकते हैं परन्तु यह तथ्य निश्चित है कि वे शिक्षा के अन्तर्गत लक्ष्य को मान्यता नहीं देते हैं। सामान्य रूप से किसी अच्छे उद्देश्य के चुनाव के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त निर्धारित किये जाते हैं :-

1- उद्देश्य व्यक्ति व समाज में सामंजस्य स्थापित करने वाला होना चाहिये। क्योंकि सामाजिक वातावरण में ही व्यक्ति अपनी शारीरिक, मानसिक एवं अन्य विभिन्न शक्तियों को विकसित करता है। अतः अनुवांशिकता से प्राप्त गुणों को सामाजिक परम्परा के अनुसार विकसित करके व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करने वाला उद्देश्य हो।

2- दूसरी बात विशेषज्ञों के दृष्टिकोण को महत्व देना है, जैसे शिक्षा शास्त्री, शिक्षक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक एवं राजनीतिज्ञ के मत को महत्त्व देना ।

3- तीसरी स्मरणीय बात यह है कि उद्देश्य ऐसा हो जो सम्भव ‖पॉसिबल‖ प्राप्य ‖अटेनेबुल‖ और उपागम या साध्य ‖अप्रोचेबुल‖ हो । अर्थात लाभ व उपयोगिता युक्त हो और उसकी प्राप्ति शीघ्र हो सके । असम्भव व असाध्य उद्देश्य रखने से कोई लाभ नहीं है ।

4- प्रत्येक देश में केवल एक ही उद्देश्य नही होता है परन्तु एक उद्देश्य प्रमुख होता है । इसके साथ -साथ जो उद्देश्य होता है उनमें एक क्रम होता है, एक उद्देश्य की प्राप्ति के बाद दूसरा उद्देश्य प्राप्त किया जाता है । यह क्रम ऐसा स्वाभाविक क्रम है कि अपने आप सभी उद्देश्यों को एक ‖स्टेप‖ "पद" के बाद दूसरे "पद" की तरफ बढ़ते हुये व्यक्ति प्राप्त करता है । जैसे हमारे देश का वर्तमान काल में व्यावसायिक उद्देश्य" प्रमुख है परन्तु इसके साथ-साथ शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक व नागरिकता का विकास होता रहता है । सभी उद्देश्यों को एक साथ नहीं प्राप्त किया जाता है बल्कि उनमें क्रम होता है ।

5- अन्त में शिक्षा के उद्देश्य का सम्बन्ध देश की संस्कृति, समाज की राजनैतिक, आर्थिक तथा राष्ट्रीय दशा से होना चाहिये । और राष्ट्रीय एकता को मानवीय एकता

में परिवर्तित करने के दृष्टिकोण को ध्यान में रखा जाय, क्योंकि मानवीय एकता का व्यापक अर्थ अन्तर्राष्ट्रीय एकता ही है । अतः शिक्षा उद्देश्य भी व्यापक विस्तृत, मानव बन्धुत्व को समझाने, जानने, अनुभव करने के लिये होना चाहिये । जॉन डिवी के उपर्युक्त सामान्य सिद्धान्तों में से विशेषज्ञों द्वारा पूर्व निर्धारित उद्देश्य को बिलकुल मान्यता नहीं देते है तथा किसी उद्देश्य को प्रमुख व गौड़ भी नहीं मानते । उद्देश्य तो उनके दृष्टिकोण से प्रधान हो ही नहीं सकता, यदि प्रधानता है तो "क्रिया" की ।

> "उद्देश्य को हमेशा क्रियाओं की मुक्ति को प्रस्तुत करना चाहिये ।"[1]

क्योंकि वस्तु की प्राप्ति तो क्रिया का एक अंश मात्र है । अतः वस्तु से क्रिया को मुक्त होना चाहिये । जॉन डिवी शिक्षा के तात्कालिक उद्देश्य को महत्त्व देते है किन्तु वे शिक्षा के किसी अन्तिम लक्ष्य को मान्यता नहीं देते है ।

शिक्षा में कुछ तात्कालिक उद्देश्य :-

यदि हम प्रयास करें तो तात्कालिक उद्देश्यों की एक सूची बना सकते हैं ।

शिक्षा के तात्कालिक उद्देश्य :-

1- विद्यार्थियों में प्रायोगिक जाँच की विधि का विकास करें ।

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन, पृष्ठ-127

2- की शैक्षिक क्रियाशीलन में लचीलापन होना चाहिये । और समस्याओं के समाधान के कार्य हेतु विद्यार्थियों के मस्तिष्क को उद्घाटित करे ।

3- परिवर्तन, विकास या वृद्धि शैक्षिक प्रक्रिया के मुख्य तात्कालिक ध्येय हैं ।

4- यदि शिक्षा व्यक्ति के सामाजीकरण के रूप में है, तो इसे विद्यार्थियों के भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण से समायोजन में सहायता करनी चाहिये ।
अथवा जैसा "किल पैट्रिक कहते हैं "श्रेष्ठ जीवन के लिए विकास ।

सामाजिक दक्षता अथवा कुशलता के रूप में शिक्षा के उद्देश्य का महत्व :-

कुछ आधुनिक साधनवादी अनुभव करते हैं कि सामाजिक दक्षता रूपी अन्तिम उद्देश्य सभी उद्देश्यों को अपने में सम्मिलित कर लेता है ।

जैसा कि हम जॉन डिवी की प्रारम्भिक रचनाओं में इस विश्वास के आधार की खोज कर सकते हैं ।अपनी पुस्तक "पैडागागिक क्रीड" में वे कहते है :-

> " शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है ।" और विद्यालय एक संस्था है जिसका कार्य विद्यार्थियों को सहायता देना है ताकि वे "सामाजिक लक्ष्य के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकें ।"

उसी तरह जॉन डिवी ने अपने महान ग्रन्थ "डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" में शिक्षा के सामाजिक दक्षता और स्वाभाविक विकास के उद्देश्य के लिए पूरा अध्याय ही लिखा है। जब हम इसे पढ़ते हैं तो हमें यह ज्ञात होता है कि शिक्षा के उद्देश्य के रूप में "स्वाभाविक विकास" के सम्बन्ध में "रूसो" और जॉन डिवी की अवधारणा में असमानता है। जॉन डिवी इस बात को प्रकट करने का प्रयत्न करते है कि स्वाभाविक और सामाजिक विकास में उचित सन्तुलन शिक्षा के द्वारा कैसे प्राप्त किया जा सकता है और उन्होंने यह अनुभव किया कि:-

> "जब हम परिचित हो जाते हैं कि समाजिक दक्षता निषेधात्मक रूकावट के द्वारा नहीं प्राप्त की जाती है बल्कि सामाजिक अर्थ बाले कार्यों में व्यक्ति की मूलभूत अभिक्षमताओं के विधेयात्मक प्रयोग से ही प्राप्त की जाती है।"[1]

तभी संतुलन स्थापित हो पाता है। इस प्रकार :-

> "------ सामाजिक दक्षता शिक्षा का एक उद्देश्य है जिसका अर्थ है स्वतंत्रता व पूर्णतासे सामान्य क्रियाओं में भाग लेकर शक्तियों के विकास के लिए उसमें सम्मिलित होना।"[2]

1- जॉन डिवी : "डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन", पृष्ठ-139 ।

2- - तदैव - पृष्ठ-141 ।

वास्तव में इस प्रकार मात्र उद्देश्यों का वर्णन बिलकुल सैद्धान्तिक है । उनको कार्य के योग्य अथवा क्रियात्मक लक्ष्यों के लिए परिवर्तन किया जाना चाहिये । हम यह जानते हैं कि यह कार्य बाद में जॉन डिवी के अनुयायियों द्वारा पूरा किया गया जो वास्तव में चालू विद्यालयों के प्रायोगिक कार्य क्षेत्र में रूचि लेते थे ।

"अमेरिकी जनतंत्र में शिक्षा के उद्देश्यों"-1 के आयोग में सामाजिक व स्वाभाविक विकास में उचित संतुलन स्थापित करने के सम्बन्ध में एक वर्णन जॉन डिवी के दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करता है । यहाँ उद्देश्यों के निम्नलिखित वर्गों का प्रयोग हुआ है :-

1- आत्मानुभूति (सेल्फ रियलाइजेशन)

2- मानव सम्बन्ध (ह्यूमन रिलेशन शिप)

3- आर्थिक दक्षता (एक्नामिक इफीसियेन्सी)

4- नागरिक उत्तरदायित्व (सिविल रिस्पान्सबिल्टी)

गत पृष्ठों में सामाजिक दक्षता के अविर्भाव हेतु जिन गुणों का होना आवश्यक है उसका वर्णन किया गया है वे पुनः कहते हैं :-

---

1- एजूकेशनल पॉलिसीज कमीशन, "द परपज ऑव एजूकेशन इन अमेरिकन डिमोक्रेसी" (वाशिंगटन, डी0सी0एन0ई0ए0, 1938)

1- व्यावसायिक कुशलता ।

2- नागरिकता कुशलता ।

3- निषेधात्मक नैतिकता तथा विधेयात्मक नैतिकता ।

जॉन डिवी के उद्देश्यों की अवधारणा तथा पारम्परिक उद्देश्यों में मौलिक अन्तर है :-

शिक्षा के उद्देश्यों के विषय में हम जैसा मौलिक चिंतन जॉन डिवी तथा बाद के साधनवादी ॥ इन्स्ट्रुमेन्टलिज्म ॥ अनुयायियों में पाते हैं उसके सम्बन्ध में यहाँ विचार कर लेना असंगत न होगा । हम देखते हैं कि पारम्परिक शिक्षाशास्त्रियों के शैक्षिक उद्देश्यों तथा साधनवादी शिक्षाशास्त्रियों के शैक्षिक उद्देश्यों में मौलिक अन्तर प्रतीत होता है । जॉन डिवी तथा उनके अनुयायियों के अनुसार :-

1- शिक्षा का कोई उद्देश्य अन्तिम नहीं है, सभी उद्देश्य तात्कालिक है ।

2- शिक्षा स्वयं अपना लक्ष्य है,इसलिए शिक्षा की प्रक्रिया से बाहर शिक्षा के उद्देश्य नहीं होते हैं ।

3- सभी उद्देश्यों को समय, परिस्थिति तथा परिवर्तित मानव के अनुसार बदलते रहना चाहिये । इस प्रकार शिक्षा का कोई अन्तिम सर्वोच्च व अपरिवर्तनीय लक्ष्य नहीं होता है ।

4- सभी उद्देश्य इस विश्वास पर आधारित है कि सामाजीकरण का उद्देश्य वैयक्तिकता के लिये तथा वैयक्तिकता के विकास से श्रेष्ठ है । इसका स्वतंत्र विकास करना चाहिये और व्यक्ति को इस योग्य बनावें --

कि वह सामान्य लोगों के कल्याणार्थ कार्यों में दूसरों को सहयोग प्रदान कर सके ।

5-शिक्षा को बालक का पूर्ण विकास करना चाहिये न कि किसी एक योग्यता का विकास करे । जैसे बौद्धिक विकास ।

6-समस्त शैक्षिक उद्दयों की परख जनतंत्रात्मक सिद्धान्तों के आधार पर की जानी चाहिये ।

7-शिक्षा के उद्देश्यों को विश्व, राष्ट्र तथा सामाजिक उद्देश्यों से अलग न किया जाना चाहिये ।

जॉन डिवी पुन: कहते हैं कि चाहे जो भी उद्देश्य क्यों न हो, किन्तु निर्देशन के मानक की अपेक्षा किसी विशेष परिस्थिति में सुझाव को साधन के रूप में शिक्षा के उद्देश्यों को होना चाहिये, क्योंकि वास्तविक शिक्षा का उद्देश्य विशेष परिस्थिति में स्वदेशी (इन्डीजेन्स) है । इसलिए बाहय अधिकारियों द्वारा पहले से उद्देश्य निश्चित नहीं किया जा सकता है । इस प्रकार हम कह सकते है कि जॉन डिवी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य स्थिर या निश्चित या अन्तिम की अपेक्षा सुझावात्मक है । डिवी के उद्देश्यों में स्पष्टता है और बाहय उद्देश्यों की आलोचना दृष्टिगत होती है । शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण में उनके दृष्टिकोण को "सामाजिक अनुकूलता" की विधि के रूप में देखा जा सकता है । वे बार-बार यह विचार प्रकट करते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य सुझावात्मक होना चाहिये । जब किसी विशेष परिस्थिति में उद्देश्यों को निर्देशन का मानक

मान लिया जाय तब अच्छाई की अपेक्षा बुराई ही अधिक होगी ।

शिक्षा को अपना स्वयं का उद्देय निर्धारित करने के लिये स्वतंत्र होना चाहिये :-

जॉन डिवी इस विश्वास को कल्पना मानकर अस्वीकृत कर देते हैं कि सामाजिक परिस्थितियाँ शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित करती हैं और अपना कथन जारी रखते हुये कहते है :-

> "शिक्षा स्वतंत्र है और अपने स्वयं के उद्देश्य को निश्चित करने के लिए स्वतंत्र है, शैक्षिक क्रियाओं से बाहर जाना और बाहय साधनों से उद्देश्यों को उधार लेना शैक्षिक कार्य के अधीन करना है ।"[1]

और वे पुनः कहते हैं :-

> "शिक्षा बहुमूल्य व उचित मूल्यों को खोजने के लिए स्वयं एक प्रक्रिया है और उद्देश्यों के रूप में ग्रहण करती है ।"[2]

इसलिए जॉन डिवी के अनुसार :-

> "जो शिक्षा निरन्तर परिचालित रहने वाली प्रक्रिया के रूप में है उसके लिए बाहर के साधनों से खोजकर उद्देश्य को प्रदान करना, और उसके दृष्टि से समझने का प्रयत्न करना असफलता है ।"[3]

1- जौन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन, पृष्ठ-74 ।

2- - तदैव - पृष्ठ-75 ।

3- - तदैव - पृष्ठ-75 ।

इस कथन के आधार पर हम देख सकते हैं कि कुछ गैर जिम्मेदारी से आलोचना की गई है कि जॉन डिवी का शिक्षा के उद्देश्यों से कोई सम्बन्ध नहीं है अथवा उन्होंने उद्देश्यों के महत्व को कम किया है । इस सम्बन्ध में इसी अध्याय के प्रथम अनुच्छेद में कहा गया है, परन्तु जॉन डिवी उद्देश्यों के सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट है ।

वे स्पष्ट रूप से यह कहते है कि जिस वस्तु की महती आवश्यकता है वह नये उद्देश्यों को पहिचानने की है । उनका कथन है :-

"अन्ततः उद्देश्य विहीनता के कारण ही भ्रम है -- पुरानी बोतलों में नई शराब की उपमा जीर्ण हो गयी है, फिर भी कोई अन्य उसकी तरह नहीं है, ॥ऐसी मान्यता है॥ हम इस्पात व काँच के युग में चमड़े के बने हुये बोतलों का प्रयोग करते है, ये बोतलें जगह-जगह से टपकती है और दबकर यत्रतत्र फूल गयी हैं, नई शराव खट्टी हो गयी है और वह रही है । नये वर्तन को प्रदान करने, संस्कृति की नूतन सुरा के निर्माण करने हेतु पुरानी सुरा के प्रतिकूल कोई निषेधात्मक प्रयत्न नहीं किया गया है ।केवल नये उद्देश्यों को शैक्षिक प्रयत्न को शुद्धता एवं एकता के लिये प्रेरित करने के लिए, प्रोत्साहित किया गया है । ऐसे नूतन उद्देश्य ही इस भ्रम को कम कर सकते हैं, यदि वे भ्रम को हटा नहीं सकते तो भी वे उद्देश्य बौद्धिकता व उपयोगिता को तो प्रदान ही कर सकते हैं ।"[1]

1- जॉन डिवी : "द वे आउट ऑव एजूकेशनल कन्फ्युजन" ॥द इंगलिश लेक्चर॥ कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, 1931, पृष्ठ-40-41

शिक्षा के प्रति जॉन डिवी का ऐसा ही दृष्टिकोण है ।

जॉन डिवी द्वारा पारम्परिक विद्यालयों की पढ़ाई की आलोचना

जॉन डिवी की अधिकांश शैक्षिक कृतियों में पारम्परिक पढ़ाई की आलोचना की गई है, क्योंकि पारम्परिक पढ़ाई में निम्नलिखित तथ्यों पर बल दिया गया है :-

गुरूत्वाकर्षण का केन्द्र बालक के जीवन से बाहर है :-

पाठ्यक्रम का विस्तार से वर्णन करना यद्यपि इस स्थल पर सम्भव नहीं है किन्तु सार रूप में यही कहा जा सकता है कि पारम्परिक विद्यालयों में "आकर्षण का केन्द्र बालक के जीवन से बाहर है" और यह कहा जाता है कि यह अध्यापकों, पाठ्य पुस्तकों में तथा और प्रत्येक जगह है किन्तु बालक की स्वयं की क्रियाशीलता में नहीं है । इसका कारण यह है कि वे परम्परा वादी बालक को अपनी क्षमताओं व अनुभवों में विकास करने बाला तथा अनुभवों को पर्यावरण से व्यवहार करके उसे नियंत्रण करने वाला तथा एक जीवधारी प्राणी (लिविंग क्रीचर) समझने में असफल रहे हैं । इस दोषपूर्ण विचार का परिणाम यह हुआ कि विषय वस्तु को बालक से अलग समझा जाने लगा और शिक्षण औपचारिक, प्रतीकात्मक, स्थिर एवं मृत हो गया । विद्यालय सुनने और समूह शिक्षण के स्थान बन गये तथा उनका जीवन से सम्बन्ध विच्छेद हो गया ।

शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया समझने में असफलता :-

इन पारम्परिक विद्यालयों की पढ़ाई की दूसरी

असफलता शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया न समझने की थी । और साथ ही अनुशासन की अवधारणा को नियमों से लाद दिया गया । इस प्रकार के अनुशासन की आलोचना करते हुये जॉन डिवी कहते हैं :-

"पारम्परिक विद्यालयों की असामाजिक विशेषता को इस तथ्य में देखा जाता है कियह अपने स्वयं के प्रारम्भिक गुणों में से एक गुण "शान्ति" को स्थापित करने पर बल देता है ।"[1]

शिक्षा को "जीवन की तैयारी के रूप में " डिवी द्वारा आलोचना :-

जॉन डिवी जीवन की तैयारी के रूप में शिक्षा की आलोचना करते हैं । हमपहले ही देख चुके हैं कि जॉन डिवी के अनुसार शिक्षा "अनुभवों की पुनर्रचना" और सम्भावनाओं को उद्घाटित करने की "निरन्तर प्रक्रिया" है । भविष्य का लक्ष्य पहले से ही नहीं जाना जाता है । लक्ष्य तक तो प्रयोग से पहुँचा जाता है और उसके परिणामों के परीक्षण से लक्ष्य का स्वरूप निर्धारित होता है ।

पूर्व निर्धारित लक्ष्य के लिए छात्रों को शिक्षित करने के विचार को जॉन डिवी मान्यता नहीं देते हैं, पारम्परिक विद्यालयों की शिक्षा में विद्यार्थियों को

1- जॉन डिवी : एक्सपीरियन्स एण्ड एजुकेशन" पृष्ठ-63

नागरिकता, कुछ विशेष उद्योग अथवा अवकाश के उपयोग के लिए शिक्षा दी जाती है उन्हें भिन्न विषयों जैसे गणित, भूगोल, इतिहास पढ़ाये जाते हैं क्योंकि यह अनुभव किया जाता है कि ये उनके भावी जीवन में उपयोगी होगें। परन्तु हम जानते हैं कि हाल की खोजों ने यह निश्चित कर दिया है कि अपने आप शिक्षण का स्थानान्तरण इस प्रकार नहीं होता है। जॉन डिवी कहते हैं कि इस प्रकार का शिक्षण रूचि व ज्ञान दोनों को खो देता है, क्योंकि इस प्रकार के विद्यालयों में सीखा हुआ ज्ञान अधिक समय तक धारण नहीं किया जा सकता और आसानी से भूल जाता है। इसलिए जॉन डिवी शिक्षा को जीवन की तैयारी न मानकर जीवन प्रक्रिया मानते हैं।

सभी ज्ञान युक्त शिक्षा एक नैतिक कार्य है :-

(आल डिलीबरेट एजूकेशन इज ए मॉरैल अण्डरटेकिंग)

जॉन डिवी की राय में सभी विचार पूर्ण शिक्षा एक "नैतिक" कार्य है। नैतिक इस अर्थ में है कि शिक्षा नियंत्रित क्रिया कलाप की रूप रेखा को, व्यक्ति की मौलिक भाव भगिमाओं के निर्माण के लिए निर्मित करती है। व्यक्ति अंय व्यक्तियों से तथा यहाँ तक कि प्रकृति से भी सम्बन्ध उसी नियन्त्रित क्रिया कलाप की रूपरेखा से बनाता है। नैतिक का अर्थ है कुछ विशेष प्रकार के जीवन के लिए कुछ अधिक प्रतिष्ठा के तथ्यों का प्रकाशन करना। वास्तव में हम विचार पूर्ण शिक्षा में संलग्न होते हैं क्योंकि हम विद्यार्थियों को कुछ बनाना

चाहते हैं । जब वे अपने अनिर्देशित पारम्परिक कार्य को छोड़े तो अन्य न बनकर एक नैतिक व्यक्ति ही बने । यह तभी सम्भव होगा जब हम शिक्षा को इस विस्तृत दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करें । जॉन डिवी का विचार है :-

"शिक्षा एक लाभप्रद व इच्छित आधार प्रदान करती है जिसके माध्यम से दार्शनिक विवाद के तकनीकी महत्व से मानव को अधिक स्पष्ट रूप में समझाने में सहयोग मिलता है ।"[1]

जॉन डिवी के प्रकृतिवादी प्रयोगवाद में वृद्धि या विकास, मन या मस्तिष्क या स्वभाव समाज व जनतंत्र आदि पद प्राय: इतने प्रयोग हुये हैं कि उनकी व्याख्या उनके मौलिक दर्शन में कुछ मौलिक आधार का निर्माण करते हैं । इसलिए शिक्षा के लिए इनके निश्चित परिणामों के कुछ परीक्षण आसानी से कर सकते हैं क्योंकि शिक्षा के प्रति जॉन डिवी के दृष्टिकोण में ये परिणाम क्रिया में डूबने से ही निकाले जा सकते हैं ।

शिक्षा और वृद्धि या विकास :-

सिडनी हूक , जॉन डिवी को "विकासकादार्शनिक" कहकर पुकररते हैं । "हूक कहते हैं कि जॉन डिवी के अनुसार केवल नैतिकता का ही अस्तित्व है । यही शिक्षा का उद्देश्य भी है । इसी को अच्छा जीवन भी कहते है । विकास को शिक्षा के अच्छे जीवन के सिद्धान्त और अनुभव के गुणों के विकास के रूप में जॉन डिवी मान्यता देते हैं । इसी बात को वे दो

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ383 ।

तरीकों से अभिव्यक्ति करते हैं । विकास स्वयं उद्देश्य है और मानव अनुभव की प्रक्रिया के बाहर कुछ अन्य उद्देश्यों के लिए मात्र साधन नहीं है । विकास के सम्बन्ध में जॉन डिवी कहते हैं :-

"यदि हमारे निष्कर्ष उचित हैं तो उन्हें ----- - निश्चित शैक्षिक परिणामों के लिए आगे बढ़ना चाहिये । जब यह कहा जाता है कि शिक्षा विकास है तो प्रत्येक वस्तु इस पर आधारित है कि यह विकास कैसे प्राप्त किया जाय ।"

हमारा पूर्ण निष्कर्ष यह है कि जीवन विकास है और विकास व बृद्धि ही जीवन है। शैक्षिक समानता में परिवर्तित करने का यह अर्थ है :-

1- कि शैक्षिक प्रक्रिया का अपने से बाहर कोई लक्ष्य नहीं है, यह स्वयं में लक्ष्य है ।

2- और शैक्षिक प्रक्रिया परिवर्तन, पुनर्रचना और पुनर्संगठन की एक निरन्तरता है ।"[1]

विकास का आदर्श :-

जॉन डिवी पुन: कहते हैं :-

"विकास के आदर्श का इस अवधारणा में प्रतिफलन होता है कि शिक्षा अनुभव का एक सतत पुनर्संगठन

1- जॉन डिवी : एक्सपीरियन्स एण्ड एजूकेशन", पृष्ठ-25

अथवा पुनर्रचना है । यह सदैव एक तात्कालिक और ---- अनुभव के गुण का प्रत्यक्ष रूपान्तरण है ------ वास्तव में किसी स्तर पर और प्रत्येक स्तर पर जो कुछ अनुभव व सीखा जाता है वे उसी अनुभव के मूल्यों का निर्माण करते हैं और इस अर्थ में जीवन का यह मुख्य कार्य है। प्रत्येक दृष्टिकोण से जीवन को अनुभवों के अर्थ को और अधिक बढ़ाने में योगदान देना ही शिक्षा है ।"[1]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर जॉन डिवी निष्कर्ष निकालते हैं :-

"इस प्रकार हम शिक्षा की एक तकनीकी परिभाषा पर पहुँचते हैं, वह अनुभवों के पुनर्रचना अथवा पुन-संगठन के रूप में है जो अनुभवों के अर्थ को बढ़ाती है और जो योग्यताओं को आने वाले अनुभवों के मार्ग को दिखाने के लिए वृद्धि करती है ।"[2]

इसी सम्बन्ध में पुनः कहते हैं :-

"अनुभव की निरन्तरता के सिद्धान्त का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक अनुभव जो पहले हो चुका है उससे कुछ ग्रहण करता है और जो अनुभव बाद में होता है उन अनुभवों के गुणों में कुछ सीमा तक सुधार भी करता है ।"[3]

1- जॉन डिवी : एक्सपीरियन्स एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-26 ।
2- - तदैव - पृष्ठ-27
3- - तदैव - पृष्ठ-27 ।

कभी-कभी यह आपत्ति उठाई जाती है कि विकास अनेक विभिन्न दिशाये भी ग्रहण कर सकता है इसलिए यह तर्क दिया जाता है कि विकास ही पर्याप्त नहीं है हमें विकास की दिशा भी निर्देशित करना चाहिये , जिस दिशा में हम विकास चाहते हैं । जॉन डिवी इस आपत्ति को संगत और समर्थन के रूप में नही मानते हैं । वे इसे निष्कर्ष रूप में प्रकट करते हैं :-

> "जब" और "केवल" विकास एक विशेष दिशा में गलत बृद्धि को घनीभूत करता है तभी यह शिक्षा के सिद्धान्त को विकास के रूप में उत्तर देता है एक अवधारणा यह है कि विकास सार्वजनिक हो न कि विशिष्ट व सीमित क्षेत्र में प्रयोग के योग्य ।"[1]

जॉन डिवी का दृष्टिकोण यह है कि वर्तमान अनुभव का गुण भविष्य के अनुभव के गुण को प्रभावित करता है डिवी के अनुसार एक अनुभव जो "उत्सुकता को उभाड़ता है, सूत्रपात ॥इनीसियेटिव॥ को मजबूत बनाता है और उद्देश्यों व इच्छाओं को निश्चित ॥सेटसअप॥ करता है जो भविष्य में मृत स्थानों के ऊपर किसी व्यक्ति को ले जाने के लिये पर्याप्त गहन होता है" वह विकास को ही अवसर प्रदान करता है ।

<u>अनुभव ही समस्त मूल्यों का सिद्धान्त हैं</u> :-

जब हम प्रयोजनवादी विचारधारा के विकास पर

1- जॉन डिवी : एक्सपीरियन्स एण्ड एजूकेशन, पृष्ठ-28-29 ।

दृष्टिपात करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि प्रयोजनवादियों की प्रथम वंशज के रूप में जॉन डिवी ही केवल एक प्रयोजनवादी है, जो अनुभव के गुण को समस्त मूल्यों के सिद्धान्त के रूप में प्राथमिकता देते हैं । प्रयोजनवादी द्वितीय पीढ़ी के वे लोग हैं जो मौलिक रूप में शिक्षा सिद्धान्त में रूचि रखते हैं । केवल "बोड" और किल पैट्रिक" ने आकस्मिक रूप में "अनुभव के गुण" पद का जिक्र किया है । प्रयोजनवाद के तृतीय पीढ़ी ने भी प्राय: यही दृष्टिकोण रखा है ।

हमें यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिये कि जॉन डिवी शिक्षा के उद्देश्य और सुन्दर जीवन के उद्देश्य के रूप में अनुभव के गुणों को विकास के समान ही सार्वभौमिक विकास के महत्व पर बल देते हैं । परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वे परि-स्थितियों की विभिन्नता के महत्व को पहिचानने में असफल है । दूसरी ओर इसके विरोध में जॉन डिवी के लिए "सिद्धान्त" अन्य किसी भी सिद्धान्त की तरह औपचारिक एवं भावात्मक ही रहता है जब तक कि इसे किसी विशेष समाज में लागू न किया जाय ।

शिक्षा और मन । एजूकेशन एण्ड माइन्ड।

प्रथमत: यंत्रवादी या साधनवादी प्रयोजनवाद जीव उद्विकास के सिद्धान्त की स्वीकृति को कम महत्व देते हैं । जॉन डिवी के अनुसार जीव उद्विकास मानता है कि मनुष्य की तार्किक व नैतिक विशेषतायें जन्मजात हैं : ठीक उसी प्रकार जैसे

मानव के शरीर का ढाँचा, मानव की निरन्तरता में जीवन भौतिक उद्‌विकास का विश्वास और उनकी पहुँच शिक्षाशास्त्र नीतिशास्त्र, कला, राजनीतिशास्त्र, मनोविज्ञान एवं तर्कशास्त्र की समस्या के प्रति आधार है । वास्तव में जॉन डिवी के लिए यह मानव अनुभव के किसी पक्ष के लाभप्रद अध्ययन के लिए प्रारम्भिक बिन्दु है ।

अब हमें यह देखना है कि मानव व्यक्तित्व के इस प्रकृतिवादी विवेचना का क्या शैक्षिक परिणाम है ? हमनें देखा है कि जॉन डिवी के शिक्षा का उद्‌देश्य है । व्यक्ति की बुद्धि को मुक्त व विकसित करना । निरन्तरता के प्रकृतिवादी सिद्धान्त का दर्शन और शिक्षा दोनों में महत्व है, मस्तिष्क या मन के प्रति उनका दृष्टिकोण अधिक स्थिर अवस्था को प्रकट करता है ।

मन व्यवहार का गुण है :-

जॉन डिवी मन को व्यवहार का गुण मानते हैं तथा उसे एक कार्य मानते हैं । इसमें सन्देह नहीं कि मन वास्तविक है किन्तु उसकी वास्तविकता श्रेष्ठ आध्यात्मिक कारण अथवा सार्वभौमिक चेतना को प्रकट नहीं करती है । उनके अनुसार जीव धारी प्राणियों की रचना "घटनाओं के कार्य विधि का एक भाग है । इस लिए :-

घटनाओं की कार्य विधि में भाग लेने की
एक विशेष विधि का गुण ही मन हो जाता है ।"[1]

1- जॉन डिवी : क्रियेटिव इन्टलीजिन्स" पृष्ठ-59

मन जन्मजात नहीं बल्कि अर्जित है :-

(माइन्ड इज नॉट एन इनडाउमेन्टइट इज एक्वायरड)

इस प्रकार मन जन्म से प्रदत्त वस्तु नहीं है, बच्चा मन अर्जित करता है :- एक तार्किक प्रकृति अर्जित करता है, क्यों कि वह अपने पर्यावरण की वस्तुओं के अर्थ का स्वामी बनता है। जॉन डिवी के अनुसार मानव जाति के दीर्घ कालीन व कष्ट प्रद अनुभव द्वारा इस अर्थ का विकास किया गया है। बच्चा उन्हें अपनाता है। इस अर्थ को आदतों, रीति रिवाजों, परम्पराओं यंत्रों, अभिकरणों, विधियों, तकनीकियों, और सारे समाज की समस्याओं में सुरक्षित एवं प्रतिबिम्बित किया गया है। बालक इन्हें अधिगम की प्रक्रिया के द्वारा ग्रहण करता है। इनके अनुसार यह अधिगम ही है जिसके द्वारा अपने समुदाय की विधियों में भाग लेकर बच्चा "मन" प्राप्त करता है और एक व्यक्ति बनता है।

शिक्षा के लिए मन के परिणाम का महत्व :-

मन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण परिणाम इस विचार से ही घटित होता है कि शिक्षा के लिए उसका महत्व है। विचार व्यवहार से जुड़ा होता है, विचार का कार्य कठिनाई की स्थिति में ही प्रारम्भ होता है। इसका विकास निरीक्षण, प्रदत्तों के संकलन, निर्णय तथा सुझावात्मक अर्थ में प्रयोग की खोज करने से होता है। परन्तु समस्या की प्रकृति के विश्लेषण करने के उपरांत ही यह घटित होता है और इसके बाद यह कार्य की ओर मनुष्य

को ले जाता है जिससे योजना कावास्तविक परीक्षण होता है ।

जॉन डिवी के अनुसार विद्यालय को इस कार्यक्रम की व्यवस्था करनी चाहिये । इसके द्वारा ही विद्यार्थियों को कार्य में लगने का अवसर मिलेगा और इस कार्य के लिए उन्हें विचार भी करना पड़ेगा । हमें यह ध्यान देना चाहिये कि जॉन डिवी के अनुसार :-

"महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि चिन्तन करना ही एक शैक्षिक अनुभव की विधि है इसलिए पुनर्विचार की प्रधानता के समान ही विधि भी आवश्यक है।"[1]

अतः इस प्रकार का चिन्तन अपने आप बालक के मस्तिष्क में प्रारम्भ नहीं हो सकता, इसके लिए पर्यावरण की आवश्यकता होती है । जिस वातावरण में जो कुछ विचार मस्तिष्क में प्रक्षेपित होता है उसका कार्य में ही परीक्षण किया जाता है इस प्रकार चिन्तन मात्र पुस्तकीय कार्य नहीं है । इसका सम्बन्ध प्राकृतिक एवं सामाजिक संसार या पर्यावरण से होता है ।

एक क्रियाशीलन कार्यक्रम की आवश्यकता क्यों है ? :-

हमें यह ज्ञात होता है कि एक क्रियाशीलता का कार्यक्रम जॉन डिवी के मन के प्रकृतिवादी सिद्धान्त का उचित निष्कर्ष है । परन्तु यह क्रियाशीलन कार्यक्रम मानव अनुभव के

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-285-86 ।

विकास को प्रोत्साहित करता है । इसे मात्र शारीरिक अवयवों की हरकत के अर्थ के रूप में न समझा जाय । डिवी के अनुसार किसी क्रियाशीलता के मूल्य को निम्नलिखित सिद्धान्त पर परखा जाना चाहिये :-

> "हम कह सकते हैं कि जिस अनुभव के प्रकार के प्रति विद्यालयीय कार्य को सहायता देनी चाहिये,उनमें से एक यह है कि सामाजिक योग्यता के विकास के लिए आने वाली कठिनाईयों का मुकाबला करने और प्रबन्ध के साधनों में कार्य करने की क्षमता द्वारा, अथवा दूसरों के साथ सम्पर्क करने की इच्छा द्वारा, सौन्दर्यात्मक अभिरूचि अथवा कलात्मक श्रेष्ठता के शास्त्रीय रूप की प्रशंसा करने की योग्यता, प्रशिक्षित बौद्धिक विधि द्वारा वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रति रूचि को तथा दूसरों के अधिकारों के प्रति संवेदनशीलता अथवा सचेष्टता के द्वारा लक्षित होना चाहिये ।"[1]

शिक्षा और प्रकृति ‡एजूकेशन एण्ड नेचर ‡

मस्तिष्क के पुनर्रचना के दृष्टिकोण की भाँति जाॅन डिवी का प्रयोगात्मक प्रकृतिवाद उस संसार के मूल्यों की पुनर्रचना की माँग भी करता है जिसमें हम अपने साथियों के साथ चलते फिरते और निवास करते हैं । दर्शन और शिक्षा दोनों सामान्य अनुभव के संसार से अपना अन्तिम विछोह रखते हैं । वास्तव में यह संसार जो गुणों में विविधता लिये हुये है उसके सामान्य अनुभव के सम्वन्ध में जाॅन डिवी कहते हैं :-

---

1- जाॅन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-285-86 ।

"[संसार की] वस्तुयें, मर्मभेदी, शोकजनक, सुन्दर, रसयुक्त, व्यवस्थित, अव्यवस्थित, आरामदेह, आश्चर्य में डालने वाली, उजाड़, कठोर, शान्ति देने वाली, शानदार, भययुक्त है । ये वस्तुयें तात्कालिक है, और अपने ही आधार पर अपने ही अधिकार में हैं ।"[1]

अतः हम जॉन डिवी से सहमत है कि हमारा संसार एक नहीं बल्कि बहुत है । यह गतिशील एवं परिवर्तनशील है न कि स्थिर व जड़ । इस बहुतत्ववादी संसार में घटनाओं के कार्य पूर्वगामी शक्तियों द्वारा पहले से ही निश्चित नहीं है । इस प्रकार प्रकृति किसी अन्तिम उद्देश्य से रहित है जिसके लिए यह संसार चल रहा हो ।

जॉन डिवी के विचार में :-

"प्रकृति खराब वस्तु के ऊपर अच्छी वस्तु को वरीयता नहीं देती है । संसार की चक्की किसी भी प्रकार के अन्न को उदासीनता से पीस डालती है ।"[2]

इस दृष्टिकोण के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना उचित है कि विस्तृत विश्व के प्रति इस प्रकृतिवादी दृष्टिकोण का कुछ मानव व्यवहार में, शिक्षा के उद्देश्य में और परिणाम स्वरूप शिक्षा के पाठ्यक्रम और विधि में महत्वपूर्ण प्रयोग किया जा सकता है ।

1- जॉन डिवी : एक्सपीरियन्स एण्ड नेचर" पृष्ठ-112 ।

2- - तदैव - पृष्ठ-96 ।

शिक्षा और समाज :-

वास्तव में जॉन डिवी का शिक्षा दर्शन समाज पर बहुत बल देता है इसलिए यदि उनके दर्शन को सामाजिक दर्शन कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी । उनका इस प्रकार का योगदान शैक्षिक विचारधारा में बड़ा महत्व रखता है । यदि हम उनके दृष्टिकोण को गम्भीरता से समझने का प्रयास कर तो हमें ज्ञात होगा कि उनका शिक्षा का सामाजिक सिद्धान्त प्रकृति एवं मनुष्य के प्रयोग सिद्ध दृष्टिकोंण को केवल स्वाभाविक अतिवृद्धि है अर्थात सामाजिकता पर अधिक बल देने का तात्पर्य स्वाभाविक विकास पर अधिक जोर देने से है ।

प्राकृतिक पर्यावरण का सांस्कृतिक पर्यावरण में हस्तान्तरण :-

अब हमें उपर्युक्त तर्क का परीक्षण करना है । जॉन डिवी का मत है कि शिक्षा को सामाजिक समझना चाहिये क्योंकि अर्थ :-

"एक प्रकार के व्यवहार की विशेषताये है ।"[1]

जिसे हम केवल समाज में ही देख सकते हैं क्योंकि भाषा ने समाज में विचार विनिमय को सम्भव बनाया है । इस विचार विनिमय की प्रक्रिया में प्राकृतिक पर्यावरण एक सांस्कृतिक पर्यावरण में हस्तान्तरित हो जाता है । और -

"अर्थों के राज्य को जन्म देता है ।"[2]

1- जॉन डिवी : एक्सपीरियन्स एण्ड नेचर पृष्ठ- 168 ।

2- - तदैव -

इस प्रकार उनके अनुसार "अर्थ" काल्पनिक अथवा रहस्यात्मक नही हैं और मानव अनुभव से अलग किसी आदर्श के रूप को प्रदर्शित नहीं करते हैं। वास्तव में मानव के सहयोगी क्रिया कलापों में वे अर्थ घुलमिल जाते है जिनसे आत्मा के परिणामों काप्रतिफलन होता है जो अर्थपूर्ण विचार विनिमय को अभिव्यक्त करते हैं। वे कहते हैं :-

"जब हम समाज के बारे में सोचते है तो हमें ज्ञात होता है कि विचार विनिमय एक अस्तित्व पूर्ण घटना है जो समस्त सामाजिक जीवन में स्पस्ट रूप में निहित है और हमें ज्ञात होता है कि विचार विनिमय के लिए अर्थ व समझ की आवश्कता होती है जो संयुक्त व्यवहार की एकता व सहमति की एक शर्त है।"[1]

जब एक बार अर्थ स्वाभाविक घटनाओं से सम्बन्धित हो जाता है तब से मात्र भौतिक वस्तु ही नहीं रह जाते है - वे बौद्धिक लक्ष्य हो जाते है, गुणयुक्त बन जाते हैं इसलिए मानव के क्रिया कलापों में उन्हे लागू करने का महत्व हो जाता है। उनके शब्दों में :-

"जब घटनायें विचार विनिमय के अर्थ से युक्त होती है तब वे लक्ष्य, गणना, अनुमान और सूचना के लिए समर्थ हो जाती है। मात्र घटनाओं की अपेक्षा कुछ

1- जॉन डिवी : "फिलॉसफी एण्ड सिवलीजेशन" पृष्ठ-87

और अधिक होने के कारण उन्हें ‡मानवीय क्रिया-कलापों में‡ लागू किया जा सकता है । इसलिए अनुमान व तर्क की सम्भावना के कारण क्रियाओं से तथ्य को प्रकट करने वाली वस्तुओं का अध्ययन करने का उपक्रम शुरू हो जाता है क्योंकि वे मानव संगम में ही निहित है ।"[1]

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है :-

जॉन डिवी का विचार है कि शिक्षा को एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में समझना चाहिये । यह सामाजिक प्रक्रिया इसलिए है कि सामाजिक क्रिया कलापों में भाग लेने के कारण जो कुछ व्यवहार बालक अर्जित करता है वह इसी कारण सम्भव है । इन क्रिया कलापों में भाग लेने से ही वह व्यक्ति बनता है । सामाजिक पक्ष पर बल देते हुये वे कहते है :-

"जो कुछ भी मानव है वह सीख कर ही बना है न कि सहज रूप से बना है । यद्यपि जन्म से प्राप्त शारीरिक ढाँचे के बिना मानव कुछ सीख नहीं सकता है अतः यही सीखना और शारीरिक रचना ने मानव को अन्य प्राणियों से अलग कर दिया है ।"[2]

समाज ने अपनी रीति व अभिप्राय को ‡मोड्स एण्ड मीनिंग्स‡ पुस्तकों, यंत्रों, तकनीकियों, उद्योगों रिवाजों और संस्थाओं में संचित कर रखा है । ये सब ही व्यक्ति के

1- जॉन डिवी : एक्सपीरियेन्स एण्ड नेचर" पृष्ठ-174

2- जॉन डिवी : पब्लिक ऐन्ड इट्स प्रॉब्लम्स पृष्ठ-154

लिए वातावरण का निर्माण करते है जिसके माध्यम से मानव के मस्तिष्क का विकास होता है । अत: सामाजिक पर्यावरण व्यक्ति के विकास के लिए अपरिहार्य तत्व है । इस प्रकार मानव के महान शिक्षक के रूप में समाज कार्य करता है । इसी कारण वे कहते हैं :-

> "जो कभी प्रतिकूल, विरुद्ध एवं उदासीन परिस्थितियाँ थी उन्हें मानव की विशिष्ट क्रियाओं द्वारा जैसे पालित वृक्ष व पौधे, जानवर, यंत्र वर्तन, औजार, निर्मित वस्तुयें, सौन्दर्यात्मक सजावट एवं प्रत्येक कलात्मक कार्य आदि के रूप में अनुकूल एवं मित्रवत परिस्थितियों में हस्तान्तरित करना, समाज का कार्य है ।"[1]

इस कारण शिक्षा :-

> " बच्चों की क्रियाओं को वर्तमान समय में चुनी हुई और पोषित उत्तेजनाओं द्वारा नियंत्रित करती है ।"[2]

इसीलिये जॉन डिवी सोचते हैं :-

> " बच्चे जीवन के अल्प काल में ही [अपनी आवश्यक शिक्षा को] प्राप्त कर लेते हैं जिसे जाति ने कठिनाई के युगों में धीरे-धीरे प्राप्त करने की आवश्यकता का अनुभव किया था ।"[3]

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-44 ।

2- - तदैव -

3- - तदैव -

सामूहिक कार्यों में भाग लेकर बच्चे "सम्भावित परिणाम" को मानव जीवन हेतु अनुकूल बनाना सीखलेते हैं । और बाद के जीवन में वे सम्भावित परिणाम बाली वस्तुयें ही अनुभव में निर्देशित कारक बन जाती है क्योंकि बच्चे समाज में उत्पन्न होते हैं और बढते हैं । जॉन डिवी का विचार है कि :-

"वह अवसर जिसमें मानव वस्तुओं को अनुकूल बनाने का प्रयत्न करता है वह अपेक्षा कृत मात्र शारीरिक ही नहीं होता है ।"[1]

इस दृष्टिकोण से शिक्षा का उद्देश्य बालक को अपने समूह में एक सदस्य के रूप में कार्य करने में सहायता देना है और कार्य के अर्थ के प्रति सचेष्ट भी करना है । जिस समाज में बालक रहता है उन सामाजिक संस्थाओ और दशाओं से अलग शिक्षा के उद्देश्यों का निर्माण नहीं किया जा सकता है इसलिए शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया ही समझना चाहिये । जॉन डिवी सोचते हैं कि बालक की आवश्यकता -

"उत्पन्न हो रही है, बढ रही है, निश्चित व स्थिर नहीं है, भोजन, सुरक्षा और पुनर्जन्म की {रीप्रोडक्शन} आवश्यकता भावात्मक रूप में सदैव एक सी ही रहती है परन्तु मूर्तरूप में वे तथा उन्हें सन्तुष्ट करने के साधन विज्ञान, तकनीकी और सामाजिक संस्थाओं में प्रत्येक परिवर्तन के साथ सन्तुष्टि के भाव को बदल देते हैं ।"[2]

1- जॉन डिवी : "लॉजिक" द थ्योरी ऑव इन्क्वारी, पृष्ठ-42

2- जॉन डिवी : द सोसल फ्रॉन्टियर" वैल्यूम-।।। {1936} पृ0-7।

इस प्रकार बालक की क्रिया व शक्ति समाज की दशाओं से सम्बन्ध रखती है । जॉन डिवी के अनुसार शिक्षा सामाजिक है क्योंकि प्रत्येक समाज अपने सदस्यों की शिक्षा से "अपनी स्वयं की निरन्तरता की सुरक्षा करता है" इसलिए उनका विचार है :-

"जो सम्बन्ध भोजन एवं सन्तोत्पादन का शारीरिक जीवन से है वही सम्बन्ध शिक्षा का सामाजिक जीवन से है ।"[1]

इसलिए समाज अपने तरीको को समाज के बालकों को शिक्षा द्वारा ही प्रदान करता है । यह कार्य स्वयं समाज अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए ही करता है ।
उन्ही के शब्दों में :-

"सामान्य शब्दों में समाज या समुदाय और विचार विनिमय के मध्य शाब्दिक सम्बन्ध के अतिरिक्त और कुछ सम्बन्ध है । जिन वस्तुओं को मनुष्य सामान्य रूप से अपने अधिकार में रखता है उन्ही वस्तुओं के गुण के समुदाय में मानव निवास करता है, और विचार विनिमय वह तरीका है जिसके माध्यम से मानव वस्तुओं को सामान्य रूप में प्राप्त करता है ।"[2]

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन पृष्ठ-9 ।

2- - तदैव - पृष्ठ-5 ।

शिक्षा समाज के पुनर्मूल्यांकन हेतु अवसर प्रदान करती है :-

तकनीकी ज्ञान, दृष्टिकोणों और समाज के गुणों को बच्चों को प्रदान करने के लिए विशिष्ट अभिकरणों के रूप में विद्यालयों का अस्तित्व समाज में आवश्यक है । इस प्रकार एक समाज आदर्शों और सिद्धान्तों के प्रति बहुत अधिक सावधान रहता है, क्योंकि शिक्षा समाज के पुनर्परीक्षण और पुनर्मूल्यांकन हेतु अवसर प्रदान करती है अत: शिक्षा को सामाजिक रूप मे ही देखना चाहिये । क्योंकि यह समाज ही है जहाँ विद्यालय छोडने के बाद हम अपने जीवन के कार्यों को सम्पादित करते हैं। समाज को समझने के लिए आवश्यक है कि जिस अतीत से यह समाज बना है उसी के आधार पर हमें समाज को देखना व समझना चाहिये । परन्तु जॉन डिवी चेतावनी देते हैं कि जब शिक्षा वर्तमान में अतीत के तरीकों व उद्देश्यों को स्थानापन्न करने हेतु अन्वेषण करती है तभी समाज में, शिक्षा में उपद्रव का जन्म होता है । हम अपने देश भारत में जॉन डिवी की इस चेतावनी से बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं और अनेक तथ्यों को सीख सकते हैं । प्राचीन आदर्शों के आधार पर एक भिन्न प्रकार की सामाजिक व्यवस्था के लिए शिक्षा के उद्देश्य बनाये गये थे, हम वर्तमान में भी उसी आदर्श पर शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित करते हैं । परन्तु वर्तमान भारत की माँगों और आवश्यकताओं को अतीत के कारकों द्वारा शासित नहीं किया जा सकता है । इसलिए अतीत के तौर तरीके बड़ी कठिनाई से

वर्तमान के लिए स्थानापन्न हो सकते हैं जिस समय जॉन डिवी अतीत की उपलब्धियों और संघर्षों के प्रति आदर का भाव अभिव्यक्त करते हैं उसी समय वे अनुभव के प्रति उससे अधिक आदर का भाव प्रकट करते हैं क्योंकि वर्तमान अनुभव निरन्तरता की प्रक्रिया का द्योतक है अत: वर्तमान की समस्याओं से बचने का अन्य कोई मार्ग नहीं है यदि है तो केवल अनुभव की निरन्तरता को जारी रखने की।

पाठ्यक्रम :-

हमने देखा है कि जॉन डिवी के लिए शिक्षा का केन्द्र अनुभवशील बालक है जो अपने पर्यावरण से व्यवहार या क्रिया-प्रतिक्रिया करके अनुभव ग्रहण करता है । इसलिए शैक्षिक प्रक्रिया के बाहर वाले पारम्परिक अवधारणा वाले पाठ्यक्रम की वे आलोचना करते हैं । और प्रचलित पाठ्यक्रम को निस्सार एवं निरर्थक बताते हुये उन्होंने लिखा है :-

> "हम बालक को बिलकुल एकाएक पढ़ने लिखने और भूगोल आदि विशिष्ट विषयों से परिचित कराके उसके स्वभाव के प्रतिकूल कार्य करते हैं ।"[1]

पारम्परिक पाठ्यक्रम बालक को निष्क्रिय बनाते हैं इसलिए जो ज्ञान वह इस प्रकार के पाठ्यक्रम से प्राप्त करता है वे उसके अनुभव में किंचित मात्र भी वृद्धि नहीं करते हैं और न

1- जॉन डिवी : माई पेडागॉजिक क्रीड, आर्टिकल-1।

तो उसके ज्ञान का विकास ही करते है । इसलिए ऐसा पाठ्य क्रम "मृत,यान्त्रिक और विद्यालय में औपचारिक ज्ञान का साधन है।" परन्तु डिवी के अनुसार पाठ्य वस्तु ‖सब्जेक्ट मैटर‖ को बालक के जीवन से बाहर नहीं होना चाहिये बल्कि इसका सम्वन्ध उसके अनुभव से संयुक्त होना चाहिये । जॉन डिवी ने अपनी पुस्तक "द चाइल्ड एण्ड एक्सपीरियन्स" में कहा है कि प्रचलित पाठ्यक्रम असफल है क्योंकि यह अमनोवैज्ञानिक है तथा बालक के मार्ग दिखाने, निर्देशित करने तथा अनुभव के बढ़ाने में असफल हुआ है । उनके विचार से वही पाठ्यक्रम उपयोगी जिसे अनुभव में बदला जा सके । इसीलिए उन्होंने बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम पर बल दिया है । उनका मत है कि पाठ्यक्रम के विषयों एवं क्रियाओं का बालक के अनुभवों, समस्याओं आदि से घनिष्ठ सम्वन्ध होना चाहिये ।

जब अधिगम ‖लरनिंग‖ की उत्पत्ति ही अनुभव से होती है तो अधिगम प्रक्रिया में स्वयं "निरन्तरता" ‖कॉन्टीन्युटी‖ और समायोजन या सम्बन्ध का ‖कनेक्टेडनेश‖ समावेश हो जाता है । हम जानते हैं कि सामान्य रूप से विद्यालयों में पढाये जाने वाले विषय एक दूसरे से अलग करके पढाये जाते है और ऐसी किसी विधि का प्रयोग नहीं किया जाता जिससे एक विषय को दूसरे से समवाय किया जाय । प्रचलित विद्यालयों का समय कालांश में विभक्त था । घंटा बजते ही बालक अपने मस्तिष्क को अंग्रेजी" या "हिन्दी" पर बन्द कर लेते थे और अचानक

विज्ञान अथवा इतिहास के विषय पर बोलते थे इस प्रकार बालक के संसार से विषयोंकी एकता को विस्मृत कर दिया गया था ।

इस प्रकार जॉन डिवी के साधनवादी दर्शन में विषय एक दूसरे से अलग करके नहीं पढ़ाये जाते हैं । अनुभव के रूप में विषय विभिन्न प्रभाव हैं । बालक स्वतंत्रता पूर्वक अपनी रूचि के अनुसार अध्ययन में कार्यरत रहता है । इसका प्रतिफल यह होता है कि पाठों के अध्ययन के कठोर समय चक्र से और पाठ्यवस्तुओं को मध्य में ही परिवर्तन करने की क्रिया से बालक बच जाता है इनके साधनवादी दर्शन में लिखने पढ़नेके औपचारिक विषयों की अपेक्षा बालक की मौलिक योग्यताओं को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार विकसित करने का प्रयास किया जाता है । इसलिए वे बालकेन्द्रित पाठ्यक्रम पर विशेष जोर देते हैं -पाठ्यक्रम निर्माण में जिन सिद्धान्तों व विचारों को उन्होंने अपनाया वे इस प्रकार हैं :-

1- पाठ्यक्रम- बालक के अनुभवों, ज्ञान योग्यताओं, प्रवृतियों तथा आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिये ।
2- इसे लचीला होना चाहिये न कि कठोर व अग्राह्य । जिससे विभिन्न योग्यताओं तथा अभिरूचियों वाले विद्यार्थियों को अपनी स्वयं की योग्यता के विकास का अवसर मिल सके ।
3- बालक के बौद्धिक, भावात्मक नैतिक एवं सामाजिक विकास को ध्यान में रखकर विषयों एवं क्रियाओं का सुसंगठन करना चाहिये ।

4- पाठ्यक्रम का बालक एवं समाज के जीवन व उसकी समस्याओं से निकट का सम्बन्ध होना चाहिये ।

5- बालक के स्वाभाविक विकास हेतु बालक की वैयक्तिक कमियों को ध्यान में रखकर विषयों एवं क्रियाओं का चयन होना चाहिये ।

6- पाठ्यक्रम के विषय सैद्धान्तिक न होकर रचनात्मक एवं उत्पादन शील कार्यों पर अविलम्बित होने चाहिये जिससे बालक की क्रियाशीलता निर्बाध रूप में विकसित हो सके ।

7- विषयों का विभाजन किसी भी स्थिति में नही किया जाना चाहिये बल्कि विषयों में सह सम्बन्ध होना चाहिये ।

8- बालक के वर्तमान जीवन और उसके आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं व्यावसायिक क्षेत्रों से पाठ्यक्रम के विषयों का सम्बन्ध होना चाहिये ।

9- विषयों का सम्बन्ध केवल बालक के वर्तमान जीवन से ही नहीं बल्कि भविष्य के जीवन से भी होना चाहिये । इन विषयों का चयन इस तरह से किया जाना चाहिये ताकि वे बालक के भावी जीवन को अतीत के जीवन से अधिक श्रेष्ठ व उत्तम बना सकें ।

10- पाठ्यक्रम में उन विषयों एवं क्रियाओं को महत्व देना चाहिये जो बालक में सामाजिक उत्तरदायित्व और अन्य व्यक्तियों के साथ सहयोगी जीवन व्यतीत करने का भाव उत्पन्न कर सके ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जॉन डिवी का पाठ्य-क्रम निर्माण के सम्वन्ध में निम्न विचार है :-

"पाठ्यक्रम को ऐसी परिस्थितियाँ प्रस्तुत करनी चाहिये जिनकी समस्यायें सहयोगी जीवन की समस्याओं के अनुरूप हो और जो बालक को निरीक्षण करने एवं सूचना प्राप्त करने के अवसर प्रदान करके, उसमें सामाजिक अन्तर्दृष्टि एवं रूचि का विकास कर सके।"[1]

उद्योग एवं पेशा ही मुख्य क्रियाशीलन क्रिया है :-

जॉन डिवी विभिन्न उद्योगों को बहुत महत्व देते हैं जैसे बढ़ईगीरी, भोजन बनाना, सिलाई-बुनाई आदि के। इनके अनुसार ये ही प्रारम्भिक क्रियाशीलन कार्य हैं जिनका भोजन, वस्त्र व आवास जैसी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस कारण ये पेशे शैक्षिक महत्व के हैं। इन क्रियाओं में लगने से बालको की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है।

जॉन डिवी के अनुसार :-

"मानव के ऐतिहासिक तथ्यों को पुनर्व्यवस्थित करके वर्णन करना ही उनका ऐतिहासिक विकास करना है।"

और इस ऐतिहासिक विकास में :-

1- जॉन डिवी : माई पेडागॉजिक क्रीड, आर्टिकल-1।

"सामान्यतः इतिहास में प्रयोग किये जाने वाले राजनैतिक और काल-क्रमानुसार के लेखों में दिखाई देने वाले तथ्यों की अपेक्षा अधिक मौलिक और नियन्त्रित प्रभावों से बालक के मस्तिष्क को परिचित कराया जाता है ।"[1]

ये उद्योग बच्चों को केवल दूसरें के साथ सहयोगी भावना की दृष्टि से ही सम्मिलित नहीं किये जाते हैं बल्कि ये शिक्षा के आवश्यक सामाजिक सम्बन्ध को भी पुष्ट करते हैं क्योंकि ये व्यावहारिकता एवं बौद्धिकता के मध्य सन्तुलन स्थापित करते हैं ।

वे पाठ्यक्रम में विज्ञान को विशिष्ट महत्व देते हैं । अपनी पुस्तक "एक्सपीरियन्स एण्ड एजूकेशन" में वे कहते हैं कि तर्क से बढ़कर तथ्यों की प्राप्ति और उन्नतिशील उपयोगिता पर बल देने के कारण विज्ञान की आलोचना की गयी है, परन्तु जॉन डिवी का विचार है कि साधनवाद के सिद्धान्तों के अनुसार वैज्ञानिक पद्धति अपूर्ण है । साधनवाद के सिद्धान्तों में विचारों के मूल्य पर विशेष जोर दिया गया है और उपकल्पनाओं को परिणाम के आधार पर जाँचा जाता है और इन सिद्धान्तों में सतत निरीक्षण के प्रयोग की आवश्यकता है ताकि अनुभव को भविष्य में प्रयोग किया जा सके ।

1- जॉन डिवी : द साइकॉलाजी ऑव ऑकूपेशन "द चाइल्ड एण्ड करीक्यूलम" पृष्ठ-138 ‌‌(फोनिक्स बुक्स)

परन्तु यह हमें इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचाता है कि जॉन डिवी सांस्कृतिक विषयों, साहित्य, भूगोल और इतिहास के शैक्षिक महत्त्व की अवेहलना करते हैं । उदाहरण स्वरूप यह कहा जा सकता है कि भूगोल का महत्त्व यह कि भूगोल हमारे सामने उस सहनशील गृह के रूप में पृथ्वी को प्रस्तुत करता है जो मानव के उद्योगों का एक घर है । इतिहास- "अप्रत्यक्ष इतिहास है - समाज का अध्ययन है जो समाज के अस्तित्व की प्रक्रिया और संगठनों की विधियों का नग्न चित्र प्रस्तुत करता है ।"[1]

जॉन डिवी के अनुसार "साहित्य" एक सामाजिक वर्णन है । अत: इस रूप में इसका अध्ययन आवश्यक हो जाता है । प्रयोगवाद पाठ्यक्रम को अति व्यापक रूप में अंगीकार करता है । "किल पैट्रिक" ने पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुये कहा है कि पाठ्यक्रम बालकों का सम्पूर्ण जीवन है । विद्यालयों को उसके गुणों के लिए उत्तरदा-यित्व वहन करना चाहिये । यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये कि पाठ्यक्रम में केवल शास्त्रीय विषय को शैक्षिक विचार से महत्त्व नहीं दिया जाता है बल्कि इसके अन्तर्गत अनुभवों का सम्पूर्ण योग रहता है । बालक इस अनुभव को विद्यालय में ही प्राप्त करता है इस प्रकार विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन ही पाठ्यक्रम बन जाता है अत: यह विद्यालय का धर्म है कि वह छात्र के जीवन के समस्त बिन्दुओं को स्पर्श करे और उनके व्यक्तित्व का सुन्तुलित विकास करे ।

1- जॉन डिवी : द चाइल्ड एण्ड करी क्यूलम" पृष्ठ-151 1

फिल पैट्रिक की उपर्युक्त विचारधारा से यह ज्ञात होता है कि जीवन में घटित होने वाली समस्त क्रियायें पाठ्य क्रम हैं ।

जॉन डिवी पाठ्यक्रम निर्माण करने हेतु व्यक्ति तथा समाज के जीवन, कार्य कलापों, क्रियाशीलता, उपयोगिता एवं व्यावहारिकता को दृष्टि में रखने के लिए जोर देते हैं । उन्होंने विषयों को अलग-अलग करके अध्ययन करने का विरोध किया । पाठय वस्तु को दैनिक आवश्यकताओं से संयुक्त करने पर बल प्रदान किया है । उन्होंने विषय वस्तु के ज्ञान को क्रियात्मक रचनात्मक एवं व्यावहारिक जानकर एक ईकाई के रूप में प्रस्तुत करने पर बल दिया है । इसके लिए उपयुक्त वातावरण का सृजन कर प्रयोग विधि का उपयोग करना आवश्यक माना है । जॉन डिवी के अनुसार बालक के लिए व्यवसाय, अभिव्यक्ति, रचना और प्रयोग की व्यक्तिगत क्रियाओं को पर्याप्त मात्रा में सुलभ कराया जाय ताकि उनकी नैतिक व बौद्धिक व्यष्टि का दूसरों के विचारों द्वारा हनन न हो सके जिसे दूसरों ने पुस्तक से प्राप्त की है । इस प्रकार डिवी ने पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत के रूप में "क्रियाशीलता" के सिद्धान्त पर बल प्रदान किया है क्योंकि वे पुस्तकीय अव्यवहारिक ज्ञान के विरुद्ध थे । इसी लिये उन्होंने प्रयोगशालीय विद्यालय (लेबोरेटरी स्कूल) की स्थापना की थी ।

हम जानते हैं कि "क्रिया" करना बालक का स्वभाव है वह प्रत्येक वस्तु का ज्ञान करके जानना चाहता है । अत: यह आवश्यक हो जाता है कि पाठ्यक्रम में ऐसी वैयक्तिक व सामाजिक या सामूहिक तथा प्रयोजन पूर्ण कियाओं को रखना चाहिये ताकि व्यक्ति समाज, समुदाय व सभी वर्ग की आवश्यकताओंकी पूर्ति हो सके । ऐसा करने से व्यक्ति एक ओर आत्म निर्भर स्वावलम्बी बनता है तथा दूसरी ओर सामाजिक व नैतिक तथा चारित्रिक विशेषताओं से युक्त हो जाता है । हम जानते हैं कि "खाली दिमाग शैतान का घर" है । इसलिए नैतिक बनाने के लिए तथा चारित्रिक गुणों के पुष्ट होने के लिए बालकों को सप्रयोजन पूर्ण क्रियाओं में लगाना चाहिये । व्यक्ति को सामाजिक पर्यावरण प्रदान करने के लिए सामूहिक क्रियाओं को करने का अवसर देना चाहिये ।

जॉन डिवी पाठ्यक्रम को बालक की रूचि को दृष्टि में रखकर निर्माण करने पर जोर देते हैं । इन्होंने बालक की चार प्रकार की रूचियों का संकेत दिया है और यह भी कहा है कि प्रारम्भिक कक्षाओं में बालक के पाठ्यक्रम को इन्हें ध्यान में रख कर ही निर्मित किया जाना चाहिये । ये रूचियाँ है :-
वार्तालाप, अन्वेषण, रचना, कलात्मक अभिव्यक्ति । प्रथम छ: कक्षाओं के छात्र छात्राओं के लिये वार्तालाप हेतु भाषा, प्रकृति अध्ययन व गणित, भूगोलइतिहास,अन्वेषण हेतु विज्ञान, रचना के लिए काष्ठकला,ड्राइंग,कला, बागवानी, लेखन, सिलाई

बुनाई, पाकशास्त्र तथा कलात्मक अभिव्यक्ति की रूचि के लिए संगीत शास्त्र, प्रकृति अध्ययन ड्राइंग कला आदि को पढ़ाना चाहिये ।

हम यह भी जानते हैं कि प्रारम्भिक वर्षों में बालक वार्तालाप, कलात्मक एवं रचनात्मक कार्यों में विशेष रूचि लेते हैं । इस प्रकार से निर्मित पाठ्यक्रम पूर्णत: मनोवैज्ञानिक होता है । जॉन डिवी रचनात्मक विषयों को पढाने के लिए सहयोगी विधि [कोऑपरेटिव मेथड] पर बल देते हैं क्योंकि इससे ही बालको में सामाजिक भावना तथा नैतिक आदर्श का निर्माण होता है । इस प्रकार जॉन डिवी "रूचि के सिद्धान्त" को पाठ्यक्रम निर्माण में महत्व देते हैं ।

जॉन डिवी उन्ही कार्यों व अनुभवों को महत्व देते है जो बालक के जीवन के लिए उपयोगी हो । उपयोगी अनुभव कार्य वे ही हो सकते हैं जो बालक के ज्ञान व कौशल में वृद्धि कर सके तथा जो उसकी व्यक्तिगत तथा सामुदायिक जरूरतों की पूर्ति में सहायक हो सके । अत: वे पाठ्यक्रम में भाषा, साहित्य, स्वास्थय विज्ञान, सामाजिक विषय जैसे भूगोल, इतिहास व नागरिक शास्त्र तथा गणित आदि विषयों को रखने पर बल देते हैं । जॉन डिवी का विचार है कि हम किसी विषय को कम या किसी को अधिक महत्व या किसी को अप्रधान व प्रधान रूप में नहीं मान सकते है । उनकी इस प्रकार की अवधारणा से प्रयोगवाद तथा जनतांत्रिक भावनाओं की

अभिव्यक्ति होती है । उनका कहना है कि मानव की मौलिक आवश्यकतायें "भोजन, आवास, वस्त्र, गृह की सजावट, आर्थिक उत्पत्ति, विनिमय तथा उपभोग" की होती है । इन्हीं समस्याओं का हल जीवन का उद्देश्य है । अत: पाठ्यक्रम में ऐसे व्यावसायिक विषयों को स्थान देना चाहिये जो सम्बन्धित क्रियाओं को सम्पादित करने की प्रेरणा दे सकें । अत: वे उपयोगिता के सिद्धांत पर बल देते हैं ।

जॉन डिवी शिक्षा का केन्द्र बालक को मानते हैं । इस लिए पाठ्य वस्तु को बालक के अनुभव क्षेत्र से बाहर नहीं होना चाहिये, बल्कि पाठ्य वस्तुयें उसके परिचित क्षेत्र से सम्बन्धित होनी चाहिये । हम जानते हैं कि बालक के जो भी अनुभव होते हैं वे असम्बन्धित, असंगठित होते हैं उन्हें सम्बन्धित व संगठित करने की आवश्यकता होती है । अनुभव को केन्द्र में रखकर समस्त पाठ्य वस्तु का उसके चारो ओर गठन किया जाना चाहिये । जॉन डिवी के अनुसार "अध्यापक उन वस्तुओं को जानता है जो छात्र सीख रहे है" और अध्यापकों को तत्कालीन परिस्थिति में "विषय को अपनी जबान पर" धारण करना चाहिये तथा अध्यापक का ध्यान "बालक की मनोवृत्ति एवं प्रतिक्रिया पर भी होना चाहिये । अध्यापक का कार्य है "छात्र को पाठ्य वस्तु के सम्बन्ध में समझाना" परन्तु यह आवश्यक है कि छात्र का "मन भी स्वाभाविक रूप में उसमें लगा हो" जॉन डिवी की उपर्युक्त अवधारणा तभी साकार हो सकती है जब पाठ्यक्रम का संगठन बाल केन्द्रित हो ।

हमने देखा है कि जाॅन डिवी किसी एक विषय को महत्व नहीं देते हैं इसलिए वे पाठ्यक्रम में अनेक विषयों को ज्ञान व कौशल की उपयोगिता के आधार पर सम्मिलित करने के पक्ष में हैं । वे यह जानते हैं कि विषयों को अलग-अलग करके पढ़ाने से व्यक्ति को कोई सार्थक लाभ नहीं होता है । इसलिए प्रयोग वादी उनमें सह सम्बन्ध स्थापित करके पढ़ाना चाहते हैं क्योंकि ज्ञान एक पूर्ण वृक्ष की पूर्ण इकाई है तथा नाना प्रकार के विषय उस पूर्ण इकाई को शाखायें है । इसलिए भाषा, गणित, भूगोल, इतिहास, हस्तकार्य, विज्ञान, कृषि, कला सभी को एक दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ाया जाना चाहिये । इसलिए जाॅन डिवी सह-सम्बन्ध के सिद्धान्त पर बल देते हैं । पाठ्यक्रम का संगठन प्रतिदिन के जीवन को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये । उसे अतीत व भावी जीवन से सम्बन्धित होते हुये भी तात्कालिक लाभ के दृष्टिकोण से वंचित नही होना चाहिये ।

जाॅन डिवी और शिक्षण विधि

साधनवाद स्वीकार करता है कि विधि और विषय सामग्री के मध्य कोई बनावटी द्वैतवाद नहीं है । वास्तव में वे अविभाज्य हैं । जाॅन डिवी के अनुसार विद्यालय में अथवा जीवन के विस्तृत क्षेत्र में अनुभव के लिए "समस्या" रूपी विषय वस्तु में प्रयोग की जाने बाली मस्तिष्क की क्रिया ही विधि है । केवल महत्वपूर्ण विधि मस्तिष्क की विधि है, क्योंकि मस्तिष्क ही समझता है और तथ्यों को एकीभूत करता है । इसलिए यह

प्रतीत होता है कि हमें शिक्षा में सीखने व अनुभव करने की विधि के रूप में शिक्षण विधि पर विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।

"यूलिच महोदय ने लिखा है कि "जॉन डिवी ने इस बात की खुली चुनौती दी है कि प्रचलित शिक्षण विधि मिथ्या एवं सदोष है । उन्होने दृढता पूर्वक कहा है कि अब इस विचार में रंचमात्र भी औचित्य नहीं है कि अध्यापक विषय वस्तु से सम्बन्धित शिक्षण विधि को अपने गृह मे अकेले कक्षा मे बैठकर पहले से ही निश्चित कर ले और तदुपरान्त विद्यालय जाकर, उस शिक्षण विधि द्वारा विद्यार्थियों को विषय वस्तु का ज्ञान देवें । जॉन डिवी के अनुसार इसका कारण यह है कि शिक्षण विधि का उपयोग विद्यार्थियों को ज्ञान देने तक ही सीमित न रखा जाय बल्कि उनकी रूचियों और शक्तियों का भी उचित दिशा में विकास करने में प्रयोग किया जाय । जिससे वह समाज में अपना उचित स्थान ग्रहण कर सभ्यता के विकास में अपना योग दे सकें ।"[1]

इससे स्पष्ट है कि जॉन डिवी विकास में उपर्युक्त लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही शिक्षण विधि को निश्चित करने पर बल देते हैं और यह भी चाहते हैं कि इन्हीं लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सदैव उसे निर्देशित किया जाना चाहिये । इसलिए शिक्षण विधि को कला की विधि बताते हुये जॉन डिवी

1- राबर्ट यूलिच : द हिस्ट्री ऑव एजूकेशनल थॉट, पृष्ठ-320 ।

ने लिखा है :-

"शिक्षण की विधि, कला की विधि है, [illegible] लक्ष्यों द्वारा बुद्धिमत्ता पूर्वक निर्देशित की जाने वाली कार्य की विधि है ।"[1]

शिक्षण विधि के प्रयोग के सम्बन्ध में जॉन डिवी ने स्पष्ट चेतावनी देते हुये कहा है कि शिक्षण विधि द्वारा बालक को विषय वस्तु का समन्वित ज्ञान प्रदान किया जाता है तथा उसे विषय वस्तु का विरोधी नही समझना चाहिये । स्वयं जॉन डिवी के शब्दों में :-

"शिक्षण की विधि, विषय वस्तु की विरोधी नही है वरन् विषय वस्तु का चाहे हुये परिणामों की दिशा में प्रभावशाली निर्देशन है ।"[2]

"समस्या" ही वह तत्व है जो अनुभव के लिए हमारी बुद्धि को उकसाती और प्रेरित करती है । अध्यापक को यह उत्तर दायित्व वहन करना चाहिये कि वह बालकों को समस्या समाधान के उद्देश्य व अर्थपूर्ण परिस्थितियों में भाग लेने के लिये प्रेरित करे । अत: अर्थ एवं प्रयोजन पूर्ण परिस्थितियाँ सामान्य शिक्षण और विधि की केन्द्र होनी चाहिये । जॉन डिवी कहते हैं :-

---

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन पृष्ठ-107

2- - तदैव - पृष्ठ-165 ।

"बुद्धि के प्रयोग द्वारा उपस्थितसमस्याओं या कठिनाइयों के समाधान पर ही ﴾बालक की﴿बुद्धि एवं विकास निर्भर करता है ।"[1]

परन्तु स्मरणीय तथ्य यह है कि कठिनाई व समस्या बालक के वर्तमान अनुभव के क्षेत्र के भीतर ही होनी चाहिये । समस्यायें उनके ऊपर बाहर से न लादी जाय । जॉन डिवी पुनः चेतावनी देते हैं कि समस्यायें ऐसी हो जिन्हें वे अपनी क्षमता के भीतर हल कर सके । इसका तात्पर्य है "योजना से कार्य करना" चाहे यह योजना ﴾प्रोजेक्ट﴿ सामूहिक हो या व्यक्तिगत﴿ ।

<u>योजना विधि</u> :-

इस विधि के प्रवर्तक जॉन डिवी के शिष्य किल पैट्रिक है । जॉन डिवी ने योजना विधि पर विशेष जोर दिया है । इनके विचार शिक्षण विधि के सम्बन्ध में पूर्ण रूपेण प्रयोगवादी हैं इसीलिए उन्होंने प्रचलित पाठ्यक्रम का तथा पुस्तक विधि का विरोध किया, क्योंकि पारम्परिक शिक्षा में बालक के ऊपर कोई वस्तु लाद दी जाती है, उनकी रूचि, क्रियाशीलता, स्वानुभव तथा स्वयं अन्वेषण कर ज्ञान प्राप्त करने की रूचि का ध्यान नहीं रखा जाता है । इसलिए जॉन डिवी ने उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टि में रखकर "प्रोजेक्ट विधि" को शिक्षण विधि के रूप में

1- जॉन डिवी : एक्सपीरियेन्स एण्ड एजूकेशन", पृष्ठ-79

प्रतिपादित किया था, क्योंकि इस विधि में बालक सक्रिय रहता है । स्वानुभव द्वारा, खोज द्वारा तथा स्वयं करके ज्ञानार्जन करता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि "योजना विधि" की सहयोगी विधियाँ "क्रिया द्वारा सीखना" स्वानुभाव द्वारा सीखना, रूचि को उद्‌बोधित करके सीखने के लिए प्रेरित करना आदि हैं । वास्तव में जितनी भी विवेकयुक्त एवं वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक विधियाँ हैं वे सब योजना विधि में समाविष्ट हैं । योजना विधि विद्यार्थी की जीवन समस्या और अन्य समस्या के समाधान हेतु क्रिया पर आधारित विधि है । प्रोजेक्ट विधि का लक्ष्य है शिक्षा को वास्तविक जीवन से सम्बन्धित करने, शैक्षिक पर्यावरण को रूचिकर एवं सरस बनाने तथा सूचना ग्रहण करने की अपेक्षा क्रिया करने, वर्तमान व भावी जीवन को ध्यान में रखने, शिक्षा में सामाजिक भावना लाने तथा छात्रों में सामाजिक मनोवृत्ति को उत्पन्न करने का । किल पैट्रिक के अनुसार "प्रोजेक्ट" वास्तव में एक पूर्ण मनोयोग से सामाजिक पर्यावरण में सम्पादित की गयी प्रयोजन पूर्ण क्रिया है । इस प्रकार "योजना" एक इच्छानुकूल कार्य है जो रचनात्मक एवं वस्तु निष्ठ परिणाम युक्त होती है । अत: योजना को पूर्ण करने के लिए छात्रों को पाँचों पदो से गुजरना पड़ता है ।

1- समस्या

2- क्रिया

3- सूचना ।

4- समाधान ।

5- प्रयोग और परीक्षण ।

जॉन डिवी का इस विधि के सम्बन्ध में विचार यह है कि "सभी सीखना कार्यों" की गौड़ या अप्रधान उपज होती है न कि केवल सीधे सीखने के लिए है ।" यह विधि बौद्धिक प्रक्रिया से सम्बन्धित है जो आगमन व निगमन के पूर्व घटित होती है । इस विधि के प्रयोग से विद्यार्थियों के मन को वाहय जगत से परिचित कराया जाता है । रूचि और आत्म क्रिया ही इस विधि की प्रमुख विशेषतायें है । इस विधि में आगमन तथा निगमन तथा निरीक्षण विधि का भी प्रयोग किया जाता है । जॉन डिवी प्रयोग विधि को भी महत्व देते हैं क्योंकि उनके अनुसार यदि शिक्षा मनुष्य को सही ज्ञान देती है तो उसका प्रयोग द्वारा परीक्षण भी होना चाहिये, इसीलिए योजना विधि में इसको सम्मिलित किया गया है ।

जॉन डिवी ने लिखा है कि :-

"विधि का तात्पर्य है विषय वस्तु की व्यवस्था से ।" विषय वस्तु से विधि बिलकुल अलग नहीं रह सकती है । विधि तो चाहे हुये प्रतिफलों के लिये प्रभावशाली निर्देशन है । उन्होंने आगे पुनः अपना विचार प्रकट करते हुये लिखा है कि :-

"बौद्धिक परिपक्वता वस्तु के भीतर से देखने में होती है ।"

और यह प्रयोजनवाद की "एकता" पर निर्भर होती है । जिसमें विषयों का विवरण होता है । परन्तु वे "असम्बन्धित विवरण के ढेर नहीं होतेहैं। इन कथनों से स्पष्ट है कि जॉन डिवी "एकता" को ऊपर विशेष बल देते हैं । इस "एकता" की प्राप्ति विषयों को सम्बन्धित करके पढ़ाने से ही सुलभ हो सकती है । अतः "सह-सम्बन्ध विधि" को भी वे महत्व देते हैं । वर्तमान काल के समस्त प्रगतिशील विचारक व शिक्षा शास्त्री इस विधि को अपनाने पर जोर देते हैं । जॉन डिवी का विचार है कि ऐसी विधि का चुनाव करना चाहिये जिससे बालक शिक्षा की प्रक्रिया में अच्छी तरह एवं पूरी तरह भाग ले सके ।

बालक जिस क्रिया को करते हैं उसमें उनकी रूचि होती है जब वे उस कार्य में थकान का अनुभव करें तो समझ लेना चाहिये कि उनकी रूचि उससे उपरत हो गयी है । अतः क्रिया को बदलते रहना चाहिये । जब एक कार्यक्रम पूरा हो जाय तब दूसरा कार्यक्रम प्रस्तुत करना चाहिये । जब किसी अनुभव से हमारी भावी गति रूक जाय तो वह शिक्षा प्रद नहीं होती है । अतः उसे बदल देना चाहिये ।

जॉन डिवी ने अपनी पुस्तक "डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" में उपर्युक्त समस्त लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शिक्षण विधि की पृष्ठ 163 पर निम्नलिखित पाँच विशेषतायें बताई हैं :-

1- विद्यार्थी को अनुभव ग्रहण करने के लिए वास्तविक परिस्थिति में रखकर उसे सदैव क्रियाशील एवं सक्रिय रखना ।

2- विचार शक्ति को उत्प्रेरित करने हेतु कोई वास्तविक समस्या प्रस्तुत करना ।

3- उसको समस्या समाधान हेतु निरीक्षण द्वारा अनुभव ज्ञान प्राप्त करने का अवसर देना ।

4- छात्र द्वारा समस्या समाधान हेतु अन्वेषित उपायों को क्रमबद्ध रूप में संगठित व आयोजित करना ।

5- छात्र को अपने उपायों को कार्य रूप में बदलकर औचित्य तथा अनौचित्य के परीक्षण का मौका देना ।

इस प्रकार हम यह अनुभव करते हैं कि जॉन डिवी प्रयोग विधि को काफी महत्व देते हैं, और उनके दृष्टिकोण से प्रयोग विधि सर्वोत्तम विधि है, क्योंकि इस विधि में निरीक्षण, क्रिया, स्वानुभव, निर्णायक भावना व उनका सामान्यीयकरण करना तथा परीक्षण करना सभी कुछ सम्मिलित हो जाता है । इसी तरह जॉन डिवी ने लिखा है :-

"समस्त शिक्षा व्यक्ति द्वारा जाति की सामाजिक चेतना में भाग लेने से विकसित होती है ।"[1]

<u>जॉन डिवी के अनुसार विद्यालय, शिक्षक एवं शिक्षा के आधार</u>

<u>जॉन डिवी का शिकागों स्थित प्रयोगात्मक विद्यालय</u> :-

प्रयोजनवाद प्रचलित विद्यालयों का विरोध करता है क्योंकि उनकी दृष्टि में इन विद्यालयों की शिक्षा अव्यवहारिक

1- जॉन डिवी : माँई पेडागॉजिक क्रीड", पृष्ठ-44

एवं अस्वस्थ कर थी । इन विद्यालयों में केवल पूर्व निश्चित आदर्शों का ही ज्ञान कराया जाता था, समाज की परि-वर्तित होने वाली स्थितियों एवं परिस्थितियों से इनका कोई सम्पर्क नहीं था । प्राचीन परम्परा के विद्यालयों में विषयों का क्रमबद्ध एवं विशिष्ट ज्ञान दिया जाता है चाहे वे तात्कालिक परिस्थिति में उपयोगी हो या नहीं । प्रयोजनवादी इस प्रकार के विद्यालय की आलोचना एवं विरोध करते हैं । जॉन डिवी के अनुसार विद्यालय वह स्थल है जहाँ विद्यार्थी निर्विघ्न एवं मुक्त व स्वतंत्र रूप से अनुभव व प्रयोग करते हैं तथा जहाँ उन्हें अभिव्यक्ति के लिए पूर्ण अवसर मिलता है । इस प्रकार प्रयोजन वादी विद्यालय एक प्रकार से प्रयोगशाला हो जाता है ।

अपनी उपर्युक्त अवधारणा के कारण तथा अपने आदर्शों को कार्य रूप में परिणित करने के लिए इन्होने शिकागों में 1896 में विश्व विद्यालयीय प्रयोगात्मक विद्यालय (यूनीवर्सिटी लेबोरेटरी स्कूल) की स्थापना की । इस विद्यालय की स्थापना का कारण बताते हुये "बोयड" ने लिखा है :-

> "डिवी ने इस स्कूल की स्थापना भावी स्कूल के स्वरूप को निर्धारित करने के लिये की । उनमें यह विश्वास उत्पन्न हो गया था कि सामान्य विद्यालय औद्योगिक क्रान्ति द्वारा किये गये सामाजिक परिवर्तनों के अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था करने में असमर्थ थे ।"[1]

1- विलियम बोयड : "द हिस्ट्री ऑव वेस्टर्न एजूकेशन" पृष्ठ-298-9

जॉन डिवी ने इस विद्यालय में अपने शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तों का बखूबी प्रयोग एवं परीक्षण किया था । इस विद्यालय में जॉन डिवी ने अपने शैक्षिक सिद्धान्तों का परीक्षण व प्रयोग 4 से 14 वर्ष की आयु के विद्यार्थियों पर किया था । इन बालको को विभिन्न टोलियों में रखा जाता था । प्रत्येक टोली में 8 से 10 संख्या तक विद्यार्थी रखे जाते थे । प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति की गई थी । विद्यालयीय क्रार्यक्रम लचीला था । अध्यापक छात्रों के कल्याण के लिए सदैव प्रयत्न शील रहते थे । विद्यार्थियों के शिक्षण के लिए स्वाभाविक एवं नवीन शिक्षण विधियों की खोज की जाती थी ।

जॉन डिवी का विद्यालय के प्रति दृष्टिकोण उनके व्यक्तिगत अनुभव तथा प्रत्यक्ष निरीक्षण पर अवलम्बित था । जब ये अपने विद्यालयी योजना को तैयार करने में लगे थे तो उनके स्वयं के बच्चे पढ़ने की आयु की ओर अग्रसर हो रहे थे उनके जीवन वृत्त का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि वे और उनकी पत्नी श्रीमती एलिस चिपमैन डिवी ने शिक्षा में विशेष रूचि दिखाई थी । श्रीमती डिवी ने अपनी तीव्र बुद्धि से अपने पति जॉन डिवी के दार्शनिक एवं सामाजिक प्रश्नों से सम्बन्धित विचारों को परिशुद्ध बौद्धिक क्रियाशीलता से सामाजिक सम्बन्धों के महत्व की ओर मोड़ा था । श्रीमती डिवी के प्रभाव का ही प्रतिफल यह प्रयोगात्मक विद्यालय था ।

उनकी पुत्री जेन एम0डिवी ने लिखा है :-

" शुद्ध सैद्धान्तिक शिक्षा से असंतोष उत्पन्न होने के कारण दर्शन के सामाजिक कार्य के विश्वास में उनका विचार दृढ़ हो गया । इस विश्वास ने शुद्ध सैद्धान्तिक आदर्शों को व्यावहारिक अनुभव से नियन्त्रित व विकसित करने के लिए जोर डाला । उन्हें यह विश्वास हो गया था कि वर्तमान शैक्षिक विधियाँ सामान्य विकास के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों से बिलकुल साम्य नहीं रखती है । इसी विचार ने उन्हें प्रयोगात्मक विद्यालय खोलने हेतु प्रोत्साहन दिया । डिवी के नैतिक सिद्धान्तों के अध्ययन ने इस विद्यालय में मनोवैज्ञानिक अधिगम के सिद्धान्तों को सहयोगी सामाजिक सम्बन्धों से जोड़ने व मिलाने में सहयोग दिया । इस विद्यालय ने उनके बच्चों को बौद्धिक बोझ से मुक्त करने में सहयोग दिया। दर्शन का कार्य क्षेत्र उसके सामाजिक प्रयोग से भर गया और प्रत्यक्ष प्रयोग के परीक्षणं पर विद्यालयों में जोर दिया जाने लगा । "[1]

जॉन डिवी प्रचलित विद्यालयों में प्रयोग किये जाने बाले बहुत से पाठ्य क्रमों के विषयों एवं विधियों के प्रति आकर्षित हुये थे परन्तु अधिकांश को उन्होंने त्याग दिया था । प्रमुख कार्य जो उनके समक्षथा वह यह था कि वे एक ऐसी शैक्षिक योजना बनाना चाहते थे जिसमें उनके दार्शनिक सिद्धान्तों की झलक हो ।

1- जेन एम0डिवी0 : बायग्राफी ऑव जॉन डिवी, फ्राम पॉल आर्थर शिल्प्स बैल्यूम" द फिलॉसफी ऑव जॉन डिवी" बैल्यूम-1, पृष्ठ-27 ।नार्थ वेस्टर्न यूनीवर्सिटी इवॉन्सटन एण्ड शिकागों, 1939 ।

उन्होंने अपने विद्यालय की योजना के संगठन के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किया है वह इस प्रकार है :-

> "समस्त शिक्षा की अन्तिम समस्या मनोवैज्ञानिक व सामाजिक कारकों को मिलाने की है । मनोवैज्ञानिक कारक यह चाहता है कि व्यक्ति अपनी समस्त शक्तियों को स्वतंत्रता से प्रयोग करें ----- सामाजिक कारक यह चाहता है कि व्यक्ति जिस पर्यावरण में रहता है उस पर्यावरण के सामाजिक महत्व को जाने ----- ।इन दोनों में सन्तुलन। की माँग यह है कि बालक अपनी अभिव्यक्ति इस प्रकार करे ताकि वह सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त कर सके ।"[1]

जॉन डिवी के समक्ष दूसरी समस्या थी कि अर्थों अन्तर्दृष्टि, तथा मन व मस्तिष्क की आदतों को कार्य की पद्धति में कैसे संगठित किया जाय जो कालान्तर में प्रत्येक विद्यार्थी के चरित्र व जीवन का एक हिस्सा बन सके । इन तत्वों को उनके इस विद्यालय में देखा जा सकता है ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जॉन डिवी उनके विद्यालय तथा उस विद्यालय के अध्यापकों के समक्ष मुख्य रूप से चार समस्यायें थी ।

1- ऐज कोटेड इन आर्थर, एच0विर्स्ट वैल्यूम "जॉन डिवी ऐज ऐजूकेटर" पृष्ठ-88 ।

। विली इस्टर्न प्राइवेट लिमिटेड, न्यू दिल्ली-1966 ।

1- विद्यालय को समाज के सन्निकर्ष में किस प्रकार लाया जाय विद्यालयीय व्यवस्था कैसे की जाय कि बालक विद्यालय व घर में अन्तर न समझ सके। विद्यालयीय कार्य व विद्यार्थियों के जीवन में सम्बन्ध किस प्रकार स्थापित किया जाय।

2- विभिन्न विषयों जैसे इतिहास, भूगोल, विज्ञान, कला आदि को किस प्रकार संगठित किया जाय कि इनका विद्यार्थी जीवन से सम्बन्ध हो सके।

3- किस प्रकार शिक्षण किया जाय कि "तीन आर" की योग्यता में वृद्धि के लिए स्वयं के अनुभव व उससे प्राप्त ज्ञान के मध्य सम्बन्ध स्थापित हो सके।

4- प्रत्येक विद्यार्थी पर व्यक्तिगत ध्यान किस प्रकार दिया जाय।

5- उपर्युक्त तथ्यों की खोज के लिए जॉन डिवी अपने प्रयोगात्मक विद्यालय में सतत् प्रयत्नशील रहे हैं तथा इन प्रयोगों को उन्होने "द स्कूल एण्ड सोसाइटी" में प्रकाशित किया है। इस विद्यालय की प्रमुख विशेषतायें निम्न लिखित थी :-

अ- रूचि और परिश्रम में सम्बन्ध ।

ब- व्यक्तिवाद व समाजवाद में सम्बन्ध।

स- विद्यालय व समाज में सम्बन्ध ।

द- विद्यार्थी व पाठ्य वस्तु के सम्बन्ध।

य- विरोधी तत्वों में संगति बैठाना ।

र- वैज्ञानिक व औद्योगिक आविष्कारों व परिवर्तनों को जानना।

जाॅन डिवी घटित होने वाले परिवर्तनों के अनुसार विद्यालयों की व्यवस्था को बदलना चाहते थे । उनका कहना था :-

"जैसे व्यापारिक तथा औद्योगिक क्षेत्रों में परिवर्तन होने पर हमें सम्बन्धित विधियों में परिवर्तन करना पड़ता हैउसी प्रकार समाज की स्थिति में परिवर्तन आने से पाठ्य वस्तु एवं शिक्षण विधि में भी सुधार और परिवर्तन आवश्यक हो जाता है ।"1

यह स्पष्ट है कि विद्यालय जो परम्परागत आदर्शों से सम्बन्धित थे, और जो जाॅन डिवी के समय में शिक्षण कार्य में लगे थे, सामाजिक परिवर्तन को अंगीकार करने से कतराते थे । इस तथ्य का जाॅन डिवी को पूर्ण ज्ञान हो गया था ।

<u>विद्यालय व समाज के घनिष्ठ सम्बन्ध पर जोर</u> :-

जाॅन डिवी के अनुसार विद्यालय समाज के संचित अनुभवों को ही केवल नहीं प्रदान करता बल्कि विद्यार्थियों को सामाजिक संगठनों में घटित होने वाले परिवर्तनों से भी परिचित करता है । वह विद्यार्थियों की बुद्धि को समाज की परिवर्तित परम्पराओं, मूल्यो, आदर्शों, एवं ज्ञान से भी भरने का प्रयास करता है । इतना ही नहीं विद्यालय का कार्य क्षेत्र इससे भी आगे बढ़कर शिक्षा को समाज की उन्नति और सुधार की

1- जाॅन डिवी : "द स्कूल एण्ड सोसाइटी" पृष्ठ-4 ।

मौलिक विधि बना देता है इस प्रकार समाज स्वयं अपने उद्देश्यों का सूत्र रूप में वर्णन करता रहता है जिसे शिक्षा को स्वीकार करना पड़ता है । समाज परिवर्तन के अनुसार स्वयं के साधनों का संगठन करता है और जिस दिशा में परिवर्तन करना चाहता है उसी दिशा में परिवर्तित हो जाता है । समाज यह कार्य दो प्रकार से करता है । :-

1- नये मूल्यों के लिए विद्यार्थियों को मार्ग दिखाकर

2- प्रत्येक बालक में बौद्धिक विकास के लिए सहायता करके और अपने स्वयं के परिवर्तन हेतु सामाजिक क्षमता को बढाकर ।

परन्तु जॉन डिवी के अनुसार यह कार्य केवल प्रजातंत्रात्मक समाज में ही शिक्षा कर सकती है, क्योंकि केवल ऐसे ही समाज में व्यक्ति की बुद्धि "अनुभव की सम्भावनाओं को खोजने के लिए स्वतंत्र होती है ।" जिस प्रकार जॉन डिवी का पाठ्यक्रम व शिक्षण विधियों के प्रति अपना स्वयं का दृष्टिकोण है उसी प्रकार इनका विद्यालय के प्रति भी स्वयं का दृष्टिकोण है ।

विद्यालय एक विशेष भाव में शैक्षिक संस्था है :-

यद्यपि विस्तृत अर्थ में शिक्षा स्वयं में अनुभव है फिर भी प्रत्येक सामाजिक संस्था शैक्षिक संस्था है । विद्यालय भी एक विशेष भाव में ही सामाजिक संस्था व शैक्षिक संस्था है । वे संस्थायें जैसे गृह, चर्च, राज्य, व्यापार और उद्योग भी शैक्षिक अभिकरण है, परन्तु इन संस्थाओं के लिये शिक्षा अप्रधान वस्तु है जबकि शिक्षा के लिए विद्यालय प्रधान संस्था है ।

<u>शिक्षालय में प्रशिक्षण कार्य तथा शिक्षण विधि की खोज का कार्य होता है :-</u>

शिक्षालय अन्य सामाजिक संस्थाओं के साथ-साथ प्रशिक्षण तथा शिक्षण विधि की खोज का कार्य करता है । विद्यालय विधि का कार्य अनुभव के गुणों को प्रभावित करता है और इसका प्रशिक्षण का कार्य कुछ विशिष्ट वस्तुओं को सीखना है । अधिकांश संस्थायें शिक्षा की अपेक्षा कुछ विशेष व प्रधान कार्य करती है परन्तु विद्यालय का अस्तित्व पूर्ण रूप से शिक्षा के लिए है । शिक्षा को विधियों से, तरीको से, व्यक्तियों से व्यवहार करके सम्पन्न किया जाता है तथा पाठ्य वस्तु से सम्पन्न किया जाता है । दूसरी सामाजिक संस्थायें, शैक्षिक प्रक्रिया में अचेतन व आकस्मिक रूप से प्राय लगी रहती है परन्तु विद्यालय जानबूझकर तथा चेतन रूप में शैक्षिक प्रक्रिया में संलग्न रहता है ।

<u>विद्यालय व्यावहारिक माँग की पूर्ति में सलग्न रहता है :-</u>

इतिहास इसका प्रमाण है कि विद्यालय का कार्य समाज की व्यावहारिक माँग की पूर्ति हेतु होता है । असभ्य युग के प्राणियों के युवक अपने पारम्परिक व्यावसायों में अपने दैनिक जीवन के कार्यों की भाँति हिस्सा लेते थे । यह कार्य वे आकस्मिक रूप से करते थे । परन्तु सभ्यता के विकास के साथ-साथ यही कार्य आकस्मिक रूप में सिखाना कठिन होता गया । विद्यालय ने इन तत्वों को सीखाने का उत्तरदायित्व वहन कर

लिया । प्रथमतः विद्यालय ने उन प्रशिक्षणों को देना प्रारम्भ किया जिसकी इन योग्यताओं को प्रदान करने के लिए आवश्यकता थी । जिसे अन्य संस्थायें संतोषजनक रूपमें प्रदान नहीं कर पाती थीं ।

समाज में विद्यालय की भूमिका :-

औपचारिक शैक्षिक अभिकरण के रूप में विद्यालय ने अन्य सामाजिक व शैक्षणिक संस्थाओं के समान ही समाज की रूचियों एवं उद्देश्यों से पूर्ण अनुकूलता कभी नहीं प्राप्त की । परन्तु पूर्व युग के विद्यालय आधुनिक विद्यालयों की अपेक्षा अपने समाज से कई रूप में घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये हुये थे ।

प्रारम्भिक समाज में :-

इस युग के पाठ्यक्रम में उनकी संस्कृति तथा जाति के दैनिक जीवन के क्रिया-कलापों का समावेश था । यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक बराबर हस्तान्तरित होता रहा है । यह शिक्षा उन्हें अलग से नही बल्कि उन्हीं के समूह के बुद्धिमान एवं योग्य व्यक्ति द्वारा दी जाती थी । विद्यालय एवं जीवन में कोई भेद नहीं था । शिकार करने की कला शिकार करके ही सीखी जाती थी ।

मध्य युग :-

जैसे-जैसे शिक्षा का कार्य अधिक सैद्धान्तिक होता गया वैसे-वैस विशिष्ट शिक्षक पाठ्यक्रम और विद्यालयीय भवन आदि की व्यवस्था इस प्रमुख सामाजिक कार्य को करने के लिए

की जाने लगी । युवकों को प्रशिक्षित किया जाने लगा । असैद्धान्तिक रूप में, सामूहिक जीवन की विधियों का वंशानुगत संस्कृति की रक्षा का प्रशिक्षण दिया जाने लगा । धीरे-धीरे शिक्षा का तात्पर्य विद्यालयीय शिक्षा से हो गया और समाज से अलग विद्यालयों का अस्तित्व हो गया ।

विद्यालयों पर औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव :-

बाद में औद्योगिकीकरण ने नगरीकरण को जन्म दिया अमेरिका में अन्य देशों की भाँति नगरीकरण की यह प्रक्रिया अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई तथा करोड़ो की संख्या में लोग एक मेट्रोपोलिटियन केन्द्र के साथ-साथ रहने लगे । प्राचीन "पड़ोसी भावना" समाप्त हो गयी । बालक एक दूसरे से अपरचित हो गये । उनके परिवार भी एक दूसरे से अपरचित हो गये । विद्यालय अधिक केन्द्रीकृत, बड़े तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति न करने बाले हो गये । इन विद्यालयों की भौगोलिक स्थिति को प्रतिदिन बसों से नापा जाने लगा । विद्यालय स्वयं परिवर्तित हो गया । नये-नये शिक्षण उपकरण, विधियाँ विकसित होने लगी और उनका सामान्य अभ्यास में प्रयोग होने लगा । विद्यालय और समाज दोनों बदल गये । यह परिवर्तन विपरीत दिशा में हुआ और इनके मध्य की दूरी उत्तरोतर बढ़ती ही गयी ।

विद्यालय और समाज के सम्बन्धों का महत्व :-

इस तथ्य से सम्भवतः किसी को भी असहमति नहीं

होगी कि जो विद्यालय अपने स्वयं के समाज के सामाजिक व उच्च शैक्षिक आदर्शों, आवश्यकताओं और रूचियों को तथा विस्तृत अर्थ में राष्ट्रीय व विश्व समाज की जिसका यह एक भाग है विशेषताओं को प्रकट करता है वह निश्चय ही उत्तम सामाजिक शिक्षा प्रदान करता है । जब तक विद्यालयीय जीवन को सामाजिक जीवन से सम्बन्धित नहीं किया जाता है तब तक कोई भी विद्यालय प्रभावशाली कार्य नहीं कर सकता है । इसलिए समाज ही केवल वह स्थान है जहाँ पर समस्याओं से परिचय होता है तथा उनका हल किया जाता है । हम जानते हैं कि व्यक्ति का विकास सामाजिक पर्यावरण में ही होता है इस लिए विद्यालय भी एक समाज है और एक लघु समाज है, जॉन डिवी विद्यालय को लघु समाज ही मानते हैं । विद्यालय बालकों को सामाजिक वातावरण देता है और उनका सामाजिक विकास करने में सहायक होता है । यदि विद्यालयीय वातावरण सामायिक आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुकूल न हो तो विद्यार्थी के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नही होगा । विद्यालय को सामाजिक जीवन का सरलतम रूप प्रस्तुत करना चाहिये ।

विद्यालय को विद्यार्थियों की विभिन्न आवश्यकताओं के प्रति सदैव सजग रहना चाहिये । एक अच्छा विद्यालय ही एक अच्छे समाज का निर्माण कर सकता है । जॉन डिवी विद्यार्थियों के स्वाभाविक अभिरूचि के अनुसार सहकारिता पूर्ण उपयोगी

जीवन बिताने की शिक्षा देना चाहते हैं । वे पाठ्य वस्तु को जीवन से सह सम्बन्धित करके पढ़ाना चाहते हैं । बालकों के अध्ययन के लिए वे उपयोगी क्रियाओं को केन्द्र में रखते हैं । इसीलिए उनका प्रयोगशालीय विद्यालय क्रियाशीलता का विद्यालय था । वे जानते थे कि बालक स्वभाव से क्रियाशील होता है । अतः उन्हें क्रियात्मक शिक्षण देना आवश्यक है । जॉन डिवी ने इसीलिये कहा है :-

> "क्रियाशील बनाये रखने से विद्यालय नये भावों से अनुप्राणित रहता है । विद्यालय का जीवन से सीधा सम्पर्क बना रहता है और विद्यालय समाज का लघु रूप बन जाता है ।"

जॉन डिवी बालकों को क्रियाशील रखने के साथ-साथ समाजोपयोगी नागरिक भी बनाना चाहते हैं । विद्यालय का लक्ष्य आर्थिक मूल्य को प्राप्त करना नहीं होना चाहिये, बल्कि सामाजिक क्षमताओं को विकसित करना होना चाहिये । विद्यालयीय पेशों से बालक जीवन की वास्तविकता से परिचित होता है । जीवन की वास्तविकता का सम्बन्ध आवास, भोजन वस्त्र एवं सांस्कृतिक तथ्यों एवं आवश्यक वस्तुओं के निर्माण से है । विद्यालय को बालकों एवं युवकों के स्वास्थ्य, मनोरंजन, भावात्मक व सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति सदैव सजग रहना चाहिये ।

विद्यालय के आदर्श :-

जॉन डिवी लिखते हैं :-

"एक बुद्धिमान माता-पिता अपने बच्चे के लिए जो सर्वोत्तम रूप से कामना करते हैं वही एक समाज अपने समस्त बच्चों के लिए चाहता है ।"[1]

तात्पर्य यह है कि यदि हम उपर्युक्त तथ्य को समझने में असफल होते हैं तो जनतंत्र अपना कार्य करने में असफल हो जायेगा । इसलिए वे विद्यालय की सामाजिक भूमिका पर बल देते हैं । समाज पर बल देने का कारण यह है कि :-

"सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण शिक्षा के पाठ्यक्रम व विधि में सुधार हो रहा है और नये समाज की आवश्यकताओं को प्राप्त करने का प्रयत्न हो रहा है, क्योंकि व्यापार एवं उद्योग की विधियों के परिवर्तन के कारण समाज नये रूप में बन रहा है ।"[2]

जॉन डिवी औद्योगिक परिवर्तन के प्रति पूर्ण सचेष्ट थे । वैज्ञानिक उपलब्धियों को जिसे विज्ञान ने प्रकृति की शक्तियों को उपयोग में लाने के प्रयास से प्राप्त की है उससे वे पूर्ण विज्ञ थे । जब वे कहते हैं :-

---

1- जॉन डिवी : "द स्कूल एण्ड सोसाइटी" (द यूनीवर्सिटी ऑव शिकागों प्रेस, शिकागों, इल्लिन्वाज 1930) रिवाइज्ड एडीसन पृष्ठ-3 ।

2- - तदैव ---- पृष्ठ-4

"समस्त इतिहास में इतनी तीव्र, गम्भीर, गहन तथा पूर्ण क्रान्ति आई है कि इस तथ्य के विषय में कोई बड़ी कठिनाई से विश्वास कर सकता है।"-[1]

इस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति ने हमारे अधिगम व ज्ञान के दृष्टिकोण में परिवर्तन ला दिया है।

<u>जॉन डिवी का विद्यालयीय शिक्षण का सिद्धान्त :-</u>

जॉन डिवी ने कहा है कि शिक्षा अनुभव है, शिक्षा विकास है, वृद्धि है, उनके ये परिचित कथन प्रमाणित करते है कि उनके अनुसार सबके साथ एक होकर जीना ही शिक्षा है। जैसा कि हम जानते हैं कि जीवन एक प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया के दो कारक हैं :-

"एक अपरिपक्व, अविकसित जीव और दूसरे कुछ निश्चित सामाजिक उद्देश्य, अभिप्राय, प्रौढ़ों के परिपक्व अनुभवों में मूर्तिमान मूल्य है। इन शक्तियों के क्रिया प्रतिक्रिया के कारण शैक्षिक प्रक्रिया होती है।"[2]

जीवन की क्रिया या तो वाँछित या अवाँछित, अच्छी या बुरी हो सकती है, जब सामाजिक परिस्थितियाँ अवाँछित

1- जॉन डिवी: "द स्कूल एण्ड सोसाइटी" (द यूनीवर्सिटी ऑव शिकागो प्रेस, शिकागो, इल्लिन्वाज 1930 (रिवाइज्ड एडीसन पृष्ठ-6 ।

2- जॉन डिवी : "द चाइल्ड एण्ड करीक्यूलम", शिकागो यूनीवर्सिटी ऑव शिकागो, 1902, पृष्ठ-2

अनुभव की ओर ले जाती है तो डिवी का दृष्टिकोण है कि इन परिस्थितियों में शैक्षिक प्रक्रिया को चेतन और उचित ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि विद्यालयीय शिक्षा की खोज वाँछित अनुभवों को प्रदान करने के लिए साधन रूप में की गई है, क्योंकि अच्छे अनुभव उन्नतिशील अनुभव हैं :-

> "वृद्धि या उन्नतशील" का अर्थ है "महत्व पूर्ण और अर्थयुक्त विकास।"

वृद्धि और विस्तार" पद को जॉन डिवी ने निरन्तरता के अर्थ में प्रयोग किया है। इसलिए किसी भी अनुभव का अर्थ है पहले अनुभव से उत्पन्न होना और आने वाले अनुभव का मार्ग प्रशस्त करना।

> "यही निरन्तरताका कारक है। इस अभाव को विद्यालय व विद्यालयीय शिक्षा द्वारा पूरा किया जाना चाहिये। विद्यालय का यह महत्वपूर्ण कार्य है।"[1]

विद्यालयीय शिक्षा संकुचित अर्थ में शिक्षा है :-

इस प्रकार हम देखते हैं कि जॉन डिवी के अनुसार यदि विद्यालय जीवन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को अभिव्यक्त नहीं करता है तो विद्यालयीय शिक्षा संकुचित अर्थ वाली शिक्षा हो

1- मेल्विन सी० बेकर : फाउन्डेशन ऑव जॉन डिवीजएजूकेशनल थ्योरी चैप्टर -7 पृष्ठ-119

जाती है । विस्तृत शैक्षिक प्रक्रिया में पहले से व्यक्तियों के भाग लेने से विद्यालयीय शिक्षा अथवा संकुचित अर्थ वाली शिक्षा की शुरूआत होती है । अनुभवों से, अर्थात प्रारम्भ में बालक अपने पारिवारिक परिस्थितियों या पर्यावरण से, कुछ आवश्यकताओं और रूचियों व बोलने के तरीकों से ‖अनुभवों को‖ अर्जित करता है । इन्हीं अनुभवों का सहयोग लेकर विद्यालयीय शिक्षा में आने वाले अनुभवों को जारी रखा जाता है । इस प्रकार शिक्षालयों में अनुभवों की निरन्तरता बनी रहती है । जॉनडिवी इन आवश्यकताओं, रूचियों तथा बोलने के तरीकों को विद्यालयीय शिक्षा की प्रक्रिया का प्रारम्भिक बिन्दु मानते हैं ।

यह पुन: कहा जा सकता है कि विद्यालय में अनुभव की परिस्थितियों को स्वतंत्र रखना चाहिये । तात्पर्य यह है कि विद्यालय को केवल विषयों से सम्बन्धित समस्याओं और कठिनाइयों की जाँच व परख करने वाला स्थान ही नही होना चाहिये बल्कि सीखने वाले बालक की रूचियों से आन्तरिक रूप में सम्बन्धित भी होना चाहिये । विद्यालय को मनुष्यों के विस्तृत अनुभव में उत्पन्न होने वाली मौलिक समस्याओं और कठिनाइयों से प्रत्यक्ष रूप में सम्बन्ध रखना चाहिये ।

सामाजिक व्यवस्था में विद्यालयीय शिक्षा का अग्रसर होना :-

तात्पर्य यह है कि विद्यालयीय शिक्षा को सामाजिक व्यवस्था हेतु अग्रसर होना चाहिये । ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये ताकि बालक मौलिक रूप में कुछ कार्यों अथवा पेशों में लगे रहे ।

जाती है । विस्तृत शैक्षिक प्रक्रिया में पहले से व्यक्तियों के भाग लेने से विद्यालयीय शिक्षा अथवा संकुचित अर्थ वाली शिक्षा की शुरूआत होती है । अनुभवों से, अर्थात प्रारम्भ में बालक अपने पारिवारिक परिस्थितियों या पर्यावरण से, कुछ आवश्यकताओं और रूचियों व बोलने के तरीकों से ॥अनुभवों को॥ अर्जित करता है । इन्हीं अनुभवों का सहयोग लेकर विद्यालयीय शिक्षा में आने वाले अनुभवों को जारी रखा जाता है । इस प्रकार शिक्षालयों में अनुभवों की निरन्तरता बनी रहती है । जॉनडिवी इन आवश्यकताओं,रूचियों तथा बोलने के तरीकों को विद्यालयीय शिक्षा की प्रक्रिया का प्रारम्भिक बिन्दु मानते हैं ।

यह पुन: कहा जा सकता है कि विद्यालय में अनुभव की परिस्थितियों को स्वतंत्र रखना चाहिये । तात्पर्य यह है कि विद्यालय को केवल विषयों से सम्बन्धित समस्याओं और कठिनाइयों की जाँच व परख करने वाला स्थान ही नही होना चाहिये बल्कि सीखने वाले बालक की रूचियों से आन्तरिक रूप में सम्बन्धित भी होना चाहिये । विद्यालय को मनुष्यों के विस्तृत अनुभव में उत्पन्न होने वाली मौलिक समस्याओं और कठिनाइयों से प्रत्यक्ष रूप में सम्बन्ध रखना चाहिये ।

सामाजिक व्यवस्था में विद्यालयीय शिक्षा का अग्रसर होना :-

तात्पर्य यह है कि विद्यालयीय शिक्षा को सामाजिक व्यवस्था हेतु अग्रसर होना चाहिये । ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये ताकि बालक मौलिक रूप में कुछ कार्यों अथवा पेशों में लगे रहे ।

एक जनतंत्रात्मक सामाजिक व्यवस्था में यह नितान्त अनिवार्य है कार्यों में संलग्न बालक कार्यों के प्रभाव के सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए समान रूप से भाग ले और किसी सर्वमान्य परिणाम पर पहुँचने में समर्थ हो सके । इसी तथ्य को जॉन डिवी आगे भी अभिव्यक्त करते हैं जब वे कहते है कि नैतिक चरित्र का निर्माण उन कार्यों,प्रयत्नो, विचारों को आत्मसात् या अनुभव करने से होता है जिन अनुभवों का विकास बालक के पर्यावरण के अभ्यन्तर उनकी प्रवृत्तियों के विकास से है । जॉन डिवी शिक्षा को विस्तृत अर्थ में ही प्रयोग करते हैं । वह तो सम्पूर्ण जीवन की प्रक्रिया है ।

हम कह सकते हैं कि सर्वाधिक संश्लिष्ट अर्थ में शिक्षा अनुभव के परिणाम के रूप में किसी भी व्यक्ति में परिवर्तन को अभिव्यक्त करती है । जब शिक्षा के संकुचित अर्थ को जानकर कुछ संगठित समूहों द्वारा अपने बच्चों के बौद्धिक, भावात्मक, और चारित्रिक विशेषताओं का निर्माण करने के लिए सचेष्ट प्रयत्न किया जाता है तभी शिक्षा का वास्तविक अर्थ व्यक्त होता ।

प्रजातन्त्रात्मक समाज में विद्यालय की भूमिका :-

प्रयोजनवादी विद्यालय में जनतंत्रात्मक व्यवस्था होती है । प्रयोजनवाद का जन्म व विकास अमेरिकी प्रजातंत्र में हुआ है । इसीलिये विद्यालय भी प्रजातंत्रात्मक भावना से ओतप्रोत हो गया । जनतंत्र का मुख्य सिद्धान्त स्वतंत्रता, समानता एवं सामाजिक न्याय है । विद्यालय में प्रत्येक विद्यार्थी को समान

अवसर दिया जाता, तथा समाज के कार्य में सभी को भाग लेने का पूरा अधिकार है । समाज की सुरक्षा का दायित्व भी विद्यालयों का ही होता है । इसलिये इन भावनाओं के विकास हेतु प्रारम्भ से ही विद्यालयीय पर्यावरण ऐसा ही बनाया जाता है । विद्यालय चाहर दीवारों से आवृत स्थल नहीं माना जाता बल्कि वहाँ तो विश्व के अनुभव व सामाजिक सम्बन्धों की विवक्षा होती है । और प्रत्येक विद्यार्थी उससे लाभान्वित होता है ।

जॉन डिवी के अनुसार विद्यालय को समय के साथ प्रगतिशील एवं परिवर्तनशील होना चाहिये । समाज के औद्योगिक व जनतंत्रिक परिवर्तनों के साथ विद्यालय में भी परिवर्तन होना चाहिये । विद्यालय को जीवन से सम्बन्धित होना चाहिये । डिवी के प्रयोगात्मक स्कूल में जीवन से सम्बन्धित व्यवसायों को सिखाया जाता था । दूकानदारी, हस्तकार्य, लकड़ी का काम पाकशास्त्र, खेल, रचना आदि तथा अनेक शत्रों के प्रयोग तथा अनेक दूसरी क्रियाओं को इस विद्यालय में प्रदान किया जाता था । इन क्रियाओं से बालकों के व्यक्तित्व का निर्माण होगा, सामाजिक कुशलता, बौद्धिक व चारित्रिक विकास तथा जनतांत्रिक समझ का जागरण होगा । जॉन डिवी के अनुसार विद्यालय अपनी चाहार दीवारी के बाहर बृहत समाज की. प्रतिच्छाया होगा । जिसमें जीवन की शिक्षा व्यावहारिक रूप में दी जायेगी । परन्तु वह समाज शुद्ध, सरल और अच्छी तरह से सन्तुलित होगा ।

<u>पेशा बालक को सत्यता से परिचित करता है :-</u>

विद्यालयीय जीवन में क्रियात्मक पेशों को केन्द्रवर्ती स्थान देने की आवश्यकता है क्योंकि ऐसा करने से विद्यालय की सम्पूर्ण भावना नवीन हो जाती है, क्योंकि इसका सम्बन्ध जीवन से होता है। और -

"विद्यालय एक लघु समाज में बदल जाता है।"[1]

विद्यालयीय परिवेश में प्रयुक्त व्यवसाय का लक्ष्य आर्थिक उपलब्धि प्राप्त करना नहीं है बल्कि संकुचित उपयोगिता की भावना से मुक्त करना है, मानवीय भावनाओं के क्षेत्र को उद्घाटित करना है। ये पेशे इतिहास व विज्ञान के समान अपने क्रियाशीलन के कारण व्यावहारिक हो जाते हैं। जॉन डिवी कहते हैं :-

"पेशों से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं से आर्थिक मूल्य की प्राप्ति का उद्देश्य नहीं है बल्कि बालको में सामाजिक शक्ति एवं अन्तर्दृष्टि का विकास करना है।"[2]

उन्होंने आगे पुनः कहा है :-

"पेशे संकुचित उपयोगिता की भावना से (बालको को) मुक्त करते हैं। ये मानव भावनाओं की सम्भावनाओं को उद्घाटित करते हैं। ये सम्भावनायें ही विद्यालयीय क्रियाशीलता को कला, विज्ञान और इतिहास के समान व्यावहारिकता प्रदान करते हैं।"[3]

1- जॉन डिवी : द स्कूल एण्ड सोसाइटी" (द यूनीवर्सिटी ऑव शिकागो प्रेस, 1930) रिवाइज्ड एडीसन, पृष्ठ-15

2- - तदैव -

3- - तदैव -

विद्यालय में इन पेशों को केवल व्यावहारिक विधियाँ ही नही जाना जाता है, वे वास्तव में :-

"प्रक्रियामें और भौतिक पदार्थों में वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि के सक्रिय केन्द्र है, उस अलगाव के बिन्दु हैं जहाँ से बच्चे मानव के ऐतिहासिक विकास की सत्यता को जानने के लिए मार्ग प्राप्त करते हैं।"[1]

विद्यालय में परीक्षा का मापदण्ड कार्य की पूर्णता है :-

विद्यालय में बालको के वर्गीकरण व कक्षोन्नति की समस्या भी होती है। प्रचलित परिपाटी के अनुसार परीक्षा लेकर उन्हें कक्षोन्नति दी जाती है। किन्तु जॉन डिवी का दृष्टिकोण भिन्न है। उनके विचार से जो योजनायें बालको को दी जाय वे उन्हे पूरा कर लेते है तो उनमें वे सामाजिक मानक उत्पन्न हो जाते हैं जिन मापदण्डों की समाज अपेक्षा करता है। यही उन बालको की सफलता का परिचायक है, यही उनकी परीक्षा है। जॉन डिवी की परीक्षा का यही स्वरूप है इसलिए वे परीक्षा के प्रतिकूल नहीं है, क्योंकि उन्होंने अपना विचार व्यक्त किया है कि "परीक्षायें उपयोगी है यदि वे बालक की योग्यता की परख सामाजिक परिप्रेक्ष्य में करती है और यह संकेत देती है कि बालक को कितनी सहायता की आवश्यकता इस संदर्भ में है।"

1- जॉन डिवी : द स्कूल एण्ड सोसाइटी" (द यूनीवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1930) रिवाइज्ड एडीसन, पृष्ठ-17

इसलिए विद्यालय का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह इस बात का परीक्षण करे कि बालक में सामाजिक जीवन के लिए कितनी योग्यता है और कितनी मात्रा की अभी और आवश्यकता है ।

बालक :-

जॉन डिवी के अनुसार शिक्षा का केन्द्र बालक है । इन्होंने बालक की चार प्रकार की रूचियाँ बताई है ।वार्तालाप खोज, निर्माण व रचना तथा कलात्मक अभिव्यक्ति की रूचि । पाठ्यक्रम के निर्माण में बालक की इन रूचियों को ध्यान में रखने को कहा है । अर्थात पाठ्यक्रम बालक के जीवन से सम्बंधित होना चाहिये । शिक्षा विधि को क्रियात्मक बनाया जाय । जिससे उनकी स्वाभाविक रूचि बनी रहे । बालक को औपचारिक विषयों का ज्ञान मात्र देना जरूरी नहीं है बल्कि शिक्षा का लक्ष्य घर तथा समाज के लिए बालक को तैयार करना होना चाहिये । उनमें सामाजिक कुशलता,योग्य गृहस्थ, उत्तम - नागरिक एवं प्रजातंत्रात्मक भावना को विकसित करना है ।

जॉन डिवीनेबालको की वैयक्तिक विभिन्नता को ध्यान में रखने की सलाह दी है । सभी बालक ज्ञान, बुद्धि,व क्रिया करने की क्षमता में अन्तर रखते हैं इसलिए प्रत्येक बालक के व्यक्तित्व का विकास इन तथ्यों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये । विद्यालय,समाज तथा शिक्षक का कर्तव्य है कि इस बात को सदैव ध्यान में रखें तथा तदनुकूल आचरण करें, वे बालक को पूर्ण स्वतंत्रता देने के पक्ष में हैं, क्योंकि वे प्रजातांत्रिक

शिक्षा शास्त्री भी हैं । वे चाहते हैं कि बालक स्वतंत्रतापूर्वक अपना स्वयं का काम छाँटे, पूरा करने की योजना बनावे, प्रयोग करे, निरीक्षण करे और निर्णय निकाले । उसके क्रिया में लगने पर बाहरी दबाव न डाला जाय, अनावश्यक सुझाव न दिया जाय । यदि आवश्यक हो तो निर्देशन दिया जा सकता है क्योंकि डिवी कहते हैं कि सुझाव एक प्रकार का बालक की बौद्धिक व्यष्टि पर "अनाधिकृत अतिक्रमण" है । इसलिए सुझाव की अपेक्षा स्वतंत्रता अधिक महत्वपूर्ण होजाती है । परिवार की भाँति ही विद्यालय में स्वतंत्रता मिलनी चाहिये । बालक के विकास के लिए स्वस्थ्य, सुन्दर एवं विकास-उत्तेजक वातावरण प्रदान करना चाहिये । बालक के जीवन को उपयोगी, सहयोगी तथा सामाजिक बनाने का प्रयास करना चाहिये ।

अध्यापक :-

आजकल शिक्षक को शैक्षिक प्रक्रिया में अप्रधान स्थान मिला हुआ है किन्तु इतना तो निःसन्देह सत्य है कि वह एक मार्ग दर्शक, निर्देशक अवश्य है । अध्यापक का कार्य क्रियाशील पर्यावरण का निर्माण करना है । डिवी के अनुसार शिक्षक एक समाज सेवी है । इसीलिए उसका कर्तव्य है कि सामाजिक तत्वों का चुनाव करे ताकि वह बालकों में उपयोगी प्रवृत्तियों मनोवेगों, चरित्र एवं स्वाभाविक अनुशासन को विकसित कर सके, परन्तु उसे अपने व्यक्तित्व की छाप विद्यार्थियों पर नहीं डालनी चाहिये ।

केवल वह दृष्टा रहे और यह देखे कि छात्र सामाजिक गतिविधियों में कितना क्रियाशील है ।

शिक्षक का स्थान अप्रधान तो प्रयोगवादी मानते हैं किन्तु जॉन डिवी ने शिक्षक को ईश्वर का प्रतिनिधि माना है । अपनी पुस्तक "एजुकेशन टुडे" में उन्होने कहा है कि "शिक्षक सर्वदा सच्चे ईश्वर का देवदूत है वह ईश्वर के सत्य राज्य में प्रवेश करने वाला है ।" जॉन डिवी के इस विचार से यह अवगत होता है कि शिक्षक बालक एवं समाज दोनों को विकास की ओर ले जाने वाला है । उसे बालकों के कार्य पर दृष्टि रखना चाहिये तथा उचित शैक्षिक व्यवस्था भी करे । जॉन डिवी ने शिक्षक को एक चतुर बढ़ई माना है, जो अपने शिष्यों के लिये मार्ग प्रशस्त करता है । बालक की कठिनाइयों को उसे दूर करना चाहिये । इन्होंने शिक्षक को दृष्टा, निरीक्षक, सहयोगी, मार्गदर्शक, मानते हुये उसके व्यक्तित्व को कम महत्वपूर्ण नहीं माना है ।

प्रयोजनवाद शिक्षक को महत्वपूर्ण स्थान देता है, क्योंकि प्रयोजनवाद की उत्पत्ति ही शिक्षकों के प्रयोगात्मक सिद्धान्तों एवं प्रयासों से हुई है । प्रयोजनवादी सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था शिक्षक की योग्यता पर ही निर्भर करती है ।

गत पृष्ठों में हमने देखा है कि विकास व अधिगम का केन्द्र बालक है । यदि "प्रोजेक्ट" और समस्या समाधान औपचारिक शिक्षण का स्थान ग्रहण करते है तो प्रश्न यह उठता है कि अध्यापक के लिए कौन सा कार्य करना शेष रह जाता है ।

एक तथ्य बिल्कुल स्पष्ट है कि जॉन डिवी अपनी शिक्षा योजना पर प्रौढ़ों के श्रेष्ठ स्तर के अनुभव तथा उनके आधिकारिक पाय-दान पर अधिक देर तक निर्देशन देने के लिए स्थिर नहीं रहते हैं । उनका यह भी विचार नहीं है कि वे अपनी कक्षाओं को निष्क्रिय बनाना चाहते हो । शैक्षिक उपलब्धि के प्रति उनकी पहुँच प्रत्यक्ष कम है । वे क्रिया के परिणामोपरान्त उपलब्धि का मूल्यांकन करते हैं ।

अध्यापक के कार्य :-

जॉन डिवी की इस परिवर्तित विधि में अध्यापक पहले पहल सामान्य तथा विशिष्ट दो वर्गों में बालको का चुनाव करता है । अत: यह प्रकट होता है कि अध्यापक को मनोविज्ञान का ज्ञान होना चाहिये । इसके बाद अध्यापक वातावरण का चुनाव करता है । उन पदार्थों का चयन करता है जिनमें बालक के विकास की पूर्ण क्षमता निहित होती है । शिक्षक को पाठ्यक्रम का इस प्रकार चयन, संगठन एवं प्रयोग करना चाहिये जिससे वह बालको की क्षमताओं की पूर्णता" और "अनुभवों की वृद्धि" के लिए उनका निर्देशन करे । इसके अतिरिक्त उसका महत्वपूर्ण कार्य "अध्ययन की विषय वस्तु का मनोवैज्ञानीकरण" करना है । तात्पर्य यह है कि विषय वस्तु को वर्तमान अनुभव के रूप में इस प्रकार बदलना पड़ता हैताकि वे बालकों के लिए उद्देश्यात्मक हो सकें । अध्यापक को समाज व बालक की आवश्यकता के प्रति भी सचेत रहना चाहिये ।

जॉन डिवी के अनुसार :-

"जो पहले से प्राप्त कर लिया गया है वह कोई स्थिर प्राप्ति नहीं है बल्कि नये क्षेत्र के उदघाटन हेतु एक अभिकरण व साधन है ।"[1]

शिक्षक के कार्य का मूल्यांकन "अप्रत्यक्ष रूप से निर्देशन की अवधारणा में है जिसे विद्यालय के सामुदायिक जीवन और पाठ्यक्रम में निहित सम्भावनाओं के कौशल युक्त और चयनित प्रयोग के रूप में होना चाहिये । परन्तु जॉन डिवी की चेतावनी है कि "निर्देशन" बाहय रूप से न लादा गया हो । निर्देशन तो जीवन प्रक्रिया को अपनी स्वयं की उचित पूर्णता हेतु स्वतंत्र करना है ।

यदि शिक्षक की इस भूमिका को देखा जाय तो हमें यह पता लगता है कि शिक्षक का महत्व शैक्षिक प्रक्रिया में कम नहीं है । उसका स्थान महत्वपूर्ण ही नहीं बल्कि शैक्षिक प्रक्रिया में प्रतिष्ठापूर्ण है । वह अपनी स्वयं की मर्यादा की प्रतिष्ठा करना सीख लेता है और यह जानता है कि "सम्भाव्यता और विकास तथा बालक के जीवन के [illegible] विश्लेषण हेतु अतीत और भविष्य के मध्य की वह एक अनिवार्य श्रृंखला है ।"

अत: स्पष्ट है कि प्रयोजनवादी शिक्षा में अध्यापक का स्थान बड़ा ही महत्वपूर्ण है ।

1- जॉन डिवी : "एक्सपीरियन्स एण्ड नेचर" पृष्ठ-75 ।

<u>अनुशासन एवं स्वतंत्रता</u> :-

अनुभव के रूप में सामाजिक सम्बन्ध के अन्तर्गत विद्यालयीय अवधारणा में जॉन डिवी अनुशासन के सम्बन्ध में भी विचार धारण करते हैं। बालक अनुशासन कैसे धारण करता है? यह प्रश्न विचारणीय है। बालक परम्परागत विद्यालयों की दबाव डालने वाली संकुचित अनुशासन की अवधारणा द्वारा अनुशासित नहीं होता है। कोई भी महत्वपूर्ण व मूल्य वाला अनुशासन केवल अनुभव से ही प्राप्त किया जाता है। "क्रियात्मक कार्य में हिस्सा लेकर ही" बालक अनुशासित रह सकता है, और इसे "सहयोगी व सामाजिक ढंग से"[1] कार्य करते हुये प्राप्त करता है। इस प्रकार बालक अपनी शक्तियों के प्रयोग से अनुशासन सीखता है, और समाज में दूसरों के साथ रहते हुये वे उचित व्यवहार को भी सीखते हैं। इस प्रकार बालक नागरिकता के लिए भी प्रशिक्षित होते हैं।

> "सामाजिक जीवन के लिए तैयार होने का केवल एक ही रास्ता है कि सामाजिक जीवन में लगा जाये।"[2]

इस प्रकार भाग लेने से उपयोगिता की आदत, औद्योगिक सेवा भाव, और उत्तरदायित्व को वहन करने की

1- जॉन डिवी : "द वे आउट ऑव एजूकेशन" पृष्ठ-89-90 ।

2- - तदैव - पृष्ठ-205 ।

प्रवृत्ति को बालक द्वारा सीखा जायेगा । इन आदतों को केवल सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही अर्जित किया जायेगा । इस भावना के अनुशासन के लिए स्वतंत्रता के एक मान दण्ड की भी आवश्यकता होती है । स्वतंत्रता का अर्थ जॉन-डिवी के अनुसार :-

> "बुद्धि की स्वतंत्रता, तात्पर्य है निरीक्षण की स्वतंत्रता, न्याय की स्वतंत्रता, जिसे उद्देश्यों के लिए किया जाता है वही स्वाभाविक रूप से उचित होती है ।"[1]

अध्यापक का सुझाव स्वतंत्रता में बाधा डालता है और अनुज्ञप्ति (लाइसेन्स) के रूप में वह पतित व भ्रष्ट हो जाता है । परन्तु इसका होना भी आवश्यक है केवल रूप परिवर्तन की आवश्यकता है, उसे निर्देशन के रूप में होना चाहिये, क्योंकि जब ऐसा होता है तब पाठ्यचर्या और सामाजिक सम्बन्ध का नियन्त्रण होता है और बालक उसमें वास्तविक रूप से रूचि लेते हैं ।

हमने यहाँ पर शिक्षा की अवधारणा को सामाजिक प्रक्रिया के रूप में व्याख्या की है । जॉन डिवी इस विचार को विद्यालय के बालकों के लिए ही प्रयोग नहीं करते हैं परन्तु समाज में व विद्यालय में भी लागू करते हैं विद्यालय को सामाजिक

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन ।

परिवर्तन को अंगीकार करना चाहिये । जॉन डिवी का कथन है कि जो समाज अस्तित्व में ही नहीं है उसके लिए बच्चों को शिक्षित करना वास्तव में व्यर्थ है । जॉन डिवी ने अनुशासन में सामाजिक पक्ष को महत्व दिया है । उनका कथन है कि "अनुशासन पूर्ण रूप से सामाजिक होना चाहिये" उनके कहने का तात्पर्य यह है कि अनुशासन को सहकारी एवं सहयोगी क्रियाओं को आधार मानकर निश्चित किया जाना चाहिये । उन्होंने कहा है :-

> "कार्य सम्पादित करने के कुछ परिणाम होते हैं, सामाजिक एवं सहयोगी रीति से कार्य करने से अपने ढंग का अनुशासन उत्पन्न होता है ।"

इस कथन से स्पष्ट है कि अपने ढंग से कार्य करने से स्वाभाविक अनुशासन उत्पन्न होता है । इस स्वाभाविक अनुशासन से बालक के व्यक्तित्व व उनके नैतिक गुणों के विकास में सहयोग प्राप्त होता है ।

जॉन डिवी अनुशासन को "आन्तरिक विकास" मानते हैं । उनका विचार है जब बालक में बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक, चारित्रिक आदि योग्यतायें विकसित होती है तब वह अपनी "आत्मानुभूति" के आधार पर मूल्यों व अर्थ का परीक्षण करता है । यही परीक्षण मूल्यांकन बालक में "आत्म प्रेरणा" उत्पन्न करता है जिसका परिणाम स्वानुशासन की भावना की उत्पति है । यह तभी सम्भव है जब विद्यालयीय परिवेश में पूर्ण

स्वतंत्रता का साम्राज्य हो ।

जॉन डिवी अनुशासन से सामाजीकृत व्यक्ति अर्थात "सोसलाइज्ड इन्डीविजुअल" का सृजन करना चाहते हैं । जब विद्यालय की व्यवस्था उचित होगी तभी समाजीकृत व्यक्ति का निर्माण होगा, परन्तु जॉन डिवी व्यवस्था को मात्र एक साधन मानते हैं क्योंकि व्यवस्था अनुशासन स्थापित करने में एक साधन रूपी कारक है ।

जॉन डिवी स्वीकारात्मक अनुशासन के पक्ष में हैं । वे बलात् लादे गये अनुशासन के विरुद्ध है । अनुशासन रूचि पर आधारित है । बालक जब रूचि के साथ विद्यालयीय परिवेश में कार्य करता है तभी सच्चा अनुशासन होता है । हम जानते हैं कि रूचि एक प्रकार से "आत्मानुभूति है" और यही आत्मानुभूति अनुशासन का आधार है । जॉन डिवी के अनुसार :-

> "यद्यपि एक प्रजातांत्रिक समाज बाहरी अधिकार के सिद्धान्त को मान्यता नहीं देता है इसलिए उसे रूचि और स्वेच्छिक प्रवृति को स्थान देना ही पड़ेगा ।"

इस कथन से यह स्पष्ट है कि जॉन डिवी रूचि के माध्यम से अनुशासन स्थापित करना चाहते है । रूचि और आत्मानुभूति में जॉन डिवी अन्तर नहीं मानते हैं, क्योंकि क्रिया का सम्पादन रूचि पर निर्भर है, उसी प्रकार आत्मानुभूति क्रिया के द्वारा ही प्राप्त होती है, ऐसा विचार

जाॅन डिवी का है । जाॅन डिवी के अनुशासन व स्वतंत्रता सम्बन्धी विचारधारा के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनके ऊपर प्रजातंत्रात्मक प्रविधियों एवं सिद्धान्तो का स्पष्ट प्रभाव था ।

अब हम जाॅन डिवी के विचारों की रूसो पेस्टालजी तथा फ्रोबेल के विचारों से तुलना करेगें और देखेगे कि जाॅन डिवी के तथा इनके विचारों में क्या समानता व असमानता है ।

रूसो,पेस्टालजी और फ्रोबेल से जाॅन डिवी की तुलना :-

जाॅन डिवी प्लेटो के वाद विवाद की प्रशंसा करते है,और रूसो पेस्टालजी फ्रोवेल आदि शिक्षा शास्त्रियों की कृतियों से पूर्व परिचित थे । शिक्षा के विभिन्न पहलुओं के प्रति जाॅन डिवी के विचारों की इन शिक्षा शास्त्रियों के विचारों से सहमति है । परन्तु कुछ यथार्थ अन्तर भी दृष्टिगत होता है जाॅन डिवी के शिक्षा सिद्धान्त का उचित मूल्याकंन करने में हमें इस तुलना से पर्याप्त सहायता मिलेगी ।

जाॅन डिवी तथा रूसो :-

रूसो एक महान विचारक एवं चिन्तक थे । इन्होंने अपने विचारों से भविष्य की शिक्षा को प्रभावित किया था । रूसो के राजनैतिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण मौलिक रूप से अच्छाई के विचार, अन्याय से घृणा तथा मानव की प्राकृतिक इच्छाओं की शक्ति के विश्वास पर आधारित है । इन्होंने

कृत्रिम शिक्षा पद्धति का विरोध किया था और प्रकृति रूप में मानव को नेक पशु के रूप में कल्पना की है । रूसो की मान्यता है कि मानव अथवा बालक को पतित बनाने का उत्तरदायित्व समाज का है । इसलिये रूसो के अनुसार समाज समस्त बुराईयों की जड़ है । "एमिल" नामक कृति में रूसो ने एक नये समाज के निर्माण के सम्बन्ध में अपने विचारों को प्रकट किया है इन्होंने शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान, बालक को शिक्षा के केन्द्र, के रूप में मानकर प्रदान किया है । बालक की प्रकृति का अध्ययन ही रूसो के शिक्षा सिद्धान्त का मुख्य विषय है । बालक विकास के विभिन्न स्तरों का बड़ा मनावैज्ञानिक वर्णन प्रस्तुत करते हुये रूसो ने शिक्षा के अन्तिम उद्देश्य को बालक के सामाजिक पर्या- वरण से अनुकूलन के रूप में माना है । यह अनुकूलन मानव के गुण एवं उसकी स्वाभाविक इच्छा पर निर्भर करता है । रूसो ने दो प्रकार की इच्छा की कल्पना की है । एक राज्य व मानव के स्वभाव के अनुसार समाज को व्यवस्थित करने के लिये और दूसरा वर्तमान सभ्यता के संदर्भ में । रूसो के अनुसार शिक्षा के दो पहलू है । एक सामान्य पहलू तथा दूसरा विशेष पहलू ।

मानव प्रकृति के सम्बन्ध में रूसों के विचारों से जॉन डिवी सहमत नहीं है क्योंकि जॉन डिवी ने सदैव जीवन की वास्तविक दशाओं के अध्ययन पर जोर दिया है । जीवन की ये वास्तविक दशाओं की उत्पति मानव संघर्ष से होती है । जॉन डिवी न्याय और समानता के सिद्धान्त पर आधारित

जनतांत्रिक समाज और न्याय की रूसो की विचारधारा से सहमत है । जॉन डिवी रूसो के शिक्षा सिद्धान्त की बहुत प्रशंसा करते थे क्योंकि एक महान शिक्षाशास्त्री की भाँति रूसो ने शिक्षा को जीवन के निकट लाने का प्रयत्न किया और अपनी शिक्षा का केन्द्र बालक को बनाया था । जॉन डिवी प्रत्येक बालक की व्यक्तिकता का बड़ा आदर करते हैं और पुस्तकीय ज्ञान को रूसो की भाँति स्वीकार नहीं करते है जिसका जीवन की समस्याओं से कोई सम्बन्ध नही होता है । जॉन डिवी बालक के विकास के सम्बन्ध में रूसो की विचारधारा से सहमत नहीं हैं और रूसो के पुनरावृति के सिद्धान्त के विचार को भी महत्व नहीं देते हैं । स्त्री शिक्षा के प्रति रूसो के विचारों से जॉन डिवी मेल नहीं रखते हैं ।

जॉन डिवी एवं पेस्टालजी :-

पेस्टालजी रूसो के अनुयायी थे । इन्होंने शिक्षा का मनोवैज्ञानीकरण किया था । इनकी धारणा थी कि शिक्षक को पिता की भाँति बालकों के प्रति प्यार होना चाहिये । पुत्र प्यार के अनुभव में व शिक्षा की गहरी जड़ की खोज करते है । बनावटी सभ्यता के पेस्टालजी विरोधीहै । उनकी अवधारणा उदार, न्याय प्रिय और जनतांत्रिक समाज के रचना में व्यस्त है । समाज और मानव की प्रकृति में यथार्थ वाद और मनोवैज्ञानिक अर्न्तदृष्टि को शामिल करने में पेस्टालजी ने महान योगदान दिया है । पेस्टालजी बालक की समस्त

क्षमताओं और शक्तियों को स्वाभाविक,प्रगतिशील एवं समन्न रूप विकास के रूप में शिक्षा को माना है ।

पेस्टलॉजी ने शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य व्यक्ति को इस प्रकार का जीवन प्रदान करना माना है जो जीवन को प्रसन्न व अधिक गुणकारी बनाता है । बालकको मनो शारीरिक प्राणी मानते हुये शारीरिक विकास के केन्द्रिय विचार के आधार पर सामान्य शिक्षा सिद्धान्त का निर्माण किया है । पाठ्यक्रम के गणितीय और यथार्थवादी पहलू पर विशेष बल दिया है, और विषयो के निर्धारण में विज्ञान और प्रकृति के पदार्थों को मुख्य स्थान दिया है । पेस्टालजी के विचार विभिन्न स्रोत से अमेरिका पहुँचे थे ।

पेस्टालजी की भाँति जॉन डिवी भी शिक्षा के मनोवैज्ञानिकरण पर बल देते हैं । किन्तु पेस्टालजी से जॉन डिवी के विचारों में भिन्नता है, क्योंकि जॉन डिवी उद्विकासवादी सिद्धान्त से प्रभावित थे । इसलिए उन्होंने सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारकों में अनुरूपता की खोज की थी । जॉन डिवी पेस्टालजी की आध्यात्मिक आस्था में विश्वास नहीं करते हैं और न तो किसी अलौकिक आदेश पर विचार करने के लिए ही तैयार होते हैं । जॉन डिवी ने पेस्टालजी के शैक्षिक सिद्धान्त में वैज्ञानिक आधार पर अनेक त्रुटियों को देखा था । विभिन्न मानसिक शक्तियों के समनरूप विकास के विचार को जो शक्ति मनोविज्ञान के सिद्धान्त पर आधारित है उससे जॉन डिवी सहमत

नही हैं । पेस्टालजी की भाँति जाॅन डिवी भी स्वतंत्रता, समानता और प्रेम के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं किन्तु पूर्ण नैतिक रूप में नही । बल्कि मूल्यों के रूप में जो सामाजिक सुधार का प्रभावशाली यंत्र अथवा साधान है । पेस्टालजी की भाँति जाॅन डिवी ने भी विद्यालय व समाज के मध्य व्याप्त खाई को पाटने का कार्य किया है और बालको की शिक्षा के लिये विद्यालय, गृह तथा समाज के पारस्परिक सम्बन्धों को स्थापित करने का प्रयास किया है ।

जाॅन डिवी और फ्रोबेल :-

फ्रोबेल एक रहस्यवादी आदर्शवादी दार्शनिक थे जिन्होने जर्मन के आदर्शवाद या आध्यात्मवाद को शिक्षा के राज्य में प्रवेश कराया था । उनकी दार्शनिक अवधारणा ईश्वरीय एकता के आन्तरिक नियम के सिद्धान्त पर आधारित थी । जिसका निवास प्रत्येक वस्तु में है जो प्रत्येक वस्तु का आधार है ।

इन्होंने आत्म क्रियाशीलन द्वारा आत्मानुभूति के मौलिक सिद्धान्त की प्राप्ति को शिक्षा का मुख्य उद्देश्य माना था । शिक्षा के उद्देश्यों को इस लक्ष्य से अनुकूलता प्रदान की थी । उनका यह विचार था कि शिक्षा का कार्य व्यक्ति को आत्मानुभूति की ओर प्रेरित करना ही है । यही मुख्य कारण था कि फ्रोबेल ने एकत्व के ज्ञान व "प्रकृति की एकता के विचार" पर शारीरिक विकास के नियमों को

आधारित किया था ।

फ्रोबेल ने बाल-प्रकृति की क्रियाशीलनों को उदघाटित करने के सम्बन्ध में पाठ्यक्रम की खोज की थी तथा उसकी सार्थकता प्रकट की थी । इसलिए इन्होंने क्रियाशीलनों तथा आत्म क्रिया शीलनों को उदघाटित करने के लिए शैक्षिक मूल्यों की महत्ता प्रतिपादित की थी । बालक का विकास बालक के अन्दर निहित क्षमताओं के विकास में ही निहित है । फ्रोबेल ने बालक की शिक्षा में खेल को महत्व दिया है । बालक को शिक्षित करने तथा विभिन्न वस्तुओं के आन्तरिक महत्व की व्याख्या करने के लिए उन्होने एक अनोखे प्रतीक का विकास किया था । जॉन डिवी फ्रोबेल के विकास की अवधारणा को समस्त शिक्षा का मील का पत्थर माना है । किन्तु डिवी के विकास की आवधारणा फ्रोबेल के विचार से भिन्न है ।

जॉन डिवी ने फ्रोबेल केरहस्यवाद और विचित्र विधि को जिसे उन्होंने अपने प्रतीक के सिद्धान्त में निहित किया है अस्वीकार कर दिया है । फ्रोबेल के अन्तिम उद्देश्य की अवधारणा से जॉन डिवी सहमत नहीं है क्योंकि वह वास्तविक अनुभव से बहुत दूर है । जॉन डिवी के लिए शिक्षा एक सतत व निरन्तर प्रक्रिया है जिसका लक्ष्य सुदूरवर्ती भविष्य में नहीं है ।

फ्रोबेल की भाँति जॉन डिवी भी शिक्षा में खेल को महत्व देते हैं किन्तु उनकी चेतावनी है कि ऐसा करते समय विभिन्न सामाजिक दशाओं को भी ध्यान में रखना चाहिये ।

जॉन डिवी का कथन है कि प्रतीकों के प्रति फ्रोबेल का प्रेम राजनैतिक व सामाजिक दशाओं के कारण था जैसा जर्मन में तात्कालीन परिस्थितियों में पाया जाता था । परन्तु जॉन डिवी तथा फ्रोबेल दोनों अनेक बिन्दुओं पर समान विचार रखते हैं ।

दोनों ने क्रियात्मक क्रियाशीलन पर बल दिया है । दोनों ने विद्यालय को जीवन्त समुदाय माना है और करके सीखने पर बल दिया है । जॉन डिवी का मौलिक योगदान व विश्व विचार में महत्वपूर्ण स्थान है । उन्हें अमेरिका का प्रमुख दार्शनिक माना गया है । इनके विचारों ने अमेरिकी समाज के विश्वास व व्यवहार को सर्वाधिक प्रभावित किया था । जे. रैटनर ने लिखा है कि अमेरिका के दार्शनिकों में केवल जॉनडिवी ही ऐसे दार्शनिक हैं जिनकी ख्याति अमेरिकी सीमा को पार कर बाहय देशों में विस्तार से फैल चुकी है ।

जॉन डिवी ने मुख्य रूप से दर्शन, ज्ञान, शिक्षा, चिन्तन, तर्क, मूल्य, नैतिकता, सौन्दर्य शास्त्र तथा लोक तंत्रात्मक सामाजिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

इस प्रकार हमनें देखा है कि जॉन डिवी ने हमें सहयोगी जीवन की आदतों को विकसित करने की प्रेरणा दी है . और शिक्षा को विचार संप्रेषण एवं ज्ञानात्मक व प्रति- बिम्बित चिन्तन की आदत के विकास का प्रमुख साधन माना है ।

अध्याय-7

महात्मा गांधी के शिक्षा-सिद्धान्त का क्रमिक विकास

महात्मा गांधी का शिक्षा-सिद्धान्त देश की मौलिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लक्ष्य को लेकर आविर्भूत हुआ था। यह दक्षिणी अफ्रीका तथा भारत में किये गये प्रयोगों की उपज है। इन दो स्थानों पर किये गये प्रयोगों से ही महात्मा गांधी के शिक्षा सिद्धान्त की उपज हुई थी। महात्मा गांधी का दर्शन पूर्व की अपेक्षा उत्तर काल का है। इनका दर्शन अन्य दार्शनिकों के विरुद्ध व्यक्ति निष्ठ की अपेक्षा वस्तु निष्ठ है। विचारात्मक की अपेक्षा प्रयोगात्मक है। इसका दृष्टिकोण व लक्ष्य वैज्ञानिक है। इनके शिक्षा दर्शन के प्रदत्त वैज्ञानिक तथ्य है जिसे व्यवहार में व प्रशिक्षण में लाया जा सकता है, महात्मा गांधी ने कुछ निश्चित तथ्यों का निरीक्षण, वर्गीकरण व परीक्षण किया था, इसके पश्चात निर्णय कर एक निष्कर्ष पर पहुँचे थे जो व्यक्तिगत भावना पर आधारित न था। यही इनके शिक्षा-सिद्धान्त की उत्पत्ति का रहस्य है। वे प्रसिद्ध शैक्षिक सिद्धान्त का अनुशरण करते हुये प्रतीत होते हैं जिसे जॉन एडम्स की शिक्षाओं में देखा जा सकता है। जिसका कथन है :-

> "यद्यपि सिद्धान्त प्रयोग से भिन्न समझा जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रयोग सिद्धान्त से अलग सुरक्षित रूप में नहीं चलाया जा सकता है।"[1]

1- इव्येल्युशन ऑव एजूकेशनल थ्योरी, पृष्ठ-3 ।

जहाँ कहीं भी प्रयोग होगा वहाँ सिद्धान्त निहित होता है । जब इसका प्रक्रिया में प्रतिबिम्बन होता है तब यह स्वयं स्पष्ट हो जाता है ।

शैक्षिक विकास के समस्त स्तर पर सिद्धान्त और प्रयोग दोनों उपस्थिति रहते हैं । प्रयोग सिद्धान्त में सुधार करता है और सिद्धान्त प्रयोग को आगे बढ़ाता है । इस प्रकार सिद्धान्त अनुभव का आलोचनात्मक परीक्षणं है जो प्रयोग से ही उपलब्ध होता है और सिद्धान्त अपनी खोज को प्रयोग के परीक्षण के लिए प्रस्तुत कर देता है । जॉन एडम्स ने ठीक ही कहा है :-

> "प्रयोग विचारात्मक प्रक्रिया है और सिद्धान्त प्रगतिशील प्रक्रिया है ।"[1]

महात्मा गांधी की शिक्षा सिद्धान्त और प्रयोग के उपर्युक्त पद के विकासात्मक प्रक्रिया का अनुसरण करती है । परम्परागत पद्धति से बच्चों को शिक्षा देने का वे विरोध करते हैं इसीलिए उन्होंने अपने बच्चों को प्रारम्भ में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था के अनुसार शिक्षा न देकर अपने "गृह" फोनिक्स बस्ती" तथा दक्षिणी अफ्रीका के "टालस्टॉय फार्म" में पढ़ाने का प्रयत्न किया था । इस प्रकार के प्रयास से प्राप्त अनुभव से ही उनका शिक्षा सिद्धान्त आविर्भूत हुआ था । दक्षिणी अफ्रीका में

1- जॉन एडमस :द इवोल्यूशन ऑव एजूकेशनल थ्योरी",पृष्ठ-6

किये गये प्रयोग व शैक्षिक विकास के अनुभव को भारत लौटकर उसी प्रक्रिया को इन्होंने पुनः दोहराया था । इस प्रकार उनका शिक्षा सिद्धान्त व प्रयोग दोनों साथ-साथ विकसित हुआ था । वे अपने शिक्षा सिद्धान्त पर तब तक प्रयोग व प्रयत्न करते रहे जब तक वे उसे पूर्ण शिक्षा दर्शन के रूप में सन् 1937 में प्रकट करने के योग्य न हो सके । महात्मा गांधी ने "सत्य के मेरे प्रयोग" को अपने जीवन की प्रयोगशाला माना है । इससे प्रतीत होता है कि उन्हें प्रयोगों से सर्वाधिक प्रेम था ।

अब हम महात्मा गांधी जी के शिक्षा सिद्धान्त की उत्पत्ति व विकास के सम्बन्ध में अध्ययन करेगें । इनके शिक्षा दर्शन ने सम्पूर्ण विश्व की शिक्षा में प्रयोगों की क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी, यहाँ तक कि इनके शिक्षा में प्रयोग की प्रशंसा पेशेवर शिक्षा शास्त्रियों ने भी की थी । महात्मा-गांधी ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उनके जीवन को तीन महान आधुनिक विद्वानों ने विशेष रूप से प्रभावित किया था । इन्होंने अपने जीवन की विशिष्टताओं से महात्मा गांधी को अपनी ओर आकर्षित किया था । सर्व श्री रायचन्द्र भाई ने साथ निवास कर, टालस्टॉय ने अपनी पुस्तक "द किंगडम ऑव गॉड इज विदिन यू" से और रस्किन ने अपनी पुस्तक "अन्टू दिस लास्ट" से महात्मा गांधी को सर्वाधिक प्रभावित किया था । इन लोगों ने इनके जीवन

दर्शन तथा शिक्षा सिद्धान्त पर निर्णायक प्रभाव डाला था। इनके प्रभावका यह असर हुआ कि महात्मा गांधी प्रचलित शिक्षा पद्धति के दोषों को देखने व समझने में समर्थ हुये, जब गांधी जी प्राथमिक विद्यालय में अध्ययन कर रहे थे, तभी :-

> "वहाँ कक्षा चार से ही अनेक विषयों की शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से दी जाती थी मैं कुछ समझ ही नहीं सकता था।"[1]

प्रचलित शिक्षा के प्रति उनके मन में हाईस्कूल से ही असंतोष के बीज वापित हो गये थे और लन्दन निवास के समय उनमें अंकुर फूटे थें और उसकी जड़ उनके मस्तिष्क में गहराई से जम गई थी।

महात्मा गांधी ने कानूनी सिद्धान्तों को बहुत चाव से पढ़ा था परन्तु पेशे में इसे कैसे लागू किया जाय यह न जान सके, उन्हें वकालत की दुनियाँ का रंचमात्र ज्ञान न था क्योंकि एक विद्यार्थी की भाँति वे जो कुछ अध्ययन किये थे वह मात्र सैद्धान्तिक ज्ञान था जो व्यावहारिक जीवन से असम्बन्धित था। इस प्रकार की मानसिक अवस्था में आलोड़ित विलोडित होने के कारण उन्होंने सांसारिक ज्ञान को तथा उसके व्यावहारिक प्रशिक्षण को शिक्षा हेतु आवश्यक एवं महत्वपूर्ण समझा था। जब सन् 1891 में वे विदेश से

1- महात्मा गांधी : "आत्म कथा" पृष्ठ-29 ।

भारत भूमि के बम्बई बन्दरगाह पर उतरे तो इस प्रकार के विचार उनके मानसिक दर्पण पर प्रतिबिम्बित हो रहे थे ।

इसी काल में महात्मा गांधी जी का परिचय डॉ0 पी0जे0 मेहता तथा गुजराती के कवि व दार्शनिक विद्वान व चरित्रवान व्यक्ति रामचन्द्र भाई से हुआ था । रामचन्द्र भाई एक सच्चे "सत्यान्वेषक" थे । इसके पश्चात महात्मा गांधी अनेक विश्वासी धर्माचार्यों एवं धर्मावलम्बियों से मिले थे परन्तु वे उन्हें अधिक प्रभावित न कर सके थे । जिसका वर्णन महात्मा गांधी ने स्वयं किया है :-

"जितना रामचन्द्र भाई ने मुझे प्रभावित किया था उतना किसी अन्य ने नहीं किया था । मुझे यह पूर्ण विश्वास था कि वे मुझे गलत मार्ग पर नहीं ले जायेंगें अपितु उनके आन्तरिक भाव के प्रति मुझे कृतज्ञ होना पड़ा था । वे मेरे आध्यात्मिक आन्दोलन के शरण स्थल थे ।"[1]

रामचन्द्र भाई के प्रति इतनी श्रद्धा व प्रतिष्ठा धारण करने के बावजूद महात्मा गांधी उन्हें अपना गुरू नहीं मानते थे । वे सत्य और अहिंसा के पुजारी थे, इसीलिये महात्मा गांधी के सत्य और अहिंसा के दर्शन को निर्मित करने में रामचन्द्र भाई ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी, और इसी सत्य व अहिंसा ने महात्मा गांधी के जीवन तथा

1- महात्मा गांधी : आत्म कथा " पृष्ठ-113 ।

उत्तर काल में उनकी शिक्षा सम्बन्धी विचारधारा को बहुत प्रभावित किया था । इस प्रकार यह कहना अनुचित न होगा कि इन दो सिद्धान्तों ने उनके अहिंसक दर्शन और शिक्षा सिद्धान्त को सर्वाधिक प्रभावित किया है क्योंकि इनका शिक्षा सिद्धान्त -

"अहिंसा से ही उत्पन्न हुआ है ।" [1]

दक्षिणी भारत के प्रधानाचार्य डॉ० जॉन डी०बोअर ने महात्मा गांधी की शिक्षा योजना में अहिंसा के कम स्थान दिये जाने के कारण गांधी जी से प्रश्न किया था, जिसके उत्तर में महात्मा गांधी ने कहा था :-

"आपको जिस वजह से जितनी पंसद आई वह बिलकुल ठीक है, किन्तु सारा पाठ्यक्रम अहिंसा पर केन्द्रित नहीं किया जा सकता, यही जानना पर्याप्त है कि यह एक अहिंसक दिमाग से निकली है ।" [2]

टालस्टॉय और उनकी शिक्षाओं ने युवक गांधी जी के ऊपर जो प्रभाव डाला था उसका मूल्यांकन करना कठिन है । इस रसियन संत के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुये महात्मा गांधी ने कहा है कि :-

---

1- एजूकेशनल रीकन्स्ट्रक्शन पृष्ठ-65 ।

2- प्राइमरी एजूकेशन कमैटी, दिसम्वर 2, 1937 ।

"टालस्टाय की "बैकुण्ठ तुम्हारे हृदय में है"
।द किंगडम आॅव गाड इज विदिन यू। नामक
पुस्तक ने मुझे मोह लिया । उसका मुझ पर
बहुत गहरा प्रभाव पड़ा । इस पुस्तक की स्वतंत्र
विचार शैली,उसकी प्रौढ़ नीति और उसके सत्य
के समक्ष मि0 कोट्स की दी हुई समस्त पुस्तकें
शुष्क लगी ।"[1]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि महात्मा गांधी जी द्वारा अध्ययन की गई समस्त अन्य पुस्तकों का प्रभाव टालस्टॉय के स्वतंत्र चिन्तन, गम्भीर नैतिकता और सत्यता से आपूर्यमाण उनकी पुस्तक के समक्ष धुंधली प्रतीत होती हैं । इस पुस्तक के अतिरिक्त महात्मा गांधी ने टॉलस्टाय की "द गास्पिलस् इन ब्रीफ", "व्हाट देन शैल वी डू" और अन्य पुस्तके पढ़ी थी जिसने :-

"मेरे ऊपर बहुत अधिक प्रभाव डाला था ।
विश्व प्रेम मनुष्य को कहाँ तक ले जा सकता
है इसे मैं अधिकाधिक समझने लगा ।"[2]

टालस्टॉय ने महात्मा गांधी को निम्नलिखित पत्र लिखा था जिससे यह सिद्ध होता है कि महात्मा गांधी अपने सामान्य दर्शन व शिक्षा सिद्धान्त के निर्माण हेतु टालस्टॉय के कितने ऋणी थे ।

1- महात्मा गांधी : " आत्म कथा", पृष्ठ- 172 ।

2- - तदैव - पृष्ठ- 198 ।

"जब से मैं जीवित हूँ और अब मैं विशेषकर मृत्यु की सन्निकटता को स्पष्ट रूप से अनुभव कर रहा हूँ ऐसी स्थिति में जो मैं अपने अन्तआत्मा में अनुभव कर रहा हूँ उसे अन्य को बताना चाहता हूँ। जो मेरे मनानुकूल विशेष महत्व का है वह है निष्क्रिय आग्रह (पैसिव रेसिस्टेन्स), जो वास्तव में असत्य कथन से अदूषित प्रेम की शिक्षा की अपेक्षा कुछ नहीं है। वह प्रेम ---- मानव जीवन का सर्वोच्च नियम है जिसे प्रत्येक मानव अपनी अन्त-आत्मा में अनुभव करता है और जानता है। (जिसे हम स्पष्ट रूप में बच्चों में देखते हैं) वह इसकी अनुभूति तब तक करता रहता है जब तक वह संसार की असत्य शिक्षाओं में उलझ नहीं जाता है।"

यदि हम यह कहें कि महात्मा गांधी ने अहिंसा का पाठ रायचन्द्र भाई से सीखा था और उनके प्रेम के सिद्धांत की जड़ टालस्टॉय की शिक्षाओं में निहित थी तो कोई अत्युक्ति न होगी।

महात्मा टालस्टाय के निष्क्रिय आग्रह के दर्शन की विशेषता निषेधात्मक नहीं है बल्कि यह तो विधेयात्मक रूप में प्रेम का प्रयोग है। महात्मा गांधी जी के अनुसार अहिंसा वही है जो प्रेम है। इन्होंने इन दोनों संतो से सर्वोत्तम वस्तुओं को ग्रहण किया था और इसकी पुष्टि करते हुये कहा है :-

> "अपने विधेयात्मक रूप में अहिंसा का तात्पर्य विस्तृत प्रेम व महान पवित्रता है । यदि मैं अहिंसा का अनुयायी हूँ तो मुझे अपने शत्रु से भी प्रेम करना चाहिये --- यह सक्रिय अहिंसा अपने में सत्य व निर्भीकता को शामिल किये हुये है ।"[1]

महात्मा गांधी विश्वास करते हैं कि :-

> "जब अहिंसा को जीवन का नियम बना लिया जाता है तब यह सम्पूर्ण जीवन को आच्छादित कर लेती है और विभाजित कार्यों में लागू नहीं होती है ।"[2]

अतः प्रेम के सिद्धान्त का प्रयोग करना महात्मा गांधी के लिए परम स्वाभाविक था और जो अहिंसा के विधेयात्मक पहलू की अपेक्षा कुछ नहीं था । यहाँ तक कि इन्होंने इसे अपने शिक्षा सिद्धान्त में भी लागू किया था और उसे प्रतिष्ठा का स्थान प्रदान किया था ।

शिक्षा किसी हस्तकला अथवा उद्योग के माध्यम से दी जाय, महात्मा गांधी के इस सिद्धान्त के बीज को टालस्टाय की शिक्षाओं में देखा जा सकता है । 22 अक्टूबर सन् 1937 में वर्धा सम्मेलन में अपने उद्घाटन भाषण में महात्मा गांधी जी ने इसे स्वीकार करते हुये कहा है :-

---

1- स्पीचेज एण्ड राइटिंग ऑव महात्मा गांधी, पब्लिशड बाई नतेशन मद्रास, पृष्ठ-346 ।

2- हरिजन, 5-9-36 ।

"स्वर्गीय मधुसूदन दास एक वकील थे,परन्तु वे इस बात से सहमत थे कि हाथ और पैरों को काम में न लाने से हमारे दिमाग भी कुन्द हो जाते हैं इसके अभाव में यदि मस्तिष्क कार्य कर ता है तो वह शैतान का घर हो जाता है । टॉलस्टॉय ने इसी शिक्षा को अपनी अनेक कहा-नियों से प्रदान की है ।"[1]

रामचन्द्रभाई व टालस्टॉय ने महात्मा गांधी के मस्तिष्क को प्रबल चिन्तन की प्रेरणा दी और इसके कारण ही उनके दर्शन के लिए आधार प्राप्त हुआ था । इन दोनों महानुभावों ने इनकी अनुभव व प्रयोग पर आधारित ज्ञान की पिपासा को शान्त किया और आलोचनात्मक शक्ति उत्पन्न कर दी थी । जिससे उनमें :-

"पढ़कर व सुनकर विचारों के मूल्यांकन करने व विचार करने की योग्यता का विकास हुआ था वे किसी बात को विश्वास से तथा स्वीकृत रूप से स्वीकार नहीं करते थे । इन दोनों के जीवन के शाश्वत मूल्यों के प्रति उनमें विश्वास करने की शक्ति का विकास हुआ था । इनके प्रभाव से महात्मा गांधी ने प्रेम के जीवन, सेवा के जीवन को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया था । उन्हें अंधकार से प्रकाश की ओर,स्वार्थता से सेवा की ओर, घृणा से प्रेम की ओर, अज्ञानता से ज्ञान की ओर और अन्त में उस सत्य जो ईश्वर है की ओर मार्ग दर्शन किया था ।"[2]

1- एजूकेशन रीकन्स्ट्रक्शन, पृष्ठ- 65 ।

2- यंग इण्डिया, 31-12-1931 ।

तीसरा व्यक्ति जिसने महात्मा गांधी के जीवन पर तथा उनके दर्शन पर अधिक प्रभाव डाला था वे थे "रस्किन" उनकी पुस्तक "अन्टू दिस लॉस्ट" ने उनके मस्तिष्क को इतना आकर्षित कर लिया था कि वे इससे अलग न हो सके। इस पुस्तक ने इनके जीवन में तुरन्त और प्रयोगात्मक परिवर्तन उत्पन्न कर दिया। महात्मा गांधी के विचारों को निरूपित करने में इस पुस्तक ने जो योगदान दिया था उसके सम्वन्ध में महात्मा गांधी जी कहते हैं :-

मेरा यह विश्वास है कि जो वस्तु मुझमें गहराई से भरी हुई थी उसका स्पष्ट प्रतिबिम्व मैनें रस्किन के इस ग्रन्थ रत्न में देखा और इस कारण उसने मेरे हृदय पर अपना साम्राज्य जमा लिया और उसमें प्रकट किये हुये विचारों पर मुझसे अमल कराया। हममें जो अच्छी भावनायें सुप्त हो उन्हें जगाने की शक्ति जिसमें हो, वह कवि है। ---- अन्टू दिस लास्ट" की शिक्षाओं को जो मैनें समझा वे इस प्रकार हैं :-

1- सबकी भलाई में अपनी भलाई सम्मिलित है।

2- वकील और नापित दोनों के काम की कीमत एक सी होनी चाहिये क्योंकि आजीविका का हक सबको बराबर है।

3- सादा मेहनत मशक्कत का, किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।

प्रथम वस्तु मैं जानता था । दूसरी की मैं झलक पा रहा था । तीसरी को मैंने कभी सोचा ही नहीं था । प्रथम में बाद की दोनों बाते समाई हुई हैं ।

"अन्टू दिस लॉस्ट ने दीपक की भाँति मुझे स्पष्ट दिखा दिया था । प्रातःकाल हुआ और मैं उस पर अमल करने के प्रयत्न में लग गया ।"[1]

यही वह बिन्दु है जहाँ से महात्मा गांधी का शिक्षा सिद्धान्त एक निश्चित रूप धारण करने के लिए अग्रसर होता है क्योंकि रायचन्द्र भाई तथा टॉलस्टॉय द्वारा डाले गये प्रभावों ने महात्मा गांधी को एक निश्चित दिशा में चिन्तन करने के लिए प्रेरित किया था । निरीक्षण व प्रयोग से प्राप्त अनुभव के प्रकाश में इन्होंने अपने दर्शन की नींव डाली और इसके प्रकाश में अपने शिक्षा दर्शन का श्रेष्ठ ढाँचा खड़ा किया ।

जिस दर्शन से महात्मा गांधी ने अपनी प्रारम्भिक प्रेरणाओं को ग्रहण किया था वह था रस्किन का दर्शन, जो स्वयं रूसों की शिक्षाओं से प्रभावित था । रूसो प्रकृति की श्रेष्ठता, इन्द्रिय प्रभाव व कार्य को शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान कर चुके थे, रूसों के अनुसार :-

---

1- महात्मा गांधी : आत्म कथा, पृष्ठ-365 ।

> "प्रत्येक युवक को अपने हाथ से अवश्य कुछ कार्य करना चाहिये जिससे वह "स्पर्श का क्या तात्पर्य है?" का ज्ञान प्राप्त कर सके।"

रूसो की इस विचार धारा ने महात्मा गांधी के विचार प्रक्रिया को अपने में कैद कर लिया था और वे यह धीरे-धीरे अनुभव करने लगे कि कार्य द्वारा ही शिक्षा को वास्तविक एवं प्रभावी बनाया जा सकता है। महात्मा - गांधी जी के शिक्षा सिद्धान्त पर "रस्किन" के प्रभाव की ओर संकेत करते हुये महादेव देसाई कहते हैं :-

> "मैं अभी हाल में रस्किन की पुस्तक "अन्टू दिस लास्ट" का अध्ययन कर रहा था। इसके प्रथम संस्करण की भूमिका, तथ्यों को स्पष्ट रूप से उद्घाटित करने वाली थी। इसमें गांधी जी की शिक्षा योजना के बीज ही नहीं थे, अपितु विद्यालयों को स्वावलम्बी बनाने की भावना भी निहित थी। वे ऐसे विद्यालय के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हैं जिसे प्रशिक्षण विद्यालय के रूप में होना चाहिये। जिसका सम्बन्ध निर्माण शालाओं तथा कार्यशालाओं से होना चाहिये। उनका सुझाव है कि बेरोजगार व्यक्ति, स्त्री, बालक, बालिकाओं को सन्निकट के प्रशिक्षण विद्यालयों में शीघ्र प्रवेश सुलभ कराना चाहिये और उन्हें ऐसे कार्यों में लगाया जाना चाहिये ताकि ट्रायल के आधार पर कार्यों को सम्पादित

करने की योग्यता प्राप्त कर सकें और प्रतिवर्ष निश्चित रूप से कुछ अर्थोत्पादन भी प्राप्त कर सकें ।"

इसी प्रकार की "फुट नोट" में उन्होंने आगे भी कहा है :-

"स्वावलम्बी विद्यालय की अपेक्षा परोक्ष रूप से ये कुछ और होगें । केवल अर्थोत्पादन हेतु कार्य (आधुनिक यूरोप के बाजार में विलासिता की कीमती वस्तुओं की तरह) दस गुना अपराध है । जबकि इन प्रशिक्षण विद्यालयों को विद्यार्थियों के श्रम से उत्पन्न धन पवित्र लाभ होगा और उसका तुरन्त मूल्याकंन करना अच्छा न होगा ।"[1]

महादेव देसाई मानते हैं कि जिस भाव में महात्मा गांधी जी "स्वावलम्बन" शब्द का प्रयोग करते हैं वह थोड़ा इससे भिन्न है । शिक्षा में स्वावलम्बन की महात्मा गांधी की अवधारणा वास्तव में अनोखी है । विशेषकर उस समय जब यह अन्तिम रूप से देश के समक्ष प्रस्तुत की गई, परन्तु इस सम्वन्ध में उनकी प्रारम्भिक स्तर पर की अवधारणाओं को "रस्किन" की विचार धारा से भिन्न नहीं समझा जा सकता । इस स्तर पर रस्किन की भाँति महात्मा गांधी जी की मान्यता थी कि शिक्षा के साथ-साथशारीरिक श्रम भी कराया जाय,ताकि शिक्षा अपना खर्च निकाल सके , और विद्यार्थी एक कमाऊ इकाई बन सके ।

1- द इयर बुक आॅव एजूकेशन (1940) पृष्ठ-442-43 ।

महात्मा गांधी एक कर्मशील व्यक्ति थे । जो आदर्श व सिद्धान्त व विचार उनके मन मस्तिष्क में विद्यमान थे, उन्हें प्रयोग की कसौटी पर परखा था । उन्होंने अपने सद्यः निर्मित शिक्षा सिद्धान्त को अपने घर पर ही प्रयोग करना शुरू किया था, क्योंकि उनकी मान्यता थी कि :-

"जो शिक्षा सुव्यवस्थित घर में बच्चे अनायास एवं स्वाभाविक रूप से पा जाते है वह छात्रालयों में नहीं पा सकते ।"[1]

महात्मा गांधी ने अपने बच्चों को साहित्यिक शिक्षा नहीं प्रदान की थी और पब्लिक स्कूल में अपने बच्चों को न भेजने का उन्हें कोई पश्चाताप भी नहीं हुआ था । वे मानते थे कि जो विद्यालय विद्यार्थियों में सादगी, सेवाभाव की भावना का जागरण नहीं कर सकता, उस विद्यालय में उन्हें पढ़ाना व्यर्थ है । इसीलिए उन्होंने अपने बच्चों को पब्लिक स्कूलों में नहीं पढ़ाया था । महात्मा गांधी ने अपनी जीवन की विधियों को बिलकुल बदल दिया था ।

"और रस्किन की शिक्षाओं के सादगी व सेवाभाव को कुछ सीमा तक डरबन के अपने घर तथा जोहांसवर्ग में पूर्णत: अपना लिया था ।"[2]

1- आत्म कथा, पृष्ठ 245 - 46 ।

2- - तदैव -पृष्ठ- 379 ।

तथा व्यक्तिगत रूप से समस्त शारीरिक श्रम को करने की इच्छा मे प्रगति हुई । अपने बच्चों को उसी दिशा में चलाने के लिए प्रयास करने लगे । यहाँ तक कि अपने मित्र हेनरी पोलक व बच्चों के सहयोग से हाथ की आटा चक्की को चलाने का उपक्रम करने लगे । -

> "हाथ का पिसा हुआ आटा काम में लाने से सादगी, आरोग्य तथा पैसे - तीनों की अधिक रक्षा होती थी । ---- आटा की पिसाई रूपी यह कसरत बच्चों के लिये बड़ी अच्छी साबित हुई, उनसे यह या और कोई काम मैंनें जबरदस्ती कभी नहीं कराया पर वे अपने आप ही खेल समझकर पैडल चलाने आ जाते । थकने पर छोड़ देने की उन्हें इजाजत थी ।"[1]

बालकों की शिक्षा के लिये गांधी जी का यह एक महत्वपूर्ण प्रयोग था । इस प्रकार के प्रयोग से महात्मा गांधी को "स्वेच्छिक अनुशासन" श्रम की महत्ता" एवं सहयोग सामान्य सफाई की शिक्षा के प्रथम पाठ की उपलब्धि हुई ।

इसका यह अर्थ नहीं निकालना चाहिये कि महात्मा गांधी जी अपने बच्चों के लिये साहित्यिक शिक्षा के प्रति उदासीन थे,परन्तु यह सत्य है कि यदि महात्मा गांधी जी को परिशुद्ध साहित्यिक शिक्षा सेवा और सहयोग के

1- महात्मा गांधी : "आत्म कथा", पृष्ठ-390 सस्ता - साहित्य मंडल,

आदर्शों में से चुनाव करना पड़े तो वे साहित्यिक शिक्षा को त्यागने में नहीं हिचकिचायेंगें ।

पारम्परिक शिक्षा पद्धति के अनुसार यह आदर्श शिक्षा नहीं मानी जाती है । परन्तु "मैं ‡महात्मा गांधी‡ मानता हूँ कि मैंनें उनके अक्षर ज्ञान का होना भी भले ही वह अज्ञान से हुआ हो- सदभाव से मानी हुई सेवा के अर्थ से किया है । यह कह सकता हूँ कि उनके चरित्र गठन के लिये जो कुछ करना उचित था वह करने में मैंनें त्रुटि नहीं की और मैं मानता हूँ कि हर माँ-बाप का यह फर्ज है कि वे इसे ठीक से अपने बालकों को प्रदान करें ।"[1]

भाषा की समस्या के प्रति गांधी जी का दृष्टि कोण इसी काल में निर्मित हुआ था । उनका विश्वास था कि :-

> "जो हिन्दुस्तानी माँ बाप अपने बच्चों से बचपन से ही अंग्रेजी बोलवाने लगते हैं वे उनका व देश का द्रोह करते हैं । मैंनें यह भी माना कि इससे बालक अपने देश की धार्मिक व सामाजिक विरासत से बंचित रहते हैं और उतने अंश में देश की और जगत की सेवा करने के कम योग्य बनाते हैं ।"[2]

1- आत्म कथा , पृष्ठ- 381

2- - तदैव -

यद्यपि उनके बच्चे साहित्यिक शिक्षा की बहुत हानि उठाये थे परन्तु :-

"मातृभाषा का सामान्य ज्ञान जो वे अनायास पा सके इससे उनका और देश का लाभ ही हुआ है और आज वे परदेशी जैसे नहीं हो गये हैं ।"[1]

यह 1904 का वर्ष था जब महात्मा गांधी ने अपने जीवन का यह एक महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित किया था । हमने यह देखा है कि महात्मा गांधी के मन व मस्तिष्क पर रस्किन की पुस्तक "अन्टू दिस लास्ट" ने गहरा प्रभाव डाला था । इसी काल में महात्मा गांधी और उनके मित्र मदनजीत और मनसुख लाल नागर ने दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों की सेवा करने के लिए "इण्डियन ओपिनियन" पत्रिका का शुभारम्भ किया था । जब तक यह महात्मा गांधी जी के नियन्त्रण में था तब तक इसका कार्य सुचारू रूप से चलता रहा । महात्मा गांधी इसे " मेरे जीवन का दर्पण है।"[2] मानते थे । इन्होंने पाठक और प्रकाशक के मध्य सदैव अच्छा सम्बन्ध बनाये रखा और यह शीघ्र ही प्रस्ताव रखा कि "इण्डियन ओपिनियन" को कृषि फार्म पर हस्तान्तरित कर दिया जाय । डरबन से 14 मील दूर और फोनिक्स स्टेशन से लगभग ढाई मील दूर

1- महात्मा गांधी : आत्म कथा" पृष्ठ-382 ।

2- - तदैव - पृष्ठ-384 ।

बीस एकड़ जमीन खरीद ली गई । इस प्रकार सन् 1904 में फोनिक्स बस्ती का शुभारम्भ हुआ था और असंख्य कठिनाईयों एवं अड़चनों के बावजूद इण्डियन ओपिनियन लगातार प्रकाशित होने लगा था । और इस बस्ती में रहने वालों से सादा जीवन और उच्च विचार के आदर्शों का अनुसरण करने की आशा की जाने लगी । आर०एम०पटेल ने इस सम्बन्ध में लिखा है :-

> "पवित्रता, स्वादेन्द्रिय का नियन्त्रण, स्वेच्छिक विपन्नता, शारीरिक श्रम, निर्भीकता, स्वयं की मदद और धैर्य का उनके द्वारा अभ्यास किया जाने लगा ।"[1]

> "फोनिक्स से टालस्टाय फार्म, टालस्टाय फार्म से साबरमती आश्रम, सत्याग्रह आश्रम से सेवा ग्राम, सेवाग्राम से गाँधी सेवा संघ और यहाँ से सर्वोदय समाज तक गाँधी जी की हत्या के पश्चात हम एक चक्रीय पुनरउत्पत्ति के रूप में गाँधी जी के आदर्शों के पौराणिक पक्षी फोनिक्स को देखते हैं ।"[2]

फोनिक्स में महात्मा गाँधी जी ने अपने शिक्षा

1- पटेल आर०एम० : गाँधी जीनी साधना, पृष्ठ-98 ।

2- प्रीफेस बाई काका कालेलकर टू सत्याग्रहाश्रमनों, इतिहास, पृष्ठ-10 ।

दर्शन को व्यवहारिक रूप प्रदान किया था । इस बस्ती के लगभग 30 विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान की जाती थी । यह शिक्षा महात्मा गांधी जी के आदर्शों के अनुसार प्रदान की जाती थी । :-

> "इन आदर्शों को महात्मा गांधी की 1908 की पुस्तक "हिन्द स्वराज" में देखा जा सकता है । इस पुस्तक की रचना तब की गई थी जब वे इंग्लेण्ड से दक्षिणी अफ्रीका वापस आ रहे थे ।"[1]

सन् 1908एमे "हिन्द स्वराज" में गांधी जी ने सर्व प्रथम अपने शैक्षिक विचार को लिखित रूप में प्रकट किया था । बाद में उनके विचार में कोई भौतिक परिवर्तन नहीं हुआ यद्यपि उनके दृष्टिकोणों को समयानुसार विकास के विभिन्न स्तरों से होकर गुजरना पड़ा था किन्तु उनका पूर्ण शिक्षा दर्शन सन् 1937 में ही प्रकट हुआ था । "हिन्दस्वराज" में इन्होंने इस बात को कायम रखा कि साक्षरता शिक्षा का उद्देश्य नहीं है । लार्ड मैकाले की शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य हमारी दासत्व के बन्धन को और मजबूत बनाने हेतु ही था । अब सम्भाषण के रूप में अंग्रेजी भाषा का महत्व नहीं है अत: प्रत्येक भारतीय को हिन्दी में कार्य करने का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है ।

1- पटेल आर0एम0: गांधी जीनीसाधना" पृष्ठ-109 ।

फौनिक्स बस्ती का मुख्य सम्बन्ध "इण्डियन ओपिनियन" के प्रकाशन से तथा इस बस्ती के मुख्य आदर्शों के प्रचार करने से ही था । इन आदर्शों को महात्मा गांधी ने "रस्किन" से ग्रहण किया था । सन् 1911 में महात्मा-गांधी ने अपने सक्रिय सहायक तथा जर्मन सहकर्मी "हरमन कोलेनबेग" के साथ महात्मा गांधी ने ट्रांसवाल में "टालस्टॉय फार्म" के नामसे एक आश्रम की स्थापना की । महात्मा गांधी तथा केलेनबैग दोनों रसियन संत "टालस्टॉय" के महान प्रसंशक थे । इस संस्था में हिन्दू, मुस्लिम, इसाई, और पारसी सभी निवास करते थे । प्रत्येक व्यक्ति अपना धर्म मानता था । तथा अन्य के धर्म का अनादर नहीं करता था और वे आत्म विकास प्राप्त करने का प्रयास किया करते थे ।

"टालस्टॉय फार्म" महात्मा गांधी के शिक्षा सिद्धान्त के प्रयोग हेतु एक आदर्श प्रयोगशाला सिद्ध हुई । जैसे ही आश्रम का विकास हुआ, महात्मा गांधी ने इस आश्रम में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था को कोई स्थान प्रदान नहीं किया था । उनका दृढ विश्वास था :-

> "आदर्श स्थिति में सच्ची शिक्षा तो माँ-बाप के हाथों के नीचे ही हो सकती है । उस स्थिति में बाहरी मदद कम से कम होनी चाहिये । मैंने सोचा कि टालस्टॉय आश्रम [illegible] एक कुटुम्ब और उसमें मैं पिता रूप में हूँ इसलिए मुझे यथा

शक्ति इन नवयुवकों के निर्माण की जिम्मेदारी उठानी चाहिये।"[1]

महात्मा गांधी ने चरित्र निर्माण व हृदय की संस्कृति को प्रथम स्थान दिया है। उनका विश्वास था कि नैतिक प्रशिक्षण सभी को समान रूप से दिया जाना चाहिये। बालक एवं बालिकाओं की शिक्षा के लिए चरित्र निर्माण ... उचित आधार प्रस्तुत करता है इसलिए चरित्र निर्माण पर वे विशेष बल प्रदान करते हैं। वे इस तथ्य पर बिलकुल शंकालु नहीं थे कि यदि बच्चों की नींव मजबूत है तो वे अन्य वस्तुओं का ज्ञान स्वयं प्राप्त कर लेगें। वे साहित्यिक प्रशिक्षण का बिलकुल तिरस्कार नहीं करते हैं जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है। ---

"मैनें इसके बावजूद भी साहित्यिक प्रशिक्षण की आवश्यकता की पूर्ण प्रशंसा की है, मैने मि० केलेन बेग तथा प्रागी देसाई के साथ कुछ कक्षायें प्रारम्भ की।"[2]

महात्मा गांधी ने शरीर निर्माण या शारीरिक व्यायाम को कम महत्व नहीं दिया है। अपने दैनिक कार्य में वे शारीरिक व्यायाम की कमी को पूरा कर लिया करते

1- महात्मा गांधी : आत्म कथा, सस्ता साहित्य मंडल, पृष्ठ- 421-22 ।

2- महात्मा गांधी : आत्म कथा" पृष्ठ-408 ।

थे, क्योंकि फार्म में कोई नौकर नहीं था । समस्त कार्य भोजन बनाने से लेकर टट्टी साफ करने तक के कार्यों को आश्रम वासियों को ही करने पड़ते थे । वे बागवानी, वृक्षों की देखभाल भी करते थे । बच्चों का कार्य गढ्ढे खोदना, लकड़ी काटना, बोझ उठाना था । बालकगण इस कार्य में आनन्द लेते थे, उन्हें अन्य खेल या व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं होती थी । यह शरीर श्रम शिक्षा के साथ-साथ चला करता था । कालान्तर में महात्मा गांधी ने शरीर-व्यवसाय को लागू कर दिया था ।

मि० केलेन बेग जूता बनाने का कार्य जानते थे । महात्मा गांधी ने यह कला मि० केलेन बेग से सीखी थी । इसके पश्चात इसे अन्य लोगों को महात्मा गांधी जी ने सिखाया । मि० केलेन बेग बढ़ई गीरी भी जानते थे । इस प्रकार इन महानुभावों ने टालस्टॉय फार्म पर उद्योग प्रशिक्षण देना प्रारम्भ कर दिया । इस कार्य हेतु इस फार्म पर आठ घण्टे का समय लगाया जाता था ।

> "टालस्टॉय फार्म पर अधिक से अधिक एक या दो घण्टे पुस्तकीय शिक्षा प्रदान की जाती थी । उद्योग के रूप में, खोदना, भोजना बनाना, सफाई करना, सैन्डिल बनाना, सामान्य बढ़ई गीरी करना, संदेश वाहक के कार्य प्रचलित थे । इस विद्यालय के बच्चों की आयु छः वर्ष से 16 वर्ष की होती थी ।"[1]

1- महात्मा गांधी : हरिजन, 18-9-37 ।

इस व्यावसायिक प्रशिक्षण का एक मुख्य उद्देश्य यह था :-

"जिन बालक बालिकाओं के प्रशिक्षण का मैं उत्तरदायी था उनका सर्वांगीण विकास मुझे ही करना था ।"[1]

यहाँ जो कुछ बच्चे सीखते थे वे उसे प्रसन्नता से सीखते थें, क्योंकि उनके साथ एक अध्यापक सहायता करने तथा साथ-साथ काम करने के लिये होता था । इस प्रकार महात्मा गांधी जी :-

"टालस्टॉय फार्म में शारीरिक प्रशिक्षण के अतिरिक्त व्यावसायिक प्रशिक्षण आकस्मिक रूप से प्रदान करते थे यद्यपि यह कार्य इस प्रकार किया जाता था जो मुझे पूर्णतः संतोष नहीं प्रदान करता था, फिर भी यह दावा किया जा सकता है कि यह कार्य कम या अधिक रूप से सफल ही रहा है ।"[2]

इस स्तर पर महात्मा गांधी जी को हस्तकला के चारों ओर शिक्षा को रखने के लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा था, उन्हें जो करना था वह था उद्योग को पूरक शिक्षा बनाना । वे साहित्यिक शिक्षा के लिएअधिक से अधिक

1- हरिजन, 18-9-37 ।

2- आत्म कथा, पृष्ठ-410 ।

तीन घण्टे देते थे । हिन्दी, तमिल, गुजराती और उर्दू सभी भाषायें पढ़ाई जाती थी । शिक्षण का माध्यम मातृभाषा था अंग्रेजी की शिक्षा भी दी जाती थी । गुजराती व हिन्दू बालको को संस्कृत भी पढ़ाया जाता था । प्रारम्भिक इतिहास भूगोल और अर्थ मेटिक सभी बालको को पढ़ाया जाता था । महात्मा गांधी ने पाठ्य पुस्तक की आवश्यकता कभी नहीं अनुभव की । वे अनुभव करते थे कि अध्यापक ही बच्चों के लिए वास्तविक पाठ्य पुस्तक है । पुस्तको से पढ़ी हुई बात को याद करने में बालको को कठिनाई अनुभव होती थी, परन्तु महात्मा गांधी जी ने जो मौखिक रूप से उन्हें सिखाया था उसे वे आसानी से दुहरा लेते व याद कर लेते थे ।

> "पढ़ना उनके लिये एक कठिन कार्य था, परन्तु सुनना आनन्द प्रद था । जब मैं (महात्मा गांधी) अपने विषय को रूचिकर बनाने में असफल हो जाता था तो मैं उन्हें बोर नहीं करता था । बातचीत मे मैं उनसे जो प्रश्न पूछता था उससे मैं उनकी समझ की सामर्थ्य की जाँच कर लेता था ।"[1]

महात्मा गांधी इस बात में विश्वास करते थे कि प्रत्येक बालक को उसके स्वयं के धर्म के तत्वों से तथा उनकी धर्म की पुस्तक में निहित ज्ञान की सामान्य जानकारी होनी चाहिये । टालस्टॉय फार्म के बालकों के शिक्षा के कार्य के

1- महात्मा गांधी : आत्म कथा, पृष्ठ-412 ।

उत्तरदायित्व को ग्रहण करने से बहुत पहले ही वे यह अनुभव कर चुके थे कि आत्मा का प्रशिक्षण स्वयं में एक वस्तु है । इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि :-

> "आत्मा का विकास करना चरित्र का निर्माण करना है और ईश्वरी ज्ञान के प्रति कार्य करने तथा आत्मा-अनुभूति के योग्य बनाना है ।"[1]

महात्मा गांधी जी के दृष्टिकोण से आत्मा की संस्कृति के प्रशिक्षण के बिना अन्य प्रशिक्षण का कोई महत्व नहीं है । यहाँ तक कि वह हानिकारक भी होता है ।

अब प्रश्न यह है कि आध्यात्मिक प्रशिक्षण किस प्रकार दिया जाय ? इस सम्बन्ध में विचार करने से हमें यह ज्ञात होता है कि महात्मा गांधी जी ने इस प्रशिक्षण हेतु एक व्यावहारिक रूपरेखा प्रस्तुत की और कहा है कि :-

> "ठीक उसी प्रकार जैसे शारीरिक प्रशिक्षण शारीरिक व्यायाम से, बौद्धिक प्रशिक्षण, बौद्धिक अभ्यास व व्यायाम से दिया जाता है उसी प्रकार आत्मा का प्रशिक्षण आत्मा की कसरत से सम्भव है और आत्मा का प्रशिक्षण अध्यापक के जीवन व चरित्र पर पूर्णतः आधारित है । अध्यापक को सदैव अपने पी"स और क्यू"स के प्रति सावधान रहना चाहिये चाहे वह बालकों के मध्य में रहे अथवा न रहे ।"[2]

1- महात्मा गांधी : आत्म कथा, पृष्ठ-413 ।

2- = तदैव = पृष्ठ-414 ।

तात्पर्य यह है कि अध्यापक को एक शाश्वत पाठ्य वस्तु के रूप में होना चाहिये । महात्मा गांधी जी शारीरिक दंड के विरोधी थे इसलिए बच्चों की शिक्षा में वे अहिंसा को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं । यहाँ तक कि बच्चों के द्वारा दुर्व्यवहार प्रकट करने पर भी वे शरीर दण्ड का विरोध करते हैं । इस प्रकार बालक बालिकाओं को आध्यात्मिक प्रशिक्षण प्रदान करते समय आत्मशक्ति को अधिक से अधिक समझने में सफल हो सके । टालस्टॉय फार्म में किये गये प्रयोगों से वे विश्वस्त हो गये थे कि :-

"यदि अच्छे लड़को को बुरे लड़कों के साथ पढ़ाया जाता है और उनके झुंड में उन्हें डाल दिया जाता है तो वे कुछ खो नहीं सकते बशर्ते यह प्रयोग सावधान माता-पिता अभिभावक तथा अध्यापक की रेखरेख में सम्पन्न किया जाय ।"[1]

महात्मा गांधी जी मानव प्रकृति के अच्छे जानकार थे इस सम्बन्ध में अपनी तीव्र अन्तर्दृष्टि का परिचय वे तब देते हैं जब कहते हैं कि :-

"यदि मैं उनका वास्तविक अध्यापक और अभिभावक होता तो मैं उनके हृदय का स्पर्श अवश्य कर लेता । मैं उनके सुख दुख का भागीदार होता ।

1- महात्मा गांधी : आत्म कथा, पृष्ठ-417 ।

जिन समस्याओं का वे सामना करते उनके समाधान में मैं उनकी आवश्यक सहायता करता । उनके जीवन की आशाओं की प्राप्ति के लिये उन्हें उचित मार्ग दर्शन प्रदान करता ।"[1]

यही वह स्थल है जहाँ हम शिक्षा में महात्मा गांधी जी के प्रेम के सिद्धान्त को देखते हैं जो उनके शिक्षा दर्शन के त्रिभुज की एक कोणीय रेखा है । फोनिक्स बस्ती के आश्रम वासियों के नैतिक पतन के समाचार ने महात्मा गांधी जी को महान आघात पहुँचाया । अत: उनके समक्ष यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि वे इन बाल अपराधियों से कैसा व्यवहार करें ? महात्मा गांधी जी जन्मजात अध्यापक एवं मनोवैज्ञानिक थे । वे यह जानते थे कि अबुद्धिमत्ता से इस समस्या से निपटने से एक तूफानी परिणाम को आंमत्रित करना होगा । उनका लक्ष्य था सुन्दर अनुकूल परिस्थितियों को अपनाने के लिए इन बाल अपराधियों को मार्ग दिखाना । वे उनकी शक्तियों को स्वस्थ शिक्षा की ओर प्रेरित करने और उनके हृदय को परिवर्तित करने का लक्ष्य बनाये हुये थे । निषेधात्मक दबाव डांट फ्टकार व नैतिक उपदेशों से दंडित करना नहीं चाहते थे । वे उन्हें प्यार, सहानुभूति और समझाकर विरत करना चाहते थे । गांधी जी अनुभव करते थे कि :-

---

1- महात्मा गांधी : आत्म कथा, पृष्ठ-418

"अभिभावक या अध्यापक अपने पाल्य अथवा विद्यार्थियों के [नैतिक पतन के] कुछ सीमा तक उत्तरदायी हैं । इसलिए इनके प्रति हमारा उत्तरदायित्व क्या होना चाहिये वह दिन के प्रकाश के भाँति मुझे स्पष्ट हो गया था । ---- मैनें अनुभव किया था कि अपराधी को मेरी मानसिक तकलीफ तथा अपने अपराध की गहराई की अनुभूति कराने का मात्र एक ही तरीका है कि मैं उपवासरूपी तपस्या को प्रतिपादित करूँ।"[1]

इसलिए महात्मा गांधी जी ने सात दिन का उपवास करने और साढ़े चार माह तक एक ही समय भोजन करने का व्रत लिया था । जिसका परिणाय यह हुआ कि अपराधी के प्रति उनका क्रोध समाप्त हो गया और उनके प्रति महात्मा गांधी जी के हृदय में पवित्र दया उत्पन्न हो गयी ।

समाज व राजनीति के नेता के प्रतीक होने के कारण महात्मा गांधी जी को किसी भी वस्तु का विस्तृत क्षेत्र में प्रयोग हेतु पर्याप्त समय उपलव्ध ही नहीं हुआ ।

सन् 1914 के अन्त में भारत लौटने के पश्चात महात्मा गांधी ने अपने जीवन के दूसरे पहलू की शुरूआत की । भारत लौटने के पश्चात उन्होंने पारम्परिक शिक्षा व्यवस्था

1- महात्मा गांधी : आत्म कथा. पृष्ठ 418 - 19 ।

को अपव्ययी ही नहीं बल्कि हानिकारक भी समझा । फोनिक्स बस्ती के अन्य साथीमहात्मा गांधी के आने से पूर्व ही भारत में प्रवेश कर चुके थे और वे सभी शान्ति निकेतन आश्रम में रह रहे थे । जहाँ पर डा० रवीन्द्र नाथ टैगोर तथा आश्रम के अंय लोगों ने इनका सर्वाधिक आदर व स्वागत किया । उन्होंने अपने प्रेम, ज्ञान और अध्यव्यवसाय की सुगन्ध से शान्ति निकेतन के सम्पूर्ण वातावरण को महका दिया था । शान्ति निकेतन आश्रम में पहुँचने पर यहाँ के अध्यापकों और शिष्यों में महात्मा गांधी घुल मिल गये और उनसे स्व-सहयोग के सम्बन्ध में वार्तालाप करने लगे जैसा कि उन्होंने कहा है :-

"मैंने अध्यापकों से कहा कि यदि वे और छात्रगण वेतनभोगी रसोइयों के स्थान पर स्वयं भोजन बनाने के कार्य में लग जायें तो ऐसा करने से छात्र गण शारीरिक और नैतिक स्वास्थ्य से सम्पन्न हो जायेगें । यह कार्य छात्रों के लिए स्व-सहयोग की पाठ्यवस्तु के रूप में होगा । छात्र नवीनता के स्वाद के रूप में इसका स्वागत करेगें ।"[1]

इस प्रकार शान्ति निकेतन में भी महात्मा गांधी ने एक प्रयोग किया। महात्मा गांधी जी के इस प्रयोग के सम्वन्ध में डा०ण्टैगोर ने यह विचार प्रकट किया था कि :-

"इस प्रयोग में स्वराज्य की कुंजी है ।"[2]

1- महात्मा गांधी : आत्म कथा पृष्ठ-465

2- - तदैव -

और परिणाम यह हुआ कि :-

> "सभी लोग समान रूप से उत्साह सम्पन्न होकर कार्य किया करते थे और शान्ति निकेतन एक व्यस्त मधुमक्खियों का छत्ता बन गया ।"[1]

महात्मा गांधी शान्ति निकेतन में अस्थायी रूप से ही रह सके थे क्योंकि वे दक्षिणी अफ्रीका को छोड़ते समय फोनिक्स आश्रम के आदर्शों के अनुकूल एक आश्रम भारत में स्थापित करने का दृढ़ निश्चय कर चुके थे । इसलिए 25 मई सन् 1915 में अहमदाबाद में साबरमती नदी के तट पर "सत्याग्रह आश्रम" की स्थापना की । प्रारम्भ में यहाँ केवल 20 आश्रम वासी थे वे सभी दक्षिणी अफ्रीका के थे ।

> "अशिक्षित प्रौढ़ों और बच्चों को साक्षरता का प्रशिक्षण देने के लिए एक विद्यालय इसी आश्रम से लगा हुआ खोला गया था । साक्षरता के प्रशिक्षण के अतिरिक्त कताई, बुनाई, बढ़ईगीरी जैसी मुख्य हस्तकला सभी के लिये थी । इस आश्रम में कोई नौकर नहीं था, आश्रमवासी स्वयं खाना बनाने, सफाई करने, पानी खीचने का काम करते थे ।"[2]

शिक्षा की विधि पाठ्यक्रम और विषय वस्तु के सम्बन्ध में इस आश्रम में चेतन जीवित वाद-विवाद हुआ

1- महात्मा गांधी : आत्म कथा, पृष्ठ-466 ।

2- महात्मा गांधी : सत्याग्रह आश्रम नो इतिहास (गुजराती) पृष्ठ-7 ।

करते थे । महात्मा गांधी इस सत्याग्रह आश्रम को :-

"दूसरों द्वारा अनुकरणीय आदर्श विद्यालय बनाना चाहते थे ।"[1]

महात्मा गांधी जी पूर्व से ही राजनीति के कार्यों में लगे हुये थे । इनका कल्याणकारी राजनैतिक कार्य एक सीमित समाज तक ही सीमित नहीं था बल्कि सम्पूर्ण देश के कल्याणार्थ था । इस कार्य ने महात्मा गांधी के शिक्षा सम्बन्धी प्रयोगात्मक कार्य की गति को मन्द कर दिया और हमें कई वर्षों तक उनके पूर्ण विकसित शिक्षा दर्शन की प्राप्ति हेतु प्रतीक्षा करनी पड़ी जिसे हम पूर्ण विकसित रूप में सन् 1937 में ही उपलब्ध कर सके । महात्मा गांधी ने अपने कार्यों में जिस राजनैतिक स्वतंत्रता को सर्वोच्च स्थान एवं प्राथमिकता प्रदान की थी उससे देश का हित ही हुआ था । महात्मा गांधी को शिक्षा के पुनर्निर्माण के कार्य को एक शुभ समय की प्रतीक्षा हेतु स्थगित करना पड़ा था, क्योंकि बिना राजनैतिक स्वतंत्रता को वे शिक्षा सिद्धान्त को देश के विस्तृत क्षेत्र में लागू ही नहीं कर सकते थे । साथ ही इन राजनैतिक कार्यों में लगे हुये अनेक साथी गिरफ्तार किये गये थे । किन्तु इस प्रकार की कठिनाइयों और अवरोधों के बावजूद महात्मा गांधी अपने शैक्षिक क्रिया-कलापों के सम्बन्ध में पूर्णतः उदासीन नहीं थे । :-

---

1- द ईयर बुक ऑव एजूकेशन ।1940। पृष्ठ-436 ।

"सत्याग्रह आश्रम में महात्मा गांधी व आश्रम वासियों के मध्य तथा स्वयं आश्रमवासियों में आपस में चलने वाले वाद-विवाद से महात्मा-गांधी जी सन् 1932 में शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे ।"[1]

काका कालेलकर का विचार है कि :-

"मैं स्वीकार करता हूँ कि आश्रम के अध्यापक इन सभी विचारों को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं करते थे । उनमें इस बात पर मतैक्य नहीं था कि किस विशेष सिद्धान्त पर कितना जोर दिया जाय और दो या तीन तत्वों को एक में किस प्रकार मिलाया जाय । परन्तु मुख्य कठिनाई इन दो संस्थाओं- आश्रम व आश्रम के विद्यालय के प्रशासन व व्यवस्था की थी । वर्धा योजना का जन्म आध्यात्मिक व गांधी द्वारा प्रस्तुत शैक्षिक विचारों के द्वन्द्व से हुआ था । महात्मा गांधी इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि शिक्षा - शास्त्रियों के हाथ में शिक्षा को राष्ट्रीय महत्व के ग्रामीण उद्योगों के विकास के कार्यों के अनुरूप होना चाहिये ।"[2]

मगन लाल गांधी के विचार से उद्योग को केन्द्रिय स्थान मिलना चाहिये । काका कालेलकर चाहते थे कि इस

1- सत्याग्रह आश्रम नो इतिहास (गुजराती) प्रीफेस बाई काका कालेलकर-7

2- - तदैव -

समस्या के लिए दो मत नहीं होना चाहिये :-

"परन्तु शिक्षा में उद्योग का प्रयोग शिक्षा के अनुरूप होना चाहिये न कि फैक्ट्री के अनुरूप में हो । इस प्रकार के आपसी द्वन्द्व के फलस्वरूप वर्धा योजना अथवा गांधी शिक्षा योजना ग्रामीण उद्योग को आधार मानकर उत्पन्न हुई थी ।"[1]

सन् 1932 में महात्मा गांधी शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचे थे । द्वितीय गोलमेज सम्मेलन से लौटने के बाद यरवदा जेल में रहते हुये महात्मा गांधी ने इन शिक्षा सम्बन्धी निष्कर्षों को निम्नलिखित रूप दिया था । जिसे हम वर्धा योजना के नाम से जानते हैं । शिक्षा के क्षेत्र में यह एक अग्रिम पद था । :-

1- बालक बालिकाओं की शिक्षा साथ-साथ होनी चाहिये ।

2- विद्यार्थियों का अधिकांश समय शारीरिक श्रम करने में व्यतीत होना चाहिये । यह शरीर श्रम अध्यापक के पर्वेक्षण में सम्पन्न होना चाहिये । शरीर श्रम को शिक्षा का एक भाग समझना चाहिये ।

3- विद्यार्थियों की अभिरूचि को जानकर प्रत्येक को कार्य दिया जाना चाहिये ।

4- विद्यार्थी प्रत्येक प्रक्रिया के "क्यों और कैसे" को अवश्य जाने ।

1- गांधी पी0सी : जीवनम् परोध (गुजराती) प्रीफेस बाई काका कालेलकर, पृष्ठ-7 ।

5- जैसे ही विद्यार्थी वस्तुओं को समझने के योग्य हो जाय वैसे ही उन्हें सामान्य ज्ञान दिया जाना चाहिये । यह ज्ञान साहित्यिक शिक्षा को बढ़ाने बाला होना चाहिये ।

6- लिखना सीखने से पूर्व विद्यार्थी के हाथ को ज्यामितीय चित्रों को खीचनें का प्रशिक्षण देना चाहिये अर्थात शुरू से सुलेख की शिक्षा दी जाय ।

7- लिखने के योग्य होने से पूर्व विद्यार्थी पढ़ना सीखे ।अर्थात वह अक्षरों को पहिचानना सीखे, उन्हें चित्र समझकर खीचने का अभ्यास करे ।

8- आठ वर्ष की आयु से पूर्व वे इस विधि और मौखिक रूप में अधिक ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं ।

9- बच्चों को कोई वस्तु सीखने के लिये बाध्य नकरों ।

10-जिसमें उसकी रूचि होती है वही बालक सीखता है । इस प्रकार जो कुछ बालक सीखता है उसी में उसकी रूचि होती है ।

11-खेल शिक्षा का एक आवश्यक अंग है इस कारण अध्यापन की प्रक्रिया खेल विधि से प्रारम्भ की जानी चाहिये ।

12-समस्त शिक्षा विद्यार्थी की मातृभाषा के माध्यम से दी जानी चाहिये ।

13-प्रत्येक भारतीय विद्यार्थी हिन्दुस्तानी सीखे अर्थात हिन्दी, उर्दू मिश्रित भाषा । उन्हें साहित्यिक प्रशिक्षण देने से पूर्व इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करके सीखना चाहिये ।

14- धार्मिक शिक्षा को आवश्यक जानना चाहिये । यह शिक्षा पुस्तक से न देकर अध्यापक के जीवन तथा मौखिक रूप में देना चाहिये ।

15- 9वर्ष की आयु के विद्यार्थी की शिक्षा का द्वितीय स्तर शुरू होता है जिसका अन्त 16 वर्ष की आयु पर होता है ।

16- यदि व्यावहारिक हो तो इस आयु के बालक बालिकाओं के मध्य सह-शिक्षा चालू रखी जा सकती है ।

17- 9 वर्ष से 16 वर्ष के हिन्दू विद्यार्थी को संस्कृत तथा मुस्लिम विद्यार्थी को अरबी की शिक्षा दी जानी चाहिये ।

18- इस काल की शिक्षा में भी शरीर श्रम का स्थान होना चाहिये । और आवश्यकतानुसार साहित्यिक शिक्षा के प्रशिक्षण के समय को बढ़ाया जा सकता है ।

19- भविष्य के जीवन के लिए विद्यार्थियों को कुछ व्यवसाय व उद्योग शिक्षा को अवश्य सीखना चाहिये ।

20- विद्यार्थियों को विश्व इतिहास, भूगोल,वनस्पति विज्ञान स्टानोमी, अर्थमेटिक, ज्योमेट्री और एलजेब्रा का सामान्य ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ।

21- 16 वर्षीय बालक या बालिका को सिंचाई व भोजन बनाना अवश्य आना चाहिये ।

22- विद्यार्थी की शिक्षा का तृतीय स्तर 16 वर्ष से प्रारम्भ होता है और 25 वर्ष पर अन्त होता है । इस स्तर के

युवक व युवती को अपने वातावरण व परिस्थिति को ध्यान में रखकर इच्छानुसार शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये ।

23-9वर्ष की आयु से प्रारम्भ होने वाली शिक्षा को स्वावलम्बी शिक्षा के रूप में होना चाहिये । सीखने वाले विद्यार्थी को इस प्रकार के उद्योग में लगाना चाहिये जिससे उद्योग से प्राप्त होने वाले धन से विद्यालय का खर्च चल सके ।

24-जहाँ तक सम्भव हो उत्पादन प्रारम्भ से शुरू हो जाना चाहिये परन्तु प्रारम्भिक स्तर पर विद्यालय का खर्च निकलना आवश्यक नहीं है ।

25-अध्यापक उच्च वेतनभोगी न होने पर भी उन्हें इतना तो अवश्य मिलना चाहिये कि वे अपने को व्यवस्थित करने में सफल हो । उन्हें सेवा भाव से युक्त होना चाहिये ।उनका चरित्र उत्तम होना चाहिये ।

26-विशाल व भव्य इमारत विद्यालय के लिए आवश्यक नहीं है ।

27-पाठ्यचर्या में अंग्रेजी को केवल एक भाषा के रूप में स्थान मिलना चाहिये । क्योंकि जैसे हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा या बोलचाल की भाषा है उसी प्रकार अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार व व्यापार की भाषा है ।"[1]

1- महात्मा गांधी : सत्याग्रहाश्रमनो इतिहास ।गुजराती। पृष्ठ- 81-84 ।

महात्मा गांधी ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि उनके शैक्षिक विचार के प्रति उनमें एवं आश्रमवासी उनके सहयोगियों के मध्य पूर्ण सहमति नहीं थी और उनका शिक्षा सिद्धान्त अभी निर्माणावस्था में ही था । महात्मा गांधी ने स्वयं लिखा है :-

> "किसी प्रकार सभी लोग इस बात से सहमत हुये थे कि "सूत कातना" एक उद्योग के रूप में शिक्षा का केन्द्र होना चाहिये । शिक्षा को स्वावलम्बी होना चाहिये तथा उद्योग को ग्रामीण सभ्यता एवं जीवन से संयुक्त होना चाहिये ।"[1]

आश्रम में पारम्परिक ढंग की शिक्षा का कोई स्थान नहीं था, किन्तु आश्रमवासियों में चाहे वे युवक हों, या वृद्ध, पुरूष हो या स्त्री सभी में एक ऐसी जाग्रति उत्पन्न कर दी गई थी, जिससे सभी में ज्ञान प्राप्ति की एक तीव्र प्यास उत्पन्न हो गयी थी । महात्मा गांधी जी इस प्रवृति को बहुत अधिक महत्व प्रदान करते थे क्योंकि सच्ची शिक्षा के लिए समय की कोई सीमा व अबधि नहीं होती है । सच्ची शिक्षा तो तब प्रारम्भ होती है जब विद्यालयीय शिक्षा समाप्त होती है । महात्मा गांधी ने इस सिद्धान्त की खोज की थी कि बिना शिक्षक के शिक्षा की प्रक्रिया संचालित ही नहीं होती तथा

1- महात्मा गांधी : सत्याग्रहाश्रमनो इतिहास (गुजराती) पृष्ठ-84-85 ।

इस निष्कर्ष पह पहुँचे थे कि प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वयं का शिक्षक होता है । तात्पर्य यह है कि अनुभव स्वयं एक महान शिक्षक है और विद्यालय में प्राप्त शिक्षा बनावटी शिक्षा है । प्रौढ़ो का विद्यालयीय शिक्षा की अपेक्षा विकास,अध्यवसाय तथा आत्म विश्वास की शिक्षा की आवश्यकता अधिक है । आश्रम की शिक्षा इसी लक्ष्य हेतु प्रदान की जाती थी जो काफी सफल रही थी, महात्मा गांधी के शब्दों में :-

"आश्रम का प्रत्येक विभाग एक विद्यालय था ।"[1]

यदि हम पीछे के कुछ वर्ष की ओर दृष्टिपात करें जब सन् 1920 में महात्मा गांधी ने गुजरात विद्यापीठ का शुभारम्भ करके अपना प्रमुख शैक्षिक प्रयोग प्रारम्भ किया था तो हमें ज्ञात होगा कि उनके अनुसार शिक्षा का लक्ष्य आत्मा को उच्चतर जीवन की ओर उठाना है । गुजरात विद्यापीठ का आदर्श सूत्र वाम्य "सा विद्या या विमुक्तये" है । इस सूत्र वाक्य की व्याख्या करते हुये महात्मा गांधी जी कहते हैं कि :-

"इस सूत्र बाक्य का तात्पर्य है कि वह ज्ञान ही है जो मोक्ष की ओर ले जाता है । सिद्धान्त यह है कि बड़े में छोटे का समावेश होता है

1- महात्मा गांधी :सत्याग्रहाश्रमनो अतिहास (गुजराती) पृष्ठ- 87-88 ।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता का अध्यात्मिक स्वतंत्रता में स्थान है अत: शिक्षा संस्थाओं में प्राप्त किये जाने वाले ज्ञान को आध्यात्मिक स्वतंत्रता का मार्ग दिखाना चाहिये और वहाँ तक पहुंचाना चाहिये ।"[1]

इस सूत्र वाक्य की आलोचना करते हुये काका कालेलकर जी ने कहा है :-

"मानव दासता की जंजीर से बँधा है, वह अज्ञानी है, वह अपनी मूलभूत प्रवृत्तियों से प्रभावित है और परिस्थितियों द्वारा उससे आबद्ध है जिसका परिणाम यह हुआ है कि उसकी आत्मा दबा दी गई है । विकास के लिये कोई क्षेत्र अवशिष्ट ही नहीं है । सच्ची शिक्षा वही है जो उसे इन सभी बन्धनों और परिस्थितियों से मुक्त करे । उचित शिक्षा व ज्ञान वही है जो शरीर को रोग, दुर्बलता तथा अशक्तता से, हाथ-पैर को तथा अन्य कार्य करने वाले अंगों को जड़ता के मृत बोझ से, हृदय को कठोरता व विद्वेष से, समस्त मानव को सभी प्रकार की दासता के बन्धन से --- भावनाओं को वासनाओं से, शक्ति को नशीले पदार्थों से और आत्मा को गर्व व नीचता के पंजे से मुक्त करता है ।"[2]

महात्मा गांधी ने अपने राष्ट्रीय शिक्षा के दृष्टिकोण को इतनी सुन्दरता से सन् 1920 में जनता के समक्ष रखा

1- यंग इण्डिया 20-3-30

2- - तदैव -

था कि उसे उन्हीं के शब्दों मे पुनर्अभिव्यक्ति हेतु हम अपना लोभ संवरण नहीं कर सकते हैं ।

- मेरी राय में वर्तमान मे प्रचलित शिक्षा व्यवस्था दोषपूर्ण है । यह मुख्य रूप से तीन रूपों में दोषपूर्ण है ।:-

1- स्वदेशी संस्कृति से रहित वर्तमान शिक्षा पूर्ण रूप से विदेशी संस्कृति पर आधारित है ।

2- यह हाथ व हृदय की संस्कृति की अवहेलना करती है तथा मस्तिष्क की संस्कृति तक ही यह अपने को सीमित किये हुये है ।

3- यह विदेशी भाषा के माध्यम से प्रदान की जाती है ।

प्राय: प्रारम्भ से ही पुस्तकों का सम्बन्ध बालक बालिकाओं के पारिवारिक तथ्यों से सम्बन्धित ज्ञान से न होकर उन वस्तुओं के ज्ञान है जो उनके लिए बिलकुल विदेशी हैं । भारतीय बाल बालिकायें पर्यावरण में क्या सत्य और क्या असत्य है इसका ज्ञान पुस्तकों से नहीं सीख पाते हैं । वे जैसे जैसे उच्च शिक्षा के स्तर पर पहुँचते जाते हैं वैसे वैसे अपने घर से दूर होते जाते हैं । इसीलिए उच्च शिक्षा प्राप्त कर वे अपने पर्यावरण से विदेशी बन जाते हैं । वे अपने पारिवारिक गृह के प्रति काव्य भाव की अनुभूति नहीं कर पाते हैं । ग्रामीण दृश्य उनके लिए बन्द पुस्तक की भाँति प्रतीत होने लगता है । उनकी स्वयं की सभ्यता एवं व्यावहारिकलक्ष्य उन्हें अशक्त, जंगली, अन्ध विश्वासी एवं व्यर्थ

प्रतीत होती है । उनकी शिक्षा की उपलब्धि का मूल्यांकन वे अपनी संस्कृति से कितने अनभिज्ञ हो चुके है के रूप में किया जाता था । यदि यह पारम्परिक शिक्षा उन्हें पूर्ण रूप से अराष्ट्रीय नहीं बनायेगी तो इसका तात्पर्य था कि प्राचीन संस्कृति की जड़े उनमें सर्वाधिक गहराई में निहित थी और विरोधी शिक्षा का विकास उन्हें समूल न उखाड़ सका । दूसरे, जो दूसरे देशों के लिए सत्य हो सकता है वह भारत जैसे देश के लिए किसी भी प्रकार सत्य नहीं हो सकता है, क्योंकि जहाँ की अस्सी प्रतिशत जनसंख्या कृषक है और अन्य दस प्रतिशत व्यवसायी है ऐसे देश के लिए शिक्षा को केवल साहित्यिक बनाना और विद्यार्थियों को भविष्य के जीवन में शरीर श्रम के अयोग्य बनाना एक महान अपराध है । वास्तव मे मैं मानता हूँ कि हमारा अधिकांश समय अपनी जीविका कमाने में व्यतीत होता है । इसलिए हमारे बालकों को बचपन से ही इस प्रकार के श्रम के महत्व को सिखाया जाना चाहिये । विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा कदापि न दी जाय कि वे श्रम से घृणा करने लगे । ऐसा कोई कारण नहीं है कि एक किसान का बालक शिक्षित होकर कृषि का कार्य करने के कारण व्यर्थ हो जाता है । यह दुःख की बात है कि हमारे शिक्षित बालक कृषक के शरीर श्रम के विरोधी हो जाते हैं । अधिकांश बच्चे "पब्लिक स्कूलस्" में पढ़ते हैं । हम वर्तमान शिक्षा

व्यवस्था के अनुसार बालको की शिक्षा पर अधिक धन खर्च करने में असमर्थ हैं और न तो लाखो करोड़ो माता-पिता इतनी अधिक फीस ही दे सकते है जो इन विद्यालयों मे लिया जाता है । इसलिए हम आशा करते हैं और जैसा कि हमें करना भी चाहिये कि सभी के लिए शिक्षा स्वतंत्र व फीस मुक्त हो ।हमारे बच्चों को मजदूरों के दल के साथ वेतन दिया जाना चाहिये । अर्थात सभी शिक्षा जो वे प्राप्त करेगें इसीप्रकार दिया जाना चाहिये ।

शरीर श्रम के प्रशिक्षण का शुभारम्भ करने से हमारे जैसे गरीब देश के दो लक्ष्य पूर्ण होगें । हमारे बच्चों को शिक्षा का खर्च प्राप्त होगा और उन्हें उद्योग की शिक्षा मिलेगी जिस पर उनका भावी जीवन आधारित होगा, जब वे जीविकोपार्जन का जीवन चयन करेगें ऐसी शिक्षा योजना हमारे बच्चों को आत्मनिर्भर बनायेगी । कोई भी अन्य वस्तु हमें और हमारे राष्ट्र को अनैतिक नहीं बना सकती जितना कि श्रम से घृणा करना ।[1]

महात्मा गांधी ने कहा कि इस प्रकार :-

> "हमारे विद्यालय एवं कालेज यदि पूर्णतः नहीं तो अंशतः स्वावलम्बी बनेगें । यह स्वावलम्बन राज्य की सहायता अथवा दान अथवा छात्रों से प्राप्त फीस से नहीं बल्कि विद्यार्थियों द्वारा किये गये प्रतिदान के कार्य से होगा ।"[2]

1- यंग इण्डिया 1-9-21

2- -तदैव - 2-8-28

यह ध्यान देने की बात है कि इस काल में महात्मा गांधी जी "व्यावसायिक शिक्षा को साहित्यिक प्रशिक्षण के अगल बगल से प्रदान करने की"[1] आवश्यकता में विश्वास करते थे । वास्तव में महात्मा गांधी औद्योगिक प्रशिक्षण के अनुशरण की आवश्यकता शिक्षा को प्रत्यक्ष रूप से स्वावलम्बी बनाने के लिए मानते थे । वे चाहते थे कि विद्यार्थी श्रम के महत्व को समझे और वे शरीर श्रम के महत्व की अज्ञानता को अपमान का प्रतीक मानते थे । अपने तर्क के पक्ष में वे अमेरिका का उदाहरण प्रस्तुत करते हुये कहते हैं :-

> "अमेरिका में जो विश्व का सर्वाधिक धनी देश है, शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने की बहुत कम आवश्यकता है । वहाँ विद्यार्थियों के लिए अपना स्वयं का मूल्य पूर्ण रूप या अंश रूप में अदा करना सामान्य बात है ।"[2]

महात्मा गांधी फ्री छात्रवृत्ति पद्धति का विरोध करते हैं :-

> "(यह) चेतन बालक के मस्तिष्क पर पूरे जीवन बोझ स्वरूप पड़ी रहती है । कोई भी यह नहीं चाहता कि भावी जीवन में उसे याद दिलाया जाय कि उसकी शिक्षा दान पर आधारित थी । इसके विपरीत ऐसे मनुष्य कहाँ है जो उन दिनों को गर्व से पुनर्स्मरण न करेगें कि वे अधिक धनी थे

1- यंग इण्डिया 2-8-28 ।

2- - तदैव -

और दान दिया करते थे। जिसने स्वयं को, अपने मन, शरीर व आत्मा को शिक्षित बनाने लिए बढ़ई के कारखाने में अथवा इसी तरह के अन्य कार्य में लगकर शिक्षा ग्रहण की है वह सच्चा विद्यार्थी है।"[1]

शिक्षा में अहिंसा के स्थान का वर्णन करते हुये महात्मा गांधी जी कहते हैं :-

"शिक्षा जगत में विद्यार्थियों के पारस्परिक सम्बन्ध पर अहिंसा का स्पष्ट प्रभाव होना चाहिये। अहिंसा के पवित्र सुगन्ध से जिस विद्यालय का सम्पूर्ण वातावरण सुगन्धित रहता है वहाँ पर बालक बालिकायें साथ-साथ अध्ययन करते हुये भाई बहिन की भाँति स्वतंत्रता से निवास करते है और स्वयं के नियन्त्रण में भी रहेगें। विद्यार्थी से अध्यापक अपने स्वयं के पुत्र पुत्री की भाँति स्नेह करेगें और पारस्परिक आदर व प्रेम तथा विश्वास के बन्धन में बंधे रहेगें। --- शिक्षा - शास्त्रियों के हाथ में अहिंसा एक पवित्र प्रेम का रूप धारण कर लेगा और प्रत्येक कार्य में सदा प्रवाहित होने वाले जीवन स्रोत को अभिव्यक्त करेगी ---- जब विद्यापीठ का पर्यावरण इस अहिंसा से ओत प्रोत हो जायेगा तो हरेक को विश्वास हो जायेगा कि इस विद्यापीठ के छात्र किसी भी प्रकार के व्यवहार से परेशान न होगें।"[2]

1- यंग इण्डिया, 2-8-28 ।

2- यंग इण्डिया, 6-9-28 ।

सन् 1931 में महात्मा गांधी ने विश्व के अध्यापकों से साक्षात्कार किया था। इस साक्षात्कार के फलस्वरूप महात्मा गांधी के शिक्षा सम्बन्धी विचार ब्रिटेन के दस हजार अध्यापकों में प्रचलित हो चुके थे। इन विचारों में महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त निहित थे। इस साक्षात्कार में इन्होंने अपने "प्रेम के सिद्धान्त" पर विशेष बल दिया था और कहा था कि :-

> "बालकों के प्रशिक्षण में प्रेम अति अनिवार्य और निर्देशित शक्ति है। क्षमा का सिद्धान्त और सच्ची शिक्षा के अर्थ का परिणाम भौतिक शक्ति की वासना के रूप में नहीं होना चाहिये बल्कि इसे आध्यात्मिक शक्ति के रूप में होना चाहिये, व्यावहारिक हस्तकला की शिक्षा, गृह शिक्षा माता-पिता की शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य बच्चों को उचित रीति से परिवर्तित करने व योग्य बनाने के लिए ही होनी चाहिये।"[1]

महात्मा गांधी ने यौन शिक्षा की जटिल समस्याओं के समाधान में अपना मौलिक व महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया था। जो अब तक उपेक्षित रहा है। सन् 1936 में "हरिजन" में इन्होंने इस विषय में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुये कहा था :-

---

1- द टीचर्स वर्ल्ड, 4-2-48 ।

"यौन विज्ञान दो प्रकार का है । एक वह जिसका प्रयोग यौन भावना को नियन्त्रित करने अथवा विजित करने के लिये किया जाता है, और दूसरा वह जिसका प्रयोग यौन भावना को उत्तेजित करने और भोग करने के लिये किया जाता है । प्रथम प्रकार की यौन शिक्षा में निर्देशन देना बालक की शिक्षा का एक आवश्यक भाग है तथा दूसरे प्रकार में निर्देशन देना हानि कारक एवं खतरनाक है ।"[1]

उपर्युक्त कथन से प्रतीत होता है कि महात्मा गांधी कुछ सीमा तक युवक एवं युवतियों को प्रजनन अंगो के कार्य व उसके प्रयोग के विषय में ज्ञान देना आवश्यक समझते हैं ताकि गलत आदतों में सलग्न होने से बच सकें । इस सम्बन्ध में वे स्वय कहते हैं कि :-

"मैं युवक व युवतियों को उनके प्रजनन अंगों के उचित प्रयोग और उनके महत्व के सम्बन्ध में शिक्षित करने के पूर्ण पक्ष में हूँ ।"[2]

महात्मा गांधी जिस यौन शिक्षा के पक्षधर थे, उसे नियन्त्रित व उन्नयन करने हेतु उनका लक्ष्य था । उन्हीं के शब्दों में :-

"इस प्रकार की शिक्षा का कार्य बच्चों को मानव व पशु के मध्य आवश्यक अन्तर से परिचित कराना होना चाहिये,और उन्हें यह अनुभव

1- हरिजन 21-11-36 ।

2- - तदैव -

कराया जाय कि केवल मनुष्य को मस्तिष्क व हृदय दोनों की शक्तियों की विशेष सुविधा प्रदान की गयी है और महसूस करने वाले जानवरों की अपेक्षा वह अधिक विचारशील प्राणी हैं ।"1

महात्मा गांधी के यौन शिक्षा सम्बन्धी विचार आधुनिक मनोवैज्ञानिकों की खोज के ठीक अनुरूप है । जिनकी यह मान्यता है कि समस्त प्राणियों को इसका ज्ञान होना चाहिये और इसकी शिक्षा जीव विज्ञान के साथ-साथ प्रदान की जाय, परन्तु हमें इसे एक पवित्र, भावनात्मक एवं रहस्यात्मक विषय की भाँति नहीं पढ़ाना चाहिये । महात्मा गांधी की अन्तर्दृष्टि ने यह तथ्य उद्घाटित कर दिया था कि यौन विज्ञान, जो अब तक सर्वाधिक उपेक्षित रहा है एक लाभप्रद, विज्ञान व विषय है । बालक की पद्धति अन्वेषी होती है वह प्रत्येक वस्तु जानना चाहता है फिर भी उसे जानने नहीं दिया जाता क्योंकि इसके ऊपर सुपर अहं द्वारा सामाजिक व नैतिकता लाद दी जाती है । इस प्रकार एक ही काल में उसके समक्ष आकर्षण और विकर्षण दोनों दशायें उपस्थित हो जाती है और उसके मस्तिष्क के अर्द्धचेतन क्षेत्र में मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है । जिसके परिणाम स्वरूप अधिकांश व्यवहार सम्बन्धी व बाल अपराध सम्बन्धी समस्याओं की उत्पत्ति को बालक के पश्चात के जीवन में देखा जा सकता है । बालक के बाद के कुछ

1- हरिजन, 21-11-36 ।

वर्षों में इस प्रकार के मानसिक द्वन्द्व की खोज की जा सकती है । यौन शिक्षा का उचित निर्देशन बालक की उत्सुकता को शान्त करता है और प्रारम्भिक वर्षों में ही बालक को व्यक्तित्व की मजबूत आधार शिला का निर्माण भी कर देता है ।

महात्मा गांधी की उन मनोवैज्ञानिकों से कभी भी भेंट नहीं हुई थी जो यौन विज्ञान की शिक्षा प्रदान करने में समर्थ थे । यौन विज्ञान के वेत्ताओं की मान्यता है कि जब बालक बालिकायें इस विज्ञान को जानने के लिए उत्सुक प्रतीत हो तो उनके माता-पिता को इस सम्बन्ध में जानकारी देनी चाहिये । यदि इस सम्बन्ध में अध्यापकों से भी प्रश्न किये जाँय तो उन्हें संतोषजनक उत्तर प्रदान करना चाहिये । महात्मा गांधी की मान्यता यह थी कि इस प्रकार का ज्ञान उन लोगों द्वारा ही प्रदान किया जाना चाहिये जिन्होंने यौन विज्ञान का अध्ययन कर लिया हो अथवा वे लोग जो आत्म संयम की विधि के ज्ञाता हो और अपनी ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों एवं आत्मा पर आधिपत्य प्राप्त कर लियाहो महात्मा गांधी जी से एक बार प्रश्न किया गया कि इस सच्चे यौन विज्ञान की शिक्षा किसे देनी चाहिये तो उनका उत्तर था :-

> "स्पष्ट है जिसने अपनी वासनाओं पर अधिकार कर लिया है ।"[1]

1- हरिजन 21-11-36 ।

मनोवैज्ञानिकों का कथन कि माता-पिता व अध्यापक यौन शिक्षा को पढ़ाने के अधिकारी हैं तो इनके इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि सभी माता-पिता व अ अध्यापक इसे पढ़ाने के योग्य है । उनका भी विश्वास है कि वे ही माता-पिता तथा अध्यापक इसेसबसे अच्छे ढंग से पढ़ा सकते हैं जिन्होंने जीवन के प्रति संतुलित दृष्टिकोण और अपनी स्वयं की समस्याओं को हल करने की योग्यता अर्जित कर ली है ।

अब हम सन् 1931 के वर्ष के सम्बन्ध में विचार करते हैं, जब महात्मा गांधी के विचार शिक्षा के प्रति अन्तिम रूप से निरूपित व विकसित हुये थे । उनके शैक्षिक विचार की उत्पति भारत व दक्षिणी अफ्रीका में 40 वर्षों के अनवरत प्रयोग व अनुभव की प्रक्रिया के पश्चात पूर्ण शिक्षा दर्शन के रूप में हुई थी । उनके सभी विखरे हुये शिक्षा सिद्धान्त के तत्वो को संयुक्त करने व एक साथ मिलाने पर एक शिक्षा दर्शन का पूर्ण ढाँचा बन जाता है जो विश्व के महान शिक्षा दार्शनिकों के मध्य उनका महत्व पूर्ण स्थान निर्धारित कर देता है । इस काल तक पहुँचते पहुँचते उनके शिक्षा सम्बन्धी विचारों में पर्याप्त परिवर्तन हो गया था और इस निष्कर्ष पर पहुँच गये थे कि :-

"सम्पूर्ण शिक्षा किसी हस्तकला अथवा उद्योग के जरिये से ही देनी चाहिये ।"[1]

1- एजूकेशन रीकन्स्ट्रक्शन, पृष्ठ-61 ।

हमने यह अनुभव किया है कि इस काल से पूर्व भी महात्मा गांधी ने हस्तकला की शिक्षा देने की बात की थी, परन्तु :-

> "औद्योगिक प्रशिक्षण शैक्षिक उद्देश्य से बहुत दूर था ।हस्तकला की शिक्षा केवल हस्तकला के लिये ही दी जाती थी और बौद्धिक विकास का उसके साथ कोई प्रयत्न नहीं किया जाता था ।"[1]

अब महात्मा गांधी ने "हस्तकला" को शिक्षा का केन्द्र तथा समस्त शिक्षा हस्तकला के जरिये देना ही नहीं माना और जिसके चारो ओर शिक्षा को घूमना चाहिये बल्कि कताई बुनाई अथवा तकली को ग्रामीण क्षेत्र में रहने बाले असंख्य देश वासियों के लिए एक उचित व उपयुक्त हस्त-कला के रूप में भी निर्धारित किया था । इन्होंने हमारी समस्याओं के समाधान हेतु तकली को उपयुक्त समझा था । इसका तात्पर्य शारीरिक श्रम के प्रशिक्षण के साथ साहित्यिक प्रशिक्षण को परिशिष्ट के रूप में जोड़ना नहीं था बल्कि शरीर श्रम के प्रशिक्षण को साहित्यिक प्रशिक्षण का साधन बनाना था । महात्मा गांधी की शिक्षा के सिद्धान्त का यही प्रधान आधार निर्मित करता है और इसे ही उनके शैक्षिक विचार का विशिष्ट, विचित्र और अन्तिम योगदान

1- एजूकेशनल रीकन्स्ट्रक्शन, पृष्ठ-61

शिक्षा जगत में माना जा सकता है । यह स्मरणीय है कि तकली या चरखा प्राचीन युग की सूत कातने वाली केवल मशीन ही नहीं है बल्कि यह एक केन्द्र है जिसके चारों ओर शान्ति की संस्कृति को बनाया जा सकता है । परिणाम स्वरूप यह आवश्यक है कि शिक्षा के समस्त स्तरों पर इसे केन्द्रिय स्थान देना चाहिये । श्री के0जी0मशरूवाला के शब्दों में :-

> "(भारतवासियों में) खादी स्वयं तब तक मूल स्थान ग्रहण नहीं कर सकती जब तक चरखा बचपन से बालक के जीवन का एक हिस्सा नहीं बन जाता है तथा उनके अन्तिम जीवन तक इसी तरह बना रहता है । चरखा महात्मा गांधी के सम्पूर्ण रचनात्मक योजना का प्रतीक है । यह आश्चर्य की बात नहीं है कि महात्मा गांधी ने लोक सेवक संघ (हरिजन 15 फरवरी सन् 1948) के अन्तिम नोट में बल देकर कहा है कि "लोक सेवक" ग्रामीण लोगों की शिक्षा को जन्म से लेकर मृत्यु तक नयी तालीम के अनुसार "हिन्दुस्तानी तालीम" संघ के द्वारा प्रस्तावित नीतियों के अनुकूल उसे आयोजित करे ।"[1]

महात्मा गांधी जी की महानता केवल इस तथ्य में नहीं है कि उन्होंने विश्व को एक मजबूत शिक्षा सिद्धान्त

1- जनरल ऑव एजूकेशन एण्ड साइकॉलाजी अप्रैल 1948 पृष्ठ-10

दिया है बल्कि उस विधि में है जिसमें उन्होंने नूतन पैमाने पर इसकी उपयोगिता व क्षमता प्रदर्शित की है ।

अब हम महात्मा गांधी जी के शिक्षा सिद्धान्त के उस महत्व पूर्ण पहलू का विस्तार में विचार करेंगें जिसे लोग गांधी दर्शन और बेसिक राष्ट्रीय शिक्षा या वर्धा योजना के रूप में जानते हैं ।

अध्याय-8

बेसिक शिक्षा के सन्दर्भ में महात्मा गांधी का शिक्षा सिद्धान्त

पिछले अध्याय में हमनें महात्मा गांधी के दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारों के आविर्भाव के सम्बन्ध में विचार किया है और यह देखा है कि जीवन के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण ही उसकी जीवन शैली का निर्माण करते हैं, जिससे दार्शनिक विचार पुष्ट होते हैं और शिक्षा का विकास होता है। "एफ0डब्ल्यू0 थामस" एवं "ए0आर0लॉग" ने इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है :-

> "सामान्य रूप में, शिक्षा दर्शन, जीवन दर्शन ही है, किसी शिक्षा दर्शन का सम्बन्ध प्रमुख रूप से शिक्षा के उद्देश्य, उस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु आवश्यक शिक्षा योजना, पाठ्यक्रम, विधि, अध्यापक, शैक्षिक संगठनों के मूल्याकंनहेतु परीक्षा मापन आदि का आयोजन जीवन के लक्ष्यों व आदर्शों की प्राप्ति के लिए ही होता है।"[1]

हमने यह भी देखा है कि दर्शन अपने प्रयोग हेतु शिक्षा पर तथा शिक्षा अपने मार्ग दर्शन हेतु दर्शन पर आधारित है। अतः प्रत्येक शिक्षा दर्शन में निम्नलिखित तीन गुण होने चाहिये :-

---

1- थामस, एफ0डब्ल्यू0 एण्ड लॉग ए0आर0 : प्रिंसिपिल्स ऑव मार्डन एजूकेशन, बोस्टन, हॉगटन मिफलिन, पृष्ठ-39 ।

1- शिक्षा दर्शन मात्र शिक्षा का सिद्धान्त ही न रहे। बल्कि उसे शिक्षा के क्रियात्मक व शैक्षिक विचारों के आलोचनात्मक रूप को तथा वैज्ञानिक पद्धति की बौद्धिक समझ, शैक्षिक समस्याओं के समाधान व सरलीकरण की विधि तथा सीखने वाले के व्यवहार व प्रकृति को सामाजिक सम्बन्धों के संदर्भ मे रचनात्मक स्वरूप प्रदान करना चाहिये।

2- शिक्षा दर्शन का दूसरा गुण शिक्षा के उद्देश्यों का निर्माण करना है क्योंकि शिक्षा दर्शन के रचनात्मक विकास हेतु यही प्रमुख व महत्वपूर्ण पद है। शिक्षा के तात्कालिक एवं अन्तिम उद्देश्यों के अनुकूल पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, संगठन की योजना, सहायक उपकरण तथा विषय सामग्री को अन्तिम रूप प्रदान करना चाहिये।

3- शिक्षा दर्शन को शैक्षिक प्रतिनिधि की योजना तथा सिद्धान्तों के मूल्यांकन और संगठन में योगदान करना चाहिये।

शिक्षा की प्रकृति विकासशील है। समाज की परम्परायें एवं परिस्थितियाँ दार्शनिकों के चिन्तन को प्रभावित करती हैं। उसी चिन्तन का प्रतिफल शैक्षिक उद्देश्य होता है। शिक्षा एक प्रकार की चेतना है, यह एक गतिशील विषय है अत: इसका रूप भी स्थिर नहीं रह सकता। हम जानते है कि परम्परायें एवं परिस्थितियाँ गतिशील होती है। इसीलिए शैक्षिक उद्देश्य भी स्थिर नहीं होते हैं। शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों, क्षमताओं व योग्यताओं का

विकास करना है । शिक्षा शक्ति, समाज व राष्ट्र के नव निर्माण एवं पुनर्रचना का आधार स्तम्भ मानी जाती है । स्वतंत्र एवं सामाजिक विचारों की वृद्धि, असाम्प्रदायिक एवं जनतंत्रात्मक भावना एवं आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों के लाभ की आवश्यकताओं ने शिक्षा की प्रक्रिया को और महत्व पूर्ण बना दिया है ।

उद्देश्य :-

प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य का एक निश्चित लक्ष्य होता है । परन्तु शिक्षा के उद्देश्य का प्रश्न विवादास्पद है । कुछ शिक्षा शास्त्री शिक्षा के उद्देश्य का निश्चित होना आवश्यक मानते हैं और कुछ इस सम्बन्ध में विचार करना व्यर्थ समझते है । रॉस, रस्क,तथा डे के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य निश्चित होना आवश्यक है,परन्तु जॉन डिवी शिक्षा के किसी भी लक्ष्य को मान्यता नहीं देते हैं उनके अनुसार शिक्षा एक विकासात्मक कार्य है और किसी भी विकासात्मक कार्य का कोई निश्चित लक्ष्य नहीं होता है ।

हम देखते है कि एक ही काल व परिस्थिति में व्यक्तियों के विभिन्न उद्देश्य होते हैं । सारे समाज के लिए किसी एक निश्चित उद्देश्य को मान्यता देना शिक्षा के विकासात्मक कार्य में अड़चन डालना है । इस सम्बन्ध में जॉन डिवी ने लिखा है :-

"शिक्षा के उद्देश्य नहीं होते है, उद्देश्य तो केवल

व्यक्तियों, अभिभावकों एवं शिक्षकों के होते हैं । अतः उनके उद्देश्य में अनन्त विभिन्नतायें होती हैं । ये उद्देश्य विभिन्न बालकों के लिए विभिन्न होते हैं और जैसे जैसे बालक बड़े होते जाते है वैसे वैसे उद्देश्य भी बदलते जाते हैं ।"[1]

जॉन डिवी ने इसी क्रम में शिक्षा के उद्देश्यों की तीन विशेषतायें बताई हैं :-

1- "शिक्षा के उद्देश्य बालक की अन्तर्निहित क्रियाओं और आवश्यकताओं पर आधारित होने चाहिये ।"

2- "उद्देश्यों को ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिये जो बालकों की स्वाभाविक क्षमताओं को मुक्त व संगठित कर सके ।"

3- "उद्देश्य सामान्य व अन्तिमन होकर विशिष्ट एवं तात्कालिक होने चाहिये ।"[2]

विशिष्ट एवं तात्कालिक उद्देश्य का तात्पर्य व्यक्ति को सामाजिक कुशलता की प्राप्ति में सहयोग देना है । हम देखते हैं कि जॉन डिवी के अनुसार व्यक्ति में सामाजिक कुशलता का आविर्भाव तभी हो सकता है जब उसमें निम्नलिखित गुण हो :-

1- <u>व्यावसायिक कुशलता</u> :- "व्यक्ति में अपनी जीविका पैदा करने की योग्यता होनीचाहिये ।"

1- डिवी जॉन, डेमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन न्यूयार्क मैकमिलन 1916 पृष्ठ-107

2- - तदैव - पृष्ठ 107 से 110 तक ।

2- "नागरिक कुशलता" ।

3- "निषेधात्मक नैतिकता :- व्यक्ति में दूसरों की व्यावसायिक कुशलता में बाधा उत्पन्न करने की इच्छा न हो ।"

4- विधेयात्मक नैतिकता :- व्यक्ति में सामाजिक प्रगति में योग देने की इच्छा होनी चाहिये ।[1]

जॉन डिवी ने पुनः लिखा है कि :-

> "शैक्षिक उद्देश्यों के रूप में सामाजिक कुशलता का अर्थ सहयोगी या सामान्य क्रियाओं में स्वतंत्रता पूर्वक एवं पूर्ण रूपेण सम्मिलित होने की शक्ति का विकास करना है ।"[2]

उपर्युक्त विचार जॉन डिवी में प्रायोगिक प्रक्रिया द्वारा ही उपलब्ध हुआ था । अपने शैक्षिक विचारों के प्रयोग हेतु ही जॉन डिवी ने सन् 1896 में "विश्व विद्यालय प्रयोगात्मक स्कूल" की स्थापना की थी । जॉन डिवी के शिक्षा सम्बन्धी विचार के सम्बन्ध में यूलिच महोदय ने लिखा है कि :-

> "डिवी ने शिक्षा को मुख्यतः सामाजिक प्रक्रिया माना है जिसका समाज के सम्पूर्ण स्वरूप एवं समस्त कार्यों से अटूट सम्बन्ध है ।"[3]

1- डिवी जॉन, डेमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन, न्यूयार्क मैकमिलन, 1916 पृष्ठ 107 से 110 तक ।

2- - तदैव - पृष्ठ-123

3- यूलिचराबर्ट, हिस्ट्री ऑव एजूकेशनलथाट, हरवार्ट यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ-378 ।

शिक्षा को सामाजिक जीवन से सम्बन्धित मानते हुये जॉन डिवी ने शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित विचार व्यक्त किये हैं :-

"जो सम्बन्ध भोजन एवं सन्तानोत्पादनका शारीरिक जीवन से है वही सम्बन्ध शिक्षा का सामाजिक जीवन से है ।"[1]

जॉन डिवी का यह विचार कि शिक्षाकाकोई लक्ष्य नहीं हो सकता सर्वमान्य नहीं है । क्योंकि उद्देश्य विहीन शिक्षा का कोई महत्व नहीं होता है । इसलिए शिक्षा का एक निश्चित उद्देश्य होना ही चाहिये । प्रथमत: एडम्स महोदय का मन्तव्य है कि :-

"किसी एक उद्देश्य का चुनाव करके अन्य सभी उद्देश्यों को उसके केन्द्र में सम्मिलित करना आशा रहित कार्य है ।"[2]

परन्तु अपने विचारों का मन्थन करने के उपरान्त स्वयं इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि :-

"आत्मानुभूति स्वयं में सम्पूर्ण ज्ञानात्मक आदर्श है ।"[3]

1- डिवी जॉन , डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन, न्यूयार्क, मैकमिलन, 1916 पृष्ठ-9 ।

2- एडमॅस सर जॉन: द एवल्युशन ऑव एजूकेशनल थ्योरी, लंदन मैकमिलन, पृष्ठ-39 ।

3- - तदैव - पृष्ठ-146 ।

इस तथ्य की व्याख्या करते हुये लिखा है कि :-
"सभी आदर्श एवं लक्ष्य एक दूसरे के पूरक है, एक दूसरे से अलग करके प्राप्त नहीं किये जा सकते, उनकी एकता आवश्यक है। हमारे पास एक ऐसा आदर्श है जो सभी सम्प्रदायों की आकांक्षाओं को वास्तव में अपने में समाहित किये हुये हैं।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा के विभिन्न उद्देश्य होते हुये भी दार्शनिकों ने अपने समस्त कार्यों को एक ही उत्तम लक्ष्य "आत्मानुभूति" हेतु निर्धारित किया है। तथ्य यह है कि उद्देश्य भिन्न-भिन्न होते हुये भी हमें इस निष्कर्ष पर नहीं ले जाते कि समस्त उद्देश्य एक दूसरे से पारस्परिक रूप से अलग हैं। शिक्षा के उद्देश्यों की तुलना उस पहाड़ी की चोटी से की जाती है जहाँ से हम भूमि के स्पष्ट दृश्य देख सकते हैं। जॉन डिवी ने ऐसा ही किया था। उस भूमि का दृश्य अन्य बिन्दु से देखने पर पहले से भिन्न दृश्य दिखाई देता है, ये भिन्न-भिन्न दृश्य आवश्यक नहीं है कि वे एक दूसरे के विरोधी हो, बल्कि अधिकांश मामलों में एक दूसरे के पूरक हैं।

भारतीय परम्परा के अनुसार गांधी जी शिक्षा को एक गम्भीर संकल्पित व्यवसाय के रूप में मानते हैं।

1- एडमुस सर जॉन : द एवल्युशन ऑव एजूकेशन थ्योरी लंदन मैकमिलन- पृष्ठ-40 ।

महात्मा गांधी जी के अनुसार शिक्षा शास्त्रियों को अपना कार्य करते हुये भविष्य के लिए एक निश्चित लक्ष्य को भी अपनी दृष्टि में रखना चाहिये ताकि जीवन समस्याओं को समाधान करने में समर्थ हो सके । महात्मा गांधी के शब्दों में :-

> "शिक्षा ही एक मात्र वह मूल्यवान वस्तु है जो विद्यार्थियों की क्षमताओं को इस प्रकार विकसित कर सकती है ताकि वे अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली जीवन समस्याओं को ठीकठीक समाधान करने में समर्थ हो सके।"[1]

इस प्रकार शिक्षा उद्देश्य विहीन व निश्चित निर्देशन से वंचित नहीं है, परन्तु एक निश्चित लक्ष्य शिक्षण का अनुशासित निर्देशन है । महात्मा गांधी ने भिन्न-भिन्न काल व स्थान के अनुसार शिक्षा को भिन्न भिन्न बिन्दुओं से देखा है । इसलिए अनेक उद्देश्य दृष्टिगत होते हैं, किन्तु उनके भिन्न-भिन्न उद्देश्यों को एक अन्तिम उद्देश्य में सम्मिलित करना असम्भव नहीं है । अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अन्य उद्देश्य पूरक हैं । सामान्य अध्येता के लिए महात्मा गांधी का दर्शन व शैक्षिक विचार एक विरोधी तत्व का बण्डल ही प्रतीत होगा,परन्तुयदि कोई व्यक्ति उनके लेखों व

1- महात्मा गांधी : हरिजन,(साप्ताहिक) 23-5-36,एन0पी0 नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद ।

भाषणों एवं कृतियों की गहराई में दृष्टिपात करेगा तो उसे अनुभव होगा कि उनके शिक्षा के सभी उद्देश्य जीवन के विभिन्न पहलुओं को ही प्रकट करते हैं, किन्तु जब उनके दर्शन के केन्द्र में उनकी संगति कर दी जाती है तो वे स्वयं एक पूर्ण सम्बद्ध ढाँचे का निर्माण कर देते हैं ।

अब हमें इस तथ्य की खोज करनी है कि उनके दर्शन में समस्त उद्देश्यों की एक पूर्ण संगति किस प्रकार घटित हुई है । महात्मा गांधी ... शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य बालक का सर्वतोमुखी विकास मानते हैं । शिक्षा के उद्देश्य को निश्चित करते हुये उन्होंने लिखा है कि :-

> "शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मानव के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में पाये जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का चतुर्मुखी विकास से है ।"[1]

महात्मा गांधी जी भारत को राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक दासता के बंधन से हमेशा के लिए मुक्त करना चाहते थे । वे साक्षरता को न तो शिक्षा मानते थे और न तो ज्ञान का आधार ही । इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि :-

> "साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है और न प्रारम्भ। यह केवल एक साधन है जिसके द्वारा पुरुष व स्त्री को शिक्षित किया जा सकता है ।"[2]

1- महात्मा गांधी-हरिजन [साप्ताहिक] 31-7-37, नवजीवन प्रेस अहमदाबाद ।

2- - तदैव -

शरीर, मन और आत्मा जिस विधा से विकसित हो और परिपुष्ट हो वही वास्तविक शिक्षा है । शिक्षा द्वारा मनुष्य के शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक सभी गुणों का विकास होना चाहिये । इसी कारण महात्मा गांधी जी अपने शैक्षिक उद्देश्यों की उपलब्धि हेतु "तीन आर" [रीडिंग, राइटिंग व अर्थमेटिक] की अपेक्षा "तीन एच" [हैन्ड, हेड तथा हार्ट] की शिक्षा पर बल देते हैं । इन तीनों तत्वों के सामन्जस्यपूर्ण विकास से बालक का सर्वतोमुखी विकास सम्भव है । महात्मा गांधी जी का कथन है कि :-

> "वाणी में उतार चढ़ावहोना उतना ही आवश्यक है जितना कि हाथ के प्रशिक्षण का । शारीरिक कसरत, हस्तकला, ड्राइंग और संगीत की शिक्षा साथ-साथ दी जाय ताकि बालक बालिकाओं के अन्दर निहित योग्यताओं को सर्वोत्तम रूप से विकसित किया जाय और शिक्षा के प्रति उनकी रूचि जाग्रत की जाय ।"[1]

महात्मा गांधी के विचार से हमारे जीवन का इस भौतिक एवं परलोक दोनों से सम्बन्ध है । इसलिए उन्होने शिक्षा के उद्देश्य को भौतिकवादी एवं आध्यात्मवादी दोनों दृष्टिकोणों से सम्बन्धित किया है ।

प्रथम - तात्कालिक उद्देश्य ।

द्वितीय-अन्तिम उद्देश्य या सर्वोत्तम उद्देश्य ।

1- महात्मा गांधी- हरिजन [साप्ताहिक] 11-9-37, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद ।

शिक्षा के तात्कालिक उद्देश्य

1- जीविकोपार्जन अथवा हस्त संस्कृति [कल्चर आँव हैण्ड] का उद्देश्य :-

हमने देखा है कि महात्मा गांधी जी के शैक्षिक सिद्धान्त उनके द्वारा दक्षिणी अफ्रीका के टालस्टॉय फार्म व फोनिक्स बस्ती तथा भारत के साबरमती आश्रम व सेवाग्राम में किये गये शैक्षिक प्रयोगों की उपज है । दक्षिणी अफ्रीका के प्रयोगों से उन्हें यह ज्ञात हो गया था कि :-

"बालक बालिकाओं का सर्वतोमुखी विकास करना ही वास्तव मे शिक्षा का कार्य है ।"[1]

महादेव देसाई ने इसी तथ्य को व्यक्त करते हुये लिखा है कि :-

"गाँधी जी ने अक्सर यह कहा है कि शिक्षा को बालक व बालिकाओं को पूर्ण मानव बनाना चाहिये,कोई भी शिक्षा उत्तम नहीं कही जा सकती जो उपयोगी नागरिक तथा बालक बालिकाओं को पूर्ण मानव नहीं बनाती है ।"[2]

1- महात्मा गांधी : हरिजन [साप्ताहिक] 18-9-37,नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद ।

2- देसाई महादेव :प्राइमरी एजूकेशन एण्ड विलेज,द इयर बुक आँव एजूकेशन,1940, इवान्स लन्दन, पृष्ठ-441 ।

अतः विद्यार्थियों की समस्त क्षमताओं को समनरूप से विकसित होने के लिए मस्तिष्क ,हृदय तथा हाथ इन तीनों की एकता तथा उनमें सामन्जस्य अवश्य होना चाहिये । तभी पूर्णमानव की प्रकृति की पूर्णता सम्भव होगी । इसी लिए महात्मा गांधी ने एक नूतन विचार हस्तकला द्वारा शिक्षा देना प्रस्तुत किया था । शिक्षा की समस्त प्रक्रिया को किसी हस्तकला या उद्योग को केन्द्र में रखकर ही परिचालित करनाचाहिये, क्योंकि मानव की मौलिक आवश्यकताओं ।भोजन,वस्त्र,आवास। की पूर्ति के बिना व्यक्ति में उच्च आदर्शों के प्रति विचार ही उत्पन्न न होगा । जीविकोपार्जन सम्बन्धी उद्देश्य का अभिप्राय विद्यार्थी की रोजी रोटी रूपी आवश्यकताओं की पूर्ति से है । यदि शिक्षा हमारी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करती है तो वह हमारे लिए व्यर्थ है । कुछ लोगों को शिक्षा का यह उद्देश्य तुच्छ और भौतिकवादी प्रतीत होता है, परन्तु हमें यह तथ्य अंगीकार करना पड़ेगा कि यदि हम भौतिक, नैतिक और मानसिक प्रगति की कामना करते है तो हमें अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को सर्व प्रथम सन्तुष्ट करना चाहिये । इसी विचार से प्रेरित होकर महात्मा गांधी जी ने शिक्षा के तात्कालिक उद्देश्य को मनुष्य की रोटी और रोजी की समस्या को समाधान करना बताया है । वे विद्यार्थी को स्वावलम्बी आत्म निर्भर बनाना चाहते थे । स्वावलम्बी शिक्षा के लक्ष्य पर महात्मा गांधी किसी प्रमाणिक ग्रन्थ का सहारा लेकर नहीं पहुँचे थे, बल्कि उन्होंने

इसकी अनुभूति स्वतंत्र रूप से की थी । यही उनकी विलक्षणता थी । इस सम्बन्ध में महादेव देसाई ने लिखा है :-

> "उन्होने किसी शैक्षिक सिद्धान्त का अध्ययन नहीं किया था । मैं यह भी नहीं सोचता हूँ कि वे "एमील" नामक किसी ग्रन्थ के अस्तित्व के विषय में जानते थे ।"[1]

महात्मा गांधी ने स्वावलम्बन शब्द को दो अर्थों में प्रयोग किया है :-

1- हस्तकला केन्द्रित शिक्षा बालकों को स्वावलम्बी बनाती है ।

2- यह शिक्षा स्वयं में स्वावलम्बी है ।

महात्मा गांधी जी की इच्छा थी कि प्रत्येक विद्यार्थी बेसिक विद्यालय छोड़ने के पश्चात व्यवसाय को प्राप्त कर स्वयं स्वावलम्बी बन सके । दूसरे शब्दों में नई शिक्षा हस्तकला रूपी तत्व द्वारा बालको को अपनी जीविका कमाने का प्रशिक्षण देकर बेरोजगारी की समस्या का समाधान प्रस्तुत करेगी । इस प्रकार विद्यालयीय पाठ्यक्रम की पूर्णता के पश्चात वे स्वावलम्बी बन सकेगें ।

विद्यार्थियों को आत्म निर्भर बनाने के लिए महात्मा गांधी बार-बार जोर देते हैं, क्योंकि उनका कहना है :-

---

1- देसाई महादेव : द इयर बुक ऑव एजूकेशन, 1940 इवान्स लन्दन, पृष्ठ-436 ।

"शिक्षा को बालकों को बेरोजगारी के विरुद्ध एक प्रकार की सुरक्षा देनी चाहिये । सात वर्ष का कोर्स समाप्त करने के बाद चौदह वर्ष की आयु में बालक को कमाने वाले व्यक्ति के रूप में विद्यालय से बाहर भेजा जाना चाहिये ।"[1]

महात्मा गांधी की इच्छा थी कि प्रत्येक बालक अपने माता-पिता के कार्यों में सहयोग प्रदान करे । इस प्रकार की भावना की उत्पत्ति करना वास्तव मे स्वय में शिक्षा है । इस प्रकार शिक्षा द्वारा वे समाज में व्याप्त बेरोगारी की समस्या की जड़ को काटना चाहते हैं ।

महात्मा गांधी जी की शिक्षा का माध्यम कर्म है :-

सन् 1902 में डॉ0 जाकिर हुसैन ने अखिल भारतीय नई तालीम के द्वितीय अधिवेशन में शिक्षा "कर्म" अर्थात "श्रम" की व्याख्या इस प्रकार की है :-

"हम लोग केवल वर्तमान समय में ही शिक्षा का माध्यम "कर्म" नहीं मानते है बल्कि ---- प्रत्येक मनुष्य ने यह बात अपने तरीको से कही है । एक व्यक्ति के लिए "कर्म" सिद्धान्त है ।---- उसे पाठ्यक्रम के विषय का एक हिस्सा बनाया जाय । दूसरे व्यक्ति के लिए "कर्म" पाठ्यक्रम का एक विषय रहना चाहिये । ---- तीसरे व्यक्ति के

1- महात्मा गांधी : हरिजन (साप्ताहिक) 11-9-37 एवं 18-9-37, नव जीवन प्रेस, अहमदाबाद ।

> लिए "कर्म" द्वारा उत्पादन होना चाहिये और कुछ ऐसे लोग भी हैं जो "कर्म" को ईश्वर का वरदान मानते हैं । उनकी क्रियाशीलता उनकी रचनात्मक शक्तियों का द्योतक है ।"[1]

डॉ० हुसैन ने प्रत्येक प्रकार के "कर्म" द्वारा ज्ञान प्राप्ति की ओर संकेत किया है, परन्तु महात्मा गाँधी जी ने "सोद्देश्य पूर्ण श्रम की इकाई " को ही शिक्षा का माध्यम माना है, अर्थात शिक्षा उन्हीं कर्मों द्वारा देनी चाहिये जिनसे विद्यार्थियों की व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके । उत्पादक कर्म ही उपयोगी कर्म है । शिक्षा में "कर्म" के विषय में अन्य देशों में भी चिन्तन किया गया है ।:-

> "रूस के विद्यालयों में शिक्षण का सिद्धान्त मुख्यत: इसी बात पर आधारित है कि सभी शैक्षिक क्रियाशीलन "श्रम" पर अवलम्बित रहे । वहाँ अध्ययन की योजना सम्मिलित एवं संश्लिष्ट तथा समवाय के विस्तृत क्षेत्र पर आधारित है । ---- विज्ञान व मानव शास्त्र के सभी विषयों को "श्रम" के केन्द्र बिन्दु में और समाज व प्रकृति को उसके अगल बगल रखकर विभाजित किया गया है ।"[2]

1- टू इयरस ऑव वर्क, सेवा ग्राम, वर्धा, पृष्ठ-[illegible] ।

2- - तदैव - पृष्ठ-165-166 ।

जॉन डिवी ने भी अपने शिक्षा सम्बन्धी विचार इस तथ्य को दृष्टि मे रखकर निम्नलिखित पंक्तियों में प्रकट किये हैं :-

"हम लोगों को सभी प्रकार के काष्ठ,लोहे, बुनाई, सिलाई तथा रसोई के कामों का व्यवहार जीवन यापन की विधियों जैसा करना चाहिये और शिक्षण को मात्र अध्ययन ही नहीं मानना चाहिये। हम लोगों को इन कामों की कल्पना उनकी सामाजिक सार्थकता की दृष्टि से करनी चाहिये अर्थात उन प्रक्रियाओंके रूप में जिनसे समाज चलता है,उन साधनों के रूप में जिनके द्वारा बालक सामुदायिक जीवन की आवश्यकताओं को समझ सके और वे तरीके जिनके द्वारा मानव की बढ़ती हुई अन्तर्दृष्टि एवं प्रज्ञा के कारण इन आवश्यकताओं की पूर्ति होती आई है, संक्षेप में उनके कर्तव्यों द्वारा विद्यालय सामुदायिक जीवन का एक साधन बनेगा न कि पाठों के अध्ययन का केवल एक स्थान।"[1]

इस प्रकार अनेक चिन्तकों ने "कर्म" द्वारा ज्ञान देने की परिकल्पनाएँ की है तथा उनका प्रयोग भी किया है। जब से मानव के व्यक्तित्व के सामन्जस्य पूर्ण विकास की बात की गई तभी से मानव व्यक्तित्व के इन चार पक्षों- शरीर, हृदय, मन तथा आत्मा के विकास पर जोर दिया जाता रहा है।

1- आचार्य कृपलानी : जे0बी0 द्वारा उद्धृत द लेटेस्ट फैड, सेवा ग्राम हिन्दुस्तानी तालिमी संघ, पृष्ठ-34 ।

कर्म के प्रति इग्लैण्ड की शिक्षा परिषद का विचार है :-

"जिस समाज का बालक सदस्य होता है उसकी भलाई को ध्यान में रखते हुये बालक की समग्र क्षमताओं का विद्यालयीय परिवेश में विकास करना ही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये।"[1]

प्राचीन भारत की शिक्षा व्यवस्था में बालक की सम्पूर्ण प्रकृति के विकास का लक्ष्य रखा गया था न कि केवल बौद्धिक विकास का। महात्मा गांधी भी पूर्ण मानव विकास हेतु हृदय मस्तिष्क या मन और हाथ तीनों की एकता पर बल देते हैं।

महात्मा गांधी जी की शैक्षिक विचार धारा की मौलिकता इस बात में है कि वे समस्त विकास को हस्तकला की शिक्षा द्वारा ही करना चाहते हैं। "हरिजन साप्ताहिकी" में गांधी जी ने अपने इस नये विचार को व्यक्त करते हुये लिखा है :-

"किसी उद्योग या हस्तकला को बीच में रखकर उसके जरियें ही समस्त सामान्य शिक्षा की प्रक्रिया को परिचालित करना चाहिये। किसी हस्तकला के विज्ञान व कला के व्यावहारिक ज्ञान के प्रशिक्षण द्वारा ही शिक्षा दी जानी चाहिये। शरीर मन व आत्मा की सभी शिक्षायें हस्तकला द्वारा ही बच्चों को प्रदान की जानी चाहिये।"

1- हैण्ड बुक आॅव सजेशन्स,फार दी कन्सीडरेशन आॅव टीचर्स एण्ड अदर्स कन्सर्न्ड इन द वर्क आॅव पब्लिक एलीमेन्ट्री स्कूलस, हिज मेजस्टीस स्टेशनरी आफिस, लन्दन,पृष्ठ-12

महात्मा गांधी का उपर्युक्त विचार केवल नया ही नहीं वरन् क्रान्तिकारी भी हैक्योंकि मध्य युग में :-

> "व्यावसायिक प्रशिक्षण शैक्षिक लक्ष्य से नहीं प्रदान किया जाता था । उस समय हस्तकला हस्तकला के लिए ही सिखाई जाती थी । बौद्धिक विकास के लिए बिल्कुल प्रयत्न नहीं किया जाता था ।"[1]

यद्यपि उपर्युक्त तथ्य से सहमत होना कठिन है किन्तु हमें इस विचार की सहमति की आवश्यकता भी नहीं, हमें तो यह देखना है कि महात्मा गांधी जी ने इस सम्बन्ध में क्या विचार व्यक्त किया है । महात्मा गांधी जी ने कहा है :-

> "मैं नहीं जानता कि मध्य युग में क्या हुआ था परन्तु मैं मानता हूँ कि उन दिनों मध्य युग या किसी युग में हस्तकला के जरिये सम्पूर्ण शिक्षा देने की बात लोगों के सामने नहीं थी, धन्धा सिर्फ धन्धे के ख्याल से सिखाया जाता था । अत: यह विचार मौलिक है ।"[2]

इससे प्रतीत होता है कि पहले भी हृदय, मस्तिष्क एवं हाथ की शिक्षा दी जाती थी । परन्तु इसके पहले हाथ की संस्कृति की शिक्षा द्वारा सम्पूर्ण शिक्षा देने की बात महात्मा -

---

1- एजूकेशनल रीकन्सट्रक्शन, हिन्दुस्तानी तालिमी संघ, वर्धा 1939, पृष्ठ- 118 ।

2- महात्मा गांधी : हरिजन (साप्ताहिक) 16-10-37, नव जीवन प्रेस, अहमदाबाद ।

गांधी जी के अतिरिक्त किसी के मस्तिष्क में नहीं आई थी, यही वास्तव में महात्मा गांधी जी की मौलिकता है ।
यद्यपि मानवीय क्रियाओं द्वारा शिक्षा देने का विचार उतना पुराना है जितनी मानवता स्वयं में है । प्रारम्भिक मनुष्य क्रियात्मक श्रम द्वारा ही सभी वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करते थे । रूसो ने लिखा है कि :-

> "पुस्तक पढ़ाने की अपेक्षा मैं विद्यार्थियों को कारखाने में लगाना उचित समझता हूँ, उनके हाथ, मस्तिष्क के विकास कें लिए काम करेगें । जब वह अपने को कामगार अनुभव करेगा तो वह दार्शनिक कहलायेगा ।"[1]

शारीरिक श्रम के शैक्षिक महत्व के विषय में एडाल्फ फ्रेरी की निम्न लिखित पंक्तियाँ अच्छा प्रकाश डालती है :-

> "सेम्पियस के अपने क्रियाशील विद्यालय में पॉल रॉबिन ने सभी शारीरिक क्रियाओं का प्रचलन कर रखा था और उनका बौद्धिक शिक्षा के लिए साधन रूप में प्रयोग करते थे ।"[2]

1- रूसो : "एमिल" या "शिक्षा" एवरीमैन एडीशन, डेन्ट, लंदन 1925, पृष्ठ-140 ।

2- एडाल्फ फ्रेरी : द एक्टिविटी स्कूल एडीटेड बाई के0जी0 सैयदन, किताबिस्तान, इलाहाबाद, 1938, पृष्ठ-38 एफ

इस प्रकार हम देखते हैं कि पॉल, रॉबिन, फ्रोबेल, जॉन डिवी, रूसो तथा रूस के शिक्षा शास्त्री सभी शारीरिक श्रम की शिक्षा पर बल प्रदान करते हैं, किन्तु महात्मा गांधी की विचारधारा में जो मौलिकता एवं विलक्षणता है वह इनमें नहीं है, क्योंकि किसी भी शिक्षाशास्त्री ने हस्तकला के द्वारा सम्पूर्ण अभि-क्षमताओं एवं योग्यताओं के विकास की बात करके पूर्ण मानव निर्माण की कल्पना नहीं की है। महात्मा गांधी जी हस्तकला को अलग विषय के रूप में सिखाना नहीं चाहते, जैसा कि अन्य देशों के शिक्षा शास्त्रियों ने करने को कहा है, बल्कि शिक्षा का केन्द्र हस्तकला ही होगा और अन्य विषय उससे सम्बन्धित करके पढ़ाये जायेगें।

भारत मे यूनेस्को प्रोजेक्ट के संदर्भ मे अपने विचार डा० जाकिर हुसैन ने इस प्रकार व्यक्त किये हैं :-

"हस्तकला के जरिये शिक्षा प्रदान करने से प्राय: सभी समस्यायें हल हो जायेगी जबकि अन्य किसी से यह सम्भव नहीं हो सकता।"[1]

महात्मा गांधीजी मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और आर्थिक तीनों की दृष्टि से हस्तकला को श्रेष्ठ समझते हैं।

1- डा० जाकिर हुसैन : यूनेस्को प्रोजेक्टस इन इण्डिया, पृष्ठ-92 एफ ¤इटैलिक्स माइन¤ ।

व्हाइट हैड ने भी हस्त प्रशिक्षण पर जोर दिया है । उन्होंने लिखा है :-

> "मुख्य बात तो यह कि क्यामानव हाथ ने मनुष्य के मस्तिष्क को बनाया है? या मस्तिष्क ने हाथ का निर्माण किया है वास्तव में हाथ व मस्तिष्क दोनों पारस्परिक रूप से व घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित हैं ।"[1]

महात्मा गांधी जी की भाँति इन्होंने भी शिक्षा की योजना बनाते समय हाथ और मस्तिष्क के आपसी सम्बन्ध को ध्यान में रखने की सम्मति दी है । महात्मा गांधी की मान्यता है कि मनुष्य ईश्वर का ही रूप है, जिस प्रकार ईश्वर सृष्टि करता है उसी प्रकार मनुष्य भी निर्मायक है । यदि निर्माण की शक्ति अथवा योग्यता का विकास शिक्षा नहीं कर सकती तो ऐसी शिक्षा व्यर्थ है । विद्यार्थियों की इस योग्यता का विकास हस्तकला अथवा शरीर श्रम की शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है, परन्तु क्रियाशीलन लाभदायक होनी चाहिये तभी वह शिक्षा के रूप में स्वीकार की जायेगी । महात्मा गांधी ने अपने शैक्षिक सिद्धान्त की इस प्रकार व्याख्या की है :-

> "मैं मानता हूँ कि सच्ची बौद्धिक शिक्षा केवल

1- व्हाइट हेड,ए0एन0;"एम्स ऑव एजूकेशन एण्ड अदर एसेज" विलियम्स एण्ड नारगेट, लन्दन,1950, पृष्ठ-78 ।

शारीरिक अवयवों जैसे हाथ,पैर, आँख,कान,नाक आदि के उचित व्यायाम व प्रशिक्षण के जरिये ही प्राप्त हो सकती है । दूसरे शब्दों में शारीरिक अवयवों का बुद्धिमता पूर्वक प्रयोग करने से विद्यार्थियों में श्रेष्ठ एवं तीव्रतम ढंग से बुद्धि का विकास होता है । इस सिद्धान्त के अनुसार यह सोचना व्यर्थ है कि किसी एक के स्वतंत्र विकास से वे सभी क्षमतायें विकसित हो सकती हैं ।"[1]

किसी मूल उद्योग को केन्द्र में रखकर बालक की समस्त योग्यताओं का विकास करना ही महात्मा गांधी की शिक्षा का लक्ष्य है । महात्मा गांधी शिक्षा में उत्पादन शीलता, सामाजिक तथा प्राकृतिक पर्यावरण को विशेष महत्व देते हैं । महात्मा गांधी ने इस सम्बन्ध में कहा है कि :-

"मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस प्रकार की शिक्षा से मस्तिष्क व आत्मा का सर्वोच्च विकास होगा । हस्तकला यंत्रवत नहीं सिखाई जायेगी । बालक हस्तकला की प्रत्येक प्रक्रिया के कारण को समझता जायेगा । ---- एक साधारण बढ़ई किसी को बढ़ई गीरी का ज्ञान यंत्रवत देता है किन्तु वैज्ञानिक ढ़ग से बढ़ईगीरी की शिक्षा प्राप्त शिक्षक बढ़ईगीरी के ज्ञान के साथ-साथ गणित,लकड़ियों के भेद,उसके उत्पादन क्षेत्र आदि का भी ज्ञान दे सकता है ।--- इस प्रकार हस्तकला के ज्ञान से गणित, भूगोल, इतिहास व कृषिशास्त्र का ज्ञान किसी को भी

1- हरिजन (साप्ताहिक) 8-5-37, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद ।

कराया जा सकता है ।"[1]

महात्मा गांधी का इस प्रकार का शैक्षिक प्रस्ताव वास्तव में अपने में स्वयं क्रान्तिकारी है, क्योंकि इसमें समय व श्रम दोनों की बचत होती है । इसका तात्पर्य हर प्रकार की मितव्यता ही है । गांधी जी समस्त विषयों को जैसे इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान, संगीत, चित्रकारी व भाषा को समवाय विधि से एक निश्चित योजना से पढ़ाने के पक्षंधर हैं, गांधी जी के हस्तकला केन्द्रित शिक्षा के पक्ष में काका साहब कालेलकर ने कहा है कि :-

> "अनुभव ने हमें बताया है कि विद्यार्थियों के पूर्ण व्यक्तित्व विकास हेतु शरीर श्रम द्वारा शिक्षा नितान्त आवश्यक है । हमनें अब तक हृदय व मानसिक विकास हेतु वाणी व कर्ण का प्रयोग करना ही जाना है । नेत्रों का प्रयोग भी निरी-क्षण के अतिरिक्त अन्य विषयों को कंठस्थ करने में ही किया है, परन्तु अब हमें यह अनुभव करना चाहिये कि सच्चे अर्थों में हृदय व मन का विकास शरीर श्रम द्वारा ही हो सकता है ।"[2]

हस्तकला के ज्ञान से विद्यार्थियों में आत्म सम्मा-नित नागरिक होने का भाव, भावी जीवन में अपराश्रिता का

1- हरिजन ‖साप्ताहिक‖ 31-7-37, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद ।

2- एजूकेशनल रीकन्स्ट्रक्शन, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, वर्धा, 1939, पृष्ठ-137 ।

विचार उत्पन्न होगा जो किसी भी राष्ट्र के नागरिक का प्रमुख गुण है । के0जी0मसरूवाला ने कहा है कि :-

> "उद्योग निर्देशन का माध्यम साधन ही नहीं बल्कि कुछ सीमा तक मानव जीवन की अत्याज्य परि-स्थिति व निर्देशन का साध्य भी है । शिक्षा का उद्देश्य शरीर श्रम की प्रतिष्ठा, ईमानदारी से स्वश्रम द्वारा जीविकोपार्जन के कर्तव्य तथा सड़क पर से कूड़ा उठाने बाले मेहतर के कार्य के प्रति उत्तम भाव को पैदा करना है ।"[1]

श्री महादेव देसाई ने लिखा है कि गांधी जी की शिक्षा का लक्ष्य ग्रामीण बच्चों की शिक्षा से ही है । वे ग्राम को स्वर्ग बनाना चाहते हैं ।

> "गांधी जी के शिक्षा का लक्ष्य गाँव के बच्चों को उचित शिक्षा देना है, उनकी शिक्षा उनके वंशानुगत व्यवसाय व पर्यावरण के अनुकूल जीवन के लिए होनी चाहिये ।"[2]

महात्मा गांधी जी के अनुसार केवल उद्योग सीखने तथा उसके सम्बन्ध में जानकारी कर लेने से ही जीवन की पूरी शिक्षा नहीं हो पाती है । अत: शिक्षा के लिए समाज व प्रकृति को भी माध्यम माना गया है । बालक की वही शिक्षा पूरी हो

1- हरिजन ॥साप्ताहिक॥ 4-12-37 नव जीवन प्रेस, अहमदाबाद

2- देसाई महादेव " द इयर बुक आॅव एजूकेशन" लन्दन, इवान्स ब्रदर्स फार द यूनिवर्सिटी आॅव लन्दन, इन्स्टीटयूट आॅव एजूकेशन, पृष्ठ-449 ।

सकती है जो उद्योग केन्द्रित, समाज केन्द्रित तथा प्रकृति केन्द्रित हो । महात्मा गांधी जी ने अपने भाषण में कहा है कि :-

"सन् 1915 ई0 से अब तक हिन्दुस्तान के गाँवों में जितना मैं घूमा हूँ और जिस हद तक उनके अन्दर मैं बैठा हूँ, अतना शायद ही कोई घूमा हो, दक्षिण अफ्रीका में मैनें इसका खूब अनुभव किया है प्राथमिक शिक्षा की जो शक्ल आज है उसे मैनें गाँव में देखा है । गाँव के लड़को की पढ़ाई का न कोई ध्येये है न कोई ढंग है । इसलिए मैं समझता हूँ कि अगर हम देहातों को कुछ देना चाहते हैं तो सेकेन्डरी व प्राइमरी को एक साथ मिला दें । इसलिए जो कुछ हमने बनाया है और बनाने जा रहे हैं वह शहरों के लिए नहीं बल्कि पूरे का पूरा गाँव के लिए है । ------ किसी उद्योग या हस्तकला को बीच में रखकर उसके जरिये ही सारी शिक्षा दी जानी चाहिये । --- हम तो धन्धे व हस्तकला की मदद से दिमाग को भी आला बनाना चाहते हैं ।"[1]

महात्मा गांधी ने अपनी शिक्षा योजना को मनोवैज्ञानिक मानते हुये कहा है कि "हमारी शिक्षा क्रान्तिकारी है।" मस्तिष्क की शिक्षा हाथ से ही देनी चाहिये । यदि मैं कवि होता तो हाथ की पाँचो अगुलियों की क्षमताओं पर कविता लिखता । आप यह क्यों सोचते हैं कि मस्तिष्क ही सब कुछ है और हाथ व पैर कुछ नहीं हैं ।जो अपने हाथ का प्रशिक्षण नहीं

1- महात्मा गांधी : भाषण वर्धा सम्मेलन, 22 अक्टूबर 1937 ।

लेता है उसके जीवन का आनन्द ही समाप्त हो जाता है । उसकी सभी क्षमताओं को प्रशिक्षित नहीं किया जा सकता है । केवल पुस्तकीय शिक्षा विद्यार्थियों का ध्यान पूर्ण रूप से नहीं आकर्षित कर सकती है, पुस्तकीय विद्या के शब्दों से छात्रों का मस्तिष्क थक जाता है और ध्यान इधर उधर भटक जाता है । परिणाम यह होता है कि हाथ वह काम करने लगता है जो उन्हें नहीं करना चाहिये, नेत्र वह देखता है जो उसे नहीं देखना चाहिये, कान वह सुनने लगते हैं जो उन्हें नहीं सुनना चाहिये और विद्यार्थी को जो करना, देखना व सुनना चाहिये उसे नहीं करते हैं ।"[1]

हम देखते हैं कि महात्मा गांधी जी चाहते थे कि प्रत्येक बालक कमाते हुये शिक्षा ग्रहण करे । उसका परिश्रम उसके शिक्षा का एक हिस्सा होना चाहिये और जिस समाज में वह रहता है उसके अनुकूल बनने में शिक्षा को सहयोग देना चाहिये ।

2- ज्ञानात्मक, सांस्कृतिक अथवा मस्तिष्क की वृद्धि का उद्देश्य :- (नालेज कल्चर अथवा कल्ट ऑव हैड)

जीविकोपार्जन के उद्देश्य के विरोधी प्राय: सांस्कृतिक या ज्ञान के विकास अथवा मस्तिष्क की वृद्धि के शैक्षिक

1- एजूकेशनल रिकन्स्ट्रक्शन, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, वर्धा 1939

उद्देश्य की चर्चा करते हैं और इसे उसकी अपेक्षा अधिक महत्व प्रदान करते हैं । शिक्षा और ज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध आदि काल से रहा है कभी मुख्य और कभी गौड़ । सभी दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री इसे अपनाने के लिए अपना समर्थन देते रहे हैं । प्रायः इस लक्ष्य से यह अर्थ ग्रहण किया जाता रहा है कि शिक्षा इस उद्देश्य से प्रदान की जावे ताकि ज्ञान चाहे वह भौतिक हो या आध्यात्मिक उसकी बृद्धि हो । "वेबस्टर डिक्सनरी" में ज्ञान का अर्थ निम्न प्रकार से अभिव्यक्त किया गया है :-

> "ज्ञान वह है जो ज्ञात है, जो जानकारी के द्वारा सुरक्षित है या वह परिचितता जो वास्तविक अनुभव से प्राप्त होती है ।"

इस परिभाषा से ज्ञात होता है कि शिक्षा की प्रक्रिया में विद्यार्थी स्वयं ज्ञान ग्रहण करता है । आदर्शवादी प्लेटो विचारों द्वारा ज्ञान प्राप्ति की बात करते हैं जबकि प्रकृतिवादी एवं प्रयोजनवादी अनुभव एवं प्रयोग से इसकी उपलब्धि मानते हैं ।

व्यक्ति एवं पर्यावरण के मध्य क्रिया प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप जो प्राप्त होता है वह ज्ञान है, और इसे संगठित, सुरक्षित एवं संचित करना ही शिक्षा है या संस्कृति है । इस प्रकार संस्कृति स्वयं शिक्षा हो जाती है । जॉन डिवी ने उसका समर्थन किया है उनके अनुसार सच्चा ज्ञान वही है जो हमारे संस्कारों में संगठित होता है जिसके द्वारा हम अपनी

आवश्यकताओं के अनुकूल वातावरण को बनाते हैं और जिस परिस्थिति या वातावरण में हम रहते हैं उसके अनुकूल हम अपनी इच्छाओं और उद्देश्यों को भी बदलते हैं। ज्ञान का तात्पर्य मानसिक क्रियाओं के कार्यशीलन से भी होता है।ज्ञान दो प्रकार से अर्जित किया जाता है। प्रथम बिना शिक्षण के खोज द्वारा तथा दूसरा शिक्षण द्वारा। इस प्रकार ज्ञान वाहय वस्तुओं के तथा अन्त: प्रज्ञा ﴾इन्टुशन﴿ के पारस्परिक सम्बन्ध से ही प्राप्त होता है। इस प्रकार ज्ञान के लिए दोनों का होना आवश्यक है। दोनों प्रकार के ज्ञान का हमारे जीवन में महत्त्व है।

प्रकृति ने मानव को ज्ञानार्जन हेतु बुद्धि, विचार, स्मरण, कल्पना, ध्यान प्रत्यक्षीकरण, प्रत्ययीकरण आदि शक्तियाँ प्रदान की है। अपने जीवन के व्यवहार को समयानुकूल अच्छी तरह सम्पादित करने के लिए प्राणी ज्ञान का उपयोग करता है। ज्ञान का अर्थ संकुचित नहीं बल्कि व्यापक है। सांस्कृतिक उद्देश्य के अनुसार किसी भौतिक उपयोग के अतिरिक्त ज्ञान धारण करना श्रेष्ठ है।

कार्डिनस न्यू मैन के विचार को उद्धृत करते हुये हैम्पटन ने लिखा है :-

"इस प्रकार के ज्ञान की विशेषता स्वतंत्रता, समानता, शान्ति और सुधार एवं बुद्धिमता है।

मैनें इसे पूर्व मे दार्शनिक प्रवृति के नाम से पुकारा है ।"[1]

शिक्षा के सांस्कृति उद्देश्य को मानने वाले विद्यार्थी को नयी परिस्थितियों में व्यवहार करने के लिए उनके मस्तिष्क को बौद्धिक कार्यों में लगाकर प्रशिक्षित करने की बात करते हैं, परन्तु यह ध्यान रखना पड़ेगा कि ज्ञान ही मात्र संस्कृति नही है । डा० राधा कृष्णन ने कहा है कि :-

> "वह ज्ञान जो उत्सुकता को शान्त करता है वह संस्कृति से भिन्न है, संस्कृति तो व्यक्तित्व को चमकाती है । संसार के नायकों की जन्मतिथि याद करना, अटलांटिक महासागर को तीव्रगति से पार करने वाले जहाजों के नाम स्मरण करना तथा हाल के महत्वपूर्ण व्यक्तियों की जानकारी करना संस्कृति नहीं है ।"[2]

उन्होने पुन: लिखा है कि :-

> "उपलब्ध संस्कृति की तालिका बद्ध सूचनाओं की मात्रा द्वारा ही संस्कृति को जाँचा नहीं जा सकता, किन्तु जीवन के तथ्यों के प्रति मानसिक गुणों द्वारा ही संस्कृति की पहिचान की जा सकती है ।"[3]

1- एच०वी० हैम्पटन : "सेलक्शन्स ऑव न्यूमैन्स आडिया ऑव अ यूनिवर्सिटी" बाम्बे, लॉग मेन्स, पृष्ठ-37 ।

2- डा० राधा कृष्णन एस० : "फ्रीडम एण्ड कल्चर" मद्रास, नतेसन पृष्ठ-37 ।

3- - तदैव - पृष्ठ-23 ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी शिक्षा शास्त्री चाहे वे किसी भी दार्शनिक सम्प्रदाय के क्यों न हो, ज्ञान को ही अपने शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन माना है।

व्यावहारिक दार्शनिक होने के कारण महात्मा गांधी जी की संस्कृति के प्रति अवधारणा विशेष रूप से गांधीवादी है। महात्मा गांधी जी के अनुसार सत्याग्रही के लिए ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। ज्ञान हृदय की संस्कृति को बहुत सहयोग देता है। प्रेम व सत्य का ज्ञान एक दूसरे के पूरक एवं सहयोगी हैं। अज्ञानी द्वारा प्रदर्शित प्रेम शारीरिक वासना है। ज्ञान ही वह साधन है जो प्रेम को इस संकुचित क्षेत्र से बाहर निकाल सकता है। जब मानव अपने भीतर निहित सत्यता की खोज करता है और अन्वेषित सत्य के माध्यम से शेष सृष्टि के साथ अपना अनिवार्य तादात्म्य स्थापित कर लेता है, उसी क्षण उसका प्रेम शारीरिक वासना और तात्कालिक स्वार्थ की सीमा से परे हो जाता है। इस प्रकार सात्विक प्रेम की उपज होती है। अतः व्यक्तियों के चरित्र का उचित मूल्यांकन करने के लिए ज्ञान आवश्यक हो जाता है। एस०के०बोस ने कहा है :-

> "हमारी इच्छायें व प्रेरणायें दो वर्गों में बँटी हैं- स्वार्थी और निःस्वार्थी। सभी स्वार्थपूर्ण इच्छायें अनैतिक है। जबकि दूसरों की भलाई के लिए कार्य करने की अपनी इच्छा को बढ़ाना ही वास्तव में नैतिक इच्छा अथवा निःस्वार्थ इच्छा है।"[1]

1- बोस एन०के०, सेलेक्शनसफ्राम गांधी, दनवजीवन पब्लिशिंगहाउस 1948, पृष्ठ-113 ।

ज्ञान से व्यक्ति स्वयं का आत्म विश्लेषण करने में भी समर्थ होता है । ज्ञान मानव को जीवन में प्रगति करने का अवसर प्रदान करता है । कोई भी व्यक्ति बिना ज्ञान के ईश्वरानुभूति करने में समर्थ नहीं हो सकता । नैतिकता की जानकारी हेतु ज्ञान आवश्यक है । पहले की अपेक्षा और अधिक नैतिक जीवन बनाने के लिए सतत प्रयत्न करना ही ज्ञान नहीं है बल्कि उस बौद्धिक विकास को बढ़ाना है जिसके माध्यम से हम गलत व सही का निर्णय करने में समर्थ हो जाते हैं । इसी तथ्य को स्टीफेन्स ने इस प्रकार कहा है :-

> "एक नैतिक जीवन अच्छा बनने का लगातार प्रयास ही नहीं है, बल्कि उस कार्य क्षेत्र को बढ़ाना है जिसके माध्यम से हम गलत और सही में अन्तर कर सकें ।"[1]

इस प्रकार नैतिकता का आन्तरिक भाव उन्नतिशीलता है न कि स्थिरता । प्रथाओं की नैतिकता स्थिर होती है । वह सामान्य जीवन के मानकों का अतिक्रमण नहीं करती है । जब ऐसी स्थिर प्रथाओं का विरोध करके नूतन प्रथा को स्थापित करने का प्रयास किया जाता है तब पूर्व प्रथायें विद्रोही हो जाती हैं और नैतिकता का मापदण्ड तत्कालीन परिस्थिति में समाप्त

1- स्पिंक्स, स्टीफेन्स, पॉलटिक्स एण्ड मॉरैलटी" विश्वभारती क्वाटरली, गांधी मेमोरियल पीस नम्बर, शान्ति निकेतन, 1949, पृष्ठ-205 ।

हो जाता है । महात्मा गांधी के मस्तिष्क में इस अन्तर का पूर्वाभास हो गया था । इसी कारण हिन्दू दर्शन के समान ही वे यह विश्वास करते हैं कि व्यक्ति व समाज दोनों का विकास जीवन के पाँच नैतिक गुणों - सत्य, अहिंसा, इन्द्रिय निग्रह या आत्म नियन्त्रण, अस्तेय और अपरिग्रह पर आधारित है, परन्तु उन्नतिशील नैतिकता के सम्बन्ध में उन्होंने उपर्युक्त पाँचों गुणों की प्रत्येक की व्याख्या अपने जीवन दर्शन के अनुसार प्रस्तुत की है जो उनके मौलिक चिन्तन व आन्तरिक सूझबूझ का द्योतक है ।

गांधी जी के अनुसार सापेक्षिक सत्य स्थिर नहीं है बल्कि सत्य का परीक्षण व पुनर्सुधार सदैव होता रहता है । वास्तव में सत्य वह है जो :-

"तुम्हें तुम्हारी आन्तरिक आवाज बताती है ।"[1]

इसीलिये "उनकी सम्मति के अनुसार सत्य का अनुशरण करना किसी भी प्राणी के लिये अहितकर नहीं है ।"[2]

गांधी जी के अनुसार सापेक्षिक सत्य को गम्भीरता से मानते हुये निरपेक्ष सत्य की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते रहना चाहिये । अत: अहिंसा ही उस सत्य की प्राप्ति का मुख्य साधन है । अहिंसा अपने क्रियात्मक रूप में :-

---

1- यंग इण्डिया 31-12-31 वीकली, द नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद

2- गांधी एम०के०, हिन्दू धर्म, द नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद 1950, पृष्ठ-284 ।

हो जाता है । महात्मा गांधी के मस्तिष्क में इस अन्तर का पूर्वाभास हो गया था । इसी कारण हिन्दू दर्शन के समान ही वे यह विश्वास करते हैं कि व्यक्ति व समाज दोनों का विकास जीवन के पाँच नैतिक गुणों - सत्य, अहिंसा, इन्द्रिय निग्रह या आत्म नियन्त्रण, अस्तेय और अपरिग्रह पर आधारित है, परन्तु उन्नतिशील नैतिकता के सम्बन्ध में उन्होंने उपर्युक्त पाँचों गुणों की प्रत्येक की व्याख्या अपने जीवन दर्शन के अनुसार प्रस्तुत की है जो उनके मौलिक चिन्तन व आन्तरिक सूझबूझ का द्योतक है ।

गांधी जी के अनुसार सापेक्षिक सत्य स्थिर नहीं है बल्कि सत्य का परीक्षण व पुनर्सुधार सदैव होता रहता है । वास्तव में सत्य वह है जो :-

"तुम्हें तुम्हारी आन्तरिक आवाज बताती है ।"[1]

इसीलिये "उनकी सम्मति के अनुसार सत्य का अनुशरण करना किसी भी प्राणी के लिये अहितकर नहीं है ।"[2]

गांधी जी के अनुसार सापेक्षिक सत्य को गम्भीरता से मानते हुये निरपेक्ष सत्य की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते रहना चाहिये । अतः अहिंसा ही उस सत्य की प्राप्ति का मुख्य साधन है । अहिंसा अपने क्रियात्मक रूप में :-

---

1- यंग इण्डिया 31-12-31 बीकली, द नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद

2- गांधी एम0के0, हिन्दू धर्म, द नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद 1950, पृष्ठ-284 ।

"प्रेम के सिवा कुछ नहीं है, प्रेम अपने पड़ोसियों से अपने मित्रों से ही नहीं बल्कि उनके साथ भी करना चाहिये जो हमारे शत्रु हैं ।"[1]

गांधी जी का विश्वास था कि जो व्यक्ति मनुष्य मात्र की सेवा करने का भाव रखता है या करना चाहता है उसे प्रथमतः स्वैच्छिक विपन्नता को स्वीकार करना पड़ेगा । इनकी विपन्नता "त्याग है जिसे व्यक्ति प्रसन्नता एवं शान्ति के सुनहरे दरवाजे के रूप में अंगीकार करता है । "विपन्नता" के भाव का यदि और स्पष्ट अर्थ अभिव्यक्त किया जाय तो इसकी अवधारणा अपरिग्रह और अस्तेय से ही है । गांधी जी उस वस्तु को चोरी समझते हैं जिसका हम अपनी वास्तविक आवश्यकताओं के अतिरिक्त संग्रह व प्रयोग करते हैं । एनड्रूज ने लिखा है कि गांधी जी कहते हैं :-

"यदि मैं कोई वस्तु लेता हूँ जिसकी मुझे अपने स्वयं की तात्कालिक प्रयोग के लिए आवश्यकता नहीं है और उसका प्रयोग करता हूँ तो मैं किसी से वह वस्तु छीनता ही हूँ ---- यदि कोई व्यक्ति अपनी आवश्यकता से अधिक ग्रहण न करे तो संसार से विपन्नता समाप्त हो जाय और भूख से कोई भी व्यक्ति इस विश्व में न मरे ।"[2]

1- तेन्दुलकर डी0जी0 तथा झवेरी, वी0के0महात्मा, वाल्यूम-1 बम्बई 1951, पृष्ठ-204 ।

2- एन्ड्रूज सी0एफ0: महात्मा गांधीज आडियाज, एलेन एण्ड अनविन लंदन 1929, पृष्ठ-106 ।

आत्म नियन्त्रण अथवा इन्द्रिय निग्रह के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है । ब्रह्मचर्य अविवाहित जीवन की अपेक्षा और अधिक भाव गरिमा से युक्त है । गांधी जी ने इसे परिभाषित करते हुये लिखा है कि :-

"विचार, शब्द या वाणी और कार्य तीनों में, यहाँ तक कि समस्त इन्द्रियों में, सभी कालों में तथा सभी स्थानों में नियन्त्रण करना ही ब्रह्मचर्य है ।"[1]

स्वादेन्द्रिय पर नियन्त्रण वास्तव में ब्रह्मचर्य जीवन का साधन है । स्वादेन्द्रिय का पूर्ण नियन्त्रण समस्त इन्द्रिय का स्वयं में नियन्त्रण है । नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर ही सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन की प्रगतिशील पुनर्योजना सम्भव है । अतः शिक्षा का उद्देश्य यही होना चाहिये जिससे सामाजिक बुराई को विद्यार्थी दूर करने में समर्थ हो सकें । हम देखते हैं कि यदि आध्यात्मिक स्वतंत्रता शिक्षा का साध्य है तो ज्ञान का इससे बहुत सम्बन्ध है । गांधी जी ने लिखा है :-

"गुजरात विद्यापीठ का आदर्श सूत्र वाक्य है "साविद्या याविमुक्तये" इसका अर्थ है कि वही विद्या है जो मुक्ति देती है । वह ज्ञान जो हमें मोक्ष की ओर ले जाये, विद्यालयों में दिया जाने वाला ज्ञान विद्यार्थियों को वह तरीका सिखावें जो उन्हें आध्यात्मिक स्वतंत्रता का मार्ग दिखा सके ।"[2]

1- यंग इण्डिया 5-6-24 वाल्यूम-11 गनेशन मद्रास 1927 ।
2- यंग इण्डिया 20-3-30 वीकली नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद ।

इस सिद्धान्त के आधार पर बड़े में छोटे का समावेश होने का अर्थ ध्वनित होता है अथवा राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आध्यात्मिक स्वतंत्रता में स्थान है । गांधी जी शिक्षा में सांस्कृतिक पक्ष के ऊपर जोर देते हैं । विद्यार्थियों को केवल पढ़ना लिखना ही नहीं है परन्तु सुविचारों को अभिव्यक्त करने हेतु उन्हें कुछ बनना है ।

3- सर्वांगीण तथा सामन्जस्य पूर्ण विकास का उद्देश्य :-

हमने यह देखा है कि गांधी जी बालक का सर्वतोमुखी विकास करना ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मानते हैं और इसे ही शिक्षा कहते । वे बालक की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों को इस प्रकार विकसित करना चाहते हैं ताकि उनका सामन्जस्य पूर्ण विकास हो सके । उनके अनुसार सच्ची शिक्षा वह है जो हमारी भावनाओं, संवेदनाओं, जन्मजात क्षमताओं मानसिक शारीरिक एवं अध्यात्मिक एवं जीवन के सभी पहलुओं को समान रूप से विकसित करे । हमने देखा है कि महात्मा गांधी जी ने उद्देश्य की तह तक पहुँचने के लिए अनेक प्रयोग व व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त करने के बाद ही उसे प्रतिपादित किया है । उनके उद्देश्य प्रयोग सिद्ध हैं । अपने प्रारम्भिक स्तर पर उनका प्रयोग सीमित विद्यार्थियों पर किया गया था, परन्तु बाद में यह मानव व्यवहार की जड़ तक पहुँच गया था । उनके शैक्षिक विचार मस्तिष्क की अपेक्षा अन्तआत्मा की पुकार से प्रभावित हैं । शक्ति मनोविज्ञान वेत्ता के भाव के समान महात्मा गांधी जी

ने "शक्तिपद" "द टर्म फक्युलिटी" का प्रयोग नहीं किया गया है। उन्होंने "शक्तिपद" को शारीरिक, मानसिकव अध्यात्मिक शक्ति के भाव में ही प्रयोग किया है। संस्कृति को वे मानसिक कार्य का परिणाम नहीं मानते बल्कि यह आत्मा का ही गुण है जिसे मानव व्यवहार के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है, व्यक्ति के व्यवहार को देखकर ही उसके सुंसंकृत अथा कुसंस्कृत होने की परख की जाती है। सन् 1946 में कस्तूरबा बालिका आश्रम नई दिल्ली की लड़कियों को सम्बोधित करते हुये गांधी जी ने कहा है :-

> "मैं शिक्षा के साहित्यिक पक्ष के बजाय सांस्कृतिक पक्ष को अधिक महत्व देता हूँ। संस्कृति बालिकाओं के लिये मुख्य वस्तु है। उन्हें अपने बोलने, बैठने, चलने कपड़े पहनने और छोटे से छोटे कार्य एवं व्यवहार में अपनी संस्कृति को व्यक्त करना चाहिये।"[1]

महात्मा गांधी जी इसे शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य मानते हैं उनके अनुसार हमारा मस्तिष्क द्वेष एवं अभिमान के कुहासों से इस प्रकार ढक लिया जाता है कि हम वस्तु को उसके वास्तविक रूप में नहीं देख पाते। अत: शिक्षा का कार्य यह है कि वह हमारी आत्मा पर चिपके हुये गंदे विचारों के बोझ को

1- महात्मा गांधी / टू द स्टूडेन्ट, नव जीवन, पब्लिशिंग हाउस अहमदाबाद 1949, पृष्ठ-29।

और न बढावें बल्कि उन्हें दूर करें । आत्मा के ऊपर से इस अंधकारमय स्थिति को हटाना चाहिये ताकि विद्यार्थियों की स्वच्छ मूलभूत प्रवृत्तियों को ऊपर उठने का अवसर मिले ।

ट्रांसवाल के टालस्टॉय फार्म में उन्होंने यह अनुभव किया था कि यदि हृदय को सच्चा प्रशिक्षण नहीं दिया जाता तो मानसिक प्रशिक्षण बेकार हो जाता है । इसके लिए ड्राइंग संगीत और हस्तकला के अध्ययन पर बल देते हैं । महात्मा गांधी जी ने कहा है :-

> ट्रांसवाल फार्म में मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई उन बालक बालिकाओं के सर्वांगीण विकास हेतु प्रशिक्षण देने में जिनके लिए मैं प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी था।"[1]

प्रश्न यह है कि सर्वांगीण विकास कैसे किया जाय? अन्य शिक्षा शास्त्रियों ने जिन्होंने सर्वांगीण विकास के उद्देश्य को प्रस्तुत किया था वे उसे प्राप्ति हेतु किसी मूर्त विधि का सुझाव नहीं दे सके थे । यदि महात्मा गांधी एक व्यावहारिक अनुभवी एवं प्रयोगात्मक दार्शनिक न होते तो उनका आज शिक्षा जगत में कोई महत्व न होता । सर्वांगीण विकास हेतु अपनी मूर्त विधि के प्रारूप को प्रस्तुत करते हुये उन्होंने लिखा है :-

> "आपको विद्यार्थियों को एक या अन्य पेशे में प्रशिक्षित करना होगा । इसविशिष्ट पेशे को केन्द्र

1- हरिजन 18-9-37 नवजीवन प्रेस अहमदाबाद ।

मानकर हस्तकला द्वारा प्राप्त ज्ञान से उनके मस्तिष्क, शरीर, आत्मा, लिखावट, सौन्दर्य भावना आदि का पूर्ण विकास भी करना है ।"[1]

गांधी जी की दृष्टि मे हस्तकला की शिक्षा सर्वांगीण विकास हेतु आवश्यक है । उन्होंने अपनी आत्म कथा में लिखा है :-

"अच्छा हस्तलेख शिक्षा का आवश्यक अंग है ।------ बालकों को लिखना सीखने से पहले ड्राइंग की शिक्षा दी जाय, बच्चे को देखकर अक्षरों को सीखने दो जैसे ही वे अन्य वस्तुओं का चित्र खींचना सीख लें तो उन्हें सिर्फ अक्षर लिखना सीखने दो, तभी वे सुन्दर लेख प्रस्तुत कर सकेगें ।"[2]

हम देखते हैं कि इसीलिए गांधी जी तीन "आर" की अपेक्षा तीन "एच" पर विशेष जोर देते हैं । पूर्ण मनुष्य का निर्माण करने के लिये इन तीनों "एच" हाथ, हृदय एवं मस्तिष्क का उचित एवं सामन्जस्य पूर्ण मिश्रण आवश्यक है ।

4- शारीरिक विकास का उद्देश्य :-

महात्मा गांधी जी का विश्वास है कि मस्तिष्क और हृदय का शिक्षण शरीर के अंगों के उचित व्यायाम और प्रशिक्षण पर निर्भर करता है । हम देखते हैं कि शरीर में ही आत्मा, मन, मस्तिष्क का निवास है । इसलिए यदि शारीरिक विकास उचित रूप से नहीं होता है तो अन्य के विकास की

1- हरिजन ।8-9-37, नव जीवन प्रेस, अहमदाबाद ।

2- महात्मा गांधी-आत्म कथा, पृष्ठ-28, नवजीवन पब्लिशिंगहाउस अहमदाबाद ।

यथार्थ कल्पना निराधार है, क्योंकि "स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास" करता है । अतः जीवन के आधार रूपी शरीर का पुष्ट, बलवान एवं सुडौल होना आवश्यक है । शारीरिक शिक्षा का विचार गांधी जी के मस्तिष्क में उस काल में आया था जब वे दक्षिणी अफ्रीका के टॉलस्टॉय फार्म के आश्रम वासियों के बच्चों को शिक्षित करने में लगे थे । अपने प्रयोग व अनुभव से एक सच्ची शिक्षा पद्धति की खोज की थी ।

उनके शारीरिक शिक्षा की विधि बड़ी रोचक एवं आनन्दप्रद है । संगीत विषय वैसे ही रोचक एवं आनन्ददायक है । शारीरिक प्रशिक्षण में संगीत की शिक्षा का स्वयं महत्वपूर्ण स्थान है । संगीत शरीर के आन्तरिक अवयवों को संतुलित एवं पुष्ट करती है । संगीत का और हृदय का घनिष्ठ सम्बन्ध है । संगीत द्वारा शरीर एवं हृदय दोनों शिक्षित एवं प्रशिक्षित होते हैं । गांधी जी ने इस सम्बन्ध में कहा है :-

> "संगीत की शिक्षा (म्युजिकल ड्रिल) से मैं अनिवार्य रूप से शारीरिक प्रशिक्षण देना चाहता हूँ ।"[1]

शरीर प्रशिक्षण को शिक्षा का एक भाग स्वीकार करते हुये गांधी जी ने लिखा है :-

> "मैं शारीरिक शिक्षा की भी आवश्यकता समझता था । यह शिक्षा उन्हें अनायास मिल रही थी,

---

1- महात्मा गांधी-एजूकेशनल रीकन्शट्रक्शन, द्वितीय संस्करण, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ सेवाग्राम, वर्धा, पृष्ठ-63 ।

आश्रम में नौकर तो थे नहीं, इसलिए आश्रमवासियों को ही बुवाईकरने, रसोई बनाने, बागवानी करने, गडढे खोदने, पेड़ काटने और बोझ ढोने के कार्य स्वयं करने पड़ते थे, जिससे उनके शरीर अच्छी तरह गढ़ं जाते थे । ऐसे कामों में उन्हें आनन्द आता था, इसलिए उन्हें दूसरी कसरत या खेल खेलने की जरूरत नहीं पड़ती थी ।"[1]

बौद्धिक प्रशिक्षण को महत्व देने वाले पूर्व विद्वानों ने इसको ही शिक्षा का अन्तिम व श्रेष्ठ उद्देश्य माना है । डा० ई०ए० ने व्यंगात्मक रूप में आलोचना करते हुये लिखा है कि :-

"शारीरिक प्रशिक्षण की एक बनावटी व खोखली पद्धति इस बौद्धिक प्रशिक्षण पर खोज कर बाँध दी गयी थी ।"[2]

महात्मा गांधी जी इस कमी से भिज्ञ थे ।

5- नैतिक चारित्रिक और हृदय की संस्कृति के विकास का उद्देश्य :-

अन्य शिक्षा शास्त्रियों की भाँति महात्मा गांधी भी शिक्षा का लक्ष्य नैतिक विकास करना, चरित्र निर्माण करना व हृदय की संस्कृति का निर्माण करना मानते हैं इसी लिये चरित्र निर्माण पर गांधी जी बहुत बल देते हैं :-

---

1- महात्मा गांधी : आत्म कथा पृष्ठ-422-23 ।

2- डा० इ०ए०साइको, अक्टूबर 1942, बम्बई ।

> "पर मैनें हृदय की शिक्षा को अर्थात चरित्र के विकास को सदा प्रथम स्थान दिया है । चरित्र को मैनें उनकी शिक्षा का आधार माना है । बुनियाद मजबूत हो तो और बातें वे अबकाश मिलने पर मित्रों की सहायता से या अपने आप सीख सकते हैं ।"[1]

हम देखते हैं कि महात्मा गांधी ने चरित्र निर्माण को बड़ा महत्व दिया है । एक बार उनसेस्पूछा गया - जब भारत स्वतंत्र हो जायेगा तब आपकी शिक्षा का क्या उद्देश्य होगा ? उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया - "चरित्र निर्माण" । यहाँ तक कि ज्ञान की उपादेयता को वे मात्र चरित्र निर्माण के लिए ही मानते थे । उनके अनुसार समस्त ज्ञान का लक्ष्य चरित्र निर्माण करना ही है । स्वयं की पवित्रता का महत्व चरित्र निर्माण के लिए है । चरित्र के बिना शिक्षा, और पवित्रता के बिना चरित्र व्यर्थ हैं । महात्मा गांधी ने कहा है कि :-

> "व्यक्तिगत पवित्रता समस्त चरित्र निर्माण अथवा मजबूत शिक्षा निर्माण का आधार होना चाहिये ।"[2]

महात्मा गांधी जी विद्यालय को चरित्र निर्माण की एक संस्था मानते हैं, क्योंकि समाज अपने बच्चों को विद्यालय इसलिए भेजते हैं ताकि वे चरित्रवान, सुन्दर पुरूष व स्त्री बनकर सामाजिक गतिविधियों में अपना सुष्ठ योगदान दे सकें ।

1- गांधी जी : आत्म कथा, पृष्ठ-422 ।

2- महात्मा गांधी - टू द स्टूडेन्टस, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस अहमदाबाद 1949, पृष्ठ-106 ।

गांधी जी के अनुसार ज्ञान का महत्व केवल चरित्र निर्माण के लिए ही है । गांधी जी ने लिखा है :-

> "यदि हमारे सभी ज्ञान, वैदिक मंत्रो का उच्चारण संस्कृत भाषा का ज्ञान, लैटिन और ग्रीक आदि भाषायिक ज्ञान हमें पूर्ण हृदय की पवित्रता के योग्य नहीं बनाते हैं तो उनकी उपयोगिता हमारे लिए व्यर्थ है ------ चरित्र निर्माण के लिए विद्यालय व कालेज फैक्ट्री हैं, माता-पिता अपने बच्चों को वहाँ भेजते हैं ताकि वे सुन्दर स्त्री पुरूष बन सके ।"[1]

हम देखते हैं कि चरित्र का निर्माण अन्य द्वारा नहीं बल्कि स्वयं द्वारा होता है । पुस्तकों के पृष्ठों से व्यक्ति के चरित्र को नहीं बनाया जा सकता, ऐसी भावना तो व्यक्ति के अन्दर से निकलनी चाहिये । हम जानते हैं कि व्यक्ति विद्वान तो हो सकता है, किन्तु चरित्रवान भी होगा यह आवश्यक नहीं है । चरित्रवान बनने के लिए व्यक्ति को हृदय वाणी, विचार एवं कार्य तीनों क्षेत्रों में पवित्रता व ईमानदारी धारण करने के लिए योग्य होना होगा । उसे व्यवहार के तरीकों को जानना होगा। जहाँ पर भी प्रश्न "जानने" का उत्पन्न हुआ, वहीं व्यक्ति की स्वयं की क्रियाशीलता की उत्पत्ति हो जाती है । गांधी जी के अनुसार वह निरक्षर किसान सही रूप में शिक्षित है जो साक्षर

1- महात्मा गांधी -टू द स्टूडेन्टस" नव जीवन पब्लिशिंग हाउस अहमदाबाद 1949, पृष्ठ-106-107 ।

न होते हुये भी जीवन के व्यवहार करने की विधियों को भली भाँति जानता है । "हिन्द स्वराज" में उन्होंने कहा है :-

> "किसान अपनी जीविका ईमानदारी से कमाता है ----- वह जानता है कि अपने माता-पिता के साथ पत्नी, बच्चों व ग्रामीण वासियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाय । वह नैतिकता के नियमों का पालन करता है, परन्तु वह अपना नाम नहीं लिख सकता है । अक्षर ज्ञान देकर -- क्या आप उनकी प्रसन्नता में एक इंच की भी बढोत्तरी कर पायेगें ।"[1]

हम देखते हैं कि महात्मा गांधी जी के शिक्षादर्शन की जड़ भारतीय जीवन और संस्कृति में है । प्राचीन भारतीय शिक्षा में बौद्धिक प्रशिक्षण की अपेक्षा नैतिक प्रशिक्षण का ही विशेष महत्व था ।

हम देखते हैं कि महात्मा गांधी केवल सैद्धान्तिक विचारक ही नहीं बल्कि व्यावहारिक दार्शनिक हैं । जिस तथ्य को उन्होंने प्रयोग किया, उन्हीं को प्रचारित किया, और जिसे प्रचारित किया, उसे प्रयोग भी किया। उन्होंने टॉलस्टाय आश्रम व फोनिक्स बस्ती के विद्यार्थियों पर ही नहीं बल्कि अपने चार स्वयं के पुत्रों पर भी प्रयोग किया था । उन्होंने अपने एक पुत्र मनीलाल को लिखा कि :-

---

1- महात्मा गांधी- हिन्द स्वराज" गनेसन, मद्रास, 1921 पृष्ठ- 63-64 ।

"----- तुम्हारा कर्तव्य है जो कुछ तुम सीख सको सीखो, और अपने माता-पिता की सेवा करो --- हम गरीब हैं और गरीब ही रहना चाहते हैं ।--- हमारा कर्तव्य है कि हम फिनिक्स के आदर्शों का विकास करें क्योंकि आत्मानुभव व देश सेवा का यही एक तरीका है मानव जाति का प्रमुख कर्तव्य व कार्य चरित्र निर्माण होना चाहिये ---- तुम्हें विश्वास देता हूँ कि दूसरों के लिए तुम्हारी सेवा व्यर्थ न होगी ।"[1]

उन्होंने पुन: लिखा है कि :-

"सच्ची शिक्षा साक्षरता का प्रशिक्षण नहीं है बल्कि चरित्र निर्माण करना है ।"[2]

हम देखते हैं कि उनके शैक्षिक प्रयोग का मुख्य लक्ष्य चरित्र निर्माण व सेवा करना तथा हृदय की संस्कृति को विकसित करना ही रहा है । यद्यपि हमने देखा है कि महात्मा गांधी जी साक्षरता को विशेष महत्व नहीं देते हैं किन्तु वे इसको त्यागने के पक्ष मे भी नहीं हैं जैसा कि उन्होंने कहा है :-

"परन्तु मैं समझता था कि अक्षर ज्ञान की शिक्षा तो थोड़ी बहुत देनी ही चाहिये, इसलिये श्री प्राणी जी देसाई और श्री केलेन बैक के ----- सहयोग से मैंनें कुछ कक्षायें प्रारम्भ की थी ।"[3]

1- पटैल आर०एम० : गांधीजी की साधना (गुजराती) नवजीवन पृ०-111

2- - तदैव - पृष्ठ-114

3- महात्मा गांधी : आत्म कथा नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, पृष्ठ-408 ।

सत्याग्रह आश्रम के इतिहास में उन्होंने लिखा है :-

"आश्रमों की स्थापना के साथ मैंनें यह अनुभव किया कि आश्रम में रहने बाले बच्चों व स्त्रियों को --- और जो अशिक्षित पुरूष आश्रम में प्रवेश लेते हैं उनके लिए भी अक्षर ज्ञान का प्राविधान होना चाहिये ।"[1]

आत्मानुभूति या शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य है :-

गांधी जी के अनुसार शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की मुक्ति है --"सा विद्या या विमुक्तये" विद्या वही है जो मुक्त करती है । गांधी जी के अनुसार मुक्ति के दो अर्थ हैं । वर्तमान जीवन मे सब प्रकार की दासता से स्वतंत्रता, वह दासता आर्थिक,राजनैतिक और मानसिक हो सकती है । जब तक मनुष्य इनमें से किसी भी एक बन्धन में बँधा हुआ है तब तक उसकी प्रगति असम्भव है । इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य सभी प्रकार की दासता के बन्धन से मुक्त करना है । दूसरे अर्थ में मुक्ति का अर्थ अध्यात्मिक स्वतंत्रता । इस आधार पर बड़े में छोटे का समावेश करना है,अर्थात राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आध्यात्मिक स्वतंत्रता में स्थान है । अत: शिक्षा संस्थाओं में दिये जाने बाले ज्ञान को आध्यात्मिक स्वततंत्रता का मार्ग दिखाना चाहिये हम देखते हैं कि महात्मा गांधी जी शिक्षा द्वारा सांसारिक

1- महात्मा गांधी - सत्याग्रहाश्रमों इतिहास (गुजराती) नव जीवन , पृष्ठ- 79 ।

बन्धनों से आत्मा की मुक्ति चाहते हैं । अतः शिक्षा को चाहिये कि वह व्यक्ति को जीवन में उच्चतर आदर्शों के प्रति प्रेरित करे ।

अब हम यह अन्वेषित करने का प्रयास करेगें कि शिक्षा के समस्त तात्कालिक उद्देश्यों की महात्मा गांधी जी के अन्तिम उद्देश्य में किस प्रकार संगति है । गांधी जी की मान्यता है कि शिक्षा का उच्चतम उद्देश्य आत्मानुभूति व ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करना है अन्य सभी उद्देश्य इसी उद्देश्य के अधीन हैं । मनुष्य का सभी प्रयास इसी उद्देश्य हेतु होना चाहिये । महात्मा - गांधी ने लिखा है कि :-

"आत्म शिक्षण शिक्षा का एक स्वतन्त्र विषय है ---- आत्मा के विकास करने का अर्थ है चरित्र गठन, ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना, आत्मज्ञान प्राप्त करना। मैं यह मानता था कि उसके बिना दूसरा ज्ञान व्यर्थ है और हानि कारक भी हो सकता है।"[1]

और पुनः कहते हैं :-

"यह वहम सुना है कि आत्मज्ञान चौथे आश्रम (सन्यास) में मिलता है । पर यह सार्वजनिक अनुभव है कि जो चौथे आश्रम तक इस अमूल्य वस्तु को मुलतवी रखते है वे आत्मज्ञान नहीं पाते, बल्कि बुढ़ापा और दूसरा दयाजनक बचपन पाकर "भूविभारभूता" होकर जीते हैं ।"[2]

1- महात्मा गांधी जी : आत्म कथा, अनुवादक हनुमान प्रसाद पोद्दार, स०मा०मं०नई दिल्ली 1951, दसम् संस्करण, पृष्ठ-427 ।

2- - तदैव - पृष्ठ-427-28 ।

अपने पुत्र मनीलाल को पत्र में उन्होंने लिखा :-

"यदि तुम वास्तविक गुणों को सीखते हो और उन गुणों से अपने जीवन को परिपूर्ण करते हो तो तुमने मेरे शैक्षिक आदर्शों को समझ लिया है। इन गुणों से युक्त होकर तुम विश्व के किसी भी भाग में अपनी जीविका कमा लोगों और ईश्वर के ज्ञान और आत्मानुभव के मार्ग का अनुशरण भी करोगें।"[1]

महात्मा गांधी जी ने सन्यासी एवं ब्रहमचारी की जीवन शैली को समान माना है इस सम्बन्ध में यंग इण्डिया में लिखा है कि :-

"ब्रहमचारी और सन्यासी का जीवन आध्यात्मिक दृष्टि से समान हैं।"[2]

गांधी जी प्रत्येक विद्यार्थी को ब्रहमचारी मानते हैं। विद्यार्थियों को अपने जीवन को आत्म संयम की मजबूत नींव पर आधारित कर लेना चाहिये। हमने देखा है कि महात्मा गांधी जी हृदय की संस्कृति के प्रशिक्षण पर विशेष जोर देते हैं, क्योंकि हृदय की संस्कृति का सम्बन्ध चरित्र गठन एवं आध्यात्मिक स्वतंत्रता से है। हृदय की विशिष्टताओं का प्रभाव मस्तिष्क, मन तथा हाथ की समस्त क्रियाओं पर पड़ता है। मानसिक कार्य तथा हस्तकार्य दोनों का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान

1- पटेल आर0एम0 : गांधी जीनी साधना (गुजराती) नवजीवन पृष्ठ-114 ।

2- यंग इण्डिया, 29-1-25, अहमदाबाद ।

है । महात्मा गांधी जी की महानता शिक्षा दार्शनिक के रूप में इस बात में है कि विश्व के अन्य विचारको की भाँति वे शिक्षा के किसी एक उद्देश्य पर विशेष जोर नहीं देते हैं । वे अनेक उद्देश्यों को जीवन के विभिन्न पहलुओं में निष्णात होने के लिए ही प्रस्तुत करते हैं और उन्हें एक सर्वव्यापी सर्वोच्च उद्देश्य में समाहित कर देते हैं । आत्मानुभव रूपी उद्देश्य सभी तत्कालिक उद्देश्यों को अपने में सम्मिलित कर लेता है और एक पूर्ण रचनात्मक एकता की तस्वीर भी प्रस्तुत करता है । यह उद्देश्य हमारे देश की प्रतिभा, सभी युगों और सभी स्थानों के महान दार्शनिकों की शिक्षा तथा हमारी वंशानुगत संस्कृति के अनुरूप भी है ।

एडम्स ने तो यहाँ तक कहा कि आत्मानुभूति स्वयं में सम्पूर्ण ज्ञानात्मक आदर्श है और सभी उद्देश्यों को एक दूसरे का पूरक माना है । किसी भी उद्देश्य को अन्य से अलग करके स्वतंत्र रूप से प्राप्त नहीं किया जा सकता । इस प्रकार हम यह देखते हैं कि बाहयरूप से सभी विरोधी शिक्षा के आदर्श गांधी दर्शन में एक हो जाते हैं और आत्मानुभूति के आदर्श में अपनी संगति की अभिव्यक्ति करते हैं । महात्मा गांधी जी का आत्मानुभव रूपी उद्देश्य काल्पनिक नहीं बल्कि व्यावहारिक है ।

गांधी जी मानते है कि शिक्षा को वर्तमान जीवन की आवश्यकताओं के प्रति आँख नहीं मूदनी चाहिये । इसलिए

अपने बाद के जीवन में वे स्वानुभूति के लक्ष्य पर उतना जोर नहीं देते हैं। जितना कि तात्कालिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति पर देते हैं। वे एक व्यावहारिक दार्शनिक थे। इसलिए उनकी शिक्षा का सम्बन्ध करोड़ो भारतीय जन मानस के पालन पोषण की समस्या से जुड़ा था। इसलिए मानव के अस्तित्व के लिए उन्होंने एक ऐसे समाज की आवश्यकता का अनुभव किया था जहाँ शान्ति हो तथा उन्नति करने की अधिक सम्पन्नता हो। के० एफ०ई०ने लिखा है कि :-

> "दूसरे संसार की आत्मा ।के विचार ने। ------ ब्राहमणी सम्प्रदाय के ऊपर आधिपत्य जमा लिया था और सामान्य संसार के जीवन से उनके सम्बन्धों को काट दिया था और उन्हें सामान्य संस्कृति तथा उन्नति के मार्ग पर भारतीयों को प्रेरित करने के अयोग्य बना दिया था।"[1]

ऐसी परिस्थिति में महात्मा गांधी को जीवन के प्रत्येक पहलुओं को विकसित करने पर बल प्रदान करने के लिये बाध्य किया। महात्मा गांधी जी ने संसार त्यागने की बात नहीं की है, बल्कि सांसारिक कार्यों को करते हुये आत्मानुभूति की ओर बढ़ाने की बात की है। उनका विचार है कि यदि आत्मानुभूति के आदर्श को समक्ष रखकर जीवन के समस्त कार्यों को किया जाय तो यह संसार हमारे रहने के लिये उत्तम स्थान

1- के०एफ०ई० : इण्डियन एजूकेशन इन एन्सियन्ट एण्ड लेटर टाइम्स आक्सफोड, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ-184-185 ।

हो जायेगा तथा समस्त मतभेद व संघर्ष जो आज समाज की एकता को भंग करने में लगे हैं उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा और स्वर्ग व रामराज्य की कल्पना साकार हो जायेगी ।

महात्मा गांधी जी चाहते हैं कि शिक्षा की प्रक्रिया को विस्तृत एवं वास्तविक भाव में ग्रहण किया जाय । महात्मा गांधी के अन्तिम उद्देश्य "आत्मानुभूति" का लक्ष्य मानव जाति को उच्च नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति हेतु ऊपर उठाना है, जिसे प्राप्त कर वे सदैव आनन्द का अनुभव कर सकेंगे । गांधी जी की यह स्पष्ट अवधारणा थी कि आधुनिक विश्व के लिए आवश्यक बात यह है कि व्यक्ति जीवन मूल्यों तथा जीवन के तरीकों को सीखे और धारण करे । ऐसा करने से ही वास्तविक स्वतंत्रता की प्राप्ति एवं नये समाज का निर्माण हो सकेगा । सत्याग्रही व्यक्ति ही वह ईंट है जिसके सहयोग से नये अहिंसक समाज की रचना हो सकती है । महात्मा गांधी आत्म विहीन व्यक्तित्व की रचना व विकास में विश्वास नहीं करते है बल्कि प्रेम अहिंसा व सत्य से युक्त मानव निर्माण की आकांक्षा करते हैं । इसके लिए वे एक व्यावहारिक कार्य योजनाओं को भी प्रस्तुत करते हैं । वे व्यावहारिक स्वप्न दृष्टा थे और अपने विचारों को कार्यरूप देना जानते थे । उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है :-

> "मैं स्वप्न दृष्टा हूँ, वास्तव में मैं व्यावहारिक स्वप्न दृष्टा हूँ, मैं अपने स्वप्न को वास्तविकता में यथा सम्भव परिवर्तित करना चाहता हूँ ।"[1]

1- हरिजन, 19-11-33 ।

आत्मानुभूति हेतु स्वयं की पवित्रता आवश्यक है । इसलिए सत्याग्रही की प्रथम आवश्यकता नैतिक अनुशासन को धारण करना है । सत्य के अन्वेषक को अहिंसा की भावना में अनुशासित होना पड़ेगा । अहिंसा सत्य का साधन है इसलिए सत्यानुभव हेतु शिक्षा को अहिंसक भावना के विकास के लिए ही अनुदेशित किया जाना चाहिये । अहिंसा एक मानसिक अथवा बौद्धिक दृष्टिकोण नहीं है बल्कि यह हृदय और आत्मा का गुण है । क्योंकि गांधी जी के अनुसार :-

> "ईश्वर से अलग करके अच्छाई को सोचना एक निर्जीव वस्तु की कल्पना करना होगा---इसलिए सभी अच्छाइयाँ नैतिक है, यदि अच्छाइयों व गुणों का वास हमारे भीतर माना जाता है तो उन्हें ईश्वर से सम्बन्धित करके ही सोचा जाय और उत्पन्न किया जाय ।"[1]

गांधी जी जीवन के लिये नैतिकता को बहुत महत्त्व देते हैं । व्यक्ति और समाज दोनों की उन्नति इसी पर आधारित है । प्रेम नैतिकता का सार है । जिससे व्यक्ति ईश्वर के सन्निकट पहुँचता है । प्रेम स्वतंत्रता पैदा करता है, प्रेम के कारण ही स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं होता है । समस्त प्राणियों के प्रति प्रकट किये गये अपने कर्म, प्रेम ही होते हैं । इस प्रकार

1- हरिजन, 24-8-47 ।

मानव में प्रेम ईश्वरीय नियम या स्वयं ईश्वर ही होता है ।
अत: नैतिकता ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग या साधन व सार है ।

महात्मा गांधी जी हृदय की संस्कृति, चरित्र निर्माण को मस्तिष्क की संस्कृति अथवा बौद्धिक प्रशिक्षण से ज्यादा महत्व देते हैं । वे बौद्धिक शक्ति की अपेक्षा आत्मिक शक्ति पर विशेष जोर देते हैं । बौद्धिक शक्ति को आत्मिक शक्ति के आधीन होना चाहिये अन्यथा बौद्धिकता विनाशकारी हो सकती है । हमने देखा है कि चरित्र निर्माण करना गांधी जी की शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य है ।

आत्मिक शक्ति तो ईश्वर कृपा से मिलती है परन्तु वासनाओं के दास के ऊपर ईश्वरीय कृपा कभी नहीं बरसती है । इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता हेतु वासना एवं "स्व" को नियन्त्रण में रखना जरूरी है और हृदय की पवित्रता के लिए मन, वचन तथा कर्म तीनों में पवित्र होना आवश्यक है ।महात्मा गांधी जी के अनुसार -"हस्तकला केन्द्रित शिक्षा" जो कर्म के दर्शन पर आधारित है, चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण कारक है, क्योंकि कर्म में मन, बुद्धि व शारीरिक अवयवों का सामन्जस्य होता है । प्रेम व सहयोग की भावना स्वयं कर्म में निहित है । अत: विद्यार्थियों को कार्य की प्रतिष्ठा से सत्य, अहिंसा व प्रेम की वास्तविक शिक्षा प्रदान करनी चाहिये । एक सत्यवादी जीवन की समस्त समस्याओं का निर्भीकता से सामना करता है ।जो कार्य से प्रेम करता है, वह कर्मशील होता है। महादेव देसाई ने लिखा

है कि :-

> "निर्भीक एवं सत्यवादी बालक किसी भी विषम परिस्थिति में घबड़ाता नहीं है बल्कि उसका सामना करता है ------ वह अपने विद्यालय के सभी कमजोर छात्रों की रक्षा तथा जो उसकी सहायता चाहते हैं उन छात्रों की विद्यालय तथा विद्यालय के बाहर समस्त क्षेत्रों में उसकी सहायता भी करता है।"[1]

महात्मा गांधी जी ने स्वयं इस पवित्रता व निर्भीकता के भाव को अपने विद्यार्थियों में उत्पन्न करने का प्रयत्न किया था। इसीलिये वे चाहते हैं कि अध्यापकों एवं प्रोफेसरों को अन्य कक्षा विषयों की भाँति अपने छात्रों को शिष्टाचार की भी शिक्षा देनी चाहिये। महात्मा गांधी जी विद्यालयों को चरित्र निर्माण की फैक्ट्री ही नहीं बनाना चाहते है बल्कि वे विद्यालयों से यह आशा करते है कि वे विद्यार्थियों को एक अच्छे पुरूष व स्त्री के रूप में परिवर्तित करने का कार्य करेगें। अध्यापकों को अपने प्रभाव से उन्हें इस दिशा में प्रेरित करना चाहिये। आत्मानुभूति हेतु चरित्र आवश्यक है। गांधी जी के अनुसार आत्मानुभूति का लक्ष्य समाज सेवा व आत्मत्याग से ही प्राप्त किया जा सकता है। व्यक्तिगत मोक्ष व आत्मानुभूति का तरीका आत्म त्याग और बलिदान का ही तरीका है। उन्होंने अपने उद्देश्यों, प्रयोगों व उपदेशों द्वारा विश्व को यह दिखा दिया

1- देसाई महादेव : विथ गांधी जी इन सीलोन" गनेशन मद्रास 1928 पृष्ठ-109 ।

था कि समाज सेवा व आत्मानुभूति के उद्देश्य में कोई संघर्ष नहीं है । यही जीवन व शिक्षा का उद्देश्य है । इस प्रकार गांधी जी द्वारा प्रतिपादित समस्त उद्देश्यों को उनके अन्तिम उद्देश्य आत्मानुभूति मे समाहित किया जाना असम्भव नहीं है बल्कि अन्य समस्त उद्देश्यों की पूर्ण संगति की अभिव्यक्ति हुई है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गांधी के उपर्युक्त शैक्षिक उद्देश्यों को मुख्य रूप से हस्त, मस्तिष्क और हृदय की संस्कृति के उद्देश्य आत्मानुभूति व सामाजिक तथा अहिंसक लोकतांत्रिक समा ज की स्थापना के उद्देश्यों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है ।

1- हस्त संस्कृति ।

2- मस्तिष्क की संस्कृति ।

3- सर्वांगीण व सामन्जस्य पूर्ण विकास ।

4- शारीरिक विकास का उद्देश्य ।

5- नैतिकता, चारित्रिक व हृदय की संस्कृति के विकास का उद्देश्य ।

6- वैयक्तिकता एवं सामाजिकता के विकास का उद्देश्य ।

7- लोकतन्त्रीय समाज की स्थापना व नागरिकता के गुणों के विकास का उद्देश्य ।

8- आत्मानुभूति अथवा मुक्ति का उद्देश्य ।

यदि सामाजिक जीवन को प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों के अनुसार संगठित किया जाना है तो उसकी आधार शिला शारीरिक

श्रम तथा उत्पादक कार्यों पर डालनी पड़ेगी अन्यथा वह समाज सच्चे रूप में लोकतंत्रीय नहीं हो सकता । राजनैतिक दृष्टि से ऐसे समाजोपयोगी नागरिकों की आवश्यकता है जो अपने दायित्वों को सफलता पूर्वक निभा सकें अथवा सहयोगी कार्यों में भाग लेकर समाज की उन्नति के लिए कार्य कर सकें, बेसिक शिक्षा लोकतंत्रीय समाज की स्थापना में बहुत सहायक है, क्योंकि यह शिक्षा श्रम व उत्पादन कार्यों पर आधारित है । बेसिक शिक्षा आठ वर्ष की अनिवार्य शिक्षा द्वारा बालकों को समस्त मूलभूत योग्यताओं कुशलताओंके तथा दृष्टिकोणों को जो एक लोकतंत्रीय समाज की स्थापना के लिए अनिवार्य है को सुसज्जित करती है । विद्यालय सामाजिक रूप से लाभप्रद क्रियाओं को प्रदान करता है । लोक तंत्रीय शासन व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति शासन के प्रति उत्तरदायी होता है । इसलिए ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो उनमें नागरिकता के गुणों का विकास करे, बेसिक शिक्षा में इस तथ्य की ओर पूरा-पूरा ध्यान दिया गया है । जाकिर हुसैन समिति ने लिखा है :-

> "आधुनिक भारत में नागरिकता देश के सामाजिक, राजनैतिक,आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन में विस्तार से लोकतंत्रीय होती है ---- नई पीढ़ी को अपनी समस्याओं,अधिकारों एवं कर्तव्यों को समझना चाहिये ।"

<u>महात्मा गांधी जी के सामाजिक एवं वैयक्तिक उद्देश्य :-</u>

गत पृष्ठों में हमने महात्मा गांधी जी द्वारा प्रस्तुत किये गये तात्कालिक एवं अन्तिम या सर्वोच्च उद्देश्यों के सम्बन्ध में सुविस्तार व्याख्या की है । अब हमे यह खोजना है कि महात्मा गांधी जी के शिक्षा उद्देश्य सामाजिक है या वैयक्तिक अथवा दोनों में कोई संगति है ।

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है बिना समाज के व्यक्ति की कल्पना ही नहीं की जा सकती है । व्यक्ति समाज में ही उत्पन्न, पुष्पित,पल्लवित होता है और इसी में उसके जीवन का अन्त भी हो जाता है । मनुष्य की समस्त क्रियायें सामाजिक पर्यावरण के संदर्भ में ही सम्पन्न होती हैं । इसलिए शिक्षा का एक उद्देश्य समाज की प्रगति, विकास और उसके सदस्यों के कल्याण की भावना का विकास करना भी है । शिक्षा के इस उद्देश्य के कारण वैयक्तिक विकास के एक पक्षीय उद्देश्य की कमियाँ दूर हो जाती हैं । शिक्षा व्यक्ति का विकास इस प्रकार करे ताकि वह समाज पर भार स्वरूप न होकर उसका उपयोगी एवं कमाऊ सदस्य हो सके ।

समाज की कल्पना से राजनैतिक अस्तित्व की उपज होती है । इसलिए समाज एक राज्य के रूप में भी माना जाता है । राज्य के संदर्भ मे समाज के सदस्य नागरिक कहलाते हैं । जनतंत्रवादी राष्ट्र में शिक्षा को सामाजिक कुशलता या दक्षता के विकास का साधन माना जाता है । ऐसे राज्य में व्यक्ति

अपनी आर्थिक क्षमता को बढ़ाकर योग्यतानुसार राष्ट्र के कार्यों में भाग लेता है और अन्य के अधिकारों को भी दृष्टि में रखता है । इस प्रकार उनमें सामाजिक नैतिकता का प्रादुर्भाव होता है । सामाजिक नैतिकता का अर्थ है समाज के उन्नयन हेतु अपनी इच्छाओं को उत्सर्ग कर समाज सेवा के लिए सदैव तैयार रहना ।

कुछ लोग शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य की अपेक्षा वैयक्तिक उद्देश्य पर विशेष जोर देते हैं । इनके अनुसार सामाजिक संस्थाओं का लक्ष्य एवं उनका अस्तित्व व्यक्ति के जीवन को उन्नतिशील एवं खुशहाल बनाने के लिए ही है । राज्य का कार्य है कि विद्यालयों में ऐसे प्रयोग व व्यवसाय प्रारम्भ करें ताकि समाज के व्यक्ति का उत्थान हो । सर पर्सीनन शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य के प्रबल समर्थक थे । नन ने यद्यपि सामाजिक उद्देश्य की अपेक्षा वैयक्तिक उद्देश्य पर बहुत बल दिया है किन्तु वैयक्तिकता के अतिवादी रूप के समर्थक नहीं थे । उन्होंने लिखा :-

> "वैयक्तिकता जीवन का आदर्श है" और प्रत्येक शिक्षा व्यवस्था को "व्यक्ति की उच्चतम श्रेष्ठता" प्राप्त करनी चाहियेक्योंकि प्रत्येक पुरूष एवं स्त्री की स्वतंत्र क्रियाओं द्वारा ही मानव जगत में अच्छाई फैलती है ।"[1]

1- नन, सर टी॰पर्सी : "एजूकेशन इट्स डाटा एण्ड फर्स्ट प्रिंसिपुल्स," लन्दन, एडवर्ड आर्नोल्ड, पृष्ठ-4 ।

यूकेन का विचार है कि :-

"हमारे जीवन का मुख्य आन्दोलन, बुद्धिमान मानव बनाने, व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने तथा आध्यात्मिक वैयक्तिकता के विकास में विजय प्राप्त करने के लिये होना चाहिये।"[1]

अतः शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का उन्नयन करना है।

अब हमें महात्मा गांधी जी के विचारों का इस संदर्भ में अध्ययन करना है और यह देखना है कि उनका किस ओर झुकाव है। उनके लेखों, कृतियों एवं भाषणों के संग्रह के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि उन्होंने अलग-अलग समय व स्थान पर सामाजिक एवं वैयक्तिक उद्देश्य रूपी आदर्श का समर्थन किया है। इस कारण उनके कथनों में तारतम्य का अभाव व विरोध पाया जाता है, परन्तु उनके विरोधी कथनों के पीछे शाश्वत एकता होने के कारण विरोधाभास समाप्त हो जाता है। महात्मा गांधी जी कहने में संकोच नहीं करते हैं कि :-

"व्यक्ति एक सर्वोच्च विचारणीय प्राणी है।"[2]

और एन0के0बोस ने गांधी जी के विचारों के सम्बन्ध में लिखा है कि :-

"भय के कारण राज्य की शक्ति में वृद्धि होती है,

1- यूकेन, रूडाल्फ; "लाइफ्स बेसिस एण्ड लाइफ्स आइडियल," लंदन 1911, पृष्ठ-371 ।

2- यंग इण्डिया, 13-11-24 नवजीवन प्रेस,

जिसे मैं ॥गांधी जी॥ अच्छा नहीं समझता हूँ ।
यद्यपि शोषण को बाहयरूप से कम करते हुये राज्य
मानव की भलाई के लिये कार्य करता हैकिन्तु जिस
वैयक्तिकता के मूल में समस्त समाज उन्नति निहितहै
उसका विनाश करके वह मानव जाति की बहुत बड़ी
हानि भी करता है ।"[1]

इसमें संदेह नहीं है कि महात्मा गांधी वैयक्तिकता को सुरक्षित रखना चाहते है,क्योंकि भौतिक व आध्यात्मिक विकास के लिये वे इसकी सुरक्षा आवश्यक मानते हैं । समस्त मानव को मूक पशु की भाँति एक ही दिशा में ले चलना व्यर्थ है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में स्वयं की चारित्रिक विशेषता होती है । स्वभाव, प्रकृति, योग्यता में कोई भी दो व्यक्ति समान नहीं पाये जाते हैं इसलिए वे जाति, रंग, नस्ल का ध्यान दिये बिना प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व अथवा वैयक्तिकता का आदर करते हैं । गांधी जी विभिन्नता में एकता के हामी थे । उनके विचार से समाज वह है जहाँ सभी को अपने व्यक्तिगत चरित्र को हानि पहुँचाये बिना सम्पूर्ण मानव जाति की भलाई के लिए अपनी भूमिका निभानी पड़ती है ।

महात्मा गांधी जी एकता के लक्ष्य के लिए हिंसा को साधन बनाने के पक्षधर नहीं हैं । अहिंसा और सत्य के पुजारी

1- बोस, एन0के0, सलेक्शन्स फ्राम गांधी,नवजीवन, पृष्ठ-27 ।

होने के नाते हिंसा को न तो वैयक्तिकता के विकास और न तो सामाजिक विकास में साधन के रूप में प्रयोग करना चाहते हैं । उन्होंने कहा है :-

> "यह बहुत दुख की बात होगी यदि भारत हिंसा से नये समाज की रचना करने का प्रयास करेगा । हिंसा से भलाई लाने का प्रयास वैयक्तिकता का विनाश है जब अहिंसा, प्रेम, असहयोग की शक्ति से परिवर्तन लाया जायेगातभी वैयक्तिकता के आधार की सुरक्षा तथा सच्ची जगत की उन्नति को निश्चितता प्रदान की जा सकती है ।"[1]

महात्मा गांधी जी का विश्वास है कि यदि व्यक्ति का उचित विकास किया जाता है तो समाज का जिसका वह सदस्य होता है स्वयं विकास हो जायेगा । उन्होंने लिखा है :-

> "मैं अनुभव करता हूँ कि यदि मैं व्यक्ति के चरित्र निर्माण में सफल हुआ तो समाज स्वयं उपनी देख रेख कर लेगा ।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वे समाज में व्यक्ति के स्थान को कितना महत्व देते हैं । महात्मा गांधी जी राज्य की भलाई में विश्वास करते हैं । वे राज्य व समाज में भेद नहीं मानते हैं । राज्य भी उनकी दृष्टि में एक सामाजिक संगठन है । इसलिये सामाजिक सेवा को शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा मानते

1- हरिजन, 9-3-47 ।

2- वाशवर्न, कार्ल्टन : रेमॉकिस ऑव मैन काइन्ड ।1932,पृष्ठ-104-105 ।

हैं । विद्यार्थियों से वे कहते हैं :-

> "विद्यालय में अपने शिक्षा को जारी रखते हुये तुम्हें मेरे द्वारा दिखाये गये सेवा के आदर्श को अपने सामने रखना चाहिये, पैसा कमाने बाले आदर्श को कभी नहीं रखना चाहिये ।"[1]

इस प्रकार शिक्षा का यह भी उद्देश्य होना चाहिये कि वह विद्यार्थियों में त्याग व सेवा का भाव उत्पन्न कर सके, यदि ऐसा नहीं करती है तो शिक्षा की कोई उपादेयता नहीं है। वृन्दावन के महाविद्यालय के विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुये उन्होने कहा है :-

> "यदि तुम्हारी शिक्षा जीवन्त वस्तु है तो उसकी महक तुम्हारे चारो ओर के वातावरण मे फैलनी चाहिये ।------तुम्हारा सेवा कार्य व्यावहारिक रूप में होना चाहिये । डलिया, झाडू और फा-वड़ा लेने के लिए तुम्हें तैयार रहना चाहिये ।--तुम्हारी शिक्षा का सबसे बढ़िया अंश यही होगा। "[2]

वे समस्त मानव राज्य को परिवार समझते थे, इसलिए उनमे सभी की सेवा करने का भाव था । उनका आदर्श किसी को भी विदेशी नहीं लगता है । मानवता की सेवा उनके लिए ईश्वर सेवा है । इसलिए उनके उच्च आदर्श में समाज सेवा का भाव ही निहित है ।

1- हरिजन, 10-3-46 अहमदावाद ।

2- हरिजन 14-11-29 अहमदावाद ।

महात्मा गांधी ने स्वीकार किया है :-

"मैं भारत का एक तुच्छ सेवक हूँ और भारत की सेवा करने का प्रयत्न कर रहा हूँ, मैंने अपने बचपन के दिनों में ही खोज लिया था कि भारत की सेवा मानवता की सेवा का विरोधी नहीं है ।"1

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि महात्मा गांधी ने दो विरोधी आदर्श सामाजिक उद्देश्य व वैयक्तिक को समय-समय पर अभिव्यक्त किया है । तो प्रश्न होता है कि उन्होंने शिक्षा में इन दोनों उद्देश्यों की संगति किस प्रकार की है ? वास्तविक तथ्य यह है कि महात्मा गांधी जी ने दोनों विचारों के अतिवादी रूप से बचकर मध्यवर्ती मार्ग को अपनाया है । उन्होंने इन दोनों उद्देश्यों में सन्तुलन स्थापित किया है । सामाजिक सेवा के उद्देश्य व वैयक्तिकता के विकास के उद्देश्य को अलग-अलग विश्लेषित करते हुये उन्हें संश्लेषित भी किया है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है :-

"मैं व्यक्ति की स्वतंत्रता को महत्त्व देता हूँ परन्तु तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिये कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । वह अपनी वर्तमान स्थिति से, सामाजिक उन्नति की आवश्यकताओं से, अपने व्यक्तित्व से समायोजन की क्रिया को सीखकर ही ऊपर उठा है । अप्रतिबन्धित वैयक्तिकता तो

1- हरिजन, 17-11-33, अहमदाबाद ।

जंगली जानवरों का नियम है । मैंने वैयक्तिक स्वतंत्रता और सामाजिक प्रतिबन्ध का औसत निकालना सीख लिया है । पूरे समाज के कल्याण के लिए अपनी स्वयं की इच्छा से सामाजिक प्रतिबन्ध के अधीन होने से व्यक्ति तथा उस समाज का जिसका वह सदस्य होता है दोनों को लाभ मिलता है ।"[1]

महात्मा गांधी जीकी वैयक्तिक व सामाजिक विकास में गहरी रूचि है इसलिए दोनों की अन्योन्याश्रितता में विश्वास रखते है । उनका कथन है :-

"मैं विश्वास करता हूँ कि यदि एक मनुष्य आध्यात्मिक विकास से लाभान्वित होता है तो पूरा जगत उसके साथ इससे लाभान्वित हो जाता है और यदि कोई व्यक्ति पतित होता है, तो सारा संसार उसी सीमा तक पतित हो जाता है ।"[2]

महात्मा गांधी जी की दृष्टि में वैयक्तिक विकास और सामाजिक उन्नति उसी सीमा तक अन्योन्याश्रित है जब तक वे एक दूसरे के पूरक हैं । क्योंकि :-

"एक राष्ट्र बिना व्यक्तियों के सहयोग के उन्नति नहीं कर सकता, जिनसे राष्ट्र का निर्माण होता है और कोई व्यक्ति भी बिना राष्ट्र के उन्नति नहीं कर सकता ।"[3]

1- हरिजन, 27-5-39 अहमदाबाद ।

2- यंग इण्डिया- 4-12-24, अहमदाबाद ।

3- यंग इण्डिया- 26-3-31, अहमदाबाद ।

इस प्रकार महात्मा गांधी के अनुसार एक आध्यात्मिक समाज में व्यक्ति को अपनी पूर्णता के लिये प्रयास करना चाहिये । इनकी सामाजिक व्यवस्था में आर्थिक शोषण एवं आर्थिक शक्ति के केन्द्रीभूत होने की भावना का अभाव पाया जाता है । आचार्य कृपलानी के शब्दों में :-

> "अनियमित पूँजीवादी व्यवस्था,आत्माचारी वैयक्तिकता के विकास तथा अभिशप्त साम्यवादी राष्ट्र की शक्ति पर ध्यान केन्द्रित करने से बचाने के लिए ही गांधी जी विकेन्द्रीकृत कृषि और व्यवसाय के आर्थिक सामाजिक ढाँचे के निर्माण हेतु महत्व प्रतिपादित करते हैं ।"[1]

महात्मा गांधी जी का विश्वास है कि वैयक्तिकता का विकास सामाजिक परिवेश में ही हो सकता है, क्योंकि मनुष्य का स्वभाव आत्म सम्मान की भाँति सामाजिक ही है । समाज से व्यक्ति व व्यक्ति से समाज को अलग नहीं किया जा सकता है । प्राचीन काल में दोनों का साथ-साथ विकास होता था और दोनों आपस में संयुक्त थे । कृपलानी के अनुसार :-

> "व्यक्ति व समाज की हानि पर ही इनके आपसी सम्बन्धों की अपेक्षा की जा सकती है । किसी एक पर अधिक बल देना दूसरे को हानि पहुँचाना है । किसी एक पर जोर सन्तुलन को नष्ट करता है, क्योंकि यही सन्तुलन सभ्यता की शाश्वत आवश्यकता है । विश्व की अधिकांश परेशानी इसी

1- आचार्य कृपलानी, जे0बी0:द ले टेस्ट फैड, सेवाग्राम, हिन्दुस्तानी तालिमी संघ, पृष्ठ-84 ।

असन्तुलन के कारण है । एक ओर व्यक्ति अपने उपद्रवी प्रवृत्ति के कारण समाज में भ्रम पैदा करता है, तो दूसरी ओर समाज व्यक्ति को इतना दबा देता है कि उसके संस्कार व व्यक्तित्व दोनों ही समाप्त हो जाते हैं और वह केवल अपने आप चलने वाला यंत्र हो जाता है । इस प्रकार वैयक्तिकता के पूर्व पक्ष एवं समाज के अपर पक्ष के विपरीतार्थ के मध्य मानवता इधर उधर हिलने लगती है ।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गांधी जी अपने जीवन दर्शन व शिक्षा में समाज व व्यक्ति के बीच उचित सन्तुलन संयोजन व उनकी संगति करने में पूर्ण सफल हुये हैं । शिक्षा व्यक्ति का विकास करती है और व्यक्ति की वैयक्तिकता का विकास समूह अथवा समाज में ही होता है । व्यक्तित्व के विकास का कार्य विद्यालय का है । विद्यालय स्वयं सामाजिक प्राणियों का समूह होता है और समाज के लघु रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करता है। जॉन डिवी ने भी विद्यालय को समाज का लघु रूप ही माना है । महात्मा गांधी जी को त्याग की भावना स्वयं समाज सेवा के आदर्श को प्रस्तुत करती है । समाज सेवा ही आत्मानुभूति है । महात्मा गांधी जी ने विश्व को यह अनुभव करा दिया है कि समाज सेवा व आत्मानुभूति के उद्देश्यों में कोई संघर्ष नहीं है । महात्मा गांधी जी ने कहा है :-

"मनुष्य का अन्तिमव सर्वोच्च उद्देश्य ईश्वरानुभूति करना है । व्यक्ति की समस्त क्रियायें सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक व आर्थिक ईश्वर दर्शन के

1-आचार्य कृपलानी, जेबी: द लेटेस्ट फैड, सेवाग्राम, हिन्दुस्तानी तालिमी संघ, पृष्ठ-77

अन्तिम उद्देश्य के लिये ही निर्देशित होनी चाहिये सभी मानवों की तात्कालिक सेवा करना हमारे प्रयत्न का अनिवार्य भाग होना चाहिये, क्योंकि ईश्वर के पाने का एक मात्र तरीका उसे उसकी सृष्टि में देखना है और उससे एकाकार होना है । ----- मैं तो सम्पूर्ण का एक अंश व टुकड़ा हूँ और मैं शेष मानवता से अलग होकर उसे नहीं प्राप्त कर सकता ।"[1]

महात्मा गांधी का आत्मानुभूति हेतु सेवा व त्याग का आदर्श शिक्षा में आधुनिक प्रवृत्तियों का विरोधी नहीं है, क्योंकि आत्मानुभूति और आत्म त्याग में हमें चुनाव नहीं करना है और न तो विकल्प के रूप में व्यवहार करना है । राज्य का विशिष्ट गुण है । राज्य का विकास अपने अन्दर श्रेष्ठता का अनुभव करने बाले व्यक्ति द्वारा ही होता है । राज्य का प्रतिबन्ध व्यक्ति के विकास के लिए एक आवश्यक साधन है । हम व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्र इकाई के रूप में नहीं सोच सकते क्योंकि सामाजिक बन्धन मानव की प्रकृति में निहित हैं । सबसे अधिक मौलिक व्यक्तित्व अबौद्धिक रूप से ही सामाजिक परिवेश से अलग होता है, क्योंकि मन बाला व्यक्ति मानसिक रूप से सामाजिक ही होता है ।

महात्मा गांधी जी भी व्यक्तित्व के विकास के लिए सामाजिक परिवेश का होना जरूरी मानते हैं । वे

1- हरिजन, 29-8-36

विद्यालयों को समुदायों में बदलना चाहते हैं, क्योंकि वैयक्तिकता का सबसे अधिक विकास यहीं हो सकता है । वहीं पर विद्यार्थियों को सेवा करने का विशेष अवसर उपलब्ध होता है । बालक का विकास सामाजिक सम्बन्धों से अधिक होता है ।

बेसिक शिक्षा-पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम शिक्षा के उद्देश्यों का दर्पण है :-

हम देखते हैं कि पाठ्यक्रम ही वह साधन है जो शैक्षिक प्रक्रिया के लिए आधार का निर्माण करता है । पाठ्यक्रम की प्रकृति एवं विषय सूची शिक्षा के उद्देश्यों पर आधारित है, क्योंकि यदि शिक्षा को सीखने - सिखाने की प्रक्रिया माना जाय तो शिक्षा में इसके लिए एक साधन की आवश्यकता पड़ती ही है । वह होता है पाठ्यक्रम । किसी भी शिक्षा योजना में उद्देश्यों एवं पाठ्यक्रम में निकट का सम्बन्ध खोजना प्राय: कठिन नहीं है ।

उद्देश्यों के आधार पर पाठ्यक्रम में भी विविधता होती है :-

सन् 1944 के शिक्षा अधिनियम में यह प्राविधान किया गया था कि शिक्षा द्वारा :-

"समाज के आध्यात्मिक, नैतिक, मानसिक और शारीरिक विकास को प्राप्त किया जाना चाहिये।"[1]

इसी लिये प्रत्येक व्यक्ति को सर्वोत्तम विकास हेतु :-

1- एजूकेशन एक्ट, 1944 एच०एम०एस०ओ०सेक्शन-7

"उम्र, योग्यता और अभिरूचि को ध्यान में रखकर निर्देशन व प्रशिक्षण के लिए पाठ्यक्रम में विविधता का"[1] प्राविधान किया गया था ।

वर्तमान युग में पाठ्यक्रम को व्यवसाय परक बनाने पर बल :-

वर्तमान युग औद्योगिकी एवं तकनीकी का युग है । वैज्ञानिक उपलब्धियों ने लोगों के दृष्टिकोण को अर्थ परक बना दिया है इसलिए कार्य को जीवन में प्राथमिकता दी जाने लगी है । शिक्षा के अर्थ का सम्बन्ध वर्तमान जीवन के संदर्भ से लगाया जाने लगा है । हम देखते हैं कि इंग्लैण्ड का शिक्षा मंत्रालय भी इस बात पर बल प्रदान करता है :-

"सभी माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक शिक्षा कुछ सीमा तक अवश्य प्रदान करनी चाहिये, क्यों कि एक अच्छी शिक्षा सम्पूर्ण जीवन के लिये तैयार करती है न कि किसी विशेष जीवन पक्ष के लिए। ----- माध्यमिक स्तर पर शिक्षा को पुरूष व स्त्री को समुदाय मे कार्य करने के योग्य बनाना चाहिये ताकि वे जीविकोपार्जन के योग्य हो सकें ।"[2]

इस प्रकार शिक्षा का कार्य हो जाता है कि वह व्यक्ति को अपनी रोटी रोजी कमाने की क्षमता पैदा करने के योग्य बनाते । मेकी साक्षरता की योग्यता को न तो शिक्षा मानते है और न तो इसके द्वारा मानव का सम्पूर्ण विकास होना।

1- एजूकेशन एक्ट, 1944, एच0एम0एस0ओ0सेक्शन-8 ।

2- द न्यू सेकन्ड्री एजूकेशन, एच0एम0एस0ओ0 1947, पृष्ठ-47 ।

महात्मा गांधी भी मात्र साक्षरता को महत्व नहीं देते हैं । मेकी ने लिखा है कि :-

> "केवल साक्षरता के साधनों पर आधिपत्य कर लेने से लोगों के रुख, प्रशंसाओं, एवं आदर्शों में परिवर्तन न होगा और न तो इसके द्वारा आर्थिक, सामाजिक तथा स्वास्थ्य की दशाओं में सुधार होगा । साक्षरता ग्रामीण लोगों को नगरी लोगों से न तो मिला पायेगी और न तो इससे भारत को संगठित ही किया जा सकता है ।"[1]

हम देखते हैं कि मेकी जी साहित्यिक उदार शिक्षा को भारत के संदर्भ में अनुपयुक्त पाते हैं । सम्पूर्ण भारत की एकता को बनाये रखने में वर्तमान शिक्षा, साहित्यिक उदार शिक्षा, असमर्थ है । परन्तु हम देखते हैं कि महात्मा गांधी जी की शिक्षा योजना काउद्देश्य एक भिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम का निर्माण करना है ।

<u>पाठ्यक्रम क्रियाशील जिम्मेदार व्यक्तियों का निर्माण करने वाला होना चाहिये</u> :-

महात्मा गांधी जी चाहते थे कि नई सामाजिक व्यवस्था हेतु क्रियाशील जिम्मेदार सत्याग्रही के निर्माण हेतु पाठ्य क्रम का निर्धारण होना चाहिये । इसीलिए इनके पाठ्य क्रम में शुद्ध साहित्यिक विषयों का अभाव पाया जाता है । लाभप्रद शैक्षिक क्रियाशीलन पर महत्व दिया जाता है । हम देखते हैं कि

1- डब्लू0जे0मेकी, न्यू स्कूलस फार यंग इण्डिया, यूनिवर्सिटी ऑव नार्थ कैरोलिना प्रेस, 1930, पृष्ठ-362 ।

किसी शैक्षिक योजना के पीछे एक उपयोगी लक्ष्य होता है । बहुत पहले अरस्तु ने पाठ्यक्रम निर्माण के लिये यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि :-

> "इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बच्चों को वे ही लाभ प्रद वस्तुयें जो आवश्यक हो पढ़ाई जानी चाहिये ।"[1]

हमारी वर्तमान पीढ़ी के शिक्षा परिषद द्वारा ऐसा ही संकेत किया गया है :-

> "------ पाठ्यक्रम को बच्चों में आदत, कुशलता, रूचि और भावनाओं को प्राप्त करने व विकसित करने के लिए प्रभावी होना चाहिये, क्योंकि उन्हें अपनी भलाई तथा जिस समाज में रहते हैं उसकी भलाई के लिए इसकी आवश्यकता होगी ।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक बालक को अपनी भाषा बोलने, पढ़ने और लिखने की योग्यता अर्जित करनी चाहिये और उन्हें कुछ ज्ञान गणित तथा नाप तौल करने का भी होना चाहिये । इस प्रकार उन्हें एक ओर शारीरिक स्वास्थ्य के प्रशिक्षण के महत्व तथा दूसरी ओर व्यावहारिक एवं प्रायोगीय निर्देशन के महत्व से परिचित कराया जाना चाहिये । इसलिए प्रारम्भिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम से इन तत्वों को कभी नहीं निकलना चाहिये ।

1- अरस्तू पॉलिटिक्स, 8, 2

2- हैण्ड बुक ऑव सजेशन्स, पृष्ठ-37 ।

पाठ्यक्रम के विषयों का आधार "उपयोगिता" होना चाहिये :-

इस सिद्धान्त के आधार पर पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों को शामिल किया जाना चाहिये जो उपयोगी हो, इसीलिये आज कल विधालयों के पाठ्यक्रम में ज्ञान व कौशल की वृद्धि करने वाले विषयों को शामिल किया जा रहा है, क्योंकि हम जानते है कि बालको को बाल्यावस्था में ही नहीं बल्कि बड़े होने पर भी इनकी उन्हें आवश्यकता होती है । इस तथ्य को दृष्टि में रखकर प्रयोजनवादी, उपयोगितावादी सिद्धान्त तथा विधालयीय अध्ययन की विषय वस्तु को बालक की क्रियाशीलता, रूचि तथा अनुभव पर आधारित करने का पक्ष लेते हैं । किन्तु प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम महात्मा गांधी जैसे आदर्शवादी को प्रभावित नहीं करता है क्यों कि महात्मा गांधी की शिक्षा योजना का लक्ष्य प्रयोजनवादियों की भाँति केवल भौतिक मूल्यों के लिये बालको को योग्य बनाना ही नहीं है बल्कि पहले से जो मूल्य उनमें अन्तर्निहित है उनकी अनुभूति कराना है । सभी अन्य आदर्शवादियों की भाँति महात्मा गांधी का लक्ष्य नैतिक व्यक्ति निर्मित करना है जो एक सच्चे अर्थ में सामाजिक जीवन व्यतीत करने के योग्य होता है ।

बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में आत्मा का, तथा मानव की उन क्रियाओं का जो इस विश्व मे स्थायी महत्व के हैं का प्रतिबिम्व दिखाई देता है, क्योंकि "मानव आत्मा का शानदार प्रदर्शन "है"। इसलिए विधालयीय क्रियाओं में दो प्रकार के कार्यों की योजना होनी चाहिये । प्रथम वर्ग की क्रियाओं को विषय

के रूप में नहीं रखा जा सकता बल्कि उसे तो सम्पूर्ण विद्यालयीय पर्यावरण में व्याप्त होना चाहिये ताकि बालकों का चरित्र व व्यवहार उत्तम बनाया जा सके । दूसरे वर्ग की क्रियाओं में मातृभाषा, कला जैसे संगीत, हस्तकला जिसमें बढ़ईगीरी, बुनाई-कताई आदि रचनात्मक कार्यों को तथा विज्ञान गणित स्थानीय व सामयिक विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि को शामिल किया जाता है ।

मानव भौतिक व सांस्कृतिक दोनों पर्यावरण से सम्बन्ध रखता है । सांस्कृतिक पर्यावरण उसी का होता है । प्रो० रस्क लिखते हैं कि :-

"सांस्कृतिक पर्यावरण विशेष रूप से उनका ही है ।"[1]

इसलिए यदि बालक को मानव बनाना है तो उन्हें अपने वंश परम्परा के आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश करना ही होगा ।

हम जानते हैं कि मानव की आध्यात्मिक क्रियायें बौद्धिक, नैतिक एवं सौन्दर्यात्मक हैं । इन क्रियाओं का प्रयोग सत्यं, शिवम् और सुन्दरम् की प्राप्ति के लिए होना चाहिये । बालक के व्यक्तित्व के समन रूप विकास हेतु शरीर रक्षा की क्रियाओं को पाठ्यक्रम में शामिल करना पड़ेगा क्योंकि बिना शारीरिक स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक बुद्धि के शिक्षा व व्यक्ति दोनों अपाहिज हो जाते हैं ।

<u>पाठ्यक्रम के विषय जीवन से सम्बन्धित होने चाहिये</u> :-

हम जानते हैं कि शिक्षा जीवन के लिये होती है ।

1- राबर्ट आर०एस०रस्क, फिलासिफिकल बेसिस ऑव एजूकेशन, यू०एल० पी० लन्दन, 1928, पृष्ठ-96 ।

बालक के सम्पूर्ण जीवन का विकास करना शिक्षा का कार्य है । उसके शरीर, मन व आत्मा तीनों प्रकार की क्षमताओं का विकास ही सम्पूर्ण जीवन का विकास माना जाता है । शिक्षा व पाठ्य क्रम दोनों का जीवन से अभिन्न सम्बन्ध है । महात्मा गांधी ने बालक की क्षमताओं के विकास हेतु हस्तकला केन्द्रित पाठ्यक्रम पर बल प्रदान किया है । हस्तकला का जीवन से घनिष्ठ सम्बंध है । जीवन से सम्बन्धित पाठ्यक्रम के मौलिक अर्थ की व्याख्या करते हुये एरिक जेम्स ने लिखा है कि :-

> "जिन लोगों ने कभी व्यावहारिक क्रियायें नहीं की हैं ----- वे जीवन से सम्बन्धित तथ्य के प्रति स्पष्ट विश्लेषण करने में असमर्थ होते हैं परन्तु सत्य तो यह है कि सौन्दर्यात्मक अनुभव, दार्शनिक चिन्तन, नैतिक व राजनैतिक समस्याओं से सम्बन्धित वाद विवाद जीवन से किसी भी प्रकार असम्बन्धित नहीं है ।---- यह सत्य है कि हमारे शिक्षा के पाठ्यक्रम का सम्बंध हमारे जीवन से होना चाहिये परन्तु "जीवन से सम्बन्धित" कथन का गम्भीर अर्थ है । इसका उतना महत्त्व नहीं है जितना कि इसे प्रयोग करने वाले अनुमान लगाते हैं । शिक्षा के आर्थिक व सामाजिक पहलू के अर्थ का चिन्तन करते हुये हमे आत्मा व मन के विकास के लक्ष्य को ध्यान से नहीं हटाना चाहिये ।"[1]

उपर्युक्त कथन महत्त्वपूर्ण है किन्तु हम देखते हैं कि

1- एरिक जेम्स : एन ऐसे ऑव द कन्टेन्ट ऑव एजूकेशन, जार्ज हैरप लन्दन, 1949, पृष्ठ-55 ।

यह पाठ्यक्रम में "हस्तकला" के महत्व को कम नहीं करता है आज किसी भी पाठ्यक्रम की पुनर्रचना में विषयों का जीवन से सम्बन्धित होने के विचार को अधिक महत्ता प्रदान की जा रही है। आज जीवन का अर्थ व्यावहारिक जीवन से अथवा कारीगर के जीवन से लगाया जाने लगा है और भावनात्मक विचारों की अपेक्षा इसे विशेष महत्व दिया जा रहा है।

उत्तम प्रकार के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिये :-

1- पाठ्यक्रम में शिक्षा के उद्देश्यों की छाप हो ताकि बालक जिस संसार में रहता है उसे समझ सके।

2- विद्यालयीय पाठ्यक्रम की शिक्षा से बालको को सामुदायिक जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव हो।

3- पाठ्यक्रम के विषयों द्वारा जीवन के महान कार्यों एवं आदर्शों को उद्घाटित करने की खोज की जाय।

हमने गत पृष्ठों में देखा है कि महात्मा गांधी का शिक्षा का उद्देश्य हस्त, मस्तिष्क, एवं हृदय की संस्कृति के विकास पर बल देने के कारण पाठ्यक्रम में तीन आर ।पढ़ना, लिखना एवं गणित। की अपेक्षा तीन एच से सम्बन्धित विषयों को शामिल किया गया है। सन् 1953 के माध्यमिक शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन का कहना है कि :-

"माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य अच्छे नागरिक बनाने के लिये प्रशिक्षित करना है ताकि देश के नवयुवक

> आर्थिक विकास और समाज की पुनर्रचना करने में अपनी भूमिका को प्रभावी ढंग से अदा कर सकें।"[1]

आगे पुनः कहा गया है कि शिक्षा को चाहिये कि वह विद्यार्थियों में :-

> "स्पष्ट चिन्तन एवं नये विचारों को ग्रहण करने की योग्यता का विकास करे।"[2]

मुदालियर प्रतिवेदन के अनुसार सामाजिक जीवन के लिये जिन गुणों को बालकों में विकसित करना चाहिये वे हैं :-

> "अनुशासन, सहयोग, सामाजिक संवेदनशीलता और धैर्य।"[3]

देश भक्ति की भावना के विकास के साथ-साथ सर्वाधिक महत्व की वस्तु है :-

> "उत्पादनशीलताह्न तकनीकी एवं व्यावसायिक दक्षता।"[4] का विकास करना। शिक्षा का कार्य "विद्यार्थियों में क्रियात्मक शक्तियों को उद्घाटित करना है ताकि वे अपने पूर्वजों की सांस्कृति विरासत की प्रशंसा कर सकें और अवशिष्ट समय में आनन्द उठा सके।"[5]

1- मुदालियर रिपोर्ट, पृष्ठ-5 ।
2- वही पृष्ठ-24 ।
3- वही पृष्ठ-25 ।
4- वही पृष्ठ-27 ।
5- वही पृष्ठ-28 ।

महात्मा गांधी के विचार मुदालियर आयोग से मेल रखते हैं किन्तु महात्मा गांधी के विचारों में नवीनता यह है कि इन्होंने उपर्युक्त विचारों मे सत्य, अहिंसा और प्रेम को और जोड़ दिया है। बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में क्रियाशीलन को विशेष महत्व दिया गया है। हमने देखा है कि महात्मा गांधी के शिक्षा सम्बन्धी विचार सन् 1937 में "हरिजन" नामक पत्रिका में प्रकाशित हो रहे थे। इनके विचार बड़े क्रान्तिकारी थे। इनके क्रान्तिकारी विचारों को कार्यरूप में परिवर्तित करने के लिए जाकिर हुसैन समिति ने 2 दिसम्बर 1937 में बुनियादी शिक्षा के निम्नलिखित सिद्धान्त स्वीकार किये। वे हैं :-

मूल उद्योग द्वारा सात बर्षीय निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा :-

महात्मा गांधी की मान्यता थी कि :-

> "मैं समझता हूँ कि हम लोग उच्च शिक्षा की समस्या व प्रश्न को कुछ दिनों के लिए टाल सकते हैं। किन्तु प्राथमिक शिक्षा की समस्या को एक क्षण के लिए भी नहीं टाल सकते हैं।"[1]

उनका विचार था कि शिक्षा को बिना अनिवार्य बनाये आर्थिक, सामाजिक उन्नति नहीं होगी। शिक्षा में रचनात्मक कार्य को इसलिए वे महत्व देते हैं ताकि पढ़े लिखे नवयुवक नौकरी के लिए मुहताज न बनें।

1- एजूकेशनल रीकन्स्ट्रक्शन, पृष्ठ-96 ।

उनका कथन है कि :-

"मैं सर्व प्रथम बच्चों को उपयोगी हस्तकला सिखाऊँगा ताकि जिस समय से वह शिक्षा प्राप्त करना आरम्भ करें, उस समय से उत्पादन करना भी शुरू कर दें।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गांधी जी उपयोगी क्रियाशीलन को महत्व देते हैं। समाज का सम्पूर्ण कार्यक्रम तीन भागों में विभाजित है।:-

1- आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उत्पादन करना।

2- समाज को व्यवस्थित रखना।

3- प्रकृति के साधनों की खोज करना।

इसलिए महात्मा गांधी जी का पाठ्यक्रम उद्योग केन्द्रित, समाज केन्द्रित एवं भौतिक परिवेश केन्द्रित है। इसी लिये वे प्राकृति परिवेश को ध्यान में रखकर उद्योग-चुनाव के लिए बल देते हैं महात्मा गांधी जी का :-

"विश्वास है कि इस प्रकार की शिक्षा से मस्तिष्क एवं आत्मा का सर्वोच्च विकास होगा। हस्तकला यंत्रवत नहीं सिखाई जायेगी बल्कि उसकी शिक्षा वैज्ञानिक ढंग से दी जायेगी। बालक हस्तकला के प्रत्येक प्रक्रिया के कारणं को समझता जायेगा।"[2]

1- एजूकेशनल रीकन्स्ट्रक्शन, पृष्ठ-4

2- हरिजन, 18-9-32।

शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो :-

महात्मा गांधी जी के अनुसार बच्चों की शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिये । इसलिए मातृभाषा को पाठ्य क्रम में महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिये । इसका कारण यह है कि अन्य भाषा से शिक्षण देने से बालकों के विचारों में अस्पष्टता आयेगी और अपनी जातीय संस्कृति, सभ्यता तथा अन्य विशेषताओं से अपरिचित रह जायेगें । डॉ० जाकिर हुसैन समिति का कथन है :-

> "मातृभाषा का उचित शिक्षण समस्त शिक्षा का आधार है । प्रभावी ढंग से बोलने,परिशुद्ध एवं स्पष्ट रूप से पढ़ने व लिखने की क्षमता के बिना कोई भी व्यक्ति अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं कर सकता ।------ सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि मातृभाषा बच्चों को उनकी सम्पन्न वंशानुगत संस्कृतितथा पूर्वजों के विचारों, भावनाओं एवं आकाक्षाओं से परिचित कराती है इस प्रकार यह सामाजिक शिक्षा का महत्वपूर्ण साधन है ।"[1]

समवाय शिक्षा :-

बेसिक शिक्षा उद्योग केन्द्रित, समाज केन्द्रित एवं प्रकृति केन्द्रित है । जैसा कि गत पृष्ठों में हमने देखा है । इसलिए यह शिक्षा इन तीनों में समवाय करके आगे बढ़ती है । ज्ञान की अखण्डता के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर विषयों को सम्बन्धित

1- एजूकेशनल रिकन्स्टक्शन , पृष्ठ-127 ।

करके पढ़ाना ज्ञान की रक्षा करना है तथा सामाजिक एवं प्राकृतिक परिवेश में सह सम्बन्ध की अनुभूति कराना भी है । मनुष्य को मौलिक आवश्यकताओं {भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य एवं शिक्षा} की पूर्ति हेतु अनेक क्रियाशीलनों को चाहे वे रचनात्मक हो या सृजनात्मक या रंजनात्मककरना पड़ता है । किसी उद्देश्य पूर्ण क्रियाशीलन की योजना बनाने उसके क्रियान्वयन एवं प्रगति में ज्ञान निहित है । अपने आप ज्ञान बालक के जीवन की वास्तविक स्थितियों से प्राप्त होता है । जैसे मंजन करना ।दाँत साफ करने की प्रक्रिया में "कैसे "क्यों, क्या होगा क्या चाहिये कहाँ आदि द्वारा पूछे गये प्रश्नों से स्वास्थ्य व वस्तु विज्ञान का समवायी ज्ञान दिया जा सकता है । उसी प्रकार सूत उत्पादन की प्रक्रिया के माध्यम से गणित, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, साहित्य की जानकारी दी जा सकती है । अत: उद्योग को केन्द्र मानकर समस्त विषयों को उससे सम्बन्धित करके पढ़ाया जाना चाहिये ।

स्वावलम्बन :-

महात्मा गांधी ने लिखा है कि :-

"आपको इस निष्ठा से काम करना होगा कि भारत वर्ष के गाँव की आवश्यकतायें क्या हैं तथा उनके अनु- कूल इस शिक्षा को अनिवार्यत: स्वावलम्बी बनना ही होगा ।"[1]

1- हरिजन, 18-9-37 ।

अतः नई शिक्षा योजना की सफलता उसके स्वावलम्बी बनने पर ही आँकी जा सकती है। शिक्षा में श्रम का स्थान केवल शैक्षिक दृष्टि से ही है। उसके आर्थिक पहलू पर ज्यादा बल नहीं देना चाहिये। महात्मा गांधी की मान्यता है कि यदि कार्य का चुनाव शिक्षा को दृष्टि में रखकर किया जायेगा और समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल होगा तो आर्थिक पहलू की अधिकता के दोष से बचा जा सकता है।

महात्मा गांधी ने उपर्युक्त सिद्धान्तों की उपलब्धि के लिए पाठ्यक्रम को चार स्तरों में विभाजित कर दिया है। वे है :-

<u>पूर्व बेसिक शिक्षा</u> :-

जो बाल्यावस्था से 7 वर्ष की अवधि की है यह भावी शिक्षा की जड़ है। इस स्तर के पाठ्य क्रम में :-

1- स्वास्थ एवं सफाई के अभ्यास की क्रियायें।

2- भोजन बनाने, रखने से सम्बन्धित क्रियायें।

3- पानी पीने व उसके अन्य उपयोग के कार्य का ज्ञान।

4- रचनात्मक क्रियाओं में प्रयुक्त यंत्रों के प्रयोग व रख-रखाव से सम्बन्धित क्रियाशीलन।

5- बागवानी में प्रयुक्त यंत्रो के अभ्यास को शामिल किया गया है।

<u>बेसिक शिक्षा</u> :-

प्रथमतः यह शिक्षा 7 वर्ष से 14 वर्ष के बालको के लिए थी बाद में इसकी अवधि 8 वर्ष की कर दी गई। इस स्तर की

शिक्षा का पाठ्यक्रम प्रत्येक वर्ष के हिसाब से आठ भागों में बाँटा गया है । प्रत्येक भाग एक-एक कक्षा में पढ़ाया जाता है । इस पाठ्यक्रम में पाँच अभ्यासों को शामिल किया गया है ।

1- स्वस्थ एवं शुद्ध जीवन का अभ्यास ।

2- नागरिक जीवन का अभ्यास ।

3- स्वावलम्बन का अभ्यास ।

4- मूल उद्योग का अभ्यास ।

5- रचनात्मक क्रियाओं एवं सांस्कृतिक जीवन का अभ्यास ।

बेसिक शिक्षा का प्रारम्भ प्रथम कक्षा में मौखिक भाषा के उपयोग से होता है । तकली उद्योग का सामान्य ज्ञान भी प्रदान किया जाता है जिसके आधार पर बालक आगे की कक्षाओं में मूल उद्योग सम्बन्धी क्रियाशीलनों में अधिक कुशलता प्राप्त कर लेता है । इन्हीं क्रियाओं के द्वारा बालक गणित, भाषा, इतिहास भूगोल, कला व विज्ञान का समवायित ज्ञान प्राप्त करता है । इस प्रकार आठ वर्ष में बालक एक उद्योग का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर लेता है । किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि किसी मूल उद्योग से समस्त विषयों का ज्ञान प्रदान किया जाय, क्योंकि किसी भी मूल उद्योग में सभी विषयों के ज्ञान को प्रदान करने की क्षमता का पाया जाना सम्भव नहीं है । इसलिये समाज व प्रकृति की आवश्यकतानुसार अनेक क्रियाशीलनों को आधार बनाया जा सकता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि बेसिक शिक्षा जीवन की ठोस परिस्थितियों पर आधारित है । वस्तुतः बेसिक शिक्षा "जीवन द्वारा

जीवन के लिए" है ।

उत्तर बेसिक शिक्षा :-

यह शिक्षा व्यवस्था 14 वर्ष से 19 वर्ष के किशारों के लिये है । यद्यपि बुनियादी शिक्षा को आयोजकों ने केवल 7 वर्ष से 14 वर्ष तक की आयु वाले बालकों के लिये ही इसे बनाया था और इसके बाद की शिक्षा का भार निजी प्रयासों एवं संस्थाओं पर छोड़ दिया गया था । इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि उत्तर बेसिक शिक्षा से बालकों को राष्ट्र की आर्थिक, सामाजिक औद्योगिक एवं आध्यात्मिक समस्त प्रकार की वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान कराया जाय ।

प्रौढ शिक्षा :-

महात्मा गांधी देश के समस्त नर-नारियों को चाहे वे युवक हो या वृद्ध सभी की शिक्षा का प्रबन्ध करने के पक्षधर हैं । हमने देखा है कि टॉलस्टॉय फार्म, फिनिक्स बस्ती एवं साबरमती आश्रम सभी जगह इन्होंने सभी को साक्षर बनाने का प्रबन्ध कर रखा था । इसलिए ऐसा सोचना कि बुनियादी शिक्षा केवल बालकों की शिक्षा तक सीमित है, उचित नहीं है । गांधी जी समाज के प्रौढ सदस्यों की शिक्षा को महत्व प्रदान करते हैं, क्योंकि जनतंत्र देश के समस्त नागरिकों को शिक्षित करना उसकी अनिवार्य शर्त है ।

हमने देखा है कि महात्मा गांधी की इच्छा थी कि सभी को सामाजिक व सांस्कृतिक कार्यों में सहकारिता की भावना

से कार्य करने व भाग लेने, गाँव की उन्नति करने, अच्छे नागरिक बनने, अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का सम्यक ज्ञान अवश्य प्राप्त होना चाहिये । इन समस्त तथ्यों को प्रौढ़ो की शिक्षा में शामिल किया जाना चाहिये ।

बेसिक शिक्षा योजना के पाठ्यक्रम की विषय वार सूची :-

हमने देखा है कि महात्मा गांधी की बेसिक शिक्षा पद्धति का पाठ्य क्रम "क्रियाशीलन युक्त पाठ्यक्रम" है । इस शिक्षा पद्धति के निम्नलिखित विषय हैं :-

1- बेसिक क्राफ्ट या हस्तकला ।

2- मातृभांषा ।

3- गणित

4- सामाजिक अध्ययन ।

5- सामान्य विज्ञान

6- चित्र कला

7- संगीत

8- हिन्दुस्तानी ।

उपर्युक्त सभी विषय अलग-अलग विषय के रूप में नहीं है बल्कि किसी मूल उद्योग को आधार मानकर उससे ही समस्त विषय पढ़ाये जाते हैं । जिन विषयों का आपस में स्वाभाविक सम्बन्ध रहता है उन्हें एक ही ज्ञान के क्षेत्र में रखा जाता है । जैसे इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र को समाजशास्त्र के अन्तर्गत रखा गया है ।

बेसिक शिक्षा के विषयों का हमारे सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन में महत्व है :-

हस्तकला :- महात्मा गांधी भारतीय समाज व समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति को स्वावलम्बी बनाना चाहते हैं । इसीलिये वे चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी उद्योग में दक्षता प्राप्त करें, किन्तु हस्तकला के चुनाव में उसकी उपयोगिता को अवश्य ध्यान में रखा जाय । वे व्यक्ति को कारीगर मात्र नहीं बनाना चाहते है बल्कि उसे शिक्षा सम्पन्न उपजाऊ सदस्य बनाना चाहते हैं । यही कारण है कि महात्मा गांधी हस्तकला के चुनाव में उसकी शैक्षिक सम्भावनाओं की बात करते हैं ।

डॉ0 जाकिर हुसैन समिति ने हस्तकला के रूप में कृषि कताई बुनाई,तफ्ती का काम, लकड़ी का काम और धातु के काम को शामिल करने की संस्तुति की है । वैसे प्रथमत: कताई बुनाई के लिए ही विस्तृत पाठ्यचर्या का समावेश किया गया था किन्तु बाद में कृषि,बागवानी, लकड़ी का काम व धातु के काम को भी शामिल किया गया ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नयी तालीम का विद्यालय कार्य का प्रयोग व खोज करने का मन्दिर है । वह क्रियाशीलन का केन्द्र है न कि निष्क्रिय परम्परा रीति से पढ़ाये जाने वाले विषयों के अध्यापन का । हस्तकला पाठ्यक्रम का अतिरिक्त विषय नही है । हस्त कला को शिक्षा का केन्द्र मानना गांधी दर्शन का क्रान्तिकारी पहलू है इसकेमहत्व को दृष्टि में रखकर ही :-

"आसाम में "तिताबर" स्थान पर रेशम के कीड़े पालने "रहा" में मधुमक्खी पालने का व्यवसाय सफलता पूर्वक संचालित किया गया है ।"[1]

और

"एक विद्यालय मशीन के यंत्रों के विकास के लिये खोला गया है ।"[2]

केरल में बेसिक हस्तकला के रूप में नारियल की जटाओं से वस्तुओं के निर्माण हेतु पाठ्यचर्या के विकास के सम्बन्ध में अध्ययन किया गया था । इस प्रकार हस्तकला के द्वारा भाषा, गणित, विज्ञान कला, संगीत सभी विषयों को सम्बन्धित करके पढ़ाने पर महात्मा गांधी बल देते हैं ।

नयी तालीम बालक की सृजनात्मक, रचनात्मक, भावनात्मक एवं रंजनात्मक वृतियों के विकास का अवसर प्रदान करती है ।

बुनियादी शिक्षा की दैनिक समय सारिणी निम्न प्रकार है :-

1- प्रोगेसिव ऑव एजूकेशन इन इण्डिया, 1947-52 क्यून क्यूनियन रिव्यु मिनिस्ट्री ऑव एजूकेशन दिल्ली, 1953 पृष्ठ- 38 ।

2- - तदैव - पृष्ठ-28 ।

1- बुनियादी शिल्प या हस्तकला -	3 घण्टे 20 मिनट
2- गणित, संगीत, ड्राइंग -	40 मिनट
3- मातृभाषा -	40 मिनट
4- सामान्य विज्ञान व सामाजिक ज्ञान -	30 मिनट
5- शारीरिक शिक्षा -	10 मिनट
6- अवकाश -	10 मिनट
कुल योग -	5 घण्टे 30 मिनट

शिक्षण विधि :-

वैसे तो महात्मा गांधी एक धार्मिक व्यक्ति थे किन्तु मानव व्यवहार क्षेत्र के विशेषज्ञ भी थे। मनोविज्ञान के अध्येता न होते हुये भी व्यावहारिक मनोविज्ञान के ज्ञाता थे। इसीलिए इन्होंने क्रियात्मक विधि "करके सीखने, स्वानुभव द्वारा सीखने जैसी विधियों को महत्व दिया है। क्रिया द्वारा ज्ञान को विकसित करना उनकी शिक्षण विधि का मुख्य आधार है।

हमने देखा है कि महात्मा गांधी जी उद्देश्य पूर्ण शिक्षण व निर्देशन में विश्वास करते हैं किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि बालक को केवल पढ़ाया जाय और सीखने के लिये अवसर न दिया जाय। महात्मा गांधी जी प्रकृतिवादियों एवं प्रयोजनवादियों की भाँति अधिगम की क्रियाशीलन विधि ﴾एक्टिवटी मेथड﴿ के पक्षधर है क्योंकि इन्होंने अन्य आदर्शवादियों की अपेक्षा शिक्षा की आधुनिक विधियों के निर्माण एवं खोज में अधिक योगदान दिया है।

बेसिक शिक्षा की हस्तकला केन्द्रित विधि" प्रयोजन वादी प्रोजेक्ट ।योजना। विधि" के समान है,परन्तु गांधी वादी विचारधारा की कुछ विशिष्ट विशेषताओं के कारण "बेसिक शिक्षा विधि" "प्रोजेक्ट विधि" की अपेक्षा पूर्णत: नवीन हैं । हस्तकला केन्द्रित शिक्षण विविध की उपज शैक्षिक उद्‌देश्यों से ही हुई है यही इस विधि की विशिष्टता है । इसलिए महात्मा गांधी की शिक्षण विधि की सम्यक जानकारी प्राप्त करने के लिए आधुनिक शिक्षा जगत की अन्य क्रियाशीलन विधियों की प्रकृति की जाँच की जाय । रूसो ने बाल केन्द्रित शिक्षा पर बल देते हुये कहा है :-

> "शिक्षा को अपना उद्‌देश्य, प्रक्रिया और साधन बालक के जीवन व उसके जीवन के अन्दर ही खोजना चाहिये ।"[1]

रूसों का कथन है कि :-

> "अपने विद्यार्थियों को मौखिक शिक्षण मत दो, उन्हें मात्र अनुभव से सीखने दो ।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृतिवादी शिक्षा में वास्तविक वस्तुओं के निरीक्षण, प्रयोग तथा क्रियाशीलन पर बल दिया गया है । विद्यालयीय समाज को वास्तविक बनाने के लिए

1- पॉल मनरो :टेक्स्ट बुक इन द हिस्ट्री ऑव एजूकेशन, मैकमिलन न्यूयार्क, 1928. पृष्ठ-57। ।

2- रूसो :"एमील" डेन्ट लन्दन, 1925, पृष्ठ-56 ।

वे सह-शिक्षा और "खेल विधि" पर बल देते हैं ।

प्रयोजनवादियों के अनुसार विद्यालयीय विषय को बालक की रूचि, अनुभव एवं क्रियाशीलन पर आधारित होना चाहिये । बाल्यावस्था की प्रमुख विशेषता क्रियाशीलन है । इसलिए रूचिकर क्रियाशीलन द्वारा ही बालक को सीखना चाहिये । जॉन डिवी के अनुसार बालकों की वास्तविक रूचि :-

> "वार्तालाप अथवा विचार प्रेषण में, वस्तुओं की जाँच व खोज करने में, वस्तुओं के निर्माण अथवा रचना में तथा कलात्मक अभिव्यक्ति में होती है ।"[1]

बालक की इन्हीं रूचियों एवं प्रवृत्तियों पर पढ़ने, लिखने और गिनने की कला निर्भर करती है ये ही वह साधनव यंत्र है जिनमें बालक को दक्षता हासिल करनी चाहिये । जॉन डिवी कहते हैं कि हमें जो कुछ करना है वह केवल :-

1- "व्यवसाय, अभिव्यक्ति, वार्तालाप, रचना, और प्रयोग में बालकों को पर्याप्त मात्रा में व्यक्तिगत क्रियाशीलता प्रदान करना है । और

2- बालकों को सर्वाधिक प्रत्यक्ष अनुभव करने की व्यवस्था करना ताकि पारम्परिक सामाजिक साधनों पर आधिपत्य व प्रबन्ध करने की आवश्यकता का अनुभव कर सकें ।"[2]

1- जॉन डिवी : द स्कूल एण्ड सोसायटी, यूनिवर्सिटी ऑव शिकागो प्रेस शिकागों, 1936, पृष्ठ-45 ।

2- - तदैव - पृष्ठ-105 ।

डिवी का मानना है कि यदि ऐसा होता है तो यह :-

"बालक के मार्ग को बौद्धिक बनायेगी तथा प्रेरणाओं से युक्त करेगी तथा दास की आश्रितता के बजाय उन्हे अतिरिक्त शक्ति प्रदान करेगी ।"[1]

उन्होंने पुन: विचार व्यक्त करते हुये कहा है कि भाषा, साहित्य और गणित में कार्य यांत्रिक व्यायाम और औपचारिक विश्लेषण के रूप में न होगा बल्कि धीरे-धीरे :-

"महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करेगा, वास्तव में जिसके बालक अधिकारी हैं ।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यार्थियों को पढ़ाना नहीं है बल्कि उन्हें क्रियाशील कार्य द्वारा स्वयं सीखने के लिए उत्साहित करना है । उपलब्ध पर्यावरण में बालक को मूल्यों का शक्तिशाली निर्णायक मानते हुये प्रयोजनवादी प्रकृतिवादियों की अपेक्षा सर्वाधिक चैतन्यता व समझ से बालक को विशेषकर उस सामाजिक चरित्र का जिसमें वह प्रत्यक्ष रूप से भाग लेता है एक सहयोगी प्रकार था । अनुभव प्रदान करते हुये उसके मौलिक स्वभाव को सुधारने व संशोधित करने की खोज करते हैं । बालक उसका सामाजिक एवं प्राकृतिक पर्यावरण ही शिक्षा के

1- जॉन डिवी : द स्कूल एण्ड सोसाइटी यूनिवर्सिटी ऑव शिकागो प्रेस शिकागो, 1936 पृष्ठ- 105 ।

2- - तदैव - पृष्ठ-106 ।

प्रदत्त हैं । सामाजिक एवं प्राकृतिक पर्यावरण के मध्य की प्रति-क्रिया द्वारा ही बालक के अनुभव का निर्माण होता है । प्रयोजनवादी शिक्षा व्यवस्था में बालक को परिस्थितियों में डाल दिया जाता है तथा सफलता पूर्वक कार्य करने के लिये उन्हे साधन प्रदान किये जाते हैं । विषयों का अलग-अलग अध्ययन करने के बजाय बालक क्रियाशीलता से संगति रखने वाले समस्त ज्ञान को स्वतंत्रता से प्राप्त करता है । किल पैट्रिक द्वारा विकसित प्रयोजनवादी प्रोजेक्ट विधि, विषयों के पारस्परिक सम्बन्ध को किस प्रकार उत्तम रीति से प्रकट किया जा सकता है, अभिव्यक्ति करने में पूर्ण सक्षम है । प्रोजेक्ट विधि अधिगम की प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व एक निश्चित समस्या प्रस्तुत करती है और उस समस्या को बालकों को हल करना होता है । इस प्रकार सर्व प्रथम समस्या की उत्पत्ति तत्पश्चात समस्या के सफल समाधान के बाद अधिगम स्वयं आकस्मिक रूप से घटित हो जाता है ।

> "इस विधि की सामान्य धारणा यह है कि विद्यालयीय समय वास्तविक कार्यों से युक्त हो और बालक उसे स्वयं पूरा करने के लिए इच्छुक हो, -- और औपचारिक विद्यालय के विषयों --- गणित, और आधुनिक भाषा आदि के ज्ञान को भी शामिल किया जाय ।"[1]

1- जी0एच0 थामसन, ए माडर्न फिलोसफी आॅव एजूकेशन, ऐलेन एण्ड अनविन, लन्दन, पृष्ठ-87 ।

प्रयोजनवादी जॉन डिवी औपचारिक एवं मौखिक शिक्षण का विरोध करते हैं और निष्क्रिय रूप से विचारों को ग्रहण कराने वाली शैक्षिक प्रक्रियाओं को अस्वस्थ कर एवं अमनो-वैज्ञानिक मानते हुये त्याग देने का परामर्श प्रदान करते हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृतिवादी, आदर्शवादी तथा प्रयोजनवादी समस्त शिक्षा शास्त्री प्राय: इस बात पर सहमत है कि विद्यालयों में शिक्षा इस प्रकार दी जानी चाहिये ताकि बालक की क्रियाशीलता रूपी शक्ति का प्रवाह रूक न सके। विद्यालय की समस्त क्रियाओं में चाहे भाषा सम्बन्धी कार्य हो या गणित, भूगोल, इतिहास, तथा विज्ञान को सीखने सम्बन्धी कार्य हो, बालक ही करने वाला एवं सृष्टा है इसलिये अन्वेषण तथा क्रियाशीलन का आनन्द प्राप्त करने का उसे ही अधिकार है ।

बोर्ड ऑव एजूकेशन के अनुसार प्राइमरी विद्यालयों में :-

> "पाठ्यक्रम क्रिया प्रधान तथा अनुभव प्रधान होना चाहिये । उसे ज्ञान व तथ्यों को संगठित कराने तथा प्राप्त कराने वाला नहीं होना चाहिये ।"[1]

माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षण के सम्बन्ध में "स्पेन्स रिपोर्ट" का ऐसा ही विचार है ।

1- द रिपोर्ट ऑव द कन्सलटेटिव कमेटी ऑन द प्राइमरी स्कूल एच0एम0एस0ओ0, 1931 पृष्ठ-93 ।

नन के अनुसार :-

> "विद्यालय को वह स्थान कदापि न समझना चाहिये जहाँ निश्चित ज्ञान सीखा जाता है बल्कि वह स्थान है जहाँ बालक कुछ निश्चित प्रकार की क्रिया-ओं में प्रशिक्षित किये जाते हैं।"[1]

माध्यमिक शिक्षा आयोग भी मानता है कि विषयों का आपस में सम्बन्ध होना चाहिये और प्रत्येक विषय एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं। पाठ्यक्रम की सूची विस्तृत क्षेत्र को अपने में शामिल करें विषय की इकाई का सम्बन्ध जीवन से हो न कि सूचनाओं की वस्तु को संगठित करने से। इस प्रकार हम देखते हैं कि माध्यमिक पाठ्यक्रम और विधि का सम्बन्ध गांधीवादी विचार का उत्तरदान ही है, न कि पाश्चात्य विचारों का अनुकरण। हम जानते है कि :-

> "कठोर प्रकृतिवाद मस्तिष्क का सिद्धान्त है जो कृतज्ञता पूर्वक तर्क एवं सत्य का आश्रय तो लेता है किन्तु भावनात्मक मूल्यांकन एवं मूल्य के प्रति स्वाभाविक रूप से उदासीन है। महात्मा गांधी ने इस कठोर प्रकृतिवाद के सिद्धान्त में भावना का पुट दे दिया था, इस प्रकार प्रकृतिवादी अस्तित्व वाद का विकास हुआ।"[2]

यही कारण है कि महात्मा गांधी रूसो की भाँति पारम्परिक शिक्षा व्यवस्था तथा पुस्तकीय शिक्षा का विरोध करते

1- नन : एजूकेशन इट्स डाटा एण्ड फर्स्ट प्रिंसिपुल्स, 1920, पृष्ठ-263

2- दत्ता: द फिलॉसफी ऑव महात्मा गांधी, यूनिवर्सिटी ऑव विसकान्सिन प्रेस, कनाडा 1953, पृष्ठ-57

है और उस सभ्यता की भी जिसने मानव को उपजीवी बना दिया है तथा श्रेष्ठ लोगों के द्वारा बलात् लादे गये प्रतिबन्धों तथा बालक के व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास में उत्पन्न किये गये अवरोधों की स्वीकृति दी है, निन्दा की है । परन्तु महात्मा गांधी प्रकृतिवादियों की भाँति बालक को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करने के पक्ष में नही हैं । वे यह नहीं चाहते कि बालक के मन मस्तिष्क में जो भी विचार आवे उसी का अनुयायी हो जाय बल्कि आदर्श की प्राप्ति के लिए उनके अध्ययन में मार्ग दर्शन देने के पक्षधर हैं । रूसों की भाँति महात्मा गांधी भी इस बात को मान्यता देते है कि बालक की प्रकृति और उसका ग्रामीण पर्यावरण शैक्षिक प्रक्रिया में महत्वपूर्ण अभिकरण है, परन्तु महात्मा गांधी मानव व समाज के कुछ प्रभावों से रूसों की भाँति बालक को अलग नहीं रखना चाहते । महात्मा गांधी भौतिक एवं सामाजिक दोनों पर्यावरण पर बल देते हैं और प्रयोजनवादी की भाँति :-

> "क्रियात्मक व्यक्ति के विकास की खोज करते हैं जो क्रियात्मक समाज पर और अधिक क्रियाशीलन प्रभाव डालने में सफल हो सकें ।"[1]

इसी तथ्य के कारण प्रयोजनवादी शिक्षण विधि तथा महात्मा गांधी की शिक्षण विधि में समानता पाई जाती है । जिस प्रकार प्रयोजनवादी मानते हैं उसी प्रकार महात्मागांधी

1- प्रोग्रेसिव एजूकेशन, यू०एस०ए० इयर बुक आँव एजूकेशन, 1952 पृष्ठ-70 ।

भी बालक को मूल्यों का निर्माता एवं सत्यान्वेषी मानते हैं । वे चाहते है कि बालक उद्देश्य पूर्ण क्रिया के द्वारा स्वयं करके सीखे, न कि पुस्तकीय कीड़ा बनकर दूसरे के ज्ञान को निष्क्रिय बन कर प्राप्त करे । उनकी "हस्तकला केन्द्रित शिक्षा" "प्रोजेक्ट विधि" की भाँति बालक की रूचि एवं क्रिया के सिद्धान्त पर आधारित बाल केन्द्रित है । "जॉन डिवी" एवं "किल पेट्रिक" की भाँति महात्मा गांधी चाहते हैं कि प्रोजेक्ट हस्तकला के संदर्भ से ही बालक विभिन्न प्रकार के ज्ञान को अर्जित करें । बालक जिस हस्तकला को करता है वही उसके ज्ञान का स्रोत हो । प्रोजेक्ट की भाँति शिक्षा को हस्तकला के जरिये सामाजिक कार्यों तथा सम्बन्धों, कार्य के विभाजन तथा स्वेच्छा से उत्तरदायित्व को वहन करने के कार्यों में भाग लेने की बालक को प्रेरणा देनी चाहिये । जॉन डिवी के विद्यालय की भाँति महात्मा गांधी का विद्यालय कार्यशीलन विद्यालय होने के नाते चिन्तन शील शिक्षालय भी है, क्योंकि जॉन डिवी की भाँति महात्मा गांधी ने अनुभव किया था कि - विचारशील व कार्यशील के रूप में समाज समान रूप से दो वर्गों में विभक्त हो गया है । एक वर्ग कर्मशील था और दूसरा विचारशील अथवा अकर्मशील वर्ग था । इस प्रकार का विभाजन एक सच्चे लोकतंत्र के लिए उचित नहीं है । इसलिए कार्य एवं विचार में सामन्जस्य होना चाहिये । यद्यपि विचार कर्म में विलीन हो जाता है और कर्म से विचार - नूतन विचार - उद भत होते हैं । इसलिए विचार व कर्म एक ही तत्व के दो पहलू हैं

परन्तु समग्र रूप में एक ही है । अत: वर्ग विभाजन लोकतंत्र में अक्षम्य है ।

महात्मा गांधी के हस्तकला केन्द्रित शिक्षा और प्रोजेक्ट विधि में मौलिक अन्तर भी है । महात्मा गांधी की स्वयं उक्ति है :-

" मेरी योजना [जॉन डिवी की योजना से] बिलकुल भिन्न है । क्योंकि यह ग्रामीण योजना है ।"[1]

बेसिक शिक्षा का सामाजिक उलझाव [इम्पिलीकेशन] ही इसका महत्वपूर्ण व जीवन्त भाग है वास्तव में यही वह बिन्दु है जो प्रोजेक्ट एवं बेसिक पाठ्यक्रम के मध्य सर्वाधिक अन्तर प्रकट करता है । जैसे कोई भी क्रिया प्रोजेक्ट हो सकती है परन्तु विद्यालयीय चयनित हस्तकला ग्रामीण अवश्य होनी चाहिये । जो उस विद्यालय मे अध्ययनरत विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनु-रूप हो । प्रोजेक्ट असीमित है,और इस योजना की अनेक सीरीज को एक के बाद एक करके विद्यार्थियों द्वारा चुना जाता है क्यों कि प्रोजेक्ट तो केवल "समस्यात्मक कार्यहै जिसे स्वाभाविक व्यवस्था के रूप में उन्हें पूर्ण करना होता है ।"[2] परन्तु ग्रामीण हस्तकला अपनी प्रकृति में बहुत कम होती है और प्रत्येक विद्यालय में एक ही बेसिक हस्तकला द्वारा सम्पूर्ण शिक्षा प्रदान की जा सकती है । प्रोजेक्ट में केवल शैक्षिक सम्भावनायें निहित होती है

1- एजूकेशन रीकन्स्ट्रक्शन, पृष्ठ-132 ।

2- जे0ए0स्टीवेन्सन : द प्रोजेक्ट मैथड ऑव टीचिंग, मैक मिलन न्यूयार्क,1930, पृष्ठ-43 ।

परन्तु बेसिक हस्तकला में शैक्षिक सम्भावनाओं के अतिरिक्त आर्थिक सम्भावनायें भी आवश्यक रूप से निहित होती है। इसलिए उत्पादनशील हस्तकला का होना आवश्यक है ताकि वह विक्रय के उपयुक्त वस्तुओं का निर्माण कर सके। प्रोजेक्ट विषयों को सम्बन्धित करने की अपेक्षा उन्हें जोड़ने पर बल देता है जबकि बेसिक ग्रामीण हस्तकला अधिगम की चारित्रिक विशेषता के रूप में संयोजन तथा सह-सम्बन्ध दोनों को महत्व प्रदान करती है। ये दोनों क्रियायें ज्ञान को बालक के जीवन से सम्बन्धित करने पर बल प्रदान करती है। प्रोजेक्ट अधिकतर आकस्मिक अधिगम पर आधारित है और बेसिक शिक्षा पद्धति विषयों के तार्किक एवं व्यवस्थित शिक्षण पर बल देती है। अब हमें यह भी जान लेना है कि सह-सम्बन्ध किस प्रकार किया जा सकता है और क्या समस्त विषय समवाय विधि से पढ़ाये जा सकते हैं ?

समवाय विधि की प्रविधि :-

महात्मा गांधी जी की मान्यता थी कि ज्ञान की सम्भावनाओं की कोई सीमा नहीं है इसलिये हस्तकला द्वारा समस्त ज्ञान प्रदान नहीं किया जा सकता है। फिर भी वे समस्त शिक्षा हेतु शिक्षा प्रक्रिया को "तकली" से प्रारम्भ करना चाहते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में तकली :-

"शैक्षिक सम्भावनाओं के दृष्टिकोण से कामधेनु है।"[1]

1- हरिजन, 18-2-39 ।

तकली के द्वारा शिक्षा प्रदान करने के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुये महात्मा गांधी ने कहा है :-

> "तकली मुझे सबसे ज्यादा इसलिये जँचती है कि इसे छोड़कर अन्य धन्धे के लिये हमारे पास और कोई सामान मौजूद नहीं है, तकली को न ज्यादा खर्च की गरज है, न सर अंजाम की ।"[1]

इससे प्रकट है कि "तकली" को उद्योग के रूप में मानकर समस्त शिक्षा प्रदान करने से कई फायदे हैं । एक तो इसमें कम लागत लगती है । मानव जाति की प्रथम खोजों में से सूत कातना एक हस्तकला रही है । इस प्रकार "तकली" द्वारा शिक्षा प्रारम्भ करने का तात्पर्य होगा जाति के पूर्व अनुभव से शिक्षा आरम्भ करना । महात्मा गांधी बालकों को यह बताना चाहते है कि प्रारम्भिक दिनों में हमारे जीवन मे तकली का क्या महत्व था, ऐसा करने से छात्र तकली के इतिहास से भिज्ञ होगें तथा साथ ही हस्तकला के रूप में तकली का किस प्रकार पतन हुआ । इसके आधार पर छात्रों को ईस्टइण्डिया कम्पनी की स्थापना अथवा इसके पूर्व के मुस्लिम युग के इतिहास से प्रारम्भ कर भारतीय इतिहास का संक्षिप्त परिचय कराया जा सकता है । तथा यह भी ज्ञान दिया जायेगा कि एक व्यवस्थित प्रक्रिया द्वारा धीरे-धीरे भारतीयों के इस मूल हस्तकला को किस प्रकार

1- वर्धा सम्मेलन में दिये गये महात्मा गांधी के भाषण से-22-10-1937 ।

नष्ट किया गया ।

महात्मा गांधी केवल उद्योग या हस्तकला के रूप में ही इसकी शिक्षा देना नहीं चाहते थे बल्कि इसके माध्यम से सारी शिक्षा देना चाहते थे । गांधी जी का कथन है :-

"इस तकली का सबक हमारे विद्यार्थी का प्रथम पाठ होगा, जिसके जरिये वे कपास का, लंकाशायर का और अंग्रेजी राज्य का बहुत कुछ इतिहास जान जायेगें । ---- यह तकली कैसे चलती है, इसका क्या उपयोग है और इसके अन्दर क्या क्या ताकत पड़ी हुई है सो सब खेल-खेल में ही बालक जान लेता है।"[1]

इस प्रकार महात्मा गांधी एक मनोवैज्ञानिक की भाँति खेल विधि की भी वकालत करते हैं । महात्मा गांधी जी के अनुसार तकली के माध्यम से :-

"कपास की उपज से लेकर कपड़ा बुनने तक की प्रत्येक प्रक्रिया को - कपास की चुनाई, बिनौला निकालना, धुनाई, बुनाई कताई, धागा लपेटना, नपाई तकली की तकनीकी के रूप में समझना चाहिये और इतिहास व गणित को इससे सम्बन्धित किया जा सकता है ।"[2]

महात्मा गांधी का विचार है कि :-

"तकली द्वारा थोड़ा गणित का ज्ञान भी कराया जा सकता है क्योंकि तकली पर जो सूत वह कतता है अगर उस सूत के तार उससे गिनवाये

1- महात्मा गांधी -वर्धा सम्मेलन में दिया गया भाषण 22-10-37

2- हरिजन, 11-6-38 ।

> जाये और पूँछा जाय कि कितने तार काते हैं तो धीरे-धीरे इसके अन्दर से उसे गणित का भी ज्ञान कराया जा सकता है ।"[1]

महात्मा गांधी का यह दृढ विश्वास था कि वर्ण माला की शिक्षा तथा पढ़ने लिखने की शिक्षा से बालक का प्रशिक्षण प्रारम्भ करना उनकी बौद्धिक शक्ति के विकास में अवरोध डालना है । इसलिए इतिहास भूगोल व गणित तथा कलाई की कला के प्रारम्भिक ज्ञान के बिना महात्मा गांधी जी बालकों को वर्णमाला का ज्ञान देना नहीं चाहते हैं । इनकी इस प्रकार की व्यवस्था में "लॉ ऑव रेडीनेस" तैयारी का नियम लागू होता है । इस प्रकार महात्मा गांधी "मनोवैज्ञानिक क्षण के ज्ञाता प्रतीत होते हैं । हम देखते है कि महात्मा गांधी किसी भी मनोवैज्ञानिक से कम नहीं है । बालक के सीखने की गति की तीव्रता को देखकर ही उसे "कला" का ज्ञान देना चाहिये । "कला" का ज्ञान हस्त लेख पर प्रभाव डालता है । इसीलिये वे सुलेख को महत्त्व देते हैं ।

> "सुलेख को मैं सुन्दर कला मानता हूँ, वर्णमाला की लिखावट को बालको पर लादकर तथा इसके द्वारा उनकी शिक्षा को प्रारम्भ करके हम सुलेख की हत्या करते हैं ।"[2]

1- वर्धा सम्मेलन के भाषण से 22-10-37 ।

2- हरिजन 5-6-37 ।

इस प्रकार महात्मा गांधी की शिक्षा योजना की सम्पूर्ण प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक आधार पर टिकी हुई है तथा सारी अधिगम प्रक्रिया एक उद्देश्य पूर्ण क्रियाशीलन के साथ-साथ विद्यालयीय शिक्षा आनन्द की वस्तु हो जाती है ।

समवाय विधि :-

बेसिक शिक्षा में समवाय का बहुत महत्त्व है क्यों कि यहाँ ज्ञान व कर्म में सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया जाता है । बेसिक शिक्षा में हाथ के कर्म के साथ-साथ मानसिक व बौद्धिक कार्य को ही केवल स्थान नहीं दिया गया है, बल्कि जीवन की ठोस परिस्थितियों और क्रियाओं के द्वारा ज्ञान प्रदान करने की व्यवस्था की गई है । शिक्षा विशेषज्ञों ने अनेक प्रविधियों द्वारा विषयों में सह-सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है । हरबार्ट ने पूर्व ज्ञान के सिद्धान्त, जिलर ने इतिहास, पार्कर ने प्रकृति विज्ञान, फ्रोबेल ने स्वयं क्रिया तथा जॉन डिवी ने प्रोजेक्ट के माध्यम से विभिन्न विषयों में सह-सम्बन्ध स्थापित करने के सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं ।

महात्मा गांधी ने बेसिक शिक्षा पद्धति के पाठ्यक्रम के सम्पूर्ण विषयों को किसी एक मूल उद्योग को केन्द्र में रखकर पढ़ाने पर बल दिया है । इसी उद्योग के माध्यम से भाषा, विज्ञान इतिहास, भूगोल आदि विषयों को सह-सम्बन्धित करके शिक्षा प्रक्रिया चला करती है । इस प्रकार हम देखते हैं महात्मा गांधी जो सह-सम्बन्ध के नियम ।लॉ ऑव एसोसियेशन। के महत्त्व को

स्वीकार करते हैं तथा जीवन के प्रत्येक उपयोगी ज्ञान को सम्ब-न्धित करके पढ़ाने पर बल देते हैं ।

एक विषय का दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करना ही समवाय नहीं है बल्कि समवाय में बालक के पूर्व अनुभव या ज्ञान तथा उसके जीवन से सम्बन्ध स्थापित करना भी शामिल है । समवाय विधि से शिक्षण के अनेक लाभ है :-

1- ज्ञान की समग्रता एवं एकतत्व की अनुभूति ।

2- विषयों के अध्यापन में रोचकता का विकास ।

3- विषयों का स्पष्ट होना ।

4- पाठ्यक्रम का भार कम होना ।

5- बालकों के व्यावहारिक ज्ञान में वृद्धि ।

6- विशिष्टीकरण के दोषों का दूर होना ।

7- अनुभवों का सम्बन्धीकरण ।

8- बालकों के सर्वांगीण विकास में सहायता ।

9- समय की बचत ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बेसिक शिक्षा में जिन विधियों का प्रयोग किया जाता है वे सभी मनोविज्ञान सम्मत हैं । सारांश में कहा जा सकता है कि महात्मा गांधी ने

1- करके सीखना 2- स्वानुभव द्वारा सीखना

3- क्रियाशीलन विधि 4- निरीक्षण विधि

5- आगमन तथा निगमन विधि

6- सह-सम्बन्ध विधि 7- हस्तकला

केन्द्रित विधि को शिक्षण की प्रमुख विधि मानी है इसके अतिरिक्त श्रवण,मनन व विदिध्यासन, व्याख्यान एवं प्रश्नोत्तर विधि को सह शिक्षण विधि के रूप में महात्मा गांधी जी मान्यता देते हैं बेसिक शिक्षा के शिक्षण में उपयोगिता, क्रियाशीलता, अनुभव तथा सानुबन्धता के सिद्धान्त का पूर्णत: पालन होता है । मनो वैज्ञानिकों की मान्यता है कि आवश्यकता पड़ने पर पूर्व अनुभव का शेषांश सक्रिय हो जाता है, और नये अनुभव को प्राप्त करने में सहयोग देता है । इस क्रिया को "विचार सम्प्रत्यक्ष" कहते हैं। महात्मा गांधी तथा हरवार्ट दोनों ने इसे मान्यता दी है । इसी आधार पर "ज्ञात से अज्ञान्त की ओर" के सूत्र का जन्म हुआ है । इसी को सरल से कठिन की ओर" सूत्र भी कहते हैं । जॉन डिवी, फ्रोबेल तथा महात्मा गांधी "जीवन और बालक के पूर्व अनुभवों के साथ समवाय करके शिक्षण करने पर बल प्रदान करते हैं ।

<u>बेसिक शिक्षा-अध्यापक</u> :-

आज प्राय: प्रत्येक व्यक्ति बेसिक शिक्षा योजना की श्रेष्ठता पुरानी शिक्षा व्यवस्था की अपेक्षा अधिक मानता है परन्तु परिणाम आशा के विपरीत उपलब्ध हुआ है । इसका मूल कारण अन्तर्दृष्टि एवं आवश्यक योग्यता युक्त अध्यापकों का अभाव ही माना जा सकता है । बेसिक शिक्षा योजना में शिक्षण रूचिकर एवं आसान बनाने का प्रयत्न किया जाता है किन्तु योग्य अध्यापकों के अभाव में ऐसा करना सम्भव नहीं

हो पा रहा है । महात्मा गांधी जी का कथन है कि :-

> "नई तालीम के शिक्षक को गीता के द्वितीय अध्याय में वर्णित एक बुद्धिमान व्यक्ति की समस्त अच्छाइयों तथा योग्यताओं को अवश्य धारण करना चाहिये ।"[1]

उन्होंने पुनः कहा है कि :-

> "यदि वे सत्य और अहिंसा में विश्वास रखते हैं तो अपने कार्य को सर्वाधिक प्रभावशाली ढंग से सम्पादित और चुम्बक की भाँति कठोरतम हृदय वाले व्यक्ति को भी अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं ।"[2]

वे पुनः कहते है कि अध्यापक के असीम धैय और -

> "प्रेम को भी छात्रों के प्रति धारण करना चाहिये केवल प्रेम ही नहीं बल्कि उन्हें बच्चों का आदर भी करना चाहिये ।"[3]

महात्मा गांधी जी की धारणा है कि अध्यापकों को :-

> "चरित्रवान"और बालकों की आवश्यकताओं के प्रति उन्हें प्रेम एवं विश्वास के साथ विचार करना चाहिये। उन्हें ईमानदारी,बौद्धिकता और साहस के साथ तथा एक महान विश्वास से अपना कार्य पूरा करना चाहिये ।"[4]

1- पेरैनाइकेन पालैयम रिपोर्ट, पृष्ठ-36 ।
2- - तदैव -
3- - तदैव - पृष्ठ-146 ।
4- हरिजन, 1-12-33 ।

उसी क्रम में उनका यह भी कथन है कि :-

> "उन्हें अपने विद्यार्थियों का माता-पिता भी बनना होगा और यह जानना होगा कि उनकी क्या आवश्यकतायें है, वे क्या चाहते हैं । उसे उन्हें पूरा करना तथा प्रदान करना होगा ।"[1]

महात्मा गांधी ने यंग इण्डिया में अध्यापक के उत्तरदायित्व तथा कर्तव्य की ओर संकेत करते हुये कहा कि :-

> "उन्हें प्रत्येक छात्र का व्यक्तिगत इतिहास तथा उनके माता-पिता के विषय में भी जानकारी रखनी होगी ।"[2]

> "उन्हें स्वयं स्वराज्य की भावना को धारण करना चाहिये और अपने क्षेत्र में उसका विकास करना चाहिये तथा अपने अपने कार्य को स्वार्थ रहित सेवाभाव से सम्पादित करना चाहिये ।"[3]

जाकिर हुसैन के अनुसार एक आदर्श अध्यापक को हस्तकला का ज्ञान होना जरूरी है, क्योंकि इस ज्ञान के अभाव में वह अपना कार्य उचित ढंग से नहीं कर सकता । नयी तालीम के शैक्षणिक प्रयोग में अध्यापक को नेता-पथ प्रदर्शक व सलाहकार होना चाहिये ।

1- हरिजन, 1-12-33 ।

2- यंग इण्डिया 7-8-24 ।

3- - तदैव -

वर्धा योजना ने अखिल भारतीय शिक्षा परिषद और प्रान्तीय शिक्षा परिषदों को अनिवार्य बेसिक राष्ट्रीय शिक्षा की नूतन योजना को निर्मित करने के लिये बनाया था जिनके कार्यों का मुख्य सम्बन्ध :-

"वैज्ञानिक अन्वेषण --- प्रगतिशील शिक्षण विधियों की खोज ----- अध्यापकों के नूतन स्तर तथा मानक उपलब्धि के प्रयोग ---- से परिचित कराने के लिये निर्देशन करने से था ।"[1]

ये समस्त कार्य शिक्षा की परिवर्तित अवधारणा को अभिव्यक्त करते हैं । जॉकिर हुसैन कमेटी ने शैक्षिक निरीक्षण के कार्य को "उत्तम विशिष्ट कार्य" के रूप में मानते हुये निरीक्षकों से प्रशिक्षण की संस्तुति की थी । अत: अध्यापक को प्रशिक्षत भी होना चाहिये ।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि महात्मा गांधी प्रदत्त "बुनियादी शिक्षा पद्धति" की समस्त सफलता इस कार्य में संलग्न अध्यापकों पर ही पूर्णत: आधारित है । इस पद्धति में शिक्षक के अनुकरण एवं सम्पर्क द्वारा बच्चे के व्यक्तित्व के विकास की कल्पना की गई है । प्रात: काल की प्रार्थना सभा से लकर रात्रि तक शिक्षार्थी के समस्त कार्य शिक्षक की देखरेख में ही सम्पादित होते हैं । सामूहिक सफाई योजना बनाना, समवाय

1- बेसिक नेशनल एजूकेशन पृष्ठ-43 ।

करना, प्रकृति व समाज से परिचित होना, इन सभी क्रियाओं का संचालन शिक्षक की देख रेख में सम्पन्न होते हैं । इसलिए क्रियाओं के संचालन की योग्यता शिक्षक में अवश्य होनी चाहिये । शिक्षण के साधन अपने आप में चाहे कितने ही शैक्षणिक एवं मनोवैज्ञानिक गुणों से युक्त क्यों न हो परन्तु सफल संचालन एवं उपयुक्त निर्देशन की क्षमता वाले शिक्षकों के अभाव में शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव नहीं है ।

कुछ आलोचक यह मानते हैं कि बुनियादी शिक्षा पद्धति की शिक्षा भारत मे सफल नहीं हो सकती क्योंकि इसके अनुरूप योग्य शिक्षकों का अभाव है । इसलिए इस शिक्षा की सफलता के लिए निम्नलिखित गुण बुनियादी शिक्षा के शिक्षकों में होनी चाहिये :-

1- व्यक्तित्व :-

एक शिक्षक का सर्व प्रथम गुण उसका सर्वांगीण विकसित व्यक्तित्व है । शिक्षा मनोविज्ञान का मन्तव्य है कि बालक में अनुकरण से सीखने की तथा अन्वेषण की प्रवृति पाई जाती है । बालक का भविष्य सीखने तथा अन्वेषण की प्रवृत्ति पूर्व के अनुकरणों पर आधारित है । अनुकरण करके सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक का स्थान महत्वपूर्ण है । परिवार का जिस प्रकार प्रभाव बालक के चरित्र व मन पर पड़ता है उसी प्रकार शिक्षक भी विद्यार्थियों के चरित्र व मस्तिष्क को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करता है । अतः शिक्षक को स्वस्थ, उच्च नैतिक चरित्र, विकसित

मन और मस्तिष्क तथा श्रेष्ठ सामाजिक गुणों से युक्त होना चाहिये । चरित्र की सामाजिक लपेट व्यक्तित्व की अपेक्षा कहीं अधिक है । आर0एम0 ओगडन के अनुसार :-

"व्यक्तित्व मनुष्य की आन्तरिक जीवन की अभि-व्यक्ति है तथा चरित्र उसकी क्रियाओं या सफल-ताओं की अभिव्यक्ति है ।"[1]

विद्यार्थी पर शिक्षक के शुद्ध आचरण, सच्चरित्रता विश्वास, विचार, दैनिक व्यवहार, समय की पाबन्दी, आदि का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है । बेसिक शिक्षा के शिक्षक के तीन प्रमुख कार्य हैं :-

1- शिक्षण 2- निर्देशन तथा 3- शासन ।

इन कार्यों के लिये चरित्र की प्रधानता की आवश्यकता होती है । शिक्षक को ज्ञान ग्रहण करने की तीव्र भावना से इस वैज्ञानिक एवं प्रगतिशील युग में सदैव जिज्ञासु बना रहना चाहिये । बिना इसके वह अपने सामयिक कार्य में सफल नहीं हो सकता है । अध्यापक को श्रव्य, दृश्य साधनों के प्रयोग करने की विधि, स्वाध्यायी तथा आधुनिक पत्र पत्रिकाओं के अध्ययन में रत होना चाहिये । रवीन्द्र नाथ ठाकुर के शब्दों में :-

"एक शिक्षक कभी सच्चाई के साथ नहीं पढ़ा सकता जबकि वह स्वयं नहीं सीखता हो ।"

1- आर0एम0 ओगडन : साइकोलॉजी एण्ड एजूकेशन, पृष्ठ-350

शिक्षक को स्वयं प्रयोगात्मक दृष्टिकोण के साथ अनुसंधान कार्य में लगे रहना चाहिये । विचारवान बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले अध्यापक ही श्रेष्ठ शिक्षक की कोटि में आते हैं अत: धैर्य, निष्पक्षता एवं न्याय, सहयोगात्मक भाव, प्रेम और सहानुभूति, प्रसन्नता, मिलनसारिता, विनोद प्रियता मितभाषिता, श्रम व कर्म के प्रति निष्ठा, उच्च विचार, सरल जीवन के प्रति आस्था, उदारता, सन्द्वता, नेतृत्वशील आदि सामाजिक गुणों का होना बुनियादी शिक्षक में आवश्यक है ।

मातृभाषा पर अधिकार :-

किसी विषय को बोधगम्य वही व्यक्ति बना सकता है जिसे मातृभाषा पर अधिकार होगा । पाठक एवं भाषा के मध्य अध्यापक एक कड़ी है । बालक सीखने के लिए सदा उत्सुक रहता है, भाषा का सम्पर्क ही उसकी इस प्यास की तृप्ति करता है हिन्दी भाषा का ज्ञान तथा उस पर अधिकार गांधी वादी शिक्षा दर्शन में सलग्न एक सफल शिक्षक की महत्वपूर्ण विशेषता है । विषय को सरल भाषा में बोधगम्य बनाने की शिक्षक में योग्यता होनी चाहिये ।

बेसिक विद्यालय के पाठ्यक्रम में निर्धारित विषयों का ज्ञान :-

बेसिक विद्यालय के पाठ्यक्रम में निर्धारित विषयों का बेसिक शिक्षक को पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिये । उसे पाठ्येतर तथा पाठ्यवस्तु एवं हस्तकला का सम्यक ज्ञान होना चाहिये । हिन्दी भाषा की विभिन्न विधाओं का, इतिहास

व भूगोल, नागरिक शास्त्र तथा समाज विज्ञान का इतना ज्ञान हो कि वह हस्तकला द्वारा इनको शिक्षा प्रदान कर सके ।

कलात्मकता का ज्ञान तथा सृजन शक्ति का होना :-

बेसिक शिक्षा पद्धति में लगे हुये एक शिक्षक को कलात्मकता का ज्ञान होना आवश्यक है । विषयों में निहित कला का पक्ष की वह पहचान कर सके । महात्मा गांधी चाहते थे कि बालको में सृजन शक्ति उत्पन्न हो । उन्हें ज्ञान व कर्म का स्पष्ट सम्बन्ध ज्ञात हो सके । इसलिए विद्यार्थियों में सृजनात्मक शक्ति का विकास करना चाहिये । यह तभी सम्भव होगा जब शिक्षक स्वयं सृजन शक्ति सम्पन्न हो ।

आधुनिक शिक्षण पद्धतियों तथा श्रव्य दृश्य साधनों के प्रयोग का ज्ञान :-

आधुनिक मनोविज्ञान ने शिक्षण में अनेक विधियों की खोज की है । किस विधि को किस आयु के छात्रों के शिक्षण में प्रयोग किया जाय, इसका भी निर्धारण किया गया है इसलिए बेसिक शिक्षा के शिक्षक को इनका ज्ञान होना अति आवश्यक है । हस्तकला को किस प्रकार सफल बनाया जाय, किस प्रोजेक्ट का चुनाव किया जाय, इन सबका सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक ज्ञान होना शिक्षक के लिए अति आवश्यक है । श्रव्य दृश्य साधनों को प्रयोग करने की विधि तथा उपयुक्त अवसर की जानकारी रखना भी आवश्यक है ।

बाल मनोविज्ञान का ज्ञान तथा अध्यापन का अनुभव :-

बेसिक पाठ्यक्रम की सफलता शिक्षकों के बाल मनोविज्ञान के ज्ञान पर आधारित है । बालक बालिकाओं के स्थायी भाव, संवेगों, स्वभावों, रूचियों, बुद्धि लब्धियों आदि को बिना समझे विभिन्न कार्यों को सम्पादित करना कठिन होगा । "मौलिक शिल्प" के संचालन के समय इसका ज्ञान उन्हें यह सहयोग देगा कि कौन सा उत्तरदायित्व किस बालक को दिया जाय । उसे वैयक्तिक विभिन्नता को समझने की कला मालूम होनी चाहिये । इससे शिक्षण में शक्ति साधन व समय तीनों की बचत होती है । उसे अध्यापन का अनुभव भी होना चाहिये तभी वह सफल शिक्षक बन पायेगा ।

प्रशिक्षण :-

बुनियादी शिक्षा पद्धति में लगे हुये अध्यापक को प्रशिक्षित होना चाहिये । आज की शिक्षा बाल केन्द्रित व क्रिया प्रधान हो गई है । इसलिए अनेक मनोवैज्ञानिक विधियों का जन्म हुआ है । सक्रियता एवं क्रियाशीलता विद्यार्थियों का स्वभाव है । पाठ्यक्रमेतर विषयों को विषय के रूप में मान्यता दी जा चुकी है । वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक अन्वेषण से हमें ज्ञात हो चुका है कि दो व्यक्ति समान न होकर भिन्न-भिन्न गुणों से युक्त होते हैं । श्रव्य दृश्य साधनों से पाठ को रूचिकर लाभकारी एवं स्थायी बनाने का उपक्रम हो रहा है । नित्य प्रतिदिन नवीन खोजे हो रही है । विद्यालय को

जनतंत्रात्मक प्रणाली पर संगठित करके बालक बालिकाओं का सामाजीकरण किया जा रहा है । ऐसी परिस्थिति में अध्यापकों को शिक्षण कला में निपुण बनाना नितान्त अनिवार्य हो गया है । प्रशिक्षण द्वारा सभी शैक्षणिक सिद्धान्तों और साधनों का व्यावहारिक प्रयोग तथा अध्ययन का अनुभव प्राप्त करने के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित करना अनिवार्य है । लॉक के अनुसार जो पढ़ाने का ढंग जानता है वही शिक्षा के गुप्त रहस्य का ज्ञाता होता है । बेसिक शिक्षा के शिक्षकों की सफलता मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक सभी पद्धतियों एवं साधनों के उचित प्रयोग के लिए उनके मस्तिष्क को प्रशिक्षित होने में है ।

<u>बेसिक शिक्षा में विद्यालय का स्वरूप</u> -

अब हमें बेसिक शिक्षा पद्धति में विद्यालय के स्वरूप के सम्बन्ध में विचार करना है । बेसिक शिक्षा पद्धति में शिक्षालयों का स्वरूप आवासीय है । महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन में इन आदर्शवादी, प्रकृतिवादी तथा प्रयोजनवादी दर्शन के तत्वों को आसानी से खोज सकते हैं । इसलिए इनकी विद्यालयीय अवधारणा में हमें उपर्युक्त तीनों वादों की झलक दिखाई देती है । जब हम बेसिक शिक्षा पद्धति के पाठ्यक्रम पर विचार करते हैं जैसा कि गत पृष्ठों में किया गया है तो हमें गुरुकुलों की याद हो आती है । महात्मा गांधी अपने विद्यालय में चौबीस घण्टे के कार्यक्रम को निर्धारित

किया था । बुनियादी शिक्षा का लक्ष्य बालक का सर्वांगीण शारीरिक, मानसिक व नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास करना है । इसलिए विद्यालय का स्वरूप भी तदनुकूल होना चाहिये । गांधी जी आपनी शिक्षा पद्धति से विद्यार्थियों को आर्थिक मानसिक एवं नैतिक दृष्टियों से स्वावलम्बी बनाना चाहते थे । इसीलिये इस पद्धति के विद्यालय में समाज तथा उद्योग से सम्बन्धित क्रियायें करायी जा रही हैं ताकि इस विद्यालय का प्रत्येक सदस्य सहयोग तथा लगन से अपने उत्तर-दायित्व को वहन करने में सक्षम हो सके ।

बुनियादी शिक्षालय वर्कशाप अर्थात कार्यशाला, प्रयोगशाला के रूप में होता है क्योंकि महात्मा गांधी ने "हरिजन" में अपने विचार प्रकट करते हुये लिखा है कि :-

> "स्थानीय उद्योग अथवा हस्तकला ही शिक्षा की धुरी है, इसके द्वारा ही अन्य विषयों की शिक्षा प्रदान की जाय । यह उद्योग यंत्रवत नहीं, बल्कि वैज्ञानिक ढंग से क्यों और कैसे का ज्ञान कराते हुये सिखाया जाय तथा इसी प्रसंग में अन्य विषयों की भी ज्ञान प्राप्ति करायी जाय ।"

बेसिक शिक्षा हस्तकला केन्द्रित होने के कारण बेसिक विद्यालय, उद्योगशाला के रूप में ही होते है । बेसिक विद्या-लयों की प्रमुख विशेषतायें निम्न लिखित हैं :-

1- महात्मा गांधी प्रचलित विद्यालयों की आलोचना करते हैं प्राचीन शिक्षा प्रणाली पुस्तकीय थी वह विषय केन्द्रित थी

विद्यालयों में पढ़ाये जाने बाले विषयों का बालक के जीवन व उसके पर्यावरण से कोई सम्बन्ध नहीं था । बुनियादी विद्यालयों में पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान पर बल दिया जाता है ।

2- विद्यालय जीविकोपार्जन की शिक्षा का केन्द्र है । बेसिक शिक्षा का लक्ष्य ही व्यक्ति को स्वावलम्बी बनाने का है । अत: जीविकोपार्जन की क्षमता का विकास करना विद्यालय का प्रमुख कार्य है ।

3- विद्यालय समाज का प्रतिबिम्ब होता है । बेसिक शिक्षा का विद्यालय जिस समाज में स्थित होता है वह उस समाज की मुख्य आवश्यकताओं की पूर्ति का लक्ष्य भी रखता है । इस लिए अपने पड़ोस अथवा पर्यावरण की उन्नति के लिये खोज करने बाली प्रयोगशाला के रूप में ही विद्यालय होता है । इस प्रकार बेसिक विद्यालय हमारे सामाजिक जीवन का प्रतिनिधि एवं प्रतिबिम्ब होता है । शिक्षक व बालक दोनों एक साथ कार्य में हाथ बटाते हैं ।

4- बेसिक विद्यालय सामाजिक संस्था के रूप में होता है । विद्यालय में समाज व उद्योग से सम्बन्धित क्रियाये कराई जाती है । इसलिए यह व्यवस्थित एवं सुशासित भी होता है ।

5- बेसिक विद्यालय लाभप्रद क्रियाओं के सम्पादन के केन्द्र हैं :-

उद्योग केन्द्रित शाला होने के नाते यह विद्यालय

स्वावलम्बन की शिक्षा का केन्द्र होता है इसलिए उद्योगों का चुनाव विद्यालय एवं समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है, कृषि, बागवानी, सागसब्जी की खेती भी कराई जाती है । पशु पालन, डेयरी की व्यवस्था करके ताजे दूध की प्राप्ति की व्यवस्था भी रहती है । वस्त्र स्वा वलम्बन की पूर्ति हेतु सूत कातने का भी प्रशिक्षण दिया जाता है । उत्पादन शक्ति की वृद्धि के साथ-साथ उनके कौशल को बढ़ाया जाता है । विद्यालय में उत्पन्न वस्तुओं का उपभोग विद्यालय एंव पड़ोस का समाज भी करता है । विद्यालय जातीय परम्परा में भाग लेने की योग्यता का विकास भी करता है ।

6- विद्यालय बालकों के अनुभव द्वारा सीखने का केन्द्र है :-

बालक स्वानुभव द्वारा करके सीखने की प्रवृत्ति के विकास द्वारा व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते हैं । ज्ञान बालक पर थोपा नहीं जाता है बल्कि वह स्वयं करके, तथा अपने अनुभव से प्राप्त करता है । इस प्रकार से प्राप्त किया हुआ ज्ञान स्थायी तथा उसके सामाजिक लक्ष्यों के अनुकूल होता है ।

7- विद्यालयीय पर्यावरण गृह जैसा होता है :-

जिस प्रकार घर का वातावरण स्नेह, सहानुभूति एवं प्रेम से ओत प्रोत होता है उसी प्रकार बेसिक शिक्षालय में सहानुभूति एवं प्यार का पूर्ण साम्राज्य होता है ।

अध्यापक बच्चो के पिता के समान होता है । शिक्षकों एवं बालकों के मध्य स्नेह सहानुभूति एवं प्रेम का बराबर व्यवहार होता है । अत: विद्यालय को गृह का पर्याय होना चाहिये ।

8- <u>बेसिक विद्यालय का ग्राम व समाज से सम्पर्क होता है</u> :-

बेसिक शिक्षालय समाज के पुनर्निर्माण में सहायक होता है । इस पुनर्निर्माण हेतु विद्यालय तथा समाज का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिये । इसलिए सामाजिक प्राणियों का विद्यालय के प्रत्येक कार्य में सहयोग लेना अनिवार्य है । विद्यालय को समाज शिक्षा का केन्द्र होना चाहिये । शिक्षकों को बालकों की रुचि उनके विचार तथा उनकी समस्याओं को जानने के लिए अभिभावकों से मिलना चाहिये ।

बेसिक शिक्षालय आवासीय होता है,। महात्मा गांधी द्वारा संचालित फोनिक्स बस्ती, टालस्टॉय फार्म, साबरमती आश्रम आदि इसी प्रकार के केन्द्र थे । जहाँ पर सामूहिक रसोई घर, बगीचे, कृषि योग्य भूमि, नाना प्रकार के उद्योग की व्यवस्था होती थी, परन्तु उद्योग व हस्तकला स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही चुनी जानी चाहिये। खेल की शैक्षणिक महत्ता को महात्मा गांधी पर्याप्त महत्व देते थे, इसलिये खेल का मैदान विद्यालय में होना आवश्यक है ।

<u>बेसिक शिक्षा-अनुशासन</u>

अब हम महात्मा गांधी जी के अनुशासन की अवधारणा के सम्बन्ध में विचार करेंगे और यह खोजने का प्रयास करेंगें कि वास्तव में अनुशासन हीनता का जो साम्राज्य

शिक्षा जगत एवं सामाजिक पर्यावरण में व्याप्त है क्या उसका सम्बन्ध महात्मा गांधी जी से है, यदि नहीं तो अनुशासन बनाये रखने के लिए इन्होंने क्या विधान प्रतिपादित किया है ?

आज शिक्षा संस्थाओं में अनुशासनहीनता को हम आसानी से देख सकते हैं । इनकी उच्छृंखलताओं से विश्व-विद्यालयीय वातावरण पूर्ण रूप से दूषित एवं विषाक्त हो गया है । इस कारण समाज के रचनात्मक कार्यों की प्रगति अवरुद्ध हो गई है । यहाँ तक कि अनुशासन के अभाव में प्रबन्ध तन्त्र एवं प्रशासन ढीले पड़ते जा रहे हैं । ऐसी परिस्थिति के विषय में हम सभाओं में, क्लबों में, रेल के डिब्बों में, बसों में, ट्राम गाड़ियों में तथा दैनिक वार्तालाप में साथ ही सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्मेलनों में प्राय: आलोचना व प्रत्यालोचना को सुनने के आदी हो गये हैं, किन्तु इस दिशा में रचनात्मक कदम उठाने की किसी में भी सामर्थ्य दृष्टिगत नहीं हो रही है ।

कुछ वर्षों से हम विद्यालय एवं विश्व विद्यालय क्षेत्र में अनुशासन हीनता की घटनाओं को घटित होते देख रहे हैं सामान्य बातों पर विद्यार्थियों की हड़ताल, तोड़फोड़, कक्षा वहिष्कार, अध्यापक पर्यवेक्षक, अधीक्षक पर आक्रमण आदि सामान्य अनुशासनहीनता की घटनायें मानी जाने लगी हैं । छात्र यूनियन का कर्तव्य रचनात्मक कार्य की अपेक्षा विरोध

करना हो गया है । प्राय: लोगों की अवधारणा है कि इन घटनाओं के लिए महात्मा गांधी जी उत्तरदायी हैं, क्यों कि उन्होंने विद्यार्थियों को असहयोग आन्दोलन का ऐसा पाठ पढ़ाया कि विद्यार्थी आज समस्त पर्यावरण से ही असहयोग करने पर सन्नद्ध हो गये हैं । ब्रिटिश कालीन शासन से असहयोग आन्दोलन का परिणाम ही आज हम शासन के प्रति छात्रों द्वारा प्रकट किये गये विरोध का प्रतिफल समझते हैं । शासन के प्रति प्रकट किये गये विरोध की इस भावना का प्रसार शनै: शनै: विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, परिवार, समाज एवं राष्ट्र मे होता जा रहा है । इस प्रकार के वातावरण के निर्माण के क्या महात्मा गांधी उत्तरदायी हैं या उनकी शिक्षा योजना है ?

ब्रिटिश कालीन भारत में राजनीतिक व्यक्तियों ने "शासन और अधिकार" के विरोध में विद्यार्थियों की आन्दोलनात्मक प्रवृति को अवश्य प्रोत्साहित किया था परन्तु तब और अब की परिस्थिति पूर्णत: परिवर्तित हो गई है । किन्तु यदि महात्मा गांधी के विचारों को तटस्थता से कोई अध्ययन करे तो उसे प्रतीत होगा कि उस समय भी महात्मा गांधी ने अनुशासनहीनताकी प्रवृति को कभी प्रोत्साहित नहीं किया था । सत्य, अहिंसाके पुजारी से ऐसी आशा भी नहीं की जा सकती थी; क्योंकि महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन हेतु प्रत्येक आन्दोलनकर्ता को तीन प्रतिज्ञाओं का पालन अवश्य करना पड़ता था, तभी वह उस आन्दोलन में भाग ले

सकता था । जैसा कि महात्मा गांधी जी ने स्वयं कहा है :-

> "असहयोग को मानने वाला व्यक्ति किसी भी विद्यार्थी के हाथों में शान्ति भंग देखना नहीं चाहता ।------ इसकी तीन शर्तें मन्जूर होनी चाहिये । उनमें से पहली शर्त है - शान्ति ।-- हमें शान्ति भंग नहीं करना है, न किसी को गाली देना है न गुस्सा करना है,न किसी को मारना है और शर्म-शर्म की आवाजें लगाना है ।--- दूसरी शर्त है - स्वयं या अपने पर काबू रखना । तीसरी शर्त है- यज्ञ । जब हम शुद्ध होते हैं, तब यज्ञ या बलिदान करते हैं ।बलिदान किये बिना कोई पवित्र नहीं हो सकता ।---- इसलिए इस महा विद्यालय में प्रवेश लेने की इच्छा रखने वाले विद्यार्थियों से मैं कहता हूँ कि तुम असहयोग की इनतीन शर्तों का पालन न करना चाहो, तो इसे छोड़ देना ।"[1]

यदि ध्यान से देखा जाय तो उपर्युक्त कथन में अनुशासनहीनता की अपेक्षा अनुशासन के पालन करने की ही शर्तें निहित हैं । तो भला महात्मा गांधी जी के असहयोग आंदोलन को तथा उनकी विचार परम्पराओं को अनुशासनहीनता के लिये कैसे उत्तरदायी बनाया जा सकता है । वास्तव में महात्मा गांधी जी का सम्पूर्ण जीवन अनुशासित जीवन का प्रतीक रहा है ।

1- नव जीवन 15-11-20

अनुशासन हमारा नैतिक गुण है । यह व्यक्ति के व्यक्तित्व का, समाज की सामाजिक उन्नति का और राष्ट्र की जीवन शक्ति का मापदण्ड है । इस प्रकार जो व्यक्ति, व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास, समाज की पुनर्रचना की अवधारणा एवं जनतंत्रीय राष्ट्र के निर्माण का विचार रखता हो वह अनुशासनहीनता का पाठ व आदर्श कैसे स्थापित कर सकता है ? वास्तव में महात्मा गांधी का समग्र विचार अहिंसक है । बेसिक शिक्षा पद्धति के मूल में अनुशासन का भाव निहित है । बेसिक शिक्षा के सम्यक प्रचार व प्रसार से समाज राष्ट्र एवं समाज के प्रत्येक सदस्य को सर्वाधिक लाभ पहुँच सकता है ।

महात्मा गांधी की अनुशासन के प्रति अवधारणा :-

संकुचित अर्थ में आज्ञा पालन को अनुशासन समझा जाता है किन्तु विस्तृत अर्थ में यह चरित्र के प्रशिक्षण के रूप में मान्य है । अधिगम प्रक्रिया हेतु अनुशासन अनिवार्य है किन्तु अनुशासन के रूप के सम्बन्ध में विभिन्न मत पाये जाते हैं । नार्मन मैकमन ने अपनी पुस्तक -"द चाइल्ड्स पाथ टूफ्रीडम" में अनुशासन के तीन रूपों को प्रस्तुत किया है । :-

1- दमनात्मक 2- मुक्त्यात्मक 3 प्रभावात्मक ।

1- नार्मन मैकमन : "द चाइल्ड्स पाथ टू फ्रीडम" करवेन, लन्दन 1926, पृष्ठ-42-69 ।

पारम्परिक प्रारम्भिक विद्यालयों में "डंडे के बल" पर अनुशासन स्थापित कर दमनात्मक रूप को प्रश्रय दिया जाता था। इस प्रकार के अनुशासन का मूल "भय" था। इस प्रकार के अनुशासन की आलोचना करते हुये पॉल मनरों ने कहा है :-

> "यदि बालक की प्रकृति को अधिक पतित बना दिया जाता है तो भर्त्सना द्वारा सुधारा नहीं जा सकता है, बल्कि वह अधिक कठोर हो जायेगा।"[1]

"मुक्त्यात्मक सिद्धान्त" प्रकृतिवादियों को प्रिय है क्योंकि ये आत्म प्रकाशन में विश्वास करते हैं परन्तु स्वतंत्रता से आत्म प्रकाशन पर सीमा से परे बल देना बालक को स्वच्छंद बनाना है, क्योंकि यदि आत्म प्रकाशनया आत्माभिव्यक्ति पर गम्भीरता से विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति स्वच्छन्तता की स्थिति में अपने भीतर के पशु व्यवहार की भी अभिव्यक्ति कर सकता है। इसलिए मुक्त्यात्मक सिद्धान्त भी स्वच्छन्दता की मात्रा की अधिकता के कारण उचित नहीं माना जाता है। बालक के व्यक्तित्व के विकास हेतु स्वतंत्रता आवश्यक है किन्तु पूर्ण स्वतंत्रता कदापि समीचीन

---

1. पॉल मैनरो : सोर्स बुक ऑव द हिस्ट्री ऑव एजूकेशन, मैकमिलन, न्यूयार्क, 1939, पृष्ठ-466 ।

नहीं है । जनतंत्रात्मक राष्ट्र के नागरिकों के अनुशासन के प्रति हक्सले का कथन है कि :-

> "यदि तुम्हारा लक्ष्य स्वतंत्रता और जनतंत्र प्राप्त करना है तो तुम्हें लोगों को स्वतंत्र रहने तथा स्वयं को शासित करने की कला सीखनी पड़ेगी । यदि तुम इसके बजाय कठोरता से निष्क्रिय आज्ञा मानने की कला सिखाओगे तो तुम स्वतंत्रता और प्रजातंत्र को प्राप्त नहीं कर पाओगे, जिसे प्राप्त करना तुम्हारा लक्ष्य है ।"[1]

हक्सले द्वारा प्रजातंत्र के संदर्भ में अनुशासन की अवधारणा का सुन्दर स्वरूप प्रस्तुत किया गया है । इस प्रकार हम देखते हैं कि कोई भी नहीं चाहता कि बालक पशुवत विचारों को प्रकट करे । इन दो अतिवादी सिद्धान्तो के पश्चात मध्यवर्ती सिद्धान्त के रूप में अनुशासन के प्रभावात्मक सिद्धान्त की उपज हुई है । इसमें अनुशासन का आधार नैतिकता है । विद्यार्थी शिक्षक के व्यक्तिगत प्रभावों से प्रभावित होकर विनय का पालन करता है । एक प्रभावात्मक सिद्धान्तवादी समस्त शारीरिक हिंसा को बिलकुल महत्त्व नहीं देता है । प्रभाव यह होता है कि शनैः शनैः विद्यार्थी अध्यापक की जीवन शैली, चरित्र व विचारों से प्रभावित होने लगता है और बिना किसी प्रयत्न के अध्यापक के व्यवहार के प्रति अपने को समर्पित कर देता है । इस प्रकार अध्यापक अपने

1- आल्डुअस हक्सले : एन्ड्स एण्ड मीन्स, चाटो एण्ड विन्डस लन्दन, 1938, पृष्ठ-184 ।

प्रभाव से बालकों में स्वेच्छा से आज्ञा पालन व अनुशासित रहने की प्रवृत्ति को विकसित कर देता है । यही अनुशासन का स्वर्णिम नियम है । परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यह सिद्धान्त शारीरिक दण्ड के बचाव का पक्ष लेता है । इस सिद्धान्त का आन्तरिक भाव तो यह है कि उन दशाओं की उत्पत्ति की जाय जहाँ पर दण्ड को प्रश्रय देने की आवश्यकता ही न पड़े ।

इतिहास साक्षी है कि प्रभावात्मक अनुशासन के पक्ष धर के रूप में महात्मा गांधी से बढ़कर कोई भी अन्य व्यक्ति नहीं है । उन्होंने अपने संरक्षण में रहने वाले बालकों को कभी भी दण्ड नहीं दिया । क्योंकि उनका स्वयं का कथन है कि:-

"मैं कभी विद्यार्थियों को दण्ड नहीं देता था ।"[1]

उपर्युक्त कथन से प्रतीत होता है कि महात्मा गांधी जी विद्यार्थियों को दण्ड देने के पक्षधर नहीं थे, किन्तु जब छात्र समझाने से नहीं मानता है तो उसे शारीरिक दण्ड देना चाहिये । वे कहते हैं कि :-

"समझाने से वह किसी तरह समझता नहीं था। मुझे छलने की भी उसने कोशिश की । मैंने अपने पास पडा रूल उठाया और उसकी बाँह पर जमा दिया।"[2]

1- "आत्म कथा", पृष्ठ- 428- 429 ।

2- - तदैव - पृष्ठ- 429 ।

छात्र को शारीरिक दण्ड देते समय गांधी जी की मानसिक दशा बड़ी ही दयनीय थी । इसके पूर्व उन्होंने किसी विद्यार्थी को दण्ड नहीं दिया था । महात्मा गांधी जी कहते हैं :-

"मारते समय मैं कांप रहा था । यह उसने देखा होगा। ऐसा अनुभव किसी विद्यार्थी को मेरी ओर से पहले कभी न हुआ था । विद्यार्थी रो पड़ा। मुझसे माफी माँगी। उसे रूल लगा और तकलीफ हुई । इससे वह नहीं रोया । मैंने उसे मारकर अपनी आत्मा का नहीं बल्कि अपनी पशुता का दर्शन कराया था। "[1]

यह घटना यह प्रकट करती है कि रूल की चोट ने बालक के हृदय को परिवर्तित नहीं किया था बल्कि उस कष्ट ने जिसे उसके अध्यापक महात्मा गांधी ने रूल मारते समय अनुभव किया था उसने प्रभावित किया था । इस उदाहरण से दण्ड न प्रदान करने का औचित्य स्वयं सिद्ध हो जाता है । गांधी जी कहते है कि :-

"बालकों को मारपीट कर सिखाने के खिलाफ मैं सदा से रहा हूँ----- दूसरों को आत्मज्ञान देने के प्रयत्न में मैं स्वयं आत्मा के गुण को अधिक समझने लगा ।"[2]

1- आत्म कथा, पृष्ठ- 429

2- - तदैव पृष्ठ- 430

महात्मा गांधी का अनुभव था कि बालकों के सच्चे अध्यापक को पिता व अभिभावक के रूप में उनके हृदय को अवश्य स्पर्श करना चाहिये । उनके दुख सुख में बराबर का हिस्सेदार होना चाहिये, जो समस्यायें उनके जीवन में आती है उनके समाधान में सहयोग अवश्य देना चाहिये तथा इन युवकों में उत्पन्न होने बाली आशाओं को उचित मार्ग दिखाना चाहिये । इसी लिये महात्मा गांधी जी कहते हैं कि :-

> "--- इसका अनुभव दिन व दिन बढ़ता गया । शिक्षक और संरक्षक के रूप में उनके हृदय में प्रवेश करना था, उनके सुख दुख में शामिल होना था, उनकी जीवन गुत्थियों को सुलझाना था उनकी उभरती जवानी की तरंगों को सही रास्ते पर लगाना था ।"[1]

महात्मा गांधी जी टालस्टाय फार्म को एक परिवार समझते थे और अपने को उस परिवार का पिता मानते थे । इस प्रकार महात्मा गांधी जी "क्वाइनटिलियन" की भाँति यह मानते थे कि अध्यापक की कमियों और बुराइयों के कारण ही विद्यार्थियों में अनेक कमियाँ और गलतियाँ उत्पन्न होती है तथा रोमन अध्यापकों की भाँति वे यह भी मानते हैं कि इन त्रुटियों की जिम्मेदारी अध्यापकों को स्वयं स्वीकार करनी चाहिये । यही कारण है कि दूसरों की असफलताओं

1- आत्म कथा, पृष्ठ-430 ।

के दोष को अनेक अवसरों पर उन्होंने अपने ऊपर ले लिया था और उपवास करके उसका प्रायश्चित किया था जिसका परिणाम यह हुआ कि जिन बालकों को अन्य लोग सुधार न पाये उनके हृदय को महात्मा गांधी ने परिवर्तित कर हमेशा के लिए सुधार दिया ।

फिनिक्स बस्ती में रहने वाले दो व्यक्तियों के चारित्रिक पतन की सूचनासे महात्मा गांधी जी बहुत दुखी हुये और यह अनुभव किया कि :-

"सत्याग्रह के महान संग्राम में कहीं विफलता सी दिखाई देने पर मुझे चोट न लगती पर इस घटना ने मुझ पर वज्र सा गिरा दिया । मेरा दिल चोट खा गया ।"[1]

अपने मानसिक दुख को कम करने के लिए तथा उन व्यक्तियों के हृदय परिवर्तन हेतु उन्होंने सात दिन का उपवास और साढे चार माह तक एक ही समय तक भोजन करने का निश्चय किया । महात्मा गांधी के इस निश्चय का परिणाम यह हुआ कि :-

"पाप करने की भयंकरता सबको मालूम हो गयी और छात्र तथा छात्राओं व मेरे बीच का सम्बन्ध दृढ़ और सरल हो गया ।"[2]

1- आत्म कथा, पृष्ठ-432

2- आत्म कथा, पृष्ठ- 433

महात्मा गांधी को यह धारणा नहीं है कि बालक के प्रत्येक कसूर के लिए अध्यापक को व्रत व उपवास करके उसके दोष की अनुभूति कराकर उसका सुधार किया जाय किन्तु कुछ अवसरों पर ऐसा किया जा सकता है इसके लिए अध्यापक में विवेक तथा उसका अधिकारी भी होना चाहिये । इस सम्बंध में गांधी जी कहते हैं :-

"जहाँ शिक्षक शिष्य में शुद्ध प्रेम सम्बन्ध नहीं है, जहाँ शिक्षक को अपने शिष्य के दोष से सच्ची चोट नहीं लगी है जहाँ शिष्य में शिक्षक के प्रति आदर नहीं है, वहाँ उपवास निरर्थक है और शायद नुकसान भी करे ।"[1]

अतः सामान्य अध्यापक के लिए यह विधि बालक के हृदय परिवर्तित करने की अपेक्षा बुरा असर ही डालेगी । वस्तुतः सत्यता तो यह है कि यदि अध्यापक में शिष्य के प्रति प्रेम है और उनकी समस्याओं के समाधान में अपने को ईमानदारी से लगाता है तो शिष्य भी अपने अध्यापक से निश्चित रूप से प्रेम व आदर करेगा और ऐसा कोई भी कार्य नहीं करेगा जिससे अध्यापक को दुख पहुँचे । अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि समस्त विद्यालयीय अनुशासन का रहस्य "प्रेम" ही है । प्रेम वह शक्ति है जो शिष्य को नेक व ईमानदार बनाती है और

1- आत्म कथा पृष्ठ-433 ।

जीवन में उसे सफलता प्रदान करती है क्योंकि अनुशासन स्थापित करने में जहाँ अन्य साधन असफल हो जाते हैं वहाँ स्वक्रिया स्वानुभव व प्रेम ही विजय प्राप्त करता है ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अनुशासन हेतु समस्त विद्यालयीय वातावरण में हमें स्वशासन विद्यार्थी संसद, गृह प्रणाली तथा इसी प्रकार की अन्य योजनाओं को स्वीकार करना चाहिये । स्वशासन सहयोग भावना को उत्पन्न करने का प्रमुख साधन है । स्वशासन और गृह प्रणाली के फलस्वरूप विद्यार्थी और उनके शिक्षकों के बीच आत्मीय व मधुर सम्बन्ध स्थापित होता है जिसका प्रतिफल आत्म सम्मान, आत्म - विश्वास और उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है । विद्यालय की समस्त गतिविधियों का संचालन अध्यापकों की देखरेख में होना चाहिये। विद्यालय में समस्त कार्यक्रम का निर्माण बालको द्वारा अध्यापक के सहयोग से किया जाना चाहिये ।

इस प्रकार हम देखते है कि महात्मा गांधी की अनुशासन की अवधारणा, स्वक्रिया, स्वानुभूति तथा आत्म नियन्त्रण पर आधारित है । अब हम अगले अनुच्छेदों में जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन व भारत की शिक्षा में उनकी संगति की विवेचना करेगें ।

अध्याय-9

जाॅन डिवी तथा महात्मा गांधी के शिक्षा-दर्शन की तुलनात्मक विवेचना :-

यह सत्य है कि भारत में अतीत से शिक्षा के अनेक पहलुओं का सम्बन्ध प्रकृतिवाद, यथार्थवाद, आदर्शवाद एवं प्रयोजन वाद से रहा है, परन्तु भारतीय विचार धारा में प्रमुखता आदर्श वाद की ही रही है, क्योंकि यहाँ के निवासियों की धमनियों में आदर्शवादी रक्त अतीत से वर्तमान में प्रवाहित होता चला आ रहा है। इसलिए यदि महात्मा गांधी में प्रकृति, यथार्थ, आदर्श एवं प्रयोजनवादी विचारधारा के चिन्ह दृष्टिगत होते हैं तो कोई अस्वाभाविक बात नहीं है, परन्तु इतना होने पर भी महात्मा गांधी मूलत: आदर्शवादी ही हैं।

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक प्रगति के कारण एवं परिस्थि-तियों के कारण उनकी विचार धारा एवं चिन्तन प्रक्रिया में किंचित बदलाव आया जिसके परिणाम स्वरूप बाद के तीस वर्षों में उन्होंने यह आवश्यक समझा कि अपनी बेसिक शिक्षा योजना को प्रयोजनवादी विचारधारा की ओर मोड़ना चाहिये।

जब इस प्रकार की विचारधारा का उदय महात्मा गांधी के मन मस्तिष्क में हो रहा था तो उसी काल में यू०एस०ए० में जाॅन डिवी प्रजातंत्रात्मक एवं प्रयोजनवादी शिक्षा दर्शन को शिक्षा क्षेत्र में प्रतिपादित करके अपनी प्रतिष्ठा की पराकाष्ठा पर पहुँच चुके थे। यदि अधिकांश व्यक्ति यह सोचें कि महात्मा गांधी जाॅन डिवी के

विचारों से प्रभावित है तो कोई आश्चर्य की बात न होगी, परन्तु इस सोच में सत्यता का अभाव ही दृष्टिगत होता है अन्यथा महात्मा गांधी जैसे महान व्यक्तित्व वाले प्राणी इस तथ्य को अपनी कृतियों, लेखों, भाषणों एवं विचार- विनिमय में कहीं न कहीं अवश्य स्वीकार किये होते, क्योंकि सत्य के शोधक एवं पुजारी से ऐसी आशा करना सर्वथा उचित ही है । अतः यह निर्विवाद सत्य है कि महात्मा गांधी जी एक मौलिक विचारक चिन्तक एवं दार्शनिक हैं ।

दोनों शिक्षा शास्त्रियों के विचारों के अध्ययनोपरांत यह ज्ञात होता है कि महात्मा गांधी के प्रयोजनवादी दृष्टिकोण अधिकांश स्थलों पर विशेषकर व्यावहारिक शिक्षा में जॉन डिवी से समानता रखते हैं । आज हम भारतीय शिक्षा में उत्पादनोन्मुख शिक्षा की प्रायः चर्चा करते हैं । इस विचार को शिक्षा क्षेत्र में प्रतिपादित करने में दोनों महान शिक्षा दार्शनिक अग्रणीय हैं । हमने एक अध्याय में जॉन डिवी के विचारों की भारतीय शिक्षा में संगति के सम्बन्ध में विचार किया है और यह देखा है कि इनके विचार हमारे लिए वास्तव में संगतिपूर्ण हैं । भारत एक महान जनतंत्रात्मक देश है । यू०एस०ए० तथा भारत दोनों देशों की राजनैतिक व सामाजिक परिस्थितियाँ प्रायः समान हैं । दोनों देशों में शिक्षा की पुनर्रचना की आवश्यकता है ।

<u>पारिवारिक पृष्ठभूमि</u> :-

प्रत्येक दार्शनिक एवं शिक्षा शास्त्री के पारिवारिक सामाजिक एवं राजनैतिक पर्यावरण का प्रभाव उसके जीवन दर्शन

पर अवश्य पड़ता है । इन पर्यावरणों के अभ्यन्तर वह अनुभव व ज्ञान सम्पन्न हो अपनी जीवन शैली का निर्माण करता है । परिवार इनके जीवन शैली व दर्शन का मौलिक आधार होता है, यहीं भावी जीवन के वैचारिक बीजों का वपन होता है । महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी के वैचारिक बीज यदि पारिवारिक परिस्थितियों में ही बो दिये गये हो तो हमें कोई आश्चर्य करने की बात नहीं है ।

पिछले अध्यायों के अन्दर हमने देखा है कि गांधी जी का परिवार ईमानदार, व्रती, न्यायी, बुद्धिजीवी एवं धार्मिक था । ऐसे पर्यावरण से युक्त पारिवारिक सदस्यों के मध्य बालक गांधी की प्रारम्भिक शिक्षा व लालन पालन हुआ था, इस सद्गुण सम्पन्न पर्यावरण ने गांधी जी के जीवन दर्शन के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी । साहस, दृढ़ निश्चय एवं धार्मिकता के अंकुर मुकलित होने के लिए अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे । इन्होंने वीरता पूर्वक कुटुम्बियों, जातिवालों, स्वधर्मियों का बाल्यावस्था व किशोरावस्था में ही मुकाबला कर लिया था । पिता के साथ सभी धर्मावलम्बियों द्वारा विभिन्न धर्मों की वार्ता सुनकर सभी धर्मों में समन्वय करने तथा सामूहिक चेतना की प्रवृत्ति का उनमें अद्भुत विकास हो चुका था । जो प्रेम का बीज बाल्यावस्था में बोया गया था उसे इन्होंने भविष्य में मानव समाज के मध्य बिखेरा ।

महात्मा गांधी ने जब से होश संभाला तभी से अपने

समय के समाज को देखते व अनुभव करते आ रहे थे । भारत माता ब्रिटिश सत्ता के पैरों तले डेढ़ दो सौ वर्ष से बुरी तरह कुचली जा रही थी, सर्वत्र शोषण, विपन्नता, विषमता व अज्ञानता का ही साम्राज्य फैला हुआ था । देश अपनी क्षमता, संस्कृति, ज्ञान, समृद्धि तथा कला-कौशल को भूलता जा रहा था । यहाँ तक कि खाने को रोटी, तन ढकने को वस्त्र एवं सिर छुपाने के लिए झोपड़ी के भी लाले पड़ रहे थे । उनके जीवन के मूल्य ही समाप्त होते जा रहे थे । इन समस्त सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव महात्मा गांधी पर पड़ा था जिसने उन्हें जन-जागरण हेतु नूतन क्रान्ति उत्पन्न करने के लिए विवश कर दिया था । "बापू के चरणों में" नामक पुस्तिका में ब्रज कृष्ण चाँदीवाल ने लिखा है :-

"ठीक उसी समय भारत के उस वीर पुरुष ने सिंहनाद किया और अपना पाँन्चजन्य फूँकते हुये "उतिष्ठत जाग्रत"उठो जागों का नारा लगाया । मृत प्राय: भारतीयों पर सत्याग्रह की संजीवनी बूटी का अमृत छिड़ककर उन्होंने उन्हें नया जीवन नया बल प्रदान किया।"[1]

उपर्युक्त परिस्थितियों के अवलोकनोपरान्त महात्मा-गांधी ने सामाजिक परिवर्तन एवं राष्ट्रीय पुनर्रचना हेतु तथा

1- ब्रजकृष्ण चाँदीवाल : "बापू के चरणों मे" पृष्ठ-108 सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1949 ।

तत्कालीन पारम्परिक शिक्षा की त्रुटियों को दूर करने के लिए शिक्षा को ही एक प्रमुख एवं प्रभावशाली साधन मानते हुये अपनी बुनियादी शिक्षा पद्धति को देश के समक्ष रखने का निश्चय किया। तत्कालीन भारतीय परिवेश में इससे बढ़कर अन्य शिक्षा पद्धति उपयुक्त नहीं थी ।

जिस प्रकार महात्मा गांधी के दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारों के आन्तरिक अनुभूतियों पर उनके बाल्यावस्था एवं पारिवारिक पर्यावरण का प्रभाव पड़ा था उसी प्रकार जॉन डिवी के शैक्षिक सिद्धान्तों एवं दार्शनिक विचारों पर उनके परिवार का प्रभाव पड़ा था । इसीलिए जॉन डिवी ने अपने बचपन में ही अनुभव कर लिया था कि ग्रामीण अंचल के लोग घरेलू कार्य, कृषि कर्म और औद्योगिक कार्यों के दैनिक कार्यों में किस प्रकार लगे हुये अपने उत्तरदायित्व का वहन करते थे । जॉन डिवी के समय में यद्यपि न्यू इंगलैण्ड के ग्रामीण विद्यालयों में पर्याप्त परिवर्तन हो चुका था फिर भी शिक्षा मुख्यतः पुस्तकीय थी । विद्यालयीय जीवन आनन्द रहित था । अनुशासन कठोर था ।

महात्मा गांधी के समय में भी विद्यालयीय परिवेश आनन्द रहित, कठोर अनुशासन युक्त तथा शिक्षा मुख्यतः पुस्तकीय थी, ग्रामीण विद्यालयों की परिस्थिति एवं दशा अत्यन्त शोचनीय थी, परन्तु जॉन डिवी के समय में विद्यालयीय शिक्षा सबके लिए सुलभ थी, सार्वजनिक शिक्षा का सूत्रपात हो चुका

था, वर्गभेद एवं असमानता का अभाव था । विद्यालयीय पर्यावरण प्रायः प्रजातंत्रात्मक होने लगा था, परन्तु न्यू इंगलैण्ड स्थित वरमॉन्ट नगर की जहाँ जॉन डिवी का जन्म हुआ था सम्पूर्ण विशेषतायें पुरातन ही थीं ।

जॉन डिवी की बाल्यावस्था एक ग्रामीण अंचल में ही व्यतीत हुई थी, जहाँ दैनिक जीवन में धर्म व राजनीति के पुरातन रीति रिवाज ही प्रचलन में थे । पिता कृषक परिवार के होते हुये भी व्यापारी थे, जिनकी विद्यालयीय शिक्षा सामान्य किन्तु व्यावहारिक थी । इनका परिवार धार्मिक प्रवृति का था इसलिए जॉन डिवी पर परिवार के धार्मिक वातावरण का गहरा प्रभाव पड़ा था । इसलिए वे धार्मिक किन्तु संकोची एवं शर्मीले स्वभाव के थे । इस प्रकार महात्मा गांधी व जॉन डिवी दोनों धार्मिक एवं संकोची तथा शर्मीले स्वभाव के थे ।

न्यू इंगलैण्ड के ग्रामीण क्षेत्र में स्थित विद्यालयों के उपर्युक्त तथ्यों के अवलोकन से जॉन डिवी ने अनुभव किया कि शिक्षा की महत्वपूर्ण बातें कक्षा व पुस्तक द्वारा न प्राप्त कर बाहरी जीवन के विभिन्न अनुभवों से प्राप्त ज्ञान अधिक सार्थक होता है । बाह्य जीवन के अनुभवों से ही वास्तविक शिक्षा व बौद्धिक स्वानुशासन प्राप्त हो सकता है अतः उनमें दो विश्वास जाग्रत हुये :-

1- पुस्तकीय तथा परम्परागत तरीकों से प्रदत्त शिक्षा बालकों

का कोई हित नहीं कर सकती ।

2- दैनिक जीवन में मानव सम्पर्क महत्वपूर्ण, स्वाभाविक तथा गति-शील "सीखने की स्थिति" का साधन है ।

महात्मा गांधी की भाँति जॉन डिवी में वरमान्ट के उस छोटे से कस्बे में तथा समाज में सामूहिक चेतना की शक्ति की अनुभूति तथा धार्मिक समन्वयात्मक प्रवृत्ति का विकास पिता की दूकान तथा उनके पास आने वाले लोगों की बात-चीत व सामयिक घटनाओं के सम्बन्ध में की गई आलोचनाओं के श्रवण करने से हुआ था ।

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी के दर्शन विभिन्न दार्शनिक प्रवृत्तियों से प्रभावित हैं :-

"सत्य क्या है"? "मनुष्य क्या है" ? की खोज करना प्रत्येक दर्शन के लिए सदैव एक महत्वपूर्ण प्रश्न बना रहा है । इस प्रकार दर्शन में हमारा सम्बन्ध "सत्य की प्रकृति" से सम्बन्धित आध्यात्मिकता से अथवा मानव की प्रकृति से सम्बन्धित मानव समस्याओं से ही रहा है । इसीलिए चिन्तन प्रक्रिया द्वारा भौतिक वाद अथवा आदर्शवाद का उत्थान हुआ है । इन दार्शनिक विचारों का विस्तृत विवरण देना हमारा लक्ष्य नहीं है हम मुख्य रूप से शिक्षा में इनके प्रयोग से सम्बन्ध रखते है, क्योंकि शिक्षा की विधि व सिद्धान्त, दार्शनिक विचारों की विधि की प्रतिछाया होती है ।

महात्मा गांधी जी तथा जॉन डिवी के शिक्षा दर्शन पर प्रकृतिवाद, आदर्शवाद एवं प्रयोजनवाद का प्रभाव दिखाई देता

है कुछ विचारक इन तीनों वादों के समन्वय के रूप में जॉन डिवी तथा गांधी वादी शिक्षा को मान्यता देते हैं । परन्तु हम उनके शिक्षा दर्शन को उनके स्वतंत्र चिन्तन एवं अनुभव व प्रयोग की उपज मानते हैं । व्यक्ति के चिन्तन पर उसके पूर्वजों की विचारधारा का प्रभाव अवश्य पड़ता है इसलिए जॉन डिवी व महात्मा गांधी जी की चिन्तन प्रक्रिया पर यदि आदर्श,प्रकृति एवं व्यवहारवाद का प्रभाव पड़ा हो तो कोई आश्चर्यजनक बात नहीं होगी । महात्मा गांधी ने अपने पूर्व चिन्तकों के विचारों को राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में अनुभव करने का प्रयास किया है । इसलिए उनके विचारों पर एक ओर प्रकृति-आदर्शएवं प्रयोजनवाद का प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगत होता है और दूसरी ओर उनकी विचारधारा में सूक्ष्म अन्तर भी दृष्टिगत होता है ।

प्रकृतिवाद :-

प्रकृतिवाद के जिस रूप ने जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी को आकर्षित किया था वह जैवकीय प्रकृतिवाद था । इसका मुख्य कारण है कि यह रूप मानव प्रकृति पर जोर देता है और विद्यार्थी की पूर्ण प्रकृति का व स्वभाव का पूर्ण विकास करना चाहता है । किन्तु जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी जी पूर्ण प्रकृतिवादी नहीं है परन्तु उनकी कृतियों में कुछ वर्णन व कथन प्रकृतिवादी विचारधारा से साम्य रखते हैं इसीलिए वे प्रकृतिवादी दार्शनिको में मुख्य व प्रतिष्ठित स्थान रखते हैं । वे शिक्षा में

प्रकृतिवाद के बाल केन्द्रित "मनोवैज्ञानिक रूप को मान्यता देते हैं। वे ग्रामीण पर्यावरण में व्यवहार की शिक्षा प्रदान करने हेतु आयोजन करते हैं। इनकी धारणा है कि मानव के उचित विकास हेतु उनमें निहित समानता के आधार पर पृष्ठभूमि, अवसर तथा कार्यशीलन हेतु विद्यालयों को प्रबन्ध करना चाहिये। मानव के इस विकास क्रम में व्यक्ति की भूमिका का महत्वपूर्ण स्थान है। अत: उन्हें स्वतंत्र होकर ज्ञानार्जन करना चाहिये। अत: प्रकृति-वादियों की भाँति जाॅन डिवी व महात्मा गांधी स्वतंत्रता के पक्षधर है किन्तु स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता के अर्थ में महात्मा-गांधी जी स्वीकार नहीं कर रहे हैं। प्रकृतिवादी शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक का स्थान महत्वपूर्ण नहीं मानते हैं, परन्तु जाॅन डिवी व महात्मा गांधी की शिक्षा प्रक्रिया में शिक्षक का महत्व पूर्ण स्थान है। इस बिन्दु पर महात्मा गांधी जी व जाॅन डिवी प्रकृतिवादी विचार धारा से अन्तर रखते हैं। ये शिक्षक को मार्ग दर्शक मानते हैं, क्योंकि शिक्षक का उत्तरदायित्व है कि वह विद्यार्थियों की विभिन्न रूचियों एवं अच्छी व बुरी प्रवृतियों का अध्ययन कर उन्हें उचित मार्ग दर्शन करे। प्रकृतिवादियों की भाँति महात्मा गांधी जी व जाॅन डिवी भी पुस्तकीय एवं सैद्धान्तिक शिक्षा का विरोध करते हैं।

गांधी जी शिक्षा का लक्ष्य सत्य की खोज करना मानते हैं। इसलिए शिक्षा में वे प्रकृतिवादी विधि को ही मान्यता देते हैं। इस प्रकार गांधी जी रूसो के विचार से बहुत कुछ प्रभावित थे।

किन्तु रूसो की विधि तथा गांधी जी की शिक्षण विधि में अन्तर है । जैविकीय प्रकृतिवादी विधि ने विश्व में "स्पर्द्धा" को जन्म दिया तथा नव डार्विनियन विधि सिद्धान्त ने "योग्यतम ही जीता है" की भावना का विकास किया था, परन्तु गांधीवादी शिक्षण विधि विश्व से "स्पर्द्धा" का अन्त तथा सर्वोदय को जन्म देती है । जहाँ रूसो का "एमील" नागरिक समाज से दूर प्रकृति की गोद में चरित्र वान, सदाचारी, कर्मठ व साहसी बनाता है वहाँ जॉन डिवी व महात्मा गांधी की शिक्षा में व्यक्ति समाज में रहते हुये, निजी कर्तव्यों का पालन करते हुये, जीवन के कटु व मधुर अनुभव करते हुये, सेवा, शान्ति, संयम व आत्मानुभूति द्वारा अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करता है ।

रूसो की शिक्षा प्रणाली निषेधात्मक है और डिवी की निषेधात्मक व विधेयात्मक दोनों है किन्तु महात्मा गांधी की शिक्षा प्रणाली केवल विधेयात्मक है । प्रकृतिवादी शिक्षा का आयाम केवल युवावस्था तक सीमित है किन्तु गांधी वादी शिक्षा परिधि जीवन पर्यन्त के लिये हैं, जो शिक्षा को स्वयं जीवन मानती है । शिक्षा जीवन के लिए जीवन की प्रक्रियायें देती है । महात्मा गांधी जी व जॉन डिवी प्रकृतिवादी विधि को वहीं तक मान्यता देते हैं जब तक पुस्तकीय ज्ञान व शिक्षा का आदर्श बालक पर बलात् लादा न जाय । गांधी जी ने प्रकृतिवाद से शिक्षण विधि का उतना ही अंश लिया, जिससे बालक को समाज द्वारा निश्चित किये गये मूल्य को अपनाने में किसी भी प्रकार

की अड़चन व अस्वाभाविकता न मालूम हो ।

रूसों ने "एमील" को समाज से दूर किन्तु किसी आदर्श को आधार मानकर शिक्षा देने तथा पालन पोषण की परिकल्पना अवश्य की होगी, इसलिए रूसो भी आदर्शवादी ही प्रतीत होते है । इस प्रकार हम यह देखते हैं कि महात्मा गांधी ने प्रकृतिवाद से केवल कुछ विधियों को ग्रहण किया है । रूसो एवं गांधी मे सबसे बड़ा अन्तर यह है कि रूसो बालक की पाशविक प्रकृति में विश्वास करते हैं जबकि गांधी जी विद्यार्थी के अन्तराल में ईश्वरत्व की कल्पना करते हैं ।

जॉन डिवी पर जब डार्विन के विचारों एवं सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ा तो उनके दार्शनिक विचारों में प्रकृतिवादी लक्षण दिखाई देने लगे थे । डिवी के जन्म के वर्ष में प्रकाशित डार्विन की पुस्तक "ओरिजिन ऑव स्पीसिज" ने बौद्धिक पर्यावरण में विरोधी प्रवृत्तियों को जन्म दिया था । डार्विन के "जीव उद विकास" के चिन्ह दर्शन में भी दृष्टिगत होने लगे थे । डार्विन की विकासवादी उपकल्पना को जॉन डिवी ने ज्ञान दर्शन (इपिस्टेमो लॉजी) में पूर्ण रूपेण लागू किया था । जॉन डिवी के लेखों में इसका प्रमाण प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है । डार्विन का प्रभाव जॉन डिवी पर इतना अधिक पड़ा था कि 1900से 1910 के दशक में वे यह विश्वास करने लगे थे कि "प्रयोजनवाद डार्विन का ही सिद्धान्त है" ।

जॉन डिवी प्रकृतिवादियों की भाँति यह स्वीकार

करते हैं कि किसी वस्तु की प्रकृति को समझने के लिये हमें वस्तु की उत्पत्ति की अवस्थाओं की खोज करनी चाहिये तथा उसके कार्य की परख करनी चाहिये । डार्विन के अनुसार प्रकृतिवादी शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति तथा राष्ट्र को जीवन के संघर्ष के योग्य बनाना है । जीवन संघर्ष एवं सामर्थ्यवान का अस्तित्व" ये दोनों कार्य शिक्षा द्वारा सम्पन्न होने चाहिये । रूसो के अनुसार शिक्षा "आनन्द से रहने वाले विवेकपूर्ण समरूप से नियन्त्रित उपयोगी, तथा स्वाभाविक जीवन के विकास की प्रक्रिया है । " जॉन डिवी रूसो की भाँति शिक्षा को विवेकपूर्ण समरूप नियन्त्रित एवं उपयोगी मानते हैं किन्तु स्वाभाविक जीवन के विकास की प्रक्रिया के बजाय सामाजिक जीवन के विकास की प्रक्रिया मानते हैं ।

मानव प्रकृति के वर्णन के सम्बन्ध में जॉन डिवी रूसो से सहमत नहीं है । जॉन डिवी ने सदैव जीवन की वास्तविक दशाओं पर बल दिया है । जिनकी उत्पत्ति मानव संघर्ष से होती है । जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी न्याय, समानता के सिद्धान्त पर आधारित प्रजातंत्रात्मक समाज तथा न्याय की रूसो की विचारधारा से सहमत हैं । रूसो के शिक्षा सिद्धान्त का जॉन डिवी बड़ा सम्मान करते थे, क्योंकि एक महान शिक्षा शास्त्री की भाँति उन्होंने शिक्षा को जीवन के निकट लाने का प्रयास किया था और अपने शिक्षा सिद्धान्त का बालक को केन्द्र बनाया था । हम देखते हैं कि जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी की शिक्षा प्रक्रिया का केन्द्र बालक ही है । जॉन डिवी

महात्मा गांधी तथा रूसो इस बिन्दु पर एक ही पंक्ति में खड़े दिखाई देते हैं ।

रूसो व महात्मा गांधी की भाँति जॉन डिवी बालक की वैयक्तिकता का आदर करते हैं । महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों रूसो की भाँति उस पुस्तकीय ज्ञान का आदर नहीं करते है जो जीवन की समस्याओं से कोई सम्बन्ध न रखे । महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी रूसो के बाल विकास सम्बन्धी विचार पुनरावृत्ति के सिद्धान्त के विचारों से सहमत नहीं हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी में प्रकृतिवाद के कुछ विचार मिलते हैं ।

डार्विन के युग में बुद्धि तथा ज्ञान के अध्ययन में प्रतिबिम्बित विचार ।रिफ्लेक्टिव थॉट। का प्रयोग किया जाता था और इस तथ्य से युक्त उदाहरण उत्तम माने जाते थे । विचार की उत्पत्ति कैसे होती है, विचार की प्रेरणा व उत्तेजना क्या है? विचार कैसे समाप्त होते हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर जॉनडिवी निम्नलिखित रूप से देते हैं :-

प्रतिबिम्बित विचार उस समय उत्पन्न होते हैं जब हमारे अभ्यस्त व्यवहार में किसी संकट के कारण कठिनाई की अनुभूति होती है । ऐसी स्थिति में जीव विभिन्न मार्गों व कठिनाइयों का सामना करता है । विचारक को कुछ क्षण विचार ग्रहण करने के लिए रुकना पड़ता है । इसके बाद इस परिस्थिति में जो सबसे अधिक संतोषजनक समाधान होता है वह उसी का चुनाव करता है ।

जॉन डिवी ने लिखा है :-

"डार्विनवाद के अनुसार यदि सांसारिक प्राणी के समक्ष कठिनाई न उत्पन्न हो तो विचार उत्पन्न ही नहीं होगा । इसलिए ज्ञान की प्राप्ति भी नहीं हो सकेगी। इन कठिनाईयों का समाधान केवल विचार विधि से ही उत्तम रूप से किया जा सकता है ।"[1]

ज्ञान का सम्बन्ध व्यक्ति की रूचियों और प्रेरणाओं यहाँ तक कि मूल प्रवृतियों की आवश्यकताओं से है । व्यक्ति अपने को जीवित रखने के लिए नाना प्रकार की कठिनाईयों जैसे भूख, प्यास, रहन, सहन आदि से संघर्ष करता है । ये उत्तेजनाएं उसे वातावरण से ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होती है । अत:मूल प्रवृतियों के कारण उत्तेजना- प्रतिक्रिया से व्यक्ति की बुद्धि का विकास होता है । विचार या चिन्तन का कोई न कोई कारण अवश्य होता है । यदि व्यक्ति के जीवन के समस्त व्यापार सुग- मता से हो जाये तो विचार की कोई आवश्यकता ही न पड़े, किन्तु बाधा या कठिनाई के उपस्थिति हो जाने पर ऐसी समस्या के हल के लिए विचार प्रक्रिया प्रारम्भ हो जायेगी ।

अत: व्यक्ति की क्रियाशीलता समस्या के समाधान पर निर्भर करती है, विचार की उत्पत्ति समस्या के उठने तथा विचार की समाप्ति समस्या के हल से होती है । इसीलिए जॉन डिवी ने चिन्तन की क्रियाशीलता को एक कार्य कहा है ।

1- जॉन डिवी : "द इन्फ्लुयेन्स ऑव डार्विन इन फिलॉसफी एण्ड अदर एसेज, पृष्ठ-213, हेनरी हाल्ट 1910, पीटर स्मिटी 1915

डिवी चिन्तन की प्रक्रिया पर विशेष ध्यान देते हैं न कि उसके परिणाम पर ।

जॉन डिवी ने अपने चिन्तन में समाज को मुख्य स्थान दिया है । सामाजिक वातावरण में ही मनुष्य अपनी समस्याओं का समाधान करता है । जॉन डिवी के अनुसार दर्शन वही कहा जा सकता है जो जीवन की समस्याओं का समाधान करने के साथ-साथ उसका पुनर्निमाण भी करे । जॉन डिवी मन की क्रियाओं को विकास का परिणाम मानते हैं । सामाजिक मन महत्वपूर्ण हैं ज्ञान एवं विचार की उत्पत्ति इसी मन से होती है । मनुष्य विचार एवं ज्ञान की प्राप्ति अपने वातावरण के साथ अनुकूलन तथा नियंत्रण की प्रक्रिया से करता है ।

इससे सिद्ध होता है कि जॉन डिवी के अनुसार ज्ञान क्रिया से प्राप्त होता है और क्रिया का स्थान अनुभव के बाद आता है । अतः अनुभव ज्ञान का स्त्रोत हुआ ।

डिवी के अनुसार अनुभव-क्रिया-ज्ञान यह क्रम चलता रहता है । व्यक्ति ॥स्व" को॥ सामाजिक एवं प्राकृतिक वातावरण से अनुकूल करने में चिन्तन प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप ही समर्थ होता है । उसका विकास इसी अनुकूलन पर आधारित है । हमने देखा है कि जॉन डिवी ने डार्विन के सिद्धान्तों को अपने दर्शन में सीमित रूप में प्रयोग किया । उन्होंने इसका प्रयोग केवल निषेधात्मक अभिप्राय हेतु ऐसे हथियार के रूप में किया है जिससे आध्यात्मिक दर्शन एवं ज्ञान दर्शन के व्यर्थ की कल्पनाओं

का विरोध किया जाय, परन्तु अपने सकारात्मक सिद्धान्तो के विकास के लिए इसे उचित तथा पर्याप्त नहीं समझा था । अन्त में बाध्य होकर डिवी ने मौलिक रूप से ऐसे दृष्टिकोण को अप-नाया जो डार्विन के सिद्धान्तो के विरोध में था ।

इस प्रकार हम देखते है कि प्रकृतिवाद ने शिक्षा के क्षेत्र में नवीन एवं प्रगतिशील विचारधारा को प्रवाहित किया है । इस सम्बन्ध में "मैनरो" का कहना है कि "प्रकृतिवाद ने शिक्षा में मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोणों के स्पष्ट निर्माण में प्रत्यक्ष प्रेरणा दी ।"

प्रगतिशील शिक्षा, प्रगतिशील शिक्षण विधियाँ तथा प्रगतिशील विचारधारा को बढ़ाने का प्रथम श्रेय प्रकृतिवाद को ही है । दर्शन एवं शिक्षा में प्रयोगवाद ॥प्रेगमेटिज्म॥ प्रकृतिवाद का ही परिणाम कहा जा सकता है । यद्यपि शिक्षाशास्त्री प्रयोग वाद को आदर्शवाद तथा प्रकृतिवाद का मध्यमार्ग मानते हैं । प्रकृतिवाद ने जो कुछ भी शिक्षा एवं दर्शन के क्षेत्र में किया वह मान्य तथा महत्वपूर्ण है इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है । एक गूढ़ विचार से प्रकृतिवाद के विषय विस्तार में मानव के एक अनिवार्य अंग आध्यात्मिक प्रकृति को शामिल किया जाना चाहिये और इस प्रकार उसकी कटु आलोचना हटाई जा सकती है । यह निश्चय ही कहा जा सकता है कि मनुष्य और उसके मूल्य ॥गुण॥ प्रकृति के अंग हैं और मनुष्य की उच्चतर एवं निम्नतर प्रकृति दोनों को प्राकृतिक कह सकते हैं । इस प्रकार का प्रकृतिवाद आदर्शवाद

की मापन योग्य परिसीमा में आयेगा और दोनों के अन्तर को जोड़ना कठिन नहीं है । हमें जॉन डिवी व महात्मा-गांधी के तुलनात्मक आदर्शवादी विचारों का भी अध्यन आवश्यक है जिससे हम तुलनात्मक अध्ययन में उचित दृष्टिकोण बना सकें ।

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों आदर्शवादी विचारधारा से प्रभावित हैं :-

आदर्शवाद का मौलिक सम्प्रत्य यह है कि आध्यात्मि-कता, भौतिकता की अपेक्षा अधिक सत्य है । वास्तविक सत्य भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिक है । आदर्शवादी विश्वास करते हैं कि भौतिक विश्व का अस्तित्व मानसिक है इसलिए विधेयक विज्ञानों की अपेक्षा मानवता का अध्ययन अधिक महत्त्वपूर्ण है । आदर्शवादी दार्शनिकों की एक लम्बी सूची है परन्तु प्रमुख आदर्शवादी सुकरात, प्लेटो, देकार्ते, स्पिनोजा, बर्कले, कॉन्ट, हिगले पिक्शे और शॉपेन हॉवर है । शिक्षा दर्शन में महत्वपूर्ण योगदान करने वाले मुख्य आदर्शवादियों में कमेनियस, रूसो, पेस्टालॉजी, हरबर्ट और फ्रोबेल भी हैं ।

आदर्शवाद मानव की प्रतिष्ठा और उसकी प्रकृति की विशिष्टता पर बल देता है । हम यह अनुभव करते हैं कि मानव व्यक्तित्व श्रेष्ठ व मूल्यवान वस्तु है और ईश्वर के श्रेष्ठ कार्यों का संगठन है । एडम्स जोर देते हैं कि शिक्षा के बहुत से आदर्शों में :-

"आत्मानुभव एक वह आदर्श है जो आदर्शवाद से विशेष रूप से सम्बन्धित है ।"

यह ध्यान देने योग्य बात है कि आदर्शवादी एवं प्रकृतिवादी उद्देश्यों में मुख्य अन्तर "आत्मानुभव" और "आत्म प्रकाशन" या आत्माभिव्यक्ति" का है । आत्मानुभव को संकुचित अर्थ में नहीं ग्रहण करना चाहिये और यह भी नहीं समझना चाहिये कि आत्मानुभव "अलगाववादी दृष्टिकोण" या "स्वपूर्ण" सुख का प्रतीक है । "रस्क" ने इंगित किया है कि :-

> "मनुष्य की उच्च अथवा आध्यात्मिक प्रकृति आवश्यक रूप से सामाजिक है ।"[1]

इसलिये कोई भी व्यक्ति अपनी पूर्ण सम्भावनाओं को समाज की गतिविधियों में भाग लेकर ही अनुभव कर सकता है । यदि हम आत्मानुभव के इस विश्लेषण को स्वीकार करते हैं तो शिक्षा में सामाजिक उद्देश्य के प्रति पूर्ण न्याय करते हैं । एकिन के अनुसार शिक्षक को अपने शिष्य को :-

> "विरोध और अलग व्यक्ति के रूप में नहीं समझना चाहिये बल्कि ऐसे प्राणी के रूप में जानना चाहिये कि उसमें एक नूतन और सार्वभौमिक जीवन अन्तर्निहित है ।"[2]

आदर्शवादियों का दृष्टिकोण है कि संस्कृति, कला, नैतिकता और धर्म हमें हृदय की वास्तविकता की ओर ले जाते हैं इसीलिए शिक्षा को धार्मिक, नैतिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक

1- रस्क : द फिलॉसफिकिल बेसिस ऑफ एजूकेशन, पृष्ठ-43 ।

2- एकिन : लाइफ्स बेसिस एण्ड लाइफ्स आइडियल, पृष्ठ-343 ।

होना चाहिये । आदर्शवादी शारीरिक शिक्षा के विरोधी नहीं है, बल्कि वे विश्वास करते हैं कि यदि सगन रूप सन्तुलित व्यक्तित्व प्राप्त करना है तो उपर्युक्त सभी तत्वों में से किसी की भी अपेक्षा नहीं की जा सकती है, क्योंकि शिक्षा का शारीरिक पक्ष द्वयमुखी है प्रथम यह कि बिना स्वस्थ्य व चुस्त शरीर के आध्यात्मिक मूल्यों के कार्य पूर्ण नहीं हो सकते बल्कि वे गम्भीर रूप से अपंग हो जायेंगें । दूसरा शारीरिक दक्षता है यही शारीरिक दक्षता मानव को एक कलात्मक भौतिक पर्यावरण के निर्माण के योग्य बनाती है जो मानव की इच्छाओं और आवश्यकताओं के अनुरूप होता है । शारीरिक एवं आध्यात्मिक क्रियाशीलता एक दूसरे से भिन्न नहीं है बल्कि उनमें सामान्य अनुरूपता की निश्चित मात्रा पायी जाती है । नैतिक मूल्य शारीरिक क्रियाशीलता में ही पाये जाते हैं तथा समस्याओं के समाधान हेतु कार्य कुशलता का प्रयोग ही बौद्धिक मूल्य है, सौन्दर्यात्मक मूल्यों को हस्तकला में खोजा जा सकता है ।

आदर्शवाद के मौलिक सिद्धान्तों के प्रकाश में जिसका संक्षेप में पूर्व अनुच्छेदों में वर्णन किया गया है उसके आधार पर अब हमें यह खोज करनी है कि महात्मा गांधी का शिक्षा दर्शन कहाँ तक आदर्शवादी है । गांधी जी के लेखों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि वे मूलरूप में आदर्शवादी ही हैं । आदर्शवाद उनकी प्रकृति में गहराई से बीज रूप में निहित है । इन बीजों को उनके पालन पोषण के तरीकों व उनकी प्रारम्भिक शिक्षा

दीक्षा के ढाँचे में देखा जा सकता है ।

जैसा कि हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि महात्मा गांधी जी का लक्ष्य आदर्शवादी का लक्ष्य है । आदर्शवादी सत्य के अन्वेषण और आत्म ज्ञान पर जोर देते हैं । आध्यात्मिक क्षेत्र मे गांधी जी अन्तरात्मा की आवाज सुनने की ओर संकेत करते हैं । वे सत्याग्रह को भी केवल नैतिक और चारित्रिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए एक अहिंसा प्रधान साधन मानते हैं । वे इस बात में विश्वास नहीं करते हैं कि समाज से दूर रहकर व्यक्ति आत्म चिन्तन करके आत्मोन्नति प्राप्त करे । उनका दर्शन यह चाहता है कि व्यक्ति समाज में रहकर समाज और विश्व के कर्तव्यों को पूरा करता हुआ प्राणि मात्र की सेवा करे और उस सेवा से आत्मोत्थान करे ।

आज विश्व में धर्म-धर्म के कारण, स्वार्थ-स्वार्थ के कारण तथा दुरंगी विचारधाराओं के कारण संघर्ष चल रहा है । व्यक्ति एक दूसरे को हिंसा द्वारा परास्त करना चाहता है । विश्व में अनेक प्रकार के हिंसात्मक अस्त्र शस्त्र भी निकाले गये हैं एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से, एक समाज दूसरे समाज से, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से डरता है । सारे विश्व में भय और विषमता का साम्राज्य फैला हुआ है । इसीलिये महात्मा गांधी जी ने सत्य, अहिंसा और प्रेम का दर्शन दिया है ।

उनका सत्य ईश्वर है, इसलिए एक प्राणी में जो सत्य है, वही ईश्वर दूसरे प्राणी में भी है । इसलिए प्राणी का नाश

करने वाला प्राणी, सत्य का नाश करता है । प्राणी को प्राणी से प्रेम करना चाहिये और जब प्राणी इस सत्य को समझ लेगा, तब आपस के जो द्वंद है, वे आप से आप गायब हो सकते हैं । यदि कोई प्राणी दूसरों को कष्ट देना चाहता है तो कष्ट देने वाले प्राणियों के कामों के विरुद्ध अहिंसक प्राणियों को सच्च रुप में सत्याग्रह करना चाहिये । यह सत्याग्रह अहिंसात्मक होगा और सत्याग्रह करने से ही कष्ट देने वाले प्राणी की अन्तरात्मा पर प्रभाव पड़ेगा और वह कष्ट देना आप से आप छोड़ देगा । अतः गांधी जी ने आदर्शवादी लक्ष्यों को समय के अनुसार समझा है और उनके इस प्रकार के आदर्शवाद से विश्व में निर्भयता, समता एवं अस्तित्व भावना आदि विचारों का प्रचलन भी हुआ है । इसलिए गांधी जी का आदर्शवाद इस विज्ञानवादी और औद्योगिक सभ्यता की बुराईयों को दूर करने हेतु अपने ढंग का एक अनूठा दर्शन है ।

पश्चिम के अन्य दार्शनिकों से यदि महात्मा गांधी जी की तुलना की जाय तो हमें महात्मा गांधी जी के आदर्शवादी होने का आभास प्राप्त होगा । रूसो जिसका मूल दर्शन आदर्श-वादी था, उसी की तरह महात्मा गांधी जी भी बालक की शिक्षा की मांग करते हैं । वे पुस्तकों के माध्यम से विषय वस्तु के अध्ययन की मांग नहीं करते है । पेस्टालॉजी की भांति महात्मा गांधी जी की शिक्षा योजना में बालक ही शिक्षा का केन्द्र है ।

शिक्षा का लक्ष्य स्वाभाविक, समन्वय एवं प्रगतिशील रूप में मानव की मूलभूत प्रवृत्तियों का विकास है । दोनों शिक्षा शास्त्री महात्मा गांधी जी व पेस्टालॉजी शिक्षा के प्रति समान अवधारणा के पोषक है, में दोनों शिक्षा को प्राथमिक स्तर पर अनिवार्य एवं सार्वभौमिक बनाने के पक्षधर हैं,।

हरबार्ट एवं गांधी दोनो शिक्षा के उद्देश्य को नैतिक चरित्र का निर्माण करना मानते हैं । दोनों की अवधारणा है कि जब तक बालक क्रिया में रूचि नहीं लेता है तब तक शैक्षिक प्रगति सम्भव नहीं है । इस प्रकार गांधी जी ने बालक की रूचि को मौलिक हस्तकला के प्रति उत्प्रेरित किया है । हस्तकला में स्वावलम्बी बनने का गुण निहित है । दोनों दार्शनिक वास्तविक जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप विद्यालयीय विषयों को समन्वित करने की आवश्यकता पर बल देते हैं ।

फ्रोबेल की तरह महात्मा गांधी जी भी व्यक्ति की अभिक्षमताओं को बचपन से उसके मौलिक स्वभाव में सुप्त मानते है और यह शिक्षा का कार्य है कि वह इन सुप्त अभिक्षमताओं को जाग्रत करे । दोनों ईश्वरीय योजना में विश्वास करते हैं । जिसका तात्पर्य है कि सभी क्रियाओं के पीछे आध्यात्मिक अर्थ व मूल्य निहित है । इस प्रतीकवाद से आगे बढ़कर महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों ने स्वक्रियाशीलता के सिद्धान्त को शिक्षण विधि के रूप में विकसित किया है और बच्चों की शिक्षा में क्रिया के महत्व पर बल दिया है । दोनों इस तथ्य को मान्यता

देते हैं कि शैक्षिक प्रक्रिया के लिए सामाजिक पर्यावरण आवश्यक है और विद्यालय को समाज का एक लघु रूप होना चाहिये ।

हमने देखा है कि जॉन डिवी की दार्शनिक चिन्तन प्रक्रिया पर अनेक दार्शनिकों एवं चिन्तकों का प्रभाव पड़ा था जिसके कारण उनके विचार बनते व संशोधित होते रहे हैं । यह भी एक प्रयोजनवादी लक्षण ही कहा जा सकता है । जॉन डिवी का पारिवारिक परिवेश धार्मिक तथा प्राचीन रीति रिवाजों को मानने वाला था । अतः वे धार्मिक एवं पूर्ण परम्परावादी भी थे । कुछ लोग जॉन डिवी को प्राचीन परम्पराओं की मूर्ति पूजा को नष्ट करने वाला मानते हैं, किन्तु यह कथन सच्चाई से दूर है क्योंकि अपनी शती के दार्शनिकों में जॉन डिवी सबसे बड़े परम्परावादी थे । पारम्परिक धार्मिक विश्वासों में आस्था रखते थे क्योंकि उन्होंने दार्शनिक ऐतिहासिक स्रोतों का दर्शन में प्रयोग किया है । एक अच्छा परम्परावादी यह अच्छी तरह समझता है कि वर्तमान समस्याओं को हल करने में परम्पराओं का कैसे प्रयोग किया जाता है । ऐतिहासिक स्रोतों का दर्शन में प्रयोग करने में जॉन डिवी का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है । डिवी के लिए यह मौलिक बात है कि परम्परा वह वस्तु है जिसके अन्तर्गत दर्शन को आलोचनात्मक पद्धति को कार्य करना चाहिये । जॉन डिवी ने लिखा है :-

"एक दार्शनिक जो अपनी विचारधारा को वर्तमान सभ्यता की औद्योगिक एवं तकनीकी विशेषताओं से तथा इसकी प्रबलता से सम्बन्ध रखेगा, ।वह। इन

आन्दोलनों को ।18वीं शताब्दी के हेतु वाद, जर्मन के आदर्शवाद, यूरोप के धार्मिक एवं दार्शनिक परम्पराओं के आन्दोलन। उपेक्षित नहीं कर सकता है । इससे भी अधिक उस ग्रीक एवं मध्य युगों में निर्मित अति उत्तम परम्पराओं के विचार को त्यागने कीअपेक्षा उसे स्वीकार करना चाहिये । यदि वह परम्पराओं की उपेक्षा करता है तो उसके विचार सारहीन व खोखले हो जायेगें परन्तु उन विचारों का कुछ भाग उन्हें उपयोग में लाना होगा और उन विचारकों का आदर करना होगा तथा उन्हें नये शब्द सौष्ठव से सजाना होगा ।"[1]

अतः जॉन डिवी के अनुसार महान परम्परायें एवं वर्तमान वास्तविकतायें दोनों ही दार्शनिकविचारों तथा अध्ययन के लिए अति आवश्यक वस्तुयें हैं । राबर्ट जे0 राथ के अनुसार जॉन डिवी के दर्शन की मुख्य विषय वस्तु आत्मानुभूति ही है तथा प्राणी के पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना है । जॉन डिवी की दृष्टि में व्यक्ति व समाज दोनों महत्वपूर्ण है । इसलिए डिवी बालक के वैयक्तिक विकास पर बल देकर वैयक्तिकता का समर्थन करते हैं । व्यक्ति की वैयक्तिकता के विकास के लिए समाज को महत्वपूर्ण कारक मानते है । इसलिए समाजिक पर्यावरण का डिवी की दृष्टि में महत्वपूर्ण स्थान है ।

प्रारम्भ में जॉन डिवी पर जार्ज एस0मोरिस का प्रभाव पड़ा था जिसके कारण वे हीगेल की आदर्शवादी विचारधारा से

1- विदर मैन काइन्ड ? इडिटेटु, चार्ल्स बियर्ड, चैपटर-13 "फिलॉसफी" ।

प्रभावित हुये इसीलिए जॉन डिवी ने अपने दर्शन को प्रयोगात्मक आदर्शवाद के नाम से अभिहित किया था । दर्शन शास्त्र के अध्यापक एवं अध्यक्ष होने के नाते उन्होंने प्लेटो, इमर्सन, बर्गसन, हीगेल, कॉट मारिस, डार्विन आदि दार्शनिकों के विचारों का अध्ययन किया था । अतः जॉन डिवी किसी भी दर्शन का विरोध न करके उन विभिन्न दार्शनिक विचारों को अपनाते गये । जॉन डिवी पर उनके समय के विज्ञान उद्योग, जनतंत्र के विकास का प्रभाव पड़ा था जिससे उनके विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन उत्पन्न हुआ ।

सन् 1879 में वरमान्ट कालेज में अध्ययन करते समय उन्होंने टी0एच0 हक्सले द्वारा लिखित पुस्तक "फिजियोलॉजी" का अध्ययन किया । जिसके फलस्वरूप उन्हें यह ज्ञात हुआ कि समस्त जीवित प्राणियों में एकता है । आदर्शवादी कॉन्ट के दर्शन पर उन्होंने पी0एच0डी0 की उपाधि ग्रहण की थी । अतः उन्हें आदर्शवादी विचारों से प्रभावित होना आवश्यक था । सन् 1882 में जॉन हॉपकिन्स विश्व विद्यालय में जॉन डिवी का सम्पर्क प्रो0 जार्ज मॉरिस तथा डॉ0 जी0स्टेनहाल से हुआ । मॉरिस का जॉन डिवी पर विशेष प्रभाव था । मार्टिन जी0 व्हाइट का कथन है कि :-

> "उनका जॉन डिवी पर सबसे अधिक प्रभाव यह था कि डिवी कुछ विशेष दार्शनिक विचारों के अनुयायी हो गये और कुछ के विरोधी ।"[1]

1- मार्टिन जी0 व्हाइट : द ओरीजिन ऑव डिवीज इन्सट्रूमेन्टलिज्म, पृष्ठ-2

मॉरिस ही वह यंत्र थे जिन्होंने जॉन डिवी को हीगेल के आदर्शवाद की ओर उन्मुख किया । व्हाइट के अनुसार:-

"डिवी एक आदर्शवादी नहीं है । वे आदर्शवादी तब बनते है जब आधुनिक जीव विज्ञान, मनो विज्ञान व सामाजिक विज्ञान के परिणामों को अपने लेखों में समाविष्ट कर लेते हैं ।"[1]

यद्यपि जॉन डिवी ने अपनी चिन्तन प्रक्रिया में पर्याप्त परिवर्तन कर लिया था किन्तु हीगेल के आदर्शवाद का जो निदेश उन्हें मिल चुका था, उस प्रभाव से वे कभी मुक्त न हो सके । पॉल के0 कानकिन के अनुसार :-

"वे (जॉन डिवी) हमारे सबसे अच्छे रीति रिवाजों के न केवल आलोचक वरन् उनका बचाव करने वाले उत्साही व्यक्ति थे । डिवी सबसे ज्यादा धार्मिक प्रवृत्ति के थे, जो इस खोज मे लगे थे कि व्यक्ति मूल्यों की स्वीकृति आजादी व आशा को निरन्तर क्यों समर्थन देता है ।"[2]

जॉन डिवी समस्या की गहराई को समझने व उसे हल करने में सतत प्रयत्नशील रहे हैं । हीगेल के आदर्शवाद की ओर मॉरिस के अतिरिक्त अमेरिकी दार्शनिक पत्रिका "जनरल ऑव स्पेकुलेटिव फिलॉसफी" के प्रमुख सम्पादक डॉ0 डब्ल्यु0 टी0 हेरिस ने भी जॉन डिवी को प्रेरणा दी तथा अपने विचारों से उन्हें

1-मार्टिन जी0व्हाइट : द ओरीजिन ऑव डिवीज इन्सटूमेन्टलिज्म पृष्ठ-12 ।

2- पॉल के0 कानकिन : प्युरीटेन्स एण्ड प्रैग्मेटिस्ट पृष्ठ-402, लायल बुक डिपो लुधियाना इण्डियन एडीसन, 1970 ।

प्रभावित किया था, क्योंकि डॉ0 हेरिस स्वयं हीगेल के प्रशंसक एवं अनुयायी थे । मॉरिस के प्रभाव के सम्बन्ध में डिवी की उक्ति है :-

"--------- मैं विश्वस्त रूप से प्रसन्न हूँ कि उनके अध्यापन का प्रभाव मेरे लिये अपरिवर्तनीय प्रभाव के रूप में बना रहा ।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् 1884 से 1890 तक जॉन डिवी का जीवन मॉरिस तथा अन्य आदर्शवादियों के विचारों से प्रभावित रहा है । सन् 1884 में जॉन डिवी के दो लेख "कॉन्ट एण्ड फिलास्फिक मेथड" तथा "न्यू साइकलॉजी" प्रकाशित हुये थे । प्रथम में हीगेल के आदर्शवाद एवं मनोविज्ञान को पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में नवीनतम मनोवैज्ञानिक विचारों को प्रकट किया गया है । "व्हाइट" के अनुसार 1890 तक डिवी साधनवादी नहीं बन पाये थे । उनका कथन है कि :-

"सिद्धान्तों की जाँच यह निश्चय करने के लिए की जाती है कि वे व्यवहार में कार्यशील है या नहीं, और यह भी देखने के लिये कि ये विचार रचना के तरीको के अनुकूल है या नहीं । इस प्रकार के कथनों की प्राप्ति के बाद भी यह नहीं कहा जा सकता कि डिवी 1890 में एक साधनवादी थे ।"[2]

1- फ्राम एब्सल्युटिज्म टू एक्सपेरीमेन्टलिज्मएडीटेड वाई बरन्सटेन आर0जे0 ॥ लिबरल आर्ट प्रेस, न्यूयार्क, 1960 ॥

2- मॉर्टन जी0 व्हाइट "द ओरिजन ऑव डिवीज इन्स्ट्रूमेन्टलिज्म पृष्ठ-69 ।

इस प्रकार उस निश्चित क्षण को बताना कठिन होगा जबकि डिवी आदर्शवादी विचारधारा का परित्याग कर वर्तमान स्थिति में पहुँचे । क्योंकि सन् 1894 तक जॉन डिवी हिगेलियन साधन वादी थे, क्योंकि वे खुले आम हीगेल के तार्किक सिद्धान्त की प्रशंसा करते थे और उनके प्रबल समर्थक बने रहे । इसीलिए सन् 1894 में उन्होंने अपने दर्शन को प्रयोगात्मक आदर्शवाद कहा था ।

सन् 1894 में जब डिवी ने " द स्टडी आॅव इथिक्स नाम पुस्तक प्रकाशित की तो उसमें "ग्रीन" के थोथे सार्वभौमिक स्व" और व्यक्तिनिष्ठ आध्यात्मवाद को तिलान्जलि दे दी है । अपनी पुस्तक "सिलैब्स के प्रथम अध्याय में डिवी ने लिखा है कि :-

> "विज्ञान व कला के मध्य वर्तमान विरोध असहनीय है ---- विज्ञान हमें "जानना" नहीं सिखाता परन्तु जानना ही विज्ञान है, कला हमें करना नहीं सिखाती बल्कि करना ही कला है ।"[1]

मॉर्टिन जी0 व्हाइट लिखते हैं कि :-

> "अब से आगे प्राचीन आदर्शवादी विचार या तो त्याग दिये गये थे या बनाये रखे गये थे यदि बनाये रखे गये थे तो हीगेल के आदर्शवाद के रूप में नहीं बल्कि नये प्राकृतिक तर्कों पर आधारित करके संशोधित रूप में स्वीकार किये गये थे ।"[2]

1- जॉन डिवी: "सेलेब्स, प्रथम चेपटर

2- मॉर्टन व्हाइट : "ओरिजन आॅव डिवीज अन्स्ट्रूमेन्टलिज्म पृष्ठ-148 (कोलम्बिया यूनीवर्सिटी प्रेस, 1943)

इस प्रकार अपने बौद्धिक विचार धारा को इस परिवर्तन बिन्दु पर भी जॉन डिवी अपना सम्बन्ध भूतकाल की विचारधारा से बनाये हुये थे । सन् 1894 में अपने दर्शन को "आदर्शवाद" ही कहा था किन्तु उनका यह आदर्शवाद एक विशेष प्रकार का आदर्शवाद था । डिवी इस स्थिति में नहीं थे कि कोई वैकल्पिक चुनाव कर सके। क्योंकि उनका आदर्शवाद प्रयोगवाद की ओर बढ़ रहा था । कुछ के मतानुसार डिवी अपने युवावस्था के आदर्श"ग्रीन" के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए "आदर्शवाद" शब्द को बनाये रखे । कुछ भी हो डिवी आदर्शवादी विचार से प्रभावित तो थे ही । इस प्रकार सन् 1903 तक डिवी नीति शास्त्र, मनोविज्ञान, और तर्कशास्त्र में भूतपूर्व आदर्शवादी ‖एक्स आयडियालिस्ट‖ थे । आदर्शवादी दर्शन से डिवी का प्रायः यह अन्तिम सम्पर्क था । सन् 1900 तक डिवी जिस आदर्शवादी निर्बल सूत्र से मॉरिस, ग्रीन, केयर्ड से बंधे हुये थे; दस साल के कठिन प्रयास के पश्चात उन आदर्शवादी गाँठो को काटने में समर्थ हुये । हमने देखा है कि जॉन डिवी का दार्शनिक जीवन आदर्शवाद में विश्वास करने वालों की भाँति ही प्रारम्भ हुआ था । हीगेल के प्रभाव के सम्बन्ध में डिवी ने कहा है कि :-

> "मैं कभी यह सोच भी नहीं सकता कि मैं इस तथ्य को इन्कार करूँ कि हीगेल के ज्ञान ने मेरे विचारों पर स्थायी प्रभाव छोड़ा ।"[1]

1- जी0पी0 एडमंस एण्ड डब्ल्यू0पी0मांटैग ‖इडिशंस‖ "कन्टेम्पोरेरी अमेरिकन फिलॉसफी, न्यूयार्क, मैक मिलन, 1930, पृष्ठ-21 ।

डिवी ने पुनः कहा है कि :-

"यदि मेरे लिए यह सम्भव हो कि मैं किसी पद्धति का पुजारी रह सकूँ तो मैं यह विश्वास करता हूँ कि "हीगेल" के अन्दर अन्य किसी एक नियमित दार्शनिक की अपेक्षा अधिक अन्तर्दृष्टि की सम्पन्नता और विभिन्नता पाई जाती है। यद्यपि कि जब मैं यह कहता हूँ तो यह कथन "प्लेटो" पर लागू नहीं होता है, क्योंकि वह आज भी मेरा प्रिय दार्शनिक है।"[1]

जॉन डिवी इस तथ्य से पूर्णतः भिज्ञ थे कि मानव निश्चित रूप से अतीत का कर्जदार है। जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार करते हुये लिखा है कि :-

"सभ्यता की अधिकांश वस्तुयें हमारी स्वयं की नहीं है जिनका हम अधिक मूल्य लगाते हैं। वे मानव जाति के निरन्तर कष्ट प्रद कर्म के प्रतिफल के रूप में अस्तित्व में आई हैं जिससे हमारा सम्बन्ध जुड़ा है। हमारा उत्तरदायित्व है कि जिन्हें हम हस्तगत किये हैं उन्हें सुरक्षित रखें, हस्तानान्तरित करें, सुधारें और वंशानुगत विशेषताओं को विकसित करें और हमारे बाद जो इस विश्व में आये हैं उन्हें प्रदान करें ताकि वे ठोस, सुरक्षित रूप में उनकी पहुँच में रहें और हमारी अपेक्षा अच्छे रूप में भाग ले सकें।"[2]

1- जॉन डिवी : ऑन एक्सपीरियन्स नेचर एण्ड फ्रीडम पृष्ठ-12 सेलेक्शन इडिशन बरन्सटेन आर०जे०लिबरल आर्टस प्रेस, 1960।

2- जॉन डिवी : ए कॉमन फेथ पृष्ठ-87 ।येल यूनिवर्सिटी प्रेस पेपर बाउडड 1960 ।

हमने यह भी देखा है कि अमेरिका में आदर्शवाद का आगमन जर्मन के प्रभाव से हुआ था । जॉन डिवी प्लेटो के प्रारम्भिक वाद-विवाद के महान प्रशंसक थे, साथ ही रूसो, पेस्टालाजी, फ्रोबेल जैसे शिक्षा शास्त्रियों की कृतियों एवं विचारों से भिज्ञ थे । जॉन डिवी के शिक्षा के विभिन्न पहलू इन शिक्षा शास्त्रियों की विचार धारा से साम्य रखते हैं परन्तु जॉन डिवी व इनके विचारों में कुछ यथार्थ अन्तर भी पाया जाता है ।

<u>जॉन डिवी तथा पेस्टालॉजी</u> :-

पेस्टालॉजी बनावटी सभ्यता का विरोध परन्तु उदार, न्यायप्रिय, जनतांत्रिक समाज का समर्थन करते हैं । मानव की प्रकृति में यथार्थ वाद एवं मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि को शामिल करने में इनका महान योगदान रहा है । बालक की समस्त शक्तियों का स्वाभाविक समन्वय एवं प्रगतिशील विकास करना ही शिक्षा का कार्य मानते थे । पेस्टालॉजी की भाँति जॉन डिवी भी शिक्षा का मनोवैज्ञानीकरण करते हैं, किन्तु इनकी मौलिक विधि पेस्टालॉजी से भिन्न है । जॉन डिवी उस विकास वादी सिद्धान्त से प्रभावित है इसलिए उन्होंने सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारकों में अनुरूपता खोजी थी । जॉन डिवी पेस्टालॉजी के अध्यात्मिक विचारों से सहमत नहीं है और न तो किसी अलौकिक आध्यात्मिक आदेशों अथवा विचारों में विश्वास करते हैं । जॉन डिवी ने पेस्टालॉजी के शैक्षिक सिद्धान्त व वैज्ञानिक आधार में अनेक त्रुटियों को देखा था । विभिन्न

मानसिक शक्तियों के समनरूप विकास के विचार से जो शक्ति मनोविज्ञान पर आधारित थी उससे जॉन डिवी सहमत नहीं थे । परन्तु अनेक विचारों से वे पूर्ण सहमति रखते हैं।पेस्टालॉजी की भाँति डिवी भी स्वतंत्रता, समानता, प्रेम के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं किन्तु पूर्ण नैतिक रूप में नहीं वरन मूल्यों के रूप में जो शिक्षा को सामाजिक सुधार हेतु प्रभावशाली यंत्र के रूप में बनाने के लिए साधन है ।

पेस्टालॉजी की भाँति जॉन डिवी ने भी विद्यालय, गृह व समाज के मध्य की दूरी समाप्त करने का प्रयास किया है। बालकों की शिक्षा के लिए विद्यालय और समाज, विद्यालय व गृह के मध्य के अन्तर को समाप्त किया है ।

जॉन डिवी फ्रोबेल :-

फ्रोबेल एक रहस्यवादी दार्शनिक थे । इन्होंने जर्मन के आदर्शवाद या आध्यात्मवाद को शिक्षा क्षेत्र में प्रवेश कराया था । उनका विश्वास ईश्वरीय एकता के आन्तरिक नियम की अवधारणा पर आधारित था । जो प्रत्येक वस्तु में निहित है ।

इन्होंने आत्म क्रियाशीलन द्वारा आत्मानुभूति के मौलिक सिद्धान्त से शिक्षा के उद्देश्यों का सम्बन्ध स्थापित किया था । वे ईश्वरानुभूति पर बल देते हैं, क्योंकि फ्रोबेल ने एकत्व के ज्ञान, प्रकृति की एकता और शारीरिक विकास के नियमों पर बल दिया है । फ्रोबेल के अनुसार पाठ्यक्रम का आधार बाल प्रकृति की क्रियाशीलनों को उद्घाटित करना है । इसीलिये

उन्होंने क्रियाशीलनों व आत्म क्रियाशीलनों को उद्घाटित करने के लिये शैक्षिक मूल्यों को सम्बन्धित किया था । बालक का विकास बालक के अन्दर निहित क्षमताओं के विकास में ही है । बालक की शिक्षा में "खेल" को फ्रोबेल ने बहुत महत्त्व दिया है ।

जॉन डिवी फ्रोबेल के विकास की अवधारणा को समस्त शिक्षा का कोणीय पत्थर माना है किन्तु जॉन डिवी के विकास की अवधारणा फ्रोबेल की विकास की विचारधारा से भिन्न है । जॉन डिवी ने इनके रहस्यवाद और प्रतीक के सिद्धान्त को अस्वीकार किया है । फ्रोबेल की शिक्षा की निश्चित उद्देश्य की विचारधारा से जॉन डिवी असहमत है, क्योंकि इनके अनुसार यह वास्तविक अनुभव से परे है । जॉन डिवी के लिए शिक्षा एक सतत प्रक्रिया है जिसका लक्ष्य सुदूरवर्ती भविष्य में नहीं है । शिक्षा में खेल के महत्त्व को जॉन डिवी महत्त्व देते हैं किन्तु इस सम्बन्ध में उनकी यह चेतावनी भी है कि खेल के निर्धारण से पूर्व सामाजिक दशाओं को अवश्य ध्यान में रखा जाय । जॉन डिवी फ्रोबेल के प्रतीकों के प्रति प्रेम को तत्कालीन जर्मन में पाये जाने वाले राजनैतिक व सामाजिक दशाओं का कारण मानते थे । जॉन डिवी व फ्रोबेल क्रियात्मक क्रियाशीलन में विश्वास करते हैं, "कर के सीखने" पर बल देते हैं तथा विद्यालय को जीवित समुदाय मानते है ।

आदर्शवादियों की भाँति जॉन डिवी बुद्धि, मन, आत्मा, आदर्श, मूल्य, नैतिकता, सत्यं, शिवं सुन्दरम् तथा आत्मानुभूति व

संस्कृति कला आदि के सम्बन्ध में विचार करते हैं, किन्तु उपर्युक्त तथ्यों के प्रति जॉन डिवी की पहुँच आदर्शवादियों से भिन्न है । इसका कारण अमेरिकी दर्शन में भौतिकता की प्रमुखता है ।

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी मूलतः आदर्शवादी एवं धार्मिक प्रवृत्ति के होते हुये भी सामयिक परिस्थितियों की माँग के अनुरूप नवीन दार्शनिक विचारधारा का प्रतिपादन किये हैं । जॉन डिवी के दर्शन को हम प्रयोजनवाद, साधनवाद, प्रयोगवाद चाहे जिस नाम से पुकारें वह वर्तमान काल के वैज्ञानिक उपलब्धियों एवं औद्योगिक क्रान्ति का ही परिणाम है । महात्मा गांधी व जॉन डिवी के शैक्षिक विचारों की समता व विषमता की विस्तृत व्याख्या आगामी उपशीर्षकों में की गई है और यह खोजने का प्रयत्न किया गया है कि दोनों के विचारों में कहाँ समानता व विषमता है ।

प्रयोजनवाद :-

ऐसा कहा जाता है कि प्रयोजनवाद आदर्शवाद एवं प्रकृतिवाद के मिलन बिन्दु का मध्यवर्ती दर्शन है । प्रयोजनवाद दोनों वादों के भौतिक उपयोगी एवं आदर्श प्रवृत्तियों में से सर्वोत्तम तत्व को ग्रहण कर उनका पुनर्निर्माण करता है । इसलिए प्रयोजनवाद एक नये आदर्शवाद के मार्ग का एक पद है । महात्मा गांधी का शिक्षा दर्शन व्यवस्था में प्रकृतिवादी उद्देश्यों में आदर्शवादी और कार्य की योजना व विधि में प्रयोजनवादी है ।

आदर्शवादी शिक्षा शास्त्री अन्तिम सत्य व मानव

प्रकृति के सम्बन्ध में विचार करते हैं । प्रयोजनवादी इस विचार को मान्यता नहीं देते हैं, क्योंकि प्रयोजनवाद बहुतत्ववादी सापेक्ष वादी ऐहिक एवं प्रायोगिक है । प्रयोजनवाद एक दार्शनिक मनोवृत्ति ही नहीं वरन् एक दार्शनिक विचारधारा है जो विज्ञान, तर्क,अनुभव व विवेक पर आधारित है । मानव अनुभव ही प्रयोजनवाद का केन्द्र बिन्दु है । इसी अनुभव से वह सत्य की खोज करता है । उसका निर्माण करता है । प्रयोजनवाद उसे ही सत्य मानता है जिसका जीवन में महत्व,प्रयोग व उपयोग हो । पारकिन के अनुसार :-

> "प्रयोजनवाद एक मध्यस्थ एवं संयोजक है । ... जो हमारे सिद्धान्तों को सरल करता है । वास्तव में न तो उसके कोई पक्षपाती विचार हैं, न कोई अवरोधक धारणायें, न कोई स्थिर सिद्धान्त ---- वह कोई भी अनुमान स्वीकार कर सकता है और किसी को ले सकता है ----- वह रहस्यवादी अनुभवों को भी मान लेगा । यदि वे व्यवहारोपयोगी परिणाम वाले हों, वह उस ईश्वर को भी मानेगा जो व्यक्तिगत तथ्यों के धूल मे रहता है ।"[1]

प्रयोजनवाद के अभ्युत्थान सम्बन्धी आन्दोलन में जॉन डिवी का योगदान साधनवाद एवं प्रयोगवाद के रूप में मिलता है । जेम्स ने इसे धर्म व विज्ञान के समन्वय के साधन के रूप में माना है । जॉन डिवी जीव वैज्ञानिक प्रयोगवादी हैं उनके अनुसार शिक्षा का

1- विलियम जेम्स कोटेड बाई जोय पॉरकिन इन द फिलॉसफी ऑव एजूकेशन ।

उद्देश्य सामाजिक कुशलता का विकास करना है । महात्मा गांधी के प्रयोग "सामाजिक, राजनैतिक होने के साथ-साथ नैतिक व आध्यात्मिक प्रवृत्ति के भी हैं ।"[1]

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों प्रयोग में विश्वास करते हैं :-

महात्मा गांधी जी के शैक्षिक सिद्धान्त उनके द्वारा दक्षिणी अफ्रीका के टालस्टॉय फार्म व फोनिक्स बस्ती तथा भारत के साबरमती आश्रम व सेवाग्राम में किये गये शैक्षिक प्रयोगों की उपज है । दक्षिणी अफ्रीका के प्रयोगों से उन्हें यह अनुभव हुआ था कि :-

> "बालक बालिकाओं का सर्वतोमुखी विकास करना ही वास्तव में शिक्षा का मुख्य कार्य है ।"

गांधी जी ने इन स्थलों पर किये गये अपने शैक्षिक प्रयोग से यह ज्ञात कर लिया था कि विद्यार्थियों को उपयोगी नागरिक बनाने हेतु व स्वतंत्र पर्यावरण में स्वतंत्रता से उनकी क्षमताओं के विकास हेतु अवसर देना नितान्त आवश्यक है, तभी मानव की समस्त क्षमताओं का समाजोपयोगी आदर्शानुकूल विकास किया जा सकता है । इस हेतु यह भी आवश्यक है कि विद्यार्थियों के मस्तिष्क, हृदय एवं हाथ का एक साथ सामन्जस्य पूर्ण विकास किया जाय ।महात्मा गांधी ने सम्पूर्ण मानवीय क्षमता के विकास

1- गांधी जी: आत्म कथा, पृष्ठ-4 ।

हेतु एक नूतन विचार प्रस्तुत किया था वह था हस्तकला द्वारा शिक्षा देना । ऐसी विचारधारा को प्रस्तुत करने का उनका लक्ष्य मानव की तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना है । इनकी सन्तुष्टि के अभाव में उच्च आदर्श की प्राप्ति की कल्पना करना व्यर्थ है ।

महात्मा गांधी की भाँति जॉन डिवी का शैक्षिक सिद्धान्त प्रायोगिक प्रक्रिया द्वारा ही उपलब्ध हुआ था । अपने शैक्षिक विचारों के प्रयोग हेतु जॉन डिवी ने सन् 1896 में शिकागों विश्व विद्यालय में एक "प्रयोगात्मक स्कूल" स्थापित किया था । यहीं पर जॉन डिवी ने अपने शैक्षिक सिद्धान्तों की परीक्षा की थी और उसे क्रियान्वित भी किया था । इस विद्यालय की स्थापना का कारण बताते हुये विलियम बोयड ने लिखा है :-

> "जॉन डिवी ने इस स्कूल की स्थापना भावी स्कूल के स्वरूप को निर्धारित करने के लिये की थी । उनमें यह विश्वास उत्पन्न हो गया था कि सामान्य विद्यालय औद्योगिक क्रान्ति द्वारा किये गये सामाजिक परिवर्तन के अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था करने में असमर्थ थे ।"[1]

जॉन डिवी ने इस विद्यालय में अपने शिक्षा सिद्धान्तों का भलीभाँति प्रयोग तथा परीक्षण किया था । जॉन डिवी के शिक्षा सिद्धान्त के सम्बन्ध में यूलिच ने लिखा है :-

---

1- बोयड विलियम, द हिस्ट्री ऑव वेस्टर्न एजूकेशन, पृष्ठ-398-399 ।

"डिवी ने शिक्षा को मुख्यतः सामाजिक प्रक्रिया माना है -------- जिसका समाज के सम्पूर्ण स्वरूप एवं समस्त कार्यों से अटूट सम्बन्ध है ।"[1]

जॉन डिवी के प्रयोगात्मक विद्यालय में 4 से 14 वर्ष की आयु के विद्यार्थी 8 से 10 की टोली में रखे जाते थे, प्रशिक्षित अध्यापक पढ़ाते थे, शिक्षक विद्यार्थियों के कल्याण के लिए प्रयास रत होकर अध्यापन हेतु स्वाभाविक एवं नूतन विधियों का अन्वेषण करते थे ।

महात्मा गांधी जी के टालस्टॉय फार्म में लड़के व लड़कियों दोनों के लिए शिक्षा की व्यवस्था थी । जहाँ समस्त जाति के वृद्ध, युवक, स्त्रियाँ, बच्चे, और कुमारियाँ अध्ययन करती थीं । युवकों की संख्या-40, वृद्धकी संख्या-2 या 3, स्त्रियाँ 5 बच्चे 25-30 की संख्या में थे । इन बच्चों की आयु 4 वर्ष से 14 वर्ष के मध्य ही थी । इस प्रकार दोनों शिक्षा शास्त्रियों ने समान वय के छात्रों पर अपने प्रयोग किये थे । इन प्रयोगों से महात्मा गांधी इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि माता-पिता शिक्षा के प्रमुख साधन हैं । परिवार की भूमिका बालक की शिक्षा में महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि टालस्टॉय फार्म स्वयं एक परिवार था । गांधी जी स्वयं पिता के स्थान पर अवस्थित थे ।

1- यूलिच राबर्ट : हिस्ट्री ऑव एजूकेशन थॉट, हरवार्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ-378 ।

शारीरिक शिक्षा, हृदय की शिक्षा, चरित्र निर्माण, उद्योग की शिक्षा का पारम्परिक शिक्षा व्यवस्था में स्थान न था। इन तथ्यों से वे स्वानुभव व प्रयोग से ही भिज्ञ हुये थे। महात्मा गांधी सत्य की अनुभूति के लिए प्रयोग को बहुत महत्व देते हैं। इसीलिए महात्मा गांधी ने अपनी आत्म कथा को "मेरे सत्य के प्रयोग" का नाम दिया है। महात्मा गांधी के जीवन में यदि कुछ था तो केवल प्रयोग। अपने प्रयोगों के सम्बन्ध में उन्होंने किसी पूर्णता को साधिकार स्वीकार नहीं किया है। गांधी जी के अनुसार :-

> "अपने प्रयोगों के सम्बन्ध में मैं किसी तरह की सम्पूर्णता का दावा नहीं करता। जैसे विज्ञान शास्त्री अपने प्रयोग, नियम, विचार सहित व सूक्ष्मता पूर्वक करता है फिर भी उससे उत्पन्न हुये परिणामों को वह अन्तिम नहीं मानता है। अथवा यह नहीं कहता है कि यही अन्तिम सत्य परिणाम है। इस सम्बन्ध में वह सशंक नहीं तटस्थ रहता है वैसा ही अपने प्रयोगों के विषय में मेरा मानना है।"[1]

महात्मा गांधी की शिक्षा के क्षेत्र में समस्त देन, उनकी स्वानुभूति का परिणाम थी। परीक्षण व खोज ये दो तत्व ऐसे थे जिनमें उनका पूर्ण विश्वास था। उन्होंने अपनी समस्त खोजों, परीक्षणों, स्वानुभूतियोंको विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रयोगों से उपलब्ध किया था। महात्मा गांधी की विचारधारा पर राम-चन्द भाई, टालस्टाय तथा रस्किन की विचारधाराओं का प्रभाव

1-गान्धी जी : आत्म कथा, पृष्ठ-5,6 सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली अनुवादक महावीर प्रसाद पोद्दार, दसम संसकरण, 1951।

पढ़ा था । रस्किन की पुस्तक "अन्टू दिस लास्ट" ने जिसका भाषान्तर महात्मा गांधी ने "सर्वोदय" के नाम से किया है, इनके विचारों को बहुत प्रभावित किया था । इस पुस्तक के प्रभाव के सम्बन्ध में गांधी जी का कथन है :-

> "इन पुस्तकों में से जिसने मेरे जीवन में तत्काल महत्व का रचनात्मक परिवर्तन कर दिया हो, वैसी तो यही पुस्तक कही जायेगी ...... उसने विचारों पर अमल कराया ।"[1]

इस पुस्तक से इन्होंने निम्नलिखित शिक्षा सम्बन्धी विचार ग्रहण किया था :-

1- चरित्र की शिक्षा महत्वपूर्ण है ।

2- बौद्धिक शिक्षा के साथ श्रम शिक्षा आवश्यक है ।

3- शिक्षा में परिवार एक महत्वपूर्ण कारक एवं साधन है ।

4- सादगी व सेवा भाव शिक्षा का प्रमुख अंग होना चाहिये ।

उपर्युक्त विचारों को इन्होंने जोहांसवर्ग में प्रयोग किया था । रायचन्द्र भाई से इन्होंने व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त की थी । डरबन, टालस्टॉय फार्म, फोनिक्स जोहांसवर्ग, साबरमती तथा सेवाग्राम आदि स्थानों पर किये गये प्रयोगों ने बुनियादी शिक्षा सिद्धान्त की नींव रखी थी । अनुभव जन्य शिक्षा सम्बन्धी विचारों का संग्रह महात्मा गांधी ने "हिन्द स्वराज्य" नामक

1- गांधी जी :आत्म कथा, पृष्ठ-375, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली 1951 ।

पुस्तक में किया है । ये प्रयोग ही उनकी बुनियादी शिक्षा के आधार थे । महात्मा गांधी ने अपनी शिक्षा योजना देश की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर तथा पारम्परिक शिक्षा व्यवस्था को बदलती हुई परिस्थितियों के प्रतिकूल समझकर प्रतिपादित की थी । गांधी जी शिक्षा के क्षेत्र में सिद्धान्त व प्रयोग के प्रारम्भिक बिन्दु थे । इन्होंने अपने प्रयोग सम्बन्धी शैक्षिक विचार "शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति", "मेरे प्रयोग", "आत्म कथा", "सच्ची शिक्षा", तथा इण्डिया माई ड्रीम" ग्रन्थों में प्रकट किया है । इस प्रकार हम देखते हैं कि इनका सम्पूर्ण जीवन प्रयोगमय ही था ।

जॉन डिवी के मूलभूत विचारों का प्रादुर्भाव शिकागो विश्व विद्यालय में ही हुआ था । धीरे-धीरे इन्हें यह अनुभव हुआ था कि केवल सैद्धान्तिक विचारों से किसी भी समस्या का हल नहीं निकाला जा सकता । इसलिए उन्होंने निरन्तर प्रयोग की आवश्यकता का अनुभव किया था और विचारों का परीक्षण प्रयोगात्मक ढंग से करने पर बल दिया । वर्तमान शिक्षा पद्धति की त्रुटियों से वे खिन्न थे, क्योंकि वह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित नहीं थी । अतः वे दर्शन की सर्वाधिक उपयोगिता व महत्व सामाजिक समस्याओं के हल के लिए ही मानते थे । इसी-लिये सामाजिक प्रयोग व परीक्षण के महत्व ने डिवी के मन में एक प्रयोगात्मक स्कूल खोलने की प्रेरणा दी थी । हमने गत पृष्ठों में उल्लेख किया है कि इन्होंने शिकागो विश्व विद्यालय में प्रयोगात्मक

स्कूल खोला था । यह प्रथमतः "प्रारम्भिक विद्यालय" था जो वहाँ के अभिभावकों के सहयोग से खोला गया था, बाद में यही लेब्रोटरी स्कूल" या डिवी के स्कूल" के नाम से विख्यात हुआ था ।

जॉन डिवी के 6 बच्चे थे इन्हीं के साथ खेलकर इन्होंने दर्शन व शिक्षा की समस्याओं को हल करने का प्रयास किया था । जॉन डिवी की भाँति महात्मा गांधी ने अपने बच्चों के साथ शिक्षा की समस्याओं के समाधान हेतु प्रयोग किया था । महात्मा गांधी के अनुसार :-

> "शिक्षा ही एक मात्र वह मूल्यवान वस्तु है जो विद्यार्थियों की क्षमताओं को इस प्रकार विकसित कर सकती है ताकि वे अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली जीवन समस्याओं को ठीक ठीक समाधान करने में समर्थ हो सकें ।"[1]

डिवी के प्रयोगात्मक विद्यालय के सम्बन्ध में जे0एम0डिवी ने लिखा है कि :-

> "इस विद्यालय का शिक्षण विभाग से वही सम्बन्ध है जो प्रयोगशालाओं का भौतिक विज्ञान के शिक्षण में है ।"

जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी दोनों दार्शनिकों के विचारों को निश्चित करने में इनके द्वारा पढ़ी हुई पुस्तकों की अपेक्षा इनके निजी सम्पर्कों एवं प्रयोगों का प्रभाव रहा है । दोनों

1- महात्मा गांधी : हरिजन ‖साप्ताहिक‖ 23-5-36 नवजीवन प्रेस अहमदाबाद ।

शिक्षा शास्त्रियों के प्रायोगीय विद्यालयों ने न केवल शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया, वरन् दार्शनिक सिद्धान्तों पर पूर्णतः विश्वास एवं निश्चितता प्रदान की । दर्शन व शिक्षा एक में समाहित हो गये और अध्ययन का विषय मनुष्य एवं पर्यावरण हो गया । दोनों दार्शनिकों की कुल उपलब्धि समस्या की गहराई को समझने व उसके हल करने के प्रयास में ही थी ।

प्रयोगात्मक विद्यालय के शिक्षक के सम्बन्ध में डिवी का मन्तव्य था :-

"शिक्षक एक उत्सुकता के साथ कार्य करता था, शिक्षक किसी पहले से निश्चित नियम या सिद्धान्त के अनुसरण के लिए कायल नहीं था । इनके समक्ष चार समस्यायें रहती थीं :-

1- स्कूल एवं समाज की निकटता कैसे पैदा की जाय, विद्यालय की व्यवस्था कैसे चलाई जाय कि विद्यार्थी यह अनुभव कर सके कि वह विद्यालय में पढ़ने के लिए आता है । विद्यालयीय कार्यों एवं विद्यार्थियों के जीवन के मध्य सम्बन्ध कैसे स्थापित किया जाय ।

2- पाठ्य सामग्री एवं विद्यार्थी के जीवन के मध्य सम्बन्ध कैसे स्थापित किया जाय ?

3- पढ़ने लिखने, अंकगणित ।तीन आर। की योग्यता की वृद्धि के लिए अनुभव तथा अनुभव जन्य ज्ञान के मध्य सम्बन्ध कैसे स्थापित किया जाय ?

4- व्यक्तिगत ध्यान हेतु शिक्षण कैसे किया जाय ?"[1]

1- जॉन डिवी : द स्कूल एण्ड सोसाइटी" थर्ड एडीशन, पृष्ठ-116-119 शिकागो यूनिवर्सिटी, 1900 ।

इस प्रकार जॉन डिवी सभी समस्याओं का हल खोजने में जीवन पर्यन्त लगे रहे, शिक्षण सिद्धान्तों का परीक्षण करते रहे और उपयोगी क्रियाओं द्वारा पढ़ाने पर बल देते रहे है। जॉन डिवी का विद्यालय के सम्बन्ध में यह विचार था कि:-

> "क्रियाशीलता बनाये रखने से स्कूल हमेशा नये विचारों से अनुप्राणित रहता है। विद्यालय का जीवन से सीधा सम्बन्ध बना रहता है और विद्यालय समाज का लघु रूप बन जाता है।"

उपर्युक्त विवरण से हमें यह ज्ञात होता है कि महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों का दर्शन पूर्व काल की अपेक्षा उत्तर काल का है। अन्य दार्शनिकों के विरुद्ध इन दोनों का दर्शन व्यक्ति निष्ठ की अपेक्षा वस्तु निष्ठ है। इनके दृष्टिकोण व लक्ष्य वैज्ञानिक हैं। शिक्षा दर्शन के प्रदत्त वैज्ञानिक तथ्य हैं जिन्हें व्यवहार व परीक्षण में लाया जा सकता है। इनके दर्शन विचारात्मक की अपेक्षा प्रयोगात्मक हैं। दोनों दार्शनिकों ने कुछ निश्चित तथ्यों का निरीक्षण, वर्गीकरण एवं परीक्षण किया था, इसके पश्चात निर्णय कर एक निष्कर्ष पर पहुँचे थे जिसका आधार व्यक्तिगत भावना न थी बल्कि जिसमें वस्तु निष्ठता की पर्याप्त मात्रा पाई जाती है। दोनों प्रयोग वादी दार्शनिक थे किन्तु दोनों के निष्कर्षों में उनके देश की सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितियों के कारण कुछ विभिन्नता दृष्टिगत होती है जिसे हम अगले उपशीर्षकों में अध्ययन करेगें।

प्राय: हम जानते हैं कि प्रयोग सिद्धान्त से सहायता लेता है और प्रयोग स्वतंत्र नहीं चलाया जा सकता है किन्तु यह भी सत्य है :-

> "एक सुन्दर सिद्धान्त को एक अच्छे प्रयोग की सहायता देने के लिए कभी नहीं प्राप्त कर सकोगें। इस क्रम को उलट दो और उलटे सिद्धान्त का अनुशरण करो तो तुम एक उत्तम प्रयोग प्राप्त कर लोगे।"

जॉन एडम्स की शिक्षाओं में भी ऐसे ही विचारों की ध्वनि सुनाई पड़ती है। जब वे कहते हैं :-

> "यद्यपि सिद्धान्त प्रयोग से भिन्न समझा जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रयोग सिद्धान्त से अलग सुरक्षित रूप में नहीं चलाया जा सकता है।"[1]

अत: जहाँ कहीं भी प्रयोग होगा वहाँ सिद्धान्त निहित रहता है। जब इसका प्रक्रिया में प्रतिबिम्बन होता है तब यह स्वयं स्पष्ट हो जाता है। प्रयोग सिद्धान्त में सुधार करता है तथा सिद्धान्त प्रयोग को आगे बढ़ाता है। इस प्रकार सिद्धान्त अनुभव का आलोचनात्मक परीक्षण है जिसकी उपलब्धि प्रयोग से होती है। अत:"प्रयोग विचारात्मक प्रकिया है और सिद्धान्त प्रगतिशील प्रक्रिया है।"[2]

1- जॉन एडमस : द इवोल्यूशन ऑफ एजूकेशनल थ्योरी, पृष्ठ-3 ।

3- - तदैव - पृष्ठ-6 ।

महात्मा गांधी का शिक्षा सिद्धान्त व प्रयोग उपर्युक्त "पद" के विकासात्मक प्रक्रिया का अनुसरण करता है इसीलिए परम्परागत रीति से बच्चों को शिक्षित करने की प्रक्रिया का दोनों दार्शनिक विरोध करते हैं । इसीलिए दोनों शिक्षा शास्त्रियों ने अपने बच्चों को अपने प्रायोगिक विद्यालयों में पढ़ाने की व्यवस्था की थी न कि प्रचलित शिक्षालयों में । इन्हीं प्रयोगों-प्रयासो एवं अनुभवों की उत्पत्ति है इनका शिक्षा दर्शन ।

"सत्य" के प्रति महात्मा गांधी व जॉन डिवी के विचार :-

हमने पंचम अध्याय में देखा कि महात्मा गांधी पूर्ण सत्य में विश्वास करते हैं । किन्तु उनकी इच्छा किसी नये धर्म अथवा नये सत्य के प्रतिपादन करने की नहीं है । उनके जीवन का लक्ष्य यह था कि "सत" को वह जैसा जानते व अनुभव किये थे वैसा ही पालन करते थे और समस्त मानव के समक्ष वैसा ही प्रस्तुत करना चाहते थे । वे पुराने "सत" पर नया प्रकाश डालना चाहते थे इस प्रकार वे सत्य के शोधक एवं साधक थे ।

महात्मा गांधी जी सत्य,अहिंसा व प्रेम के पुजारी थे । वे ईश्वर व सत्य में भेद नहीं मानते थे । समस्त मानव समुदाय उसी सत्य की चिनगारी है । उनका ईश्वर, सत्य व प्रेम पूर्ण है । जीव सेवा ईश्वर सेवा है । उनकी धारणा थी कि मानव को अपने व्यक्तिगत "स्व" को सम्पूर्ण मानव के "स्व" में विलीन करके आत्म लाभ प्राप्त करना चाहिये । सत्य की

व्याख्या करते हुये महात्मा गाँधी ने कहा है :-

"सत्य" शब्द "सत" से बना है । सत का अर्थ है अस्तित्, सत्य अर्थात अस्तित्व । --- परमेश्वर का सच्चा नाम ही सत है अर्थात सत्य । इसलिए परमेश्वर सत्य है । जहाँ सत्य नहीं वहाँ शुद्ध ज्ञान [चित्] की सम्भावना नहीं है । -- सत्य के शाश्वत होने के कारण आनन्द भी शाश्वत् है इसीलिए ईश्वर को "सच्चिदानन्द" कहा जाता है ।"[1]

उन्होंने आगे पुनः कहा है :-

"------ लेकिन हमने विशाल अर्थ में सत्य का प्रयोग किया है । विचार में, वाणी में, और आचार में सत्य का होना ही सत्य है ।"[1]

इस प्रकार महात्मा गाँधी जी अद्वैतवादी हैं । और पूर्ण सत्य के पक्षधर हैं किन्तु सत्य की अनुभूति के लिए प्रयोग आवश्यक मानते हैं । गाँधीजी के अनुसार :-

"अपने प्रयोगों के सम्बन्ध में मैं किसी भी प्रकार की सम्पूर्णता का दावा नहीं करता हूँ । ---- उनसे [प्रयोग] उत्पन्न हुये परिणाम सबके लिए अन्तिम नहीं है अथवा यही सही है, ऐसा दावा मैं कभी नहीं करना चाहता, हाँ एक दावा जरूर करता हूँ कि मेरी नजर में यही सही है और इस समय तो आखिरी से लगते हैं । यदि ऐसा न लगे तो मुझे उसकी बुनियाद पर कोई इमारत नहीं खडी करनी चाहिये मैं तो हर पद पर वस्तुओं के ------ त्याज्य व

1- बापू की सीख : पृष्ठ-30 सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली 1952

ग्राहय दो हिस्से कर लेता हूँ और ग्राहय के अनुसार अपना आचरण बनाता हूँ । इस प्रकार ---- जो मेरी बुद्धि को आत्मा को----- संतोष दे तब तक उसके शुभ परिणामों के विषय में अटूट विश्वास रखना ही चाहिये ।"[1]

इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रयोगवादी प्रयोजनवाद की भाँति महात्मा गांधी जी इस तथ्य में विश्वास करते हैं कि जो कुछ प्रयोग की कसौटी पर खरा उतरे वह सत्य है ।

प्रयोगीय सत्य के सम्बन्धमें गांधी जी किसी भी प्रकार की पूर्णता का दावा नहीं करते हैं । कसौटी पर प्रयोग के योग्य सत्य महात्मा गांधी जी के लिए सापेक्षिक सत्य है । इस प्रकार ये दो प्रकार के सत्य में विश्वास करते हैं । प्रथम सापेक्षिक सत्य जिसे प्रयोग की कसौटी पर कसा जा सकता है, तथा दूसरा पूर्ण सत्य, शाश्वत सिद्धान्त अर्थात ईश्वर ।

महात्मा गांधी जी पुन: कहते हैं कि :-

"मैं तो पुजारी सत्य रूपी परमेश्वर का हूँ वही सत्य है और सब मिथ्या है । वह सत्य मिला नहीं है पर मैं उसका शोधक हूँ ----- पर इस सत्य का साक्षात्कार कर लेने तक मेरी आत्मा जिसे सत्य समझती है उस काल्पनिक अथवा सापेक्षिक सत्य को अपना आधार मानकर अपना दीपक समझकर उसके आश्रम में अपना जीवन बिताता हूँ ।"[2]

1- आत्म कथा , पृष्ठ-5-6, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली-195।

2- आत्म कथा, पृष्ठ-6 सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली-195। ।

इस प्रकार महात्मा गांधी का सापेक्षिक सत्य देश, काल व परिस्थिति के अनुसार परिवर्तनशील है । इनका सापेक्षिक सत्य प्रयोजनवादी विचारधारा के अनुकूल ही है ।

जॉन डिवी एवं महात्मा गांधी में सत्य के सम्बन्ध में यह अन्तर है कि गांधी जी सापेक्षिक सत्य को काल्पनिक, अस्थायी परिवर्तित मानते हैं किन्तु मूल सत्य अपरिवर्तनीय है । जॉन डिवी किसी दैवी सत्य या पूर्व निर्धारित सत्य में विश्वास नहीं करते हैं । जॉन डिवी का सत्य गांधी जी के सापेक्षिक सत्य की भाँति परिवर्तनशील है और वह परिस्थिति व समय व स्थान के संदर्भ में ही सत्य है ।

जॉन डिवी ने अपने प्रयोगों के आधार के लिए मानव बुद्धि को आवश्यक समझा है । प्रयोगात्मक विधि के बल पर इन्होंने विश्वासों, मान्यताओं, परम्पराओं और सिद्धान्तों की परीक्षा की थी । जॉन डिवी सत्य को सनातन चिरस्थायी नहीं मानते है । एक स्थान, समय व परिस्थिति में जो सत्य है वह दूसरे स्थान, समय व परिस्थिति में सत्य नहीं हो सकता । महात्मा गांधी भी जब यह कहते हैं कि ग्राहय के आधार पर मैं अपना आचरण बनाता हूँ तो इसका तात्पर्य यही है कि तत्कालीन परिस्थिति व स्थान के अनुसार ही वह उनके लिये ग्राहय है और जब तक संतोषजनक परिणाम उपलब्ध हो रहा है तब तक तो वह सत्य है ही । विलियम जेम्स भी इसी भाव को व्यक्त करते हुये कहते है कि :-

"आज हमें जो सत्य दीख रहा है उसी के बल पर आज जीना है और कल उसे ही असत्य कहने के लिए तैयार रहना चाहिये।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गांधी जॉन डिवी के "सत्य" सम्बन्धी विचारों से अंशतः सहमत हैं, किन्तु जब वे पूर्ण सत्य, मोक्ष आदि की बात करते हैं तब वे प्रयोजनवादी नहीं प्रतीत होते हैं। स्मरणीय तथ्य तो यह है कि मूल्यों के अनुभव करने के प्रयत्न में और उसके मानने के दृष्टिकोण में ही प्रयोजनवाद व आदर्शवाद के मध्य अन्तर विद्यमान है। प्रयोजनवाद गतिशील आदर्शवाद की सीमा के अन्तर्गत ही है।

<u>मूल्यों के प्रति विचार</u> :-

महात्मा गांधी सत्यं शिवं और सुन्दरम् जैसे मूल्यों के अनुयायी है, वे मूलतः प्रकृतिवादी एवं आदर्शवादी है, किन्तु कार्य विधि में प्रयोजनवादी रहे हैं। इनका लालन पालन कला, सौन्दर्य, प्रेम, एवं ग्रामीण पर्यावरण से प्रभावित क्षेत्र में हुआ है जबकि जॉन डिवी सर्वथा अमेरिकी भौतिक सभ्यता के अनुरूप प्रयोगवादी है। वे प्रत्यक्ष परिणाम में विश्वास करते हैं, और पीर विज्ञानवादी दार्शनिक है। अतः मूलतः दोनों के विचारों में अन्तर है किन्तु कार्य विधि में पर्याप्त समानता पाई जाती है।

दोनों शिक्षा शास्त्रियों की बाल मनोविज्ञान में गहरी रूचि है। दोनों के अध्ययन की विधियां अभिन्न हैं।

दोनों का अध्ययन अनुभूति, चिन्तन, प्रयोग एवं बालक के प्रति सहज करुणा पर आधारित है । इसीलिए टालस्टॉय फार्म, फोनिक्स बस्ती तथा शिकागो की प्रयोगशाला दोनों में पारिवारिक भावना का समावेश किया गया था ।

महात्मा गांधी व जॉन डिवी दोनों की विचारधारा में भिन्नता भी है । प्रयोजनवाद दर्शन में सांसारिक मनोवृत्ति को स्थापित करता है । इसलिए जॉन डिवी की विचारधारा में सांसारिक मनोवृत्ति की अधिकता है जबकि महात्मा गांधी में सांसारिक मनोवृत्ति सापेक्षिक सत्य के रूप में ही है किन्तु प्रमुखता आदर्शवादी चिन्तन, स्थायी अपरिवर्तनीय सत्य की ही है । जिसे अनुभव किया जा सकता है । प्रयोजनवादी दार्शनिकों का मूल सिद्धान्त है कि अनुभव ही सब वस्तुओं की वास्तविक कसौटी है । इस कसौटी पर परीक्षणोपरान्त जो अपने को सर्वोत्तम सिद्ध कर सके उसे ही सत्य कहा जायेगा । महात्मा गांधी जी का सापेक्षिक सत्य प्रयोगीय- सार्वजनिक है किन्तु चरम सत्य व्यक्ति निष्ठ है । जॉन डिवी में चरम सत्य के प्रति अनास्था का भाव पाया जाता है परन्तु गांधी जी की आस्था चरम सत्य के प्रति जीवन पर्यन्त बनी रहती है ।

जॉन डिवी के अनुसार विचारों व मूल्यों का निर्माण प्राणी सामाजिक परिस्थिति के अनुसार स्वयं निर्मित करता है । प्रयोजनवाद ने आत्मा को भी क्रियाशील माना है । आत्मा व्यवहार का प्रतीक है जो सामाजिक स्थितियों के प्रतिफल के

रूप में प्रकट होता है । मन भी सामाजिक व व्यावहारिक है । प्रयोजनवाद के अनुसार मन न तो पदार्थ है न विचार मात्र वरन् मन भी आत्मा की भाँति क्रिया रूप है । मन का गुण परिवर्तन शीलता है क्योंकि इसका भी आधार सामाजिक है ।

महात्मा गांधी के अनुसार सत्यं शिवं सुन्दरं वस्तु निष्ठ मानक मूल्य हैं । ईश्वर भी सत्यं शिवं सुन्दरं है । इनका निर्माण मन द्वारा नहीं होता है बल्कि इनकी अनुभूति मानव क्रियाशील होकर मन से कर सकता है । इनके अनुसार समस्त विचारों का पर्यवसान कार्य में होना चाहिये । बौद्धिक क्रिया-शीलता तभी अपना औचित्य स्थापित कर सकती है जब यह संसार के अनुभवों को व्यक्त करें और क्रिया से सहायता प्रदान करे । तात्पर्य यह है कि विचार क्रिया में बदले जाँय।

जॉन डिवी आत्मा, मन मूल्यों तथा बुद्धि को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखते हैं । महात्मा गांधी के अनुसार इनकी उत्पत्ति सामाजिक प्रक्रिया में नहीं है न तो ये शाश्वत मूल्य सामाजिक मन के प्रतिबिम्ब व प्रक्षेपण ही है । इनकी स्थिति एक साथ है और आधुनिक सापेक्षवाद से परे है, परन्तु इन्हें मानव व्यवहार में अभिव्यक्त किया जा सकता है । इसे अभिव्यक्त करने के लिए अहिंसक, प्रेमी, सत्याग्रही एवं सत्यान्वेषी मानव की आवश्यकता है । दोनों व्यवहार में अभिव्यक्ति को महत्त्व देते हैं किन्तु दोनों की अभिव्यक्ति की विधि में अन्तर है । गांधी जी सक्रिय सामाजिक सेवा को ईश्वर व सत्य को जानने

का सच्चा मार्ग मानते हैं ।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि महात्मा गांधी चिरन्तन सत्य में आस्था रखते थे किन्तु उनकी यह मान्यता थी कि सत्य को प्रयोग की कसौटी पर कस कर ही अभिव्यक्त करना चाहिये । महात्मा गांधी प्रयोजनवादी जॉन डिवी से यहाँ तक सहमत है कि जो प्रयोग द्वारा सिद्ध किया जा सके वही सत्य है । परन्तु गांधी जी इस प्रकार के सत्य को अन्तिम सत्य नहीं मानते हैं । उनका कथन है कि जो सत्य प्रयोग द्वारा समर्पित है वह सापेक्षिक सत्य है ।

जहाँतक शाश्वत सत्य से महात्मा गांधी का सम्बन्ध है वहाँ वे प्रयोजनवाद से दूर तथा जॉन डिवी के इस कथन से असहमत है कि शाश्वत सत्य है ही नहीं । जब महात्मा गांधी जी प्रयोग पर बल देते हैं तब वे जॉन डिवी के सिद्धान्तों के समर्थक हो जाते हैं । जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के विचारों में वहाँ अन्तर दिखाई देता है जब जॉन डिवी ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, ब्रह्माण्ड के निर्माता के प्रश्नों व तथ्यों की अवहेलना करते हैं । परन्तु गांधी जी की दृष्टि में ये ही शाश्वत सत्य है ।

यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो हम देखेंगें कि ये प्रश्न ईश्वर, आत्मा, ब्रह्म क्या है ? सदा हमारे सामने समाधान की आशा में उपस्थित रहते हैं किसी भी प्रकार के विचार की उत्पत्ति को कार्य में अभिव्यक्ति अवश्य होनी चाहिये। किन्तु जॉन डिवी इन प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ से हैं ।

महात्मा गाँधी इस स्थल पर विचार प्रक्रिया एवं कार्य प्रक्रिया में डिवी से अधिक व्यावहारिक हैं । इन सूक्ष्म विषयों को व्यवहार में उतारने की प्रविधि को प्रतिपादित करके महात्मा गाँधी जी श्रेष्ठ व्यावहारिक दार्शनिक बन जाते हैं ।

जॉन डिवी ने शिक्षा के सम्बन्ध में दो उद्देश्यों की कल्पना की है । प्रथम वह है जो क्रिया व विचारों में सन्तुलन उत्पन्न करता है । दूसरा सत्यं शिवं व सुन्दरम के ज्ञान को उपयोगी बनाता है । जॉन डिवी सिद्धान्त व प्रयोग को साथ-साथ रखने के पक्ष में हैं । इन दोनों में समन्वय स्थापित करना चाहते हैं । जॉन डिवी सत्य की खोज केवल सत्य हेतु, शिव की खोज मात्र शिव के लिए, तथा सुन्दरता का अन्वेषण केवल सुन्दरता के लिए करने के पक्षधर नहीं है । वे समाज को अनुभव प्रयोग का विस्तृत क्षेत्र मानते हैं । इसी समाज में इन मूल्यों की उपयोगिता है और उचित रूप से उन्हें काम में लाना चाहिये । अतः उपयोगिता को दृष्टि में रखकर विशेष रूप से सामाजिक परिप्रेक्ष्य की उपयोगिता को ध्यान में रखकर इन्हें व्यवहार योग्य बनाया जाना चाहिये ।

जॉन डिवी सत्य, मूल्य, आदर्श, विश्वास आदि को शाश्वत एवं स्थिर नहीं मानते हैं, क्योंकि इनका सम्बन्ध उनके दृष्टिकोण से इस जगह से ही है न कि आध्यात्मिक जगह से । मूल्य, आदर्श सत्यं शिवं, सुन्दरं तथा विश्वास सभी को जॉन डिवी मनुष्य कृत मानते हैं । मानव जहाँ कहीं और जब भी

जो कुछ अनुभव करता है उसी के आधार पर मूल्य, आदर्श व सत्य आदि बन जाते हैं, क्योंकि जॉन डिवी के अनुसार विकास और परिवर्तन स्वाभाविक और अनिवार्य हैं । अतः इस प्रारम्भिक नियम के अनुसार कोई भी वस्तु स्थिर नहीं हो सकती है । जॉन डिवी ने शिव के सम्बन्ध में कहा है :-

"मानव के लिये जीवन में सर्वोत्तम, सबसे अधिक बहु-मूल्य एवं पूर्ण अनुभव ही "शिव" है । इसके अतिरिक्त "शिव" कुछ नहीं है । इस प्रकार के अनुभव की प्राप्ति के लिये सुधारकों को विशिष्ट समस्या के रूप में विचार नहीं करना चाहिये । अपितु मानव के सामान्य उद्देश्य के रूप में विचार करना चाहिये ।"1

जॉन डिवी के अनुसार समस्त मूल्यों की खोज इसी भौतिक पर्यावरण तथा सामाजिक वातावरण में ही की जानी चाहिये ताकि मानव की सुखिद पूर्णता का कार्य आसान हो सके । महात्मा गांधी भौतिक व अभौतिक दो प्रकार के मूल्यों को मान्यता देते हैं । जहाँ तक भौतिक मूल्यों का सम्बन्ध है वहाँ जॉन डिवी की भाँति गांधी जी मूल्यों की उपयोगिता का समर्थन करते हैं और दोनों का चिन्तन एक ही दिशा में चलता है, किन्तु जिन अभौतिक मूल्यों को अपर्याप्त, मिथ्या, आध्या-त्मिक एवं अनुभव की सीमा से परे जॉन डिवी मानते हैं उन्हें भी महात्मा गांधी व्यावहारोपयोगी बनाने की विधि का

1- जॉन डिवी "एक्सपीरियेन्स एण्ड नेचर पृष्ठ-412

(ओपेन कोर्ट पब्लिसिंग कम्पनी, शिकागो, 1929)

प्रतिपादन कर जॉन डिवी से आगे निकल जाते हैं । समस्त मूल्यों का चाहे वह सत्य हो, शिव हो, सुन्दर हो, नैतिक हों और आदर्श हो, मानव जीवन में महत्त्व है तथा इन सभी की अनुभूति व्यक्ति को करने के लिये प्रयत्न करना चाहिये ।

हमारे चरित्र व व्यवहार में आत्मा की अथवा सत्य की, अभिव्यक्ति होनी चाहिये । अहिंसा, प्रेम इन्द्रिय निग्रह, ब्रह्मचर्य, निर्भीकता आदि को जीवन में अपनाकर कार्य का अंग बनाकर अभिव्यक्त करने के महात्मा गांधी पक्षधर हैं । गांधी जी का आध्यात्म अव्यवहारिक नहीं है । चिन्तन प्रक्रिया में गांधी जी डिवी की अपेक्षा आगे बढ़े हुये है । ईश्वर की सर्व व्यापकता की कल्पना समस्त जड़-चेतन में उसी की प्रतिछाया का अनुभव करना ईश्वरानुभूति है । समस्त मानव में एक ही आत्मा का निवास, चाहे वे भौतिक शरीर से भिन्न क्यों न हों, मानकर मनुष्य मात्र की सच्ची सेवा में ईश्वर की सेवा का अनुभव करना उनकी चिन्तन प्रक्रिया की श्रेष्ठता का ही प्रतीक है । <u>महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों आत्मानुभूति में विश्वास</u> करते हैं :-

महात्मा गांधी शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य आत्म प्रतीति मानते हैं । जिसकी उपलब्धि सृष्टि के साथ समरसता द्वारा की जा सकती है । अमेरिकी संस्कृति तथा भारतीय संस्कृति में पर्याप्त अन्तर है । एक भौतिक अधिक है तो दूसरी आध्यात्मिक अधिक है । एक सुख की उपलब्धि की कामना

जीवन की समस्याओं के सुलझाने में करता है तो भारत प्राकृतिक एवं सामाजिक दोनों पर्यावरण में आन्तरिक सुख की खोज करता है । उपर्युक्त अन्तर होते हुये भी दोनों जीवन की वास्तविक क्रियाओं में संलग्न हो अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुये सामाजिक भावना का विकास तथा परस्पर सहयोग के भाव की सृष्टि करते हैं । अमेरिका में बुद्धि पर विशेष बल दिया जाता है जबकि भारत बुद्धि की अपेक्षा भावना पर बल देता है । इस प्रकार की सांस्कृतिक विभिन्नता तथा अन्तर होने के बावजूद भी दोनों देश के शिक्षा शास्त्रियों में त्याग, प्रेम तथा निःस्वार्थ की भावना विद्यमान है ।

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों बालक के मन में आत्मिक सुख की स्थापना के लिये प्रयत्नरत हैं । अन्तर यह है कि डिवी अतीत को छोड़ वर्तमान में जीवन के चिर सुख की शोध करते हैं जबकि महात्मा गांधी अतीत की चिर सुख की उपलब्धियों के आधार पर वर्तमान में जीवन सुख की शोध करते हैं । एक अतीत को त्यागता है केवल वर्तमान में रहना चाहता है दूसरा अतीत को आधार मानकर वर्तमान का निर्माण करना चाहता है । एक घोर भौतिकवादी तो दूसरा भौतिक प्रयोजनवादी आदर्शवादी है ।

राबर्ट जे0 राथ[1] का दृष्टिकोण है कि यदि हम जॉन डिवी के साहित्यिक रचनाओं की व्याख्या करते है तो हम इस

1- राबर्ट जे0 राथ : जॉन डिवी एण्ड सेल्फ रिलाइजेशन पृष्ठ-17-22

निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जॉन डिवी के दर्शन की मुख्य विषय वस्तु "आत्मानुभूति" ﴾सेल्फ रिलाइजेशन﴿ है जिसकी प्राप्ति प्रकृति में एक दूसरे के प्रभाव से होती है । अर्थात प्राणी प्रकृति को प्रभावित करता है और प्रकृति प्राणी को । इस प्रभाव रूपी प्रतिक्रिया से ही आत्मानुभूति होती है । जॉन डिवी के अनुसार आत्मानुभूति हेतु मानव की क्षमताओं एवं शक्तियों के अनुसार प्राणी के व्यक्तित्व को विकसित करने के लिये जो प्रबन्ध किये गये थे, उसे वे यथार्थ नहीं मानते हैं, किन्तु जॉन डिवी के अनुसार--

> "इसका महत्व मानव के व्यक्तित्व के विकास के लिये परिस्थितियों के अध्ययन में था ।"[1]

डिवी आत्मिक सुख की अनुभूति भौतिकता में करते हैं । महात्मा गांधी सर्वोदयी विचारक थे।अतः वे सभी के सुख के आकांक्षी थे । अतीत के और्कनादर्श के "समस्त जगत का कल्याण हो", मानव मात्र सुखी बने" । इस चिरन्तन सत्य को विश्व पटल पर पुनर्स्मरण दिलाने वालों में महात्मा गांधी एक थे । रस्किन की पुस्तक "अन्टू दिस लास्ट" का नाम इसी लिये इन्होंने सर्वोदय रखा था, क्योंकि इसमें तथा कथित सार निहित है ।गांधी जी की मान्यता है कि मात्र धन व शरीर सुख से कोई भी व्यक्ति चिर सुख की अनुभूति नहीं कर सकता है ।

1-- जॉन डिवी : इंडिविजुअलिज्म ओल्ड एण्ड न्यू, पृष्ठ-99, 146, 148 ﴾ऑलिन एण्ड अनविन लन्दन, 1931 ﴿

क्योंकि मानव मात्र शरीर नहीं है उसमें आत्मा, मन, बुद्धि, अन्तः करण सभी कुछ है । आत्मिक सुख की उपलब्धि ही हमारा लक्ष्य होना चाहिये । महात्मा गांधी जी आत्मानुभूति को जीवन और शिक्षा का सर्वोत्तम कार्य मानते हैं । मनुष्य का नैतिक एवं पूर्ण विकास आत्मानुभूति के लिए ही किया जाना चाहिये । इन्होंने अपनी आत्म कथा में लिखा है :-

> "टालस्टॉय फार्म पर बालकों को शिक्षा देने का कार्य करने से पहले मुझे इस बात का ज्ञान हो गया था कि आत्मा का प्रशिक्षण स्वयं एक महान कार्य है । आत्मा का विकास करना, चरित्र का निर्माण करना है और व्यक्ति को ईश्वर तथा आत्मानुभूति के लिए कार्य करने के योग्य बनाना है ।"

महात्मा गांधी आत्मानुभूति को ही मुक्ति या मोक्ष कहते हैं । अतः शिक्षा का उद्देश्य मोक्ष होना चाहिये । गांधी दर्शन में मुक्ति, मोक्ष, आत्मानुभूति तथा ईश्वरानुभूति द्वय अर्थक है । प्रथम अर्थ गांधी के अनुसार यह है कि - वर्तमान जीवन में हर प्रकार की क्षमता के विकास के लिए स्वतंत्रता । अर्थात जीवन के प्रत्येक पहलू को दासता से चाहे वह आर्थिक, राजनैतिक व मानसिक दासता ही क्यों न हो मुक्ति दिलाना है । जब तक मनुष्य इनमें से किसी भी प्रकार की दासता या बन्धन या बेड़ी में बँधा हुआ है तब तक उसकी प्रगति सम्भव नहीं है । अतः आत्मानुभूति रूपी मुक्ति का तात्पर्य मनुष्य को सभी प्रकार की गुलामी से मुक्ति ।

दूसरे अर्थ में विद्या मोक्ष प्रदान करती है । इस

सिद्धान्त के आधार पर यह कहा जा सकता है कि :-

"बड़े में छोटे उद्देश्य समाविष्ट हैं। राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आध्यात्मिक स्वतंत्रता में स्थान है। अत: जीवन को उच्चतर जीवन की ओर अग्रसर करना।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि आत्मानुभूति के सम्बन्ध में महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी के विचारों में अशंत: समानता है किन्तु अन्तर यदि है तो दोनों की चिन्तन प्रक्रिया के कारण।

आत्मानुभूति के लिये क्रिया आवश्यक है। अत: क्रिया में जॉन डिवी एवं महात्मा गांधी दोनों विश्वास करते हैं। दोनों की मान्यता है कि क्रिया करते हुये प्रत्येक प्राणी को अपनी निजी शक्तियों, योग्यताओं एवं सामर्थ्यों की अनुभूति करनी चाहिये। व्यक्ति का सर्वांगीण विकास उसकी समस्त योग्यताओं के विकास पर ही निर्भर है। कार्य की पूर्णता हृदय मन व हाथ तीनों के समन्वयात्मक प्रक्रिया पर आधारित है। अत: हृदय, मन तथा हाथ तीनों में निहित क्षमताओं के विकास में ही पूर्ण व्यक्तित्व के विकास का भाव निहित है। मन, मस्तिष्क के विकास से बौद्धिक विकास, मानसिक विकास तथा हाथ के प्रशिक्षण से कलात्मक, रचनात्मक एवं सौन्दर्यात्मक योग्यताओं की सृष्टि व विकास होता है।

इन तथ्यों के सम्बन्ध में जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी दोनों समान विचार रखते हैं। किन्तु अन्य दृष्टिकोण से जॉन डिवी महात्मा गांधी से सहमत नहीं है। इसका कारण

यह है कि हिंवी बुद्धि, मन, आत्मा सभी को कार्य मानते हैं और मानव कृत समझते हैं । अतः वे भौतिक दृष्टिकोण ही रखते हैं । गांधी जी इनसे आगे बढ़कर आत्मानुभूति के व्यावहारिक पक्ष पर भी प्रकाश डालते हैं । मानव जाति के निर्माण के कार्य को गांधी जी ने कभी असम्भव नहीं समझा । बहुत सी वस्तुयें एवं घटनाओं को हम असम्भव मानते हैं किन्तु गांधी जी "असम्भव" में विश्वास नहीं करते हैं । इसीलिये वे एक अव्यवहारिक स्वप्न दृष्टा नहीं हैं । वे कहते हैं :-

> "मैं स्वप्न दृष्टा हूँ किन्तु वास्तव में मैं एक व्याव-हारिक स्वप्न दृष्टा हूँ । मेरे स्वप्न हवाई स्वप्न नहीं हैं । मैं जहाँ तक सम्भव है अपने स्वप्न को वास्तविकता में बदलना चाहता हूँ ।"[1]

आत्मानुभूति के व्यावहारिक कार्यक्रम को प्रतिपादित करते हुये जिस प्रथम वस्तु की आवश्यकता का महात्मा गांधी अनुभव करते हैं वह आत्म शुद्धि है । आत्म शुद्धि नैतिक अनुशासन तथा सत्याग्रही के नैतिक अनुशासन से सम्भव है । सत्यान्वेषी को अहिंसक मूल्यों में प्रशिक्षित होना आवश्यक है । समस्त अज्ञानता से रहित पवित्र हृदयी व्यक्ति ही ईश्वरी वाणी को सुन सकता है । अतः अहिंसा, प्रेम सत्यानुभूति के साधक हैं । अतः शिक्षा को अहिंसक हृदयी मानव को बनाने का प्रयत्न करना चाहिये ।

1- हरिजन 17-11-33 ।

अहिंसा मानसिक अथवा बौद्धिक दृष्टिकोण की अपेक्षा नहीं करती है बल्कि अहिंसा हृदय व आत्मा का गुण है । अतः सत्यान्वेषी को ईश्वर में आस्था रखनी चाहिये । धर्म व नैतिकता दोनों सत्य पर आधारित हैं । धर्म व नैतिकता कर्म से परे नहीं है । गांधी के अनुसार वैयक्तिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण दोनों से मानव की उन्नति व अस्तित्व नैतिकता पर ही आधारित है । इस प्रकार यदि जीवन का अन्तिम सर्वोच्च उद्देश्य ईश्वरानुभूति है तो प्रश्न उसकी अनुभूति करने की प्रक्रिया का उठ खड़ा होता है क्योंकि जब तक उसे कार्य की प्रक्रिया में नहीं लाया जाता तब तक ईश्वरानुभूति व्यावहारिक नहीं हो सकती । इसलिए महात्मा गांधी जी आध्यात्मिक एकता की अनुभूति विभाज्य साधनों से करने की चर्चा नहीं करते हैं । वे इस बात पर बल देते हैं कि साधनों को साध्य के अनुरूप होना चाहिये । इसलिए मानव की तात्कालिक सेवा व आवश्यकता की अनुभूति के प्रयत्न का एक आवश्यक हिस्सा होना चाहिये । क्योंकि ईश्वर की प्राप्ति का एक मात्र रास्ता उसकी सृष्टि में उसे देखना है और उससे ही एकाकार होना है । अतः समाज सेवा द्वारा ही मनुष्य ईश्वर की अनुभूति कर सकता है । समस्त मनुष्यों की भलाई के कार्यों में ही आत्मानुभूति का रहस्य छिपा है ।

जॉन डिवी की भाँति महात्मा गाँधी के विचार भी प्रयोजनवादी हैं :-

महात्मा गांधी जॉन डिवी की भाँति अपने शैक्षिक

लक्ष्यों में प्रयोजनवादी ही है क्योंकि उनके अधिकांश शिक्षा सम्बन्धी विचार प्रयोजनवाद के अनुसार ही हैं । महात्मा गाँधी की शिक्षा में प्रयोजनवादी शिक्षा के तत्व निम्नलिखित हैं :-

1- प्रयोग पर बल :-

डिवी की भाँति महात्मा गाँधी ने भी प्रयोग पर बल दिया है । यहाँ तक कि तात्कालिक लक्ष्यों की उपलब्धि एवं उनकी वास्तविकता की परीक्षा प्रयोग द्वारा ही करना चाहते हैं, यहाँ तक दोनों दार्शनिक समान अवधारणा रखते हैं किन्तु जब आध्यात्मिक मूल्यों के सम्बन्ध में विचार करना होता है तब जॉन डिवी इससे अपना ध्यान हटा लेते हैं और उसे अप्राप्य,अव्याव-हारिक एवं काल्पनिक मान विचार करना ही बन्द कर देते हैं, किन्तु महात्मा गाँधी जॉन डिवी से आगे बढ़कर आध्यात्म के मूल्यों एवं आदर्शों को भी प्रयोगीय बनाने में सतत प्रयत्नशील हैं । ये मूल्य भीप्रयोगीय आधार पर अनुभूति के क्षेत्र में ही आते हैं । इनका का भी अनुभव किया जा सकता है और इससे व्यवहार प्रभावित हो सकता है । इसकी उपयोगिता भी सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

2- हस्त कला केन्द्रित शिक्षा ।

3- स्व क्रिया द्वारा सीखने पर बल देना ।

4- श्रम को महत्व देना ।

5- पर्यावरण एवं सामाजिक स्थिति के अनुकूल शिक्षा देना ।

6- पाठ्यक्रम के नियोजन के आधार- समन्वय एवं संगठन ।

7-- सामाजिक सेवा ।

8-- स्वतंत्रता, समानता व न्याय ।

9-- स्वानुशासन आदि ।

<u>बाल केन्द्रित अथवा जीवन केन्द्रित शिक्षा पर बल :-</u>

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों शिक्षा का केन्द्र बालक को मानते हैं । दोनो बाल केन्द्रि शिक्षा पर बल देते हैं । दोनों दार्शनिक बालक के विकास को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं । बालक का सार्वंगीण विकास तथा उसके पूर्ण व्यक्तित्त्व के विकास को ही शिक्षा मानते हैं । शिक्षा बालक के लिए है न कि बालक शिक्षा के लिए है । अतः शिक्षा की व्यवस्था व संगठन विद्यार्थियों की रूचियों को ध्यान में रख कर ही किया जाना चाहिये । विद्यालय समाज का लघु रूप है और यहीं पर बालक का जीवन संगठित होता है । उनकी योग्यताओं को प्रस्फुटित होने का अवसर यही उपलब्ध होता है ।

विद्यार्थियों की रूचियों एवं प्रवृत्तियों का उचित मूल्यांकन करके इनके विकास के लिए वास्तविक मार्ग प्रशस्त करना चाहिये । बालक समाज के लिए होता है अतः उसका विकास समाज से अलग करके नहीं किया जा सकता है । अतः इन दोनों दार्शनिकों के दृष्टिकोण से बाल केन्द्रित शिक्षा समाजोन्मुखी एवं जीवनोपयोगी होनी चाहिये । हमें बालकों की उन्हीं रूचियों को विकसित करना चाहिये जो सामाजिक मान्यताओं के अनुकूल हों । दोनों के शिक्षा दर्शन में बालक के व्यक्तित्व को शिक्षा के

साधनों, विषय वस्तु तथा अन्य की अपेक्षा अधिक महत्व प्रदान किया गया है ।

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम के संगठन पर बल देते हैं क्योंकि दोनों की शिक्षा का केन्द्र बालक ही है । पाठ्यक्रम के संगठन में बालक की बातचीत करने, खोज करने, कलात्मक एवं रचनात्मक कार्य करने सम्बन्धी विभिन्न रूचियों को ध्यान में रखा जाता है । इसी-लिये दोनों ने पाठ्यक्रम में लिखने, पढ़ने, गिनने, प्रकृति विज्ञान हस्तकार्य, कला आदि विषयों को तथा अध्ययन के साधनों को स्थान दिया है । पाठ्यक्रम को बालकों के व्यवसाओं एवं अनुभवों पर आधारित होना चाहिये । विषयों की अपेक्षा सामाजिक, स्वतंत्र एवं उपयोगी क्रियाओं को पाठ्यक्रम में स्थान देना चाहिये । ऐसा करने से बालकों में नैतिक गुणों, स्वतंत्रता की भावना तथा नागरिकता का विकास होगा । दोनों दार्शनिकों के अनुसार :-

> शिक्षा पद्धति बालक की रूचियों, अभिरूचियों, आवश्य-कताओं एवं उद्देश्यों के अनुकूल होनी चाहिये तभी जीवनोपयोगी शिक्षा बालक ग्रहण कर पायेगें ।

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों के दृष्टिकोण से बालक के जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्रसे शिक्षा का सम्बन्ध है । शिक्षा सम्पूर्ण जीवन पर प्रभाव डालती है । शिक्षा का लक्ष्य बालक के जीवन को सुन्दर बनाना है । इसलिए बालक के भौतिक, मानसिक नैतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक सभी पक्षों के विकास का

साधनों, विषय वस्तु तथा अन्य की अपेक्षा अधिक महत्व प्रदान किया गया है ।

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम के संगठन पर बल देते हैं क्योंकि दोनों की शिक्षा का केन्द्र बालक ही है । पाठ्यक्रम के संगठन में बालक की बातचीत करने, खोज करने, कलात्मक एवं रचनात्मक कार्य करने सम्बन्धी विभिन्न रुचियों को ध्यान में रखा जाता है । इसी-लिये दोनों ने पाठ्यक्रम में लिखने, पढ़ने, गिनने, प्रकृति विज्ञान हस्तकार्य, कला आदि विषयों को तथा अध्ययन के साधनों को स्थान दिया है । पाठ्यक्रम को बालकों के व्यवसाओं एवं अनुभवों पर आधारित होना चाहिये । विषयों की अपेक्षा सामाजिक, स्वतंत्र एवं उपयोगी क्रियाओं को पाठ्यक्रम में स्थान देना चाहिये । ऐसा करने से बालकों में नैतिक गुणों, स्वतंत्रता की भावना तथा नागरिकता का विकास होगा । दोनों दार्शनिकों के अनुसार :-

> शिक्षा पद्धति बालक की रुचियों, अभिरुचियों, आवश्य-कताओं एवं उद्देश्यों के अनुकूल होनी चाहिये तभी जीवनोपयोगी शिक्षा बालक ग्रहण कर पायेंगे ।

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों के दृष्टिकोण से बालक के जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्रसे शिक्षा का सम्बन्ध है । शिक्षा सम्पूर्ण जीवन पर प्रभाव डालती है । शिक्षा का लक्ष्य बालक के जीवन को सुन्दर बनाना है । इसलिए बालक के भौतिक, मानसिक नैतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक सभी पक्षों के विकास का

उत्तरदायित्व शिक्षा पर ही है । इन पक्षों के विकासोपरान्त हमें यह कहना पड़ता है कि शिक्षा जीवन केन्द्रित होती है । शिक्षा ज्ञान के लिये तथा भावी जीवन की तैयारी के लिए नहीं बल्कि यह तो विद्यार्थी के उस स्तर पर जिस पर वह है अच्छा जीवन प्राप्त करने के लिए है । यही जीवन केन्द्रित शिक्षा है । दोनों उक्त विचारों के प्रति समान दृष्टिकोण रखते हैं ।

जॉन डिवी व महात्मा गांधी दोनों शिक्षा का केन्द्र बालक को इसलिए मानते हैं क्योंकि वह स्वयं शैक्षिक प्रक्रिया में पर्यावरण से व्यवहार करता है । वही चेतन सीखने वाला है । अतः उसकी रूचि, आवश्यकता एवं सामर्थ्य के अनुसार ही शिक्षा देनी चाहिये । अध्यापक को बालक की रूचियों, आवश्यकताओं एवं विकास की ओर ध्यान देना चाहिये न कि पाठ्यक्रम, परीक्षा अनुशासन अथवा ऐसी कोई वस्तु की ओर जो बालक के अनुभव से बाहर हो । जॉन डिवी कहते हैं :-

> "बालक की स्वयं की मूलभूत भावनायें और शक्तियाँ ही वह विषयवस्तु रूपी पदार्थ प्रस्तुत करती हैं जिससे सभी प्रकार की शिक्षा का प्रारम्भिक बिन्दु शुरू होता है ।"[1]

जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी दोनों व्यक्तिगत गुणों का सामाजिक उद्देश्य एवं मूल्यों से सम्बन्ध स्थापित करना

1- जॉन डिवी : पैडागॉजिक क्रीड" पृष्ठ-45 ।

चाहते हैं इसीलिए व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास सामाजिक मूल्यों को दृष्टि में रखकर करना चाहते है ।

> "समस्त शिक्षा व्यक्ति द्वारा जाति की सामाजिक चेतना में भाग लेने से विकसित होती है ।"[1]

इसलिये शिक्षक के समक्ष एक महत्वपूर्ण कार्य :-

> "व्यक्तिगत गुणों का सामाजिक उद्देश्य एवं मूल्यों से सामन्जस्य स्थापित करना है ।"[2]

बालक प्रत्येक कार्य करके सीखना चाहता है यह उसकी प्राकृतिक विशेषता है । बालक प्रारम्भ से क्रियाशील होता है । उसकी रूचि कार्यों में होती है अतः कार्यशीलन रूचि की अवहेलना नहीं करनी चाहिये, इसीलिये बालक की इस प्रकृति की सुरक्षा हेतु वे बालक को प्रयोग करने हेतु उत्साहित करते हैं । महात्मा गांधी जी बालक की इस प्रवृत्ति से परिचित थे, वे जानते थे कि बालक की कार्य करने के प्रति स्वाभाविक रूचि होती है, क्योंकि बालक स्वयं अपना बौद्धिक विकास" कार्य करके" ही करता है । बालक की यही प्रवृत्ति शिक्षा का आधार होनी चाहिये । इसी लिए महात्मा गांधी जी क्रिया व शिक्षा को अलग न मानकर एक ही मानते थे । गांधी जी का कथन है :-

> "........ हमें बालक की शिक्षा के सम्बन्ध में अपना

1- जॉन डिवी : पैडगॉजिक क्रीड" पृष्ठ-44

2- जॉन डिवी : "द डिवी स्कूल" पृष्ठ-465

ध्यान केन्द्रित करना चाहिये । बालक की शिक्षा श्रम से प्रारम्भ हो किन्तु शरीर श्रम को शिक्षा से अलग करके नहीं देना चाहिये वरन वह बौद्धिक प्रशिक्षण के प्रमुख साधन के रूप में हो । "1

इस प्रकार जब गांधी जी शरीर श्रम तथा बालक की क्रियाशीलता पर बल देते हैं तो वह बालक की रुचिको ही प्राथमिकता प्रदान करते हैं । बालक की रुचियों की पूर्ति हेतु ही पूरी बुनियादी शिक्षा की योजना की गई है । दोनों शिक्षा शास्त्री बालक की रुचि को ध्यान में रखकर ही उद्योग केन्द्रित तथा बाल केन्द्रित शिक्षा का प्रतिपादन करते हैं, क्योंकि इससे बालक में सामाजिक उत्तरदायित्व को वहन करने की चेतना जागृत होती है ।

दोनों शिक्षा शास्त्रियों ने ज्ञान का जीवन की वास्तविकताओं से सम्बन्ध स्थापित किया है :-

जॉन डिवी ने विचार की उत्पत्ति पर ज्ञान की प्राप्ति की कल्पना की है । विचार जीवन में कठिनाइयों के उत्पन्न होने पर पैदा होता है । कठिनाई या समस्या की उत्पत्ति के अभाव में विचार का उत्पन्न होना सम्भव नहीं है इसलिए ज्ञान की प्राप्ति भी नहीं हो सकती है । ज्ञान का सम्बन्ध बालक की रुचियों आवश्यकताओं तथा मूल प्रवृत्तियों से है । जीवन की नाना

1- हरिजन 18-9-37 ।

प्रकार की उत्तेजनायें व्यक्ति को वातावरण से ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होती है । उत्तेजना प्रतिक्रिया से बुद्धि का विकास होता है ।

जॉन डिवी बुद्धि को अर्जित मानते हैं और चिन्तन को क्रियाशीलता का एक कार्य । इसलिए जॉन डिवी चिन्तन की प्रक्रिया पर परिणाम की अपेक्षा विशेष बल देते हैं । प्रो०मीड के अनुसार जॉन डिवी ने एक महत्वपूर्ण कार्य किया है कि इन्होंने ज्ञान की यथार्थता की विशिष्टता को प्रकट करने की आवश्यकता से स्वतंत्र कर दिया । जिसका प्रतिफल यह हुआ कि :-

> "जॉन डिवी ने इस नूतन विरुद्ध बौद्धिकवाद को जैविकीय सामाजिकता से जोड़ दिया । इनका प्रयोग कार्यों से, क्रिया कलापों से, प्राथमिक प्रदत्तों के रूप में जैविकीय प्रतिक्रिया और अनुकूलन के लिए किया जाने लगा, जो जैवकीय सामाजिक प्रकृति के थे । ज्ञान के दृष्टिकोण से इसको सभी नमूनों व ढांचों में प्रयोग किया गया ।"[2]

ज्ञान का कार्य है कि जीवन की समस्याओं के समाधान के साथ-साथ उसका पुनर्निर्माण करें । सामाजिक मन मुख्य है इसी से मानव विचार उत्पन्न होते हैं । प्रयोजनवादी जॉन डिवी ने आत्मा को भी व्यवहार का रूप माना है अतः वह भी क्रियाशील

1- मीड : जॉन डिवी, द मैन एण्ड हिज फिलॉसफी, पृष्ठ-102

2- जनरल ऑव फिलासफी -7,1910 पृष्ठ-478

है इसका आधार समाज है । मन भी सामाजिक व व्यावहारिक है, मन न पदार्थ है न विचार मात्र वरन् मन भी आत्मा की भाँति क्रियाशील है । जॉन डिवी ने विश्व को विस्तार से अनुभव करने के लिए तथा सप्रमाण सिद्ध करने के लिए उत्तरदायित्व के बोझ को श्रेष्ठ के कन्धों से हटाकर मानव की बुद्धि व ज्ञान पर रख दिया है । अतः विश्व को हमें अपने दृष्टिकोण से बनाना पड़ता है । इस प्रकार की पद्धति से हमारी समस्यायें सुलझ जाती हैं । और बुद्धि या ज्ञान उपयोगी वस्तुओं के निर्माण में लग जाती हैं तथा ज्ञान का सम्बन्ध जीवन की वास्तविकता से हो जाता है ।

जॉन डिवी की भाँति महात्मा गांधी भी ज्ञान का जीवन की वास्तविकताओं से सम्बन्ध जोड़ना चाहते हैं । दोनों का लक्ष्य एक ही है । किन्तु मन, आत्मा, बुद्धि के सम्बन्ध में डिवी के विचारों से गांधी जी सहमत नहीं है । आत्मा सत्य है अतः ईश्वर का ही प्रतिबिम्ब है । मन आत्मा के आधीन है आत्मा की प्रेरणा से मन संकल्प विकल्प व चिन्तन करता है । आत्मा कार्य नहीं है, वह सृष्टा है, बुद्धि प्रदत्त है अर्जित नहीं है परन्तु डिवी की भाँति वे यह मानते हैं कि सांसारिक ज्ञान का सम्बन्ध जीवन से, जीवन की यथार्थता से अवश्य होना चाहिये । जीवन की वास्तविक वस्तुओं से ज्ञान का प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो तभी व्यक्ति का विकास सम्भव होगा ।

जिस प्रकार प्रयोजनवादी डिवी पाठ्यक्रम में समन्वय व संगठन पर बल देते हैं उसी प्रकार गांधी जी भी अपना विचार

व्यक्त करते हुये कहते हैं :-

> "यदि बचपन से बालकों के हृदय की वृत्तियों को योग्य दशा मिले, उन्हें खेती व चरखा से सूत कातने आदि के उपयोगी कामों में लगाया जाय और जिस उद्योग से उनका शरीर कसे, उस उद्योग के फायदों और उसमें काम आने वाले औजारों की बनावट की जान-कारी कराई जाय तो बुद्धि अपने आप बढ़ेगी ------ मनुष्य केवल बुद्धि नहीं है, केवल आत्मा या हृदय नहीं। तीनों के एक से विकास से मनुष्य को मनुष्यत्व प्राप्त हो सकता है। इसी में सच्चा अर्थशास्त्र है। इस तरह यदि तीनों का विकास एक साथ हो तो हमारी उलझी हुई समस्यायें अपने आप सुलझ जायें।"[1]

इस प्रकार दोनों शिक्षा शास्त्री ज्ञान को जीवन की वास्तविकताओं से सम्बन्धित करने पर बल प्रदान करते हैं।

शिक्षा का सम्बन्धित कारक अनुभव है :-

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों अनुभव को शिक्षा का सम्बन्धित कारक मानते हैं। दोनों का यही मत है कि शिक्षा वह साधन है जो हमारे व्यवहार को अतीत के अनुभवों एवं मूल्यों से प्रभावित करती है। दोनों का शिक्षा दर्शन एक देशीय न होकर सर्वदेशीय हैं।

जॉन डिवी ने :-

> "अतीत के अनुभव व मूल्यों की योजना हमारे व्यवहार को अवश्य प्रभावित करती है।"[2]

1- हरिजन बन्धु 11-4-37

2- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन पृष्ठ-328-29 ।

के रूप में शिक्षा के अर्थ को अभिव्यक्त किया है । जॉन डिवी व महात्मा गांधी दोनों अनुभव व प्रयोग को शिक्षा तथा दर्शन दोनों का केन्द्र मानते हैं । जॉन डिवी शिक्षा को :-

"अनुभवों की पुनर्रचना व पुनर्संगठन मानते हैं ।"[1]

उन्हें अनुभव की निरन्तर पुनर्रचना के रूप में शिक्षा मान्य है । जॉन डिवी चाहते हैं कि व्यक्ति स्वानुभव से सीखे और अपने अनुभवों का सुधार करे, उसे अपनी रचनात्मक बुद्धि पर विश्वास करना चाहिये ।

गांधी जी के समस्त विचार वाणी के विलास मात्र नहीं हैं बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रयोग व अनुभूति के परिणाम हैं । गांधी जी तात्कालिक प्रयोजन की महत्ता को समझते थे इसलिए उन्होंने बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार ही शिक्षा के विचार को प्रकट किया था , वे भी जॉन डिवी की भाँति अतीत के विचारों को बदली हुई परिस्थितियों में पुनर्व्यवस्थापन करने के लिये पुनर्रचना व पुनर्संगठन करना चाहते हैं । वे मानव की सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक प्रगति के आकांक्षी है वे चाहते थे कि भारतीय अपनी प्राचीन व्यावसायिक दक्षता को पुनः प्राप्त करें और आत्म निर्भर व स्वावलम्बी बनें । वे बालक की रचनात्मक शक्तियों के विकास को महत्व देते हैं । वे व्याव-हारिक व मनोवैज्ञानिक शिक्षा पद्धति पर बल देते हैं ।

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन, पृष्ठ-89-90 ।

गांधी के अनुसार क्रिया द्वारा प्राप्त ज्ञान तथा अनुभव जन्य ज्ञान ही वास्तविक व व्यवहारिक तथा व्यावसायिक ज्ञान है ।

महात्मा गांधी की भाँति जॉन डिवी ने शिक्षा को अनुभव का केन्द्र बिन्दु माना है । विद्यालयीय जीवन की एकता बालक के अनुभवों की आवश्यकता से उत्पन्न होती है, क्योंकि वह अपने पर्यावरण से क्रिया प्रतिक्रिया के कारण अपनी शक्तियों का विकास करता है । इस प्रकार वह शिक्षा और अनुभवों को संचित करता है । इसीलिए शिक्षा अनुभवों के विकास की प्रक्रिया हो जाती है । इस विकास की प्रक्रिया में निरन्तर अनुभवों का पुनर्संगठन, पुनर्रचना, एवं पुनर्निर्माण होता रहता है । प्रश्न उत्पन्न होता है कि पुनर्निर्माण होता किसका है, तो उत्तर में यही कहा जा सकता है कि :-

"शिक्षा संचित अनुभवों का पुनर्निर्माण करती है ।"[1] पुनर्निर्माण हेतु एक उद्योगशाला चाहिये वह हमारा समाज है जहाँ हम शिक्षा के प्रयोगों व अनुभवों की पुनर्रचना करते हैं ।

महात्मा गांधी ज्ञान को, करके, प्रयोग करके, अनुसंधान करके, निरीक्षण करके, अपनी विवेक शक्ति के विकास से अनुभव प्राप्त करके, प्राप्त करने पर बल देते हैं । स्वानुभव को उन्होंने अपने जीवन में स्वयं अपनाया था । इसलिये स्वानुभव को समस्त

1- जॉन डिवी : "एक्सपीरियेन्स एण्ड एजूकेशन", पृष्ठ-29 ।

प्राणियों के लिए आवश्यक मानते हैं । यहाँ तक कि महात्मा गांधी जी पर तत्त्व को भी स्वानुभव का ही विषय मानते हैं । जॉन डिवी पर तत्त्व के सम्बन्ध में विचार ही नहीं करते हैं । गांधी जी के अनुसार बौद्धिक क्रियाशीलता तभी औचित्य पूर्ण कही जा सकती है जब वह संसार के अनुभव को व्यक्त करे और क्रिया में सहायता प्रदान करे ।

महात्मा गांधी व जॉन डिवी दोनों कार्य की आधार भित्ति पर अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त करने पर बल देते हैं । दोनों दार्शनिक शिक्षा को व्यावहारिक, वस्तु मूलक, जीवनोपयोगी तथा जीवन की समस्याओं के हल के लिए उपयोगी बनाने पर जोर देते हैं, वे शिक्षा को केवल बौद्धिक नहीं बनाना चाहते हैं । दोनों इस तथ्य में विश्वास करते है कि विद्यार्थी कार्य प्रणाली का आश्रय लेकर अनुभव के आधार पर शिक्षा ग्रहण करे, क्योंकि ज्ञान की उपलब्धि अनुभव से ही होती है । अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान विशेष स्थायी एवं हितकारी होता है । दोनों कार्य द्वारा जानने" अथवा अनुभव द्वारा ज्ञान ग्रहण करने" के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं ।

दोनों की यह मान्यता है कि कार्य को सीखने, अनुभव करके जानने तथा जीवन के गूढ़ व दुरूह पहलुओं को सुलझाने के योग्य बनाना ही शिक्षा का कार्य है क्योंकि कोई भी बालक दूसरे के अनुभव पर अपना ज्ञान आधारित नहीं करता है अपितु वह स्वयं अनुभव करने का प्रयास करता है । इस भावना के विकास

के लिए दोनों शिक्षा शास्त्रियों को बहुत बड़ा श्रेय उपलब्ध है । महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा की आधार शिला "करके सीखने" पर अवलम्बित है । बेकन भी ज्ञान को अनुभव का परिणाम मानते थे । अरस्तू ज्ञान व अनुभव में अन्तर ही नहीं मानते हैं । स्वानुभव के आधार पर जो ज्ञान व्यक्ति ग्रहण करता है वही सत्य है । दोनों शिक्षा शास्त्री यह मानते हैं कि हमारा कर्तव्य है कि स्वानुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के लिए बालकों की रुचि व समय के अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था करें । जॉन डिवी का विचार है कि प्रत्येक बालक की शिक्षा उसकी उसकी रुचि के अनुकूल हो तभी उसका वांछित विकास सम्भव होगा । जो विषय कठिन है यदि उन्हें अवस्था के अनुकूल संगठित किया गया, विपरीत प्रणाली का आश्रय लिया गया तो परिणाम सर्वथा अशुभ सूचक होगा । जबरदस्ती ज्ञान लादने से लाभ न होगा ।

प्रकृति शनैः शनैः परन्तु निरन्तर गति से विकास क्रम को प्राप्त करती है । यही दृष्टिकोण शिक्षा के साथ भी लागू होना चाहिये । जॉन डिवी अन्य के विचार से जानने को अनुभव की वास्तविक विधि नहीं मानते हैं । क्योंकि हमारा प्रत्येक अनुभव कोई न कोई वस्तु होती है । जानी हुई वस्तुओं का ही हम अनुभव करते हैं । उनका अनुभव हम सौन्दर्यात्मक नैतिक, आर्थिक एवं तकनीकी दृष्टि से भी करते हैं । इसलिए किसी वस्तु का सही वर्णन करने का तात्पर्य है कि हमने उस विशेष वस्तु का क्या अनुभव किया ? तात्कालिक अनुभव की यही आधार भूत मान्यता है ।

जॉन डिवी के अनुसार व्यक्ति जो कुछ, जहाँ कहीं और जब कभी अनुभव करता है, उन्हीं के आधार पर सत्य, मूल्य, विश्वास, आदर्श एवं विचार बनते हैं। इसलिये ये सभी परिवर्तनशील पद हैं।

महात्मा गाँधी यथार्थ सत्य के अतिरिक्त स्थान काल एवं परिस्थिति के अनुसार जॉन डिवी की भाँति परिवर्तनशीलता में विश्वास करते हैं। जॉन डिवी व महात्मा गाँधी जी दोनों अनुभव को क्रमिक मानते है। अनुभव भूत से वर्तमान में होता हुआ भविष्य की ओर संचरण करता है। जॉन डिवी अनुभव की प्रक्रिया को स्थायीनमानकर गतिशील व संचरणशील मानते हैं। अनुभव एकांगी नहीं बल्कि समन्वित सार्वजनिक एवं व्यावहारिक है। गाँधी जी भी अनुभव को व्यावहारिक एवं सार्वजनिक मानते हैं। किन्तु ईश्वर, परतत्व, आत्मा की अनुभूति को व्यक्तिगत मानते हुये भी सामाजिक मानते हैं। क्योंकि महात्मा गाँधी जी कहते है कि :-

> "जब एक मानव आध्यात्मिक शक्तियों को प्राप्त करता है तब सम्पूर्ण मानव समुदाय इसे ही प्राप्त करता है। यदि एक मानव पतित हो जाता है तो उसी की भाँति सम्पूर्ण मानव पतित हो जाता है।"[1]

गाँधी जी के उपर्युक्त कथन से हम विश्व शिक्षा के

1- यंग इण्डिया 4-12-24

शक्तिशाली तर्क की अनुभूति करते हैं। जॉन डिवी कहते हैं कि :-

"अनुभव की प्रकृति को समझने के लिये हमें यह ध्यान में रखना होगा कि क्रियात्मक एवं अक्रियात्मक दोनों तत्त्व विशेष रूप से अनुभव में सम्मिलित हैं क्रियाशील तत्त्व के रूप में अनुभव एक प्रयत्न है जिसका अर्थ प्रयोग करने पर स्पष्ट हो जाता है। अक्रियाशील तत्त्व के रूप में अनुभव "सहना" या जैसा है वैसा मान लेना है, जब हम किसी वस्तु का अनुभव करते हैं तो हम कोई न कोई क्रिया करते हैं। इसके साथ हमारा व्यवहार होता है ---- और वह भी हमें बदले में कुछ प्रदान करता है।"[1]

जॉन डिवीनेपुनः कहा है :-

"प्राणी और वस्तु के मध्य व्यवहार व क्रिया के कारण ही अनुभव होता है, प्राणी का वातावरण ही अनुभव को निर्मित करता है।"[2]

"........ ज्ञान कोई अलग व स्वयं में पूर्ण वस्तु नहीं है वह उसी प्रक्रिया में निहित है जिससे जीवन कायम है और विकसित होता है।"[3]

इस प्रकार अनुभव के प्रति दोनों शिक्षा शास्त्रियों के विचारों में पर्याप्त समानता है परन्तु आंशिक अन्तर भी है जैसा कि पहले कहा गया है।

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन, पृष्ठ-163। मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, 1916।

2- जॉन डिवी : एक्सपीरियेन्स एण्ड एजूकेशन, पृष्ठ-43 ।

3- जॉन डिवी : रिकन्स्ट्रक्शन इन फिलॉसफी, पृष्ठ-87 ।

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों पारम्परिक विद्यालयों की पढ़ाई का विरोध करते हैं :-

महात्मा गांधी ने टालस्टाय फार्म में यह अनुभव किया था कि बालक सुनी हुई बात अधिक अच्छी तरह याद रख सकते हैं अपेक्षा कृत पढ़ी हुई बातों के । क्योंकि उनके लिए पढ़ना एक कार्य एक समस्या है जबकि सुनना एक आनन्द का विषय है । अतः प्रारम्भिक कक्षाओं में पुस्तकों द्वारा शिक्षा देने तथा लेखन की शिक्षा देने के विरोध में हैं ।

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों ने पारम्परिक विद्यालयीय शिक्षा के क्षेत्र में अनेक त्रुटियों को देखा था । इन्हीं त्रुटियों को दूर कर नवीन शिक्षा की पुनर्रचना करना दोनों का लक्ष्य था । दोनों पुस्तकीय शिक्षा के विरोधी थे । भारतीय विद्यालयीय शिक्षा में :-

1- पाठ्यक्रम संकुचित एवं एकांगी था - पाठ्यक्रम केवल पुस्तकीय ज्ञान पर आधारित था । इसमें व्यावहारिक शिक्षा शिक्षा का अभाव था । युग के परिवर्तन के साथ शिक्षा परिवर्तित नहीं हो सकी थी । अब भी 19 शती के पाठ्यक्रम का अनुसरण किया जाता है । हम प्राचीन परम्पराओं के मोह से मुक्त नहीं हुये है । अध्ययन में बौद्धिक एवं सैद्धान्तिक पहलुओं की अधिकता है । इसलिए पुस्तकों की पढ़ाई ही प्रधान बन गई है । जीवनोपयोगी तथ्यों का कोई स्थान नहीं है । पाठ्यक्रम की उपादेयता एवं स्वाभाविकता का लक्ष्य रखकर

ही गांधी जी ने अपनी बेसिक शिक्षा योजना रखी है ।

2- पारम्परिक शिक्षा में बालकों के लिए कोई उचित लक्ष्य का न पाया जाना भी विरोध का कारण है ।

3- परम्परागत शिक्षा में रुचि व क्रिया दोनों का अभाव था ।

4- उ पाठ्यक्रमेत्तर विषयों, सार्वजनिक शिक्षा तथा

5- शिक्षक शिक्षार्थी में व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव था ।

इन त्रुटियों के कारण महात्मा गांधी जी जॉन डिवी की भाँति परम्परागत शिक्षा प्रणाली के विरोधी थे ।

जॉन डिवी ने भी अपने देश अमेरिका में प्रचलित शिक्षा प्रणाली की आलोचना की, क्योंकि :-

1- परम्परागत पढ़ाई का केन्द्र बालक के जीवन से बाहर केन्द्रित था । यह कहा जाता था कि शिक्षा का केन्द्र बालक की स्वयं की क्रियाशीलता में न होकर अध्यापकों, पाठ्य पुस्तकों तथा पाठ्यक्रम में है । इसका कारण यह था कि परम्परावादी, बालक को अपनी क्षमताओं व अनुभवों में विकास करने वाला तथा अनुभवों से पर्यावरण से व्यवहार करके उसे नियंत्रण करने वाला तथा एक जीवधारी प्राणी समझने में असफल रहे हैं । परिणाम स्वरूप विषय वस्तु को बालक से अलग समझा जाने लगा । शिक्षण औपचारिक, प्रतीकात्मक, स्थिर एवं मृत सा हो गया । विद्यालय सुनने व समूह शिक्षण के स्थान बन गये थे तथा जीवन से विद्यालय का सम्बन्ध विच्छेद हो गया था ।

2- शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया नहीं समझा गया ।

जॉन डिवी का कथन है :-

"पारम्परिक विद्यालयों की असामाजिक विशेषता को इस तथ्य में देखा जाता है कि यह अपने तत्वों के प्रारम्भिक गुणों में से एक गुण "शान्ति" को स्थापित करने पर बल देता है ।"[1]

इस प्रकार दोनों दार्शनिक परम्परागत शिक्षा प्रणाली के विरुद्ध हैं । दोनों अपने देश की शिक्षा में व्याप्त बुराइयों से भिज्ञ थे । अतः दोनों का विरोध समीचीन ही है ।

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों शिक्षा के वैयक्तिक व सामाजिक पक्ष पर बल देते हैं :-

गांधी जी की शिक्षा पद्धति में सामाजिकता का जॉन डिवी की भाँति विशेष महत्व है । प्रयोजनवादियों की भाँति वे सामाजिक सम्बन्धों एवं सामुदायिक उत्तरदायित्व को महत्व देते हैं । वे शिक्षा व जन सेवा के घनिष्ठ सम्बन्ध को समझते हैं । दोनों शिक्षा शास्त्री वातावरण व सामाजिक स्थिति के अनुकूल शिक्षा देने के पक्षधर है । शिक्षा को सदैव मानव केन्द्रित अथवा समाज केन्द्रित बनाने में संलग्न रहे है । शिक्षा के सामाजिक ध्येय का तात्पर्य है वातावरण सृजित करना । इसके लिए विज्ञान की जानकारी आवश्यक है । वैज्ञानिक विधियों को सामाजिक व्यवस्था की उन्नति के लिए प्रयोग किया जा सकता है । इसीलिए शिक्षा की सामान्य प्रकृति वैज्ञानिक एवं सामाजिक दोनों है ।

जिस प्रकार जॉन डिवी व्यक्ति व समाज तथा

वातावरण को महत्त्व देते हैं उसी प्रकार गांधी जी भी इन्हें उपयोगी मानते हैं । बेसिक शिक्षा में भी दोनों सामाजिक व वैयक्तिक लक्ष्यों को सामने रखकर विद्यार्थी को शिक्षा प्रदान की जाती है । बालक के लिए आधार भूत हस्तकला का चुनाव उसके वातावरण के अनुकूल ही होता है । बेसिक शिक्षा विद्यार्थियों में इस प्रकार के आदर्शों के प्रादुर्भाव पर बल प्रदान करती है ताकि उनमें क्रियाशीलता, आत्म निर्भरता एवं सामाजिकता का विकास हो सके । इस प्रकार बेसिक शिक्षा बालकों में सामाजिक गुणों के विकास का प्रयत्न करती है । इसलिए पुस्तकीय शिक्षा अथवा ज्ञान पर बल नहीं दिया जाता है । शिक्षा को शिल्प अथवा हस्तकला के चारों ओर केन्द्रित करके प्रदान किया जाता इ है । इससे उनमें मिलकर कार्य करने की प्रवृति का विकास होता है तथा साथ ही उनमें सहयोग, सदभावना, मैत्री भावना, प्रेम, सहिष्णुता आदि गुण विकसित हो जाते हैं ।

बेसिक शिक्षा में इस सामाजिक पक्ष को दो दृष्टिकोण से देखते हैं , प्रथम नागरिकता के दृष्टिकोण से तथा दूसरे सर्वोदय समाज की स्थापना के दृष्टिकोण से । प्रजातंत्र की सफलता हेतु बालक में नागरिकता के गुणों के विकास पर बल दिया जाता है ताकि वे अपने अधिकार व कर्तव्य की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकें । बेसिक शिक्षा ऐसे सर्वोदयी समाज की स्थापना करना चाहती है जहाँ धनी गरीब ऊँच नीच का भेद समाप्त कर प्रत्येक व्यक्ति को समानाअधिकार प्राप्त हो । ऐसा समाज हो जहाँ

समर्थ असमर्थ को न सताये, स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ हो, संग्रह की अपेक्षा त्यागवृत्ति हो, शोषण के स्थान पर सेवा का भाव पाया जावे । बेसिक शिक्षा सामूहिक एवं सहयोगी जीवन पर बल देती है । गांधी जी शिक्षा को एक ऐसी प्रक्रिया मानते हैं जिसके द्वारा सामाजिक पुनरुत्थान हो । वे शिक्षा द्वारा ऐसे समाज का पुनर्निर्माण करना चाहते हैं जहाँ कोई जाति, रंग, धर्म आदि का अन्तर न हो । बल्कि समानता, न्याय, प्रेम तथा व्यक्ति का आदर हो । उनमें आत्म विश्वास एवं निर्णय करने की सामर्थ्य हो । बेसिक शिक्षा में नैतिक चरित्र के विकास को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है ।

महात्मा गांधी जी वैयक्तिक विकास को महत्त्व देते हुये कहते हैं कि :-

"व्यक्ति एक सर्वोच्च विचारणीय प्राणी है ।"[1]

और इसी सम्बन्ध में गांधी जी के विचारों के प्रति एन0के0 बोस ने लिखा है :-

> "भय के कारण राज्य की शक्ति में वृद्धि होती है । जिसे मैं (गांधी जी) अच्छा नहीं समझता हूं । यद्यपि शोषण को कम करके राज्य बाह्य रूप से मानव की भलाई ही करता है किन्तु जिस वैयक्तिकता के मूल में समस्त उन्नति निहित है उसका विनाश करके वह मानव जाति की बहुत बड़ी हानि भी करता है ।"[2]

1- यंग इण्डिया 13-11-24 नवजीवन प्रेस

2- बोस एन0के0, सलेक्शन फ्राम गांधी, नवजीवन पृष्ठ-27 ।

अतः इसमें सन्देह नहीं है कि गांधी जी वैयक्तिकता को सुरक्षित रखना चाहते हैं । समस्त भेदों को भुलाकर प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का वे आदर करते हैं । गांधी जी विभिन्नता में एकता के हामी हैं । उनके विचार से समाज वह है जहाँ सभी को अपने व्यक्तिगत चरित्र को हानि पहुँचाये बिना सम्पूर्ण मानव जाति की भलाई के लिये अपनी भूमिका निभानी पड़ती है । किन्तु हिंसा के माध्यम से वे न तो व्यक्ति का और न तो समाज का ही विकास करना चाहते हैं क्योंकि :-

> "यह बहुत दुख की बात होगी यदि भारत हिंसा से नये समाज की रचना का प्रयत्न करेगा । हिंसा से भलाई लाने का प्रयास वैयक्तिकता का विनाश है । जब अहिंसा प्रेम, असहयोग की शक्ति से परिवर्तन लाया जायेगा ---- (तभी) जगत की उन्नति को निश्चितता प्रदान की जा सकती है ।"[1]

गांधी जी मानते हैं कि यदि व्यक्ति का उचित विकास किया जाता है तो समाज जिसका वह सदस्य होता है स्वतः विकसित हो जायेगा ।

महात्मा गांधी जी कहते हैं :-

> "मैं अनुभव करता हूँ कि यदि मैं व्यक्ति के चरित्र निर्माण में सफल हुआ तो समाज स्वयं अपनी देखरेख कर लेगा। इस प्रकार के विकसित मानव से निर्मित सामाजिक संगठन में मैं बिलकुल विश्वास करता हूँ ।"[2]

1- हरिजन 9-3-47

2- हरिजन 17-11-33 अहमदाबाद ।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि गांधी जी व्यक्ति को कितना महत्त्व देते हैं। वे मानवी सेवा को ईश्वर सेवा मानते हैं। इस उच्च आदर्श में समाज सेवा का भाव निहित है। उनका कथन है कि :-

> "मैं व्यक्ति की स्वतंत्रता को महत्त्व देता हूँ परन्तु तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिये कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपनी वर्तमान स्थिति से सामाजिक उन्नति की आवश्यकता से अपने व्यक्तित्त्व से समायोजन की क्रिया को सीखकर ही ऊपर उठा है। ----- पूरे समाज के कल्याण के लिये अपनी स्वयं की इच्छा से सामाजिक प्रतिबन्धों के आधीन होने से व्यक्ति तथा उस समाज का जिसका वह सदस्य होता है दोनों को लाभ मिलता है।"[1]

अतः सामाजिक दृष्टिकोण से शिक्षा द्वारा व्यक्ति में व्यावसायिक दक्षता, नागरिक कुशलता, निषेधात्मक एवं विधेयात्मक नैतिकता, बालक की अन्तर्निहित क्षमताओं का विकास, बालक की स्वाभाविक क्षमताओं को मुक्त व संगठित करने हेतु स्वतंत्र पर्यावरण का निर्माण तथा सामाजिक कुशलता का विकास होना चाहिये।

जॉन डिवी शिक्षा को विकास का दूसरा रूप मानते है। उनके अनुसार शिक्षा का लक्ष्य "सामाजिक गुणों से युक्त चरित्र विकास करना है।" इस प्रकार वे भी गांधी की भाँति शिक्षा में व्यक्तिगत एवं सामाजिक उद्देश्यों में समन्वय स्थापित करने के पक्षधर है। सामाजिक निपुणता डिवी की शिक्षा का उद्देश्य है।

1- हरिजन 27-5-39 अहमदाबाद ।

जॉन डिवी भी व्यक्ति को महात्मा गांधी की भाँति समाज से अलग नहीं मानते है, क्योंकि उनके विचार से :-

"समस्त शिक्षा व्यक्ति द्वारा जाति की सामाजिक चेतना में भाग लेने से विकसित होती है।"[1]

इसलिये शिक्षकों को :-

"व्यक्तिगत गुणों का सामाजिक उद्देश्यों एवं मूल्यों से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये।"[2]

जॉन डिवी के अनुसार विद्यालय व्यक्ति व समाज को अलग करने का स्थान नहीं है बल्कि विद्यालय एक ऐसी सामाजिक संस्था है जहाँ शिक्षा के प्रयोग व अनुभवों के पुनर्निर्माण का लक्ष्य सामाजिक कल्याण है। बालक की वैयक्तिकता के महत्व के सम्बन्ध में वे कहते हैं :-

"बालक की शक्तियों को जिन सामाजिक परिस्थितियों में वह अपने को पाता है उसकी माँग द्वारा प्रेरित करना एक मात्र सच्ची शिक्षा है।"[3]

डिवी ने सामाजिक पक्ष पर बल देते हुये कहा है :-

"जो सम्बन्ध भोजन एवं सन्तानोत्पादन का शारीरिक जीवन से है वही सम्बन्ध शिक्षा का सामाजिक जीवन से है।"[4]

1- जॉन डिवी : पैडागॉजिक क्रीड, पृष्ठ-44 ।
2- जॉन डिवी : द डिवी स्कूल, पृष्ठ-465 ।
3- जॉन डिवी : पैडागॉजिक क्रीड, पृष्ठ-45 ।
4- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन, पृष्ठ-9 ।

वे सामाजिक कुशलता के सम्बन्ध में कहते हैं कि :-

"शैक्षिक उद्देश्य के रूप में सामाजिक कुशलता का अर्थ सहयोगी या सामान्य क्रियाओं में स्वतंत्रता पूर्वक एवं पूर्ण रूपेण सम्मिलित होने की शक्ति का विकास करना होना चाहिये।"[1]

इस प्रकार महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों की विचारधारा सामाजिक शिक्षा के प्रति समान है किन्तु गांधी जी की सामाजिक शिक्षा डिवी की अपेक्षा मजबूत आधारशिला पर आधारित है, क्योंकि उसका लक्ष्य इस लोक तथा परलोक दोनों से है। जबकि जॉन डिवी का सम्बन्ध मानव के भौतिक समाज से ही है।

दोनों शिक्षा शास्त्री विद्यालय का संगठन समाज की आवश्यकताओं के अनुसार करना चाहते हैं। इसलिए विद्यालय समाज का एक लघु रूप हो जाता है। जॉन डिवी विद्यालय को समाज का लघु रूप ही मानते हैं। जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी जी दोनों समाज, परिवार, संघो तथा कारखानों आदि के सरल रूप को विद्यालय में स्थित करने के पक्षधर है। विद्यालय के पर्यावरण को बालकों की रूचियों एवं भावनाओं को जाग्रत करके समाज की उन्नति के योग्य बनाने पर बल देते हैं। दोनों शिक्षा को समाजापयोगी बनाना चाहते हैं। शिक्षा में क्रिया व श्रम के महत्व को प्रतिपादित करके वे बालकों का सामाजीकरण करना चाहते हैं।

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन पृष्ठ-123 ।

दोनों यह मानते हैं कि समाज एक समग्रता है और विशिष्ट उपादानों द्वारा इसकी अभिव्यक्ति होती है ।

समाज का भौतिक रूप सम्बन्ध ग्राही मनुष्यों द्वारा निर्मित किया जाता है और इसका आध्यात्मिक रूप विज्ञान, कला, धर्म एवं दर्शन आदि द्वारा व्यक्त होता है । समाज की समग्रता एवं क्रियाशीलता के पीछे वर्तमान अध्यात्मिक आधार की स्वीकृति, दार्शनिक राजनीति शास्त्र की विशेषता है । समग्रता समाज की ही देन है । मनुष्य के भौतिक एवं मानसिक विकास की उपज ही सभ्यता है । मनुष्य के सभी गुण समाज की ही देन है । जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी दोनों यह चाहते हैं कि विद्यालय को एक आदर्श समाज के रूप में होना चाहिये । जीवन एक सामाजिक कार्य है और विद्यालय समाज का रूप । जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी दोनों यह मानते हैं कि शिक्षा एक आन्तरिक पवित्रता है । जॉन डिवी का कथन है :-

"शिक्षा का तात्पर्य आन्तरिक पवित्रता जो सामाजिक स्वभाव या रुचि से ही आती है ।"

<u>महात्मा गांधी की हस्तकला केन्द्रित शिक्षा तथा प्रोजेक्ट पद्धति में पर्याप्त समानता है</u> :-

शिक्षा में महात्मा गांधी की प्रयोजनवादी विचारधारा का स्पष्ट रूप हमें उनकी हस्तकला केन्द्रित बुनियादी शिक्षा पद्धति में देखने को मिलता है । गांधी जी भी प्रयोजनवादी जॉन डिवी की भाँति स्व-क्रिया द्वारा सीखने पर जोर देते हैं । रुचि के

सिद्धान्त को दोनों दार्शनिक शिक्षण में विशेष महत्व प्रदान करते हैं । महात्मा गांधी जी हस्तकला को केन्द्र में रखकर विभिन्न विषयों का शिक्षण प्रदान करने के पक्षधर है । महात्मा गांधी जी की बेसिक शिक्षा योजना तथा जॉन डिवी के विचारों के आधार पर उनके शिष्य किलपैट्रिक द्वारा प्रतिपादित योजना पद्धति में पर्याप्त समानता पाई जाती है । हस्तकला केन्द्रित शिक्षा तथा प्रोजेक्ट पद्धति में अधिक समानता होते हुये भी दोनों एक जैसी नहीं है । निम्नलिखित अन्तर हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं ।:-

1- महात्मा गांधी जी कुछ चुनी हुई हस्तकला को ही शिक्षण पद्धति में महत्व देते हैं । परन्तु प्रोजेक्ट प्रणाली में प्रोजेक्ट अनेक हो सकते हैं । महात्मा गांधी की योजना में चयनित हस्तकला ग्रामीण जीवन के पर्यावरण एवं परिस्थितियों के अनुकूल होती है ।

2- प्रोजेक्ट प्रणाली में विभिन्न विषयों के शिक्षण हेतु विभिन्न प्रोजेक्ट चुने जाते हैं । महात्मा गांधी जी समस्त विषयों की शिक्षा हस्तकला द्वारा ही देना चाहते हैं ।

3- महात्मा गांधी जी हस्तकला द्वारा आत्म निर्भरता विशेषकर आर्थिक आत्म निर्भरता का विचार रखते हैं । किन्तु प्रोजेक्ट प्रणाली में इस प्रकार का कोई भी विचार सन्निहित नहीं है ।

बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध में गांधी जी का कथन है कि :-

> "बच्चों को जो भी हस्तकला सिखाई जाय, उसके द्वारा उन्हें पूरी तरह से शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक

शिक्षा दी जाय । उद्योग की तमाम क्रियाओं के द्वारा आपको बच्चों के अन्दर जो भी अच्छी चीज है उन सबको विकसित करना है । आप इतिहास, भूगोल, गणित के जो पाठ सिखायेंगे वे सब उस उद्योग से सम्बन्धित होंगे ।"[1]

वे पुन: कहते हैं :-

"मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि औद्योगिक शिक्षा के साथ साहित्यिक शिक्षा भी देनी चाहिये । ऐसा करने पर वे औद्योगिक तालीम को एक नवीन मशक्कत नहीं समझेंगे और साहित्यिक शिक्षा में एक नया संतोष और नई उपयोगियता आ जायेगी ।"[2]

वे इस विचार के है कि :-

"यदि बचपन से बालकों को ---- उपयोगी कामों में लगाया जाय और जिस उद्योग से उनका शरीर काले उस उद्योग के फायदे और उसमें काम आने वाले यंत्रों की बनावट की जानकारी दी जाय तो बुद्धि अपने आप बढ़ेगी । ---- गणित शास्त्र और दूसरे शास्त्र का ज्ञान-------- दिया जाता रहे तो तीनों का विकास एक साथ होगा ---- हमारी उलझी हुई समस्यायें स्वयं सुलझ जायेगी ।"[3]

गांधी जी ने शिक्षा को उद्योग केन्द्रित माना है । गांधी जी उद्योग को उद्देश्यपूर्ण रचनात्मक एवं समाज की दृष्टि से उपयोगी क्रियाशीलन मानते हैं । डिवी की भाँति वे उद्देश्य

1- हरिजन सेवक ।1-6-38 ।
2- - तदैव -
3- हरिजन बन्धु ।1-4-37 ।

पूर्ण एवं उपयोगी कार्य को महत्व देकर उपयोगिता के सिद्धान्त का ही प्रतिपादन करते हैं । बालक आरम्भ में क्रियाशीलनों को करता हुआ ज्ञान प्राप्त करता है । अतः उद्योग व कार्य, ज्ञान प्राप्ति का साधन है । उद्योग केन्द्रित शिक्षा का यह तात्पर्य नहीं है कि उद्योग साध्य है बल्कि वह तो ज्ञान प्राप्ति का साधन ही है ।

हमने देखा है कि शिक्षा का केन्द्र बालक ही है । बालक विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को करता हुआ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है । इस प्रकार वह अपने क्रियाशीलनों की योजनायें बनाता है । योजना रूपी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह साग सब्जी आदि की खेती करता है । उसकी यह योजना उसके परिवार, विद्यालय व समाज की आवश्यकतानुसार ही होती है । उसकी योजना का प्रारूप सामाजिक, वैयक्तिक, विद्यालयीय, राष्ट्रीय एवं पारिवारिक भी होता है । योजना के अनुसार कार्य करने के लिए उसे अनेक जानकारी ग्रहण करनी पड़ती है । जैसे अन्य देशों में क्या और कहाँ तथा कितना पैदा होता है । आज तथा प्राचीन युग की व्यवस्था में क्या अन्तर है । इन सब तथ्यों की जानकारी हेतु उसे विज्ञान, गणित सामाजिक विषय इतिहास भूगोल आदि का ज्ञान भी स्वयं ग्रहण करना पड़ता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधी जी ने अपनी शिक्षा व्यवस्था में परियोजना विधि को अपनाया था । जो जॉन डिवी की भाँति, उपयोगिता, रुचि एवं ज्ञान के समन्वय पर आधारित है ।

महात्मा गांधी की शिक्षा पद्धति अनुसंधान करके ज्ञान प्राप्ति पर बल देती है । ज्ञान, अन्वेषण, संश्लेषण, उपयोगिता, रुचि के सिद्धान्त पर आधारित है । इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधी जी का अधिकांश विचार प्रयोजनवादी सिद्धान्त से मिलता जुलता है । जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी दोनों के विचार एक जैसे है किन्तु महात्मा गांधी की परियोजना उपयोगिता वाद की आधार शिला पर जॉन डिवी की अपेक्षा अधिक मजबूती से स्थित है ।

जॉन डिवी ने सभी प्रकार के क्रियाशील कार्यों को ग्रहण किया है जैसे छोटी-छोटी ईंट द्वारा खिलौने के रूप में घर-घर निर्माण करना किन्तु गांधी जी के अनुसार जब बालक इस योग्य हो जाता है तभी उसे ईंट बनाने का कार्य दिया जाय । वे खिलौने के घर के निर्माण में आस्था नहीं रखते है । वे चाहते हैं कि बालक अपने परिवार और समाज की आवश्यकतानुसार जीवनो पयोगी वस्तुओं के निर्माण हेतु अपनी परियोजनाओं का निर्माण करे । बालक की उम्र व अवस्था को ध्यान में रखकर परियोजना का चयन होना चाहिये क्योंकि उनकी आवश्यकतायें इन्हीं से निर्देशित होती है । वे केवल जिज्ञासा शान्त करने हेतु परियोजना के निर्माण में कोई औचित्य नहीं देखते हैं । परियोजना विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये बनाई जाय । यहाँ हम देखते हैं कि महात्मा गांधी जी जॉन डिवी जैसे अनेक प्रयोजनवादियों से आगे बढ़े हुये प्रतीत हुये हैं ।

जॉन डिवी ने शिक्षा को बालक की कुछ ही अवस्था तक सीमित रखा है किन्तु गांधी जी ने अपने दर्शन को पूर्व बुनियादी, उत्तर बुनियादी और बुनियादी के रूप में परिकल्पना की है । इसलिए उनकी शिक्षा योजना अपने में बिलकुल पूर्ण है । जॉन डिवी ने अपनी शिक्षा में विभिन्न पदों का निर्माण नहीं किया है । इतना होने पर भी दोनों की विचार प्रणाली एक ही विचार से प्रेरित है । दोनों बालकों में आत्म विश्वास, आत्म निर्भरता एवं मौलिकता के विकास पर बल देते हैं । दोनों दार्शनिकों का विचार है कि नवीन ज्ञान की प्राप्ति उन सक्रिय अनुभवों द्वारा होती है जो हमें किसी वास्तविक समस्या अथवा कठिनाइयों के समाधान के समय उपलब्ध होती है ।

<u>शिक्षण प्रविधि में समानता</u>- बुनियादी शिक्षण विधि तथा प्रोजेक्ट विधि. दोनों में प्रयोजन, क्रियाशीलता, करके सीखना, स्वयं शिक्षा, उपयोगिता, स्वतंत्रता तथा श्रम का आदर सीखने को समवायित प्रक्रिया, स्वाभाविक पर्यावरण में किया हुआ कार्य, स्वावलम्बन आदि की भावना के विकास पर बल दिया जाता है । महात्मा गांधी बालकों की आत्म निर्भरता एवं स्वावलम्बन की भावना के विकास के लिए कार्य, उद्योग या हस्तकला को ही शिक्षोपलब्धि का केन्द्र बिन्दु मानते हैं । रूसी मौलिक विचारक शात्सकी का "कम्पलेक्स मेथड", प्रयोजनवादी क्रियात्मक शिक्षा के श्रेष्ठ उन्नायक जॉन डिवी की "प्रोजेक्ट पद्धति", पागोबिन का "एक्टीविटी स्कूल" तथा महात्मा गांधी की "बेसिक शिक्षा योजना" "क्रिया और ज्ञान की एकता" के सिद्धान्त पर आधारित है । कम्पलेक्स मेथड में

कार्य एवं परिश्रम, सामाजिक व संवेगात्मक जीवन और खेल पर विशेष महत्त्व दिया जाता है । क्योंकि उनका बालकों के बौद्धिक, शारीरिक मानसिक एवं कलात्मक विकास में सर्वाधिक महत्त्व है ।

दोनों शिक्षा शास्त्री मानते हैं कि विद्यालय को समाज की प्रतिछाया के रूप में होना चाहिये :-

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी विद्यालय को समाज के प्रतिबिम्ब के रूप में स्थापित करने के पक्षधर है । शिक्षा द्वारा वे बालक का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं चारित्रिक विकास करना चाहते हैं । इनका विकास समाज में ही होता है । सामाजिक आदर्श, प्रतिमान, मूल्यों के लिए ही बालक के विकास पर बल दिया जाता है । देश काल एवं परिस्थितियों के अनुसार समाज के मूल्य, आदर्श व प्रतिमान परिवर्तित होते रहते हैं । इस परिवर्तनशील परिस्थिति के कारण विद्यालयों को अपने स्वरूप में परिवर्तन करना पड़ता है । इसलिए दोनों दार्शनिक विद्यालयीय परिक्षेत्र के सम्बन्ध में अपनी विचारधारा के अनुसार चिन्तन कर उसे समाज की प्रतिछाया के रूप में स्थापित करने के पक्षधर हैं । महात्मा गांधी कहते है कि :-

> "स्थानीय उद्योग अथवा हस्तकला ही शिक्षा की धुरी है । इसके द्वारा ही अन्य विषयों की शिक्षा प्रदान की जाय । यह उद्योग यंत्रवत नहीं बल्कि वैज्ञानिक ढंग से क्यों और कैसे का ज्ञान कराते हुये सिखाया

जाय तथा इसी प्रसंग में अन्य विषयों की भी ज्ञान प्राप्ति कराई जाय।"[1]

इसलिए बेसिक शिक्षालय में समाज तथा उद्योग से सम्बन्धित क्रियायें कराई जाती है ताकि विद्यार्थी अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को वहन कर सके।

महात्मा गांधी की बेसिक शिक्षा योजनायें जॉन डिवी की शिक्षा योजना से भिन्न भी है क्योंकि डिवी की योजना ग्रामीण नहीं है जबकि गांधी जी की योजना ग्रामीण है। गांधी जी कहते हैं :-

"मेरी योजना (जॉन डिवी की योजना से) भिन्न है क्योंकि यह ग्रामीण योजना है।"[2]

गांधी जी की विद्यालयी शिक्षा का लक्ष्य विद्यार्थियों को बेरोजगारी के विरुद्ध एक सुरक्षा प्रदान करना है। उन्होंने कहा है कि :-

"विद्यालयी शिक्षा को बालकों को बेरोजगारी के विरुद्ध एक प्रकार की सुरक्षा देनी चाहिये।---- चौदह वर्ष की आयु में बालक को कमाने वाले व्यक्ति के रूप में विद्यालय से बाहर भेजा जाना चाहिये।"[3]

1- हरिजन (साप्ताहिकी) 4-12-37 नवजीवन प्रेस अहमदाबाद।

2- एजूकेशनल रीकन्स्ट्रक्शन पृष्ठ-132 ।

3- हरिजन (साप्ताहिकी) 11-9-37 एवं 18-9-37, नवजीवन प्रेस अहमदाबाद ।

बेसिक विद्यालयों में हस्तकला की शिक्षा के सम्बन्ध में केoजीoसैयदन ने लिखा है कि :-

"हस्तकला की शिक्षा यांत्रिक विधि से न देकर इस विधि से दी जाय ताकि छात्र उसके सामाजिक तथा वैज्ञानिक महत्व से परिचित हो जायें ।"[1]

बेसिक शिक्षा योजना का विकास ही इस आधार पर हुआ है कि शिक्षा द्वारा ऐसे व्यक्ति निर्मित किये जायें जो समाज के लिये हितकर हो सकें । वे विद्यालयीय शिक्षा को सामाजिक पुनरुत्थान एवं उसका पुनर्निर्माण करने के दृष्टिकोण से व्यवस्था करना चाहते हैं । अतः विद्यार्थियों को अच्छे नागरिक बनाने व सामूहिक कार्य के लिए प्रयत्न करना चाहिये ।

जॉन डिवी प्रयोजनवादी, साधनवादी, प्रयोगवादी परिणाम वादी तथा समाजवादी दार्शनिक हैं । महात्मा गाँधी जी की भाँति जॉन डिवी का परम्परागत सैद्धान्तिक शिक्षा से मोह भंग हो गया था और शिक्षा के सामाजिक कार्य में उनका विश्वास दृढ़ हो गया था तभी तो उनकी पुत्री जेनoएमoडिवी ने लिखा है कि :-

"शुद्ध सैद्धान्तिक शिक्षा से असंतोष उत्पन्न होने के कारण दर्शन के सामाजिक कार्य के विश्वास में उनका विचार दृढ़ हो गया । इस विश्वास ने शुद्ध

1- एजूकेशनल रीकन्स्ट्रक्शन पृष्ठ-132 ।

सैद्धान्तिक आदर्शों को व्यावहारिक अनुभव से नियन्त्रित व विकसित करने के लिये जोर डाला । ------ दर्शन का कार्य क्षेत्र सामाजिक प्रयोग से भर गया । प्रत्यक्ष प्रयोग पर विद्यालयों में बल दिया जाने लगा ।"[1]

जॉन डिवी ने अपने विद्यालयीय योजना के संगठन के सम्बन्ध में कहा है कि :-

"समस्त शिक्षा की अन्तिम समस्या मनोवैज्ञानिक व सामाजिक कारकों को मिलाने की है ।-------- सामाजिक कारण यह चाहता है कि व्यक्ति जिस पर्यावरण में रहता है उस पर्यावरण के सामाजिक महत्व को जाने । ----- सन्तुलन की माँग यह है कि बालक अपनी अभिव्यक्ति इस प्रकार करें ताकि वह सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त कर सके।"[2]

इस प्रकार विद्यालय के समक्ष मुख्य रूप से निम्नलिखित समस्यायें थी जिसकी झलक हमने महात्मा गांधी के बेसिक विद्यालयों में भी देखी है :-

1- विद्यालय को समाज के निकट कैसे लाया जाय ।

2- विद्यालयीय व्यवस्था कैसे की जाय कि विद्यालय व परिवार एक हो जायें ।

1- जे0एम0डिवी : द फिलॉसफी ऑव जॉन डिवी वैल्यूम-1 पृष्ठ-27

2- ऐज कोटेड इन आर्थर, एच0विर्थस वैल्यूम : जॉन डिवी ऐज एजूकेटर पृष्ठ-88 ।

3- विभिन्न विषयों जैसे इतिहास, भूगोल, विज्ञान कलाआदि को किस प्रकार पढ़ाया जाय कि इनका बालक के जीवन से सम्बन्ध स्थापित हो सके ।

उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए ही जॉन डिवी का विद्यालय कार्यरत था । डिवी के विद्यालय की तथा महात्मा गांधी के टालस्टॉय फार्म, फोनिक्स बस्ती तथा साबरमती आश्रम की विशेषतायें प्रायः एक सी थी । दोनों के विद्यालयीय व्यवस्था में :-

अ- रूचि व परिश्रम में सम्बन्ध ।

ब- व्यक्ति व समाज में सम्बन्ध ।

स- विद्यालय व समाज में सम्बन्ध ।

द- वैज्ञानिक व औद्योगिक आविष्कारों व परिवर्तनों को जानकर उनका सामाजिक परिक्षेत्र में सम्बन्ध स्थापित करने पर बल दिया जाता है । दोनों दार्शनिक घटित होने वाले परिवर्तनों के आधार पर विद्यालयीय परिवेश बदलना चाहते हैं ।

जॉन डिवी का कथन है :-

> "समाज की स्थिति में परिवर्तन आने से पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि में भी सुधार व परिवर्तन आवश्यक हो जाता है ।"[1]

1- जॉन डिवी : द स्कूल एण्ड सोसाइटी, पृष्ठ-4. ।

विद्यालय व समाज के घनिष्ठ सम्बन्ध पर बल :-

जॉन डिवी का विचार है कि विद्यालय समाज के संचित अनुभवों को ही केवल प्रदान नहीं करता है बल्कि विद्यार्थियों को सामाजिक संगठनों में घटित होने वाले परिवर्तनों से भी परिचित कराता है । वह विद्यार्थियों की बुद्धि को समाज की परिवर्तित परम्पराओं, मूल्यों, आदर्शों एवं ज्ञान से भी भरने का प्रयास करता है । इतना ही नहीं विद्यालय का कार्य क्षेत्र इनसे भी आगे बढ़कर "शिक्षा को समाज की उन्नति और सुधार की मौलिक विधि" बना देता है । इस प्रकार समाज स्वयं अपने उद्देश्यों का सूत्र रूप में वर्णन करता रहता है जिसे शिक्षा को स्वीकार करना पड़ता है, सामाजिक परिवर्तन के अनुसार समाज स्वयं के साधनों का संगठन करता है, और जिस दिशा में परिवर्तन करना चाहता है उसी दिशा में परिवर्तित हो जाता है । समाज यह कार्य दो प्रकार से करता है :-

1-- नये मूल्यों के लिए मार्ग दिखाकर

2-- बौद्धिक विकास करके और स्वयं के परिवर्तन हेतु सामाजिक क्षमता को बढ़ाकर ।

महात्मा गांधी जी की भाँति जॉन डिवी मानते हैं कि विद्यालय यह कार्य केवल प्रजातंत्रात्मक समाज में ही कर सकता है । दोनों प्रजातंत्रात्मक समाज के पक्षधर हैं । इसका कारण यह है कि दोनों की मान्यता है कि केवल ऐसे समाज में ही व्यक्ति की बुद्धि अनुभव की सम्भावनाओं को खोजने के लिए स्वतंत्र होती है ।" दोनों शिक्षाशास्त्री का जिस प्रकार पाठ्यक्रम व शिक्षण

विषियों के प्रति अपना स्वयं का दृष्टिकोण है उसी प्रकार उनका विद्यालय के प्रति भी स्वयं का विचार है ।

विद्यालय एक विशेष भाव में ही शिक्षण संस्था है :-

शिक्षा स्वयं में अनुभव होनेसेभी प्रत्येक सामाजिक संस्था शैक्षिक संस्था है किन्तु शिक्षालय एक विशेष भाव में ही संस्था है । गृह, राज्य, धर्म, व्यापार, उद्योग भी शैक्षिक साधन है । किन्तु इन संस्थाओं में शिक्षा अप्रधान वस्तु है जबकि विद्यालय . . सामाजिक शिक्षा का प्रमुख साधन है ।

विद्यालय और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध :-

इस तथ्य से प्राय: कोई भी असहमत न होगा कि विद्यालय अपने स्वयं के समाज के सामाजिक व उच्च शैक्षिक आदर्शों, आवश्यकताओं और रूचियों को तथा विस्तृत अर्थ में राष्ट्रीय व विश्व समाज की जिसका वह एक भाग है, विशेषताओं को प्रकट करता है । जब तक विद्यालयीय जीवन को सामाजिक जीवन से सम्बन्धित नहीं किया जाता है तब तक कोई भी विद्यालय प्रभावशाली कार्य नहीं कर सकता है । हम जानते हैं कि व्यक्ति का विकास सामाजिक पर्यावरण में ही होता है । इसलिए विद्यालय भी एक समाज है क्योंकि विद्यालय ही वह स्थान है जहाँ सामाजिक समस्याओं का हल ढूँढ़ा जाता है । इसीलिये जॉन डिवी विद्यालय को समाज का लघु रूप कहते हैं, और महात्मा गांधी व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी मानते हैं । अत: व्यक्ति में सामाजिक गुणों का विकास विद्यालयीय प्रांगण में होता है ।

विद्यालय सामाजिक वातावरण देता है । यदि विद्यालयीय वाता-वरण सामाजिक आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों के अनुकूल न हो तो विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास ही न हो । इसलिये विद्यालय को समाज का सरलतम रूप प्रस्तुत करना चाहिये ।

जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी दोनों इस बात को मान्यता देते हैं कि एक अच्छा विद्यालय ही एक अच्छे समाज का निर्माण कर सकता है । दोनों शिक्षा शास्त्री विद्यार्थियों के स्वाभाविक अभिरूचियों के अनुसार सहकारिता पूर्ण उपयोगी जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देना चाहते हैं । बालको की शिक्षा में वे उपयोगी क्रियाओं को महत्व देते हैं । वे पाठ्य वस्तु को जीवन से सम्बन्धित करके पढ़ाने के पक्षधर हैं । इसलिए दोनों के विद्यालयों में क्रियाशीलन कार्यों को महत्व दिया जाता है । जॉन डिवी के अनुसार :-

"क्रियाशील बनाये रखने से विद्यालय नये भावों से अनुप्राणित रहता है, विद्यालय का जीवन से सीधा सम्पर्क रहता है और विद्यालय समाज का लघु रूप है।"

दोनों शिक्षा शास्त्री बालको को क्रियाशील रखने के साथ-साथ समाजोपयोगी नागरिक भी बनाना चाहते हैं किन्तु जॉन डिवी और महात्मा गांधी के क्रियाशीलन कार्यों में अन्तर यह है कि महात्मा गांधी विद्यालयीय क्रियाशीलन कार्यों का लक्ष्य सामाजिक क्षमताओं के विकास के साथ-साथ आर्थिक मूल्यों की उपलब्धि भी है । जबकि जॉन डिवी विद्यालय का लक्ष्य आर्थिक मूल्यों को

प्राप्त करना न मानकर सामाजिक क्षमताओं का विकास मानते हैं । विद्यालयीय पेशों से दोनों विद्यार्थी को जीवन की वास्तविकताओं से परिचित कराने पर बल देते हैं जीवन की वास्तविकताओं का सम्बन्ध आवास, भोजन, वस्त्र, एवं सांस्कृतिक तथ्यों एवं आवश्यक वस्तुओं के निर्माण से है । सामाजिक जीवन के लिए उद्यत होने का तात्पर्य ही सामाजिक कार्यों में लगना है। अतः दोनों शिक्षा शास्त्री शिक्षा के सामाजिक पक्ष पर बल देते हैं।

जॉन डिवी व महात्मा गांधी शिक्षा को मानव व समाज केन्द्रित बनाने पर बल देते हैं । शिक्षा मानव कल्याण व सामाजिक व्यवस्थाओं को विकसित करने का माध्यम है । इसलिए विज्ञान का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है । बटलर के अनुसार :-

"शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य का तात्पर्य संसार को उत्तमतर संगठित पर्यावरण मानना है ।"

जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी दोनों सामाजिक कुशलता को महत्त्व देते हैं । सामाजिक सम्बन्धों के विभिन्न रूपों में मधुर सम्बन्ध बनाये रखने की बहुमुखी कुशलता को ही हम सामाजिक दक्षता मानते हैं । महात्मा गांधी जी सामाजिक कुशलता एवं सांस्कृतिक लक्ष्य को समान मानते है जॉन डिवी की भी विचारधारा ऐसी ही है किन्तु महात्मा गांधी का सांस्कृतिक उद्देश्य जॉन डिवी की अपेक्षा व्यापक है ।

जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी दोनों कर्म-श्रम व क्रियाशीलन को महत्त्व देते हैं :-

जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी दोनों शिक्षण में क्रिया को महत्व देते हैं । श्रम या क्रिया अनुभव का केन्द्र है । दोनों शिक्षा शास्त्री इस बात की आवश्यकता अनुभव करते हैं कि :-

शिक्षण में उत्पादन एवं सृजनात्मक क्रियाओं की आवश्यकता है :-

उत्पादन एवं सृजनात्मक कार्यों की आवश्यकता का अनुभव अनेक शिक्षा शास्त्रियों ने किया है । रूसो, पेस्टालॉजी फ्रोबेल, मान्टेसरी, जॉन डिवी एवं महात्मा गांधी सभी ने सृजनात्मक क्रियाओं को महत्व प्रदान किया है । सभी इस तथ्य पर सहमत है कि कार्य करके सीखना सर्वोत्तम शिक्षा ग्रहण करने की विधि है । जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी दोनों का पाठ्यक्रम-शिक्षण विधि क्रिया प्रधान ही है । विद्यालय भी एक प्रकार की कर्मशाला व प्रयोगशाला है । अनुभव की प्राप्ति क्रिया के पश्चात ही सम्भव है तथा तभी उसमें स्थायित्व आता है ।

सृजनात्मक कार्य द्वारा विद्यार्थियों की ज्ञानेन्द्रियों का प्रशिक्षण हो जाता है । उनके हाथ, कान, आँख सभी प्रशि-क्षित हो जाते हैं और आगे एक प्रकार का समन्वय उत्पन्न हो जाता है । विद्यार्थी स्वभावत: क्रियाशील होता है उसे कुछ बनाकर ही परमानन्द उपलब्ध होता है और इसी से उसमें

आत्म विश्वास एवं आत्म निर्भरता की योग्यता का विकास होता है । सृजनात्मकता से ज्ञान अधिक स्थायी होता है । इस लिए ज्ञान के स्थायीकरण हेतु कार्य व श्रम अपेक्षित है । स्मृति पर जोर देकर याद रखने वाला ज्ञान अपूर्ण, अस्थायी तथा अव्यवस्थित होता है । किन्तु श्रम का कार्य करके जो ज्ञान अधिगम किया जाता है वह ।अरगनाइज्ड। संगठित ।सिस्टमैटिक। तारतम्य और ।इन्टीग्रेटेड। समन्वित होता है । उत्पादन का महत्व आर्थिक दृष्टिकोण से है । व्यवसाय सीखना व धन उपार्जन करना दोनों विधायें उन्हें आ जाती है । आज पूरे विश्व में "कार्य अनुभवों" पर जोर दिया जा रहा है । इस प्रकार कार्य-अनुभव,उत्पादन एवं सृजनात्मकता,कार्य के अनुभव है । शिक्षा का जीवन,उत्पादन कार्य के अनुभव तथा सृजनात्मकता से घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

महात्मा गांधी की शिक्षा हस्तकला केन्द्रित शिक्षा है इसका भी मुख्य तत्व "कार्य अनुभव" ही है । कार्य अनुभव शिक्षा तथा कार्य में समन्वय करने की विधि है । गांधी जी की बेसिक शिक्षा तथा कार्य अनुभव मुख्य रूप से एक से हैं । इनकी बेसिक शिक्षा को एक औद्योगिक समाज के लिए कार्य अनुभव की भाँति ही माना जाता है । इस प्रकार सृजनात्मक एवं उत्पादक क्रियायें चाहे वह हस्तकला केन्द्रित हो, चाहे कार्य अनुभव केन्द्रित हो शिक्षा -प्रणाली में आवश्यक हैं । इनकी आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि:-

।- यह एक प्रभावी शिक्षण यंत्र है ।

2- इसके द्वारा बौद्धिक तथा हस्त कार्य के मध्य अन्तर कम हो जाता है जिससे सामाजिक एकता प्राप्त हो जाती है ।

3- विद्यार्थियों का प्रवेश कार्य- संसार तथा अपने व्यवसाय में सरलता से करा देता है ।

4- राष्ट्र के उत्पादन को बढ़ाता है । उत्पादन प्रक्रियाओं में छात्रों की अन्तर्दृष्टि विकसित हो जाती है और मेहनत से कार्य करने का आभास हो जाता है ।

5- यह राष्ट्रीय एवं सामाजिक सम्पन्नता एवं एकता का आधार है ।

व्यक्ति एवं समाज में सम्बन्ध तथा एक दूसरे को समझने में सहायता मिलती है । बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में ऐसे कार्यों को महत्व दिया गया है जिसका सम्बन्ध बालक के शारीरिक, भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण से होता है । कार्य द्वारा बालक का सामाजीकरण आसानी से होता है । बेसिक शिक्षा इन दोनों पर्यावरण में समवाय स्थापित करने का उपक्रम है ।

जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी दोनों शिक्षा को विकास मानते हैं । डिवी के अनुसार :-

"सामाजिक गुणों से परिपूर्ण चरित्र का विकास ही शिक्षा है ।"

इस प्रकार जॉन डिवी व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास दोनों को महत्व देते हैं । इसीलिए विद्यार्थियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति, रूचि एवं क्रियाशीलता पर बल देते हैं । बेसिक शिक्षा में बालक के सामाजिक वातावरण को महत्व देकर हस्तकला का चुनाव

उस विद्यालय के भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण को ध्यान में ही रखकर किया जाता है । बेसिक शिक्षा में बालकों मे ऐसे आदर्शों को उत्पन्न करने पर जोर दिया जाता है जिससे उनमें क्रियाशीलता, आत्म निर्भरता तथा सामाजिकता का विकास हो सके ।

जिस प्रकार जॉन डिवी सामाजिक गुणों से युक्त चरित्र विकास को ही शिक्षा मानते है उसी प्रकार गांधी जी भी का विचार है :-

"मैंने सबसे ऊँचा स्थान हृदय की संस्कृति या चरित्र निर्माण को दिया है ।"[1]

चरित्र सामाजिक विकास की धुरी है चरित्र निर्माण द्वारा कर्तव्य परायणता, दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान, पारस्परिक सहयोग, शान्ति एवं सत्यता के मार्ग के अनुसरण करने की शिक्षा दी जा सकती है । इस प्रकार गांधी जी की शिक्षा का चारित्रिक विकास सामाजिक गुणों को अपने में शामिल किये हुये है । अतः यह निर्विवाद सत्य है कि दोनों सामाजिक गुणों से पूर्ण चारित्रिक विकास को ही शिक्षा कहते हैं । जॉन डिवी तथा गांधी जी दोनों उपयोगी उत्पादन कार्य को महत्व देते हैं । गांधी जी कहते हैं कि :-

मैं बच्चों को प्रथमतः उपयोगी हस्तकला सिखाऊँगा ताकि जिस समय वे वह शिक्षा प्राप्त करना आरम्भ करें, उसी समय से उत्पादन करना भी प्रारम्भ करदें।"[2]

1- महात्मा गांधी : आत्म कथा, पृष्ठ-408 ।

2- एजूकेशन रिकन्स्ट्रक्शन, पृष्ठ-4 ।

इस प्रकार गांधी जी उपयोगी एवं आर्थिक दृष्टिकोण के कर्म को महत्त्व देते हैं ।

जॉन डिवी का शिक्षा सिद्धान्त भी उपयोगितावाद को महत्त्व देता है । वे भी कर्म द्वारा उपयोगी वस्तुओं के उत्पादन पर बल देते हैं किन्तु उसके आर्थिक पक्ष पर बल नहीं देते हैं । जॉन डिवी का कथन है कि :-

"पेशों अथवा उद्योगों से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं से आर्थिक मूल्य की प्राप्ति का उद्देश्य नहीं है बल्कि बालकों की सामाजिक शक्तियों एवं अन्तर्दृष्टि का विकास करना है ।"[1]

उन्होंने पुन: कहा है कि :-

"पेशे संकुचित उपयोगिता की भावनाओं से बालकों को मुक्त करते हैं । ये मानव भावनाओं की सम्भावनाओं को उद्घाटित करते हैं, ये सम्भावनायें ही विद्यालयीय क्रियाशीलता को कला, विज्ञान और इतिहास के समान व्यावहारिकता प्रदान करते हैं ।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि डिवी पेशे को उपयोगिता के सिद्धान्त को महत्त्व देते है किन्तु संकुचित उपयोगिता तथा आर्थिक लक्ष्य को महत्त्व नहीं देते हैं । जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के उद्योग के प्रति यही अन्तर है । गांधी जी के चिन्तन की धारा

1- जॉन डिवी : द स्कूल एण्ड सोसाइटी पृष्ठ-15

2- - तदैव -

भारतीय परिवेश के अनुकूल है यहाँ की शिक्षा को आर्थिक पहलू को त्यागना अथवा दृष्टि से ओझल करना सम्भव नहीं था क्योंकि भारत का पुनर्निर्माण एवं पुनर्संगठन सामाजिक राजनैतिक एवं आर्थिक एवं सांस्कृतिक सभी पहलुओं के अनुसार करना था जबकि यूरोप की आर्थिक व राजनैतिक स्थिति सुदृढ़ आधार प्राप्त कर चुकी थी। सामाजिक दक्षता का प्रादुर्भाव कार्य विधि पर ही निर्भर है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक कार्य के क्षेत्र में योग्य होना ही सामाजिक कुशलता की प्राप्ति है। जॉन डिवी का कथन है :-

> "सामाजिक दक्षता शिक्षा का एक उद्देश्य है जिसका अर्थ है स्वतंत्रतापूर्वक से सामाजिक क्रियाओं में भाग लेकर शक्तियों के विकास के लिए उसमें सम्मिलित होना है।"[1]

जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी दोनों जीवन की तात्कालिक आवश्यकताओं जैसे भोजन, वस्त्र एवं आवास पूर्ति पर विशेष बल देते हैं, इसलिए तात्कालिक उद्देश्यों की पूर्ति पर बल देकर श्रम व कर्म की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं। इसलिए विभिन्न उद्योगों को महत्त्व देते है, जॉन डिवी बढ़ईगीरी, भोजन बनाना, सिलाई बुनाई आदि कार्यों को महत्त्व देते हैं। गांधी जी भी इसी दिशा में चिन्तन करते हुये कहते हैं कि :-

---

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजुकेशन पृष्ठ-115

"छोटी या बड़ी जो भी वस्तु बालक बनावें वह जीवन में किसी न किसी उपयोग में आने वाली वस्तु हो या उसका भाग हो, खिलौना भी हो तो सच्चा खिलौना हो, केवल बनाने वाले के विनोद के लिये न बनाया जाय ।"[1]

इस प्रकार केवल उद्देश्यपूर्ण ईकाईयों को ही शिक्षा का माध्यम माना है जॉन डिवी का कथन है कि :-

"हमें सभी प्रकार के काष्ठ, लोहे, बुनाई, सिलाई तथा रसोई के कामों का व्यवहार जीवन यापन की विधियों की भाँति करना चाहिये और शिक्षण की अध्ययन मात्र नहीं प्राप्त करना चाहिये । हमें इन कार्यों की कल्पना उनकी सामाजिक सार्थकता की दृष्टि से करनी चाहिये अर्थात उन क्रियाओं के रूप में जिनसे समाज चलता है, उन साधनों के रूप में जिनके द्वारा बालक सामुदायिक जीवन की जरूरतों को समझ सके और वे तरीके जिनके द्वारा मानव की बढ़ती हुई अन्तर्दृष्टि एवं प्रज्ञा के कारण इन आवश्यकताओं की पूर्ति होती आई है ।"[2]

रूस में भी ऐसे विद्यालय खोले गये है जहाँ शिक्षण का आधार उत्पादक श्रम ही है । क्योंकि :-

"रूस के इन विद्यालयों में ----- सभी शैक्षणिक क्रिया शीलन श्रम पर अवलम्बित रहते थे । अध्ययन की

1- मशरूवाला : शिक्षा का विकास, पृष्ठ-37 ।

2- कृपलानी : द लेटेस्ट फैड, पृष्ठ-34 ।

> योजना सम्मिश्रित एवं संश्लिष्ट विषयों के रूप में समवाय पर आधारित रहती है । ---- मानव शास्त्र एवं विज्ञान के सभी विषयों को श्रम के केन्द्र बिन्दु तथा समाज व प्रकृति को उसके अगल बगल रखकर विभाजित किया गया है ।"[1]

महात्मा गांधी जी उद्देश्यपूर्ण इकाई को ही शिक्षा का माध्यम मानते हैं । अर्थात शिक्षा उन्हीं कर्मों द्वारा देनी चाहिये जिनसे बच्चों की व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके । उत्पादक कर्म ही उपयोगी होता है । गांधी जी का कथन है कि :-

> "बेसिक शिक्षा की योजना शिक्षकों से यह आशा करती है कि वे गाँव के बच्चों को गाँव में ही चुनी हुई कुछ हस्त कलाओं द्वारा स्वतंत्र वातावरण में इस प्रकार की शिक्षा दें कि उनकी समस्त शक्तियों का विकास हो जाय ।"[2]

महात्मा गांधी ने वास्तविक शिक्षा का उल्लेख करते हुये कहा है कि केवल पढ़ना, लिखना, जान लेना शिक्षा नहीं है । वास्तविक शिक्षा का तात्पर्य उच्चतम विकास से है । इसके लिए आवश्यक है कि प्राथमिक अवस्था से ही शिक्षा किसी उपयोगी हस्तकला पर आधारित करके दी जाय ताकि बालकों का भावी जीवन आत्म निर्भर बने ।

"---- नौकरी जीवन का सहारा न हो ।"[3]

1- "टू ब्रूमर्स आॅव वर्क," पृष्ठ-165-66 ।

2- गांधी जी : शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति" भूमिका भाग।

3- प्राब्लम आॅव एजूकेशनल रिकन्स्ट्रक्शन पृष्ठ-148 ।

महात्मा गाँधी तथा जॉन डिवी दोनों वास्तविक क्रिया द्वारा शिक्षा देने के पक्षपाती हैं। जैसे सौन्दर्य तथा कलात्मक अभिव्यक्ति के लिये प्रकृति निरीक्षण एवं उपयोगी वस्तु उत्पादन, सामाजिक गुणों के आविर्भाव के लिये बिमारों, विकलांगों, साथियों, ग्राम वासियोंतथा जनता की सहायता वसेवा करना। संगीत, कला, नृत्य, चित्रकारी आदि की रंजनात्मक वृत्तियों के विकास के लिए प्रबन्ध होना चाहिये। टालस्टॉय के इस कथन से गाँधी जी पूर्ण भिज्ञ थे कि.केन्द्रीभूत राष्ट्र की क्षमता जनता की निरक्षरता और अक्षमता पर निर्भर करती है। इसलिये स्वतंत्रता [illegible] एवं नागरिकता हेतु शिक्षा आवश्यक थी। और बिना शिक्षा के विकेन्द्रीकृत शक्ति का प्रादुर्भाव नहीं होगा। इसीलिये केवल साक्षरता को वे शिक्षा का न तो प्रारम्भ और न अन्त ही मानते थे। शिक्षा उपयोगी सामाजिक, एवं आत्म विश्वास तथा आत्म निर्भर बनाने वाली होनी चाहिये। व्यावसायिक शिक्षा को गाँधी जी छात्र छात्राओं के विकास का मुख्य साधन मानते हैं। शिक्षा में व्यावहारिकता को महत्त्व देने वाले रूसो ने तो यहाँ तक कहा है कि बच्चों के लिए व्यावसायिक शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये, वे बच्चों को पुस्तकों पर दृढ़ रहने की अपेक्षा वर्कशॉप मे व्यस्त रखना पंसद करते थे। जॉन डिवी व्यावसायिक शिक्षा की महता सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखतेरहे हैं। क्रिया की प्रधानता बालक के अनुभव के लिये है। गाँधी जी की हस्तकला शिक्षा उपयोगिता की मजबूत आधारशिला पर आधारित

है । जॉन डिवी अन्य विषयों के साथ उद्योग का स्थान देते हैं जबकि गांधी जी उद्योग के द्वारा ही समस्त विषयों को पढ़ाने पर बल देते हैं । जिन विषयों को किसी एक उद्योग को केन्द्र में रखकर पढ़ाया जाता है उन्हें एक वर्ग में रखते हैं ।

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों पाठ्यक्रम के निर्माण तथा विषयों के स्थान निर्धारण में समान विचार रखते हैं :-

हम जानते हैं कि पाठ्यक्रम शिक्षा के उद्देश्यों का दर्पण है । प्रत्येक दार्शनिक के पाठ्यक्रम की रचना में उसके शैक्षिक उद्देश्यों का प्रतिबिम्ब होता है । पाठ्यक्रम तथा शिक्षण विधि शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के क्रियात्मक पहलू हैं । उद्देश्यों को व्यवहार सम्पन्न बनाने में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी दोनों शिक्षा को जीवन मानते हैं । डिवी का बल वर्तमान जीवन पर है जबकि महात्मा गांधी जी वर्तमानव भावी दोनों जीवन पर जोर देते हैं । डिवी के विचारों में भौतिकवाद की मात्रा अधिक है जबकि गांधी जी मूलतः आध्यात्मिक हैं । उनकी भौतिकता की कल्पना आध्यात्मिकता की प्राप्ति को सरल बनाने के लिये है । इस प्रकार भौतिकवादी विचार व क्रिया महात्मा गांधी जी के अनुसार स्वयं में पूर्ण नहीं है । बल्कि वह तो पूर्ण के लिये साधन है । इसलिए साध्य की प्राप्ति के लिये साधन का योग्य, उचित एवं पुष्ठ व समीचीन होना आवश्यक है । साधन के चुनाव पर साध्य की उपलब्धि निर्भर करती है ।

जॉन डिवी बाह्य रूप से साधन व साध्य में अन्तर नहीं

मानते हैं, किन्तु आन्तरिक रूप से वे भी पूर्ण साध्य की परोक्ष रूप से अभिव्यक्ति करते हैं । उनके विचार से जो साधन है वही साध्य हो जाता है और जो साध्य हुआ वही अगले परिणाम के लिए साधन बन जाता है । इस प्रकार यह निरन्तरता चलती रहती है । एक अनुभव की प्राप्ति दूसरे अनुभव के लिए साधन बन जाती है । यह क्रम चलता रहता है, किन्तु सांसारिक अनुभवों की जहाँ सीमा होती है, वहीं से अभौतिक अनुभव प्रारम्भ हो जाता है । इस प्रकार भौतिक अनुभव अभौतिक अनुभव का साधन हो जाता है और पुन: अभौतिक अनुभव किसका साधन बने ? इस प्रश्न का उत्तर ही नहीं है । यहाँ जॉन डिवी चुप रहते हैं । चुप होना ही स्वीकृति का लक्षण है । महात्मा गाँधी जॉन डिवी से आगे बढ़कर आध्यात्मिकता के क्षेत्र में प्रवेश कर उसका भी समग्र मानव को अनुभव कराने का प्रयत्न करते हैं । इसी लिये उनकी विचारधारा आदर्श विचारधारा है जो वर्तमान जीवन की मजबूत आधार शिला पर भविष्य के निर्माण की कल्पना करती है ।

जॉनडिवी की शिक्षा योजना तथा महात्मा गाँधी की बेसिक शिक्षा पद्धति का पाठ्यक्रम "क्रियाशीलन युक्त पाठ्यक्रम" है । दोनों सभी प्रकार की शैक्षिक क्रियाओं को जीवन की वास्तविक घटनाओं पर आधारित करना चाहते हैं । उद्योग के चुनाव मेंयह ध्यान रखते हैं कि उस उद्योग का समुदाय के जीवन में कौन सा महत्त्व है, परन्तु गाँधी जी का उद्योग चुनाव केवल सामुदायिक जीवन के सम्बन्ध को ही ध्यान में नहीं रखता है बल्कि उसमें

किस सीमा तक शैक्षिक सम्भावनायें निहित है और कहाँ तक उसकी उपलब्धि हो सकतीहै । इस बात को भी ध्यान में रखा जाता है । दोनों के पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त का मुख्य आधार निम्न-लिखित है :-

1- उपयोगिता का सिद्धान्त ।

2- बालक की स्वाभाविक रुचि का सिद्धान्त ।

3- विद्यार्थी की क्रियाओं एवं अनुभवों के आधार का सिद्धान्त ।

4- सानुबन्धित अथवा समवाय का सिद्धान्त ।

दोनों शिक्षा शास्त्रियों के लिये शिक्षा का केन्द्र अनुभवशील बालक है । जो नाना प्रकार की क्रिया करके अपने पर्यावरण से व्यावहार या क्रिया-प्रतिक्रिया करके अनुभव ग्रहण करता है ।

दोनों शिक्षा शास्त्री पारम्परिक पाठ्यक्रम की आलोचना करते हैं :-

प्रचलित पाठ्यक्रम को निस्सार एवं निरर्थक मानते हुये जॉन डिवी कहते हैं :-

> "हम बालक को बिलकुल एकाएक पढ़ने लिखने और भूगोल आदि विशिष्ट विषयों से परिचित कराके उसके स्वभाव के प्रतिकूल कार्य करते हैं ।"[1]

पारम्परिक पाठ्यक्रम बालक को निष्क्रिय बनाते हैं । ऐसे पाठ्यक्रम से प्राप्त ज्ञान से उनके अनुभव में कोई वृद्धि नहीं होती

1- जॉन डिवी :माई पैडागॉजिक क्रीड, आर्टिकल-1।

है, इसलिये ऐसा पाठ्यक्रम :-

"मृत, यान्त्रिक और विद्यालय में औपचारिक ज्ञान का साधन है ।"

जॉन डिवी पाठ्य वस्तु को बालक के जीवन से बाहर होने की कल्पना नहीं करते हैं, बल्कि पाठ्य वस्तु का सम्बन्ध उसके अनुभव से संयुक्त होना मानते हैं । जॉन डिवी ने अपनी पुस्तक "द चाइल्ड एण्ड एक्सपीरियेन्स" में कहा है कि :-
प्रचलित पाठ्यक्रम असफल है; क्योंकि यह अमनोवैज्ञानिक है । बालक को मार्ग दिखाने, निर्देशित करने तथा अनुभव को बढ़ाने में असफल हुआ है ।

उपर्युक्त विचारों से साम्य रखते हुये महात्मा गांधी ने 22 और 23 अक्टूबर 1937 को वर्धा मारवाड़ी हाई स्कूल (अब नवभारत विद्यालय) में शिक्षा सम्बन्धी अपने विचारों को प्रकट करते हुये कहा है कि :-

"शिक्षा की वर्तमान पद्धति (अंग्रेजी शिक्षा पद्धति अथवा परम्परागत शिक्षा पद्धति) द्वारा भारतीय समाज को शिक्षित करने के प्रयास से हम अपने उचित लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकते । इससे विद्यार्थियों का नैतिक उत्थान सम्भव नहीं है । ----- यह शिक्षा पद्धति पुस्तक प्रधान, बौद्धिक व साहित्यिक है। यहाँ प्रयोगों को केवल रटाया जाता है। जीवन की वास्तविकता से दूर है, विषयों का मौखिक वर्णन है, व्यावहारिक एवं सामाजिकता का अभाव है। विद्यार्थी निष्क्रिय श्रोता हैं ।"[1]

1- गांधी जी :वर्धा मारवाडी हाईस्कूल में दिया गया भाषण 22/23-10-1937 ।

इस प्रकार दोनों शिक्षा शास्त्री परम्परागत पाठ्य क्रम व पाठ्य वस्तु के प्रति सामान्य अवधारणा बनाये हुये से प्रतीत होते हैं । उनके विचारों में यदि कोई अन्तर दृष्टिगत होता है तो केवल उनके देश की सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ ही कारण मानी जा सकती है ।

बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम :-

हमने देखा है कि दोनों शिक्षा शास्त्री अन्य शिक्षा शास्त्रियों, रूसो, पेस्टालॉजी, फ्रोबेल आदि की भाँति शिक्षा का केन्द्र बालक को मानते हैं । इसलिए पाठ्यक्रम तथा पाठ्यवस्तु दोनों की उपयोगिता एवं महत्त्व बालक के लिये ही है । अतः बालक के जीवन से सम्बन्धित पाठ्यक्रम को दोनों महत्त्व देते हैं । उनका मत है कि पाठ्यक्रम के विषयों का एवं क्रियाशीलनों का बालक के अनुभवों, समस्याओं आदि से घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिये ।

रूचि का सिद्धान्त :-

दोनों शिक्षा शास्त्री इस विचार पर एकमत है कि शिक्षण में बालक की स्वाभाविक रूचि को वरीयता दी जाय । अतः पाठ्यक्रम को रूचि के सिद्धान्त पर निर्मित किया जाय । ऐसा पाठ्यक्रम तथा पाठ्यवस्तु हो जिसमें बालक अपनी स्वाभाविक रूचि के अनुसार अध्ययनरत हो । दोनों शिक्षाशास्त्री पाठों के अध्ययन के कठोर समयचक्र से और पाठ्यवस्तु को मध्य में ही

परिवर्तन करने की क्रिया से शिक्षण प्रक्रिया को बचाना और अधिगम प्रक्रिया में निरन्तरता बनाये रखना चाहते हैं, क्योंकि जब अधिगम की उत्पत्ति ही अनुभव से होती है तो अधिगम प्रक्रिया में स्वयं निरन्तरता का समावेश हो जाता है। दोनों शिक्षा शास्त्री लिखने पढ़ने के औपचारिक विषयों की अपेक्षा बालक की मौलिक योग्यताओं को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार विकसित करने का प्रयास करते हैं।

पाठ्यक्रम लचीला होना चाहिये न कि कठोर व अ प्राप्य। जिससे विभिन्न योग्यताओं एवं अभिरूचियों वाले विद्यार्थियों को अपनी स्वयं की योग्यताओं के विकास का अवसर मिल सके। गांधी जी बालक की रूचियों के अनुसार शिक्षा देने के पक्षधर है उनका कथन है कि बालक निष्क्रियता पसंद नहीं करता है वह कुछ न कुछ करना चाहता है। उसे अपने हाथ से काम करने में रूचि होती है और प्रसन्नता का भी अनुभव करता है। इसी लिए गांधी जीने शिक्षा में उद्योग का समावेश किया था। उद्योग केन्द्रित व बाल केन्द्रित शिक्षा अपनाने से बालक सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति सचेत हो जाता है।

जॉन डिवी के अनुसार पाठ्यक्रम में विषयों को निर्धारित करते समय बालक के पूर्व अनुभवों, मूल प्रेरणाओं एवं रूचियों जैसे :-

1- बातचीत एवं विचार विनिमय (कनवरसेशन एण्ड कम्युनीकेशन)

2- अन्वेषण की जिज्ञासा (क्यूरियास्टी ऑव इन्क्वारी) रचना

॥कन्स्ट्रक्शन॥ तथा कलात्मक अभिव्यक्ति ॥आर्टिस्टिक इम्प्रेशन॥ को ध्यान में रखना चाहिये । इसीलिए जॉन डिवी ने पाठ्यक्रम में पढ़ने, लिखने, गिनने,प्रकृति विज्ञान, हस्तकला एवं संगीत के विषयों को स्थान दिया है । महात्मा गांधी भी डिवी के इस विचार से सहमत हो इन विषयों को महत्व देते हैं । बेसिक शिक्षा में आठ वर्षीय पाठ्यक्रम में वस्त्रोत्पादन, कृषि, काष्ठकला, फलोत्पादन,साग सब्जी, चमड़े का काम,तथा अन्य हस्तकला एवं उपयोगी उद्योग, गणित, सामान्य विज्ञान, कला, समाजशास्त्र चित्र संगीत तथा सामान्य भाषा आदि को महत्व दिया है ।

<u>उपयोगिता का सिद्धान्त</u> :-

डिवी के अनुसार कोई भी विषय या अनुभव जो जीवन को पूर्ण बनाने में उपयोगी सिद्ध हो सके वह पाठ्यक्रम का भाग होगा । जॉन डिवी का कथन है कि अब तक सबसे कम मूल्य वाले विषयों से आरम्भ करके सबसे अधिक मूल्य वाले विषयों के रूप में क्रमानुसार विषयों का निर्माण किया गया है, किन्तु अन्तिम मूल्य का निर्धारण तो जीवन की प्रक्रिया द्वारा ही किया जाता है । जॉन डिवी किसी विषय को अधिक और किसी विषय को कम महत्व नहीं देना चाहते हैं । डिवी का कथन है कि मनुष्य की आधार भूत अथवा मौलिक आवश्यकतायें भोजन, वस्त्र,आवास गृह की सजावट,आर्थिक उत्पादन विनिमय तथा उपभोग सम्बन्धी तत्व हैं इन्हीं समस्याओं का समाधान जीवन का लक्ष्य है इसलिए पाठ्यक्रम मेंऐसे विषयों को ही वे स्थान देना चाहते हैं ।

महात्मा गांधी जी भी मानव जीवन की प्राथमिक आवश्यकतायें, भोजन, वस्त्र, एवं आवास को ही मानते हैं क्यों कि वे ही मानव के समग्र विकास के अविभाज्य अंग है । इनमें स्वावलम्बन प्राप्त किये बिना मानव का विकास पूर्ण नहीं हो सकता है । इन आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु उद्योग एवं बुद्धि का प्रयोग करना पड़ता है । बुद्धि का अच्छा विकास, इन्द्रियों हाथ, कान, आँख, आदि के प्रयोग से होता है इसीलिये बेसिक शिक्षा में उद्योग को शिक्षा का माध्यम माना गया है । अतः उपयोगी एवं सोद्देश्यपूर्ण कार्यों को ही पाठ्यक्रम में महत्व दिया गया है । गांधी जी एवं डिवी के उपयोगितावादी पाठ्यक्रम में अन्तर केवल यह है कि गांधी जी उपयोगी कार्यों का एक क्रम निर्धारित करते है जबकि डिवी किसी भी प्रकार के क्रम का वर्णन नहीं करते हैं । जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी दोनों रचनात्मक एवं उत्पादन-शील कार्यों को पाठ्यक्रम में स्थान देते हैं । विषयों का सम्बन्ध केवल वर्तमान जीवन से ही न मानकर भावी जीवन से भी मानते हैं । पाठ्यक्रम का सम्बन्ध सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं व्यावसायिक जीवन से भी होना चाहिये । महात्मा गांधी जी जॉन डिवी से आगे बढ़कर पाठ्यक्रम का आध्यात्मिक जीवन से भी सम्बन्ध स्थापित करने पर बल देते हैं ।

उद्योग पेशा हस्तकला मुख्य पाठ्यक्रमीय क्रिया है :-

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी विभिन्न उद्योगों को तथा हस्तकला को महत्व देते हैं। जैसे-बढ़ईगीरी, भोजन बनाना

सिलाई बुनाई आदि । इनके अनुसार ये ही प्रारम्भिक क्रियाशीलन कार्य हैं । जिनका भोजन वस्त्र, एवं आवास जैसी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध है । महात्मा गांधी कताई को पाँच वर्ष तक अनिवार्य उद्योग के रूप में रखने पर बल देते हैं । गांधी जी के अनुसार :-

"मेरी सलाह है कि प्राइमरी शिक्षा के लिए तकली को ही बीच में रखकर उसी से लड़कों की पढ़ाई शुरू करें। पहले वर्ष तकली के बारे में सब सूचनायें दी जाये, दूसरे वर्ष तकली के साथ-साथ और बातें शामिल की जाये।"[1]

गांधी जी पढ़ाई के साथ-साथ उद्योग की शिक्षा देने के पक्षधर नहीं है बल्कि जो कुछ पढ़ाया जाय वह हस्तकला के जरिये पढ़ाया जाय । इस प्रकार की अवधारणा जॉन डिवी के शिक्षा सिद्धान्त में नहीं पाई जाती है परन्तु दोनों के विचार से समस्त पेशे शैक्षिक महत्व के हैं । इन क्रियाओं में लगने से बालकों की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती, उनमें स्वावलम्बन व आत्म निर्भरता का विकास होता है । जॉन डिवी भी पाठ्यक्रम में उन समस्त उद्योगों को शामिल करना चाहते हैं जो उन्हें जीवन यापन की विधि से अवगत करा सके । जॉन डिवी का कथन है कि :-

"हमें सभी प्रकार के काष्ठ, लोहे, बुनाई, सिलाई तथा रसोई के कार्यों का व्यवहार जीवन यापन की विधियों

1- वर्धा सम्मेलन 22 अक्टूबर 1937 ।

जैसा करना चाहिये और सीखने को मात्र अध्ययन के लिये नहीं किया जाना चाहिये । हमें इनकी कल्पना सामाजिक सार्थकता एवं महत्व की दृष्टि से करनी चाहिये अर्थात उन प्रक्रियाओं के रूप में जिनसे समाज चलता है । उन साधनों के रूप में जिनके द्वारा बालक सामुदायिक जीवन की आवश्यकताओं को समझ सके और वे तरीके जिनके द्वारा मानव की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति होती रही है । सारस्य में उनके कर्तव्यों के द्वारा विद्यालय सामाजिक जीवन का एक साधन बनेगा न कि पाठों के अध्ययन का केवल एक भाग ।"[1]

इस प्रकार दोनों शिक्षा शास्त्री क्रियाशीलन रूपी उद्योग को महत्व देते हैं । महात्मा गांधी जी का आत्म निर्भरता एवं स्वावलम्बन का विचार अहिंसा पर आधारित है । परन्तु जॉन डिवी की शिक्षा में अहिंसा को शामिल नहीं किया गया है । दोनों दार्शनिक पाठ्यक्रम निर्माण में व्यक्ति तथा समाज के जीवन कार्य कलापों, क्रियाशीलता, उपयोगिता, व्यावहारिकता एवं बालक की स्वाभाविक रूचि को ध्यान में रखने के लिये जोर देते हैं ।

जॉन डिवी के विद्यालय की भाँति गांधी जी के बेसिक शिक्षा का विद्यालय भी एक कार्य का स्थान है तथा खोज व प्रयोग करने का मन्दिर है । विद्यालय क्रिया प्रधान संस्था है न कि निष्क्रिय स्थान । जॉन डिवी तथा गांधी के पाठ्यक्रम में

1-- कृपलानी द्वारा उदधृत - द लेटेस्ट फैड पृष्ठ--34 ।

निहित विषय वस्तु के अध्यापन विधि में अन्तर है । जॉन डिवी अनेक हस्तकला को महत्व देते हैं । और विषयों को अगल बगल रखकर पढ़ाने पर जोर देते हैं । किन्तु महात्मा गाँधी जी हस्त कला को केन्द्र में रखकर उसी के माध्यम से अन्य विषयों के अध्यापन पर बल देते हैं । यही दोनों में मौलिक अन्तर है ।

<u>दोनों शिक्षा शास्त्री समवाय प्रणाली को महत्व देते हैं</u> :-

जॉन डिवी तथामहात्मा गाँधी ज्ञान की अखंडता में विश्वास करते हैं । दोनों उद्योग एवंप्रकृति व समाज को ध्यान में रखकर शैक्षिक ज्ञान प्रदान करने पर बल देते हैं । अतः इन तीनों में सह-सम्बन्ध का होना आवश्यक मानते हैं । मानव अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये नाना प्रकार का श्रम,प्रयत्न अथवा उद्यम करता है । इसी प्रयास में सीखना निहित है इस प्रकार क्रियाशीलन में ज्ञान अन्तर्निहित है । इसलिए व्यक्ति की समस्त कियाओं में चाहे वह रचनात्मक हो या सृजनात्मक हो अथवा रंजनात्मक हो, ज्ञान छिपा है । किसी भी सोद्देश्य क्रियाशीलन की योजना के क्रियान्वयन एवं प्रगति में ज्ञान उमड़ जाता है । इसी जिज्ञासा रूपी क्षुधा की तृप्ति के लिये जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे हम समवायी ज्ञान कहते हैं । ज्ञान बालक के जीवन की वास्तविक स्थितियों से प्राप्त होता है । जैसे मंजन करने की क्रिया को ले । तो हम प्रश्न करके अनेक विज्ञानों से छात्रों को परिचित करा सकतेहैं । दाँत कैसे साफ किया जाता है ? क्यों साफ किया जाता है ? न साफ करने से क्या होगा ? दाँत साफ

करने के लिये हमें क्या चाहिये, वह कहाँ से प्राप्त होता है, इस प्रक्रिया से हम उन्हें स्वास्थ्य विज्ञान और वस्तु विज्ञान की शिक्षा दे सकते हैं । इसी प्रकार सूत उत्पादन की प्रक्रिया से गणित, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, साहित्य आदि विषयों की शिक्षा दी जा सकती है । इससे ज्ञान की अखंडता की रक्षा होती रहती है । जॉन डिवी तथा महात्मा गाँधी जी शिक्षा में विषयों के सह-सम्बन्ध पर विशेष बल देते हैं । गाँधी जी की शिक्षा में हस्तकला समवाय का केन्द्र है । बेसिक शिक्षा में ज्ञान को एक अखण्ड, अभिन्न समष्टि के रूप में प्रदान किया जाता है । गाँधी जी का मानना था कि प्रचलित शिक्षा प्रणाली में विषयों का सम्बन्ध एक दूसरे से नहीं रखा जाता था । जॉन डिवी भी पाठ्यक्रम में उन विषयों को रखना चाहते हैं जिनकी आपस में एक रूपता तथा सह-सम्बन्धता होती है । प्रोजेक्ट शिक्षण में विभिन्न विषयों का शिक्षण विभिन्न योजनाओं द्वारा दिया जाता है । यद्यपि दोनों शिक्षा शास्त्री समवाय पर बल देते हैं किन्तु समवाय की प्रणाली में अन्तर है । हमने देखा है कि डिवी किसी एक विषय को महत्व नहीं देते है । इसलिये वे पाठ्यक्रम में अनेक विषयों को ज्ञान कौशल की उपयोगिता के आधार पर सम्मिलित करने के पक्षधर है । इसलिए विषयों में सह-सम्बन्ध करके पढ़ाने पर बल देते हैं । वे जानते हैं कि ज्ञान एक पूर्ण इकाई है । नाना प्रकार के विषय उस पूर्ण इकाई की शाखायें है इसीलिये वे भी ज्ञान कौशल प्राप्त करने के लिए भाषा, गणित, भूगोल, इतिहास, हस्तकार्य, विज्ञान, कृषिकला सभी को एक दूसरे से

सम्बन्धित करके पढ़ाये जाने पर जोर देते हैं । इस प्रकार जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी जी दोनों सह-सम्बन्ध के सिद्धान्त के सिद्धान्त पर बल देते हैं ।

जॉन डिवी तथा गांधी जी दोनों की शिक्षण विधि प्रायः समान है

साधनवादी विधि तथा विषय सामग्री के मध्य द्वैत की कल्पना नहीं करते हैं । डिवी की मान्यता है कि विद्यालय तथा जीवन के विस्तृत क्षेत्र में अनुभव हेतु समस्या रूपी विषय वस्तु में प्रयोग की जाने वाली मस्तिष्क की क्रिया ही विधि है।

"केवल महत्वपूर्ण विधि मस्तिष्क की विधि है क्योंकि मस्तिष्क ही समझता है और तथ्यों को एकीभूत करता है ।"

जॉन डिवी शिक्षण की विधि को कला की विधि मानते है । डिवी की योजना विधि तथा गांधी जी की बेसिक शिक्षा योजना समान है । जॉन डिवी की भाँति महात्मा गांधी भी स्वानुभव द्वारा, खोज द्वारा, स्वयं करके सीखना आदि विधियों पर बल देते हैं । मनोविज्ञान का अध्येता न होने के बावजूद भी महात्मा गांधी व्यावहारिक मनोविज्ञान के ज्ञाता थे । इसीलिए क्रियात्मक विधि पर बहुत बल देते हैं । "करके सीखना" तथा स्वानुभव द्वारा सीखने को गांधी जी सर्वश्रेष्ठ विधि मानते हैं । क्योंकि इन दोनों विधियों का केन्द्र क्रिया ही है । महात्मा गांधी प्रयोजनवादियों व प्रकृतिवादियों की भाँति क्रियाशीलन विधि को महत्व देते हैं । इसीलिए गांधी जी की बेसिक शिक्षा

की हस्तकला केन्द्रित विधि प्रयोजनवादियों की योजना विधि के अनुरूप ही है । परन्तु गांधीवादी विचारधारा की कुछ विशेषताओं के कारण बेसिक शिक्षा, योजना विधि की अपेक्षा पूर्णत: नवीन है । डिवी का कथन है कि बालकों की स्वाभाविक रूचि

"वार्तालाप अथवा विचार प्रेषण में, वस्तुओं की जांच व खोज करने में, वस्तुओं के निर्माण अथवा रचना में तथा कलात्मक अभिव्यक्ति में होती है ।"[1]

इस प्रकार महात्मा गांधी व डिवी दोनों स्वानुभव द्वारा स्वयं करके सीखने, क्रियात्मकता, रूचि एवं उपयोगिता को ध्यान में रखकर शिक्षण विधि का निर्धारण करते हैं और इसलिए दोनों की शिक्षण विधि क्रिया प्रधान विधि है ।

महात्मा गांधी तथा जॉन डिवी की शिक्षा योजना स्वतंत्रता प्रधान शैक्षिक योजना है :-

बेसिक शिक्षा योजना में कार्य करने वाले शिक्षकों एवं शिक्षार्थियों को पर्याप्त स्वतंत्रता रहती है । परम्परागत शिक्षा प्रणाली में कोई स्वतंत्रता बालकों को प्रदान नहीं की जाती थी। बेसिक शिक्षा में विद्यार्थियों को कार्य करने का तथा क्रिया करके लाभप्रद, उपयोगी, एवं उद्देश्यपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने हेतु पूर्ण अवसर एवं स्वतंत्रता प्रदान की जाती है । अनुशासन बाहरी एवं दबाव पर न होकर स्वशासन पर आधारित रहता है । शिक्षकों को

1- जॉन डिवी : द स्कूल एण्ड सोसाइटी 1936, पृष्ठ-45 ।

भी पर्याप्त स्वतंत्रता, प्रयोग व परीक्षण हेतु प्रदान की जाती है । वे अपने अनुभव के आधार पर छात्रों की शिक्षा में परिवर्तन कर सकते हैं । जो विद्यालयीय, सामाजिक एवं राष्ट्रीय माँग के अनुकूल हो उसको अपना सकते हैं । इसीलिये बेसिक शिक्षा में लचीलापन पाया जाता है । शिक्षक अपना कार्यक्रम निर्धारित करने में पूर्ण स्वतंत्र है । महात्मा गाँधी बालक को स्वतंत्रता देने के पक्षधर है किन्तु स्वच्छन्दता देना नहीं चाहते हैं । गाँधी स्वयं एक लोकतंत्रात्मक शिक्षा शास्त्री हैं इसलिए स्वतंत्रता के पूर्ण पक्षधर है । बालक की व्यक्तिगत भिन्नता की पहचान कर तदनुकूल शिक्षा व्यवस्था करना चाहते हैं ।

जॉन डिवी भी बालक को पूर्ण स्वतंत्रता देना चाहते है क्योंकि वे भी प्रजातांत्रिक शिक्षाशास्त्री है दोनों की यह धारणा है कि बालक स्वतंत्रता से अपना कार्य करे, कार्य की योजना बनाये, प्रयोग करे, निरीक्षण करे और निर्णय निकाले । बालक के क्रिया में संलग्न होने पर बाह्य दबाव न डाला जाय । अनावश्यक सुझाव न दिया जाय । आवश्क होने पर निर्देशन दिया जाय । डिवी सुझाव व निर्देशन में अन्तर मानते हैं इसीलिये कहते है कि:-

> "सुझाव एक प्रकार का बालक की बौद्धिक व्यष्टि पर अनाधिकृत अतिक्रमण है ।"

इसलिये सुझाव की अपेक्षा स्वतंत्रता अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है । परिवार की भाँति ही विद्यालय में बालक को स्वतंत्रता मिलनी चाहिये । विद्यालय को गृह के पर्यावरण की भाँति होना चाहिये ।

गृह एवं विद्यालय का सम्बन्ध बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है ।

प्रयोजनवादी डिवी तथा महात्मा गांधी दोनों शिक्षा प्रक्रिया में अध्यापक को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं । गांधी जी डिवी की अपेक्षा अध्यापक का महत्त्व अधिक प्रतिपादित करते हैं । धार्मिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में सम्मिलित न करके वे धर्म की शिक्षा अध्यापक के आचरण से देना चाहते हैं । अध्यापक ही गांधीवादी शिक्षा में धार्मिक शिक्षा का स्रोत है । अतः अध्यापक को सत्य प्रिय, सत्य निष्ठ, प्रेमी, सहानुभूति को धारण करने वाला एवं नैतिक गुणों से युक्त चरित्रवान व्यक्ति होना चाहिये । वह निर्देशक, पथ प्रदर्शक मित्र एवं सहयोगी है ।

जॉन डिवी की कल्पना भी अध्यापक को मार्गदर्शक, निर्देशक, एवं मित्र एवं सहयोगी मानने की है । डिवी में भौतिकवादी विचारों की प्रधानता है जबकि गांधी जी की विचारधारा का पर्यवसान आध्यात्मिकता में होता है । जॉन डिवी भी उत्तम चरित्र को आध्यात्मिकता के लिए महत्व पूर्ण मानते हैं । गांधी जी का तात्कालिक उद्देश्य सर्वोच्च उद्देश्य की पृष्ठभूमि है । डिवी की चिन्तन प्रक्रिया अधिकतर भौतिकवादी परिसीमा में ही चक्कर काटती है जबकि गांधी जी भौतिकता को महत्त्व उसी सीमा तक देते है जब तक वह सत्य, अहिंसा, प्रेम के मार्ग में बाधक नहीं है । और आध्यात्मिक उन्नति में सहायक है ।

<u>जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी दोनों प्रजातंत्र के समर्थक थे</u> :-

महात्मा गांधी जी जॉन डिवी की भाँति प्रजातंत्र के

समर्थक हैं । वे चिन्तन व कार्य करने के अन्तर नहीं मानते हैं । श्रम की महत्ता में विश्वास करते हैं । वे चाहते हैं कि सब कुछ बालकों को श्रम या कार्य द्वारा ही सिखाया जाय । दोनों दार्शनिक इस बात पर सहमत है कि विद्यालयीय उपयोगिता तो इस तथ्य में निहित है कि वह बालक को समाजोपयोगी प्रजातंत्रात्मक आस्था वाला योग्य नागरिक बनावें । दोनों शिक्षा क्षेत्र में वर्ग विभेद को समाप्त कर सार्वजनिक शिक्षा के हामी हैं । तथा शिक्षा व्यवस्था को जनतंत्रात्मक बनाना चाहते हैं । इनके अनुसार सभी को शिक्षा पाने का समान अवसर दिया जाना चाहिये । मानव सभ्यता का विकास सबकी शिक्षा पर निर्भर है । दोनों सार्वजनिक हित के कार्यों में बालकों को सलग्न रखने की बात करते है क्योंकि बालक के व्यक्तित्व का पुनर्संगठन इस प्रकार के कार्य से ही सम्भव होता है । दोनों शिक्षा शास्त्री समाज के समस्त प्राणियों को वर्ग, जाति, धर्म, लिंग भेद आदि का ध्यान रखे बिना शिक्षा देने के पक्षधर हैं ।

शिक्षा के उद्देश्यों के सम्बन्ध में अपने विवरण में जॉन डिवी प्रथमतः विकास वृद्धि तथा प्रजातंत्र की विचारधारा को सुनिश्चित करते हैं क्योंकि शिक्षा का यही सांस्कृतिक एवं सार्वभौमिक आदर्श है । विकास एवं वृद्धि ही आदर्श है । जॉन डिवी कहते हैं :-

"शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तियों को अपनी शिक्षा जारी रखने के योग्य बनाना है - अथवा अधिगम का लक्ष्य

व पुरस्कार विकास हेतु निरन्तर क्षमताओं को बढ़ाना है --- इसका तात्पर्य जनतंत्रात्मक समाज है ।"[1]

महात्मा गांधी भी शिक्षा को जनतंत्रात्मक समाज के योग्य बालकों की समस्त शरीर मन, व आत्मा की शक्तियों को विकास करना ही मानते हैं । इसीलिये उन्होंने कहा है :-

"शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक व मनुष्य के शरीर मन तथा आत्मा के उत्कृष्ट एवं सर्वांगीण विकास से है ।"[2]

हमने देखा है कि जनतंत्रात्मक समाज के लिए शिक्षा द्वारा व्यक्ति में सामाजिक कुशलता उत्पन्न करना है अर्थात वह अपनी जीविका पैदा करने के योग्य हो, नागरिक कुशलता पैदा करना है -अर्थात उसे अपने तथा दूसरे के अधिकार व कर्तव्य की जानकारी हो तथा समझ हो, और निषेधात्मक तथा विधेयात्मक नैतिकता उत्पन्न करना है अर्थात व्यक्ति में अन्य व्यक्ति की व्यावसायिक कुशलता में बाधा उत्पन्न करने की इच्छा न हो तथा व्यक्ति में सामाजिक प्रगति में योगदान देने की इच्छा हो । जॉन डिवी के अनुसार सामाजिक कुशलता का तात्पर्य सहयोगीत सामान्य क्रियाओं में स्वतंत्रता पूर्वक एवं पूर्ण रूपेण सम्मिलित होने की शक्ति का विकास करना है । किसी जनतंत्र की सफलता आत्मा-नुभूति, मानव सम्बन्ध,आर्थिक दक्षता एवं नागरिक उत्तरदायित्व

1- जॉन डिवी :डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन, पृष्ठ-117 ।

2- हरिजन 31-7-37 ।

जनतंत्रात्मक समाज व राष्ट्र के लिए आवश्यक है । जनतंत्र के सम्बन्ध में गांधी जी का कथन है कि :-

"मेरा विचार है कि जनतंत्र शक्ति द्वारा विकसित नहीं किया जा सकता है । जनतंत्र का भाव बाहर से नहीं थोपा जा सकता, इसे अन्दर से ही निकालना होगा ।"[1]

यंगइण्डिया में गांधी जी कहते हैं कि :-

"स्वराज्य जनता को इस प्रकार की शिक्षा देता है कि उनमें इस प्रकार का भाव विकसित हो जाय जो सत्ता पर नियन्त्रण रखे ।"[2]

सत्ता के ... दोष को दूर करने के लिये जनता को ऐसी शिक्षा देना चाहते हैं जिससे उनमें जनतंत्रीय गुणों का विकास हो सके । जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी जनतंत्र को केवल एक सरकार की प्रणाली नहीं नहीं मानते, बल्कि वह इससे भी आगे है -- डिवी का कथन है कि :-

"यह मुख्यत: एक प्रकार से अनुभवों द्वारा प्रतिपादित भाई चारे के साथ जीवन बिताने की रीति है ।"

जनतंत्र के लिए ऐसी शिक्षा हो जो बालकों में आत्मानुभूति, मानवीय सम्बन्ध, आर्थिक कुशलता और नागरिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास कर सके । हमने देखा है कि महात्मा गांधी की हस्तकला केन्द्रित बेसिक शिक्षा तथा जॉन डिवी की योजना पद्धति का मुख्य

1-- महात्मा गांधी : कांग्रेस के इतिहास से, इलाहाबाद, 1935 ।

2-- यंग इण्डिया 29-1-1925 ।

जनतंत्रात्मक समाज व राष्ट्र के लिए आवश्यक है । जनतंत्र के सम्बन्ध में गांधी जी का कथन है कि :-

> "मेरा विचार है कि जनतंत्र शक्ति द्वारा विकसित नहीं किया जा सकता है । जनतंत्र का भाव बाहर से नहीं थोपा जा सकता, इसे अन्दर से ही निकालना होगा ।"[1]

यंगइण्डिया में गांधी जी कहते हैं कि :-

> "स्वराज्य जनता को इस प्रकार की शिक्षा देता है कि उनमें इस प्रकार का भाव विकसित हो जाय जो सत्ता पर नियन्त्रण रखे ।"[2]

सत्ता के दोष को दूर करने के लिये जनता को ऐसी शिक्षा देना चाहते हैं जिससे उनमें जनतंत्रीय गुणों का विकास हो सके । जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी जनतंत्र को केवल एक सरकार की प्रणाली नहीं नहीं मानते, बल्कि वह इससे भी आगे है - डिवी का कथन है कि :-

> "यह मुख्यतः एक प्रकार से अनुभवों द्वारा प्रतिपादित भाई चारे के साथ जीवन बिताने की रीति है ।"

जनतंत्र के लिए ऐसी शिक्षा हो जो बालको मे आत्मानुभूति, मानवीय सम्बन्ध, आर्थिक कुशलता और नागरिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास कर सके । हमने देखा है कि महात्मा गांधी की हस्तकला केन्द्रित बेसिक शिक्षा तथा जॉन डिवी की योजना पद्धति का मुख्य

1- महात्मा गांधी :कांग्रेस के इतिहास से, इलाहाबाद, 1935 ।

2- यंग इण्डिया 29-1-1925 ।

सामाजिक शक्तियों एवं अन्तर्दृष्टि का विकास करना है ।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों शिक्षा शास्त्रियों की शिक्षा जनतंत्रात्मक समाज के योग्य मानव के निर्माण में संलग्न है । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि दोनों शिक्षा शास्त्री :-

"लोकतंत्रीय समाज की स्थापना का उद्देश्य रखते हैं ।"

हम जानते है कि यदि सामाजिक जीवन को जनतांत्रिक उसूलों के आधार पर रखना पड़े तो उसकी नींव शारीरिक श्रम तथा उत्पादक कार्यों पर डालनी होगा । क्योंकि यदि सामाजिक उत्तरदायित्व का भार भूखे, नंगे तथा अन्य व्यक्ति पर भार स्वस्थ रहने वाले व्यक्तियों पर डाला गया तो वह समाज वास्तविक रूप में लोकतंत्रात्मक नहीं होगा । अतः समाज के व्यक्तियों की भौतिक आवश्यकताओं को पूर्ण करना आवश्यक है । राजनैतिक दृष्टि से भी हमें ऐसे समाजोपयोगी नागरिक की जरूरत है जो अपनी जिम्मेदारी को कुशलता से निभा सके । इस प्रकार राजनैतिक एवं सामाजिक दोनों दृष्टि से हमें उपयोगी नागरिक का निर्माण करने का भार शिक्षा पर डालना ही होगा । जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी की शिक्षा जनतंत्रात्मक समाज के संगठन तथा तदनुकूल पुनर्संगठन एवं पुनर्रचना में पूर्ण समर्थ है ।

1- जॉन डिवी : द स्कूल एण्ड सोसाइटी ‹द यूनीवर्सिटी ऑव शिकागो प्रेस 1930› रिवाइज्ड एडीशन, पृष्ठ-15 ।

दोनों की शिक्षा श्रम एवं उत्पादक कार्यों पर आधारित है । अतः दोनों शिक्षा शास्त्री जनतंत्रके प्रबल समर्थक हैं ।

अब हम अगले अध्याय में जॉन डिवी के शिक्षा क्षेत्र में तथा विश्व विचार में योगदान का अध्ययन करेंगें और देखेंगें कि उन्होंने किस प्रकार इन्हें प्रमाणित किया है ।

अध्याय-10

जाॅन डिवी का शिक्षा क्षेत्र में मौलिक योगदान तथा विश्व विचार मे स्थान :-

1- जाॅन डिवी का कार्य प्रशंसा व प्रतिष्ठा के योग्य है :-

विचारों की सम्पन्नता, विश्वसनीयता एवं ईमानदारी के कारण जाॅन डिवी के कार्य प्रशंसा एवं प्रतिष्ठा के योग्य हैं। जाॅन डिवी, सिडनी हुक के अनुसार अमेरिका के ऐसे दार्शनिक है :-

"जो अपने जन्मजात गुणों के कारण ही प्रमुख दार्शनिक नहीं है, बल्कि नवीन वैचारिक दृष्टिकोणों को स्वतंत्रता से निर्देशित करने और वैज्ञानिक नियन्त्रण पर अधिक जोर देने के कारण महान हैं।"[1]

उन्होंने पुन: कहा है कि :-

"उनकी कृतियों ने अमेरिकी विश्वास, व्यवहार व आदतों के कुछ प्रमुख कथनों की ऐसी विचारपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की है, जिसका अमेरिका के जनतांत्रिक परम्पराओं, विधियों, परिणामों तथा साहसी व अनुशासित बुद्धि की सम्भावनाओं के खुले क्षेत्र से सम्बन्ध है। ------ अमेरिकी विचारों का ऐसा कोई क्षेत्र या पहलू शेष नहीं था जिसके लिए इन्होंने अपना योगदान न दिया हो। इनके विचारों का प्रभाव विद्यालयों, अदालतों, प्रयोगशालाओं, श्रमिक आन्दोलनों और राष्ट्रीय राजनीति तक फैल चुका था।"[2]

1- सिडनी हुक - "जाॅन डिवी, इन्टलेक्चुअल प्रोट्रेट"। जाॅन डे कम्पनी पृष्ठ-4।

2- - तदैव - पृष्ठ-4-5

जॉन डिवी के योगदान के सम्बन्ध में वर्क मिस्टर ने लिखा है :-

> "उनके विचारों ने मनोविज्ञान, शिक्षा, कानून, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, कला व धर्म और विज्ञान दर्शन के क्षेत्र के साथ-साथ अमेरिकी सीमा के बाहर के विचारों पर भी प्रभाव डाला था ।"[1]

जॉन डिवी के समकालीन विचारक रैटनर की राय है कि :-

> "वही एक मात्र जीवन्त अमेरिकन दार्शनिक और शिक्षाशास्त्री थे, जिन्हें अमेरिका के बाहर देश के लोग भी बहुत जानते थे ।"[2]

उपर्युक्त आलोचनायें मानव इतिहास में जॉन डिवी के योगदान व स्थान को निर्धारित करती है । अब हमें दर्शन, तर्क, मूल्य, नीति और कला के सम्बन्ध में उनके योगदान की परख करनी है, क्योंकि ये क्षेत्र ऐसे हैं, जिसमें उन्होंने अपने बहुमूल्य और मौलिक विचारों को प्रकट कर विश्व विचार कोष की श्री बृद्धि की है ।

<u>तर्कशास्त्र के क्षेत्र में</u> :-

जॉन डिवी के सम्पूर्ण दर्शन को समझने के लिए उनके तार्किक सिद्धान्त के मूल्य के मौलिक योगदान के महत्व को जानना आवश्यक है । तर्क के सम्बन्ध में उनका विचार सामान्य दृष्टिकोण

1- डब्ल्यु0 एच0वर्क, मिस्टर : अ हिस्ट्री ऑव फिलासिफिकल आइडियाज इन अमेरिका, द रोनाल्ड प्रेसकम्पनी, न्यूयार्क, 1944, पृष्ठ-541 ।

2- जे0 रैटनर : इन्टलीजेन्स इन द मार्डन वर्ल्ड, पृष्ठ-3 (द मार्डन लाइब्रेरी, न्यूयार्क)

से अलग नहीं है । जॉन डिवी का दर्शन समग्र रूप से अध्यात्म-शास्त्र, ज्ञानशास्त्र और तर्कशास्त्र का ही भाग है । इसलिए इन शास्त्रों की विषय वस्तु में कोई अन्तर नहीं है ।

जॉन डिवी का तर्कशास्त्र प्राकृतिक घटनाओं का एक तर्क है :-

पैट ने लिखा है कि :-

> "साधनवादी और प्रयोगवादी तर्कशास्त्र प्रकृतिवादी है ---- यह प्राकृतिक घटनाओं का तर्कशास्त्र है । जो अर्थ के स्तर पर कार्य करता है ।"[1]

जॉन डिवी का यह विश्वास है कि विचार "अस्तित्व के पुनर्संगठन हेतु" एक अभिकरण है और ज्ञान ही संघर्षों को निश्चित करता है, जो भावनाओं और आदतों में उत्पन्न होता है ।

उनका दृष्टिकोण:- पैट लिखते हैं कि :-

> "डिवी मुख्यत: नैतिक व्यक्ति, शिक्षाशास्त्री और सामान्य मानव के रूप में होकर विश्व को देखते हैं और साधनवादी की हैसियत से इस विश्व को सैद्धान्तिक, वैज्ञानिक व ज्ञानशास्त्री के रूप में देखते हैं ।[2]

यही विचार हमें जॉन डिवी के तर्कशास्त्र को समझने में सहयोग देता है। हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि डिवी का दर्शन "जाँच की विधि" के रूप में तार्किक सिद्धान्त से ही प्रारम्भ होता है और इसी में अन्त हो जाता है ।

1- डोनाल्ट ए0 पैटस :आर्टिकल ऑन डिवीज लॉजिकल थ्योरी" पृष्ठ-107 ।द माडर्न लाइब्रेरी, न्यूयार्क। पृष्ठ-107 ।

2- - तदैव - पृष्ठ-108 ।

उनका विश्वास था कि तर्क सब कुछ कर सकता है जैसे स्पष्ट करना, सामाजीकरण और क्रमानुसार संगठित करने के प्रत्येक कार्य को जाँच व खोज के द्वारा सफलता पूर्वक किया जा सकता है इसीलिए :-

"डिवी विचार के विचलन की भूमिका और विचारों की अतार्किक विषय वस्तु की निर्भरता को पहचानने में ज्ञानवादी और प्रकृतिवादी के रूप मे हैं । वे जीवन के व्यवहार में बुद्धि की उच्च भूमिका व सर्वश्रेष्ठता को पहिचानने वाले विचारक हैं ।"[1]

परिस्थिति के संदर्भ में जाँच प्रणाली कार्य करती है :-

जॉन डिवी की मान्यता है कि किसी भी वस्तु की प्राप्ति तभी होती है जब विचार को जाँच के लिए स्वाभाविक परिस्थिति के संदर्भ में रखा जाय । जाँच के लिए अध्यापक की अपेक्षा अन्य कोई भी यंत्र कारगर नहीं है । सत्यता के विचार के सम्बन्ध में उच्च व केन्द्रीय महत्व के प्रश्न को वे स्वीकार करते है और परिस्थितियों के संदर्भ में ही सत्यता के प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करते हैं । जॉन डिवी के अनुसार तर्क का लाभ तभी है जब हमारा मस्तिष्क वास्तविकता से सम्पर्क स्थापित करे । एक क्रियाशील विचारक का कार्य विचार करना है और उनके विचार

1- डोनाल्ड,ए0 पैटस आर्टिकल ऑव डिवीज लॉजिकल थ्योरी" ।द मार्डन लाइब्रेरी,न्यूयार्क। पृष्ठ-109 ।

व चिन्तन के भीतर वास्तविक समस्यायें निहित होती है, क्योंकि यदि ऐसा न हो तो चिन्तन अर्थहीन हो जायेगा तथा रहस्यपूर्ण बना रहेगा ।

जाँच या अन्वेषण विश्व के साधारण ज्ञान में ही प्रारम्भ होता है :-

जॉन डिवी का महत्वपूर्ण योगदान इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में है कि तर्क तभी संगतपूर्ण होता है जब यह सामान्य जीवन के अनुभव से प्रारम्भ हो । इसलिये जॉन डिवी के अनुसार जिससामान्य ज्ञान के विश्व में मनुष्य कार्य करता है, प्यार व घृणा करता है और दुःख उठाता है, जो पर्यावरण की वास्तविकता की प्रतिक्रिया से और जाँच से उत्पन्न होता है, वह जाँच, इस प्रकार के विश्व से अलग नहीं हो सकती है ।

अतः जॉन डिवी के अनुसार अनुभव, अस्तित्व का रूप है । अनुभव, अस्तित्व के स्वाभाविक इतिहास व विस्तृत अस्तित्व के क्षेत्र में का एक हिस्सा है । जॉन डिवी का तार्किक सिद्धान्त विज्ञान की भाँति यथार्थ है । पैट ने पुनः कहा है कि :-

> "प्रयोजनवादी और वैज्ञानिक वास्तव में यथार्थवादी हैं क्योंकि वे व्यक्तिनिष्ठ मानसिक संसार के द्वार को उद्घाटित नहीं करते हैं और वस्तुनिष्ठ विश्व के प्रतिकूल इस द्वार को बन्द कर देते हैं । इसमें कैसे प्रवेश किया है वह भूल जाते हैं । दीवार में कहाँ दरार है उसकी खोज करते हैं और उसी दरार से विश्व को देखने की आशा करते हैं ।"[1]

1-डोनाल्ट ए० पैटस आर्टिकल ऑव डिवीज लॉजिकल थ्योरी पृष्ठ-118 ।

<u>भविष्य की जाँच पर ज्ञान की वस्तु की परख आधारित है :-</u>

तर्कशास्त्र में जॉन डिवी का मौलिक योगदान तब उपलब्ध होता है जब वे कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु एक पदार्थ है अथवा ज्ञान की वस्तु है । वह वस्तुनिष्ठ उस सीमा तक हैं जब तक वह भविष्य के कार्य व जाँच के लिए स्थित व निर्भर है अर्थात भविष्य की परिस्थितियों में भी वही रहे जो आज वर्तमान में हैं । जब कार्यशीलन प्रक्रिया में यह निर्णय के लिए विषय वस्तु बनती है तब वह अपनी वस्तुनिष्ठता के स्वभाव को छोड़ देती है, क्योंकि जॉन डिवी के अनुसार यह एक कार्यशील विषय हो जाती है और अनिश्चितता की स्थिति में रहती है । जॉन डिवी का विश्वास है कि यह अनिश्चितता विचार या कार्य के कारण न होकर उत्तेजनाओं की अनिश्चितता के कारण है । इसी लिये जॉन डिवी कहते हैं :-

> "अस्तित्व वाली विषय वस्तु की अपेक्षा व्यक्ति निष्ठता एक विचार के कार्य से अधिक और कुछ नहीं है ।"[1]

<u>ज्ञान की वस्तु भविष्य की जाँच के लिये साधन और साध्य दोनों है :-</u>

जॉन डिवी इसी विश्व में विश्लेषण, जाँच आदि करने पर बल देते हैं । जाँच व विश्लेषण का सम्बन्ध इस विश्व से बाहर विचारकों के मस्तिष्क में नहीं मानते हैं । डिवी के अनुसार

1- जॉन डिवी : एसेज इन एक्सपेरीमेन्टल लॉजिक, पृष्ठ-248 ।

-न कुछ उद्देश्य के द्वारा निर्देशित होता है और प्रयोग द्वारा व्यवहार परक बनाया जाता है । भौतिक तत्व जो किसी विश्लेषण के लिए अन्तिम है वे बाद में विश्लेषण के लिए अन्तिम नहीं होते हैं । इसीलिए डिवी कहते हैं कि ज्ञान की विषय वस्तु ही जाँच का लक्ष्य और भविष्य की जाँच के लिए साधन हो जाती है । इस प्रकार जॉन डिवी औपचारिक तर्कशास्त्र की विचारधारा का विरोध करते हैं और वैज्ञानिक यथार्थ जाँच प्रणाली का प्रतिपादन करते हैं ।

तर्क के लिये मनोविज्ञान अपरिहार्य है :-

जॉन डिवी के अनुसार प्रभावी चिन्तन तभी होता है जब कोई कठिनाई प्रस्तुत होती है । इस प्रकार चिन्तन की प्रक्रिया या विचार अनुभव की एकता की पुनर्रचना के लिये साधन व यंत्र हैं । जब परिस्थितियों में चिन्तन प्रभावी या अप्रभावी हो जाता है तब उन परिस्थितियों का अध्ययन करना ही तर्क का विषय हो जाता है । विर्थ लिखते हैं :-

> "डिवी के अनुसार तार्किक सिद्धान्त विचारों पर स्वयं आलोचनात्मक विचार है । मानव अनुभव में चिन्तन के बीजों के अध्ययन और विचारों की उन विधियों के उद्विकास को जिसने मानव के विकास को बढ़ाया है या बाधा पहुँचायी है तार्किक सिद्धान्त उसे अपने में शामिल करता है ।"[1]

1- आर्थर एच० विर्थ : जॉन डिवी ऐज एजूकेटर", पृष्ठ-87 ।

जॉन डिवी ने मनोवैज्ञानिक कृतियों में अनुभव के आरगेनिक निरन्तरता की अवधारणा का विकास किया था । बाद में विचारों की आलोचनात्मक भूमिका को समझा और प्रभावी चिन्तन के लिए तार्किक लेखों को लिखना आरम्भ किया । जॉन डिवी के अनुसार मनोविज्ञान समस्त सम्बन्धित अनुभवों को समझने का प्रयत्न करता है । यही अनुभव डिवी के तार्किक सिद्धान्त की विषय वस्तु है ।

समस्त तार्किक चिन्तन जीवन और मानव समस्याओं से संगति रखता है :-

जॉन डिवी जीवन व तर्क, बुद्धि और अनुभव, धर्म व विज्ञान में कोई व्यवधान स्वीकार नहीं करते हैं । जो अनुभव तार्किक चिन्तन से संयुक्त नहीं होता है वह उन्हें स्वीकार नहीं है, क्योंकि उनका विचार है कि तार्किक चिन्तन अपने स्वयं के संदर्भ में प्रकृतिवादी, अपने कार्य में साधनवादी तथा अपने अस्तित्व के गुण की अनुभूति में प्रयोगवादी है । इसलिए उनकी धारणा है कि यदि तार्किक चिन्तन अथवा बौद्धिक विचार को उचित रीति से (प्रयोगात्मक समस्या-समाधान विधि से) जान लिया जाता है तो जीवन का तथा सभी अर्थपूर्ण समस्याओं के हल का विरोध करने का कोई औचित्यपूर्ण कारण नहीं रह जाता है । सबसे महान योगदान जॉन डिवी का यह रहा है कि इन्होंने तार्किक चिन्तन को शास्त्रीय अर्थ से मुक्त किया ।

मूल्य अथवा नैतिकता के क्षेत्र में जॉन डिवी का योगदान :-

जॉन डिवी हृदय से नैतिक थे :-

जॉन डिवी हृदय से नैतिक थे, क्योंकि वे जोर देते हैं कि किसी भी विचारशील कार्य हेतु प्राथमिक औचित्य अनुभव के नैतिक गुण को शक्ति प्रदान करने और वृद्धि करने की भूमिका में है । जॉन डिवी का विचार है कि जीवन में नैतिकता को प्राप्त करना चाहिये जिससे व्यक्ति के जीवन और सामाजिक जीवन में सक्रिय अन्तर किया जा सके । नैतिक सिद्धान्तों को व्यवहार परक बनाना चाहिये और इसे सक्रिय मार्गदर्शक के रूप में कार्य में व्यवहृत करना चाहिये ।

विचारशील नैतिकता के पक्ष में तर्क :-

पहले से नियत सिद्धान्तों में से चुनकर नैतिक तत्वों के प्रयोग को जॉन डिवी मान्यता नहीं देते हैं । जेम्स टफ्टस[1] के साथ मिलकर जॉन डिवी ने जिस नीतिशास्त्र के ग्रन्थ को लिखा उसका मुख्य विषय "अविचारणीय नैतिकता" अथवा "परम्परागत नैतिकता" के विरूद्ध तर्क स्वरूप प्रस्तुत "विचारशील नैतिकता" ही था । सामाजिक जीवन में कार्य करके ही विचारशील ज्ञान द्वारा नैतिक चुनाव किया जा सकता है, अथवा नैतिकता को सीखा जा सकता है । शिक्षा के सम्बन्ध में जॉन डिवी कहते हैं कि विद्यालय के समस्त आयोजनों, पाठ्यक्रम, विधि आदि की

1- जॉन डिवी एण्ड जेम्स एच0 टफ्टस : थ्योरी ऑव द मॉरेल लाइफ ।हॉल्ट रिनेहार्ट एण्ड विन्सटॅन, न्यूयार्क, 1960।

जिम्मेदारी विचारशील नैतिक चरित्र के निर्माण की ही है ।
जॉन डिवी का नैतिक विचार उनके साधनवाद का अभिन्न अंग है । जो साधनवाद हीगेल के आदर्शवाद के विकल्प के रूप में विकसित हुआ था ।

प्रजातंत्र का महत्व नैतिक जीवन के लिये है :-

जॉन डिवी का विचार है कि प्रजातंत्र का महत्व इस तथ्य में हैं कि यह मनुष्य को सत्य को व्यावहारिक रूप में प्रतिदिन के कार्य में, सीखने के लिये योग्य बनावें । जॉन डिवी का विश्वास है कि प्रजातंत्र आवश्यक रूप में एक आध्यात्मिक तथ्य है न कि एक शासन व्यवस्था । जॉन डिवी के अनुसार प्रजातंत्र में स्वतंत्रता का तात्पर्य "वस्तुओं की अन्तर आत्मा में सत्य को अनुभूति करना" और अपने को प्रकट करने का अवसर देना है । इसी लिये वे कहते हैं :-

> "स्वतंत्रता के रूप में प्रजातंत्र का तात्पर्य बन्धनों को ढ़ीला करना है, प्रतिबन्धों को हटाना है, रुकावटों को तोड़ना है---- प्रतिबन्धों को हटाने के इस कार्य से जो कुछ सत्य व यथार्थता मानव जीवन में है उसे स्वयं की अभिव्यक्ति के लिये स्वतंत्र करना है ।"[1]

इतनी विश्वसनीयता के साथ प्रजातंत्र के इस पहलू की व्याख्या सम्भवत: किसी अन्य दार्शनिक ने नहीं की है । यहाँ तक

1- जॉन डिवी "क्रिश्चियनटी एण्ड डिमोक्रेसी" रेलिज्यस थॉट ऑव यूनीवर्सिटी ऑव मिशिगन, पृष्ठ-66 ।

कि नैतिक जीवन के विकास के लिए इसे आवश्यक दशा मानने के लिए किसी भी विचारक ने प्राय प्रयास नहीं किया है ।

नैतिकता के सिद्धान्त की कुंजी :-

एक अच्छे मानव का सौन्दर्य व शिव उसके कार्यों में प्रतिबिम्बित होता है ।अरस्तू की इस विचारधारा से जॉन डिवी सहमत हैं । जॉन डिवी ने इसे इस प्रकार व्यक्त किया है :-

"स्व ।सेल्फ। अपनी प्रकृति को उसमें प्रकट करती है
जिसे यह चयन करती है ।"[1]

इसलिये जॉन डिवी ने अनेक बार जोर देकर कहा है कि नैतिकता के सिद्धान्त की कुंजी"स्व" की एकता की पहिचान में, और इसके कार्य में है । जॉन डिवी महात्मा गांधी की नैतिकता से साम्य रखते हैं क्योंकि गांधी जी ने भी "स्व" की एकता और इसके कार्यों पर जोर दिया है अर्थात वास्तविक नैतिकता को हमारे कार्यों में प्रकट होना चाहिये ।

नैतिक जीवन की विशेषता सामाजिक जीवन के गुण पर निर्भर करती है :-

नैतिक सिद्धान्त के लिए जॉन डिवी का एक योगदान यह था कि वे नैतिक जीवन और सामाजिक जीवन में अन्तर नहीं मानते थे, क्योंकि यदि सामाजिक जीवन दोषपूर्ण होता है तो व्यक्ति का चरित्र भी दोषपूर्ण हो जाता है । जॉन डिवी के इसी

1- जॉन डिवी : "द थ्योरी ऑव मॉरल लाइफ, पृष्ठ-150 ।

विश्वास ने उनमें वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की आलोचना करने तथा प्रजातंत्रात्मक सामाजिक व्यवस्था के विकास हेतु कार्य करने की प्रेरणा प्रदान की थी । इस जनतंत्रात्मक सामाजिक व्यवस्था ने मानव तथा नैतिक विकास की परिस्थितियों को निर्मित किया था । इसलिये जॉन डिवी सामाजिक जीवन के विकास हेतु ही विद्यालय की भूमिका को महत्त्व देते हैं ।

जॉन डिवी के नैतिकता की विकासवादी व्याख्या :-

जॉन डिवी सिद्ध करते हैं कि डार्विन का विकासवादी सिद्धान्त "नैतिक संघर्ष" दूसरे जीवन के लिये मानव जीवन को कायम रखने के लिए आवश्यक पुनर्अनुकूलन की मौलिक आवश्यकताओं को अपने में शामिल किये हुये हैं । विकास का तात्पर्य (पुनर्संगठन से है जॉन डिवी कहते हैं :-

> "विकास सदैव कुछ की कीमत पर होता है । यह नवीन की माँग की पूर्ति के अनुसार अतीत को कीमत के रूप में अदा करता है ।"[1]

केवल मानव में यह सामर्थ्य होती है कि वह अपने को मूल प्रवित्तियों से मुक्त कर सके । बौद्धिक दूर दृष्टि से मानव परिस्थितियों के अनुरूप उन संस्थाओं का निर्माण करता है जो वाँछित नैतिकता के विकास में सहयोगी होती है । यदि संस्थायें बदलती नहीं है तो जॉन डिवी के अनुसार वे "मृत" अथवा वर्फ से

1- जॉन डिवी : द इवोल्युशन एण्ड इथिक्स" पृष्ठ-323

ढक जाती है । विर्थ लिखते हैं कि :-

"डिवी के अनुसार जिस प्रकार विश्व में "चुनाव" अनुरूपता" और "जीवित रहने के लिए संघर्ष" करना पड़ता है, उसी प्रकार नैतिकता में भी चुनाव आदि करने पड़ते हैं।"[1]

शिक्षा द्वारा नैतिक सिद्धान्त समझे जाते हैं या अनुभव किये जाते हैं :-

शिक्षा द्वारा नैतिक सिद्धान्त की अनुभूति करने के लिये जॉन डिवी निरन्तर प्रयत्न करते रहे हैं "मॉरेल प्रिंसीपुल्स ऑव एजूकेशन" नामक अपनी पुस्तक में जॉन डिवी ने यह सिद्धान्त विकसित किया कि नैतिक आचरण के निर्माण के स्त्रोत :-

1- विद्यालयीय जीवन एवं सामाजिक संस्था के रूप में

2- इस विद्यालय के सीखने के नियम तथा कार्य करने की विधि और

3- इसके पाठ्यक्रम । ये तीन है ।

वे जोर देते है कि विधेयात्मक ढंग से भाग लेने पर ही नैतिक प्रशिक्षण प्राप्त होता है ।

सामाजिक कल्याण के कार्यों में रूचि लेने से ही आदत का विकास होता है :-

बच्चों में नैतिक आदत के निर्माण हेतु सामाजिक कल्याण का भाव उत्पन्न करना तथा उसमें रूचि लेने के लिये जोर देना चाहिये । उनमें बौद्धिक तथा भावात्मक रूचि को व्यावहारिक

1- आर्थर एच0 विर्थ : जॉन डिवी ऐज एजूकेटर" पृष्ठ-25।

सिद्धान्त के रूप में देखने की आदत का विकास करना चाहिये ताकि सामाजिक व्यवस्था व विकास में वृद्धि हो सके । विद्यालय के समग्र सामाजिक चरित्र में नैतिक शिक्षा को मौलिक कारक मानना चाहिये । सामाजिक चरित्र का ऐसा ही रूप विद्यालय के पाठ्यक्रम व विधि में दिखाई देना चाहिये ।

<u>नैतिकता मौलिक रूप में सामाजिक ही है</u> :-

जॉन डिवी के अनुसार नैतिक सिद्धान्त आध्यात्मिक नहीं है । जीवन से अलग इसका अन्य से सम्बन्ध नहीं है । नैतिक गुणों को समस्त सामाजिक जीवन व मानव की आदत को आच्छादित करना चाहिये । इस प्रकार जॉन डिवी के अनुसार नैतिकता मौलिक रूप से सामाजिक है । सामाजिक परिप्रेक्ष्य से परे यह अर्थ हीन है ।

<u>मूल्य (वैल्यूज)</u>

जॉन डिवी उन महान प्रयोगवादियों में से है जिसने नैतिकता तथा मूल्यों के प्रति सावधानी पूर्वक अपना ध्यान दिया है ।

<u>जॉन डिवी ने परम्परावादी मूल्यों के प्रश्नों के उत्तर के प्रति विद्रोह किया था</u> :-

अपने मूल्य के सम्पूर्ण दर्शन में जॉन डिवी का मुख्य प्रयास सिद्धान्त और व्यवहार की एकता के लिये ही नहीं था बल्कि मूल्यों को एक दूसरे से मिलाने के लिए भी था, जो सदैव अनुभव में हो । जॉन डिवी के अनुसार वर्तमान जीवन की तथा

दर्शन की गम्भीर समस्या मूल्यों और तथ्यों को एक दूसरे के सम्पर्क में ले आने की है । भौतिकशास्त्र तथा रसायनशास्त्र आदि में हमारा तथ्यात्मक ज्ञान बौद्धिक प्रयोग के द्वारा बढ़ा है, परन्तु राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र,नैतिकता और अन्य मूल्यों वाले विषयों का ज्ञान बहुत पीछे रह गया है । जॉन डिवी विश्वास करते हैं कि यह इसलिए हुआ है, क्योंकि हमने पारम्परिक मूल्यों को स्वीकार कर लिया है । इस दृष्टिकोण के विरुद्ध जॉन डिवी ने आवाज उठाई है । जॉन डिवी ने मूल्य को इस प्रकार परिभाषित किया है :-

"चरित्र के निर्देशन में जो कुछ ग्रहण किया गया है उसे उचित अधिकार के रूप में धारण करना है ।"

मानव अनुभव के समस्त क्षेत्रों में मूल्यों को लागू किया जाता हैं :-

जॉन डिवी के अनुसार मूल्यों को वस्तु के सीमित क्षेत्र मे लागू नहीं किया जाता है, बल्कि मानव की रूचि से सम्बन्धित सभी अनुभव के क्षेत्र में इसे लागू किया जाता है । जॉन डिवी का मौलिक योगदान उस समय स्पष्ट होता है जब वे कहते हैं कि रूचियों और सुविधाओं से अलग कोई भी वास्तविक मूल्य हो ही नहीं सकता, किन्तु यह भी कहते हैं कि यह तभी सम्भव है जब व्यवहार व चरित्र को नियमित करने वाले तत्वों को मूल्यों ने अपने में समाहित कर लिया हो और आलोचना के लिए सदैव खुला हो । जॉन डिवी के विचार से मूल्यों की वास्तविक समस्या मात्र सैद्धान्तिक अथवा व्यावहारिक समस्या नहीं है बल्कि दोनों

होनी चाहिये ।

मूल्यों की साधनवादी प्रकृति :-

जॉन डिवी का मौलिक विश्वास था कि सभी मूल्यों को साधन रूप में अनुभव किया जाना चाहिये । सामाजिक शैक्षिक सौन्दर्यात्मक अथवा नैतिक मूल्यों को अलग-अलग अस्तित्व में नहीं देखना चाहिये, बल्कि उन्हें साधन-उद्देश्य की निरन्तरता के रूप में सोचा जाना चाहिये । उदाहरण स्वरूप न्याय का सामाजिक मूल्य जीवन में व्यवस्था प्राप्त करने के साधन के रूप में है और इसे न्याय के नैतिक मूल्य की विश्वसनीयता के रूप में धारण करना चाहिये ।

चरित्र व कार्य मे द्वैतवाद नहीं है :-

मूल्यों के सम्बन्ध में जॉन डिवी का अन्य महत्वपूर्ण योगदान यह है कि वे उत्तेजनाओं और परिणामों के मध्य और चरित्र व कार्य के मध्य किसी भी प्रकार के अलगाव को मान्यता नहीं देते हैं, क्योंकि नैतिक रूप से दोनों आपस में सम्बन्धित हैं । जॉन डिवी के अनुसार नैतिक कार्यों को प्रयोजनवादी दृष्टिकोण से देखना चाहिये । अर्थात इसे विचार और कार्य, विचार और चुनाव तथा विचार और व्यवहार के मध्य प्रतिक्रिया रूप में देखना चाहिये । इस प्रकार उत्तम आचरण को अनुगामी प्रेरणाओं और अनुगमन करने वाले परिणाम के रूप में नापा जाना चाहिये ।

वास्तविक मूल्य अन्य मूल्यों को प्रोत्साहित करता है :-

जॉन डिवी की मौलिकता इस तथ्य में है कि जब वे

कहते हैं कि किसी मूल्य की वैधता का परीक्षण दूसरे मूल्यों से अलग करके सिद्ध नहीं किया जा सकता है । वास्तव में इस विश्व में कोई भी वस्तु स्वयं में अच्छी या बुरी नहीं होती है । इसकी अच्छाई या बुराई का आंकलन समाज के संदर्भ में किया जाता है जॉन डिवी के अनुसार दूसरी वस्तुओं के विकास की सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर मूल्यों का परीक्षण किया जाना चाहिये ।

मूल्यों का स्त्रोत अनुभव है :-

जॉन डिवी के मौलिक योगदान की विशेषता यह है कि जॉन डिवी के अनुसार सभी मूल्यों का स्त्रोत अनुभव है । मूल्य प्राणी और उसके पर्यावरण के मध्य तात्कालिक क्रिया-प्रतिक्रिया का परिणाम होता है और इस प्रकार अनुभव के बिना मूल्य का कोई महत्व नहीं है और इसके अतिरिक्त मूल्य के वैध सिद्धान्त की कोई अन्य समस्या नहीं हो सकती है । जॉन डिवी के अनुसार कला, नैतिकता, नीतिशास्त्र, राजनैतिक सिद्धान्त के लिए यही अनुभव ही गुणात्मक पहलू है, मूल्यों का अनिवार्य विचारशील एवं परीक्षणीय विषय है । इसके अभाव मे व्याख्या करना, मूल्यांकन करना व आलोचना करना कठिन है । जो विचार या सिद्धान्त अन्तिम हैं वे मूल्यों को उत्पन्न नहीं कर सकते हैं । सामान्य रूप से जॉन-डिवी का सर्वोच्च लक्ष्य मानव के अनुभव के सम्भावित सर्वोच्च गुणो को विस्तृत व बढ़ाने के लिये प्रयास करना था । वे चाहते थे कि मूल्य सामाजिक हों और प्रत्येक व्यक्ति द्वारा ग्रहण किया जाये । वे मूल्य को न तो वस्तुनिष्ठ मानते हैं न व्यक्ति निष्ठ ।

में दोनों प्रकार की विचारधारायें घातक हैं । प्रत्येक वस्तु को सूत्र या एक आत्म पारितोषिक अनुभव के रूप में होना चाहिये । जो अनुभव हममे घुल मिल जाता है वह हमारे जीवने के सभी तत्वोंको प्रभावित करता है ।"

सौन्दर्यशास्त्र के क्षेत्र में जॉन डिवी का योगदान :-

जॉन डिवी कला के अग्रणीय व्याख्याकार हैं :-

शिक्षा के क्षेत्र में संलग्न दार्शनिकों मे जॉन डिवी एक प्रमुख दार्शनिक हैं परन्तु कला के महत्त्व व अर्थ में उनकी ज्ञानात्मक एवं व्यावहारिक रुचि ने वर्तमान सदी में उन्हें महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है । इन क्षेत्रों मे जॉन डिवी की दो प्रमुखकृतियों के शीर्षक यह प्रकट करते हैं कि कला को उन्होंने जीवन से कैसे सम्बन्धित करने की खोज की है । उनकी पुस्तक "आर्ट ऐज एक्स-पीरियन्स" और "एक्सपीरियन्स एण्ड एजूकेशन" सौन्दर्यशास्त्र के क्षेत्र में उनके योगदान की द्योतक है ।

जॉन डिवी कला को उच्च स्थान पर नहीं रखते थे :-

जॉन डिवी ने जब यह सिद्धान्त रखा कि कोई दर्शन या कला का ज्ञान अपने लक्ष्य में उस समय असफल हो जाता है जब वह कला और प्रकृति, कला और विज्ञान, फाइन आर्टऔर उपयोगी कला आदि के मध्य मिथ्याद्वैत उत्पन्न करता है । जॉन डिवी के अनुसार कला को कीमती और विचित्र दृष्टि से देखने की प्रवृति मिथ्या है ।

जीवन अनुभव की जड में सभी कलायें हैं :-

जाॅन डिवी का यह विश्वास था कि मानव का कलात्मक ज्ञान समाज और समाज की संस्कृति से सम्बन्ध होने से अंकुरित होता है । यदि कला जीवन के अनुभव की जड़ में न हो तो यह जीवन से दूर हो जायेगी । इस मिथ्याद्वैत को उद्घाटित करने के प्रयत्न में जाॅन डिवी का योगदान था। उन्होंने ऐसा मार्ग प्रशस्त किया कि कला को उचित रीति से समझने में आसानी हो गई ।

जाॅन डिवी ने अनुभव किया कि सामान्य जन के विचारों के अनुसार सौन्दर्यात्मक अनुभव का सम्बन्ध प्रायः स्वप्न अथवा अनुभव की हमारी उस दशा से है, जिसमें हमारी सभी वास्तविकताएं, जीवन के समस्त तथ्य, संसार की चिन्ता तथा दुख एक तरफ फेंक दिये जाते हैं । इस प्रकार जाॅन डिवी ने अनुभव किया कि इस प्रकार के सौन्दर्यात्मक अनुभव, ज्ञान व समझ को प्राप्त करने वाले बौद्धिक प्रयत्न का विरोध किया जा सकता है । क्योंकि इस प्रकार के ज्ञानात्मक विषयों के सम्बन्ध में सौन्दर्यात्मक अनुभव मात्र उसमें लगना, माना जायेगा । जाॅन डिवी लिखते हैं :-

> "सौन्दर्यानुभूति के शत्रु न तो व्यावहारिक अनुभव है न तो बौद्धिक समझ । ऐसी सोच में थोथे व हल्के लक्ष्य की कमी होती है । व्यावहारिक और बौद्धिक कार्य में परम्परा के प्रति समर्पण है ।"[1]

1- जाॅन डिवी : आर्ट एज एक्सपीरियेन्स" पृष्ठ-40 ।

इसलिये वे अपने दृष्टिकोण को प्रकट करते हुये कहते हैं :-

> "एक अनुभव के पास ढाँचा और पैटर्न होता है, क्यों कि यह उसी समय काम नहीं करता है और न बदले में स्वीकार करता है बल्कि उन्हें सम्बन्धों में धारण करता है ।"[1]

सभी सौन्दर्यात्मक अनुभव एकता और पूर्णता का भाव रखते हैं :-

डिवी का विश्वास है कि कोई भी सौन्दर्यात्मक अनुभव कोई एक विशेष प्रकार का अनुभव नहीं है । सभी अनुभव चाहे वह बौद्धिक, व्यावहारिक अथवा भावात्मक हो सौन्दर्यात्मक तभी तक है जब तक वे तात्कालिक एकाकी अनुभूति कराते हैं और "पूर्णता की प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होते हैं ।" इस प्रकार जॉन डिवी सार रूप में प्रकट करते हैं कि जब तक मानव के अनुभव एकता की भावना के बिना असम्बन्धित अथवा अलग-अलग हैं तब तक वे विशेषता में सौन्दर्यात्मक नहीं हो सकते और यदि मानव के अनुभव पुनरावृत्ति मात्र है तो वे सौन्दर्यात्मक गुण नहीं धारण कर सकते ।

कला जीवन को सम्पन्न बनाती है :-

जॉन डिवी ने सौन्दर्यात्मक क्षेत्र में उस समय महत्वपूर्ण योगदान दिया जब वे कहते हैं कि सौन्दर्यात्मक मूल्य किसी भी प्रकार से जीवन से भिन्न व अलग नहीं हैं । वास्तव में सभी सौन्दर्यात्मक अनुभव जीवन की पूर्णता के लिये ही होते हैं । वास्तव में

1- जॉन डिवी : आर्ट ऐज एक्सपीरियेन्स, पृष्ठ-44 ।

अस्तित्व की यही स्वाभाविक पूर्णता है जो कला प्रदान करती है । इस तथ्य को दृष्टि में रखकर हम कह सकते हैं कि सौन्दर्यात्मक मूल्य नैतिक अर्थशास्त्रीय सामाजिक अथवा राजनैतिक मूल्यों की विरोधी नहीं है, बल्कि सौन्दर्यात्मक मूल्यों से मनुष्य का नैतिक व सामाजिक जीवन पहले से अधिक अच्छा बनाया जा सकता है ।

सभी कलाओं का जीवन से सम्बन्ध होना चाहिये :-

डिवी के अनुसार सभी कलाओं को जीवन से सम्बन्धित होना चाहिये,जबकि कला को अव्यवहारिक समझा जाता है ।ऐसा सोचना कल्पना के संसार में रहना है और सभी कला से मानवता का कोई फायदा नहीं होता है । परन्तु डिवी का कथन है कि अच्छी कलाएं सम्पन्नता का स्रोत होती हैं।

डिवी का यह विश्वास है कि विज्ञान और कला दोनों एक दूसरे से अलग नहीं हैं । अच्छी कला और अच्छा विज्ञान आपस में सम्बन्धित ही नहीं हैं, बल्कि उनका महत्व समान है क्योंकि :-

"बुद्धि के प्रयोग और खोज के कार्य का तात्पर्य बहुमूल्य मानव उद्देश्य को पैदा करना है ।"[1]

कला अनुभव का क्रियात्मक पहलू है :-

डिवी विश्वास करते हैं कि "कला" विशेष करके अनुभव के क्रियाशील पहलू का तथा कार्य का प्रकटीकरण है । अनुभव अपने

1- वही पेज-51।

सारत्व को सौन्दर्यात्मक अन्तर्दृष्टि से प्राप्त करता है और जो क्रिया का मार्गदर्शन करता है,उस आदर्श लक्ष्य के पारितोषिक अनुभव से अपने निष्कर्ष को निकालता है । इस प्रकार डिवी कहते हैं कि यदि कलाकार एक सौन्दर्यात्मक अनुभव नहीं रखता है तो उसका कार्य बनावटी और असौन्दर्यात्मक होगा, परन्तु जब तक काल्पनिक पदार्थ क्रियाशीलता में उपस्थित है तो इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया को यह इनफ्यूज कर देता है । यहाँ तक कि अधिकांश कठिन कार्य को भी अर्थपूर्ण और पारितोषिक के योग्य बनाया जाता है । कला की वस्तु की प्रशंसा में लिखते हुये जॉन डिवी ने अनुभव किया कि कला की क्रियात्मक प्रक्रिया मे अन्तर्दृष्टि सम्मिलित करनी चाहिये और उन्होंने कहा कि कला की स्वयं प्रशंसा करना एक क्रियात्मक मानसिक कार्य है ; क्योंकि इस कार्य में प्रशंसक की प्रशंसा करने वाला कार्य निहित होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे कलाकार के क्रियाशील कार्य में कला निहित है ।

समस्त कलाएं मौलिक रूप से नैतिक हैं :-

अन्त मे जॉन डिवी का सौन्दर्यात्मक क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान था कि समस्त कलायें मौलिक रूप से नैतिक हैं । इस कथन से यह सिद्ध होता है कि जॉन डिवी इससे सहमत थे । कॉनकिन लिखते हैं :-

> "डिवी जीवन के समस्त क्षेत्रों को सौन्दर्यात्मक अनुभव से आच्छादित करना चाहते थे ।सामाजिक खाई और दरार व भाग को कला द्वारा भरना चाहते थे और वे तनाव को कम करना चाहते थे ।

> उनके विचार से कला स्थानापन्न अथवा परिवर्तन और इसाईयों की मुक्ति के विचार के ही समान हैं ।"[1]

कला सभ्यता को कायम रखती है :-

जॉन डिवी के विचार से कला सभ्यता को कायम रखती है और विश्वास करते थे कि कला सभी मानव क्रियाओं का एक प्रचलित लक्ष्य है और सभी मनुष्यों की सम्पत्ति है । जॉन डिवी के शब्दों में :-

> "जब तक कला सभ्यता का व सौन्दर्य का प्रसाधन गृह होगी तब तक न कला और न सभ्यता सुरक्षित हो पायेगी ।"[2]

जॉन डिवी का दर्शन के क्षेत्र में योगदान :-

जॉन डिवी के दर्शन का सम्बन्ध इसी संसार से है :-

जॉन डिवी के दर्शन के अध्याय में हमने देखा है कि जॉन डिवी ने अपने दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति जिस संसार के विषय में बार-बार की है वह अन्य कोई संसार नहीं है बल्कि वह यही संसार है जिसमें हम रह रहे हैं अथवा जो हमारे दिन प्रतिदिन के अनुभव का संसार है । हमारे प्रतिदिन का संसार बाधाओं और रुकावटों से भरा हुआ है जो एक दूसरे से पूर्णतः असम्वन्धित है। वह ऐसा संसार है जहाँ दो और दो

1- पॉल के0 कानकिन : "प्युरीटन्स एण्ड प्रैग्मेटिस्ट", पृष्ठ-388

2- जॉन डिवी : "आर्ट ऐज एक्सपीरियन्स", पृष्ठ-344 ।

हमेशा चार नहीं होते हैं । जॉन डिवी के अनुसार यह भ्रम स्वयं दर्शन ने उत्पन्न किया है, इसलिए दर्शन के कार्य का सम्बन्ध वर्तमान से हटकर एक अच्छे संसार की व्यवस्था हेतु एक विधि की खोज करने से रहा है ।

दर्शन की इस अवधारणा ने जॉन डिवी को विचारशील बनाया और उन्हें ऐसा सोचने के लिये बाध्य होना पड़ा कि दर्शन की विषय वस्तु मूल्यों और वस्तुओं के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने के लिये है । जैसा कि सिडनी हूक ने लिखा है :-

> "वस्तुयें क्या है और वे एक दूसरे से कैसे सम्बन्ध रखती है? यही विज्ञान की वंशानुगत विषय वस्तु है । मूल्य क्या हैं? और उन्हें कैसे प्राप्त किया जा सकता है? और उसे किस प्रकार उचित ठहराया जाता है? एक प्रासंगिक नमूने मे संगठित होने बाले अनुभव मे उन मूल्यों का क्या स्थान है ? दर्शन का यही वंशानुगत सम्बन्ध है ।"[1]

इस प्रकार जॉन डिवी के अनुसार दर्शन विश्वासों और मूल्यों का एक आलोचनात्मक मूल्यांकन है । दर्शन जीवन की आलोचना है, दर्शन आलोचना की आलोचना है ।

जॉन डिवी की मौलिक स्थिति :-

जॉन डिवी जिस संसार के विषय में चिन्तन करते हैं, वह पैदा किया हुआ संसार नहीं है । उनकी व्याख्या का संसार सामान्य संसार के अनुभवों से नियन्त्रित रहता है । जॉन डिवी

1- सिडनी हूक : जॉन डिवी :एन इन्टलेक्चुअल पॉरट्रेट" पृष्ठ-35

का वास्तविक योगदान यह था कि उनका दार्शनिक वाद-विवाद अनुभव द्वारा संसार को नियन्त्रित करने में सलग्न रहा है । जॉन डिवी इसी को दर्शन में वैज्ञानिक अथवा प्रयोगात्मक विधि कहते है । यही उनका साधनवाद है ।

सामान्य धारणा के अनुसार दर्शन के क्षेत्र में सिद्धान्त को प्रयोग या व्यवहार से श्रेष्ठ माना जाता है । सिद्धान्त व्यवहार से बिलकुल स्वतंत्र व अलग माना जाता है । सिद्धान्त अपने स्वयं के सत्य को स्थापित करने का तरीका रखता है । इनके अनुसार व्यवहार, प्रयोग और अनुभव व्यर्थ और असंगत होते हैं। किन्तु जॉन डिवी इस विचार से सहमत नहीं है ।

दर्शन को अनुभव के परीक्षण के आधीन होना चाहिये :-

जॉन डिवी की स्थिति उपर्युक्त अवधारणा से बिलकुल भिन्न है । जॉन डिवी सोचते है कि दार्शनिक सिद्धान्त वैज्ञानिक सिद्धान्त से कम महत्वपूर्ण नहीं हैं । यदि वैज्ञानिक सिद्धान्त अनुभव, प्रयोग व व्यवहार के अधीन हैं तो दार्शनिक सिद्धान्त भी उसी प्रकार प्रयोग, व्यवहार, अनुभव व परीक्षण के आधीन हैं । जॉन डिवी की परख की इसी प्रणाली को दार्शनिकों से अपनाने के लिये कहते हैं । जॉन डिवी के अनुसार वैज्ञानिक एवं दार्शनिक दोनों मनुष्य हैं। वे चाहते हैं कि सत्यता पर मानव की मुहर लगनी चाहिये । मानव अनुभव, परीक्षण, व प्रयोग से परे सत्यता का कोई महत्व नहीं है ।

जॉन डिवी के जीवन के कार्यों का लक्ष्य :-

दर्शन के क्षेत्र में जॉन डिवी के योगदान के सम्बन्ध में रैटनर ने लिखा है :-

"डिवी के जीवन के कार्य का लक्ष्य दर्शन को कपट व छल से मुक्त करना, जीवन को सभी प्रकार से नियन्त्रित करना तथा जीवन के हरेक क्षेत्र में प्रवेश करना था । जो कार्य उनके विश्वास से उत्पन्न हुआ था उसे ही उदाहरण रूप में प्रस्तुत करते है और कहते हैं कि वास्तविक लाभप्रद, जीवनदायी तथा मानवीय शिष्टाचार को सम्पादित करना ही दर्शन का कार्य है । जॉन डिवी अर्द्धशताब्दी तक अपने सहयोगी एवं समकालीन दार्शनिकों को मानवीय धरातल पर आने के लिये आव्हाहन करते रहे हैं और बालुकामय भवन की अपेक्षा मानव के रहने योग्य उचित भवन के निर्माण के लिए सदैव प्रेरणा देते रहे हैं ।"[1]

जॉन डिवी के दर्शन की संगति इस विश्व से है :-

विश्वास के साथ यह कहा जा सकता है कि जॉन डिवी की अपेक्षा अन्य किसी ने दर्शन को सर्वाधिक व्यावहारिक नहीं बनाया है और न तो इस प्राकृतिक संसार से संगति ही बैठाई है । एक दार्शनिक के रूप में जॉन डिवी का सारा प्रयास यह प्रकट करने में रहा है कि मानव के समस्त अनुभव व कार्य प्रगतिशील अर्थ से युक्त होने चाहिये । जॉन डिवी का यह विश्वास

1- जे0 रैटनर :"इन्टलीजेन्स इन द मॉडर्न वर्ल्ड" पृष्ठ-8 ।

था कि कोई भी वस्तु अर्थयुक्त सत्य अथवा आवश्यक मूल्य की तब तक नहीं हो सकती जब तक वह साधन रूप से भ्रमों को दूर नहीं करती है और विश्व में स्पष्टता व एक व्यवस्था नहीं लाती है । जॉन डिवी कहते हैं कि यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि :-

> "यह प्रयोजनवाद की प्रकृति में निहित है और इसे यथा सम्भव विस्तृत रूप में सभी क्षेत्रों में लागू किया जाना चाहिये ।"[1]

इसलिए जॉन डिवी के प्रयोजनवाद को साधनवाद कहा जाता है क्योंकि "दर्शन" के अध्याय में पहले ही साधनवाद को अर्थयुक्त, सत्य, अथवा वह मूल्यवान विचार कहा गया है जो समस्या के बौद्धिक हल के लिये साधन है ।

जॉन डिवी का दर्शन प्रयोगात्मक है :-

जॉन डिवी ने अपने दर्शन को दूसरा नाम "प्रयोगात्मक-वाद" दिया है इनकी दृष्टि में इस शब्द का विशेष महत्व है, क्यों कि जॉन डिवी के रचनात्मक दर्शन का आधार प्रयोगों का विश्लेषण व मूल्यांकन ही है । इसका आधार प्रयोग है ।

समस्यायें और समाधान सह-सम्बन्धित हैं :-

जॉन डिवी के दर्शन की अन्य विशेषता यह है कि इनका दर्शन समस्या और समाधान को सह-सम्बन्धित मानताहै ।

1- जॉन डिवी : "एसेज इन एक्सपेरीमेन्टल लॉजिक" पृष्ठ-307 ।

इनमें "अस्तित्व युक्त" सम्बन्ध है । समस्यायें या तो सांस्कृतिक होती हैं या सामाजिक अथवा जीव वैज्ञानिक । हम जानते हैं कि "खाली स्थान" में न तो समस्यायें उत्पन्न होती है और न तो उन्हें हल किया जा सकता है । यही वह बिन्दु है जहाँ उनका प्रकृतिवाद उनके साधनवाद से मिल जाता है । जाॅनडिवी का एक मौलिक दार्शनिक प्रयत्न :-

> "वैज्ञानिक ज्ञान की सक्रिय व तकनीकी शक्ति से पीछे खीचने बाली विमार्गीय शक्ति और प्रचलित आदतों और विश्वासों की जड़ता के आवृत्यात्मक संघर्ष का सामना करना भी रहा है ।"[1]

डिवी ने अतीत को चिन्तन और कार्य करने की विधियों को वर्तमान संसार के लिये असंगत मानते हुये नयी विधियों की खोज की है ।

दर्शन की विशेषता तथ्यों एवं मूल्यों के सम्बन्ध मे हैं :-

जाॅन डिवी का मौलिक विश्वास यह था कि समस्त अर्थ युक्त जाॅच प्राकृतिक संसार से ही शुरू होता है और उसी में अन्त हो जाता है । इनके अनुसार खोज का कार्य समस्या समाधान की उपयोगी विधियों को प्रदान करना है । वर्तमान जीवन की "गम्भीर समस्या"- तथ्यों और मूल्यों के सम्बन्धों की समस्या" ही मौलिक रूप से दार्शनिक विशेषता है । जाॅन डिवी कहते हैं कि :-

---

1- पाॅल आर्थरशिल्प: द फिलाॅस्फी आॅव जाॅन, डिवी : पृष्ठ-522

"मानव जिस संसार में रह रहा है उस संसार के मानव के आचरण को निर्देशित करने वाले विश्वासों, मूल्यों व उद्देश्यों के मध्य सहयोग व एकता लाने की समस्या ही आधुनिक जीवन की गम्भीर समस्या है। यही प्रत्येक दर्शन की समस्या है। यह जीवन से अलग नहीं है।"[1]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पियर्स एवं जेम्स की अपेक्षा जॉन डिवी का दर्शन सबसे अधिक ग्राहय है। डिवी ने निर्माण व पुनर्रचना के अद्वितीय मेल को प्रकट किया है। हमने देखा है कि जॉन डिवी का "साधनवाद" पियर्स तथा जेम्स की मात्र पुनरावृत्ति नहीं है। इनका दर्शन इन दोनों की दार्शनिक विचारधारा से आगे बढ़ जाता है, क्योंकि जॉन डिवी ने मूल्यों के ग्राहय सिद्धान्त और सामाजिक दर्शन पर विशेष काम किया है जबकि पियर्स एवं जेम्स ने ऐसा नहीं किया है। जॉन डिवी का दर्शन सामाजिक व सांस्कृतिक पक्षों पर अधिक जोर देने के कारण अधिक ग्राहय हो गया है। स्ट्रोह ने लिखा है :-

"यदि पियर्स का प्रयोजनवाद प्रयोगात्मक व तार्किक परिणामों पर बल देता है और जेम्स का प्रयोजन वाद मूर्त और मानवीय प्रतिफल की आकांक्षा करता है तो डिवी का सामाजिक दर्शन, सामाजिक विचारों को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में लागू करता है।"[2]

जॉन डिवी अन्त तक दार्शनिक बने रहे। कॉर्लिस के शब्दों में :-

1- जॉन डिवी : "द क्वेस्ट फॉर सर्टेन्टी" पृष्ठ-225 ।

2- गुवे, डब्ल्यु स्ट्रोह : "अमेरिकन फिलॉसफी फ्रॉम एडवर्ड टू डिवी" पृष्ठ-244 । वान नास्ट्रेन्ड रेनहोल्ड कम्पनी, न्यूयार्क, 1968।

"मुझे याद है कि एक बार डिवी के सम्बन्ध में बहुत अधिक कोलाहल हुआ था और कोई उन्हें शिक्षा-शास्त्री तो कोई सामाजिक विचारक तो कोई अपने समय के प्रमुख व्यक्ति के रूप में मान रहा था। डिवी ने कहा, क्षमा करें" मैं दार्शनिक हूँ" क्योंकि यही कहलाना उन्हें प्रिय था " मैं उचित रीति से चिन्तन करने का प्रयत्न करता हूँ । मैं जो कुछ करता हूँ वह यहीं सब कुछ हैं ।"[1]

जॉन डिवी का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान :-

शिक्षा के क्षेत्र में इनके योगदान के सम्बन्ध में लिखना कठिन कार्य है, क्योंकि शिक्षा के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में इन्होंने इतना लिखा है कि यह कहना कठिन है कि यही महत्वपूर्ण है । शिक्षा का ऐसा कोई भी पहलू नहीं है जिसका जॉन डिवी ने स्पर्श न किया हो । उद्देश्य, पाठ्यक्रम, विधि, शिक्षक, शिक्षालय अनुशासन तथा शिक्षा के अन्य कार्यों के सम्बन्ध में इन्होंने अपने विचार व्यक्त किये हैं । किन्तु उनके योगदान के मुख्य बिन्दु निम्नलिखित हैं ।

जॉन डिवी के शिक्षा दर्शन का केन्द्रिय सम्प्रत्यय :-

दर्शन के क्षेत्र में जॉन डिवी की दार्शनिक विचार धारा की व्याख्या करते समय हमने देखा है कि इनका मुख्य विश्वास सिद्धान्त और अमूर्त विचार को विश्व प्रकृति और मानव की समस्याओं से सम्बन्ध स्थापित करने में था । यही जॉन डिवी के

1- कार्लिस, लामॉन्ट :डॉयलॉग ऑव जॉन डिवी" पृष्ठ-126 [हॉरिजन प्रेस, न्यूयार्क, 1955]

शैक्षिक विचारों को समझने का साधन व आधार है । उनका विश्वास था कि शैक्षिक समस्यायें कार्य करने व परीक्षण करने का वह आधार प्रदान करती है जिसमें दार्शनिक विचार स्वयं को प्रमाणित करते हैं । यदि दर्शन मानव को मार्ग खोजने की अन्त दृष्टि देता है तो शिक्षा तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुसार बच्चों को शिक्षित करने का कार्य करती है । यही शिक्षा का सामाजिक कार्य है । शिक्षा दर्शन मानव की आकांक्षाओं का सर्व श्रेष्ठ विषय है । जिसमें :-

> "दूसरी समस्यायें, विश्व विद्या सम्बन्धी, नैतिक, तार्किक आदि समस्यायें सामने आ उपस्थित हो जाती हैं ।"[1]

इस प्रकार जॉन डिवी शिक्षा दर्शन के मुख्य कार्य के सम्बन्ध में लिखते हैं :-

> "शिक्षा दर्शन की समस्या है कि मानव अनुभव में शिक्षा का क्या मूल्य है ? इन मूल्यों को तथा सम्पूर्ण जीवन में निहित मूल्यों की खोज करना शिक्षा का कार्य है ।"[2]

जॉन डिवी कहते है कि :-

> "शिक्षा एक प्रयोगशाला है जिसमें दार्शनिक विचार मूर्तरूप धारण करते हैं और परीक्षित किये जाते हैं ।"[3]

1- जॉन डिवी :एक्सपीरियेन्स एण्ड नेचर" पृष्ठ-3। ।
2- जॉन डिवी :लेक्चरस् फार द फर्स्टकोर्स इन पेडागॉजीअनपब्लिशड नम्बर-1॥1896॥पृष्ठ-1कोटेडइन आर्थर एवं0विर्थसबुक"जॉनडिवीऐज एजूकेटर, पृष्ठ-28 ।
3- जॉन डिवी "डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-378 ।

उनका दृढ़ विश्वास था कि मानव अनुभव ही सभ्यता के विकास की प्रक्रिया है । दर्शन का कार्य उस परिस्थिति की खोज करना है तो मानव की पूर्णता को निश्चित करती है। यही शिक्षा सिद्धान्त में उनका मौलिक योगदान है । शिक्षा दर्शन का कार्य है कि वह उस मार्ग व विधि की खोज करे जिससे अनुभव व ज्ञान मानव जीवन में लाभप्रद ढंग से कार्य कर सके ।

शिक्षा वर्तमान के लिये कार्य करती है :-

जॉन डिवी ने पारम्परिक शिक्षा का विरोध किया था । "वर्तमान अनुभव महत्त्वपूर्ण है" और भविष्य एक अज्ञात रहस्य है । इसलिए यह वर्तमान ही केवल है जिससे शिक्षा का सम्बन्ध है । उनका दृढ विश्वास है कि शिक्षा को समाज में ही अपनी भूमिका निभानी है, इसके अतिरिक्त उसका कोई कार्य नहीं है । जॉन डिवी कहते हैं कि :-

> "प्रजातंत्र और आधुनिक औद्योगिक परिस्थितियों की उत्पत्ति के कारण यह निश्चित रूप से भविष्य कथन करना कठिन है कि आज के 20 वर्ष बाद सभ्यता का क्या रूप होगा । इसलिय किसी निश्चित परिस्थिति के लिये बच्चों को तैयार करना असम्भव है ।"[1]

इसी सिद्धान्त पर पुन: बल देते हुये जॉन डिवी कहते हैं :-

> "विषय का सम्बन्ध बालक से है,प्रयत्न करने बाली

1- जॉन डिवी : माई पेडागॉजिक क्रीड, पृष्ठ-21-22 ।

उसकी वर्तमान शक्ति से है तथा वर्तमान अनुभव से है जिसे कार्य में लगाना है । उसका वर्तमान दृष्टिकोण उसे समझाना होगा ।[1]

आधुनिक तकनीकी समाज की शिक्षा अपरिहार्य पहलू है :-

जॉन डिवी के अनुसार शिक्षा का कार्य संस्कृति का हस्तान्तरण करना है व सभ्यता की निरन्तरता है । दूसरे लोग भी इस विचार की पुष्टि करते हैं : कि शिक्षा द्वारा ही नयी पीढ़ी को समाज की आदतों, विश्वासों और ज्ञान की निरंतरता उपलब्ध होती है । शिक्षा द्वारा ही सामाजिक विरासत को पुनर्निरूपित किया जा सकता है । जॉन डिवी का विश्वास है कि सामाजिक जीवन का सम्पूर्ण क्षेत्र, सभी संस्थायें तथा हर प्रकार का सामाजिक व्यवहार व आदत, शैक्षिक कार्य को ही करते हैं । यदि ये उचित रीति से कार्य करे तो निश्चय ही मानव का अनुभव निरन्तर बढ़ता रहेगा । इसलिये शिक्षा आधुनिक तकनीकी समाज का अपरिहार्य पहलू है ।

जॉन डिवी की शिक्षा में विचित्र पहुँच है :-

जॉन डिवी शिक्षा द्वारा दो लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहते हैं । एक ओर वे शिक्षा को आश्चर्यजनक औचित्य स्थापित करने बाली वैयक्तिक अनुभवों को निरन्तर बनाये रखने तथा बढ़ाने वाली बनाना चाहते हैं । इस प्रकार शिक्षा ग्रहण करने की वस्तु है ।

1- जॉन डिवी : "द चाइल्ड एण्ड द करीक्युलम", पृष्ठ-3 ।

शिक्षा एक प्रयोग है तथा लाभप्रद जीवन के लिये तैयारी है ।

दूसरी ओर वे शिक्षा के समाजिक पक्ष पर बल देते है। शिक्षा केवल वैयक्तिक पूर्णता के लिए ही नहीं है बल्कि उसका सामाजिक पक्ष भी है । इस प्रकार जाॅन डिवी के लिए शिक्षा के वैयक्तिक व सामाजिक दोनों पक्ष अपरिहार्य हैं । एक प्रगतिशील समाज के लिए बुद्धिमान, गुणी एवं कर्मठ व्यक्ति की आवश्यकता पड़ती है । व्यक्ति सामाजिक सीमा का अतिक्रमण न करके समाज के विश्वासों व रीति रिवाजों को ग्रहण करना चाहिये। वह उसकी पुनर्रचना एवं पुनर्व्यवस्था करता है । जाॅन डिवी का विश्वास था कि नैतिक व्यक्ति और नैतिक समाज केवल साथ-साथ चलते ही नहीं है बल्कि साथ-साथ प्रगति भी करते हैं । डिवी के अनुसार शिक्षा का यही यथार्थ मूल्य है ।

जाॅन डिवी के शिक्षा सिद्धान्त में प्रजातंत्र साधन व साध्य दोनों है -

जाॅन डिवी का दूसरा योगदान यह है कि उन्होंने प्रजातंत्र को अपने शिक्षा सिद्धान्त में साधन व साध्य दोनों बनाया है । वे शिक्षा को अधिक प्रभावी बनाने के लिए जनतंत्र की आवश्यकता महसूस करते हैं, इसके लिए वे अध्यापक व बालक दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध को समान परिस्थितियों में तथा सीखने-सिखाने व विकास की प्रक्रिया में समान महत्व देते हैं । उनके अनुसार ऐसी शिक्षा का सामाजिक परिणाम जनतंत्र ही होता है । इनके अनुसार विद्यालय सुधार का अभिकरण है न कि शास्त्रीय ज्ञान देने का स्थान । विद्यालय नैतिकता का क्रियात्मक व

रचनात्मक अभिकरण है न कि नैतिक आदर्शों को उपदेशित करने का स्थान । विद्यालय बालक में निहित नैतिक गुणों को उद्घाटित करके नैतिक आदर्शों की प्राप्ति में सहयोग देता है । जॉन डिवी के अनुसार जनतंत्र पढ़ाने वाला विषय नहीं है बल्कि अभ्यास का अनुशरण करने वाला तथ्य है ।

शिक्षा जीवन की प्रक्रिया है :-

अतीत के अनुभवों को पुनर्निमित करने के कारण शिक्षा जीवन की प्रक्रिया हो जाती है । जॉन डिवी शिक्षा को भविष्य की तैयारी हेतु मानने के विचार का विरोध करते हैं और कहते है कि शिक्षा भविष्य के जीवन की तैयारी नहीं है बल्कि यह वास्तविक व वर्तमान जीवन की तैयारी की प्रक्रिया है । उन्होंने बल देकर कहा है :-

> "शिक्षा के उद्देश्य व अन्य दूसरे कार्य के विषय में बात करना मूर्खता है - जहाँ परिस्थितियाँ पूर्व दृष्टि के परिणामों को आज्ञा नहीं देती है और व्यक्ति को आगे देखने व बढ़ने के लिए प्रेरित नहीं करती है तथा प्रदत क्रिया से क्या प्रतिफल प्राप्त होगा? उसे देखने के लिए प्रेरित नहीं करती है ।"[1]

वहाँ शिक्षा की प्रक्रिया सम्भव नहीं है ।

जॉन डिवी शिक्षा प्रक्रिया के दो कारक मानते हैं :-

1- मनोवैज्ञानिक 2- सामाजिक कारक । जॉन डिवी ने शिक्षा में संश्लेषण को विशेष महत्त्व प्रदान किया है । उन्होंने व्यक्ति व सामाजिक कारकों में संश्लेषण स्थापित किया है । एक

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-119 ।

और बालक अपनी समस्त मूल शक्तियों, क्षमताओं और प्रवृत्तियों से युक्त होता है तो दूसरी ओर उसके समक्ष समस्त संस्थाओं, रीति रिवाजों एवं दृष्टिकोणों वाला सामाजिक संसार होता है । डिवी ने इन दोनों मनोवैज्ञानिक व सामाजिक कारकों में संश्लेषण किया है । यही दोनों शैक्षिक प्रक्रिया के कारक हैं । वैयक्तिक कारक के सम्बन्ध में जॉन डिवी का कथन है कि :-

> "शिक्षा एक मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि से बालक की सम्भावनाओं, क्षमताओं, रूचियों और आदतों के निर्माण से प्रारम्भ होती है । इसलिए इन शक्तियों व रूचियों और आदतों की निरन्तर व्याख्या की जानी चाहिये - हमें यह अवश्य जानना चाहिये कि उनका क्या अभिप्राय है ।"[1]

अत: डिवी विश्वास करते हैं कि :-

> "समस्त बौद्धिक क्रियाशीलन की प्रमुख जड़ प्रेरक भाव-भंगिमाओं और बालक के क्रियाशीलनों में है, न कि वाहय पदार्थों की प्रस्तुति और उसके लागू करने में है ।"[2]

शिक्षा में सामाजिक कारक इनके लिए इतना महत्वपूर्ण है कि जॉन डिवी विश्वास करते हैं कि यदि समाज न हो तो मानव का अस्तित्व ही न रहेगा । उनका विश्वास है कि मानव के आचरण की विधियाँ, सामाजिक क्रियाशीलता की विशिष्ट उपलब्धियाँ समाज में ही होती हैं । समाज ही बालक को मानव

1- जॉन डिवी : माई पैडागॉगिक क्रीड" पृष्ठ-7। ।

2- जॉन डिवी : एलीमेन्ट्री स्कूल रिकर्ड ।यूनीवर्सिटी ऑव शिकागो प्रेस। पृष्ठ-142 ।

बनाता है । समस्त ज्ञान सामाजिक जीवन के परिणाम हैं । ज्ञान का महत्व केवल समाज ही में है । इस: जॉन डिवी कहते हैं कि:-

> सच्ची शिक्षा बालक की शक्तियों को प्रेरित करने से ही उत्पन्न होती है, बालक अपने को जिस परिस्थिति में पाता है,उन्ही परिस्थितियों की मॉंग द्वारा बालक की शक्तियॉं प्रेरित होती है ।" शिक्षा द्वारा

इस प्रकार बालक का विकास लिया जाना चाहिये ताकि वह समाज के साधन व लक्ष्य दोनों को प्राप्त कर सके, क्योंकि विद्यालयों की उपयोगिता इसी संदर्भ में है ।

जॉन डिवी ने शिक्षा को सामाजिक यंत्र बनाया था :-

जॉन डिवी विद्यालय को सामाजिक संस्था मानते हैं उनका कथन है :-

> "विद्यालय प्रमुख रूप से एक सामाजिक संस्था हैं । शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया होने के कारण विद्यालय सामाजिक जीवन का वह रूप हैं जिसमें उन सभी अभिकरणों पर ध्यान दिया जाता है जो सामाजिक लक्ष्य के लिये अपनी स्वयं की शक्तियों को प्रयोग करने और जाति के वंशानुगत स्त्रोतोमे हिस्सा लेने के लिये बालक को अधिक प्रभावी ढंग से प्रेरित करता है ।"[1]

विद्यालय का कार्य है सामाजिक वातावरण का निर्माण करना जिसमें :-

---

1- जॉन डिवी : माई पैडागॉजिक क्रीड,आर्टिकल-1।

"जाति की वास्तविक जीवनता, अर्थपूर्ण क्रियाशीलता को सरल बनाया जाता है, पवित्र और सन्तुलित किया जाता है ताकि वह बालक की रूचि को सन्तुष्ट कर सके ।"[1]

डिवी बार-बार इस बात पर जोर देते हैं कि :-

"विद्यालय का प्रमुख कार्य पारस्परिक सहयोगी जीवन के लिये बालकों को प्रशिक्षित करना है ।"[2]

और

"सामाजिक जीवन को सरल बनाने के लिये विद्यालय को धीरे-धीरे गृह के जीवन के रूप में प्रगति करनी चाहिये ।"[3]

जान डिवी के अनुसार विद्यालय को :-

"उन क्रियाओं को प्रारम्भ करना चाहिये जिनसे बालक अपने घर में पहले से ही परिचित है ।"[4]

1- फ्रेडरिक क्वाय, "द डवलपमेन्ट ऑव मार्डन एजूकेशन, चैपटर जॉन डिवीज इन्स्ट्रमेन्टलिज्म", पृष्ठ-622 ।

2- जॉन डिवी : माई पैडागॉजिक क्रीड, आर्टिकल-11

3- - तदैव -

4- - तदैव -

निष्कर्ष :-

किल पैट्रिक ने डिवी के योगदान को निम्न प्रकार व्यक्त किया है :-

1- डिवी ने मानव रूचियों को विस्तार से विद्यालयीय कार्य में बदला है । उनकी रूचि बालक को एक जीवित प्राणी मानने और हाल के सामाजिक कार्यों में थी ।

2- जब कभी अध्यापक सचेत होकर बालक की प्रारम्भिक क्रियाओं को प्रभावित करने के लिये कार्य करता है और बालकों की जिम्मेदारियों को प्रोत्साहित करने का लक्ष्य रखता तो यही माना जाता है कि वह जॉन डिवी की शिक्षाओं से प्रभावित है।

3- जब कभी समुदाय और सामाजिक प्रक्रिया सावधानी से विषयों के अध्ययन से सम्बन्ध रखती है जब कभी शिक्षा वर्तमान बालक, विद्यालय अथवा सामुदायिक समस्या के अध्ययन से प्रारम्भ होती है और सचेत होकर विस्तृत और गहन सामाजिक समझ के लिये आगे बढ़ती है जिससे उसका सम्बन्ध है तो जॉन डिवी के विचार ही उसे सम्भव बनाते हैं ।

4- जब कभी अतीत के वंशानुगत रहस्यात्मक और अवैज्ञानिक कल्पनाओं से विचार और प्रयोग को छुटकारा दिलाने का प्रयत्न किया जाता है और मानवीय मूल्यों का विचार किया जाता है तब जॉन डिवी ही इस कार्य को प्रभावित करते हुये प्रतीत होते है।

जॉन डिवी के कार्यों ने शिक्षा में अनेक परिवर्तन किये हैं । इस सम्बन्ध में किल पैट्रिक लिखते हैं :-

"सभी परिवर्तनों के लिए जॉन डिवी को महत्व देना उचित न होगा परन्तु यह कहना सर्वदा उचित है कि गत तीन शताब्दियों के भीतर अमरीकी शिक्षा की प्रकृति व लय के परिवर्तन के लिये जॉन डिवी अन्य की अपेक्षा अधिक जिम्मेदार हैं।"[1]

अब अगले अध्याय में हम जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन की भारतीय शिक्षा में संगति के विषय में अध्ययन करेगें और यह देखने का प्रयास करेगें कि जॉन डिवी के विचार किन-किन क्षेत्रों में भारत में संगति रखते हैं।

1- फ्रॉम द फिलॉसफी ऑव जॉन डिवी "इडिटेड वाई पॉल आर्थर शिल्प किपैट्रिक्स ऑर्टिकल्स ऑव डिवीज इन्फ्लुयेन्स ऑन एजूकेशन। पृष्ठ-471-73 ।

अध्याय-11

जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन की भारतीय शिक्षा में संगति :-

इस अध्याय में यह प्रकट करने का प्रयास किया गया है कि जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी जी के विचारों की भारत में किस सीमा तक संगति है । जॉन डिवी के दार्शनिक विचारों की भारत के लिये तीन क्षेत्रों में विशेष संगति है । ये तीन क्षेत्र हैं- प्रजातांत्रिक व्यवस्था, मूल्यों का ढाँचा तथा शिक्षा । यदि तात्विक दृष्टि से विचार किया जाये तो ये विशिष्ट क्षेत्र वस्तुत: हमारे भारतीय राष्ट्रीय जीवन से भिन्न नहीं है बल्कि हमारे सामाजिक, राजनैतिक, नैतिक और आर्थिक ढाँचे हेतु समवेत होकर एक आधार का निर्माण करते हैं । प्रजातंत्र, मूल्य एवं शिक्षा आपस में पूर्णत: सम्बन्धित हैं । इसी संगति को प्रकट करने का हम यहाँ प्रयास करेगें । यद्यपि हम अलग-अलग शीर्षकों में इस विचार की अभिव्यक्ति कर रहे हैं किन्तु ये एक दूसरे से अलग नहीं है, बल्कि ये मौलिक तत्व आपस में संगठित हैं ।

भारत में जनतांत्रिक व्यवस्था हेतु जॉन डिवी की संगति :-

हम एक लोकतान्त्रिक देश में निवास कर रहे हैं,परन्तु जनतंत्र मात्र एक शासकीय व्यवस्था एवं प्रबन्ध तन्त्र ही नहीं है, अपितु यह राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन की निश्चित व्यवस्था एवं जीवन का जनतांत्रिक तरीका तथा सम्बन्धित जीवन की एक स्पष्ट विधि भी है । वस्तुत: लोकतंत्र मानव के लम्बे एवं बहुमूल्य

संघर्ष की उपज है । हमें भी अपने देश में जनतंत्र के लिये बहुत कीमत चुकानी पड़ी है, इतना होने पर भी जनतंत्र की सम्यक् अनुभूति से हम बहुत दूर हैं क्योंकि जनतांत्रिक जीवन समान उत्तरदायित्व तथा जनता द्वारा जनता के लिये जनता के मौलिक सिद्धान्तों के लिए प्रत्येक नागरिक से एक मौलिक नैतिकता की अपेक्षा करती है ।

भारत में जनतंत्र का भविष्य हमारी घनिष्ठ निष्ठा पर निर्भर है :-

जनतंत्र का भविष्य हमारी निष्ठा तथा इसे सुरक्षित रखने के लिए हमारी तैयारी पर निर्भर है । जनतंत्र उस प्रभावी विधि के प्रयोग पर निर्भर करता है जिसके सम्बन्ध में हम शिक्षा के कार्य के अन्तर्गत एक जनतांत्रिक व्यवस्था के संदर्भ में विचार करते हैं । वस्तुत: हम जॉन डिवी के विचारों से यह शिक्षा ग्रहण करते हैं कि जनतांत्रिक दृष्टिकोण, व्यवहार एवं मूल्य बालक में पहले से स्वत: निहित नहीं हैं । वह जनतांत्रिक व्यवहारों को सीख कर ही अर्जित करता है । "वाइल्ड महोदय इस सम्बन्ध में लिखते हैं :-

"जीवन का जनतांत्रिक तरीका स्वयं में तभी पुनर्नव हो सकता है जब प्रत्येक वंशानुगत बालक अपने जीवन में जनतंत्र के सिद्धान्तों, तकनीकियों, अनुशासन, श्रद्धा, भक्ति तथा उत्तरदायित्व को अर्जित करे ।"[1]

1- जॉन एल0 वाइल्ड : "एजूकेशन एण्ड मॉरैल्स" पृष्ठ-13-14 ।

सहनशीलता के रूप में हमारी नैतिकता में अन्तर है :-

कभी-कभी हमारे देश में नैतिकता के सम्बन्ध में भ्रामक एवं गलत मार्ग पर ले जाने वाले व्याख्यान दिये जाते हैं । इन व्याख्यानों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिष्ठा व इज्जत करने पर ही जनतांत्रिक जीवन की स्वतंत्रता आधारित है । वास्तव में हम उस समय जनतांत्रिक जीवन की नैतिकता पर आघात करते हैं जब हम अपने बच्चों के व्यक्तित्व के विकास में अन्तर डालने वाले दृष्टिकोण और व्यवहार को प्रश्रय देते हैं । सहनशीलता जनतांत्रिक समाज का एक महान गुण है । नैतिकता के नाम पर सहनशीलता के विचार वैषम्यता ने हमारे देश में एक विप्लव की परिस्थिति उत्पन्न कर दी हैं । हमें यह सदैव याद रखना चाहिये कि सहनशीलता ही हमारे जनतांत्रिक जीवन की विधि का वास्तविक गुण है । इसलिए शिक्षकों को जनतांत्रिक समाज में और जनतांत्रिक समाज के लिए शिक्षा के प्रति अधिक बुद्धि सम्पन्नता से कार्य करना चाहिये । अत: अध्यापकों का कर्तव्य है कि मानव के दृष्टिकोण को जनतांत्रिक बनाने हेतु प्रयोगों के लिये बुद्धिमता पूर्वक अपने उत्तरदायित्व को वहन करे, क्योंकि मानव के ये ही दृष्टिकोण व अभ्यास स्वतंत्र जीवन तथा सहनशीलता को सम्भव बनाते हैं । शिक्षा के गुणों पर जनतांत्रिक समाज आधारित है ।

एक जनतांत्रिक समाज शिक्षा की विशेषताओं पर आधारित है :-

यह तथ्य स्पष्ट रूप से विदित है कि एक जनतांत्रिक समाज को जीवित रखने के लिये शिक्षा आवश्यक है जिसे देश अपने

बच्चों को प्रदान करता है । जॉन डिवी ने अपने महान ग्रन्थ "डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" में इस बात का वर्णन बार-बार किया है । वस्तुतः इस ग्रन्थ का "केन्द्रिय विचार" भी यही है । भारत में भी इस तथ्य को नजरन्दाज नहीं किया गया है, बल्कि अपनी जनतंत्रीय आधार शिला को मजबूत बनाये रखने के लिए शिक्षा को एक विनियोग (एजूकेशन एज एन इन्वेस्टमेन्ट) के रूप में बनाने का प्रयत्न किया गया है । जॉन डिवी के अनुसार विकास का तात्पर्य मनचाही क्रियाशीलता नहीं है, अपितु उस क्रियाशीलन से है जो जीवन के अर्थ की सम्पन्नता और समाज की पूर्णता को विकसित करती है । वे यह भी मानते हैं कि :-

> "एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में शिक्षा की अवधारणा व उसके कार्य का कोई निश्चित अर्थ नहीं है, जब तक कि समाज को हम परिभाषित नहीं करते है जो समाज हमारे मस्तिष्क में है ।"[1]

समाज की अवधारणा की अनुभूति, हमें तब तक नहीं हो सकती जब तक हम उसमें सम्मिलित नहीं होते :-

वस्तुतः यह एक संगतपूर्ण व अर्थपूर्ण विचार हैं, इस विचार का सर्वकालिक महत्व है । अब हम स्व निरीक्षण करें और सोचें कि जैसा समाज हम चाहते हैं क्या वैसा समाज हम

1- जॉन डिवी : " डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-112

निर्माण करने में समर्थ हैं ? तो हमारा उत्तर सकारात्मक होगा, क्योंकि जिस प्रकार के समाज को हम चाहते हैं वह जनतांत्रिक एवं समाजवादी सिद्धान्तों का होगा । ऐसा समाज आज की परिस्थिति में एक सत्य तथ्य है । ऐसे ही समाज की रचना को हमने अपने संविधान में महत्त्व दिया है, परन्तु इस समाज की अनुभूति तब तक न होगी जब तक हम समाज की गतिविधियों में सक्रिय रूप से सम्मिलित नहीं होते हैं । अपनी उदासीनता तथा अमतैक्यता के कारण जैसा समाज हम चाहते है वैसा निर्मित नहीं कर पा रहे हैं । वास्तव में हम अपनी सामाजिक प्रगति के कार्य में जिस महान कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं वह उदासीनता, जड़ता तथा अनुभव शून्यता ही है । सैकड़ो वर्षों तक मानव ने अपने जीवन को जीवन के निम्न स्तर के लिये समर्पित कर दिया था, उन्हें आसानी से क्रिया करने के लिये प्रेरित नहीं किया जा सकता । कई पीढ़ियों तक लोग गन्दी बस्तियों, अस्वस्थ्य पर्यावरण तथा अज्ञानता में रहने के अभ्यस्त हो चुके थे, उन्हें यह विश्वास दिलाया गया था कि उनकी वर्तमान दयनीय स्थिति का कारण उनका अतीत कर्म है, उन्हें जीवन चक्र से होकर अवश्य गुजरना पड़ेगा । यह उनके पूर्व जन्म के कर्मों द्वारा पहले से ही निश्चित हो गया है । इन समग्र तथ्यों को वे अपने जीवन के अस्तित्व का एक भाग मान चुके थे ।

चरित्रवान व्यक्ति के नैतिक गुणों के दबाव से सामाजिक परिवर्तन की उपलब्धि होती है :-

इसका तात्पर्य है कि सामाजिक पुनरुद्धार एवं विकास के लिये दीर्घ कालीन कठिन संघर्ष की शुरुआत करनी पड़ेगी । इस संघर्ष के लिये बुद्धिमान मानव की समग्र इच्छा शक्ति तथा उसके चेतन मस्तिष्क को कार्य करने में संलग्न होना पड़ेगा । जॉन डिवी के इस विश्वास को हमें ध्यान में रखना चाहिये कि सामाजिक परिवर्तन यान्त्रिक रूप में नहीं होता है, अपितु इसकी उपलब्धि चरित्रवान एवं दूरदृष्टि सम्पन्न व्यक्ति के निरन्तर दबाव से होती है । हमें नये-नये उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिये । ऐसा करने के लिये हमें अपनी इच्छा शक्ति को निरन्तर अभ्यस्त बनाना पड़ेगा । एक गतिशील समाज में उचित विचार शैली को अपनी साधनवादी भूमिका का निर्वाह करना पड़ेगा । अतः इस हेतु हमें प्रयोगवादी दृष्टिकोण अपनाना ही होगा । एक अच्छे समाज के निर्माण के लिये एक वैज्ञानिक प्रवृति की आवश्यकता होती है, जो व्यक्ति समाज-प्रगति का इच्छुक है उसमें उदासीनता, स्थिरता और अमतैक्यता का कोई स्थान नहीं होना चाहिये ।

<u>भारतीय युवको को इस ललकार (चेलेन्ज) को विधेयात्मक ढंग से स्वीकार करना चाहिये</u> :-

वर्तमान काल में हमारे देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि यद्यपि प्रचलित परिस्थितियों, सार्वजनिक तथा स्वयं के व्यक्तिगत जीवन के ये नव युवक आलोचक बने हुये हैं, परन्तु इस सम्बन्ध में नकारात्मक व सकारात्मक दोनों दृष्टिकोण अपनाये

हुये हैं । उन्हें चतुर्दिक स्वार्थ व लोभ ही दिखाई दे रहा है परन्तु उनमें से विरले ही इस बुराई को दूर करने के लिए उसका मुकाबला करने हेतु आगे आते हैं ।उनके मन में यह धारणा होती है कि इन समस्त समस्याओं का हल राजनैतिक नेताओं के हाथ में हैं । तथा कभी-कभी ऐसा भी सोचते हैं कि इसका हल सम्भव ही नहीं है । यदि स्पष्ट रूप से इस विचार की समालोचना की जाय तो यही कहा जा सकता है कि यह प्रवृत्ति मनुष्य द्रोही प्रवृत्ति है । उनके मस्तिष्क की यही स्थिति उन्हें तनाव की ओर ले जाती है, भारतीय युवक इस प्रकार के तनाव व मनुष्य द्रोही प्रवृत्ति से तभी छुटकारा पा सकते हैं जब वे तथा उनका भारतदेश शेष सांसारिक व्यक्तियों को दृष्टि में रखकर उन्हें सम्मिलित करते हुये प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़े ।

<u>बिना परिश्रम के वास्तविक प्रगति असम्भव है</u> :-

यही वह समय है जबकि भारतीय युवकों को श्रम के महत्व का अनुभव करना चाहिये तथा जॉन डिवी के इस कथन को भी :-

"केवल निश्चित एवं कठिन परिश्रम से तथा हमारी क्रियाशीलता को नया निर्देशन देने से ही सच्ची प्रगति सम्भव है ।"[1] ध्यान में रखना चाहिये ।

क्या उन्होंने यह नहीं कहा है ? :-

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन, पृष्ठ-59

"विकास किसी अन्य की अपेक्षा अधिक विकास के लिए आपेक्षिक है ।"[1]

यही वह विचार है जो हमें अच्छे समाज के लिए प्रयत्न करने की प्रेरणा देता है । यदि हम ऐसा करते हैं तो हम जिस समाज का स्वप्न देख रहे हैं वह हमारी पहुँच से बाहर न होगा । मानव की रचनात्मक क्रियाशीलता को जो उचित निर्देशन व अवसर के अभाव के कारण दुर्भाग्य से कुण्ठित हो गई है, क्रियान्वित करके लाभप्रद उत्पादनशील कार्यों में बदला जा सकता है जॉन डिवी का विश्वास है कि विज्ञान सदैव किसी न किसी रूप में कार्य को अवश्य निर्देशित करता है । हमें ऐसा ज्ञान प्रदान करने में समर्थ होना चाहिये । प्रजातंत्र में अच्छे समाज की रचना के विषय में विचार करने का यह तात्पर्य नहीं होना चाहिये कि हम व्यक्ति विशेष नागरिक के प्रति अपनी कृतज्ञता को भूल जायें। डिवी कहते हैं कि प्रजातंत्र के समाज में शिक्षा को प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के कार्य को अपने हाथ में लेना चाहिये । परन्तु वे इस बात की चेतावनी भी देते हैं कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास अन्य सदस्यों के विकास में सहयोगी भाव को ध्यान में रखकर किया जाय । विज्ञान व तकनीकी के विकास के कारण हमारा समाज शनैः शनैः औद्योगीकरण के युग में प्रवेश कर रहा है, इसके प्रभाव की अनुभूति हम पहले से ही कर रहे हैं । आज हमारे

1- जॉन डिवी : "डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन, पृष्ठ-60 ।

समाज के प्रेरक तत्व भौतिक मूल्य, व्यक्तिगत लाभ व स्वार्थ, गला घोंट प्रतिस्पर्द्धा तथा शीघ्र धनाढय होने की लालसा आदि बन गये हैं ।

शिक्षा के हमारे सीमित दृष्टिकोण :-

इस प्रकार के जंगली समाज में यह आश्चर्य की बात नहीं होगी, यदि शिक्षा को हमारे देश में साक्षरता के रूप में जाना जाय और एक ऐसे साधन के रूप में जिससे हम अपने जीवन का प्रबन्ध कर सकें तथा धन कमा सकें । परिणाम स्वरूप ऐसी शिक्षा का लक्ष्य केवल सूचना देना है । ऐसा हम वस्तुत: अपने खतरे के लिए ही कर रहे हैं । ऐसी शिक्षा हमारे समाज को कहीं का न रख छोड़ेगी, क्योंकि :-

"जो शिक्षा मनुष्य के अपर्याप्त ज्ञान से प्रारम्भ होती है वह सोचती है कि उसने संतोषजनक आधार प्रदान किया है, इसने विभिन्न विषयों की चुनी हुई बहुत सी सूचनायें विस्तार से विद्यार्थियों को प्रदान कर दी हैं जो तत्कालीन समाज व मानव संस्कृति के सर्वोत्तम भाग हैं । विद्यालय विषय वस्तु रूपी पदार्थ विद्यार्थियों को प्रदान करता है, वे उसे प्रयोग करते हैं। यही इस विद्यालय का फार्मूला है, परन्तु त्रुटि तो मौलिक ही है । सूचनायें बुद्धि का आधार नहीं हो सकती है। यह तो उस पदार्थ का एक भाग होती है। जिससे अध्येता ज्ञान के प्रारम्भिक बिन्दु का, नयी खोज के केन्द्र का और विस्तृत नव-निर्माण की रचना करता है । वह शिक्षा जो स्वयं अपने को ज्ञान प्रदान करने तक सीमित रखती है वह शिक्षा नहीं है ।"[1]

1-श्री अरविन्दो: द ब्रेन ऑव इण्डिया, पृष्ठ-9-15, पान्डेचेरीश्री अरविन्दो आश्रम, पंचम संस्करण 1955 ।

अरविन्द जी ने उपर्युक्त उद्धरण में सामयिक चेतावनी दी है जिसे हमारे देश को सदैव ध्यान में रखना चाहिये।

जनतांत्रिक समाज में शिक्षा क्रिया सम्बद्ध मूल्य है :-

जॉन डिवी के अध्ययन से हमें ज्ञात हुआ है कि जनतंत्रात्मक समाज में शिक्षा अनिवार्य रूप से क्रिया सम्बद्ध मूल्य है। विद्यालय अपनी योजना में प्रयुक्त विषय वस्तु और विधि के माध्यम से विद्यार्थियों में चुने हुये मूल्यों का निर्माण करती है। जॉन डिवी विश्वास करते हैं कि जनतांत्रिक समाज में नैतिक कार्य पूरी शैक्षिक योजना को आच्छादित करता है। चाइल्डस के अनुसार :-

> "नैतिक कारक तभी दिखाई देता है जब विद्यालय अथवा व्यक्तिगत अध्यापक या निरीक्षक कुछ खास वस्तुओं के "पक्ष" और अन्य वस्तुओं के "विपक्ष" में होता है।"[1]

हमारे समाज को शिक्षा में नैतिक कार्य की आवश्यकता है :-

आज हमारे समाज को सबसे अधिक शिक्षा में नैतिक कार्य की आवश्यकता है। यदि हम इन कारणों को मानने के लिए तैयार हो कि विद्यार्थी, अनुशासनहीन, असन्तुष्ट और तनावग्रस्त है, तो हमारे कालेज व विश्व विद्यालय की शिक्षा व्यवस्था ही इस प्रकार के नैतिकता के दिवालियापन की जड़ है।

1- जॉन एल0 चाइल्ड : "एजूकेशन एण्ड मॉरैल" पृष्ठ-16 ।

जब तक भारतीय शिक्षा नैतिक व्यवहार को परिभाषित करने की जिम्मेदारी स्वीकार नहीं करती है तब तक शिक्षा की यही दशा रहेगी। शिक्षा को व्यवहार की शिक्षा देनी चाहिये, क्योंकि व्यवहार का सम्बन्ध मौलिक नैतिक गुणों से है जैसे ईमानदारी, नि:स्वार्थता, पवित्रता, निष्ठा एवं भक्ति, समानता, उत्तरदायित्व और स्वतंत्रता आदि। यदि शिक्षा शानदार ऐतिहासिक अतीत से "पूर्ण नैतिकता" को खोजने का प्रयास करती है तो वह जनतंत्र की प्रगति को अग्रसर नहीं कर सकती। भारत में जनतंत्रात्मक समाज के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये शिक्षा को नैतिक कार्य के महत्वपूर्ण खोज में लगना पड़ेगा।

सामयिक शक्तियाँ गतिशीलता की अपेक्षा रखती हैं :-

हममें से कुछ लोग हमारे आदर्शों को उद्धारवाद के नाम से पुकारते हैं और इन आदर्शात्मक मूल्यों में विश्वास करते हैं क्योंकि वैदिक व उपनिषद युग में प्रवेश करने पर हमें कुछ शांति उपलब्ध होती है। प्राय: हम यह भूल जाते हैं कि समय की नई शक्तियाँ अधिक गतिशील हैं और प्रयोजनवादी पहुँच की माँग करती हैं। अत: हमें श्रेष्ठ आदर्शों का आलोचनात्मक दृष्टिकोण से परीक्षण करना है और यह देखना चाहिये कि ये हमारी वर्तमान समस्याओं को हल करने में साधन के रूप मे कैसे कार्य करती हैं तथा जो लक्ष्य हमारे समक्ष हैं उसे समाधान करने में शिक्षा कैसे सहायता प्रदान करती है, इसलिये हमारे शिक्षा दर्शन का एक मौलिक सिद्धान्त यह होना चाहिये कि वह परिवर्तन की सत्यता

को पहिचाने । जॉन डिवी का विश्वास था कि आदर्श चाहे कितना ही ऊँचा क्यों न हो उसका परीक्षण व मूल्यांकन अवश्य किया जाना चाहिये, तदपुरान्त ही इसे स्वीकार करना चाहिये। जैसा कि हम पहले देख चुके है कि जॉन डिवी जानते थे कि :-

"सामाजिक परिवर्तन के इस काल में जनतंत्र के आयोजन के अनुरूप एक अपरिचित नैतिकता उचित नहीं होती है ।"[1]

भारत में हम शिक्षा को उचित स्थान नहीं प्रदान करते हैं :-

यदि हम शिक्षा को सामाजिक प्रगति हेतु एक साधन के रूप में विश्वास करे तो हमें सर्वश्रेष्ठ वस्तु की उपलब्धि हो सकती है । कठोर सत्य तो यह है कि स्वतंत्र भारत में शिक्षा को जो प्राथमिकता देनी चाहिये वह नहीं दी गई । यहाँ तक कि आज भी शिक्षा को सामाजिक प्रगति के एक शक्तिशाली साधन के रूप पहिचाना न जा सका है । यह एक व्यंगात्मक तथ्य है कि राष्ट्रीय पुनर्रचना में शिक्षा को अपनी भूमिका अदा करने का अवसर दिये बिना हम जनतंत्र को कायम रखना चाहते हैं ।

शिक्षा में वास्तविक राष्ट्रीय व्यवस्था प्रदान करने में हम असफल रहे हैं :-

हम शिक्षा द्वारा वास्तविक राष्ट्रीय व्यवस्था देने में असफल रहे हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात हमारा महत्वपूर्ण

1- जॉन चाइल्डस : "एजूकेशन एण्ड मॉरैलस", पृष्ठ-310 ।

कार्य यह होना चाहिये था कि हमारी सांस्कृतिक धरोहर, राष्ट्रीय आकांक्षा, और आदर्श जो हम स्वतंत्र भारत के पूर्व धारण किये थे, उसके अनुरूप शिक्षा को बदलना चाहिये। परन्तु आज हम अपनी शिक्षा में निरन्तर पश्चिमी शिक्षा का अंधानुकरण करने में लगे हुये हैं और उसी को अपनी शिक्षा की सांस्कृतिक धरोहर मान बैठे हैं। हम यह भूल जाते है कि औद्योगिक समाज की बढ़ती हुई आवश्यकताओं के कारण पश्चिमी शिक्षा व्यवस्था का महत्व घटता जा रहा है। यूरोप के अनुभव की जड़ में जीवन के लिये संघर्ष और प्रतिस्पर्धा की भावना निहित थी। भारत में पश्चिमी शिक्षा को प्रारम्भ करते समय दुर्भाग्यवश भारतीय आदर्श की अवहेलना की गई और हमने यूरोपीय शिक्षा के आदर्शों एवं मूल्यों को अंगीकार कर लिया। यूरोपीय बालकों के लिए जो स्वाभाविक था वह भारतीय बालकों के लिये बोझ बन गया। हम विस्मरण कर देते हैं कि :-

> "शिक्षा सदैव भौगोलिक और सांस्कृतिक स्थिति के अनुकूल होती है इसी लिए यह विशिष्ट स्थानीय और गतिशील भी होती है न कि सामान्य सार्वलौकिक और अपरिवर्तनीय। एक विशेष समय पर एक विशिष्ट समाज हेतु शिक्षा एक कार्य है। इतिहास में इसका स्थान है, शिक्षा की वास्तविक संस्कृति की जड़ में है और उस संस्कृति की अनुभूति ही आवश्यकताओं और दर्शन को प्रकट करती है।"[1]

1- रिकमन्डेशन ऑव द कमीशन ऑन द सोशल स्टडीज, ऑव द अमेरिकन हिस्टॉरिकल एसोशियेशन, कोटेड इन जॉन, एल० चाइल्डस एजूकेशन एण्ड मारेल्स" पृष्ठ-31।

भारतीय शिक्षा को राष्ट्रीय संस्कृति के सन्निकट आना चाहिये :-

भारतीय समाज के जनतांत्रिक आदर्शों को बनाये रखने की सर्वाधिक आवश्यकता है और शिक्षा को हमारे राष्ट्रीय संस्कृति के निकट होना चाहिये। इस सम्बन्ध में जॉन डिवी के विचार संगतिपूर्ण हैं क्योंकि वे इस तथ्य पर बल देते हैं कि सभी शिक्षा अपने समस्त पहलुओं के साथ अपनी जड़ को समाज की मिटटी की गहराई में रखे हुये है जिसमें शिक्षा कार्य करती है। किसी भी प्रकार की शैक्षिक व्यवस्था चाहे वह कितनी ही पूर्ण क्यों न हो, वह विदेशी मिटटी में विदेशी ही बनी रहती है। इस प्रकार जॉन डिवी के विचार हमारे देश की जनजांत्रिक व्यवस्था से संगति रखते हैं।

हमारे मूल्यों के ढाँचों से जॉन डिवी के विचारों की संगति :-

प्रजातंत्र के पूर्ण विवरण से मूल्यों के प्रश्न का किसी भी प्रकार अलगाव नहीं है। सम्पूर्ण वर्णन में मूल्यों की केन्द्रिय समस्या से यह प्रमाणित होता है कि जीवन के प्रति एक जनतांत्रिक समाज एक निश्चित दृष्टिकोण रखता है। वह दृष्टिकोण मूल्यों पर आधारित होता है और उन्हीं मूल्यों को अनुभव करने हेतु हम शिक्षा को अपनाते हैं, क्योंकि शिक्षा द्वारा ही मूल्यों की अनुभूति की जाती है। समाज का जनतांत्रिक ढाँचा मूल्यों के अनुभव पर ही कायम रहता है।

वे मूल्य जिन पर हमें बल देना चाहिये :-

हमारा उद्देश्य यहाँ पर मूल्यों को परिभाषित करना

नहीं है, न तो मूल्यों की प्रकृति की शास्त्रीय व्याख्या से है और न तो उन्हें वर्गीकृत करने से है । हमारा लक्ष्य है कि हम यह देखें कि हमें अपने बच्चों में किन मूल्यों को उत्पन्न करना है । इसी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर हमें यह प्रयत्न करना है कि जॉन डिवी किस प्रकार इससे संगति रखते हैं । हमारी जाँच का लक्ष्य उन मूल्यों को खोजना है जो आज के लिये आवश्यक हैं । हम जानते हैं कि यह विषय राष्ट्रीय पुनर्रचना के लिये महत्त्वपूर्ण है । इस दिशा में हमारा प्रवेश रचनात्मक एवं प्रयोजनवादी है। हमारी सामान्य धारणा है कि कम या अधिक मूल्य व्यक्तिगत सम्पत्ति हैं । जॉन डिवी के अनुसार हम कहते हैं कि "अ" भौतिक तथा "ब" आध्यात्मिक मूल्यों को रखता है, इस आधार पर हमें कल्पना करने में आसानी हो जाती है कि आध्यात्मिक मूल्य भौतिक मूल्य की तुलना में मूल्यों में उच्च स्थान रखता है और इस प्रकार "ब" "अ" की अपेक्षा अच्छा व्यक्ति सिद्ध हो जाता है । परन्तु हम यह विस्मृत कर देते हैं कि एक बालक परिवार से समुदाय की ओर बढ़ता है जिसे हम एक प्रक्रिया कहते हैं, जो बालक के भावात्मक प्रतिक्रिया में बौद्धिक प्राप्ति और व्यावहारिक स्तर में गुणात्मक परिवर्तन लाती है । गुणात्मक परिवर्तन हेतु ये परिवर्तन सुविधा के रूप में उत्तरदायी नहीं है, तात्पर्य यह है कि बालक की आवश्यक-तायें सामाजिक, सांस्कृतिक इकाई के गतिशील प्रकृति में निहित होती हैं जिससे बालक का सम्बन्ध होता है और उस इकाई की

आर्थिक और राजनैतिक शक्तियों से वे नियन्त्रित होते हैं ।
इसलिये सामाजिक जीवन के उन पहलुओं से मूल्यों के प्रश्नों का
सम्बन्ध होता है । अतः मूल्यों की समस्यायें जनतांत्रिक समाज
से अलग नहीं है ।

परिवर्तित समाज के मूल्य जटिल हो जाते है :-

हमारा समाज परिवर्तित हो रहा है विज्ञान और
तकनीकी के कारण यह परिवर्तन तीव्रता से घटित हो रहा है ।
अतः ऐसे समाज के मूल्यों का वर्णन करना इतना आसान नहीं है
जॉन डिवी इसे अनुभव करते थे इसीलिये वे लिखते हैं :-

> "निःसन्देह वर्तमान काल में, समाज इतना जटिल हो
> गया है और इतनी तीव्रता से परिवर्तित हो रहा
> है कि इसका प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।
> इसलिए कोई उपाय ऐसा खोज पाना कठिन है,
> जिससे व्यवहार को धीरे-धीरे निर्देशित किया जा
> सके ।"[1]

इतना होने पर भी हम मूल्य के प्रश्न पर विचार
करना किसी भी प्रकार स्थगित नहीं कर सकते हैं । हमें निश्चय
करना है कि सामाजिक जीवन का क्या रूप है जिसमें दस वर्ष
बाद या और आगे बालक पूर्ण रूप से भाग लेने वाला है । ऐसे
समाज का स्वरूप हमारे सामने स्पष्ट होना चाहिये । भारतीयों
की आकांक्षायें वास्तविक जनतांत्रिक कल्याण के समाज में विकसित
होना चाहती है, परन्तु उनके चारो ओर आदर्शवाद का पर्यावरण

1- जॉन डिवी : थ्योरी आफ द मॉरेल लाइफ- पृष्ठ-87 ।

छाया हुआ है, किन्तु भारतीय समाज की पूर्णता इस पर निर्भर है कि शिक्षा शास्त्री इसके लिए क्या प्रयत्न करते हैं तथा कहाँ तक इस सामाजिक सम्बन्ध को और उस मूल्य को जो इसे सहायता प्रदान करता है, समझते हैं । इस सम्बन्ध में जॉन डिवी के विचार भारत के लिए संगतिपूर्ण हैं क्योंकि इन्होंने समाज में वाँछित परिवर्तन करने के लिए शिक्षा को एक शक्तिशाली कारक माना है । जॉन डिवी ने अन्य दार्शनिकों की अपेक्षा शिक्षा के सामाजिक पक्ष पर बहुत अधिक जोर दिया है । जॉन डिवी के इस विचार की पुष्टि "अलवा मेरडल" ने भी की है जब वे कहती हैं :-

> "किसी प्रकार की उपलब्धि को प्राप्त करने, किसी महान विकास की अधिक निश्चितता से परख करने तथा सम्पूर्ण विश्व के भावी लाभ की मुख्य भूमिका का सम्बन्ध वास्तव में शिक्षा से ही है ।"[1]

<u>नागरिक सामाजिक कार्यों में भाग लेने वाले हों</u> :-

भारत जैसे देश के बृहद समाज को स्वयं के आर्थिक पुनर्रचना हेतु ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो अतीत की आकांक्षाओं वाले व्यक्तियों से भिन्न हों । ऐसे राष्ट्र के सदस्य

1- अलवा मेरडल इन हर आर्टिकल ऑन द पावर ऑव एजूकेशन पब्लिशड इन द बुक "एजूकेशन इन वर्ल्ड पर्सपेक्टिव" इडिटेड वाई इमेट जॉन हग्स, न्यूयार्क, 1962 पृष्ठ-137 ।

के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है कि वे अपने जीवन दर्शन से भिन्न दूसरे देश के दृष्टिकोण को अपने जीवन में बनाये रखने के लिए ईमानदार रहें और सामाजिक समस्याओं के प्रति निष्क्रिय बने रहें तथा यह भी उचित नहीं है कि वह जीवन शैली में तेजी से होने वाले परिवर्तनों से अपनी आँखे मूद ले अथवा इन परिवर्तनों से सम्बन्धित समस्याओं को राष्ट्र या राज्य के ऊपर छोड़ दे। स्वेच्छिक हिस्सेदारी, सामुदायिक भावना, जनतांत्रिक समाज की मौलिक आवश्यकता है। हम जॉन डिवी को इसके अनुरूप ही पाते हैं जब वे कहते हैं :-

> "सामान्य भलाई के लिये समस्त व्यक्तियों में शिक्षा के प्रति रूचि जाग्रत करनी चाहिये ताकि वे स्वयं अपनी खुशहाली का अनुभव कर सकें और दूसरों की दशा सुधारने में कुछ सहयोग कर सकें।"[1]

ऐसाहीविचार एक गांधी विचारक ने भी अभिव्यक्त किया है :-

> "प्रजातंत्र के प्रमुख तत्वों का अन्तिम रूप में विश्लेषण करने से प्रतीत होता है कि सभी अन्य सदस्यों के साथ समाज के प्रत्येक सदस्य को सामाजिक कार्यों में स्वेच्छा से भाग लेना ही सच्चा प्रजातंत्र है।"[2]

1- जॉन डिवी : "थ्योरी ऑफ द मॉरेल लाइफ" पृष्ठ-98

2- जी0 रामनाथन : एजूकेशन फ्राम डिवीट् गांधी, (एशिया पब्लिशिंग हाउस 1962) पृष्ठ-29।

यदि विद्यार्थियों को सामुदायिक लक्ष्य से अवगत कराया जाय और उन्हें उनके प्रारम्भिक सूत्रपात एवं प्रयत्न के लिए उत्साहित किया जाय तथा स्वेच्छा से सामाजिक कार्यों में भाग लेने के लिए प्रशिक्षित किया जाय तो वे सामुदायिक भावना से ओत प्रोत हो सकते हैं ।

विद्यालय एवं समाज को नजदीक लाने की आवश्यकता है :-

जॉन डिवी से हम यह सीख ग्रहण करते हैं और उनके विचारों से यह सहयोग ले सकते हैं कि सुधार हेतु विद्यालय एक सशक्त अभिकरण है । विद्यालय जिस सम्प्रदाय में कार्यरत है उसी का प्रतिनिधित्व नहीं करता है बल्कि उससे कुछ आगे है । अर्थात विद्यालय व्यक्ति के जीवन के लिये तैयार करता है और विद्यालय स्वयं सबसे उत्तम जीवन है । स्वेच्छा से भाग लेने की अवधारणा आज के युग में बहुत प्रचलित है किन्तु दुर्भाग्यवश हमारे देश में स्वेच्छा से भाग लेने में जो मूल्य निहित है उसका विश्लेषण और वर्णन बहुत कम किया गया है अर्थात भारतीयों को इस महत्व से परिचित नहीं कराया गया है कि कर्तव्य को इच्छा से स्वयं ग्रहण करना चाहिये । इसे यहाँ केवल शब्द जाल माना गया है । आवश्यकता इस बात की है कि प्राणियों को एक निश्चित रूप में संगठित करने के लिए कार्य आरम्भ कर देना चाहिये ।

सहयोगी कार्य और कार्य को सूत्रपात करने के मूल्यों से विद्यार्थियों को परिचित कराने की आवश्यकता है :-

इसका तात्पर्य यह है कि बालक को प्रारम्भ से सहयोगी

कार्य और कार्य को प्रारम्भ करने के मूल्यों से परिचित कराना चाहिये । कार्य प्रारम्भ करने के प्रशिक्षण में कुछ उप-कल्पनायें निहित है । अर्थात बच्चों का प्रशिक्षण, व्यायाम, स्वानुशासन आत्म निर्देशन व स्वमूल्यांकन के लिये होना चाहिये । कार्य का सूत्रपात करने में कुछ खतरे हैं तथा कुछ प्रयोगात्मक दृष्टिकोण भी हैं । प्रयोजनवादी भावना द्वारा जीवन के लिये एक साहसी दृष्टिकोण को स्वीकार करने में सहयोग देना सूत्रपात की आवश्यक आवश्यकता है । जॉन डिवी का दर्शन वैज्ञानिक और प्रयोगात्मक दृष्टिकोंण पर आधारित है, और हमारे बच्चों में प्रयोजनवादी भावना को उत्पन्न करने में ऐसे दृष्टिकोंण की संगति है । जब ये बच्चे बड़े होकर पूर्ण नागरिक हो जायेगें तो सामाजिक कार्यों में इनके सक्रिय योगदान और कार्य करने के प्रशिक्षण से बड़ा सहयोग मिलेगा । हमने पहले ही वर्णन कियाहै कि कार्य आरम्भ करने का अनुसरण करना सहयोगी भावना रूपी मूल्य का प्रतीक है, क्योंकि बिना सहयोगी भावना के कोई भी कार्य का सूत्रपात मौलिक रूप से लाभप्रद नहीं हो सकता । बहुत अधिक उत्पादन करने वाले आधुनिक समाज के विरूद्ध बहुत कुछ कहा गया है और यह भी कहा जाता है कि आधुनिक औद्योगिक समाज व्यक्ति की क्रियाशीलता के लिये कोई क्षेत्र नहीं प्रदान करता है । बल्कि इसके विपरीत यह मानव जीवन को यान्त्रिक एवं बनावटी बनाता है, व्यक्ति मशीन का आदी हो जाता है । आज औद्योगिक समाज हमारे देश में स्थिर होता जा रहा है ।

अतः हमें जिस वस्तु का अनुभव करना है वह यह है कि एक व्यक्ति प्रधान समाज की सफलता केवल मशीनों को प्राप्त कर लेने पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि उसकी निर्भरता :-

> "संगठित व्यक्तियों को मिलकर कार्य करने के सामान्य सिद्धान्त पर"[1] आधारित है ।

इस प्रकार सहयोगी भावना रूपी गुण समाज में निहित रहता है और हमें अपने बच्चों में इस भावना को उत्पन्न करना चाहिये । अब हम इस प्रश्न को अपने पर लागू करें और विचार करे कि क्या हम अपने बच्चों में ऐसे कार्यों केलिए इन गुणों को उत्पन्न करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं ? आज हम जिस वस्तु के साक्षी हैं वह इस प्रकार की भावना के बिलकुल विपरीत है । आज विद्या-लयीय शिक्षा समाप्त करने के पश्चात हमारे युवकों की इच्छा होती है कि आर्थिक लक्ष्यों के लिये नौकरी प्राप्त करके अधिक से अधिक धन प्राप्त करें । अपनी इस स्थिति से वे विशिष्ट सामा-जिक महत्व को समझने में असफल हो जाते हैं । हमें डिवी के विचारों को ध्यान में रखना चाहिये जिनका कथन है :-

> "समस्त नैतिक सिद्धान्तों की पहल व्यक्तिगत खुशहाली और सामान्य खुशहाली के मध्य सम्बन्ध स्थापित करना है ।"[2]

1- पीटर एफ0 ड्रूकर : द न्यू सोसाइटी एन एनाटॉमी ऑव इन्डस्ट्रियल आर्डर, हैरप एण्ड ब्रदर्स, न्यूयार्क, पृष्ठ-2 ।

2- जॉन डिवी : द थ्योरी ऑव द मॉरल लाइफ, पृष्ठ-103 ।

हमें जन सामान्य की खुशहाली के लिये प्रयत्न करना चाहिये :-

हमारा लक्ष्य भारत के सामाजिक जीवन की धुँधली तस्वीर खींचने का नहीं है । परन्तु यह सत्य है कि हमें जीवन की कठोर सत्यता से अपनी आखों को बन्द नहीं करना चाहिये। यह दुर्भाग्य का ही नही बल्कि अत्यन्त दुखपूर्ण तथ्य है कि हम व्यक्तिगत जीवन के उद्देश्यों के पीछे भाग रहे हैं, और सामान्य जन की खुशहाली के विचार को विस्मृत कर बैठे हैं । हम यह जानते हैं कि व्यक्तिगत खुशहाली व्यक्ति को इतना आकर्षित करती है कि वह समाज की भलाई को बिलकुल भूल जाता है । जॉन डिवी का विचार भारतीय परिवेश में उस समय संगतिपूर्ण हो जाता है जब वे कहते हैं कि व्यक्तिगत खुशहाली वास्तव में तभी सम्भव हो सकती है जब मानव समस्त प्राणियों के सामान्य खुशहाली के विकास में योगदान करे ।

मूल्य का ढाँचा संगठित है :-

जॉन डिवी इस तथ्य पर बल देते हैं कि समाज के मूल्य का ढाँचा सदैव संगठित होता है । उनका विश्वसनीय मत है कि जिन मूल्यों को व्यक्ति खोजता है और समाज अनुभूति करने की आकांक्षा करता है,उनमें पूर्ण एकता होनी चाहिये । इसलिए जॉन डिवी मूल्यों को सामाजिक, नैतिक, सौन्दर्यात्मक और अन्य बहुत से रूपों में मानते हैं और यह कहते है कि इन मूल्यों का अलग से अस्तित्व नहीं है बल्कि इनमें एकता व संगठन है । इनमें साधन और साध्य की निरन्तरता का सामन्जस्य है न कि साधन और

साध्य अलग हैं ।

सांस्कृतिक चेतनता का प्रश्न :-

एक सुन्दर चित्रकारी, सुन्दर श्रेष्ठ मूल्यों से युक्त व्यक्तित्व तथा सौन्दर्य युक्त प्राकृतिक दृश्य निःसन्देह हमारी संस्कृति के चिन्ह हैं, यद्यपि ये सामान्य तात्कालिक उपयोगिता के रूप में लाभप्रद नहीं है फिर भी वे निरन्तर हमारी प्रसन्नता के प्रतीक है, क्योंकि अंग्रेजी कवि कीट्स ने लिखा है कि एक सौन्दर्य की वस्तु सदैव प्रसन्नता प्रदान करती है । ये संस्कृति की वस्तुयें महत्वपूर्ण है, क्योंकि इनमे समुदाय की संस्कृति का अर्थ निहित है । इसमें समाज का उद्देश्य है । इस सांस्कृतिक चेतनता की गम्भीरता का तात्पर्य मानव जीवन के श्रेष्ठ गुणात्मक स्वर से है मूल्यों की गहन प्रशंसा और सुन्दर योग्यता से है जो व्यक्ति को न्याय और अन्याय, सत्य और असत्य में अन्तर करना सिखाती है । जब हम सांस्कृतिक चेतनता को मूल्य रूप में ग्रहण करते हैं तो इसका तात्पर्य संकुचित स्थानीय संस्कृति से नहीं होता बल्कि विस्तृत रूप से सम्पूर्ण मानवता के ज्ञानात्मक पहलुओं से होता है।

सौन्दर्यात्मक अनुभव को जीवन के समस्त क्षेत्रों को आच्छादित करना चाहिये :-

जीवन के समस्त क्षेत्रों को प्रभावित करने के लिए जॉन डिवी ने सौन्दर्यात्मक अनुभव के विकास पर सर्वाधिक जोर दिया है । हम देखते हैं कि भारत में यहाँ के निवासियों को केवल रोजी रोटी की ही व्यवस्था नहीं करनी पड़ती है बल्कि उनमें

सौन्दर्यानुभूति के भाव भी पाये जाते हैं । उनमें सुन्दर जीवन के लिये भाव है जिसका अस्तित्व हम अभौतिक स्तर पर देखते हैं अर्थात इनमें कुछ निश्चित सांस्कृतिक चेतनता का भाव है । किसी देश के लिए जिस प्रकार शहर, नगर, नहर और विद्यालय व चिकित्सालय आवश्यक होते हैं उसी प्रकार सौन्दर्यानुभूति भी । उत्तम जीवन के लिये इसकी आपेक्षा होती है जो असभ्य अस्तित्व को सम्पन्न और जीवन को मूल्यवान बनाती है । जॉन डिवी की पुस्तक "आर्ट ऐज एक्सपीरियेन्स" का यही केन्द्रिय विचार है । परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि बच्चों के लिए पाठ्यक्रम में मानव जाति की ऐतिहासिक संस्कृति से सम्बन्धित कुछ अध्यायों को मात्र सम्मिलित किया जाय बल्कि बालकों में एक ऐसा दृष्टि कोण विकसित किया जाय ताकि उनमें मानव की कृतियों और सम्पूर्ण मानव जाति के प्रति विश्वास उत्पन्न हो सके । इस प्रकार प्राचीन भारतीय संस्कृति अथवा पारम्परिक मूल्यों का हमारी शैक्षिक व्यवस्था में क्या स्थान है के सम्बन्ध में हमें विचार करने के लिये बाध्य होना पड़ता है । भारतीय पारम्परिक मूल्यों तथा संस्कृति के सम्बन्ध में तथा इनके पक्ष एवं विपक्ष में अनेक भावात्मक कथन उपलब्ध होते हैं । हम भारतीय युवकों को उस चौराहे पर खड़ा पाते हैं जो यह नहीं जानते है कि उन्हें किस मार्ग से जाना चाहिये । एक ओर आध्यात्मिकता व धार्मिकता पर आधारित मूल्य अथवा पारम्परिक मूल्य है तथा दूसरी ओर विज्ञान व तकनीकी से उत्पन्न नयी परिस्थिति व उसमें निहित

मूल्य हैं । इन दो परिस्थितियों से सम्बन्धित मूल्यों के निराकरण व चयन में प्रयोगवाद मदद देता है ।

हमारे सामाजिक परिवर्तन के प्रमाणित पहलू में जॉन डिवी के विचारों की संगति है :-

वर्तमान जीवन के गतिशील पहलुओं से आँख मूदना हमारे लिए असम्भव है । हमें सदैव यह अनुभव हो रहा है कि हमारे सामाजिक सम्बन्धों के प्रत्येक पहलू में जेट विमान की गति से परिवर्तन स्पष्ट दिखाई दे रहा है ।इस सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध में जॉन डिवी के विचारों की संगति है । उन्होंने इस बिन्दु पर जोर दिया है कि प्राचीन मूल्य सुन्दर से सुन्दरतर होते हुये भी हमारे लिए लाभप्रद तभी हो सकते हैं जब वे हमारे दैनिक जीवन की समस्याओं का सुन्दर रूप में और व्यावहारिक रूप में समाधान प्रस्तुत कर सकें । जॉन डिवी ने अपने दर्शन में मूल्यों को उनकी प्रकृति में साधनवादी माना है । पारम्परिक मूल्यों के प्रबल समर्थक भी इस बात से सहमत होगें कि उन मूल्यों को जैसे वे है उसी रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है, हमें उनमें से चुनाव करना पड़ेगा । चुनाव के लिये सामाजिक जीवन को दृष्टि में रखकर मानक निर्धारित करना होगा और जिसका सामाजिक सम्बन्ध वर्तमान काल के भौतिक एवं भावात्मक दोनों से होना चाहिये । इसलिये पारम्परिक संस्कृति के मूल्यों का प्रश्न वर्तमान जीवन के मूल्यों के प्रश्नों से सम्बन्धित है । उन प्रवृतियों के प्रति प्रतिक्रिया करने की आवश्यकता है जो भारत के शिक्षा केन्द्रों में

आदर्श के रूप में प्रचलित है, जो सांस्कृतिक रूप में हमारे लिए विदेशी है और जिन्हें विदेशी सामाजिक सांस्कृतिक अन्वेषणों से खोजा गया है तथा इन्हीं मूल्यों को हमारे समाज की पुनर्रचना के लिए तकनीक व साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है । यहाँ तक कि बहुत से शिक्षा केन्द्रों में ऐसे सांस्कृतिक व साहित्यिक फिल्म चित्रों की बाढ़ सी आ गई है । इनके प्रयोग का लक्ष्य हमारे समाज की पुनर्रचना करना है । शिक्षा में इस विदेशी आधार के विषय में हमने कोई ध्यान नहीं दिया और इसे अपने सामाजिक पुनर्रचना का आधार मान बैठे है जबकि विदेशी शिक्षा शास्त्रियों ने खुलकर इसे अस्वीकार कर दिया है । नई दिल्ली में अन्तर्राष्ट्रीय विषयों के भारतीय शिक्षालय में "वेरा माइकिल्स" जो एक आध्यापिका थी, महिला सम्मेलन में बोलते हुये कहा है :-

> यह देखकर मै आश्चर्य चकित रह गयी कि भारतीय विश्वविद्यालयों का पाठ्यक्रम आज भी ब्रिटेन में पढाये जाने वाले विषयवस्तु से भरा हुआ है । ब्रिटिश इतिहास और ब्रिटिश संस्थायें सापेक्षिक रूप से स्वयं भारत के लिये व्यर्थ हैं ।

हमें राष्ट्रीय क्रियाशीलन के कार्यों में बौद्धिक स्वाभिमान की भावना पैदा करनी चाहिये । जब हम अपने बच्चों में बौद्धिक चेतनता के सम्बन्ध में विचार करते हैं तो हमें क्रियाशीलता के हाल के कार्यों में एक बौद्धिक स्वाभिमान के लिये ही विचार करना पड़ता है । शिक्षकों को तथा हमारे नेताओं को

विभिन्न क्षेत्रों मे जैसे राजनैतिक, वैज्ञानिक एवं बौद्धिक तथा सम्पूर्ण भारतीय जनता की उपलब्धियों हेतु किये गये कार्यों में एक बौद्धिक स्वाभिमान धारण करने की प्रेरणा देनी चाहिये, क्योंकि यही एक रचनात्मक रास्ता है जिसके द्वारा भारत में भावात्मक एकता उत्पन्न की जा सकती है । धार्मिक कार्यों में अधिक भाग लेने से हम कभी-कभी यह अनुभव करते हैं कि एक विशेष प्रकार का कार्य ही धार्मिक है तथा नैतिक है और जीवन में विभाजन का अनुभव करते हैं और विभिन्न प्रकार के अनुभव के कारण अलग हैं ऐसा अनुभव करते हैं । क्योंकि उनमें कुछ धार्मिक कुछ नैतिक तथा कुछ सांसारिक होते है । इस प्रवृति ने ही हमें औपचारिक, बनावटी एवं दिखावटी जीवन के विभिन्न मूल्यों को प्रदान किया है ।जिसके कारण हमारा व्यवहार भी बनावटी हो गया है इसका मूल कारण यह है कि हमें वास्तविक नैतिकता के विषय में उचित समझ नहीं है । जॉन डिवी हमें तथ्यों के सम्बन्ध में अन्र्तदृष्टि प्रदान करते हैं जिससे हमें ज्ञात होता है कि जीवन में अलगाव नहीं है । जॉन डिवी कहते हैं :-

> "वास्तविक व्यावहार के लिए उसकी अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न खोज पाना कठिन होगा । क्या शेष मानव की क्रियाशीलता से नैतिक क्षेत्र अलग है? क्या केवल विशेष मानव वर्ग का उद्देश्य तथा सम्बन्ध ही नैतिक मूल्य रखता है ?----- परन्तु यदि मानव से चेतना अलग नहीं है तो नैतिक एवं अनैतिक व्यावहार के मध्य कोई निश्चित रेखा नहीं खींची जा सकती है ।"[1]

1- जॉन डिवी : थ्योरी ऑव मॉरल लाइफ" पृष्ठ-12। ।

<u>मूल्य जीवन की समस्याओं के समाधान हेतु साधन हैं :-</u>

प्रश्न उठता है कि क्या मूल्य बहुत है ? अथवा कम हैं? मूल्य की अधिकता व न्यूनता इस बात पर निर्भर करती है कि हम इसे किस रूप में देखते व समझते हैं । जॉन डिवी के अनुसार प्रथम व अन्तिम रूप से इस बात का महत्व नहीं है कि मूल्य समस्त प्राणियों के सामान्य खुशहाली की ओर ले जाते हैं और एक प्रभावी साधन के रूप में जीवन की समस्याओं के समाधान में प्रयोग किये जाते हैं । प्रयोजनवादी दृष्टिकोण यह आशा करता है कि विद्यार्थियों को अपनी स्वयं की जिम्मेदारी को समझने के योग्य होना चाहिये । उनसे यह आशा नहीं की जानी चाहिये कि वे कुछ उचित मूल्यों को धारण करें । हमें बच्चों को उद्देश्य हीन व विवेकहीन होने से तथा समाज के विरुद्ध जाने से रोकना होगा । उन्हें यह अनुभव कराना होगा कि समाज उनसे बहुत कुछ आशा रखता है तथा हमें भी विद्यार्थियों के साथ समाज की आशा के अनुकूल आचरण करना होगा । मूल्यों के प्रश्न से एक और बिन्दु प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है जो आदर्श है । भारत में जब हम युवकों के आचरण, व्यवहार, तथा रुख के विषय में बात करते हैं तो हमारे पास इसे मापन करने के लिये एक पूर्व निश्चित शब्द "आदर्श" उपलब्ध होता है । परन्तु प्रश्न यह है कि आदर्श क्या है ? कौन आदर्शवादी है ? क्या ये आदर्श हमारे जीवन की तात्कालिक समस्याओं को हल करते हैं ? इन प्रश्नों के सम्बन्ध में जॉन डिवी के विचार संगतिपूर्ण है । वे आदर्श को परिभाषित करते हुये

कहते हैं :-

"किसी कार्य के विस्तृत एवं दूरवर्ती मूल्यों को सामान्य रूप से आदर्श कहा जाता है ।"[1]

और आगे वे पुन: कहते हैं :-

"जितना आदर्शों की प्रकृति के सम्बन्ध में भ्रम है उतना प्राय: किसी अन्य वस्तु के सम्बन्ध में नहीं है । ये आदर्श कभी-कभी स्थिर व दूरवर्ती लक्ष्यों के रूप में तथा आचरण में अनुभव से दूर समझे जाते हैं । कभी-कभी अस्थिर भावात्मक प्रेरणाओं के रूप में जाने जाते हैं जो आचरण को निर्देशित करने में विचारों का स्थान ग्रहण कर लेते हैं ।"[2]

आदर्शवादी के सम्बन्ध में जॉन डिवी अपना विचार अभिव्यक्त करते हुये कहते हैं :-

"आदर्शवादी अव्यवहारिक व्यक्ति समझे जाते हैं, जो अस्थिर आध्यात्मिक किस्म के अविचारणीय वस्तुओं के लिए आकांक्षाओं द्वारा प्रभावित होते है । वास्तविक स्थिति से जिनका कोई सम्बन्ध नहीं होता है ।"[3]

सारांश के रूप में प्रकट करते हुये वे कहते हैं :-

1- जॉन डिवी : थ्योरी ऑव मॉरेल लाइफ" पृष्ठ-133 ।

2- - तदैव -

3- - तदैव -

"दूरस्थ आदर्शों के साथ कठिनाई "पूर्णता" की है ।
जिन विशिष्ट परिस्थितियों के अन्दर हमें कार्य करना
होता है उनके महत्त्व से ये हमें लापरवाह बनाते हैं। वे
पूर्णता के आदर्श की तुलना में अनावश्यक समझे जाते हैं।"[1]

दूरवर्ती आदर्श समस्याओं का समाधान नहीं करते हैं :-

इस सम्बन्ध में जॉन डिवी के विचारों की संगति को प्रमाणित करने के लिये हमें तर्कादि की आवश्यकता नहीं है । आवश्यक यह है कि अध्यापकों को जीवन के आदर्शों के लिए छात्रों को उपदेश देने से पूर्व तात्कालिक व स्थानीय परिस्थितियों की वास्तविकताओं को देखना व समझना चाहिये । इनके समाधान के लिए हमें अपना ध्यान लगाना चाहिये । आदर्शों को तो जीवन की वास्तविक दशाओं से उत्पन्न होना चाहिये । आदर्शों को पूर्णता व अनुभूति की सीमा से बाहर तथा दूरस्थ नहीं होना चाहिये । यदि हम दूरवर्ती आदर्शों की बात करेगें तो हमारी पहुँच अस्थिर और अर्थहीन हो जायेगी तथा इस प्रकार के आदर्श एवं आदर्शवाद की बात स्वयं मनुष्य द्वेषी सिद्धान्त में बदल जायेगी। हमें जॉन डिवी के उस सिद्धान्त को ध्यान में रखना चाहिये जिसमें उन्होनें कहा कि किसी भी प्रकार के ऐसे आदर्श का चुनाव करते समय हमारा पैर इस पृथ्वी तल पर ही मजबूती से और जीवन की दशाओं की जड़ में ही टिका रहना चाहिये ।

1- जॉन डिवी : "थ्योरी ऑव मौरेल लाइफ", पृष्ठ-133 ।

भारतीय शिक्षा हेतु जॉन डिवी के विचारों की संगति :-

भारत में शिक्षा की अपेक्षा अन्य किसी भी क्षेत्र में इनके विचारों की विशेष संगति नहीं है । हममें से कुछ लोग यह अनुभव करते हैं कि जॉन डिवी अमेरिका के एक विशेष पहलू से जुड़े है, इसलिए जहाँ के वे निवासी है वहाँ की परिस्थितियों की माँग व समय के घटक से ही सम्बन्धित है । अत: हमारी परिस्थितियों के अनुकूल उनके विचार नहीं है । किन्तु हमारा यह भ्रम ही है क्योंकि जॉन डिवी के मौलिक योगदान के अध्याय में वर्णन करते हुये मैक्स ओटो ने कहा है :-

> "वे [जॉन डिवी] किसी उपलब्ध संस्कृति, भौगोलिक क्षेत्र व किसी खासकाल के विषय में ही विचार नहीं करते हैं --- बल्कि वे सम्पूर्ण मानव जातितथा सम्पूर्ण विश्व व आगे आने वाले काल के सम्वन्ध में भी विचार करते हैं।-----"[1]

जॉन डिवी के अधिकांश विचार सार्वभौमिक मूल्य के हैं :-

जॉन डिवी के विचारों में सार्वभौमिक मूल्य के तत्व पाये जाते हैं और यही वह कारण है कि इस महान दार्शनिक एवं शिक्षा शास्त्री का प्रभाव अमेरिका की सीमा पार करके विश्व के जन-जन तक पहुँच सका । अब हमें अपने कथन के केन्द्रिय विचार पर आना चाहिये और यह देखनेका प्रयत्न करना चाहिये कि

1- मैक्स आटो : जॉन डिवी, प्रोग्रेसिव एजुकेशन 30:1-2 पृष्ठ-2

जॉन डिवी किस प्रकार भारतीय शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन और राष्ट्रीय पुनर्रचना के लिये एक शक्तिशाली साधन के रूप में प्रयोग करने में संगति रखते हैं ।

हम जानते हैं कि शिक्षा में प्रत्येक पद्धति एवं अभ्यास का निर्माण, उस काल के समाज में प्रशंसनीय और प्रमुख रूप से प्रधानता रखने वाले विचारों एवं रूचियों से सम्बन्ध रखता है । यह एक मौलिक सिद्धान्त है । इस विषय में दो मत हो ही नहीं सकते हैं । हमारे राष्ट्रीय जीवन के प्रमुख विचार एवं रूचि ही हमारे मस्तिष्क में वे उद्देश्य हैं जिनसे हम अपने स्वप्नों का भारत बनाना चाहते हैं ।

स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात से ही हम अपने देश को गणतंत्र बनाने के महान कार्य में सलग्न ही नहीं बल्कि भावात्मक रूप से निमग्न भी रहे हैं । भारत जैसे गणतंत्र देश के सर्वोत्तम नागरिकों को केवल जीविका के उपार्जन के योग्य बनाने में ही नहीं बल्कि पूर्ण मानव के रूप में विकसित होने के सभी सुअवसरों को उत्पन्न करने में भी हम लगे हुये हैं । हम राष्ट्रीय पुनर्रचना के कार्य में लगने के लिये सम्पूर्ण मानव को एक शक्ति के रूप में बदलना चाहते हैं । हम गरीबी, बेरोजगारी, अज्ञानता और पम्परागत अन्ध विश्वासों से लड़ रहे हैं । हम अपने औद्योगिक जीवन की पुनर्रचना में लगे हुये है ताकि प्रमुख आर्थिक कृषिप्रधान जीवन को कृषि उद्योग में बदल सकें । परन्तु इसका विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक सार्वभौमिक साक्षरता का विकास

नहीं होता है और असंख्य किशोर व किशोरियों को तकनीकी एवं वैज्ञानिक शिक्षा की सुविधा का अवसर नहीं उपलब्ध होता है ।

भारत को समर्पित सेवाभावी नागरिकों की आवश्यकता है :-

भारत परिवर्तन हेतु समर्पित सेवाभावी एवं अनुशासित पुरूष एवं स्त्रियों की प्रतीक्षा कर रहा है । वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा का प्रसार ही स्वयं इस परिवर्तन को नहीं ला सकता है जब तक कि विज्ञान व तकनीकी का प्रयोग जीवन की समस्याओं को हल करने में नहीं किया जाता है । हमें अपने दृष्टिकोण में प्रयोगवादी और प्राप्ति में प्रयोजनवादी होना पड़ेगा । जॉन डिवी की अपेक्षा अन्य कोई भी दार्शनिक एवं शिक्षा शास्त्री हमारे वर्तमान संदर्भ में संगति पूर्ण विचार प्रस्तुत नहीं करता है हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि सिद्धान्त की योजना के अनुसार ही वैज्ञानिक, तकनीकी व व्यावहारिक प्रयोग विकसित होते हैं । इसकलिए मजबूत सैद्धान्तिक नींव के बिना व्यावहारिक प्रयोग सम्भव नहीं है ।

भारत के लिये एक उचित शिक्षा दर्शन की आवश्यकता है :-

हमें इस तथ्य से सहमत होना पड़ेगा कि हमारे शैक्षिक व्यवस्था की सैद्धान्तिक नींव त्रुटि एवं प्रयास के पहलू में स्थित है । हमारे पास एक उपयुक्त शिक्षा दर्शन का अभाव है, जिसे हमारे शैक्षिक प्रयोग को निर्देशित करना चाहिये ।

भारत एक महान परिवर्तन के काल से गुजर रहा है

और क्रान्तिकारी परिवर्तन उपयुक्त सुअवसर के मार्ग हेतु प्रतीक्षा कर रहा है ताकि ये परिवर्तन अनुभव किये जायें । इस प्रकार की जटिल और प्रतिस्पर्धा युक्त परिस्थिति में शिक्षा को एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना है । जनतंत्र में केवल शिक्षा ही वह साधन है जिससे आदर्श, चरित्र और ज्ञान धारण करने वाले पुरूष एवं स्त्रियों को प्रशिक्षित किया जा सकता है और प्राचीन काल की बहुत सी परम्पराओं को उखाड़ा जा सकता है । अस्वीकृत विश्वास व मूल्यों के स्थान पर नूतन विश्वास और मूल्यों को स्थापित किया जा सकता है । इन समस्त कार्यों के लिये एक सर्वाधिक प्रभावशाली शिक्षा दर्शन अथवा एक सर्वाधिक शक्तिशाली शिक्षा सिद्धान्त की आवश्यकता पड़ेगी ।

इसका यह तात्पर्य नहीं है कि स्वतंत्र भारत में शिक्षा की नयी शुरूआत करनी पड़ेगी और एक स्वच्छ स्लेट पर वर्णमाला के प्रथम वर्ण को लिखना पड़ेगा । क्योंकि न तो ऐसा सम्भव है और न तो वांछनीय ही है । हमें यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि वर्तमान समय में प्राणियों की आकांक्षायें बहुत उत्तेजक है, परन्तु यह भी सत्य है कि अतीत दूरस्थ व निकस्थ दोनों रूपों में हमें एक समाज प्रदान किये हुये हैं और उस समाज में भौतिक, बौद्धिक और नैतिक सभी तत्व उपलब्ध हैं । स्वतंत्र भारत की शिक्षा को इसे ही आधार मानकर कार्य करना होगा ।

हमारी शिक्षा में विस्तुत दृष्टिकोण का अभाव है :-

जब हम जानते हैं कि शिक्षा के लिए भारत में अनेक

प्रतिस्पर्धायें एवं आशायें उपस्थित हैं । ऐसी स्थिति में यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारी शिक्षा का दृष्टिकोण संकुचित हो गया है क्योंकि शनैः शनैः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं और यह मानने लगे है कि शिक्षा का तात्पर्य मात्र विद्यालयीय शिक्षा से ही है तथा शिक्षा वह साधन मानी जाती है जिससे जीवन बनाया जाता है और ज्ञान का तात्पर्य सूचना ग्रहण करना समझा जाता है । शिक्षा की ऐसी अवधारणा का तात्पर्य यह हुआ कि सीखना वैयक्तिक एवं प्रतिस्पर्धात्मक हो गया तथा शिक्षा में विशिष्टता का महत्व हो गया । परन्तु इस प्रकार की विचार धारा के कारण ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के मध्य दीवाल खड़ी कर दी गई है । शिक्षा के सामाजिक सम्बन्ध को हमने भुला दिया है । राष्ट्रीय जीवन को एक सुदृढ नीव पर कायम रखने के लिये जिस विस्तृत दृष्टिकोण की आवश्यकता है उसे हमने खो दिया है । हमने भाषा, उद्देश्य, पाठ्यक्रम और इसी प्रकार के छोटे-छोटे पहलुओं के सम्बन्धमेंविरोध उत्पन्न कर दिया है । यदि हम शिक्षा के विस्तृत आदर्श को अपने समक्ष रखे तो प्रचलित शिक्षा की इससे कोई संगति नहीं होगी । हम जानते हैं कि शिक्षा केवल पाठ्यक्रम भाषा, पाठ्यपुस्तक तथा परीक्षा लेना ही नहीं है । जॉन डिवी का कथन है :-

"शिक्षा सामाजिक उन्नति और सुधार की मौलिक विधि है ।"[1]

1- जॉन डिवी : "डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-57 ।

उनका इस तथ्य में भी विश्वास है कि यह केवल शिक्षा ही है जिसके द्वारा :-

"समाज अपने उद्देश्यों का निर्माण तथा अपने साधनों का संगठन कर सकता है। साथ ही जिस दिशा में समाज विकसित होने की इच्छा करता वैसा वह अपना निर्माण तथा सामाजिक आर्थिक स्थिति का विकास भी कर सकता है।"[1]

इस प्रकार हम यह अनुभव कर सकते है कि जॉन डिवी इस सम्बन्ध में पूर्ण संगति रखते हैं। क्योंकि शिक्षा के सम्बन्ध में उनके इस दृष्टिकोण कि शिक्षा सामाजिक प्रगति एवं सुधार की एक मौलिक विधि है से हम एक विश्वास ग्रहण कर सकते हैं।

हमें शिक्षा को एक जीवित शक्ति के रूप में समझने की आवश्यकता है :-

शिक्षा के प्रति एक विस्तृत दृष्टिकोण अपनाने के कारण हमें शिक्षण को एक उच्च योजना के अनुसार देखने की आवश्यकता है जीवन के प्रत्येक क्षण के क्रिया कलापों में शिक्षा हमें व्यावहारिकता प्रदान करती है और यह हमारी आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक स्थितियों को भी प्रभावित करती है किन्तु यह भी सत्य है कि शिक्षा के पास अतीत के व्यक्तियों के त्याग और क्रियाओं का स्वयं का एक बहुत वृहद कोष है जिसमें वंश परम्पराओं के ज्ञान व साहसिक कृत्यों के उद्धरण समाविष्ट हैं।

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-59 ।

यह परम्परा के निर्जीव प्रदतों, शिक्षण विधि, प्रतिरूप, चित्र, मान-चित्र और पुस्तकों की अपेक्षा और भी कुछ है । शिक्षा एक जीवित शक्ति है । जॉन डिवी के शैक्षिक विचारों का यही केन्द्रिय विचार है । एक जीवित गतिशील शक्ति होने के नाते शिक्षा का प्रगटीकरण एक जीवित प्राणी के व्यक्तित्व में ही होता है । अर्थात शिक्षक और शिक्षार्थी के सम्बन्धों तथा उनके व्यवहारों, रूखों और योग्य-ताओं में ही अभिव्यक्ति होती है । यहाँ तक कि समाज की उन सभी शक्तियों में और मानवता के भावों में जो समाज को सँजोये रहते हैं, में प्रकट होती है । जॉन डिवी के विचारों की संगति हमारे लिए इसलिए भी है कि क्रियात्मक ज्ञान और आकांक्षायें भी शिक्षा के अन्तर्गत आती है जो हमारे कर्तव्यों को उच्च बनाती है तथा वंश परम्पराओं के विचारों में विकास करती हैं । जॉन-डिवी के अनुसार शिक्षा सुन्दरता को भी मूल्यों के रूप में महत्व प्रदान करती है तथा अपनी रक्षा के लिये ही सत्य के प्रति कृतज्ञ रहती है । शिक्षा सत्य, मूल्य व शिवम् को खोजती है, रक्षा करती है तथा मानव के उपयोग के लिए निर्मित करती है ।

विद्यालयों को समाज सुधार का गतिशील केन्द्र बनाने की आवश्यकता है :-

हमें अपने शिक्षालयों को समाज सुधार का गतिशील केन्द्र बनाना होगा । विद्यालयों को समाज सुधार हेतु प्रमुख भूमिका का निर्वाह करना चाहिये । जॉन डिवी के शिक्षा सिद्धान्त से हमें यह शिक्षा उपलब्ध होती है कि विद्यालयों का कार्य एक विशिष्ट

वातावरण बनाना है ताकि विस्तृत समाज के अवाँछनीय तत्वों को जहाँ तक सम्भव हो उसे उखाड़ा जा सके । जाॅन डिवी की सलाह कितनी मूल्यवान है जब वे कहते हैं कि समाज जो ज्ञान सम्पन्न है :-

"अपने सम्पूर्ण समाज की केवल उपलब्धि ही नहीं"[1]

बल्कि

"उसे भावी समाज को सुन्दरतर बनाना"[2] भी चाहिये।

हमें यहाँ ध्यान देना चाहिये कि वंश परम्परागत संस्कृति का परिवर्तन जिसे शिक्षा के कार्यों में एक मौलिक कार्य माना जाता है और जिसके विषय में हम भावात्मक विचार करते हैं का तात्पर्य यह नहीं है कि भारतीय संस्कृति को पूर्ण रूप से परिवर्तन करना है । बल्कि आवश्यकता है चुनाव करने की और चुनाव का आधार जैसा जाॅन डिवी संकेत करते है वैसा होना चाहिये :-

"ऐसा जो समाज को सुन्दरतर बनाये ।"

यदि इस निष्कर्ष को व्यवहार में लाया जाता है तो हमारे पाठ्यक्रम की अधिकांश सामग्री में आवश्यक छँटाई करनी पड़ेगी ।

क्षेत्रीयता हमारे युवकों को राष्ट्रीय जीवन की विस्तृत धारा से अलग न करे । :-

क्षेत्रीय संस्कृति एवं ग्राम्य अभिरूचि के नाम पर हमने

1- जाॅन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-24 ।

2- - तदैव -

राष्ट्रीय संस्कृति के वृहद अवधारणा को संकुचित बना दिया है और शिक्षा को विरोध की खाई में झोंक दिया है । क्षेत्रीयवाद का विकास उस सीमा तक तो ठीक है जब हम अपने बच्चों की स्थानीय दशाओं, प्रमुख सांस्कृतिक मूल्यों जो उन्हें जन्म से उपलब्ध है का ज्ञान देने के लिए प्रदान करते हैं ।परन्तु यदि यह हमारे बच्चों को विस्तृत राष्ट्रीय जीवन से अलग करती है तो यह विचार खतरनाक व आत्मघाती भी है । जॉन डिवी इस सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट है । वे लिखते हैं :-

> "विद्यालय को सामाजिक पर्यावरण के विभिन्न तत्वों में सन्तुलन स्थापित करना चाहिये और यह देखें कि प्रत्येक व्यक्ति जिस समूह में उत्पन्न हुआ हैउससे बचने का अवसर प्राप्त कर विस्तृत पर्यावरण के जीवित सम्पर्क में आवे ।"[1]

संस्कृति भाषा आदतों और परम्पराओं तथा सामाजिक रीतिरिवाजों की विभिन्नतायें जो भारतीय जीवन की विशेषताओं को अभिव्यक्त करती है, हमारी इस आवश्यकता के संदर्भ में जॉन डिवी के विचारों की संगति है जब वे कहते हैं कि जो समाज जनतांत्रिक एवं प्रगतिशील दोनों है उसे :-

> "ऐसी शिक्षा अपनानी चाहिये जो व्यक्ति को सामाजिक सम्बन्धों एवं नियन्त्रण में व्यक्तिगत रूचि उत्पन्न करे तथा जो अव्यवस्था उत्पन्न किये बिना सामाजिक परिवर्तन ला सके ।"[2]

1- जॉन डिवी : डिमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन" पृष्ठ-24

2- - तदैव - पृष्ठ-115

बालकों में प्रभावी चिन्तन की आदत का विकास करना :-

इसका तात्पर्य यह है कि साधन के रूप में शिक्षा द्वारा बालकों में सहयोगी जीवन की आदत की शिक्षा देना, विचार संप्रेषण की योग्यता पैदा करना और प्रभावी चिन्तन की आदत का विकास करना चाहिये ताकि संस्कृति भाषा और रीति रिवाजों के क्षेत्रीय अन्तर दूर किये जा सके तथा इन समस्याओं का समाधान भी हो सके । इन विचार धाराओं को निरन्तर विकसित किया जाय और समाज में वृहद रूप से प्रभावी भी बनाया जाय । इस प्रकार हम देखते हैं कि जॉन डिवी के विचार शिक्षा के द्वारा राष्ट्रीय एकता के महत्वपूर्ण कार्य में हमारी सहायता करते हैं । अन्ततः इसका अभिप्राय यह है कि उन शैक्षिक योजनाओं के प्रति जो स्थिर वर्ग, जाति बोध और द्वेषवादी है, घृणा करने के भाव का विकास किया जाय और जब तक शिक्षा द्वारा इसे उपलब्ध न कर लिया जाय तब तक शिक्षा अपने मौलिक योगदान में असफल ही रहेगी, क्योंकि शिक्षा का कार्य जनतंत्र को कायम रखना है । जैसा कि हमने पहले ही देखा है कि जॉन डिवी का विचार सत्य ही है जब वे कहते है कि जनतंत्र जीवन का गुण है, सामुदायिक जीवन की एक निश्चित शैली है और सहयोगी जीवन की एक विधि है ।

नव विद्वेषी भाव और साम्प्रदायिक स्वार्थ आधुनिक भारत के शत्रु है

यह एक दूसरा पहलू है जिसके लिए जॉन डिवी के विचारों की हमारी शिक्षा के लिए पर्याप्त संगति है । जैसा कि हम जानते हैं कि महान परिवर्तन हमारे देश में घटित हो रहा है

और विकास करने के अनेक शुभावसर भी उत्पन्न हो रहे हैं परन्तु साथ ही हमें कठोर नवविद्वेषी भावनायें भी दृष्टिगत हो रही हैं। नवविद्वेषी भाव तथा साम्प्रदायिक स्वार्थ आधुनिक भारत के महान शत्रु है । वे समवेत होकर हमारी शिक्षा के लिए बहुत बाधा उत्पन्न कर रहे हैं । बौद्धिक लचक के अभाव का दूसरा नाम नव विद्वेषी है। इस नवविद्वेषी भाव का खतरनाक पहलू केवल नये विचारों का विरोध करना है । प्राचीन विश्वासों और रीति रिवाजों से अज्ञानता वश लगाव रखना इसका दूसरा खतरनाक पहलू है, यद्यपि वे अब हमारी उपयोगिता के योग्य नहीं रह गये हैं फिर भी हम उनसे चिपके हुये हैं । इतिहास हमें बताता है कि जब विचारों में स्थिरता आ जाती है तभी साम्प्रदायिक स्वार्थ एवं नवविद्वेषी भाव राष्ट्र में उत्पन्न होते हैं । इतिहास के पृष्ठों में भी अंकित है कि प्राचनी भारत के दार्शनिकों एवं शिक्षा शास्त्रियों ने विचार के मौलिक स्वीकृति के प्रति प्रश्न उठाया था । स्वीकृत विश्वासों को चुनौती देने, सन्देह करने तथा प्रश्न करने की इच्छा अन्वेषी प्रवृति का द्योतक है । जिसका प्रतिफल यह हुआ कि नये ज्ञान के क्षेत्र का उदय हुआ और भारतीय बुद्धि प्रयोजनवादी एवं प्रयोगवादी बनी रही और मानव बुद्धि की पराकाष्ठा समस्त क्षेत्रों में पुष्पित व पल्लवित होती रही, परन्तु धीरे-धीरे इस अन्वेषी प्रवृति का हमनें परित्याग कर दिया और फलस्वरूप नवविद्वेषी और प्राचीन परम्पराओं के दास बन गये ।

अन्वेषी मन व मस्तिष्क का विकास करना :-

आज हमें इस अन्वेषी प्रवृति को पुन: प्राप्त करना है । जॉन डिवी से हमें यह ज्ञान प्राप्त होता है कि विचार चाहे कितने ही प्राचीन, पवित्र एवं स्पष्ट क्यों न हो फिर भी हमें उन्हे अन्वेषी मन व मस्तिष्क की प्रयोगशाला में अवश्य परीक्षण करना चाहिये । जो समाज प्रगति का इच्छुक है उससे नवविद्वेषी भावनायें किसी भी प्रकार संगति नहीं रखती है । शिक्षा के द्वारा हमें अपने विद्यार्थियों में अन्वेषी प्रवृति के विकास के लिये प्रशिक्षित करना चाहिये और जीवन में जिस भी कार्य को उन्हें करना है उन प्रत्येक वस्तुओं के प्रति उन्हें प्रयोगवादी दृष्टिकोण धारण करने का प्रशिक्षण देना है । इसी प्रकार की वैज्ञानिक प्रवृति की ही जॉन डिवी ने वकालत की है । जॉन डिवी की इस विचारधारा की हमारी शिक्षा में महत्वपूर्ण संगति है । जब तक यह विचार विकसित नहीं किया जाता तब तक हम नये विचारों को ग्रहण करने में असफल रहेगें और पुराने विचारों के प्रति हमारा हठ बना रहेगा । हम जानते है कि इस जेट युग में तकनीकी परिवर्तन के बावजूद भी भारतीय जन मानस अधिकतर नवविद्वेषी भाव का कैदी बना हुआ है । अप्रचलित रूख और अपरिवर्तनीय विचार जेल की दीवारें है, क्योंकि इनके पीछे कुछ निश्चित पारम्परिक मनोविज्ञान काम करता है और वे मस्तिष्क को इसकी पकड़ से छुड़ाने में अपने को असमर्थ पाते हैं ।

पुराने और नये विचारों में मध्य के द्वन्द को हमें समाप्त करना है :-

यदि हम भारत के प्रति अपने स्वप्न को मूर्तरूप देना

चाहते हैं तो हमें प्राचीन और नवीन विचारों के मध्य संघर्ष को धीरे-धीरे समाप्त करना होगा । यदि हम ऐसा करने में असफल होते हैं तो प्रतिफल होगा बौद्धिक एवं नैतिक स्थिरता का । इस प्रकार शिक्षा द्वारा बौद्धिक पुनर्जागृति को सम्भव बनाने में जॉन डिवी के बिचारों की पूर्ण संगति है । अन्त में यह कहा जा सकता है कि शिक्षा को हमारे लिए बौद्धिक उत्सुकता उत्पन्न करनी चाहिये ताकि हम अपनी समस्याओं को हल करने का ज्ञान प्राप्त कर सके और धीरे-धीरे सुन्दरतर राष्ट्रीय जीवन के मार्ग पर बढ़ सके । अपनी शिक्षा के लिए जॉन डिवी के विचारों की संगति के सम्बन्ध में हमने जॉन डिवी के उन विचारों से बचने का प्रयास किया है जिसे उन्होंने पाठ्यक्रम, अनुशासन, शिक्षण विधि और ऐसे ही अन्य सम्बन्धित विषयों में अभिव्यक्त किये हैं और जो औपचारिक शिक्षा के तत्वों का निर्माण करते हैं । परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि शिक्षा के इन पहलुओं के प्रति जॉन डिवी के द्वारा प्रकट किये गये विचारों से हम कुछ सीखते नहीं हैं वे तो हमेशा हमारे लिए लाभप्रद हैं ।

<u>प्रयोजनवादी विचारों से हम शिक्षा के कई क्षेत्रों को अधिक प्रभावी बना सकते हैं :-</u>

हमने भारतीय शिक्षा को पुनर्निरीक्षित करने हेतु एक बहुत बड़े क्षेत्र को शामिल करने का प्रयास किया है और अन्य क्षेत्रों की खोज की है जिसमें जॉन डिवी के विचारों की पूर्ण संगति है । उपर्युक्त विवरणों में हमने देखा है कि शिक्षा के अनेक ऐसे पहलू

हैं जिन्हें बहुत अधिक प्रभावी बनाने की आवश्यकता है, और जॉन डिवी के विचारों को ग्रहण करने से उन्हें प्रभावी बनाया जा सकता है । जनतांत्रिक समाज में शिक्षा के कार्यों का जहाँ तक सम्बन्ध है वे जॉन डिवी के गतिशील दृष्टिकोण, शिक्षा के सामाजिक पहलू पर बल, प्रयोगवादी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण और व्यावहारिक पहलुओं पर जोर जो उच्च लक्ष्य की ओर बढ़ती है, और समाज की आकांक्षाओं को पूर्ण करती है ये समस्त क्षेत्र हमारी शिक्षा के लिए पूर्ण संगति रखते हैं और हमारी शिक्षा में अर्थपूर्ण भी है । हम राष्ट्रीय पुनर्रचना के कठिन बिन्दु पर स्थित है और पुनर्रचना की प्रक्रिया में शिक्षा को एक सर्वाधिक प्रभावी भूमिका अदा करनी है । जब शिक्षा प्रयोजनवादी पहुँच और प्रयोगवादी दृष्टिकोण पर आधारित एक गम्भीर शिक्षा दर्शन अपनाती है तभी वह भलाई प्रदान करने में समर्थ हो सकती है । जॉन डिवी के मौलिक विश्वासों के बहुत से सिद्धान्तों को अपनाने से हमउद्देश्य पूर्ण और महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त कर सकते है ।

केवल अध्यापक ही एक नयी नैतिकता को उत्पन्न कर सकते हैं :-

ऐसा कहा जाता है कि केवल शिक्षा ही वह साधन है जो भारत की प्रगति को सम्भव बना सकती है । अध्यापक व दार्शनिक केवल उन नई नैतिकता को जैसे वैयक्तिक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता को और इसके द्वारा मनुष्य की समाज में भूमिका और शिक्षा तथा प्रकृति की नयी व्याख्या को

उत्पन्न करने में समर्थ नहीं है, परन्तु इस प्रकार का निष्कर्ष निकालना समीचीन नहीं है । यह जितना हमारे देश के लिये सत्य है, उतना ही अन्य देशों के लिये भी । इस प्रकार की नैतिकता को उत्पन्न करने के लिये मानव जाति को ऐसे विशेषज्ञ व राजनीतिज्ञ की आवश्यकता है जिनके पास राष्ट्र को महान लक्ष्यों एवं आदर्शों के लिए प्रेरित करने हेतु ज्ञान सम्पन्न आदर्श हैं । यह सोचना गलत है कि मनुष्य अपने आप स्वयं को, अपनी जाति को जानना व समझना केवल मनोविज्ञान व सिद्धान्त से सीखता है । जब तक वह यह नहीं जानता कि उसका अस्तित्व किसलिये हैं तब तक व उपयुक्त मनोविज्ञान को अपना नहीं सकता है । अत: अस्तित्व व मूल्य को जानने के लिए हमें शिक्षक का सहयोग लेना होगा ।

हम अपनी सभ्यता के प्रमाणिक पहलू में रह रहे है :-

आजकल हम इतिहास के उस मिलन बिन्दु में निवास कर रहे हैं जहाँ से राष्ट्र का भविष्य सम्पूर्ण विश्व भर में कई पीढ़ियों तक के लिये निश्चित किया जाना है, परन्तु इसे बुद्धिमता से सम्पादित करने के लिए और उसकी योजना को कार्य में परिणित करने के लिए निरन्तर प्रयास जारी रखने हेतु विशेषज्ञों एवं राजनीतिज्ञों को लोगों के सहयोग की आवश्यकता है ।ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो इस कार्य को करने के लिए तैयार हो, अर्थात अध्यापकों की आवश्यकता है । विशेषज्ञ और राजनीतिज्ञ जो कुछ आवश्यक सोचते व समझते हैं उन्हें समझने के लिए नागरिकों को तैयार करने और राष्ट्र को शिक्षित करने का कार्य महत्वपूर्ण है ताकि राष्ट्र योग्य राजनीतिज्ञ का चुनाव कर सके जो

साहस, विश्वास आदर्श एवं आस्था से पूर्ण हों । यही वह क्षण है जबकि शिक्षा मानव के मन व मस्तिष्क को परिवर्तित करने में सहायता प्रदान करने के लिए एक महान प्रक्रिया और एक शक्तिशाली साधन हो जाती है । मानव के नये और समग्र विचार की आवश्यकता को हम प्रत्येक जगह धर्म व विज्ञान, राज्य व सरकार और व्यक्ति व समाज के मध्य व उनके सम्बन्धो को खोज सकते हैं । इस सदी में जॉन डिवी की अपेक्षा कोई भी दार्शनिक इस प्रकार के सम्बन्ध को प्रकट करने के लिए इतना अर्थ पूर्ण एवं उचित कार्य नहीं किया है और न तो मानव के समक्ष सम्पूर्ण मानव की अवधारणा को प्रस्तुत करने में सक्षम हुआ ।

हमें महान शिक्षा दार्शनिक के निर्देशन एवं सलाह की आवश्यकता है:-

एक सच्चाई के रूप में अपनी मातृभूमि की प्रगति करने के लिए हमें एक महान शिक्षा शास्त्री की एक साथी के रूप में आवश्यकता है, जिसने सभ्यता के पूर्व संकट काल में अपने नागरिकों को नयी सभ्यता के क्षितिज की प्राप्ति में सहयोग दिया हो, हमें उनके उद्देशों की आवश्यकता है, क्योंकि वे साहस व आदर्श के व्यक्ति और गलत परम्पराओं के विरोधी है । यदि मानव उस ताकत का अनुभव करें, जिसकी उत्पत्ति महान उद्देश्य के कार्यों के प्रति प्रकट की गई श्रद्धा से होती है, तो मानव उनके द्वारा प्रकट किये गये साहस को प्राप्त कर सकता है । हम भारत में राष्ट्र की उन्नति के महीन कार्यों में लगे हुए है इसलिए इस कार्य हेतु हमें सुन्दरतर निर्देशन की आवश्यकता है । अत: सुन्दरतर भारत

हेतु अपनी सहायता के लिए एक स्वस्थ शैक्षिक योजना के निर्माण के लिए हमें जॉन डिवी के पास पहुँचना चाहिये ।

जॉन डिवी का प्रभाव :-

शिक्षा से सम्बन्धित समस्त व्यक्तियों द्वारा यह एकमत से स्वीकार किया जाता है कि किसी भी अन्य शिक्षा महारथी की अपेक्षा आधुनिक शिक्षा पर जॉन डिवी का प्रभाव कहीं अधिक गहरा और व्यापक है । आज हमें शिक्षा में अनेक नवीन विचारों एवं प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं, यथा नवीन शिक्षा, प्रगतिशील शिक्षा, क्रियात्मक विद्यालय, क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम एवं संगठित इकाई। यह कहना सर्वथा युक्तियुक्त है कि सबके उद्गम श्रोत जॉन डिवी के विचार ही है । सत्य यह है कि जॉन डिवी ने अपने मौलिक विचारों एवं सिद्धान्तों द्वारा ज्ञान प्राप्ति की प्राचीन विधियों के आकर्षण को विकर्षण में परिवर्तित करके शिक्षा को आधुनिक जीवन की वास्तविकताओं के वातावरण में व्यवस्थित रूप प्रदान किया गया है ।

महात्मा गांधी :-

कुछ मानवों को ऐतिहासिक घटनायें बनाती है जबकि कुछ लोग इतिहास का स्वयं निर्माण करते हैं । महात्मा गांधी ऐसे महापुरूष थे जिन्होंने अपने मस्तिष्क, मन व हृदय की विशेषताओं, गुणों तथा महान कर्मों से अपना स्वयं का मार्ग प्रशस्त किया था, इसलिए महात्मा गांधी जी ने स्वयं एक इतिहास का निर्माण कर द्वितीय वर्ग के मानवों में अपनी गणना कराने में

समर्थ रहे हैं । उन्होंने एक राष्ट्रीय नेता के रूप में अपने प्रभावी व्यक्तित्व से नवीन भारत का निर्माण किया था और एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विचारक के रूप में सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया था ।

महात्मा गांधी की महानता :-

इस विश्व में अनेक बुद्धि सम्पन्न मानव ने वैसे तो जन्म लिया है, किन्तु कोमल हृदयी मानव का प्रायः अभाव ही पाया जाता है । इसी विशेषता में महात्मा गांधी की महानता का सार निहित है । गांधी जी का प्रादुर्भाव ऐसी परिस्थिति में हुआ था जबकि नैतिक मूल्य तथा मानव की प्रतिष्ठा का अव-मूल्यन हो रहा था । नैतिकता संकटापन्न हो गयी थी । ऐसी विषम परिस्थिति में महात्मा गांधी जी ने नये मूल्यों को व्यवस्थापित करने की आवश्यकता का अनुभव कर सम्पूर्ण मानवता को जाग्रति करने का संकल्प ले लिया, क्योंकि उन्होंने अनुभव कर लिया था कि मानव को इस विकट स्थिति से बाहर निकालने का कार्य केवल नये मूल्य ही कर सकेगें । इसीलिये वे अकेले ही समाज मे व्याप्त समस्त बुराईयों की सामूहिक शक्ति से संघर्ष करते रहे हैं । विरोध, धमकी. गलत प्रदर्शन तथा कलंक की परवाह किये बिना सत्य, अहिंसा व प्रेम का दृढ़ता से अवलम्बन लिये हुये भारतीय राष्ट्र को शान्ति व सुरक्षा प्रदान की तथा अपनी स्वयं की त्रुटियों को पवित्रता एवं प्रेम की ओर मोड़ने में सफल हुये । अपने मुख पर प्रेम की प्रतिछाया को धारण किये हुये मानव सेवा

में अपना बलिदान कर दिया । विश्व ऐसे महान देश भक्त, विचारक, एवं दार्शनिक को कभी भी अपनी स्मृति से न हटा सकेगा ।

किसी महान शिक्षक के संदेश को केवल वे ही व्यक्ति सुनने व समझने में समर्थ हो सकते है जो इसे ग्रहण करने के लिए उद्यत हो, क्योंकि सुन्दरता दृष्टा के नेत्रों में होती है । यह बात महात्मा गांधी की शिक्षाओं के सम्बन्ध में नितान्त सत्य है । महात्मा गांधी इस प्रकार के महान व्यक्तित्व वाले प्राणी थे जिन्हे खोजने में सौ वर्ष लगेगें और समझने में दूसरा सौ वर्ष लगेगा तथा उनकी शिक्षाओं को व्यवहार में लाने के लिये और अन्य सौ वर्ष लगेगें । अत: उन्हे पूर्ण रूप में जानने के लिए सतत, अन्वेषण, समझ एवं निरन्तर प्रयत्नशील रहने की आवश्यकता है ।

विश्व की दृष्टि में गांधी जी का स्थान :-

विश्व में गांधी जी के स्थान के सम्बन्ध में भविष्य वाणी करना हमारे लिए तो प्राय: असम्भव ही है, परन्तु महात्मा गांधी को महान पथ प्रदर्शकों, शिक्षकों, मनुष्य मात्र के परोपकारियों में एक महान पथ प्रदर्शक, शिक्षक तथा महान परोपकारी मनुष्य के रूप में आने वाले कालों में समझा जाता रहेगा । वे पीढ़ी दर आदृत होते रहेगें ।

महात्मा गांधी की मौलिकता :-

कुछ आलोचकों की मान्यता है कि महात्मा गांधी ने अपने पूर्ववर्ती शिक्षा दार्शनिकों से अलग-अलग बिखरे हुये पुष्प रूपी

विचारों को मधुमक्खी की भाँति ग्रहण कर तथा उन्हें संगठित कर एक नया दर्शन प्रस्तुत किया है। जिसे अतीत के प्रभावों का परिणाम कहा जा सकता है ।

महात्मा गांधी जी के प्रशंसकों की मान्यता है कि उन्होंने एक बिलकुल नये दर्शन का विकास किया है, किन्तु ऐसा स्वीकार करना मात्र धृष्टता तथा अहं को प्रकट करना ही होगा, क्योंकि कोई भी विचारक अपने से पूर्व चिन्तकों से बिलकुल स्वतंत्र नहीं हो सकता है । कोई भी मौलिक रचना समकालीन तथा पूर्व विचारकों के चिन्तन से प्रभावित होकर आगे बढ़ती है । यदि इस तथ्य को स्वीकार कर लिया जाय तो कोई कला या साहित्यिक कृति मौलिक नहीं मानी जा सकती है । हम जानते हैं कि प्रत्येक नव विचारक अपनेपूर्वजों के विचारों की अनुकृति करके ही आगे बढ़ता है । इसीलिये पर्सीनन ने कहा है कि :-

"अत्यधिक मौलिक मस्तिष्क भी आरम्भ में बन्दर की भाँति नकल करता है जो उसी मार्ग पर पहले चल चुके हैं ।"[1]

हम जानते है कि "वेगनर" ने अपने से पूर्व ओपेरा की नकल की और तत्पश्चात अपने स्वयं के मौलिक "ओपेरा" का विकास किया । "ऐस्टीन" ने न्यूटन के सिद्धान्तो को लेकर आगे प्रगति की ।

1- नन : एजूकेशन : इट्स डाटा एण्ड फर्स्ट प्रिंसिपुल्स, पृष्ठ-141 ।

कालीदास व सेक्सपीयर की प्रारम्भिक रचनायें उनके समकालीन एवं पूर्ववर्ती साहित्यकारों के विचारों से प्रभावित रही हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वास्तव में प्रत्येक मौलिक विचारक अपने से पूर्व के चिन्तकों दार्शनिकों एवं शिक्षा विदों के विचारों का अवश्य ऋणी होता है और उसी के आधार पर अपना चिन्तन आगे बढ़ाता है इस प्रकार पूर्वजों की अनुकृति किसी विचारक की मौलिकता को समाप्त नहीं करती है बल्कि वे तो उसकी सुप्त मौलिकता को जाग्रत करने की प्रेरणा देती है। ये विचार उत्तेजनायें है जिससे प्रतिक्रिया करके विचारक अपनी मौलिकता को व्यवहार परक बनाता है।

हमनें देखा है कि महात्मा गांधी के अधिकांश विचार उनके पूर्ववर्ती दार्शनिकों के विचारों से मेल रखते हैं। किन्तु यह भी सत्य है कि महात्मा गांधी ने उनके विचारों का अध्ययन नहीं किया था। यदि वे रूसो, पेस्टालॉजी, फ्रोबेल हरबार्ट, रॉबिन तथा जॉन डिवी आदि चिन्तकों के साहित्य का अध्ययन किये होते तो "टालस्टॉय एवं रस्किन की कृतियों के अध्ययन की भाँति अवश्य स्वीकार करते, क्योंकि एक सत्यान्वेषी से असत्य भाषण की आशा नहीं की जा सकती है।

यह तो महात्मा गांधी की विलक्षणता ही कही जायेगी कि उनके शैक्षिक विचार उनके निजी प्रयोग एवं अनुभव पर आधारित होते हुये भी महान शिक्षा दर्शनशास्त्री "कमेनियस से मॉन्टेसरी" तक से साम्यता रखते हैं। अत: यह निर्विवाद

सत्य है कि महात्मा गांधी का शिक्षा दर्शन इस रूप में मौलिक है कि वह उनके निजी प्रयोग,अनुभव व सम्पर्क पर आधारित है न कि दूसरों के अनुभवों व प्रयोगों की अनुकृति पर । ऐसा नहीं है कि उनसे पूर्व किसी दार्शनिक ने ऐसे विचार नहीं प्रस्तुत किये है किन्तु गांधी जी के विचारों की प्रस्तुति अन्य की अपेक्षा विलक्षण है ।समस्त राष्ट्र द्वारा उनकी शिक्षा पद्धति को स्वीकार करना उनके विचारों की मौलिकता का प्रमाण है । इसी लिये आचार्य बिनोवा भावे ने लिखा है कि :-

> "वह एक नई चीज न हो लेकिन उसका प्रस्तुतीकरण नई रोशनी में किया गया है ।"[1]

वे पुन: कहते हैं :-

> "पश्चिमी लोगों ने शारीरिक प्रशिक्षण को पाठ्यक्रम का एक भाग माना,क्योंकि वे सब शोषण करने बाले राष्ट्र थे,और उनका शारीरिक प्रशिक्षण उन्हें शोषण से स्वतंत्र नहीं करता ।"[2]

महात्मा गांधी जी की स्वयं उक्ति है :-

> "मैं नही जानता हूँ कि मध्य युग या किसी युग में हस्तकला द्वारा सम्पूर्ण मानव के विकास का उद्देश्य रहा हो ।"[3]

1- "एजूकेशनलरीकन्स्ट्रक्शन", पृष्ठ-75

2- - तदैव - पृष्ठ-76 ।

3- हरिजन, 16-10-37 ।

महात्मा गांधी जी के विषय में अध्ययन करके हमने यह देखा है कि वे अपने शिक्षा दर्शन के परिणामों पर स्वतंत्र रूप से पहुँचे थे । शिक्षा द्वारा बालक के सर्वांगीण विकास के आदर्श को समक्ष रखकर गांधी जी ने "फिनिक्स बस्ती" "टालस्टॉय फार्म" साबरमती आश्रम तथा सेवा ग्राम आश्रमों में आपने अनेक शैक्षिक प्रयोग किये थे, और अनुभव किया था कि शरीर श्रम शिक्षा का वह केन्द्रवर्ती साधन है जिसके माध्यम से हाथ की संस्कृति, मन की संस्कृति तथा हृदय की संस्कृति का विकास किया जा सकता है , और यह भीअनुभव कियाथाकि इन संस्कृतियों को अलग-अलग करके नहीं बल्कि साथ-साथ विकसित किया जायेगा । हम जानते हैं कि यह एक मनोवैज्ञानिक यथार्थ है कि हाथ के द्वारा कार्य प्रारम्भ करने से मन व हृदय तथा हाथ तीनों में सन्तुलन एवं सामान्जस्य स्वमेव उत्पन्न हो जाता है, क्योंकि सामन्जस्य के अभाव में कार्य की पूर्णता व प्रक्रिया दोनों संदिग्ध हो जाती है । अत: विकास में समवाय स्वयं अपेक्षित हो जाता है । महात्मा गांधी जी का कथन है कि :-

> "टालस्टॉय फार्म में जिन लड़के लडकियों की शिक्षा देने का उत्तरदायित्व मेरे उपर था,उनके सम्पूर्ण विकास में कोई कठिनाई नहीं हुई। व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था मुख्य रूप से आठ घण्टे की थी । उन्हें अधिक से अधिक दो घंटे पुस्तकीय ज्ञान दिया जाता था ।उन्हें जो व्यवसाय सिखाये जाते थे वे जमीन खोदना, खाना बनाना,सफाई करना,चप्पल बनाना, बढ़ईगीरी तथा संदेशवाहक के कार्य थे ।"[1]

1- हरिजन 18-9-37 ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गांधी ने अपनी शैक्षिक विधि स्वतंत्र रूप से विकसित की है । इस प्रकार उनके शिक्षण विधि में तत्कालीन शैक्षिक प्रक्रिया में प्रचलित अन्यान्य शिक्षण विधियों की झलक दिखाई दे तो गांधी जी की मौलिकता में कोई अन्तर नहीं पड़ता है । वर्तमान काल में बालक की रूचि व क्रियाशीलता पर आधारित अनेक प्रयोग किये गये थे तथा अनेक विधियों का प्रादुर्भाव हो चुका था । इसलिए गांधी जी कोई अन्य शिक्षण पद्धति प्रस्तुत न कर केवल हस्तकला शिक्षण पद्धति प्रस्तुत की है । यह भी उनकी मौलिकता ही है । वे व्यंग करते हुये कहते हैं :-

"इतनी संख्या में शिक्षा पद्धतियों का अनेक देशों में सफलता के साथ प्रयोग होने पर एक और सनक की क्या आवश्यकता है । समाज के समक्ष जो समस्यायें है, हमें उनका सामना व समाधान करना चाहिये ।"[1]

हम देखते हैं कि किसी की भी शिक्षा योजना अहिंसा पर आधारित नहीं है । यह विचार मौलिक है, क्योंकि उनकी शिक्षा योजना का लक्ष्य मन व आत्मा का विकास करना है । आत्म ज्ञान हेतु अहिंसा अनिवार्य है । काका कालेलकर ने लिखा है कि :-

"सच्ची शिक्षा अहिंसा के द्वारा दी जानी चाहिये और गांधी जी की शैक्षिक योजना का यही मुख्य विचार है।"[2]

1- हरिजन 3-10-37 ।

2- एजूकेशन रिकन्स्ट्रक्शन, पृष्ठ-80 ।

डॉ0 जाकिर हुसैन ने तो पहले यह कहा कि :-

"जो लोग शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं वे गांधी जी की योजना में कोई नई बात नहीं पायेंगें ।"[1]

परन्तु अपने कथन को सत्यता की कसौटी पर खरा न देखकर उन्हें अपने कथन में परिवर्तन कर यह स्वीकार करना पड़ा कि :-

"गांधी जी ने जिस तरीके से अपनी योजना रखी है, वास्तव में वह मौलिक है ।"[2]

शिक्षा के सामाजिक पक्ष पर अनेक दार्शनिकों द्वारा विचार व्यक्त किया गया है और शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया माना गया है किन्तु महात्मा गांधी की शिक्षा योजना का लक्ष्य बालक को केवल सामाजिक ही नहीं बनाना है बल्कि अहिंसक सामाजिक प्राणी बनाना है । इसीलिये अहिंसक समाज के निर्माण के अनुरूप ही अपनी शिक्षा प्रक्रिया को नई दिशा प्रदान की है । हमने देखा है कि अन्य विचारक बातों में ही उलझे रहे किन्तु महात्मा गांधी जी समस्या की जड़ तक पहुँचे थे, क्योंकि इनका शिक्षा दर्शन पुस्तकों के अध्ययन से विकसित नहीं हुआ है बल्कि आम जनता के पेशों, क्रिया कलापों व सुख दुख में घुलमिलकर तथा प्रयोगजन्य अनुभव से विकसित हुआ है । इसीलिये वे कहते हैं कि:-

"मेरी योजना बिलकुल भिन्न योजाना है, क्योंकि वह ग्रामीण योजना है ।"[3]

1- एजूकेशनल रिकन्स्ट्रक्शन, पृष्ठ-66 ।

2- - तदैव - पृष्ठ-95 ।

3- - तदैव - पृष्ठ-73 ।

महात्मा गांधी जी शिक्षा की जड़ तक देश की समग्र समस्याओं की जानकारी के पश्चात ही पहुँचे थे, इसलिये यह भारतीय परिवेश के सर्वथा उपयुक्त है ।

गांधी जी की शिक्षा योजना का लक्ष्य उपयोगी व उत्पादक हस्तकला की शिक्षा देना है जो बालक के विद्यालयीय पर्यावरण व परिस्थिति के अनुसार चयनित होगी । अनुपयोगी एवं अनुत्पादक हस्तकला का कोई स्थान नहीं है । इस प्रकार का विचार सम्भवतः महात्मा गांधी जी से पूर्व किसी भी शिक्षाशास्त्री ने नहीं प्रतिपादित किया है ।

गांधी की शिक्षा योजना की मौलिकता इसकी नवीनता में हैं, क्योंकि भारत के लिये तो यह योजना बिलकुल नवीन है, इसका उपयोग सार्वभौमिक है, हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी सभी के लिये समान रूप से उपयोगी है । गांधी जी के अनुसार :-

> "सच्ची शिक्षा भौतिक शक्ति की प्राप्ति के लिए नहीं होनी चाहिये, इसे आध्यात्मिक शक्ति के प्रतिफल के रूप में प्रकट होना चाहिये ।"[1]

हमने देखा है कि क्रिया, श्रम तथा कर्म की शिक्षा देने की बात तो प्रायः सभी शिक्षाशास्त्री करते हैं, परन्तु किसी हस्त कला द्वारा समस्त विषयों की शिक्षा देना तथा मानव का विकास करना कोई नहीं कहता है । यह तो महात्मा गांधी ही प्रथम

---

x- द टीचर्स वर्ल्ड, 4-2-48 ।

शिक्षा शास्त्री है जिन्होंने विस्तार से इस सम्बन्ध में अपने मौलिक विचार रखे हैं । इसीलिये वे कहते हैं कि :-

"किसी हस्तकला द्वारा सम्पूर्ण मानव का विकास करना हमारी शिक्षा का लक्ष्य है ।"[1]

वे पुन: कहते हैं :-

"हस्त कलायें केवल उत्पादन के लिये ही न सिखाई जायें बल्कि विद्यार्थियों के मानसिक विकास के लिये सिखाई जायें ।"[2]

महात्मा गांधी चाहते है कि :-

"मैं हस्तकला द्वारा सभी विषयों जैसे इतिहास, भूगोल गणित, विज्ञान, भाषा, चित्रकला एवं संगीत को एक निश्चित योजना के अनुसार सिखाना चाहता हूँ।"[3]

शरीर श्रम द्वारा शिक्षा देने के मौलिक विचार के सम्बन्ध में आचार्य कृपलानी कहते हैं :-

"गांधी जी शारीरिक श्रम अथवा किसी हस्तकला द्वारा शिक्षा देना चाहते हैं । उनका यह विचार मौलिक है । वे स्वतंत्र रूप से इस विचार तक पहुँचे थे ।"[4]

महात्मा गांधी जी की शिक्षा योजना की मौलिकता इस तथ्य में है कि बालक आत्म निर्भरता, स्वावलम्बन, साधन

1- हरिजन 16-10-37
2- -तदैव - 11-9-37
3- एजूकेशनल रिकन्स्ट्रक्शन" पृष्ठ-73-74
4- द लेटेस्ट फैड पृष्ठ-21 ।

सम्पन्नता, सांसारिकता तथा आध्यात्मिकता की सम्यक जानकारी वैज्ञानिक विधि अर्थात प्रक्रिया के क्यों और कैसे को समझता हुआ प्राप्त करता है । महात्मा गांधी की शैक्षिक विधि प्रारम्भ में बीजवत् थी किन्तु कालान्तर में उसका पूर्ण विकास हो गया था। इस तथ्य की पुष्टि महात्मा गांधी जी ने स्वयं की है :-

"अब यह प्रयोग अधिक समृद्धशाली हो गया है ।"[1]

प्रारम्भ में महात्मा गांधी ने भी व्यावसायिक शिक्षा को शिक्षा का सहयोगी बनाया था किन्तु बाद में उन्होंने :-

"सम्पूर्ण शिक्षा को हस्तकला और उसके विकास पर आधारित कर दिया था ।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रारम्भिक स्तर पर हस्तकला के सम्बन्ध में महात्मा गांधी जी के विचार अन्य शिक्षा-शास्त्रियों से भिन्न नहीं है, किन्तु बाद में उसका स्वरूप अन्य से भिन्न हो गया । यही हस्तकला की शिक्षा के सम्बन्ध में गांधी जी की मौलिकता है ।

अन्य दार्शनिकों ने शारीरिक विकास को साहित्यिक शिक्षा का पूरक माना है, किन्तु महात्मा गांधी ने शारीरिक शिक्षा को साहित्यिक व बौद्धिक प्रशिक्षण का माध्यम माना है । यही महात्मा गांधी जी की नवीनता व मौलिकता है ।

1- हरिजन, 18-9-37

2- तदैव - 16-11-37

महात्मा गांधी एक युग पुरूष, युग दृष्टा एवं व्यावहारिक शिक्षा शास्त्री हैं वे शिक्षा को सामाजिक क्रिया मानते हैं और शिक्षा को सामाजिक, राजनैतिक क्षेत्र में सुधार का शक्तिशाली आधार तथा साधन मानते हैं । अपनी शिक्षा पद्धति के प्रति उनकी धारणा थी कि यह :-

"साक्षात् शान्त सामाजिक क्रान्ति की अग्रदूत होगी और इसके अत्यन्त दूरगामी परिणाम होगें ।"[1]

इस प्रकार यह प्रकट हो जाता है कि महात्मा गांधी मौलिक विचार सम्पन्न उच्च कोटि के एक शिक्षा शास्त्री हैं । इस युग प्रवर्तक महान व्यक्ति ने अपने ज्ञान, चिन्तन, पर्यवेक्षण, मनन एवं प्रयोगीय अनुभव से शिक्षा के क्षेत्र में सर्वोदय समाज एवं जनकल्याण की कल्पना से परिरक्षित नवीन शिक्षा योजना प्रस्तुत की है । यह शिक्षा पद्धति जिसे हम बेसिक शिक्षा कहते हैं वह उनकी मौलिक सूझ है । एम0एस0पटेल ने कहा है कि :- महात्मा गांधी जी को उन महान शिक्षकों एवं धर्मोपदेशकों की गौरव मंडली में अनोखा स्थान प्राप्त है, जिन्होनें शिक्षा के क्षेत्र में नई ज्योति प्रदान की है । ग्रीन के अनुसार पेस्टॉलजी पाश्चात्य आधुनिक शिक्षा सिद्धान्त और व्यवहार के प्रारम्भिक बिन्दु हैं , किन्तु एम0एस0 पटले के अनुसार पाश्चात्य देश के सम्बन्ध में यह

1- हरिजन, 3-10-37 ।

बात सत्य हो सकती है किन्तु महात्मा गांधी जी के शिक्षा सिद्धान्त का निष्पक्ष अध्ययन यह सिद्ध करता है कि वे पूर्व में शिक्षा सिद्धान्त और व्यवहार के प्रारम्भिक बिन्दु हैं ।

महात्मा गांधी जी एक क्रान्तिकारी दार्शनिक हैं :-

महात्मा गांधी जी एक क्रान्तिकारी दार्शनिक हैं, क्योंकि इनके अनुसार एक आदर्श अहिंसक सामाजिक व्यवस्था एक राज्य विहीन लोकतंत्र है । इस प्रकार के लोकतंत्र की कल्पना इसके पहले किसी भी सामाजिक, राजनैतिक एवं शिक्षा दार्शनिक ने सम्भवत: नहीं की है । महात्मा गांधी जी का लोकतंत्र एक ऐसा बौद्धिक क्रान्ति सम्पन्न राज्य है जहाँ सामाजिक जीवन इतना पूर्ण होता है कि वह स्वयं नियमित और नियन्त्रित रहता है । महात्मा गांधी जी की कल्पना के :-

> "लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना शासक होता है । वह अपने ऊपर इस प्रकार शासन करता है कि वह अपने पड़ोसी के लिए किसी भी प्रकार से बाधक नहीं होता है । इसीलिए इस अहिंसक आदर्श राज्य में कोई राजनैतिक शक्ति नहीं होती है, क्योंकि वहाँ कोई राज्य होता ही नहीं है ।"[1]

इस प्रकार लोकतंत्र ग्रामीण सत्याग्रहियों का एक संघ होता है । महात्मा गांधी जी की अवधारण के अहिंसक समाज में प्रतिष्ठित एवं शान्तिमय सह-अस्तित्व हेतु स्वैच्छिक सहयोग की

1- यंग इण्डिया, 2-7-31 ।

दशा की उपलब्धि आवश्यक है । यह ऐसा समाज होगा जहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति आध्यात्मिक वास्तविकता के प्रति निरन्तर सचेत रहेगें तथा सादगी एवं त्याग, सेवा एवं बलिदान का जीवन जीयेगें। ऐसा समाज विकेन्द्रित होगा जहाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समानता का साम्राज्य होगा । डा० जी०एन०धवन ने ठीक ही कहा है :-

> "विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता की उत्पत्ति इस तथ्य से हुई है कि केन्द्रीयकरण में कुछ व्यक्तियों के हाथों में शक्ति केन्द्रित होती है जहाँ शक्ति के गलत प्रयोग की सम्भावना बनी रहती है । केन्द्रीयकरण जीवन की जटिलताओं की वृद्धि करती है जिसके कारण प्रत्येक नैतिक क्रियात्मक प्रयत्न में रूकावट उत्पन्न होती है । यह (केन्द्रीयकरण) सूत्रपात, साधन, साहस एवं क्रियाशीलन को निरूत्साहित करती है और स्वशासन के अवसर को उत्पन्न ही नहीं होने देती है तथा अन्याय के विरोध की भावना को दबाती है ।"[1]

महात्मा गांधी का दर्शन :-

विश्व सभ्यता में महात्मा गांधी जी के योगदान के सम्वन्ध में विचार करने से पूर्व हमें यह देखना है कि वे कौन से तत्व है जिसने महात्मा गांधी जी के दर्शन के निर्माण में योगदान दिया है । हमने देखा है कि उनका दर्शन आध्यात्मिक एकता के सिद्धान्त से आविर्भूत हुआ है । महात्मा गांधी जी के अनुसार मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य "आत्मानुभूति" है । जिसका तात्पर्य है अन्तिम सत्य का अनुभव करना, मोक्ष प्राप्त करना व ईश्वर का साक्षात्कार करना । महात्मा गांधी के दर्शन का मौलिक

1- धवन जी० एन० : द पॉलिटिकल फिलॉसफी ऑव महात्मा गांधी पृष्ठ-267 ।

तत्व मानव जीवन के लक्ष्य की व्याख्या करना और उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए मार्ग व विधि प्रतिपादित करना है । यदि जीवन का लक्ष्य ईश्वरानुभूति है तो हमें यह ज्ञात होना चाहिये कि उनका ईश्वर से क्या तात्पर्य है । महात्मा गांधी जी की ईश्वर व्याख्या अन्य की अपेक्षा भिन्न है, क्योंकि वे जानते थे कि "ईश्वर की असंख्य परिभाषायें हैं, ईश्वर का प्रकाशन या उसकी अभिव्यक्ति अनन्त है ।" वे सत्य को ही ईश्वर मानते हैं "ईश्वर सत्य है" यह कहने की अपेक्षा "सत्य ही ईश्वर है" ज्यादा उपयुक्त समझते हैं । इस कथन से वे समझते थे कि वे नास्तिक जो ईश्वर के अस्तित्व को नकारते हैं वे भी सत्य की शक्ति को अस्वीकार नहीं कर सकते हैं । उनका विचार है कि ईश्वर या सत्य अन्तरस्थ सत्यता नहीं है । यह विश्व का जीवन ही नहीं बल्कि इससे भी परे है । वह सृष्टिकर्ता, न्यायी एवं पालन पोषण करने वाला है ।

महात्मा गांधी का शिक्षा दर्शन मानव विकास की पूर्ण क्षमता से सम्पन्न दर्शन है :-

हमने देखा है कि बेसिक शिक्षा भारत के नव जवानों को आर्थिक,सामाजिक एवं नैतिक तथा बौद्धिक सभी प्रकार से स्वावलम्बी बनाना चाहती है । यह जीवन की समस्याओं के समाधान की विधि प्रस्तुत करती है ।

महात्मा गांधी की शिक्षा योजना श्रम की प्रतिष्ठा को महत्व देती है :-

देश की आर्थिक व सामाजिक कमजोरियों को दूर करने के लिए तथा देश को समस्त प्रकार के बन्धनों से मुक्त करने के लिए सत्य, अहिंसा और प्रेम के सिद्धान्त पर आधारित अपनी बेसिक शिक्षा की योजना को देश के समक्ष महात्मा गांधी ने रखा था । मानव की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति किये बिना अन्य जीवन के लक्ष्यों की उपलब्धि संदिग्ध ही बनी रहती है । इसलिए स्वावलम्बी बनने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को श्रम की प्रतिष्ठा करनी पड़ेगी । यही कारण है कि उन्होंने हस्तकला केन्द्रित शिक्षा को प्रस्तुत किया है जिसका लक्ष्य स्वावलम्बन, आत्म निर्भरता, श्रम की प्रतिष्ठा, अहिंसक व इमानदार समाज का निर्माण करना है । उपर्युक्त गुण सम्पन्न नागरिक ही देश की स्वतंत्रता व जनतंत्रात्मक सामाजिक व्यवस्था को सफल बना सकते है । जीवन की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति का लक्ष्य ही वह कारण है जिससे अनेक सहायक उद्योग शिक्षा में शामिल किये गये हैं । जैसे चमड़े का उद्योग, साबुन का उद्योग, बाँस उद्योग, लाख उद्योग आदि ।

महात्मा गांधी प्रजातंत्रात्मक सामाजिक शिक्षा के पोषक हैं :-

हम जानते हैं कि व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है । इसलिए मानव जीवन का एक अंग सामाजिक पर्यावरण हो जाता है । सामाजिक पर्यावरण के अन्तर्गत जीवन के सांस्कृतिक ,आध्यात्मिक और राष्ट्रीय विकास के कार्यक्रम, समाज सेवा, उत्सव व त्योहारों के आयोजन, राष्ट्रीय सांस्कृतिक कार्य तथा विभिन्न

पाठ्येतर विषयों की योजना को शामिल किया जाता है जो बालकों में राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक शिष्टाचार और सहकारिता की भावना का विकास करती है । व्यक्तिगत स्वार्थ सामाजिक हित में बदल जाते हैं ।उनमें आपस में भातृत्व भाव उत्पन्न हो जाता है । इस प्रकार जनतंत्रात्मक प्रणाली की शासन व्यवस्था में बेसिक शिक्षा द्वारा सहयोग उपलब्ध होता है ।

महात्मा गांधी प्रत्येक प्राणी से मानव कल्याण के लिए सत् कर्मों को करने की अपेक्षा रखते हैं । महात्मा गांधी जी संसार में राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक विषमता मानवकृत मानते हैं । सामाजिक सेवा रूपी ईश्वर चिन्तन से मानवीय दुर्बलताओं का समापन होता है और उसमें निर्भयता, समाज के प्रति निष्ठा तथा सामाजिक प्राणी के प्रति सह-भावना का विकास होता है इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गांधी व्यक्ति की भौतिक शक्ति की विभिन्नता में उनकी आध्यात्मिक शक्ति की एकता का दर्शन करते हैं ।

गांधी का विश्व के शिक्षा दर्शन में योगदान :-

महात्मा गांधी के साहित्य का अध्ययन करने से हमें ज्ञात होता है कि उनका शिक्षा दर्शन एक देशीय न होकर सर्व-देशीय है । विश्व में अमन व शान्ति हेतु गांधी दर्शन मील के पत्थर की भाँति है । इस वैज्ञानिक एवं औद्योगिक तथा तकनीकी युग में जबकि सम्पूर्ण समाज जटिल समस्याओं तथा आपसी द्वेष, कलह, ईर्ष्या से जल रहा है तब उन्हें संजीविनी बूटी के रूप में

मात्र सत्य, अहिंसा एवं प्रेम ही सहारा दे सकता है। इसलिए अधोलिखित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये सत्य, अहिंसा व प्रेम ही मानव मात्र के प्रयत्न का आधार स्तम्भ बन जाता है । महात्मा गांधी की नवीन बेसिक शिक्षा विश्व में :-

1- व्यक्ति स्वावलम्बन, समाज स्वावलम्बन, राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय एवं पारस्परिक स्वावलम्बन ।

2- श्रम निष्ठा

3- सभी धर्मों एवं संस्कृतियों के प्रति समान आदर ।

4- जाति, वर्ग, धन, शक्ति और राष्ट्रीयता आदि की कृत्रिम सीमाओं से बाहर एक सार्वलौकिक स्वतंत्र मानव लोक की स्थापना ।

5- अकेन्द्रि आर्थिक ढाँचे एवं सामाजिक ढाँचे की स्थापना आदि की परिकल्पना करती है ।

महात्मा गांधी के उपर्युक्त विचारों से प्रभावित हो कर ही एम०एस० पटेल ने कहा है कि :-

"यदि दर्शन जीवन की समस्याओं के लिये प्रासंगिक तथ्यों के यथाक्रम तथा तथ्यपूर्ण दृष्टिकोण एवं उनकी व्याख्या और यथार्थवाद से सम्बन्धित है तो निः-सन्देह गांधी जी विश्व के महान दार्शनिकों की श्रेणी में है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके भीतर आज के युग के अनुसार एक स्वतंत्र दार्शनिक का प्रादुर्भाव हुआ है । उनकी शिक्षा

योजना अपरिग्रही दर्शन, विकेन्द्रित, स्वावलम्बी, अर्थनीति तथा श्रेणी हीन सामाजिक व्यवस्था पर आधारित है । जो भारत ही नहीं बल्कि विश्व के लिए पूर्ण संगति रखती है ।

नये युग में गांधी जी के विचारों की संगति :-

महात्मा गांधी के विचार परिवर्तित होने वाले वैज्ञानिक एवं औद्योगिक युग में पूर्ण संगति रखते हैं । यदि हम उनकी शिक्षाओं एवं दार्शनिक विचारों को अपनाने में समर्थ हो सके तो "रामराज्य" एवं "नये स्वर्ण युग" का निर्माण कर सकते हैं । 2 अक्टूबर के दिन महात्मा गांधी के जन्मोत्सव पर डा० राजेन्द्र-प्रसाद ने कहा था :- हमारा परम कर्तव्य है कि हम उस "लौ" को सदैव जीवित रखें जिसे बापू ने हमारे जीवन में प्रज्जवलित किया है । उनकी महान सेवा, श्रेष्ठ त्याग और अन्तिम बलिदान ने हमें केवल विदेशी शासन से ही मुक्ति प्राप्त करने के योग्य नहीं बनाया बल्कि उस समाज को बनाने के लिये हमें आगे बढ़ाया जिसका स्वतंत्रता के संघर्ष के दिनों में हमने स्वप्न देखा था । हमें जीवन में न समाप्त होने वाले सत्य, अहिंसा, प्रेम व सेवा पर भरोसा कराते हुये उन्होंने देश में मानव को समानता, सामाजिक न्याय के लिए आगे बढ़ने की प्रेरणा दी । इन्हीं गुणों से विश्व शान्ति की प्राप्ति सम्भव है ।

जनतंत्रात्मक सामाजिक व्यवस्था में गांधी के विचारों की संगति है :-

महात्मा गांधी की विचारधारा के अनुसार एक जनतंत्रात्मक समाज व्यक्तियों का आध्यात्मिक समुदाय है, जो समानता

एवं स्वतंत्रता का हामी होता है । इस प्रकार के समाज में शिक्षा की व्यवस्था का लक्ष्य सामाजिक कुशलता, आध्यात्मिकता समानता स्वतंत्रता एवं न्याय जैसी विशेषताओं को उद्घाटित करना है । प्लेटो समाज को स्वयं एक विद्यालय मानते थे । विद्यालय के चेतन व अचेतन प्रभाव समाज के सदस्यों के चरित्र, मन व मस्तिष्क को निरूपित करते हैं । इस भाव में शिक्षक व शिक्षार्थी एकता के प्रतीक होते हैं और समाज स्वयं आत्म शिक्षण का अंग हो जाता है । शैक्षिक प्रक्रिया के दो पहलू है - सामाजिक विरासत की रक्षा का और इसके विकास का । बालक स्वाभाविक क्षमताओं एवं प्रकृति से युक्त एक जैवकीय प्राणी है । यदि इन्हें विकसित होने वाले अनुभव के नियन्त्रण में न रखा जाय तो सामाजीकरण की प्रक्रिया अपूर्ण, अस्थिर एवं लचीली बनी रहेगी, क्योंकि अनुभव के नियन्त्रण से बालक की प्रकृति, चिन्तन एवं कार्य की विधि संगठित होती है, जो पूर्ण सामाजीकरण को उत्पन्न करती है । इसी लिए सभी समाज चाहे वह सभ्य हो या असभ्य, समाज द्वारा मान्य प्रतिमानों के अनुसार विद्यार्थियों, बालकों, बालिकाओं एवं युवकों को बनने के लिये विशेष प्रबन्ध करते हैं । जहाँ तक सम्भव होता है, विद्यालय युवकों में लाभप्रद आदतों का निर्माण करता है । भारत में शिक्षा को लोकतंत्र के संदर्भ में हमें देखना है । हमारे जन नेताओं ने स्वतंत्र व धर्म निरपेक्ष जनतंत्र के लक्ष्य हेतु मार्ग पर चलने वाले युवकों के निर्माण का चुनाव किया है । ऐसा चुनाव बुद्धि युक्त है, क्योंकि केन्द्रिक समाज को तार्किक ढंग से इस लक्ष्य को

जनतंत्र जनता की सम्मति की आपेक्षा रखती है । इसलिए जन समूह को बुद्धिमान, ज्ञानी, पौरूषयुक्त एवं सूक्ष्मग्राही होना चाहिये । क्योंकि इन गुणों से युक्त जनता के अभाव में, जनता द्वारा जनता के लिये जनता की सरकार रूपी लोकतंत्र का कुछ भी अर्थ न होगा बल्कि वह एक समूह का शासन मात्र होगा । भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्रात्मक राष्ट्र है । इसलिये यहाँ के निवासियों को शिक्षित होना अनिवार्य है । भारतीय स्वतंत्रता तथा गणतंत्रीय विधान ने हमें अपनी सरकार के प्रति विशेष जिम्मेदार बना दिया है । वयस्क मताधिकार लोकतंत्रीय प्रक्रिया का स्तम्भ है । लोकतंत्र की नींव तब तक सुदृढ़ नहीं हो सकती जब तक प्रत्येक मतदाता अपने विशेषाधिकार के प्रयोग को समझने के लिए पर्याप्त शिक्षित न हो । अज्ञानता एवं अशिक्षा के कारण मतदाता राजनीतिज्ञों के हाथ की कठपुतली हो जाते हैं हमारी स्वतंत्रता बुद्धिमान औद्योगिक कारीगरों एवं कृषकों के समूह में निहित है । उच्च शिक्षा प्राप्त देश के व्यक्तियों के ऊपर केवल जनतंत्र नहीं टिक सकता है । इस समस्या का समाधान बेसिक शिक्षा के प्रारम्भ तथा बाद में समग्र नई तालीम में हैं । इसलिए बेसिक शिक्षा को वास्तविकता के रूप में बदलने के लिए प्रयत्न करना चाहिये । महात्मा गांधी जी के अनुसार नई तालीम वास्तव में कार्य व धन पर आधारित शिक्षा पद्धति नहीं है, बल्कि यह तो व्यक्ति को आत्म निर्भर बनाती है । वास्तव में बेसिक शिक्षा गाँव की सच्ची सम्पत्ति है ।

बेसिक शिक्षा मानव जीवन के लक्ष्य के अनुकूल है :-

स्वतंत्रता के एक दशक पूर्व ही महात्मा गांधी ने सर्वोदयी समाज की रचना का लक्ष्य बनाकर अपनी शिक्षा योजना प्रस्तुत की थी, क्योंकि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन सर्वथा आवश्यक था । इनकी शिक्षा का लक्ष्य समाज, राष्ट्र तथा अन्तर्राष्ट्र की पुनर्रचना एवं पुनर्संगठन करना था । केन्द्रिय शासन पद्धति एवं वर्तमान उत्पादन पद्धति के कारण विश्व समाज तथा भारतीय समाज विषमताओं से भर गया था । इसीलिये महात्मा गांधी जी ने भारत में ग्राम राज्य एवं ग्रामीण उद्योग की स्थापना का विचार प्रस्तुत किया है । इसलिये इन्होंने "गाँव की ओर लौटो" का नारा लगाया था । वे यह भी अनुभव किये थे कि केवल सामाजिक रचना में परिवर्तन कर देने से हमारा उद्देश्य पूर्ण न होगा, बल्कि देश वासियों के विचार, मस्तिष्क तथा हृदय को परिवर्तित करना होगा । इनके अनुसार सर्वोदय समाज की प्रथम सीढ़ी बेसिक शिक्षा ही है । व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र को प्रगतिशील बनाने की सामर्थ्य बेसिक शिक्षा में ही है । यही शिक्षा मानव जीवन के लक्ष्य को पूर्ण करने में समर्थ है । इसीलिए इस शिक्षा की महत्ता के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुये काका साहब कालेलकर ने कहा था कि बुनियादी शिक्षा यान्त्रिक नहीं, न वह केवल गृह उद्योग की शिक्षा है वह तो सर्वांगीण बौद्धिक विकास तथा सांस्कृतिक समन्वय की शिक्षा है । जन सेवा उसका प्रथम व अन्तिम लक्ष्य है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गांधी के दर्शन का केन्द्र "श्रम" है । सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक, आर्थिक और धार्मिक समस्त क्रिया कलापों को श्रमाधीन करने पर इन्होंने महान योगदान दिया है । मानव जीवन के सम्पूर्ण सौर मण्डल में "श्रम" सूर्य की भाँति देदीप्यमान है । "श्रम" हमारी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही नहीं करता बल्कि जीवन के सार्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति में भी सहयोगी है । इस प्रकार महात्मा गांधी का दर्शन सम्पूर्ण दृष्टि से पूर्ण है । इसके सम्पूर्ण ढाँचे में प्राय: कहीं भी अपूर्णता के लक्षण नहीं दिखाई पड़ते हैं । महात्मा गांधी के समस्त शैक्षिक उद्देश्य हाल की मनोवैज्ञानिक खोजों के परिणामों पर आधारित है । इतना ही नहीं इन्होंने जीवन के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति की जो व्यवहारिक विधि प्रस्तुत की है वैसी विधि आज तक शिक्षा जगत में किसी भी शिक्षा शास्त्री द्वारा नहीं प्रस्तुत की गई है ।

<u>जीवन के तात्कालिक उद्देश्यों की पूर्ति में गांधी जी के विचारों की संगति है</u> :-

महात्मा गांधी अयोग्य स्पर्धा की प्रवृति से बचने के लिए कुछ सीमा तक वर्ण कानून में विश्वास करते हैं । वर्ण कुछ निश्चित प्रवृतियों के कारण कुछ व्यक्तियों के लिये कार्य के कुछ निश्चित क्षेत्रों को निश्चितता प्रदान करता है । इसलिए महात्मा गांधी जी यह मानते है कि प्रत्येक वर्ण को अपनी जीविका कमाने के लिये कार्य, श्रम अवश्य करना चाहिये ।

शारीरिक श्रम दैनिक जीविका के लिए अनिवार्य है ।

महात्मा गांधी का रोटी-रोजी का आदर्श असंग्रह एवं समानता की प्रवृत्ति का द्योतक है । महात्मा गांधी जी के अनुसार प्रेम व संग्रह एक साथ नहीं रह सकते हैं । जहाँ भी सैद्धान्तिक रूप से प्रेम होगा वहाँ असंग्रह की प्रवृत्ति अवश्य पायी जायेगी । इस प्रकार वर्ण कानून रोटी-रोजी के आदर्श और असंग्रहपूर्ण आर्थिक एवं सामाजिक समानता को निश्चित करते हैं । असंग्रह एवं रोटी-रोजी का आदर्श ग्रामीण हस्तकला को प्रोत्साहित कर ग्रामीण सभ्यता का विकास करती है । महात्मा गांधी जी के इस नवीन सामाजिक व्यवस्था में शोषण,जमींदारी प्रथा एवं पूँजीवाद का अभाव पाया जाता है;क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वयं का मालिक होता है । एक अहिंसक समाज केन्द्रित सामूहिक उत्पादन एवं लाभ के लक्ष्य से संगति नहीं रखता है,परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि महात्मा गांधी जी मशीनीकरण का विरोध करते हैं उनका कथन है कि मैं :-

> "सामान्य यंत्रों औजारों एवं मशीनों का विरोध नहीं करता हूँ जो वैयक्तिक श्रम को बचाते हैं,और असंख्य झोपड़ियों के बोझ को हल्का करते हैं ।"[1]

परन्तु मशीने ऐसी होनी चाहिये जिसे गाँव वाले स्वयं बनावे और प्रयोग करें ।ऐसे आत्म निर्भर ग्रामीण समाज में

1- यंग इण्डिया, पृष्ठ-713

मानव का पूर्ण विकास होगा । ऐसे ग्रामीण समाज में आपसी मतभेद, विचार विनिमय, वार्तालाप, समझ, पंचायत तथा कभी-कभी स्वयं कष्ट उठाकर दूर किये जायेगें । अधिकांश रोग, आत्म नियन्त्रण, इन्द्रिय निग्रह तथा शरीर श्रम द्वारा स्वयं दूर होते रहेगें । गांधी जी की अवधारणा से समग्र समाज एक वृहद परिवार होगा, जहाँ व्यक्तियों का सम्बन्ध अन्योन्याश्रितता पर पुष्ट बना रहेगा ।

गांधी शिक्षा की जीवन परिस्थितियों से पूर्ण संगति है :-

महात्मा गांधी जी का विचार था कि समस्त शिक्षा मूर्त जीवन की परिस्थितियों के द्वारा दी जानी चाहिये । शिक्षा हस्तकला द्वारा दी जाय, हस्तकला का चुनाव वहाँ के छात्रों के सामाजिक एवं भौतिक पर्यावरण को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये, ताकि जो भी बालक सीखे वह उसके व्यक्तित्व में घुल मिल जाय । जब बालक सक्रिय होकर ज्ञान प्राप्त करता है, समझ में इसका प्रयोग करना है तथा अपने सामाजिक पर्यावरण को ठीक से नियन्त्रित करता है, तथा वह नागरिक के कर्तव्य व अधिकार से भिज्ञ हो जाता है । महात्मा गांधी जी के अनुसार शिक्षा गर्भ से प्रारम्भ हो मृत्यु पर समाप्त होती है । इसलिये शिक्षा की योजना को बनाते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिये और उसमें मानव के सम्पूर्ण जीवन को सम्मिलित करना चाहिये । समग्र बेसिक शिक्षा कुछ निश्चित वंशानुगत कठिनाईयों के कारण तुरंत राष्ट्रीय स्तर पर लागू नहीं की जा सकती है । महात्मा गांधी जी ने

जिस शिक्षा योजना का विकास किया था उसे "वर्धा योजना" या "बेसिक शिक्षा" कहते हैं। जिसका विधान 7 वर्ष से 14 वर्ष के बालकों के लिए किया था। बेसिक शिक्षा का प्रथम सिद्धान्त यह है कि कम से कम एक स्तर तक समग्र नागरिकों के लिये चाहे पुरूष हो या स्त्री शिक्षा सार्वजनिक होनी चाहिये। शिक्षा प्रारम्भ करना ही अनिवार्य नहीं होना चाहिये बल्कि सुविधाओं को उपलब्ध कराना भी अनिवार्य है। इस योजना में बालक की मातृभाषा को शिक्षण का माध्यम ही नहीं होना चाहिये, बल्कि भाषाओं में इसका प्रथम स्थान होना चाहिये।

इस योजना का दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि समस्त शिक्षा किसी हस्तकला के माध्यम से दी जाय। बेसिक शिक्षा में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा दोनों को समाविष्ट किया गया है। जिसे आज हम हाईस्कूल के नाम से पुकारते हैं।

महात्मा गांधी के विचार सामाजिक शिक्षा के प्रति संगति रखते हैं :-

सामाजिक शिक्षा पर बल देने वाले विश्व के प्रमुख सामाजिक शिक्षाशास्त्रियों में गांधी जी का स्थानप्रमुख है। असंख्य लोग उन्हें मानव जाति का देवदूत समझते हैं। इनका जीवन स्वार्थ रहित सेवा का उदाहरण है। उन्होंने असंख्य नर-नारियों को अंध विश्वासों एवं अज्ञानता के क्षेत्र से निकालकर ऊपर उठाया। महात्मा गांधी ने जो कुछ अपने जीवन में अनुभव किया और प्रयोग करके उपलब्ध किया था और अपने व्यक्तिगत जीवन में अभिव्यक्त किया था वैसा उदाहरण विश्व के इतिहास में खोजना कठिन है।

महात्मा गांधी ने अपनी कृतियों, भाषणों एवं व्यक्तिगत उदाहरणों से ज्ञान के प्रकाश को देश के सुदूरवर्ती कोने में भी पहुँचाया था । 40 करोड़ जनमानस को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने में तथा उन्हें उनके अधिकार व कर्तव्य के प्रति जागरूक करने में महान योगदान दिया । उन्हें सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक बन्धनों से मुक्त किया । वे ऐसे व्यावहारिक दार्शनिक थे जिन्होंने अपने उच्चादर्शों, मनोवैज्ञानिक समझ तथा नीति सम्बन्धी सिद्धान्तों को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यवहृत किया था । शिक्षा के क्षेत्र में महात्मा गांधी के कार्यों का महत्व उनके सम्पूर्ण जीवन की असंख्य उपलब्धियों से भी अधिक है । इन्होंने रूसों की शिक्षा की अवधारणा, पेस्टालॉजी के व्यावहारिक बुद्धिमत्ता तथा फ्रोबेल की रहस्यवादी आदर्शवाद का एकीकरण कर जॉन डिवी की भाँति प्रयोजनवादी धरातल पर शैक्षिक विचारों को स्थिर किया था । इन्होंने समाज के प्रत्येक पक्षों पर बल दिया था, और शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया माना । बेसिक शिक्षा एक नूतन प्रकार के मानव के निर्माण पर बल देती है ।

शिक्षा व समाज की पुनर्रचना में बेसिक शिक्षा की संगति :-

हम जानते हैं कि दो विश्व युद्धों ने मानव जाति के भौतिक एवं सामाजिक जीवन की प्रगति को किस प्रकार अवरुद्ध कर दिया था । हमारी प्राचीन परम्पराओं, विश्वासों, रीति रिवाजों एवं संस्थाओं को नष्ट कर दिया था । इस प्रकार की परिस्थितियों ने हमारे मानव परिवार की जातियों व अन्य

लोगों के समक्ष अपनी संस्कृति एवं अपने जीवन को तर्क एवं समानता के आधार पर पुनर्रचना हेतु एक महान अवसर प्रदान किया ।

हमने देखा है कि बेसिक शिक्षा में वह सामर्थ्य है कि वह वस्तुओं को इस प्रकार स्थापित कर सकती है कि मानव समूह अपनी विरासत को प्राप्त करने में सक्षम हो सकता है । हमारे राष्ट्रीय पुनर्जन्म एवं पुनर्रचना में बेसिक शिक्षा की भूमिका महत्व पूर्ण है । बेसिक शिक्षा का प्रथमत: सम्बन्ध भारत के पुनर्निमाण एवं पुनर्जन्म से ही है । विदेशी शासन में देश की ऐन्द्रिकएकता का अनुभव नही किया जा सका था । यहाँ तक कि सामाजिक निर्देशन के अंगों में परामर्श एवं नियन्त्रण में और समाज में सदस्यों के पारस्परिक सहयोग के घनिष्ठ सम्बन्ध को स्थापित नहीं किया जा सका था । प्रत्येक मानव समूह में स्वच्छन्दता एवं विरोधी प्रवृतियों का बाहुल्य हो गया था । स्वतंत्र भारत के विकसित होने वाले राज्यों में तथा जैवकीय समाज के विकास में रुकावटें स्पष्ट दिखाई दे रही थी । महात्मा गांधी ने यह अनुभव कर लिया था कि समाज का विकास मानव शरीर के अंगों की भाँति ही होता है । इसलिए समाज के विकास हेतु व्यक्ति के विकास का महत्व है । गांधी जी की धारणा थी कि वे व्यक्ति जो समाज का निर्माण करते हैं यदि उत्तमतर व्यक्ति बन सकें और उनकी मूलभूत प्रवृतियों को उचित दिशा में पुष्पित व विकसित किया जाय तो समाज स्वयं संगठित हो जायेगा । हम जानते है कि व्यक्ति व समाज दोनों अपने आन्तरिक संघर्षों को निश्चित

करने व विजित करने का प्रयत्न करते हैं । ऐसा करने पर ही उन्हें एक उच्च सन्तुलित जीवन की उपलब्धि होती है । तभी समाज अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है । समाज के प्रत्येक व्यक्ति के विकास पर ही समाज का उचित विकास सम्भव है । व्यक्ति और समाज अलग नहीं हैं । समाज अपनी प्राचीन धरोहर व्यक्ति व समूह को प्रदान करता है । व्यक्ति उसमें विकास कर सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ करता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के विचारों की भारत में पूर्ण संगति है । अब हम अगले अध्याय में जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के अध्ययन किये गये समग्र शैक्षिक विचारों का सारांश प्रस्तुत करेंगें ।

ध्वनि सुनाई देने लगी थी। और वे अपने दर्शन को प्रयोगवादी आदर्शवाद कहने लगे। हमें अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि जितनी ख्याति इन्होंने अब प्राप्त की है उनकी उतनी ख्याति सन् 1899 तक नहीं हुई थी। क्रमश: वे हीगेल के दर्शन से बाहर आये और सन् 1903 में अपने को भूतपूर्व आदर्शवादी के नाम से पुकारने लगे, यद्यपि उनका दर्शन साधनवाद की स्थिति में पहुँच चुका था। इसके पश्चात हमने विस्तार से जॉन डिवी के विचारों पर पड़ने वाले हिगेल, डारविन और जेम्स के प्रभावों का वर्णन किया है।

<u>जॉन डिवी का साधनवाद</u> :-

जॉन डिवी के साधन वाद के विषय में विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक स्तर पर साधनवाद में यह विचार किया गया कि प्रयोगवाद में भविष्य के परिणामों को निश्चित करने में विचार कैसे कार्य करता है। जॉन डिवी के अनुभव की अवधारणा ही साधनवादी दर्शन का केन्द्र है। हमने देखा है कि अनुभव अतीत से प्रारम्भ होकर वर्तमान से होता हुआ भविष्य की ओर निरन्तर चलता रहता है, इस प्रकार अनुभव स्थिर नहीं है परन्तु गतिशील है,। जॉन डिवी के अनुसार अनुभव एक कार्य है। यह भी देखा है कि डिवी के अनुसार अनुभव करने वाले व्यक्ति की आवश्यकताओं के लिए पर्यावरण से अनुकूलन स्थापित करने हेतु किये गये संघर्ष से बुद्धि की उपज होती है। मानव की सामाजिक आकांक्षाओं एवं आशाओं तथा मानव के

अध्याय-12

जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन का निष्कर्ष

जॉन डिवी के शैक्षिक विचारों का निष्कर्ष :-

इस अध्याय में हमने जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के महत्वपूर्ण विचारों को सारांश रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । जिनके सम्बन्ध में गत अध्यायों के पृष्ठों में वर्णन किया गया है ।

जॉन डिवी का साधनवाद :-

हमनें चतुर्थ अध्याय में देखा है कि सामान्यत: डिवी के दर्शन को प्रयोजनवाद के शीर्षक के अन्तर्गत रखा गया है परन्तु उन्होंने इसके लिए प्रयोगवाद अथवा साधनवाद के नाम का प्रयोग किया है ।

हमने देखा है कि "शब्द" "प्रयोजनवाद" दर्शन के एक तकनीकी "पद" के रूप में ।पियर्स" द्वारा खोजा गया था, परन्तु यह विचार बहुत पुराना है । विलियम जेम्स ने कहा है कि प्रयोजनवाद चिन्तन की पुरानी विधि का नया नाम है । अमेरिका में प्रयोजनवाद का आन्दोलन इस विश्वास से उत्पन्न हुआ था कि कार्य और विचार के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध है । पियर्स, जेम्स और जॉन डिवी ये तीनों इस आन्दोलन के अगुआ माने जाते हैं । हमने पियर्स व जेम्स के विचारों को जानने के बाद जॉन डिवी के दार्शनिक विचारों का विस्तार से अध्ययन किया है ।

जॉन डिवी स्वीकार करते हैं कि उन्होंने दार्शनिक

कृतियों से बहुत अधिक अध्ययन किया है परन्तु व्यक्तियों के सम्पर्क एवं स्वयं के अनुभव ने उनके विचारों को उचित दिशा प्रदान की थी । उनकी पुस्तक "निरकुंश राज्य के सिद्धान्त से प्रयोगवाद तक" ।फ्रॉम एब्सोल्युटिज्म टू एक्सपेरिमेन्टलिज्म। को उनके बौद्धिक जीवनी की कृति माना जाता है । जो सन् 1930 मे प्रकाशित हुई थी और यह पुस्तक प्रारम्भिक प्रभावों को उद्घाटित करती है, जिसने जॉन डिवी के विचारों को स्थापित किया था ।

हमने अध्ययन किया है कि जॉन डिवी की दार्शनिक कृतियों के निर्माण काल में उनके विचारों को चार्ल्स डारविन, टी0एच0हक्सले और ऑगस्ट कॉमटे की कृतियों ने उत्प्रेरित किया था । जॉन डिवी की दर्शन में रूचि उनके अध्यापक एच0एस0पी0टॉरी के सम्पर्क से उत्पन्न हुई थी । डब्ल्यू0यू0टी0 हेरिस और जार्ज सिलवेस्टर मारिस के सम्पर्क एवं प्रभाव में आनेके कारण जॉन डिवी नये हीगेल वादी बन गये । जी0स्टेनले हाल से प्रेरणा प्राप्त करके जॉन डिवी ने नये मनोविज्ञान में रूचि लेना आरम्भ कर दिया और अपने आदर्शवाद को मनो-विज्ञान से सम्बन्धित करने का प्रयत्न करने लगे । सन् 1890 तक जॉन डिवी एक हिगेलियन साधनवादी हो गये थे । दर्शन और मनोविज्ञान के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने और तदनुकूल अपनी स्थिति को सन्तुलित करने में उन्हें कठिनाई का अनुभव हो रहा था क्योंकि सन् 1890 तक उनके विचारों में साधनवादी

मध्य होने वाले संघर्ष से दर्शन की उत्पत्ति हुई है । जॉन डिवी के अनुसार दर्शन का एक मात्र उद्देश्य मानव की सर्वाधिक व्यवस्थित एवं बौद्धिक प्रसन्नता प्राप्त करना है । जॉन डिवी के लिए दर्शन अपने लक्ष्य में व्यवहारिक है वह सैद्धान्तिक नहीं है । हमने खोजा है कि जॉन डिवी समस्त प्रकार के द्वैत का विरोध करते हैं चाहे वह द्वैत मन व पदार्थ के मध्य का हो और सत्य व आदर्श के मध्य ही क्यों न हो । साधनवादी दर्शन समस्त वस्तुओं को परिवर्तनशील मानता है । यहाँ तक कि मूल्य भी स्थिर नहीं हैं,वे भी परिवर्तित परिस्थितियों द्वारा सुधार के आधीन हैं ।

हमने यह भी देखा है कि जॉन डिवी परम्पराओं के विरोधी नहीं थे बल्कि हमारी वर्तमान समस्याओं के हल के लिये परम्पराओं को समझने का प्रयास किया है और उसका प्रयोग किया है । विभिन्न विद्वानों ने जॉन डिवी के दार्शनिक विचारों के केन्द्रवर्ती तथ्य को वर्णित करने का प्रयास किया है । जिससे हमें पता लगता है कि राबर्ट जे0राथ के अनुसार जॉन डिवी ने अपने समस्त प्रयत्न "आत्मानुभूति" के लिए ही किया है । परन्तु जार्ज गीगर के अनुसार जॉन डिवी का मुख्य सम्बन्ध सौन्दर्यात्मक अनुभव की व्याख्या करने से रहा है । जॉन डिवी की आलोचनाओं को हमने उनके अनेक आलोचकों की कृतियों में अध्ययन किया है । जॉन डिवी का दर्शन मानव को सामाजिक कार्यों में लगाना चाहता है यही उनके दर्शन की प्रकृति है । जॉन डिवी अमेरिका के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक स्वीकार किये जा चुके हैं । हमने देखा है कि

व्हाइट हेड का विचार है कि जॉन डिवी की सेवायें अमेरिकी सभ्यता के लिये उसी तरह महत्त्वपूर्ण हैं जिस प्रकार आधुनिक विश्व के लिए बेकन, देसार्ते, लॉक और कॉम्टे की सेवायें हैं ।

जॉन डिवी का ज्ञान के प्रति दृष्टिकोण :-

जॉन डिवी की स्वयं की कृतियों पर अनेक लोगों द्वारा विस्तार से वर्णन प्रस्तुत किया गया है और हमने यह भी देखा है कि डिवी के ज्ञान के प्रति सभी के क्या विचार है, इसका भी वर्णन किया गया है, परन्तु हम जानते हैं कि व्यक्तियों के विचार से ज्ञान का अर्थ भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिये अलग-अलग है । कुछ के लिए ज्ञान अन्तिम सत्य, सार्वभौमिक सत्य अर्थात ईश्वर है । अन्य के लिए सूचनाओं का मात्र संग्रह ज्ञान हो सकता है । ज्ञान के प्रति पारम्परिक दृष्टिकोण प्राय: आध्यात्मिक है ।

हमने देखा है कि प्रयोजनवादी ज्ञान के सिद्धान्त को आध्यात्मिक श्रेष्ठता से बचाने का प्रयत्न करते हैं । मानव के चैतन्य जीवन में मूर्त अनुभव के रूप में वर्तमान ज्ञान को एक प्रयत्न मानते हैं । मूर्त अनुभव ही ज्ञान का साधन है । इस प्रकार हम देखते हैं कि जॉन डिवी ज्ञान को अर्जित मानते हैं । ज्ञान पूर्व निश्चित नहीं है बल्कि अर्जित किया जाता है और बनाया जाता है । ज्ञान का अर्जन एवं बनना सम्बन्धों पर निर्भर करता है । जॉन डिवी के अनुसार जानने की प्रक्रिया के तीन स्तर हैं । प्रथम संदेह इसके पश्चात अन्वेषण और अन्त में कार्य करने की योजना । हमने देखा है कि डिवी के अनुसार ज्ञान और जानना

सम्बन्धित परिस्थितियों में ही घटित होते हैं । विचार मन का क्रियाशीलन है, और ये विचार संतोष प्राप्त करने, कष्ट दूर करने और पर्यावरण के तत्वोंको नियन्त्रित करने में सहयोग देते हैं । कार्य सदैव अनुभव प्रदान करता है और अनुभव ही ज्ञान का साधन है । जॉन डिवी के अनुसार ज्ञान कार्य की उपज है ।

विचारों के प्रति जॉन डिवी का मुख्य योगदान यह विश्वास ही था कि ज्ञान सदैव एक सामाजिक साधन है जॉनडिवी विश्वास करते थे कि ज्ञान एक प्रतीकात्मक व्यवस्था धारण करता है । ज्ञान सूचनाओं हेतु निर्माण का कार्य करता है, निर्णय के लिए तैयार करता है । इससे प्रतीत होता है कि ज्ञान एक प्रतीक है । प्रतीक का तात्पर्य अर्थ है । अत: ज्ञान अर्थ है । ज्ञान भविष्य के परिणाम के लिये पूर्व स्थिति का निर्माण करता है ।

"कानकिन" के अनुसार जॉन डिवी ज्ञान के सम्बन्ध में दो विचार बिन्दुओं से प्रभावित थे । प्रथम यह कि उनका सम्बन्ध ज्ञान के उन मूल्यों से था जो मानव के उद्देश्यों को प्रभावित करता है तथा दूसरे का सम्बन्ध नियन्त्रित अन्वेषण की आन्तरिक प्रक्रिया से है । इस प्रकार वे वैज्ञानिक विधि से सम्बन्ध रखते हैं ।

जॉन डिवी के साधनवादी सिद्धान्त के अनुसार ज्ञान के प्रति कुछ निष्कर्ष प्राप्त किये गये हैं । जो इस प्रकार हैं :-

1- ज्ञान का कार्य एक अनुभव को स्वतंत्रता से दूसरे अनुभव के लिये सुलभ कराना ।

2- ज्ञान अपने सम्बन्धों के द्वारा किसी भी दिशा से किसी तत्व पर पहुँचता है ।

3- ज्ञान के दो पहलू हैं एक नियन्त्रण का दूसरा अर्थ का ।

4- ज्ञान के द्वारा अनुभव का अर्थ सिखाया जाता है ।

5- ज्ञान के कोष का सम्बन्ध अतीत से है और ज्ञान का सम्बन्ध भविष्य के लिये है ।

6- ज्ञान का प्रयोग ज्ञान की वैधता के परीक्षण के लिये है ।और अंतमें

7- ज्ञान का प्रयोग सदैव होता रहता है ।

जॉन डिवी के साधनवादी सैद्धान्तिक ज्ञान का सार यह है कि वह जानने की निरन्तरता पर बल देता है ताकि उद्देश्यपूर्ण क्रियाशीलन पर्यावरण को संशोधित कर सके । हमने यह देखा है कि एच0एच0हार्न का विश्वास था कि यह समाज का जन-तंत्र ही है जिसने ज्ञान के प्रयोजनवादी सिद्धान्त का विकास किया था ३ क्योंकि जनतंत्रात्मक समाज में स्वतंत्र आदान प्रदान और सामाजिक निरन्तरता पाई जाती है । डिवी विश्वास करते है कि सभी निष्कर्ष प्रयोग सिद्ध है और समस्त ज्ञान निरन्तर पुनरा-वृत्ति के आधीन है ।

जॉन डिवी सत्य को स्थिर व अन्तिम नहीं मानते हैं हमने देखा है कि उनके अनुसार जैसे जैसे आवश्यकतायें उत्पन्न होती हैं वैसे वैसे ही हम सत्य का निर्माण करते रहते हैं । दर्शन के क्षेत्र में प्रथमवार परिणाम को सत्य की कसौटी पर परखने के विचार को प्रतिपादित किया गया है ।

जॉन डिवी के ज्ञान के सिद्धान्त के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि सीखने व सिखाने की प्रक्रिया के प्रत्यक्ष सम्बन्ध

पर ज्ञान आधारित है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ज्ञान समाधान विधि पर आधारित है । इस आधार पर पाठ्यक्रम पूर्व निश्चित व पारम्परिक नहीं हो सकता है । डिवी की मान्यता है कि पाठ्यक्रम को विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुसार निर्मित किया जाना चाहिये । अतः पाठ्यक्रम,सम्मिलित करने वाला पाठ्यक्रम है न कि पूर्व निश्चित । ज्ञान का मुख्य कार्य पूर्ण ब्रहम के आदर्श को प्राप्त करना नहीं है । ज्ञान का कार्य पर्यावरण को नियन्त्रित करना है । विश्व में मन प्रक्रिया का एक हिस्सा है । मन दृष्टा नहीं है । अंत में हमने यह भी देखा है कि जॉन डिवी के अनुसार ज्ञान व्यवहारिक है ।ज्ञान मानव की सहायता करता है । ज्ञान जीवन में शिवं की प्राप्ति में मनुष्य की सहायता करता है और मानव को पूर्ण बनाता है, क्योंकि जीवन का शिवम् अस्थिर है और कल क्या हो सकता है कोई नहीं बता सकता है ।

<u>चिन्तन की अवधारणा पर जॉन डिवी के विचार</u> :-

जॉन डिवी के अनुसार चिन्तन एक स्वाभाविक व्यावहार है । विचार व तर्क विशिष्ट शक्तियाँ नहीं हैं । जॉन डिवी का विश्वास है कि चिन्तन की उत्पति के लिये कुछ वस्तुओं का होना आवश्यक है । इस प्रकार प्रत्येक चिन्तन की जड़ में एक समस्या सदैव रहती है । जॉन डिवी ने चिन्तन को एक कार्य के रूप में परिभाषित किया है जिसमें वर्तमान तथ्य दूसरे तथ्य को इस प्रकार प्रस्तुत करता है मानो वह पूर्व तथ्य के आधार पर बाद

वाले तथ्य पर विश्वास प्रकट कर रहा हो । जॉन डिवी के अनुसार समस्या विचारों के साध्य को निश्चित करती है और साध्य चिन्तन की प्रक्रिया को नियन्त्रित करता है । जॉन डिवी विचारों को प्रशिक्षित करने और सुरक्षित करने की आवश्यकता पर भी बल देते हैं । क्योंकि ऐसा न करने पर चिन्तन गलत दिशा में चला जायेगा । चिन्तन द्वारा मानसिक अनुशासन प्राप्त होता है ।

जॉन डिवी विश्वास करते हैं कि शिक्षा के कार्यों मे से शिक्षा का यह भी एक कार्य है कि वह परिस्थितियों का निर्माण करे ताकि उन परिस्थितियों के द्वारा मन व मस्तिष्क को उचित रीति से कार्य मे लगाया जाय और उचित चिन्तन को प्राप्त करने के लिये आदतों का निर्माण किया जाय । चिन्तन वह है जो हमारे अन्दर घटित होता है । डिवी ने अपनी पुस्तक "हाऊ वी थिंक" में चिन्तन को चार प्रकार का कहा है वे हैं मूर्त, अमूर्त, प्रयोगसिद्ध और वैज्ञानिक चिन्तन । महत्त्वपूर्ण विन्दु यह है कि चिन्तन के प्रति जॉन डिवी का दृष्टिकोण उनके साधनवादी दर्शन से अलग नहीं है ।

जॉन डिवी का शिक्षा का सिद्धान्त :-

हमने देखा है कि जॉन डिवी का शिक्षा सिद्धान्त प्रत्यक्ष रूप से उनके दर्शन पर आधारित है, उनका दर्शन और शिक्षा सिद्धान्त दोनों पारस्परिक रूप से अविभाज्य है, क्योंकि बिना दर्शन के शिक्षा बौद्धिक निर्देशन नहीं प्राप्त कर सकती है, और बिना शिक्षा के दर्शन व्यवहारिक प्रयोग में असफल रहता है ।

जॉन डिवी ने शिक्षा की अनेक परिभाषायें दी हैं, उन समस्त परिभाषाओं का केन्द्रिय विचार अनुभव की निरन्तरता ही है, और सुन्दरतर विकास के लिये एक पुनर्रचना है । हमने देखा है कि शिक्षा विद्यालयीय अध्ययन के अर्थ में एक अनुभव का विशिष्ट रूप है । जॉन डिवी ने शिक्षा के सामाजिक पक्ष पर विशेष बल दिया है । समस्त सीखना सामाजिक सम्बन्ध धारण करता है और शिक्षा आवश्यक रूप से एक सामाजिक प्रक्रिया है । अध्ययन के समस्त विषय एक दूसरे से सम्बन्धित है, और सामाजिक महत्व रखते हैं । समस्त विषयों का चुनाव सामुदायिक जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिये ।

शिक्षा के उद्देश्यों के विचार विमर्श के अन्तर्गत हमने देखा है कि जॉन डिवी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य शिक्षा की प्रक्रिया से बाहर नहीं हैं । शिक्षा का कोई उद्देश्य नहीं होता है बल्कि व्यक्ति, माता-पिता और अध्यापकों के उद्देश्य होते हैं । एक सुन्दर शैक्षिक उद्देश्य की विशेषता यह है कि उसे शिक्षित होने वाले की आवश्यकताओं और वास्तविक क्रियाओं पर आधारित होना चाहिये । उद्देश्य में कार्यरत व्यक्तियों की क्रियाओं को सहयोगी विधि मे बदलने की योग्यता होनी चाहिये तथा उद्देश्य को वर्तमान क्रियाशीलनों के क्षेत्र का नाप भी करना चाहिये । एक वास्तविक उद्देश्य में क्रियाशीलन होता है । उद्देश्य क्रियाशीलन को निर्देशित करता है । उद्देश्य को समस्यात्मक परिस्थितियों से स्वयं उत्पन्न होना चाहिये । उद्देश्य को

लचीला होना चाहिये और उद्देश्य दूसरे लक्ष्य के लिए दूसरा कार्य करने के लिये स्वतंत्र होता है ।

हमने देखा है कि जॉन डिवी केवल शिक्षा के तात्कालिक उद्देश्य में विश्वास करते हैं । उन्होंने न तो शिक्षा के अनेक उद्देश्य माने है और न तो कोई अन्तिम सर्वोच्च उद्देश्य मानते हैं । आत्मानुभूति को तात्कालिक उद्देश्य के रूप में ही मान्यता देते हैं ।

जॉन डिवी अनुशासन की पारम्परिक अवधारणा में विश्वास नहीं करते हैं । उनके अनुसार स्वतंत्रता व अनुशासन अन्त: सम्बन्धित अवधारणायें है । सभी प्रकार के अनुशासन की उत्पत्ति अनुभव और रचनात्मक कार्य के करने से होती है । विद्यालय पाठ्यक्रम आदि के सम्बन्ध में जॉन डिवी के विचारों की हमने संक्षेपमेंरूपरेखा प्रस्तुत की है । उद्देश्य,अनुशासन,पाठ्यक्रम,विद्यालय और शिक्षा प्रविधि पर जॉन डिवी के शिक्षा सिद्धान्त में विस्तृत विचार किया गया है । जॉन डिवी ने अध्यापक को एक भिन्न प्रकार की भूमिका का निर्वाह करने का कार्य सौंपा है । अध्यापक का कार्य बालक को समझाना है, बालक को समझाने के लिए उसे मनोविज्ञान का अध्ययन करना पड़ेगा । उसे समस्या सामधान विधि का अनुसरण भी करना चाहिये । उसे पर्यावरण के चुनाव का ज्ञान होना चाहिये तथा बालकों के विकास के लिए उसे पदार्थों का चुनाव भी करना आना चाहिये । उसे बालकों का पथ प्रदर्शक, मित्र, निर्देशक सहयोगी होना चाहिये और अधिकारों के पायदान

पर ज्यादा देर तक नहीं खड़ा रहना चाहिये ।

जॉन डिवी ने पारम्परिक विद्यालयीय अध्ययन का विरोध किया है । शिक्षा को जीवन की तैयारी के रूप में समझाने के जॉन डिवी समालोचक रहे हैं । पहले से निश्चित लक्ष्य के लिये विद्यार्थियों को शिक्षित करना पसंद नहीं करते है । विषय वस्तु को बालकों पर थोपने का विरोध करते हैं । विद्यालय का सुनने व समूह निर्देशन का स्थान बनाने के विरोधी है, क्योंकि इस प्रकार का विद्यालय जीवन से भिन्न होता है । पारम्परिक विद्यालयों की शिक्षा को वे संकुचित शिक्षा मानते हैं । डिवी के उपर्युक्त विद्यालय के प्रति विचारों का हमने वर्णन किया है । डिवी के अनुसार व्यक्तियों की शिक्षा विस्तृत शैक्षिक प्रक्रिया में भाग लेने से प्रारम्भ होती है ।

जॉन डिवी के अनुसार समस्त वाँछित शिक्षा एक नैतिक कार्य है । शिक्षा वास्तव में नैतिक है क्योंकि व्यक्ति के भौतिक रूझानों का दूसरे व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध बनाने में शिक्षा का महत्व है । हमने शिक्षा में जॉन डिवी के उन विचारों को भी देखा है जिसका सम्बन्ध विकास, मन, प्रकृति, समाज और जनतंत्र से है । जॉन डिवी के जनतंत्र और शिक्षा के प्रति विचारों की व्याख्या हमने अनेक अध्यायों में यत्रतत्र दी है ।

जॉन डिवी के विद्यालय के प्रति विचार :-

उनके विद्यालयीय विकास पर जॉन डिवी की पुत्री जेन एम0 डिवी के अनुसार जॉन डिवी के व्यक्तिगत अनुभव एवं

प्रत्यक्ष निरीक्षण का प्रभाव पड़ा था ।

सन् 1896 में जॉन डिवी ने अपना प्रयोगात्मक विद्यालय स्थापित किया था । इस विद्यालय में इन्होंने अपने बहुत से शैक्षिक विचारों का प्रयोग व परीक्षण किया था । डिवी के अनुसार विद्यालय एक विशेष भाव में ही एक संस्था है । विद्यालय के पास कार्य की विधि होती है जो अनुभव के गुणों को प्रभावित करती है विद्यालय का कार्य प्रशिक्षण का है । जो कुछ विशिष्ट वस्तुओं को सिखाता है ।

हमने देखा है कि विद्यालय व्यवहार में आने वाली वस्तुओं की माँगों के भीतर कार्य करता है । विद्यालय का निर्माण उन वस्तुओं को सिखाने के उत्तरदायित्व की कल्पना पर किया गया है जो सभ्यता के विकास के लिए अनिवार्य रही है । पहले विद्यालय समाज के निकट थे किन्तु जैसे जैसे सभ्यता औद्योगिकीकरण की ओर बढ़ने लगी वैसे वैस विद्यालयों का कार्य अधिक औपचारिक होता गया ।

जॉन डिवी ने विद्यालयीय जीवन को सामाजिक जीवन से सम्बन्धित करने पर बहुत बल प्रदान किया है । विद्यालय को समाज के बालकों की मनोरंजनात्मक एवं भावात्मक आवश्यकताओं के प्रति उत्तरदायी होना चाहिये । विद्यालय को समाज की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को अपने में प्रतिबिम्बत करना चाहिये ।

जॉन डिवी के इस मौलिक विचार को भी हमने देखा

है कि अच्छे विद्यालय अच्छे समाज का निर्माण करते हैं, अर्थात वह जितना ही उच्चस्तरीय शिक्षण का अवसर प्रदान करेगा उतना ही समाज का आर्थिक व सामाजिक स्तर ऊँचा होगा ।

विद्यालयीय पाठ्यक्रम के क्रियाशीलनों को जॉन डिवी ने शारीरिक श्रम के रूप में मान्यता दी है और समस्त शारीरिक श्रम को महत्वपूर्ण मानते हैं । व्यवसाय अपनी सामाजिक उपयोगियता के कारण महत्वपूर्ण है । जॉन डिवी की मान्यता है कि व्यवसाय सामाजिक आधार पर स्वयं को संगठित करने के लिये विद्यालयों की सहायता करता है ।

जॉन डिवी विश्वास करते हैं कि प्रत्येक विद्यालय लघु रूप में एक समाज है । और उन क्रियाओं से सदैव क्रियाशील है जो विस्तृत समाज के जीवन को प्रतिबिम्बित करती हैं । उन्होंने ऐसे विद्यालयों की कल्पना की है जहाँ वास्तविक रूप में बालक जिन्दा रह सके और जीवन के अनुभव को प्राप्त कर सके, तथा अपने लिए आनन्द के अर्थ की खोज कर सके । इस प्रकार सामाजिक सम्बन्ध के रूप में विद्यालय एक संस्था है ।

<u>जॉन डिवी के पाठ्यक्रम के सम्बन्ध मे विचार</u> :-

जॉन डिवी विश्वास करते हैं कि एक वास्तविक पाठ्यक्रम जीवन प्रक्रिया को अपनी स्वयं की पूर्णता के लिए स्वतंत्र करने में सहयोग देता है । विषय वस्तु का मनोवैज्ञानीकरण अवश्य होना चाहिये । पाठ्यक्रम को तात्कालिक एवं वैयक्तिक अनुभव में परिवर्तित होने के योग्य होना चाहिये । जॉन डिवी विद्यालय में

निर्देशित होने वाली बालक की समस्त क्रियाओं को पाठ्यक्रम में शामिल करते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि जिन क्रियाओं को पहले सहगामी क्रियायें माना जाता था वे सभी पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आती हैं । पाठ्यक्रम को निश्चित करने में जॉन डिवी दो कारकों को महत्व देते हैं । वे हैं - विद्यालय तथा पर्यावरण । पर्यावरण को जॉन डिवी मनोवैज्ञानिक तथा विद्यालय को सामाजिक कारक मानते हैं । इनमें से कोई भी एक दूसरे के आधीन नहीं है । इनके विचार से पाठ्यक्रम के लिये विषय वस्तु का चुनाव विद्यार्थियों की प्रवृत्तियों, सामर्थ्य एवं समाज की सांस्कृतिक दशाओं को आधार मानकर करना चाहिये ।

जॉन डिवी ने प्रारम्भिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के स्तरों को स्वीकार किया है । प्राथमिक स्तर पर जॉन डिवी ने हाथ,कान व आँख के प्रत्यक्ष प्रशिक्षण हेतु शारीरिक क्रियाशीलन को मान्यता दी है । इसके साथ ही खेल और वाहय शैक्षिक यात्राओं को भी महत्व दिया है । माध्यमिक स्तर पर जॉनडिवी ने पाठ्यक्रम में मुख्य रूप से उन क्रियाओं को शामिल किया है जो बालक को जीवन की आवश्यकताओं कोपूरा करने के योग्य बनावें । इस स्तर पर जॉन डिवी पाठ्यक्रम के चुनाव पद्धति पर बल देते हैं ताकि बालक उन विषयों का चुनाव कर सके जो उनकी वैयक्तिक व व्यावसायिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । उच्च स्तर की विश्व विद्यालयी शिक्षा के कार्य को जॉन डिवी विशिष्ट शिक्षा मानते हैं । डिवी के पाठ्यक्रम में विश्व विद्यालयीय पाठ्यक्रम में

व माध्यमिक पाठ्यक्रम में अन्तर है । वे एक दूसरे से बिलकुल भिन्न है । कुछ लोगों को शिक्षित करने की प्रक्रिया में जॉन डिवी विश्वास नहीं करते हैं जैसा कि प्लेटो के समय में प्रचलन में थी, उन्होंने "जीवित पाठ्यक्रम" पर बल दिया है जो समस्त विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला है ।

पाठ्यक्रम के निर्माण व संगठन में जॉन डिवी ने उद्योग को बहुत महत्व दिया है । पाठ्यक्रम में उद्योग को महत्व प्रदान करना शिक्षा के पारम्परिक शिक्षा योजना से अलगाव प्रकट करता है । "उद्योग" तथा "विज्ञान" किसी भी प्रकार से बौद्धिकता के विकास में बाधक नहीं है । उद्योग मानव अस्तित्व के लिए एक लाभप्रद आवश्यकता है । लाभप्रद कार्य बौद्धिकता को अपने में शामिल किये हुये हैं ।

शिक्षण विधि के सम्बन्ध में जॉन डिवी के विचार :-

शिक्षण विधि के सम्बन्ध में विचार करते समय हमने देखा है कि जॉन डिवी ने प्रचलित शिक्षण विधि के विरुद्ध आवाज उठाई थी । जॉन डिवी के अनुसार किसी भी विषय के पढ़ाने के लिए कोई सर्वोत्कृष्ट जैसी विधि नहीं है । इसलिए उन्होंने समस्या समाधान विधि को सदैव महत्व दिया है । उनका विश्वास था कि जब तक बालक किसी समस्या या कठिनाई में व्यक्तिगत रूप से शामिल नहीं होता है तब तक अर्थ पूर्ण शिक्षण घटित ही नहीं सकता है । जॉन डिवी के अनुसार जानने की पूर्ण विधि केवल समस्या समाधान प्रक्रिया ही है ।

समस्या समाधान विधि जॉन डिवी के "करके सीखने" के सिद्धान्त को सुनिश्चित करती है । "योजना विधि" स्वयं समस्या समाधान विधि पर आधारित है जो प्रत्येक छात्र के योग दान की आपेक्षा रखती है ताकि प्रत्येक छात्र सामान्य प्रयत्न करने के योग्य अपने को सिद्ध कर सके ।

जॉन डिवी यह अनुभव करते है कि अच्छा अध्यापक वह है जो अपने कार्य के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाता है, तथा अपनी विषय वस्तु का पूर्ण ज्ञान रखता है, साथ ही मनो वैज्ञानिक दार्शनिक अवधारणा के रूप में अपने विचारों को प्रकट करता है ।

जॉन डिवी मस्तिष्क की क्रिया को शिक्षण विधि मानते है, क्योंकि उनका विचार है कि मस्तिष्क ही समझता व तथ्यों को संगठित करता है । शिक्षण विधि कला की विधि है । लक्ष्यों के लिए बुद्धिमता से निर्देशन देने की एक कार्य विधि ही शिक्षण विधि है। जॉन डिवी विषयों को सम्बन्धित करके पढ़ाने पर जोर देते हैं। इसलिए शिक्षण में सह-सम्बन्ध या समवाय विधि को महत्व देते हैं । क्योंकि ज्ञान अखण्ड है ।

जॉन डिवी का अनुशासन के प्रति दृष्टिकोण :-

जॉन डिवी "अनुशासन" को व्यक्तित्व का गुण मानते हैं । यह व्यक्तित्व की उपज एवं एक उपलब्धि है । एक परिणाम है । अनुशासन ऐसा कोई तत्व नहीं है जो बाहर से लादा जाय । जॉन डिवी स्वतंत्रता को कार्य करने की शक्ति मानते है ।

अनुशासन व स्वतंत्रता का दूसरा नाम है विधेयात्मक एवं रचना-त्मक शक्ति है ।

स्वतंत्रता के सम्बन्ध में जॉन डिवी के मौलिक विचार अन्य लोगों के विचार से भिन्न है । हमने यह पाया है कि जॉन डिवी स्वतंत्रता का महत्व उसके प्रयोग में देखते हैं, क्योंकि इसमें नैतिक प्रश्न समाविष्ट है । मूल्यों के प्रश्न अन्तर्निहित हैं । हमने डिवी के विचारों से स्वतंत्रता के तीन अर्थ निकाले हैं :-

1- धार्मिक नियन्त्रण की स्वतंत्रता

2- इच्छा शक्ति की स्वतंत्रता

3- धार्मिक स्वतंत्रता ।

हमने देखा है कि बाहर से थोपे जाने वाले अनुशासन के जॉन डिवी विरोधी है । जॉन डिवी के अनुसार सबसे अच्छा अनुशासन वह है जो स्वतंत्रता से ग्रहण किया जाता है । यह तभी होता है जब किसी व्यक्ति ने किसी भी प्रकार के आदेश के अंदर अपने को रखने के लिए स्वेच्छा से निश्चय किया हो । इसीलिए जॉन डिवी ने अनुशासन व रूचि मे घनिष्ठ एकता का अनुभव किया था । डिवी का मौलिक विश्वास है कि समस्त अनुशासन एक परिणाम है न कि कारण । शिक्षा का लक्ष्य बुद्धि का विकास तथा अनुशासित व्यक्ति का निर्माण करना है । कक्षा अनुशासन के रूप में डिवी का विश्वास था कि रचनात्मक क्रियाशीलन अनुशासन को प्रभावित करता है । अनुशासन का लक्ष्य है सामाजिक जीवन और सामाजिक सहयोग की भावना का विकास करना ।

जॉन डिवी की अनुशासन की अवधारणा "सामाजीकृत व्यक्ति" "सोसलाइज्ड इन्डीविजुअल" का निर्माण करना चाहती है। ऐसे व्यक्ति का निर्माण तभी होगा जब विद्यालयीय व्यवस्था उचित, सत्य के नियमों पर आधारित होगी । परीक्षण व मूल्यांकन बालक में "आत्म प्रेरणा" उत्पन्न करता है । जो स्वानुशासन की ओर बालक को प्रेरित करती है । स्वीकारात्मक अनुशासन रूचि पर आधारित है क्योंकि रूचि एक प्रकार से आत्मानुभूति है आत्मानुभूति क्रिया द्वारा होती है क्रिया रूचि पर आधारित है।

रूसो, पेस्टालजी तथा फ्रोबेल से जॉन डिवी की तुलना :-

हमने जॉन डिवी के विचारों की रूसो, पेस्टालजी तथा फ्रोबेल के विचारों से तुलना की है और यह देखने का प्रयास किया है कि जॉन डिवी ने अपने शिक्षा दर्शन में इनके विचारों को कहाँ तक मान्यता दी है और कहाँ तक उनसे असहमति रखते हैं । हमने देखा है कि जॉन डिवी प्लेटो के विचारों का आदर करते है और उनके वाद-विवाद की विधि की प्रशंसा करते हैं । फ्रोबेल, रूसों तथा पेस्टालजी की कृतियों से वे परिचित थे । शिक्षा के विभिन्न पहलुओं के प्रति जॉन डिवी के विचार इन शिक्षा शास्त्रियों के विचारों से सहमति रखते है, परन्तु जॉन डिवी इनके कुछ विचारों से सहमति नहीं रखते हैं । जॉन डिवी के शिक्षा दर्शन का उचित मूल्यांकन करने के लिये ऐसा करना हमने आवश्यक समझा है ।

जॉन डिवी तथा रूसो

मानव प्रकृति के सम्बन्ध में रूसो के विचारों से जॉन डिवी सहमत नहीं है क्योंकि जॉन डिवी ने सदैव जीवन की वास्तविक दशाओं पर जोर दिया है जिनकी उत्पत्ति मानव संघर्ष से होती है । परन्तु जॉन डिवी न्याय, समानता के सिद्धान्त पर आधारित जनतंत्रात्मक समाज की रूसो की विचारधारा से सहमत हैं । रूसो के शिक्षा सिद्धान्त का जॉन डिवी बहुत आदर करते थे क्योंकि एक महान शिक्षा शास्त्री की भाँति रूसो ने शिक्षा को जीवन के निकट लाने का प्रयास किया था और अपने शिक्षा सिद्धान्त का बालक को केन्द्र बनाया था । जॉन डिवी भी प्रत्येक बालक की वैयक्तिकता का आदर करते है । पुस्तकीय ज्ञान का रूसो की भाँति आदर नहीं करते हैं । जिस ज्ञान का जीवन की समस्याओं से सम्बन्ध न हो उसे वे व्यर्थ समझते हैं । जॉन डिवी रूसो के विकास सम्बन्धी विचार से सहमत नहीं है और न तो रूसो के पुनरावृत्ति के सिद्धान्त को ही महत्त्व देते हैं । रूसो की स्त्री शिक्षा के विचार से भी जॉन डिवी सहमत नहीं हैं ।

जॉन डिवी और पेस्टालजी :-

पेस्टालजी रूसो के महान अनुयायियों में मुख्य थे, जिसने प्रथमत: शिक्षा का मनोवैज्ञानीकरण किया था । पेस्टालजी के विचार विभिन्न स्रोतो से अमेरिका पहुँचे थे ।

पेस्टालजी की भाँति जॉन डिवी भी शिक्षा के मनोवैज्ञानीकरण के पक्षधर है, परन्तु उनकी मौलिकता पेस्टालजी से

भिन्न है । जॉन डिवी उद्‌विकासवादी सिद्धान्त से प्रभावित थे । इसी लिये जॉन डिवी ने सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारकों में अनुरूपता की खोज की थी । जॉन डिवी पेस्टालजी की आध्यात्मिक विचारधारा में विश्वास नहीं करते हैं और न तो किसी अलौकिक आदेश के सम्बन्ध में विचार करते है जो मानव चरित्र का अवमूल्यन करते हैं । जॉन डिवी ने पेस्टालजी के शैक्षिक सिद्धांत में वैज्ञानिक आधार पर अनेक त्रुटियों को देखा था । विभिन्न मानसिक शक्तियों के समान रूप विकास का विचार जो शक्ति मनोविज्ञान पर आधारित था उससे जॉन डिवी सहमत नहीं थे, किन्तु अधिकांश विचारों से जॉन डिवी सहमत थे, पेस्टालजी की भाँति डिवी भी स्वतंत्रता, समानता और प्रेम के सिद्धान्त में विश्वास करते थे, परन्तु पूर्ण नैतिक रूप में नहीं बल्कि उस मूल्यों के रूप में जो शिक्षा को सामाजिक सुधार का साधन बन सकें । पेस्टालजी की भाँति जॉन डिवी भी विद्यालय और समाज के मध्य अन्तर नहीं रखना चाहते है, बल्कि बालक की शिक्षा के लिए विद्यालय और समाज तथा गृह में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने के पक्षधर हैं ।

जॉन डिवी और फ्रोबेल :-

फ्रोबेल एक रहस्यवादी आदर्शवादी दार्शनिक थे । उनका दार्शनिक विश्वास ईश्वरीय एकता के आन्तरिक नियम की की अवधारणा पर आधारित था ।

फ्रोबेल ने बाल प्रकृति के क्रियाशीलनों को उद्‌घाटित

करने में ही पाठ्यक्रम के आधार की खोज की थी । इन्होंने शिक्षा में खेल को विशेष महत्व दिया था । बालक के विकास व विभिन्न वस्तुओं के आन्तरिक विकास की व्याख्या करने के लिए इन्होंने एक प्रतीक का विकास किया था । जॉन डिवी फ्रोबेल के विकास की अवधारणा को समस्त शिक्षा के विकास हेतु मील का पत्थर मानते हैं, परन्तु जॉन डिवी के विकास की अवधारणा फ्रोबेल के विकास की अवधारणा से भिन्न है जॉन डिवी ने फ्रोबेल के रहस्यवाद और प्रतीक के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया है । जॉन डिवी फ्रोबेल की शिक्षा के उद्देश्य को अन्तिम व निश्चित मानने की अवधारणा से असहमत है । ऐसा उद्देश्य जो वास्तविक अनुभव से परे हो उसे स्वीकार नहीं करते हैं । जॉन डिवी के लिए शिक्षा सतत प्रक्रिया है जिसका लक्ष्य सुदूरवर्ती भविष्य मे अन्तिम रूप से निश्चित नहीं है । शिक्षा में खेल के महत्व को जॉनडिवी भी मानते हैं । परन्तु डिवी की यह भी चेतावनी है कि विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिये । जॉन डिवी यह अवधारणा रखते है कि फ्रोबेल का प्रतीकों के प्रति प्रेम राजनैतिक व सामाजिक दशाओं के कारण ही था क्योंकि उस काल में जर्मनी में ऐसी ही राजनैतिकवसामाजिक दशा की स्थिति थी.परन्तु जॉन डिवी एवं फ्रोबेल दोनों बहुत से बिन्दुओं पर समान विचारधारण करते थे । दोनों क्रियात्मक क्रियाशीलन पर बल देते हैं । "करके सीखने" के सिद्धान्त के समर्थक हैं, दोनों विद्यालय को जीवित समुदाय मानते हैं ।

जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी :-

जॉन डिवी के विचारों की उपर्युक्त दार्शनिकों से तुलना करने के पश्चात हमने जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के शैक्षिक विचारों के मध्य समानता व विषमता की खोज करने का प्रयास किया है । प्रत्येक अध्याय में यत्र तत्र महात्मा गांधी व जॉन डिवी के विचारों की आवश्यक स्थलों पर तुलना की गई है । इसके अतिरिक्त अध्याय नवम् का प्रयोग दोनों के शिक्षा सम्बन्धी विचारों की तुलना करने में प्रयोग किया गया है और यह देखा है कि दोनों सामाजिक समस्याओं के समाधान में ही शिक्षा का महत्व प्रतिपादित करते हैं । आत्म क्रियाशीलन, शरीर श्रम, स्वानुभूति तथा सामाजिक सेवा द्वारा आत्मानुभूति पर बल प्रदान करते हैं । सत्य के प्रति दोनों के विचार एक तरह से समान हैं । सत्य प्रयोगीय है परीक्षणीय है । सत्य परि-वर्तनशील है । किन्तु महात्मा गांधी का केवल सापेक्षिक सत्य ही जॉन डिवी के सत्य के विचार के समान है, उनका निर्पेक्ष सत्य शाश्वत, चिन्तन व स्थिर है ।

महात्मा गांधी के विचारों का निष्कर्ष :-

कुछ मानवों को ऐतिहासिक घटनायें बनाती हैं जबकि कुछ लोग इतिहास का स्वयं निर्माण करते हैं । महात्मा गांधी ऐसे महापुरूष थे जिन्होंने अपने मस्तिष्क, मन व हृदय की विशेषताओं, गुणों तथा महान कार्यों से अपना स्वयं का मार्ग प्रशस्त कर स्वयं एक इतिहास का निर्माण किया था । उन्होंने एक राष्ट्रीय नेता

के रूप में अपने प्रभावी व्यक्तित्व से नवीन भारत का निर्माण किया था और एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विचारक के रूप में सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया था ।

महात्मा गांधी की महानता :-

इस विश्व में अनेक बुद्धि सम्पन्न मानव ने वैसे तो जन्म लिया है किन्तु कोमल हृदयी मानव का प्राय: अभाव ही पाया जाता है । इसी विशेषता में महात्मा गांधी की महानता का सार निहित है । गांधी जी का प्रादुर्भाव ऐसी परिस्थिति में हुआ था जबकि नैतिक मूल्य तथा मानव की प्रतिष्ठा का अव-मूल्यन हो रहा था । नैतिकता संकटापन्न हो गयी थी । ऐसी विषम परिस्थिति में महात्मा गांधी जी ने नये मूल्यों को व्यवस्थापित करने की आवश्यकता का अनुभव कर सम्पूर्ण मानवता को जाग्रति करने का संकल्प ले लिया था, क्योंकि उन्होंने अनुभव कर लिया था कि मानव को इस विकट स्थिति से बाहर निका-लने का कार्य केवल नये मूल्य ही कर सकेंगे । इसीलिए उन्होंने अकेले ही समाज में व्याप्त समस्त बुराइयों की सामूहिक शक्ति से संघर्ष करते रहे है । विरोध, धमकी, गलत, प्रदर्शनतथा कलंक की परवाह किये बिना सत्य अहिंसा प्रेम का दृढ़ता से अवलम्बन लिये हुये भारतीय राष्ट्र को शान्ति व सुरक्षा प्रदान की तथा अपनी स्वयं की वृतियों को पवित्रता एवं प्रेम की ओर मोड़ने में सफल हुये । अपने मुख पर प्रेम की प्रतिछाया को धारण किये हुये मानव सेवा में अपना बलिदान कर दिया । विश्व ऐसे महान देश

भक्त विचारक एवं दार्शनिक को कभी भी अपनी स्मृति से न हटा सकेगा ।

किसी महान शिक्षक के संदेश को केवल वे ही व्यक्ति सुनने व समझने में समर्थ हो सकते है जो इसे ग्रहण करने के लिए उद्यत हो, क्योंकि सुन्दरता दृष्टा के नेत्रों में होती है । यह बात महात्मा गांधी की शिक्षाओं के सम्बन्ध में नितान्त सत्य है । महात्मा गांधी इस प्रकार के महान व्यक्तित्व वाले प्राणी थे, जिन्हें खोजने में सौ वर्ष लगेगें और समझने में दूसरा सौ वर्ष लगेगा तथा उनकी शिक्षाओं को व्यवहार में लाने के लिए और अन्य सौ वर्ष लगेगें । अतः उन्हें पूर्ण रूप में जानने के लिए सतत अन्वेषण, समझ एवं निरन्तर प्रयत्नशील रहने की आवश्यकता है ।

विश्व की दृष्टि में गांधी जी का स्थान :-

विश्व में गांधी जी के स्थान के सम्बन्ध में भविष्य वाणी करना हमारे लिए तो प्राय: असम्भव ही है परन्तु महात्मा गांधी को महान पथ प्रदर्शकों, शिक्षकों, मनुष्य मात्र के परोपकारियों में एक महान पथ प्रदर्शक, शिक्षक तथा महान परोपकारी मनुष्य के रूप में आने वाले कालों में समझा जाता रहेगा ।

महात्मा गांधी व भारतीय स्वतंत्रता :-

महात्मा गांधी भारतीय स्वतंत्रता हेतु अपनी समस्त क्षमताओं को लगा दिया था । स्वतंत्रता का तात्पर्य महात्मा गांधी के दृष्टिकोण से हिंसा व युद्ध से मुक्ति, लोभ से मुक्ति, वासना द्वेष से मुक्ति प्रदान करने से था । इससे भी बढ़कर समस्त

प्रकार की दासता से मुक्ति यहाँ तक कि सांसारिक बन्धनों से आत्मा की मुक्ति से था। महात्मा गांधी कानून विद होते हुये भी कानून भंग करने वालों में अग्रणीय, उच्च हिन्दू होते हुये भी अस्पृश्यता से अपने को परिचित कराने वालों में आगे, वणिक जाति के होते हुये भी क्षत्रिय की भाँति साहसी तथा ब्राहमण की भाँति अपने शैक्षिक संदेशों को प्रचारित एवं प्रसारित किया था। वे सम्पूर्ण जीवन सत्यान्वेषी रहे हैं। विश्व के महान दार्शनिकों की अन्तिम पंक्ति के महात्मा गांधी वह दार्शनिक थे जिन्होंने लोगों का ध्यान परिवर्तित होने वाले तथ्यों की ओर आकर्षित किया था, और जीवन के अन्तिम सत्य को प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने अपने जीवन काल मे ही मृत्यु को जीतकर जीवन व मृत्यु के अन्तर को समाप्त कर दिया था। विश्व शिक्षक के रूप मे मानव जाति के आध्यात्मिक पीढियों के देवदूत व विश्व नागरिकों के रूप में महात्मा गांधी प्रसिद्ध हो चुके थे।

नये युग में गांधी जी के विचारों की संगति :-

महात्मा गांधी के विचार परिवर्तित होने वाले वैज्ञानिक एवं औद्योगिक युग में पूर्ण संगति रखते हैं। यदि हम उनकी शिक्षाओं एवं दार्शनिक विचारों को अपनाने में समर्थ हो सके तो "रामराज्य" एवं नये स्वर्ण युग का निर्माण कर सकते हैं। 2 अक्टूबर के दिन महात्मा गांधी के जन्मोत्सव पर डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था -"हमारा यह परम कर्तव्य है कि हम उस "लौ" को सदैव जीवित रखे जिसे बापू ने हमारे जीवन मे प्रज्वलित किया

है । उनकी महान सेवा श्रेष्ठ त्याग और अन्तिम बलिदान ने हमें केवल विदेशी शासन से ही मुक्ति प्राप्त करने के योग्य नहीं बनाया बल्कि उस समाज को बनाने के लिये हमें आगे बढ़ाया जिसका स्वतंत्रता के संघर्ष के दिनों में हमने स्वप्न देखा था । हमें जीवन में न समाप्त होने वाले सत्य, अहिंसा, प्रेम व सेवा पर भरोसा कराते हुये देश मे मानव समानता, सामाजिक न्याय के लिये आगे बढ़ने की प्रेरणा दी ।

महात्मा गांधी का दर्शन :-

विश्व सभ्यता में गांधी जी के योगदान के सम्बन्ध में विचार करने के उपरान्त हमें यह देखना है कि वे कौन से तत्व है जिन्होंने महात्मा गांधी जी के दर्शन के निर्माण मे योगदान दिया है । हमने देखा है कि उनका दर्शन आध्यात्मिक एकता के सिद्धान्त से आविर्भूत हुआ है । महात्मा गांधी जी के अनुसार मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य "आत्मानुभूति" है । जिसका तात्पर्य है अन्तिम सत्य का अनुभव करना, मोक्ष प्राप्त करना व ईश्वर का साक्षात्कार करना । महात्मा गांधी के दर्शन का मौलिक तत्व मानव जीवन के लक्ष्य की व्याख्या करना और उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए मार्ग व विधि प्रतिपादित करना है । यदि जीवन का लक्ष्य ईश्वरानुभूति है तो हमें यह ज्ञात होना चाहिये कि उनका ईश्वर से क्या तात्पर्य है ।

गांधी जी की ईश्वर व्याख्या अन्य की अपेक्षा भिन्न है, क्योंकि वे जानते हैं कि "ईश्वर की असंख्य परिभाषायें है,

क्योंकि ईश्वर का प्रकाशन या उसकी अभिव्यक्ति अनन्त है ।"
वे सत्य को ही ईश्वर मानते हैं । "ईश्वर सत्य है" यह कहने
की अपेक्षा " सत्य ही ईश्वर है" ज्यादा उपयुक्त समझते हैं ;
क्योंकि वे समझते थे कि वे नास्तिक जो ईश्वर के अस्तित्व को
नकारते है वे भी सत्य की शक्ति को अस्वीकार नहीं कर सकते
हैं । उनका विचार है कि ईश्वर या सत्य अन्तरस्थ सत्यता नहीं
है बल्कि अतिश्रेष्ठ है । वह विश्व का जीवन ही नहीं बल्कि
इससे भी परे है । वह सृष्टिकर्ता, न्यायी एवं पालन पोषण
करने वाला है ।

महात्मा गांधी मनुष्य व ईश्वर मे विरोध नहीं मानते हैं :-

गांधी जी की मान्यता है कि ईश्वर व मनुष्य में
कोई विरोध नहीं है उनका कथन है :-

"मैं ईश्वर की एकता व पूर्णता में विश्वास करता हूँ,
इसीलिये मैं मानवता की एकता में भी विश्वास
करता हूँ ।"[1]

उनका कथन पुन: यह है कि :-

"मैं अद्वैत में विश्वास करता हूँ,मैं मानव की आवश्यक
एकता में विश्वास करता हूँ,उसी प्रकार सभी जीवित
वस्तुओं में भी ।"[2]

1- यंग इण्डिया-11 पृष्ठ-79 ।
2- - तदैव - पृष्ठ-421 ।

मानव व ईश्वर की आवश्यक एकता पर बल देते हुये गांधी जी "तत्वमसि" के सिद्धान्त के अनुयायी हैं। आत्माकी इस एकता से ही महात्मा गांधी जी इस विश्वास पर पहुँचे थे कि यदि एक मानव आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करता है तो सम्पूर्ण विश्व उसी के साथ उस सीमा तक इस लाभ को प्राप्तउकरता है यदि एक मनुष्य का पतन होता है तो सम्पूर्ण विश्व भी उसी सीमा तक पतिति हो जाता है, यद्यपि बुद्धि को ईश्वर श्रेष्ठ बनाता है। परन्तु गांधी जी का विचार है कि :-

"ईश्वर के अस्तित्व को कुछ सीमा तक तर्क से सिद्ध करना सम्भव है।"[1]

इसीलिये गांधी जी कहते हैं कि "विश्व मे एकता है" एक व्यवस्था है प्रत्येक अस्तित्व युक्त वस्तु तथा जीवित प्राणी को शासित करने के लिए एक ही अपरिवर्तनीय नियम है। यह अन्धा नियम नहीं है क्योंकि कोई भी अन्धा कानून जीवित प्राणी के चरित्र को शासित नहीं कर सकता है। हमें श्री जे0सी0बोस की अनोखी खोज को धन्यवाद देना चाहिये जिसके द्वारा यह सिद्ध किया जा सका है कि पदार्थ भी जीवन धारण करते हैं। इस प्रकार जो नियम व कानून सम्पूर्ण विश्व को शासित करता है वह ईश्वर है। नियम तथा नियम का निर्माता एक ही है।[2]

1- यंग इण्डिया-111, पृष्ठ-870 ।

2- - तदैव - पृष्ठ-871 ।

ईश्वरानुभूति कैसे की जाय :-

यदि जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य आत्मानुभूति है तो प्रश्न उसकी अनुभूति का उत्पन्न होता है कि यह अनुभूति किस प्रकार की जाय । गांधी जी के अनुसार अहिंसा ही एक मात्र वह साधन है जिससे ईश्वर, सत्य व आत्मा की अनुभूति की जा सकती है । आध्यात्मिक एकता की अनुभूति विभाज्य साधनों से नहीं की जा सकती है । गांधी जी इस बात पर बल देते हैं कि साधन को साध्य के अनुरूप होना चाहिये, इसीलिये मानव की तात्कालिक सेवा अनुभूति के प्रयत्न का एक आवश्यक हिस्सा होना चाहिये क्योंकि ईश्वर की प्राप्ति का एक मात्र रास्ता उसकी सृष्टि में उसे देखना है और उसी में एकाकार होना है। अत: समाज सेवा द्वारा ही मनुष्य ईश्वर की अनुभूति कर सकता है । समस्त प्राणियों की सर्वोत्तम भलाई के कार्यों में ही आत्मानुभूति का सारत्व निहित है ।

सत्य और अहिंसा के प्रति गांधी जी के विचार :-

हमने यह देखाहै कि गांधी जी के अनुसार सत्य साध्य है और अहिंसा आत्मानुभूति का साधन है । समस्त मानव की सर्वोत्तम भलाई की अनुभूति तभी की जा सकती है जब व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में सत्य की अभिव्यक्ति हो । प्रत्येक व्यक्ति को सत्यान्वेषी होना चाहिये । इसलिये उसे सत्याग्रही बनना अनिवार्य हो जाता है ।

सत्य अहिंसा पर आधारित नये समाज का विकास :-

महात्मा गांधी जी की प्रबल इच्छा नवीन अहिंसक सामाजिक व्यवस्था का उद्‌विकास करना था । वे चाहते थे कि ऐसे समाज के विकास हेतु प्रत्येक प्राणी को ईश्वरानुभूति के श्रेष्ठ लक्ष्य को सदैव अपने सामने रखना होगा । इस प्रकार से विकसित नया समाज "सर्वोदय समाज" कहलायेगा । जिसमें आध्यात्मिक भावनाओं का बाहुल्य होगा तभी वह समाज आत्मानुभूति के पथ पर अग्रसर हो सकेगा । ऐसा समाज गांधीवादी विचारधारा के अनुसार राज्य विहीन अहिंसक समाज होगा क्योंकि एक राज्य अहिंसा का विरोधी होता है ।

अहिंसक समाज और राज्य में अन्तर :-

हमने यह देखा है कि अहिंसक समाज ईश्वरानुभूति के मार्ग का अनुयायी होता है और राज्य हिंसा पर आधारित होता है । इसलिये शासक युक्त राज्य की प्रमुख प्रकृति वैयक्तिक कार्य के नैतिक मूल्य को समाप्त करना है इसलिए उसमें नैतिकता का अभाव पाया जाता है । क्योंकि :-

> "स्वेच्छा से रहित कोई भी कार्य नैतिक नहीं होता है--- जब तक हम मशीन की भाँतिकार्य करेगें तो नैतिकता का प्रश्न ही नहीं उठता है।यदि हम किसी कार्य को नैतिक कहना चाहते हैं तो उस कार्य को हमें सचेत होकर कर्तव्य की भावना से करना होगा ।"[1]

1- "इथिकल रेलिजन" पृष्ठ-40 ।

राज्य व्यवस्थित एवं संयमित ढंग से हिंसा का द्योतक है । व्यक्ति आत्मायुक्त प्राणी है और राज्य आत्मा विहीन यंत्र है । अत: अहिंसक समाज व राज्य में विरोध है । महात्मा गांधी की अवधारणा से यदि प्रजातंत्रात्मक राज्य में भी शक्ति की वृद्धि होती है तो बाहयरूप से ऐसा शक्ति सम्पन्न जनतंत्रात्मक समाज मानव की भलाई करता हुआ भी व्यक्ति की वैयक्तिकता का विनाश ही करता है और अंतत: मानव जाति का विनाशक हो जाता है, क्योंकि समस्त उन्नति, प्रगति एवं विकास की जड़ व्यक्ति की वैयक्तिकता में ही है ।

महात्मा गांधी जी एक क्रान्तिकारी दार्शनिक हैं :-

महात्मा गांधी जी एक क्रान्तिकारी दार्शनिक हैं, क्योंकि इनके अनुसार एक आदर्श अहिंसक सामाजिक व्यवस्था एक राज्य विहीन लोकतंत्र है । इस प्रकार के लोकतत्र की कल्पना इसके पहले किसी भी सामाजिक, राजनैतिक एवं शिक्षा दार्शनिक ने सम्भवत: नहीं की है । गांधी जी का लोकतंत्र एक ऐसा बौद्धिक क्रान्ति सम्पन्न राज्य है जहाँ सामाजिक जीवन इतना पूर्ण होता है कि वह स्वयं नियमित एवं नियन्त्रित रहता है । गांधी जी की कल्पना के लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना शासक होता है । वह अपने ऊपर इस प्रकार शासन करता है कि वह अपने पड़ोसी के लिए किसी भी प्रकार से बाधक नहीं होता है । इसीलिए इस अहिंसक आदर्श राज्य में कोई राजनैतिक शक्ति

नहीं होती है क्योंकि वहाँ कोई राज्य होता ही नहीं है ।"[1]

इस प्रकार का लोकतंत्र ग्रामीण सत्याग्राहियों का एक संघ होगा । गांधी जी की अवधारणा के अनुसार अहिंसक समाज में ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिष्ठित एवं शान्ति मय सह-अस्तित्व हेतु स्वैच्छिक सहयोग की दशा की उपलब्धि आवश्यक है । यह ऐसा समाज होगा जहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति आध्यात्मिक वास्तविकता के प्रति निरन्तर सचेत रहेगें तथा सादगी एवं त्याग, सेवा एवं बलिदान का जीवन जीयेगें । ऐसा समाज विकेन्द्रित समाज होगा जहाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समानता का साम्राज्य होगा । डा० जी०एन० धवन ने ठीक ही कहा है :-

> "विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता की उत्पत्ति इस तथ्य से होती है कि केन्द्रीकरण का तात्पर्य कुछ व्यक्तियों के हाथों में शक्ति का केन्द्रित होना है, जहाँ व्यक्ति के गलत प्रयोग की सम्भावना बनी रहती है । केन्द्रीकरण जीवन की जटिलताओं की वृद्धि करती है। जिसके कारण प्रत्येक नैतिक क्रियात्मक प्रयत्न में रूकावट उत्पन्न होती है । यह ।केन्द्रीकरण। सूत्रपात, साधन, साहस एवं क्रिया शीलन को निरूत्साहित करती है और स्वशासन के अवसर को उत्पन्न ही नहीं होने देती है तथा अन्याय के विरोध की भावना को दबाती है ।"[2]

महात्मा गांधी और उनका जीविकोपार्जन का आदर्श :-

महात्मा गांधी अयोग्य स्पर्धा की प्रकृति से बचने के लिए ही कुछ सीमा तक वर्ण कानून में विश्वास करते हैं । वर्ण कुछ

1- यंग इण्डिया , 2-7-31

2- धवन जी०एन० "द पॉलिटिकल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गांधी पृष्ठ-26

निश्चित प्रवृत्तियों के कारण कुछ व्यक्तियों के लिए कार्य के कुछ निश्चित क्षेत्रों को निश्चितता प्रदान करता है । इसलिए गांधी जी यह मानते थे कि प्रत्येक वर्ण को अपनी जीविका कमाने के लिए कार्य, श्रम अवश्य करना चाहिये । शारीरिक श्रम दैनिक जीविका के लिये अनिवार्य है ।

महात्मा गांधी का रोटी रोजी का आदर्श असंग्रह एवं समानता की प्रवृत्ति का द्योतक है । गांधी जी के अनुसार प्रेम व संग्रह एक साथ नहीं रह सकते हैं । जहाँ भी सैद्धान्तिक रूप में प्रेम होगा वहाँ असंग्रह की प्रवृत्ति अवश्य पाई जायेगी । इस प्रकार वर्ण कानून रोटी रोजी का आदर्श और असंग्रह पूर्ण आर्थिक एवं सामाजिक समानता को निश्चित करते हैं । असंग्रह एवं रोटी रोजी का आदर्श ग्रामीण हस्तकला को प्रोत्साहित कर ग्रामीण सभ्यता का विकास करती है । गांधी जी के इस नवीन सामाजिक व्यवस्था में शोषण, जमींदारी प्रथा एवं पूँजीवाद का अभाव पाया जाता है । एक अहिंसक समाज केन्द्रित सामूहिक उत्पादन एवं लाभ के लक्ष्य से संगति नहीं रखता है । परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि गांधी जी मशीनीकरण का विरोध करते हैं उनका कथन है कि मैं :-

"सामान्य यंत्रो,औजारों एवं मशीनों का विरोध नहीं करता हूँ जो वैयक्तिक श्रम को बचाते हैं और असंख्य झोपड़ियों के बोझ को हल्का करते हैं ।"[1]

1- यंग इण्डिया-11, पृष्ठ-73 ।

परन्तु मशीनें ऐसी होनी चाहिये जिसे गाँव वाले स्वयं बनायें और प्रयोग करें। ऐसे आत्म निर्भर ग्रामीण समाज में मानव का पूर्ण विकास होगा। ऐसे ग्रामीण समाज में आपसी मतभेद, विचार विनिमय, वार्तालाप, समझ, पंचायत तथा कभी-कभी स्वयं कष्ट उठाकर दूर किये जायेगें। अधिकांश रोग, आत्म नियन्त्रण, इन्द्रियनिग्रह, शरीर श्रम द्वारा स्वयं दूर होते रहेगें। गांधी जी की अवधारणा से समग्र समाज एक वृहद परिवार होगा जहाँ व्यक्तियों का सम्बन्ध अन्योन्याश्रितता पर पुष्ट व दृढ़ बना रहेगा। इसीलिये गांधी जी कहते हैं कि :-

> "मैं व्यक्ति की स्वतंत्रता को महत्व देता हूँ, परन्तु तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिये कि मनुष्य आवश्यक रूप से एक सामाजिक प्राणी है। वह अपनी वर्तमान स्थिति से, सामाजिक प्रगति की आवश्यकताओं से अपनी वैयक्तिकता को अनुकूल बनाना सीखकर ही ऊपर उठा है।"

सम्पूर्ण सामाजिक प्राणी के कल्याण हेतु सामाजिक नियन्त्रण के प्रति स्वेच्छा से समर्पित होने से व्यक्ति और समाज का, जिसका वह सदस्य होता है, दोनों लाभान्वित होते हैं। इस प्रकार का राज्य विहीन अहिंसक लोकतांत्रिक समाज व्यक्ति को अधिक से अधिक विकास के लिये अवसर प्रदान करता है। गांधी जी की धारणा है कि यदि हम राज्य विहीन जनतंत्र की ओर अग्रसर हों तो यथार्थ व्यवहार में पूर्ण अहिंसक राज्य को प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार ---

"सच्चा स्वराज्य कुछ के द्वारा अधिकारों को ग्रहण करने से नहीं प्राप्त होगा, वरन् जब अधिकारी के गलत कार्यों का विरोध करने वाली क्षमता को समस्त प्राणियों के द्वारा प्राप्त करलेने पर ही सच्चा स्वराज्य मिलेगा।"[1]

गांधी जी के अनुसार :-

"वास्तविक गृह शासन केवल तभी सम्भव होगा जब लोगों को रास्ता दिखाने वाली शक्ति सत्याग्रह होगी। इसके विपरीत कोई भी विदेशी शासन ही कहलायेगा।"[2]

गांधी जी नैतिक अधिकार पर आधारित मानव की प्रभुसम्पन्नता में विश्वास करते हैं। ऐसी सामाजिक व्यवस्था हेतु उन्होंने रचनात्मक कार्य को प्रस्तुत कियाहैऔर उसका साधन अहिंसा माना है। महान दार्शनिकों की भाँति महात्मा गांधी जी ने शिक्षा को, अपनी अवधारणा के नये समाज की व्यवस्था को उत्पन्न करने हेतु सर्वशक्तिशाली साधन माना है। इसीकारण दार्शनिक विश्वासों का शिक्षा रचनात्मक पहलू है तथा जीवन के आदर्शों की अनुभूति का व्यवहारिक साधन है।

1- हिन्द स्वराज्य, पृष्ठ-74 ।

2- - तदैव -

महात्मा गांधी की शिक्षा की अवधारणा :-

हमने देखा है कि महात्मा गांधी के अनुसार शिक्षा का तात्पर्य बालक के शरीर, मन तथा आत्मा में निहित समस्त क्षमताओं का सर्वतोमुखी विकास करना है । इनके दृष्टिकोण से साक्षरता न तो शिक्षा का प्रारम्भ है और न तो अन्त है । किसी विद्यालय में केवल साक्षरता का प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति की अपेक्षा चरित्रवान किन्तु अशिक्षित,असभ्य ग्रामीण व्यक्ति विश्व का उत्तमतर नागरिक है । गांधी के दर्शन में व्यक्ति के व्यक्तित्व को शिक्षा के अन्य साधनों की अपेक्षा विशेष महत्व दिया गया है । वे व्यक्ति और समाज दोनों पर विशेष बल देते हैं ।

महात्मा गांधी जी पारम्परिक विद्यालयीय शिक्षण का विरोध करते हैं :-

महात्मा गांधी जी प्रचलित शिक्षा का विरोध करते हैं । ऐसी शिक्षा व्यर्थ है जो विद्यार्थियों को उनके माता-पिता तथा पैतृक व्यवसाय से अलग करती हो । गांधी जी की नयी सामाजिक व्यवस्था शरीर-श्रम विशेषकर आजीविकोपार्जन के शरीर श्रम को तथा इस हेतु आवश्यक क्रियाशीलनों पर बल देती है । जीविकोपार्जन सम्बन्धी शरीर श्रम को अपनी शैक्षिक प्रक्रिया का केन्द्र बनाने की खोज में वे सदैव रत रहे हैं । उनका विश्वास था कि हस्तकला को यान्त्रिक रूप से न पढ़ाया जाय बल्कि इसकी शिक्षा वैज्ञानिक विधि से दी जाय । तभी बालक के मन, शरीर व आत्मा का विकास होगा । वे चाहते थे कि किसी

उत्पादक क्रियाशीलन से सह-सम्बन्धित करके और मुख्यरूप से उसी के माध्यम से विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का समग्र रूप से विकास किया जाना चाहिये । इसके अतिरिक्त हस्तकला-शिक्षा को आत्म निर्भर बनाना चाहते थे । महात्मा गांधी की आत्म निर्भर शिक्षा का तात्पर्य है कि बालक को एक उत्पादक इकाई के रूप में समाज को समर्पित करने में शिक्षा को सफल होना है । हस्तकला से होने वाले उत्पादन से आर्थिक लाभ होगा जिससे शिक्षकों के वेतन का भुगतान भी किया जा सकता है । इस प्रकार गांधी जी ने श्रम की महत्ता, विनम्र व इमानदारी की आजीविका चरित्र परिवर्तन, एवं शिक्षा के साधन के रूप में हस्तकला की कल्पना की है ।

गांधी जी समस्त शिक्षा को जीवन की परिस्थितियों से प्रदान करने पर बल देते हैं :-

महात्मा गांधी जी का विचार था कि समस्त शिक्षा मूर्त जीवन की परिस्थितियों के द्वारा दी जानी चाहिये । शिक्षा हस्तकला द्वारा दी जाय, हस्तकला का चुनाव वहाँ के छात्रों के सामाजिक एवं भौतिक पर्यावरण को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये ताकि जो भी बालक सीखे वह उसके व्यक्तित्व में घुल मिल जाय । जब बालक सक्रिय होकर ज्ञान प्राप्त करता है और समझ से इसका प्रयोग करता है व अपने सामाजिक पर्यावरण को ठीक से नियन्त्रित करता है तब वह नागरिक के कर्तव्य व अधिकार से भिज्ञ हो जाता है ।

महात्मा गांधी जी के अनुसार शिक्षा की योजना बनाते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिये ताकि उसमें मानव के सम्पूर्ण जीवन को सम्मिलित किया जा सके । समग्र बेसिक शिक्षा कुछ निश्चित वंशानुगत कठिनाईयों के कारण तुरन्त राष्ट्रीय स्तर पर लागू नहीं की जा सकती है । बेसिक शिक्षा का प्रथम सिद्धान्त यह है कि कम से कम एक स्तर तक समग्र नागरिकों के लिये चाहे पुरुष हो या स्त्री शिक्षा अनिवार्य व सार्वजनिक होनी चाहिये तथा बालक की मातृभाषा ही शिक्षण का माध्यम हो ।

इस योजना का दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि समस्त शिक्षा किसी हस्तकला के माध्यम से दी जाय ।

महात्मा गांधी के शिक्षा के उद्देश्य :-

गांधी जी ने शिक्षा के उद्देश्यों को दो वर्गों में विभक्त किया है । :-

1- तात्कालिक उद्देश्य तथा

2- अन्तिम या सर्वोच्च उद्देश्य ।

तात्कालिक उद्देश्य अनेक हैं, क्योंकि उनका सम्बन्ध जीवन के विभिन्न पहलुओं से है । अन्तिम उद्देश्य के रूप में इन्होंने ईश्वरानुभूति को रखा है । यही शिक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य है । यह आत्मानुभूति की ओर ले जाती है । इसमें ससीम का असीम में विलय हो जाता है । इस अन्तिम उद्देश्य में सभी तात्कालिक एवं आश्रित उद्देश्य सम्मिलित हैं । जैसे पूर्ण जीवन के

लिए तैयारी, पर्यावरण से अनुकूलन, व्यक्ति की प्रकृति की पूर्णता, चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व का समनरूप से विकास ।

महात्मा गांधी जी शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्य पर बल देते हैं :-

कुछ लोगों की मान्यता है कि महात्मा गांधी जी का शिक्षा का उद्देश्य वैयक्तिक है तथा कुछ लोग सामाजिक मानते हैं, परन्तु गांधी जी के साहित्य के अध्ययन से हमने यह देखा है कि महात्मा गांधी ने शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों में सम्बन्ध स्थापित किया है । सामाजिक सेवा के संदर्भ में ही वैयक्तिक विकास का महत्व माना है । गांधी जी की मान्यता है कि वैयक्तिक विकास एवं सामाजिक प्रगति दोनों एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं, क्योंकि वैयक्तिकता का विकास केवल सामाजिक पर्यावरण में ही होता है जहाँ सामान्य क्रियाशीलन और अभिरूचि की पूर्ति होती है । गांधी जी ने अपने शिक्षा सिद्धान्त व प्रायोगीय व्यवहार से यह प्रकट किया है कि सामाजिक सेवा तथा आत्मानुभूति में कोई संघर्ष नहीं है ।

महात्मा गांधी जी के शिक्षा सिद्धान्त का विकास प्रयोग पर आधारित है :-

गांधी जी का शिक्षा सिद्धान्त "फोनिक्स बस्ती, टालस्टाय फार्म, साबरमती आश्रम और सेवाग्राम में शिक्षा पर किये गये प्रयोग की उपज है । इस प्रकार उनका शिक्षा सिद्धान्त वस्तुनिष्ठ है न कि व्यक्तिनिष्ठ, प्रयोगात्मक है न कि सैद्धान्तिक

है । इसमें वैज्ञानिक रुख की अधिकता है । गांधी जी का जीवन व शिक्षा दर्शन तीन महान शिक्षकों की शिक्षाओं एवं कृतियों से प्रभावित है । वे हैं रामचन्द्र भाई, टालस्टॉय एवं रस्किन । उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि वास्तविक एवं प्रभावी शिक्षा कर्म से विरत नहीं है । और न हो सकती है । फोनिक्स बस्ती में अपने शैक्षिक विचारों का प्रयोग कर शिक्षा को श्रम पर आधारित किया था । सन् 1908 में प्रथम बार अपने शैक्षिक विचारों को "हिन्द स्वराज्य" में लिखित रूप से प्रकट किया था । सन् 1911 में इन्होंने टालस्टॉय फार्म की स्थापना की थी । यह फार्म एक परिवार था, जिसमें गांधी जी का स्थान पिता तुल्य था । यहाँ पर इन्होंने हृदय की संस्कृति अथवा चरित्र निर्माण को शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान दिया था । महात्मा गांधी जी का मुख्य लक्ष्य विद्यार्थियों का सर्वतोमुखी विकास करना था । सन् 1915 में भारत लौटकर साबरमती स्थान पर साबरमती आश्रम की स्थापना की थी । यह वह स्थान है जहाँ पर बेसिक शिक्षा के बीज वपन किये गये थे । सन् 1932 में यरवदा जेल में इन्हें अपने विचारों को लिखित रूप में प्रकट करने का अवसर मिला था । सन् 1934 में सक्रिय राज-नीति से अवकाश प्राप्त करने के बाद इन्होंने अहिंसा पर अधिक बल देना प्रारम्भ कर दिया और उसे रचनात्मक कार्यों में प्रकट करने लगे । सन् 1937 मे वर्धा योजना का विकास किया जो उनके शैक्षिक दर्शन का प्रतीक है । वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे गये थे

कि समस्त शिक्षा को किसी उद्योग या हस्तकला के माध्यम से दी जानी चाहिये ।

अप्रैल 1939 में सेवाग्रामा में हिन्दुस्तानी तालीम संघ की उत्पत्ति हुई जिसमें बेसिक शिक्षा के क्षेत्र में गहन अन्वेषण किया गया और अनेक संस्थाओं ने बेसिक शिक्षा में प्रयोग प्रारम्भ कर दिया था, यहाँ तक कि बाम्बे, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, और मध्य प्रदेश की सरकारों ने बेसिक विद्यालयों और प्रशिक्षण केन्द्रों की शुरुआत कर दी थी ।

गांधी जी के शिक्षा दर्शन पर अन्य दार्शनिक प्रवृत्तियों का प्रभाव :-

महात्मा गांधी जी के दर्शन का अध्ययन करके हमने यह देखा है कि प्रकृतिवाद, आदर्शवाद एवं प्रयोजनवाद की दार्शनिक प्रवृत्तियाँ इनके दर्शन में अन्तर्निहित है । किन्तु ये प्रवृत्तियाँ इनके दर्शन में अलग और स्वतंत्र रूप में नहीं पाई जाती हैं बल्कि वे एकता में आबद्ध हैं । इनके दर्शन की मौलिकता आदर्शवादी है और प्रकृतिवाद एवं प्रयोजनवाद सहयोगी हैं ।

महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन के मुख्य पहलू :-

हमने देखा है कि महात्मा गांधी जी के शिक्षा दर्शन के महत्वपूर्ण पहलूओं में शरीर श्रम केन्द्रिय स्थान रखता है । मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इनका दर्शन बौद्धिक एवं अनुभव के व्यवहारिक तत्वों में सन्तुलन स्थापित करने का प्रयास करता है तथा शरीर श्रम सामान्य रूप से शरीर व मन को शिक्षित करने का एक साधन हो जाता है । सामाजिक दृष्टिकोण से शरीर श्रम

श्रम की प्रतिष्ठा के सच्चे भाव को और मानव की रूचियों की घनिष्ठता के भाव को अपने में शामिल करता है जिनका नैतिक एवं व्यवहारिक महत्व एवं लाभ है । शरीर श्रम विद्यार्थियों में बन्धुत्व, सहयोग और सेवा के गुणों का विकास करता है, जो शान्तिमय सामाजिक जीवन के लिये अनिवार्य शर्तें हैं । आर्थिक दृष्टिकोण से शरीर श्रम विद्यार्थियों में स्वावलम्बन एवं आत्म निर्भरता का विकास कर अर्थोपार्जन के योग्य बनाते हुये शैक्षिक प्रक्रिया को सर्वाधिक वास्तविकता प्रदान करता है तथा भौतिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट कर विद्यार्थियों को जीवन के उच्च मूल्यों की प्राप्ति हेतु प्रेरित करता है । यहाँ तक कि आत्मा-नुभूति रूपी जीवन के अन्तिम लक्ष्य की ओर समग्र समाज को आगे बढ़ाता है ।

महात्मा गांधी जी का धर्म के प्रति दृष्टिकोण :-

गांधी जी के अनुसार धार्मिक संस्थाओं को चन्दा देना तथा धार्मिक रीति रिवाजों को मनाना ही धर्म नहीं है; बल्कि सत्य, प्रेम, अहिंसा, न्याय जैसे पूर्ण मूल्यों में अपरिहार्य रूप में विश्वास करना धर्म है । इन शाश्वत मूल्यों को सिद्धान्त रूप में स्वीकार करना धर्म नहीं है बल्कि उनको जीवन में अनुभव करने का प्रयास करना और जीवन शैली में ढालना धर्म है । महात्मा गांधी जी के अनुसार सच्चा धर्म और सच्ची नैतिकता अभिन्न है । हम देखते हैं कि भारत में धार्मिक शिक्षा की कठिनाइयों से गांधी जी पूर्णत: सचेत थे और उनका ऐसा

विचार था कि धार्मिक शिक्षा की अवहेलना करना समाज के नैतिक मूल्यों को नष्ट करना है । महात्मा गांधी जी विश्व के समस्त धर्मों के सार्वभौमिक एवं समान तत्वों की शिक्षा प्रदान करने को मौलिक आधार देना चाहते थे । साथ ही समग्र मानवता को सत्य व अहिंसा के मौलिक गुणों में प्रशिक्षित करना भी चाहते थे । यही कारण है कि गांधी जी ने बड़ी बुद्धिमता से वर्धा योजना से वर्गवाद तथा जातिवाद को निकाल दिया है । उनके अनुसार सर्वोत्तम, सुन्दरतम और सर्वाधिक प्रभावी धार्मिक शिक्षाके प्रतीक स्वयं चरित्रवान अध्यापक हैं ।

भाषा समस्या :-

भाषा समस्या के प्रति महात्मा गांधी जी का विचार मनोविज्ञान एवं अध्यापन विधा की आधुनिक विधाओं से मेल रखता है । गांधी जी का विचार था कि अंग्रेजी न तो हमारी मातृभाषा हो सकती है और न शिक्षा का माध्यम । जिन्हें भाषा विज्ञान के ज्ञान में रूचि है उन्हें ही वे अंग्रेजी भाषा पढ़ने के लिए उत्साहित करते हैं । अंग्रेजी भाषा की उपादेयता उनकी दृष्टि में केवल विश्व भाषा एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के रूप में है । महात्मा गांधी देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दुस्तानी भाषा अथवा उर्दू लिपि को ही राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करना चाहते हैं । वे इन्हें विद्यालयीय पाठ्यक्रम में अनिवार्य विषय के रूप में रखने के पक्षधर हैं । शिक्षा के

सभी स्तरों पर क्षेत्रीय भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने पर बल देते हैं ।

महात्मा गांधी शिक्षा के सामाजिक पक्ष पर जोर देते हैं :-

सामाजिक शिक्षा पर बल देने वाले विश्व के प्रमुख सामाजिक शिक्षा शास्त्रियों में गांधी जी का स्थान प्रमुख है । असंख्य लोग उन्हें मानव जाति का देवदूत समझते हैं । उनका जीवन स्वार्थ रहित सेवा का उदाहरण है । उन्होंने असंख्य नर-नारियों को अंध विश्वास एवं अज्ञानता के क्षेत्र से निकाल कर ऊपर उठाया । महात्मा गांधी ने जो कुछ अपने जीवन में अनुभव किया और प्रयोग करके उपलब्ध किया था और अपने व्यक्तिगत जीवन में अभिव्यक्त किया था वैसा उदाहरण विश्व के इतिहास में खोजना कठिन है । महात्मा गांधी ने अपनी कृतियों, भाषणों एवं व्यक्तिगत उदाहरणों से ज्ञान के प्रकाश को देश के सुदूरवर्ती कोनों में भी पहुँचाया था । 40 करोड़ जन मानस को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने में तथा उन्हें उनके अधिकार व कर्तव्य के प्रति जागरूक करने में महान योग-दान दिया । उन्हें सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक बंधनों से मुक्त किया । वे ऐसे व्यवहारिक दार्शनिक थे जिन्होंने अपने उच्चादर्शों, मनोवैज्ञानिक समझ तथा नीति सम्बन्धी सिद्धान्तो को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यवहृत किया था । शिक्षा के क्षेत्र में महात्मा गांधी के कार्यों का महत्व उनके सम्पूर्ण जीवन की असंख्य उपलब्धियों से भी अधिक है । इन्होंने

रूसों की शिक्षा की अवधारणा, पेस्टलजी की व्यवहारिक बुद्धिमता, फ्रोबेल की रहस्यवादी आदर्शवाद का एकीकरण कर जॉन डिवी की भाँति शैक्षिक विचारों को प्रयोजनवादी धरातल पर स्थिर किया था । समाज के प्रत्येक पक्षों पर बल दिया था । शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया माना । बेसिक शिक्षा एक नूतन प्रकार के मानव के निर्माण पर बल देती है ।

<u>बेसिक शिक्षा योजना नई सामाजिक व्यवस्था से भिन्न अन्य प्रकार के मानव के निर्माण पर बल प्रदान करती है</u> :-

महात्मा गांधी की नई तालीमी शिक्षा योजना का लक्ष्य एक नई सामाजिक व्यवस्था को विकसित करना ही नहीं था, बल्कि एक भिन्न प्रकार के मानव का निर्माण करना था । इनके नये समाज के लिये ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है जो न तो कुछ रखना चाहता है और न तो उसे किसी वस्तु की कमी होती है । वह कुछ चाहता नहीं है और न तो सांसारिक धन शक्ति के समक्ष झुकता ही है । उसे तो केवल त्याग व सेवा में ही आनन्द प्राप्त होता है । स्वास्थ्य एवं जीवन यापन के लिए तथा प्रसन्नता के लिए जो आवश्यक होता है उसी में संतोष धारण करता है । जो प्रत्येक क्षेत्र में तर्क, न्याय, व सत्य से प्रेरित हो कार्यरत रहता है । वह देश व समुदाय के प्रति समर्पित रहता है । नई तालीम व्यक्ति की वैयक्तिता का आदर करती है । बेसिक शिक्षा मुख्य रूप से गाँव, उत्पादक कर्म, सहयोगी प्रयत्न और न्याय पर आधारित

है । यह राष्ट्रीय एकता व अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध की शिक्षा है । प्राचीन परम्परागत शिक्षा विश्व में व्याप्त संघर्ष व विरोध को समाप्त कर सुन्दर सामाजिक भावना का विकास करने में पूर्णत: असफल रही है । हमारी विश्व शान्ति एवं सहयोग की आकांक्षा की आशा बेसिक शिक्षा में निहित है । अत: यह स्पष्ट है कि शान्ति पूर्वक सह-अस्तित्व के लिये हमें बेसिक शिक्षा का सहारा लेना पड़ेगा । हमें रासायनिक हथियारों तथा बेसिक शिक्षा में से एक का चुनाव करना पड़ेगा । बिना आध्यात्मिकता के विकास के मानवता का विनाश निश्चय है । सभी को एक साथ लेकर चलाने वाली शिक्षा का अभाव हो गया है तथा समस्त अभिकरण अब असफल हो चुके हैं । सर्वत्र एक रूपता व अनुरूपता लाने में नयी तालीम वस्तुत: एक शैक्षिक नमूना है ।

शिक्षा व समाज की पुनर्रचना में बेसिक शिक्षा की संगति :-

हम जानते हैं कि दो विश्व युद्धों ने मानव जाति के भौतिक एवं सामाजिक जीवन की प्रगति को किस प्रकार अवरुद्ध कर दिया था । हमारी प्राचीन परम्पराओं, विश्वासों, रीति रिवाजों एवं संस्थाओं को नष्ट कर दिया था । इस प्रकार की परिस्थिति ने हमारे मानव परिवार की जातियों व अन्य के लोगों के समक्ष अपनी संस्कृति एवं अपने जीवन को तर्क एवं समानता के आधार पर पुनर्रचना हेतु एक महान अवसर प्रदान किया । पुनर्रचना हेतु एक महान अवसर प्रदान किया । हमने

देखा है कि बेसिक शिक्षा में वह सामर्थ्य है कि वह वस्तुओं को इस प्रकार स्थापित कर सकती है कि मानव समूह अपनी विरासत को प्राप्त कर सकता है । हमारे राष्ट्रीय पुनर्जन्म एवं पुनर्रचना में बेसिक शिक्षा की भूमिका महत्त्वपूर्ण है । बेसिक शिक्षा का प्रथमतः सम्बन्ध भारत के पुनर्निर्माण एवं पुनर्जन्म से ही है । विदेशी शासन में देश की ऐन्द्रिक एकता का अनुभव नहीं किया जा सका था । यहाँ तक कि सामाजिक निर्देशन के अंगों में, परामर्श एवं नियन्त्रण में, और समाज के सदस्यों के पारस्परिक सहयोग के घनिष्ठ सम्बन्ध को स्थापित न किया जा सका था । प्रत्येक मानव समूह में स्वच्छन्दता एवं विरोधी प्रवृत्तियों का बाहुल्य हो गया था । स्वतंत्र भारत के विकसित होने वाले राज्यों के तथा जैवकीय समाज के विकास में रुकावटे स्पष्ट दिखाई दे रही थी । महात्मा गांधी ने यह अनुभव कर लिया था कि समाज का विकास मानव शरीर के अंगों की भाँति ही होता है । इसलिए समाज के विकास हेतु व्यक्ति के विकास का महत्व है । गांधी जी की धारणा थी कि वे व्यक्ति, जो समाज का निर्माण करते हैं यदि उत्तमतर व्यक्ति बन सकें और उनकी मूलभूत प्रवृत्तियों को उचित दिशा में पुष्पित व विकसित किया जाय तो समाज स्वयं संगठित हो जायेगा । हम जानते है कि व्यक्ति व समाज दोनों अपने आन्तरिक संघर्षों को निश्चित करने व विजित करने का प्रयत्न करते हैं । ऐसा करने पर ही उन्हें एक उच्च सन्तुलित जीवन की उपलब्धि होती है ।

तभी समाज अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है । समाज के प्रत्येक व्यक्ति के विकास पर ही समाज का उचित विकास सम्भव है । व्यक्ति और समाज अलग नहीं हैं । समाज अपनी प्राचीन धरोहर को व्यक्ति को प्रदान करता है । व्यक्ति उसमें विकास कर सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ करता है ।

जनतंत्रात्मक शिक्षा के प्रति महात्मा गांधी जी के विचार :-

महात्मा गांधी की विचारधारा के अनुसार एक जनतंत्रात्मक समाज व्यक्तियों का आध्यात्मिक समुदाय है, जो समानता एवं स्वतंत्रता का हामी होता है । इस प्रकार के समाज में शिक्षा की व्यवस्था का लक्ष्य, सामाजिक कुशलता, आध्यात्मिकता, समानता, स्वतंत्रता एवं न्याय जैसी विशेषताओं को उद्घाटित करना है । प्लेटो समाज को स्वयं एक विद्यालय मानते थे । विद्यालय का चेतन व अचेतन प्रभाव समाज के सदस्यों के चरित्र,मन व मस्तिष्क को निरूपित करते हैं । इस भाव में शिक्षक व शिक्षार्थी एकता के प्रतीक होते हैं और समाज स्वयं आत्म शिक्षण का अंग हो जाता है । शैक्षिक प्रक्रिया के दो पहलू हैं - सामाजिक विरासत की रक्षा का और इसके विकास का । बालक स्वाभाविक क्षमताओं एवं प्रकृति से युक्त एक जैवकीय प्राणी है । यदि इन्हें विकसित होने वाले अनुभव के नियन्त्रण में न रखा जाय तो सामाजीकरण की प्रक्रिया अपूर्ण, अस्थिरएवं लचीली बनी रहेगी; क्योंकि अनुभव के नियन्त्रण से बालक की प्रकृति, चिन्तन एवं कार्य की विधि संगठित होती है ।

जो पूर्ण सामाजीकरण को उत्पन्न करती है । इसीलिये सभी समाज चाहे वह सभ्य हों या असभ्य, समाज द्वारा मान्य प्रतिमानों के अनुसार विद्यार्थियों, बालकों, बालिकाओं एवं युवकों को बनने के लिये विशेष प्रबन्ध करते हैं । जहाँ तक सम्भव होता है विद्यालय युवकों में लाभप्रद आदतों का निर्माण करते हैं । भारत में शिक्षा को लोकतंत्र के सन्दर्भ में जब हम देखते हैं हमें ज्ञात होता है कि हमारे जन नेताओं ने स्वतंत्र व धर्म निरपेक्ष जनतंत्र के मार्ग पर चलने वाले युवको के निर्माण का चुनाव किया है । ऐसा चुनाव बुद्धियुक्त है क्योंकि ऐन्द्रिक समाज को तार्किक ढंग से इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अवश्य आगे बढ़ना चाहिये ।

महात्मा गांधी जी चाहते हैं कि विद्यालय व समाज को एक जैवकीय हिस्सेदारी में प्रवेश करना चाहिये । समाज, आर्थिक व नैतिक लक्ष्य के लियेकार्य करने वाले स्वतंत्र व्यक्तियों का स्वतंत्र समुदाय है । विद्यालय को स्वतंत्र शिक्षक एवं विद्यार्थियों की एक स्वतंत्र सभा के रूपमेंहोना चाहिये । तभी स्वतंत्र पर्यावरण में उनका सम्यक सामाजिक विकास सम्भव हो सकेगा । विद्यालय ऐसा होना चाहिए, जहाँ पर प्रत्येक विद्यार्थी अपनी जन्मजात योग्यताओं को अधिक से अधिक उद्घाटित कर सके । गांधी जी के अनुसार एक स्वतंत्र व्यक्ति वह है जो लाभप्रद व्यवसायों में सक्रिय भाग लेकर केवल शारीरिक व मानसिक योग्यता ही नहीं प्राप्त करता वरन् न्याय, उत्तरदायित्व

और पारस्परिक सहयोग के भाव को भी सीखता व विकसित करता है । वह उस विद्यालयीय सामाजिक संस्था से नागरिकता एवं नैतिकता का प्रशिक्षण ग्रहण करता है । वह साहित्य, कला, विज्ञान एवं सामाजिक विषयों के माध्यम से सत्यं शिवं सुन्दरं जैसे शाश्वत मूल्यों को समझता, अधिगम करताएवं व्यवहारोपयोगी बनाता है । बेसिक शिक्षा की नई योजना इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बनाई गई है ।

सचेतन एवं शिक्षित मानव समूह ही जनतंत्र का सार है । महात्मा गांधी इस तथ्य से पूर्ण भिज्ञ थे कि मानव समूह ही शासन करता है ऐसा नहीं है कि केवल वह शासित ही होता है । जनतंत्र जनता की सम्मति की अपेक्षा रखता है । इसलिए जन समूह को बुद्धिमान, ज्ञानी, पौरुष युक्त एवं सूक्ष्म ग्राही होना चाहिये क्योंकि इन गुणों से युक्त जनता के अभाव में, जनता द्वारा, जनता के लिए जनता की सरकार रूपी लोकतंत्र का कुछ भी अर्थ न होगा बल्कि वह एक समूह का शासन मात्र होगा । भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्रात्मक राष्ट्र है । इसलिये यहाँ के निवासियों को शिक्षित होना अनिवार्य है । भारतीय स्वतंत्रता तथा गणतंत्रीय विधान ने हमें अपनी सरकार के प्रति विशेष जिम्मेदार बना दिया है । व्यस्क मताधिकार लोकतंत्रीय प्रक्रिया का स्तम्भ है । लोकतंत्र की नींव तब तक सुदृढ नहीं हो सकती जब तक प्रत्येक मतदाता अपने विशेषाधिकार के प्रयोग को समझने के लिए पर्याप्त शिक्षित न हो । अज्ञानता एवं अशिक्षा के

कारण मतदाता राजनीतिज्ञों के हाथ की कठपुतली हो जाते हैं। हमारी स्वतंत्रता बुद्धिमान औद्योगिक कारीगरों एवं कृषकों एवं कृषकों के समूह में निहित है । उच्च शिक्षा प्राप्त देश के व्यक्तियों के ऊपर केवल जनतंत्र नहीं टिक सकता है । इस समस्या का समाधान बेसिक शिक्षा के प्रारम्भ तथा बाद में समग्र नई तालीम में है । इसलिये बेसिक शिक्षा को वास्तविकता के रूप में बदलने के लिये प्रयत्न करना चाहिये । गाँधी जी के अनुसार नई तालीम वास्तव में कार्य व धन पर आधारित शिक्षा पद्धति नहीं है बल्कि यह तो व्यक्ति को आत्म निर्भर बनाती है । वास्तव में बेसिक शिक्षा गाँव की सच्ची सम्पत्ति है ।

बेसिक शिक्षा को व्यवहार मे लाने मे कठिनाइयाँ :-

बेसिक शिक्षा को लागू करने में अनेक कठिनाइयाँ एवं रूकावटें है । हमने देखा है कि राष्ट्र के निर्माण की प्रक्रिया एवं राष्ट्रीय योजना की व्यवस्था में शिक्षा का महत्व पूर्ण योग दान होता है । इसलिए शिक्षा पर हमें प्राथमिकता देनी चाहिये ।

अ- आर्थिक समस्या :-

बेसिक शिक्षा को लागू करने में आर्थिक प्रश्न विशेष चिन्ता का कारण है । हमें आर्थिक कमी को शैक्षिक पुनर्रचना की योजना में रूकावट न डालने दिया जाय । यदि यू०एस०ए०. फिलीपाइन्स में 2 से 55 प्रतिशत तक साक्षरता का विकास किया गया है, यू०एस०एस०आर० ने अपने पिछड़े हुये लोगों की निरक्षरता को 75 प्रतिशत से घटाकर 8 प्रतिशत तक कर दिया है.

चीन व तुर्की ने इस जटिल समस्या को सबसे कम समय में ही हल कर लिया है तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि हम भारत को साक्षर न बना सकें । शिक्षा की केन्द्रीय सलाहकार समिति ने कहा है :-

> खर्च वास्तव में बहुत भारी है परन्तु युद्ध के अनुभव बताते हैं कि जब प्रमुख आवश्यकता का स्थापन हो जाता है तो इस कार्य के लिये जिस साधन की आवश्यकता पड़ती है वह धन प्राप्त हो जाता है ।

प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव :-

शिक्षा के प्रसार के मार्ग मे सबसे प्रमुख बाधा धन की ही नहीं है बल्कि प्रशिक्षित अध्यापकों के अभाव की है । शिक्षण व्यवस्था को आकर्षक एवं रुचिकर बनाने के लिए प्रशिक्षित अध्यापक की आवश्यकता है । अध्यापकों के सामाजिक जीवन में सुधार की आवश्यकता है ।

इस प्रकार हमने महात्मा गांधी के दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारों को देखा और अनुभव किया कि पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि एवं अनुशासन के सम्बन्ध में महात्मा गांधी का विचार क्रमशः शिक्षा प्रधान पाठ्यक्रम,हस्तकला तथा समवाय केन्द्रित शिक्षण विधि एवं स्वानुशासन,आत्म नियत्रंण व स्वैच्छिक भावना पर अनुशासन आधारित है । इन सभी के सम्बन्ध में गत अध्यायों में सविस्तार वर्णन किया गया है ।

महात्मा गांधी के विचारों की जॉन डिवी के

विचारों से तुलना करने हेतु हमने नवम् अध्याय का संयोजन किया है । हमने यह देखा है कि महात्मा गांधी के अधिकांश विचार जॉन डिवी के विचारों से साम्य रखते हैं किन्तु यत्र तत्र महात्मा गांधी के विचार जॉन डिवी की अपेक्षा विशेष अर्थ युक्त है । जॉन डिवी के विचारों के अतिरिक्त रूसो, पेस्टालजी एवं फ्रोबेल के विचारों को भी महात्मा गांधी के विचारों के संदर्भ मे देखने का प्रयास किया गया है ।

अन्त में अन्वेषक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि अभी जॉन डिवी एवं महात्मा गांधी के अन्य क्षेत्रोंमेंअभिव्यक्त किये गये विचारों का अध्ययन किया जा सकता है और इनके विचारों के प्रति उचित दृष्टिकोण का निर्माण किया जा सकता है । वास्तव में दोनों शिक्षा शास्त्री अपने काल के प्रमुख एवं प्रतिष्ठालब्ध शिक्षा दार्शनिक, विचारक एवं चिन्तक हैं । इनके विचार हमें सदैव प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करते रहेगें ।

BIBLIOGRAPHY

John Dewey's Writings

1. "Reconstruction In Philosophy". (Henry Holt. 1920, Enlarged Paper back. Beacon Press 1957).
2. "Experience and Nature".(Open court Publishing Co. 1925; Dover Books 1958).
3. "Human Nature and Conduct".(Henry Holt 1922).
4. "Experience and Nature".(W.W. Norton And Company New York 1920).
5. "Philosophy And Civilization".(Minton, Balch, 1931; Paper back ed., Capricorn Books 1963).
6. "The Influence of Darwin on Philosophy and other Essays In Contemporary Thought (Henry Holt 1910, Peter Smith 1951)".
7. "How we Think".(Boston D.C. Heath 1910 And Revised Edition Heath 1933].
8. "Logic The Theory of Inquiry".(Henry Holt 1938).
9. "A Common Faith".(Yale University Press 1934, Paper back edition 1960).
10. "Ethics". (American corporation Vol X New York 1929 and Henry Holt+ Co. 1908).
11. "Democracy and Education".(An Introduction to the Philosophy of Education(The Macmillan Co. New York, 1916).
12. "The Child And the Carriculum".(University of Chicago Press, Phaenix Book 1956).
13. "Freedom and Culture".(George Allen and Unwin Ltd. 1940). London.
14. "The School and The Society".(University of Chicago Press, 1930. Illinois Rev. Edition).

15. "Experience and Education".(Macmillan Co. New Yrok 1938. Paper back Edition Collier books 1963).

16. "Essays In Experimental Logic".(Chicago. The University of Chicago Press 1916).

17. "My Pedagogic Creed".(E.L. Kdogg. And Co. 1897).

18. "The Public and Its Problems".(New York: Henry Holt and Company 1927).

19. "The way out of Educational Confusion".(Canbridge, Mass: Harvard Uni. Press, 1931).

20. "The Development of Amrican Pragmatism. In studies In the History of Ideas". (New York, Columbia University Press 1925).

21. "From Absolution to Experimentalism". (New York, Macmillan 1931 and Edited by Bernstein, R.J. Liberal Art Press New York 1960).

22. "Individualism, old And New".(Allen and Urwin London 1931) And

"Individuality, Old and New (New York Minton Balch + Co. 1930).

23. "Shiksha Darshan Ki Bhumika". (Hindi) Columbia University, New York, 1915 Leader Press, Allahabad.

24. "The Child and the Cerriculum". (The Psychology of occupation) Phoenix Books 1956).

25. "On experience Nature and Freedon". Selections Edition Bernstein R.J. Liberal Art Press, 1960.

26. "Creative Intelligence".(Henry Holt).

27. "The Social Forenteer", Vol. XII 1936.

28. "The Educational Forenteer" (W.H.Kilpatrick Editor).
29. "Syllabus" I Chapter.
30. "The Theory of Moral Life". (University of Chicago, 1938).

Some Critical Works on John Dewey and Allied Topics

1. Adams, George, P and ("Contemporary American Montague, William,P. (Philosophy". Vol-II. (The Macmillan Co. New York, 1930)
2. Alva Myrdal-In Har Article on the power of Education In world perspective Edited by Emmet John Hughes. (New York, 1962).
3. Baker,M.C. "Foundations of Dewey's Educational Theory". (Columbia University Press 1955).
4. Borwyer, Carlton H. "Philosophical Perspective for Education". (Scet, Foresman and Co. clenview, Illinois, 1970).
5. Bgles, E.E. "Pragmatism In Education". Chapter V.
6. Boyed,W. "The History of Western Education".
7. Beard, Charles- Translator, "Philosophy". Chapter 13.
8. Chaube,S.P. "Recent Educational Philosophies In India". Rama Pd. and Sons, Agra, 1967).
9. Childs, John.S. "Education and Morals".
10. Charles, Frankel "John Dewey where He stands". (The John Hopkins Magazine, Dec. 1959).
11. Dupuis, Adrian,M. and Nordbegy, Robert- "Philosophy and Education", (The Bruce Publishing Co. 1968 Milwankee).
12. Eby: Frederick-"Development of Modern Education", II ed. (Prentice Hallp New York,1959).
13. Educational Policies Commission, The Purpose of Education. In Americal Democracy. (Warshington, D.C. N.E.A. 1938).

14. Encyclopedia of Social Sciences, Vol. 12.

15. Feldman, W.T. - "Philosophy of John Dewey".

16. Garforth, F.W.- "Dewey's Educational Writings", (Heinemann, London 1966)

17. Geiger, G.R.- "John Dewey In Perspective", (Oxford University Press, New York, 1958).

18. Gandhi, M.K.- "From the Itihas of Congress Allahabad, 1935).

19. Horne,H.H.-(a) "The Philosophy of Education. The Macmilan Co. New York.

(b) "The Democratic Philosophy of Education" (The Macmillan Co. New York 1932).

(c) "The Psychological Principles of Education", (The Macmillan Co. New York 1908).

20. Henderson, S.U.P.- "Introduction to Philosophy of education", (The University of Chicago Press).

21. James,William: (a) "Principles of psychology" Vol. II (Macmillan, New York, 1890).

(b) "Pragmatism,"(Longman's Green 1907).

(c) "The will to Believe",(Longman's Green, 1897).

22. James, Willan Outed by Joe Parkin, The Philosephy of Education,

23. Jmms, M.Deway:- "The Philosophy of John Deway", Vol.I (North Western University Evanston and Chicago, 1939).

24. Kilpartick, W.H.: "Foundation of Method", (Macmillan Co. New York, 1926).

25. Mead, George, H.: John Dewey " The Man and His Philosophy ", (Harvard University Press, 1933).

26. Mechiskey, N.G.:- "Public Schools and Moral Education", (Columbia University Press, 1958).

27. Maxotto: John Dewey "Progressive Education", 30:1-2:

28. Mayhaw, K.G. and Edwards, A.C.: "The Dewey School", (Appleton Century, 1938).

29. Paul, K. Conkin. "Puritans and Pragmatists", Indian Edition (Luall Book Depot, Ludhiana, 1969 and 1970).

30. Prett, James.B. "What is Preagmatism".

31. Peter, E. Drucker: The New Society, and Anolony of Industrial order. (Narper and Brothers, New York).

32. Pairee's Collected Papers, Vol. V.

33. Quoted by Pammore, J. "A Hundred Years of Philosophy", Free mind, 1904 Mis Munism and Truth.

34. Robert, J.Roth: "John Dewey and Self Realization" (Engle wood chiffs New Tersey, Prentice Hall, 1962).

35. Ramanathan, G."Education from Dewey To Gandhi", (Asia Publishing House, 1962).

36. Randell, John, Herman "Interpretation of History of Philosophy" (Ref. Schillpp's Vol. I).

37. Schillpp, Paul Arthur Edition - "The Philosophy of John Dewey" (North Western University, Chicago, 1939).

38. Shri Aurobindo: "The Brain of India" V Edition, (Shri Aurobindo Ashram Pondi Cherry 1955).

39. Studies in The History of Ideus, Vol-II.

40. Thilly, Frank: "A History of Philosophy" Indian Edition (Central Book Depot, Allahabad, 1965).

41. The Thought and Character of William James Perry I&II

42. The Collected Papers of Charles Sandars Peirce, Hartshorne and Weeirs, (Harvard Uni. Press, 1931-35 Vol.V.)

43. Ulick, Rober:- "History of Educational Thought", Indian Edition, (Eurasia Publishing House, Pvt Ltd, 1967).

44. Ucken :- "Life's Bases and Life Sdeal", (London, 1911).

45. White, M.G.: "The crigin of Dewey's Instrumentalism", (Columbia Univer. Press, 1943).

46. With, Authur, H.:- "John Dewey"As Educator- His design for work in Education", (Wiley Estern Private Limited, New Delhi , 1969 and Wirth's Vol.1966).

47. Weiner, Philop, P :- "Evolution And The Foinders of Pragmatism ", (Harvard University Press, Cambridge, 19[illegible]).

48. William Shevery:. "Significance of Dewey's Philosophy.

1. Mahatma Gandhi, M.K. - "An Autobiography. The story of My Experiments with Truth". Translator, Mahavir prasad Poddar (Susta Sahitya Mandal, New Delhi 1951). And Vol-I, Translated from Gujarati by Mahadev Desai, (The Navajivan Press Ahmedabad (1927). And Vol-II , Translated by Mahadeve Desai and Pyare Lal Nair, (The Navajivan Press, Ahmedabad, 1929).

2. Mahatma Gandhi, M.K. - "Basic Education". (The Navajivan Publishing House. Ahmedabad, 1951).

3. Mahatama Gandhi, M.K.- "Bapu's letter to Mira".(The Navajivan Publishing House, Ahmedabad 1949).

4. Mahatma Gandhi, M.K.- "Constructive Programme". ((Navajivan Press, Ahmedabad, 1941).

5. Mahatma ,Gandhi, M.K.- "Sarvodaya". (Gist of 'Unto this Last' of Ruskin) (Sasta Sahitya Mandal Prakashan (Hindi), New Delhi, 1952 Ninth Edition).

6. Mahatma Gandhi, M.K.- "Bapu's Seekh",Vidayarathe Jivan Ke Anubhava, (Satsahitya Prakashan Sasta Sahitya Mandal, New Delhi, 1952, Hindi Edition).

7. Mahatma Gandhi,M.K. - "Ethical Religion". Translated by Ramiyer (Ganesan, Madras, 1922).

8. Mahatma Gandhi, M.K. "From Satyagrah In South Africa", Translated by Desai, V.G.(Genesan, Madras 1928).

9. Mahatma Gandhi, M.K. - "Hindi Swaraj ". (Genesan, Madras 1921).

10. Mahatma Gandhi, M.K. - "Delhi Diary". (Navajivan Publishing Housè, 1948).

11. Mahatma Gandhi M.K.- "Selected Letter's(Ed. V.G. Desai Navajivan.

12. Mahatma Gandhi, M.K.- "Selected Writings of Mahatma Gandhi". (Ed. Ronald Duncan, Faber And Faber London, 1951).

13. Mahatma Gandhi, M.K.- "Speches and Writings of Mahatma Gandhiji (Published by Natesan, Madras, 1933).

14. Mahatma Gandhi, M.K.- "To the Student". (Navajivan Ahmedabad, 1949).

15. Mahatma Gandhi, M.K.- "Dakshina Africana Satyagrahno Itihas", Pts I ,II (Navajivan) In Gujrati).

16. Mahatma Gandhi, M.K.- " Young India", 1919-22 (Tagore and Co, Madras, 1922).

17. Mahatma Gandhi, M.K. - "Young India", Vol-I (1919-22) Vol-II (1924-26) and Vol.-III (19-27-28) (Madras , S.Ganesan. 1922, 1927,1935).

18. Mahatma Gandhi , M.K. - "Educational Reconstruction, A collection of Gandhi's Articles on the Wardha Scheme, (Hindustani Talimi Sangh, Wardha, 3rd Ed. 1939).

19. Mahatma Gandhi, M.K. - "Sachchi Shiksha" (Ahmedabad , Sustun Sahitya).

20. Mahatma Gandhi, M.K.- "India of My Dream" (N.P. Ahmedabad).

21. Mahatma Gandhi, M.K.- "Sarvodaya"- Navajivan, Publishing House 1951).

22. Mahatma Gandhi, M.K.- "Shiksha Me Ahinsak Krante".

23. - - - - -"Gita The Monther" Ed. Jag Pravesh Chandre (Free India Publication, Lahore).

24. - - - - -" Hindu Dharma". (N.P.H. 1950)

25. - - - - -"Satyagraha" (N.P.H. 1051).

26. Mahatma Gandhi, M.K.-"To wards New Education". (N.P.H. 1953).

27. - - - - "Towards Non-voilant Socialism (N.P.H. 51).

Works of other Writers on Mahatma Gandhi and Journals and Periodicals etc.

1. Andrews, C.F.- "Mahatma Gandhi's Ideas", (Allen and Unwin London, 1929).

2. Adams, Sir John - "Evolution of Educational Theory", (Macmillan, London, 1915).

3. Bhave, Vinoba - "Teesaree Shakti". (Sarvodaya Sangh Prakashan Varanasi, First Edition 20th Oct. 1960).

4. Bose, N.K. (A) "Selections from Gandhi (N.P.H. 1948).

(B) "Studies in Gandhism (Indian Associated Publishing Co. Calcutta, 1947).

5- Chandi Wala, Brajkishan- "Bapu Ke Charno Me". (Hindi, Sata Sahity Mandal, New Delhi, IInd Edition 1949).

6. Datta, D.M. - "The Philosophy of Mahatma Gandhi", (University of Wisconsin Press, Canada, 1953).

7. Dhawan, Gopi Nath- "The Political Philosophy of Mahatma Gandhi ", (N.P.H. 1951).

8. Desai, Mahadev: (a) With Gandhiji In Cylone", (Madras, S.Ganesan).

9. (b) "Primary Education and Village Two years" work of Education " (Evans London, 1940).

9. Fischer, Louis: (a) "A weak with Gandhiji (Duell Sloan and Pearce, New York 1942). And (Allen and Unwin Georage, London 1943).

(b) "I lived with Gandhi". (Bombay, Rajkamal Publications).

10. Ferriera, Adolf:"The activity School", Ed. K.G. Saiyidain

10. Ferriers, Adolf-"The Activity School" Ed. K.G. Saiyidain (Kitabistan, Allahabad 1938).

11. Forword to Basic Education (HTS Wardha).

12. Gandhi, P.C.- "Jivannun Parodha" (Gujrati).Navajivan).

13. Gandhi, N.K. "Hindu Dharama"-(Navajivan Publishing House, Ke Bhashan me" 27.2.40).

14. Green T.H.-"Quoted by Lord Telefence, Oxford "Vishava ke Bhashan me" 27.2.40).

15. Huxley, Aldous: Ends and Means", (Chatto and Windus, London 1938).

16. Hampton, H.V. -"Selections from Newman's Idea of a University" (Bombay Longmans).

17. Husain, Zakir, "Two years Book, Report of the 2nd Basic Education conference, Delhi, 1941 and 42(H.T.S. Sevagram, Wardha).

18. Hand Book of Suggestions, (H.M.S.O. 1937).

19. James Arick - "An Essay of the content of Education", (George Harrp, London 1949).

20. Jawahar Lal Nehru-"Cited in UNESCO Project India", Ministry of Educations Delhi, 1953.

21. Kriplani , J.B. (a) " The latest fad"(Sevagram, Hindustani Talimi Sangh, 1939).

(b) "The Gandhian way" (Vora and Co. Bombay 1938).

(c) "The new Education". (S.H.T.S. 1939).

(d) "Gandhi Darshan" (Sevagram,H.T.S. 1939).

22. Kumarappa, J.C. - " Social and Political ideas of Mahatma Gandhi" (Vora and Co. Bombay , 1951).

23. Keay, F.E. - "Indian Education in Ancient and Later Times", (Oxford, Oxford University Press).

24. Kabir,H. -"Education in Free India", (N.P.
25. Makes, W.J. -"New School for Yound India"(University of North Carolia Press, 1930).
26. Mac. Munn. Norman.- "The child's Path to Freedom. (Curwan, 1926).
27. Ministry of Education Including Bureau of Education India.
(a) Selection from Educational Records. Vol- I and II, Govt. Printing, Calcutta, 1920-22.
(b) Basic and Social Education, Delhi ,1948.
(c) Progress of Education in India, 1937-44. Decennial Review, 2nd Vol- Delhi, 1948).
28. Mukerji, Radha Kumud - "Local self Government in Ancient India", (Clarandon, Oxford, 1919).
29. Mashruwala, K.G.-(a) "Shiksha Ka Vikas" Ahmedabad, Navjivan.
(b) "Gandhi Vichar Dohan" (Gujrati) Navajivan Publication).
30. Nunn, Sir. T.Pary -"Education, Its data and first Principles", (London, Adward Arcold).
31. Plato:- "Republic", Translator B-Jowett. (Oxford, 1888).
32. Patel, M.S.-"The Educational Philosophy of Mahatma Gandhi", (N.P.H. 1953).
33. Patel, R.M. - "Gandhijiji Sadhana" (Gujarati).
34. Rasal Translator - "Mera Prarambhik Jivan ".
35. Raju, PT. -"Idealist thought of India",(Allen and Unwin , London , 1953).
36. Rusk, R.R.- "The Philosophical Bases of Education" (University of London Press, London, 1928).
37. Rousseau, J.J. - "Emile" Translated by Barbara Foxlay, (Everyman's Library, Dent, London, 1923).
38. Sita Ramayya, Pattabhi". The History of Indian National Congress "Vol-I, 1885, 1935, and "Congress working committee, Allahabad 1935 Vol -II 1935-1947 (Padma Publications, Bombay, 1947).

39. Stevenson, L.A. -"The Project Method of Teaching" (Macmillan, New York, 1930).

40. Tendulkar, D.G.- "Mahatma" 8 Vols, Jhaveri and Tendulkar, Bombay, 1951-54).

41. Tendulkar, and others :-"His life and work (Karnataka Publishing House, Bombay, 1944).

42. White head, A.N. -"Aims of Education and other Essays" (Williams and Morgate, London, 1950).

Journals and Periodicals etc.

1. Journal of Education and Psychology, Baroda.

2. Harijan (Weekly) 1933-40, 1942 and 1946-48 (N.P.)

3. Harijan Bandhu - Ahmedabad, N.P.

4. Harijan Sewak - Ahmedabad N.P.

5. Politics and Morality, Quarterly (Vishawa Bharati Gandhi Memorial Paice, Shanti Niketan, 1944. By Sprinks Stafension.

6. Psycho, Oct- 1942 , Bombay.

7. Teacher's world, London.

8. Vishvabharati,Quaterly, Shantiniketan, Education Number (Vol. XIII) 1948).

9. Xound India -(1919-32) Weakly, N.P. Navajivan, Ahmedabad.

BIBLIOGRAPHY

John Dewey's Writings

1. "Reconstruction In Philosophy". (Henry Holt. 1920. Enlarged Paper back. Beacon Press 1957).
2. "Experience and Nature". (Open court Publishing Co. 1925; Dover Books 1958).
3. "Human Nature and Conduct". (Henry Holt 1922).
4. "Experience and Nature". (W.W. Norton And Company New York 1920).
5. "Philosophy And Civilization". (Minton, Balch: 1931; Paper backed., Capricorn Books 1963).
6. "The Indluence of Darwin on Philosophy and other Essays In Contemporary Thought (Henry Holt 1910, Peter Smith 1951).
7. "How we Think".(Boston D.C.Heath 1910 And Revised Edition Heath 1933).
8. "Logic The Theory of Inquiry".(Henry Holt 1938).
9. "A Common Faith".(Yale University Press 1934, Paper back edition 1960).
10. "Ethics". (American corporation Vol X New York 1929 and Henry Holt +Co. 1908).
11. "Democracy and Education". (An Intruduction to the Philosophy of Education (The Macmillan Co. New York, 1916).
12. "The Child And the Carriculum". (University of Chicago Press, Phoenix Book 1956).
13. "Freedom and Culture". (George Allen and Unwin Ltd. 1940). London.
14. "The School and the Society". (University of Chicago Press: 1930. Illinois Rev. Edition).

15. "Experience and Education". (Macmillan Co. New York 1938. Paper back Edition Collier books 1963).

16. "Essays In Experimental Logic". (Chicago. The University of Chicago Press 1916).

17. "My Pedagogic Creed". (H.L.Kdogg. And Co. 1897).

18. "The Public and Its Problems". (New York: Henry Holt and Company 1927).

19. "The way out of Educational Confusion".(Cambridge, Mass: Harvard Uni. Press, 1931).

20. "The Development of Amican Pragmatiśm. In studies In the History of Ideas". (New York, Columbio University Press 1925).

21. "From Absolution to Experimentatism". (New York, Macmillan 1931 and Edited by Bernstain, R.J. Liberal Art Press New York 1960).

22. "Individualism, Old And New". (Alen and Unwin London 1931) And
"Individuality, Old and New(New York Minton Balch + Co. 1930).

23. "Shiksha Darshan Ki Bhumika". (Hindi) Columbia University, New York, 1915 Leader Press, Allahabad.

24. "The Child and the Corriculum". (The Psychology of occupation) Phoenix Books 1956).

25. "On experience Nature and Freedom". Selections Edåtion Bernstein R.J.Liberal Art Press, 1960).

26. "Creative Intelligencs" (Henry Holt).

27. "The Social Forenteer", Vol. III 1936.

A Comperative study of John Dewey And Mahatma Gandhi As Educators And Their Relevance To Education In Modern India.

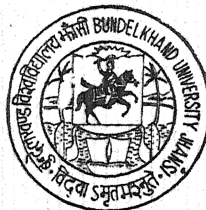
शिक्षाशास्त्री के रूप में जान डिवी और महात्मा गाँधी का एक तुलनात्मक अध्ययन तथा वर्तमान भारत में शिक्षा हेतु उनकी संगति।

बुन्देलखण्ड विश्व-विद्यालय, झाँसी के शिक्षा शास्त्र में
डॉक्टर ऑव फिलॉसफी की उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध—प्रबन्ध

(सार - संक्षेप)

निदेशक—
डॉ० सरयू प्रसाद चौबे,
एम०ए०एम०एड० (इलाहाबाद)
डि० एड० (इण्डियाना यू०एस०ए०)
डि० लिट् (लखनऊ)
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,
शिक्षा विभाग, गोरखपुर, विश्व विद्यालय,
गोरखपुर

शोध-कर्ता—
दयाशंकर दुबे
एम०ए०एम०एड० प्रवक्ता,
बी० एड० विभाग,
बुन्देलखण्ड कालेज, झाँसी।



बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी
1991–92

अध्याय-1

अध्ययन का लक्ष्य, प्रयुक्त विधि तथा क्षेत्र

आमुख

जॉनडिवी अमेरिका के तथा महात्मा गांधी भारत के सर्वाधिक प्रभावशाली शिक्षा दार्शनिक हैं । दोनों शिक्षा-शास्त्रियों ने जीवन की तात्कालिक समस्याओं के समाधान की व्यावहारिक प्रविधि प्रस्तुत करने की चेष्टा की है । शिकागो विश्व विद्यालय में जॉन डिवी के मूलभूत मौलिक विचारों का प्रादुर्भाव हुआ था, और शनैःशनैः वे अनुभव करने लगे थे कि मात्र सैद्धान्तिक विचारों से किसी भी प्रकार की जीवन सम्बन्धी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, जब तक उसके लिए किसी व्यावहारिक प्रविधि का प्रारूप न प्रस्तुत किया जाय । जॉनडिवी में इस प्रकार की अवधारणा को निर्मित होने के कारण तत्कालीन वैज्ञानिक, औद्योगिक प्रगति तथा तत्कालीन परिस्थितियों में परिवर्तन ही था ।

वैज्ञानिक औद्योगिक प्रगति एवं वर्तमान कालिक परिस्थितियों के परिवर्तन ने महात्मा गांधी की चिन्तन प्रक्रिया को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया था, जिसके फलस्वरूप बाद के तीस वर्षों में उन्होंने यह आवश्यक समझा कि बेसिक शिक्षा को प्रयोजनवादी विचारधारा की ओर मोड़ना चाहिये । इस प्रकार की अवधारणा का उदय जब महात्मा गांधी के मन व मस्तिष्क में हो रहा था, तो उसी काल में यू०एस०ए० में

जॉन डिवी लोकतंत्रात्मक एवं प्रयोजनवादी शिक्षा दर्शन को शिक्षा क्षेत्र में प्रतिपादित करके अपनी प्रतिष्ठा की चरम सीमा पर पहुँच चुके थे । अधिकांश लोग यह सोचते हैं कि महात्मा गांधी जॉन डिवी के विचारों से प्रभावित है, किन्तु इस प्रकार के चिन्तन में सत्यता का अभाव ही पाया जाता है, क्योंकि यदि यह विचार सत्य होता तो महात्मा गांधी जैसे महान व्यक्तित्व वाले प्राणी इस तथ्य को अपनी कृतियों लेखों, भाषणों एवं विचार विनिमय की प्रक्रिया में कहीं न कहीं अवश्य स्वीकार किये होते, क्योंकि सत्य के शोधक एवं पुजारी से ऐसी आशा करना सर्वथा उचित ही है । अतः यह निर्विवाद सत्य है कि महात्मा गांधी जी एक मौलिक विचारक, चिन्तक एवं दार्शनिक हैं ।

महात्मा गांधी का सम्पूर्ण दर्शन जीवन की तात्कालिक समस्याओं के समाधान हेतु निरन्तर संलग्न रहा है । उनका यह निजी अनुभव था कि जीवन की तात्कालिक समस्याओं के समाधान के बिना, सर्वोच्च अथवा जीवन के अन्तिम लक्ष्य "आत्मानुभूति" की उपलब्धि सार्थक व सम्भव नहीं है । उनका दृढ विश्वास था कि "शरीर मन्दिर में वर्तमान अतीत एवं भविष्य तीनों निहित हैं । इनके अनुसार अतीत को आधार मानकर वर्तमान व भविष्य का निर्माण केवल वैचारिक प्रक्रिया से सम्भव नहीं है, वरन् इसे व्यवहार परक बनाने हेतु प्रयोगीय परीक्षण नितान्त आवश्यक है ।

प्रस्तुत अध्ययन का लक्ष्य :-

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का लक्ष्य जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत करना है । हमने यह अनुभव किया है कि इनके शिक्षा दर्शन के विचार इनके सामान्य जीवन दर्शन से ही उद्भूत हुये हैं । हमारे इस विश्लेषण का सम्बन्ध जॉन डिवी के दर्शन, तर्क, ज्ञान, चिन्तन व मूल्य जैसे विभिन्न विषयों के प्रति विचारों का सारत्व प्रस्तुत करने से है । साथ ही दोनों को शैक्षिक एवं दार्शनिक विचारधाराओं की व्याख्या करना, वर्तमान समय की आवश्यकताओं एवं शैक्षिक समस्याओं के संदर्भ में मूल्यांकन करना तथा हमारी जनतंत्रात्मक सामाजिक व्यवस्था को पुष्ट करने में इनके विचारों की क्या संगति है? का विश्लेषण करना है ।

जहाँ तक जॉन डिवी का सम्बन्ध है उन्होंने शिक्षा तथा दर्शन के पारस्परिक सम्बन्धो को अभिव्यक्त करने में मुख्य रूप से सहयोग दिया है । जॉन डिवी ने दर्शन, शिक्षा, ज्ञान तथा सामाजिक शिक्षादि क्षेत्रों में तथा लोकतंत्रीय शैक्षिक संगठन के सम्बन्ध में बहुत सुदृढ़ विचारों का प्रतिपादन किया है । इसलिए जॉन डिवी को भारत में भलीभाँति जानने व समझने की महती आवश्यकता है । जॉन डिवी अतीत के ख्याति प्राप्त शिक्षाशास्त्री तथा मानव रूचियों के प्रकांड ज्ञाता थे । इन विशिष्टताओं ने उन्हें जीवन्त सत्य के निकट पहुँचने में पूर्ण

सहयोग दिया था और इस निष्कर्ष पर पहुँचाया था कि शिक्षा व्यक्ति के लिए है और व्यक्ति स्वयं शिक्षा है । जॉन डिवी के विचारों ने शोधकर्ता को उनके उन विचारों की सम्यक व्याख्या करने के लिए आकर्षित किया है जो हमारी भारतीय सामाजिक व्यवस्था के लिए लाभप्रद है और हमारे वर्तमान भारत के निर्माता महात्मा गांधी के विचारों से उनकी क्या समानता है ? क्योंकि महात्मा गांधी के विचार भी वर्तमान कालिक ज्वलन्त समस्याओं के समाधान में एक मील के पत्थर की भाँति हैं ।

इस अध्ययन का यह भी लक्ष्य है कि दोनों शिक्षा शास्त्रियों के विचारों का हमारे लोकतंत्रात्मक समाज की पुनर्रचना तथा नयी सामाजिक व्यवस्था के संगठन में क्या योगदान है ? हमने देखा है कि जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी ने केवल अपने देश के संदर्भ में ही नहीं बल्कि विश्व की सामाजिक पुनर्व्यवस्था हेतु सुष्ठ विचारों की अभिव्यक्ति की है । इसलिये दोनों अपने देश के ही नहीं बल्कि सर्वकाल एवं सर्वदेशीय विचार के उद्गारक हैं ।

किसी राष्ट्र तथा उस राष्ट्र की शिक्षा प्रक्रिया को राष्ट्रीय अथवा सामाजिक पुनर्रचना व पुनर्व्यवस्था में किन-किन कठिनाइयों व बाधाओं का सामना करना पड़ता है, और उन्हें किस प्रकार दूर करके अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में वह सक्षम होता है, इस सम्बन्ध में अभिव्यक्त किये

गये दोनों के विचारों, विधियों व प्रविधियों का अध्ययन करना भी इस अध्ययन का लक्ष्य है । हमने देखा है कि दोनों शिक्षा शास्त्री ऐसी सामाजिक पृष्ठि भूमि में पले थे जहाँ एक ओर वैज्ञानिक, औद्योगिक एवं तकनीकी प्रगति व उनकी उपलब्धियाँ मानव को प्रभावित कर रहीं थीं तो दूसरी ओर वे अपनी अतीत की परम्पराओं एवं विश्वासों से प्रभावित थे । मानव समुदाय द्वैतावस्था में था । वर्तमान के प्रगतिशील विचारों एवं अतीत के रूढ़िग्रस्त चिन्तन के मध्य द्वैत व संघर्ष उत्पन्न हो गया था ।

ऐसी विकट परिस्थिति में दोनों शिक्षा शास्त्री यह अनुभव कर रहे थे कि जब तक मानव समुदाय के चिन्तन को संकुचित दायरे से निकाल कर विस्तृत नहीं किया जाता और उन्हे वैज्ञानिक एवं औद्योगिक उन्नति की प्रविधि की जानकारी नहीं दी जाती तब तक यू0एस0ए0 तथा विशेषकर आधुनिक भारत का पुनर्निर्माण एवं पुनर्संगठन का संकल्पात्मक कार्य सम्पन्न न होगा । इसलिए जॉन डिवी अंध विश्वास, अतीत की परम्पराओं एवं विश्वासों तथा पारलौकिक तथ्यों की जीवन भर आलोचना करते रहे हैं और महात्मा गांधी अंध विश्वास, छूआछूत, वर्ग-भावना, जाति-भावना धनी-निर्धन, शासक-शासित के द्वैत भाव को समाप्त करने हेतु अहिंसक प्रविधि की खोज करते रहे हैं । इस प्रकार हमने देखा है कि दोनों शिक्षाशास्त्री के चिन्तन का केन्द्र बिन्दु वैज्ञानिक विधि की खोज करना रहा है ।

जाॅन डिवी तथा महात्मा गांधी दोनों का "सत्य" के प्रति, उसकी प्राप्ति व अनुभूति के सम्बन्ध में क्या अवधारणा है ? शिवं सुन्दरम् क्या है ? का अध्ययन करना व जानकारी प्राप्त करना इस अध्ययन का लक्ष्य है । हम जानते हैं कि जीवन का तात्पर्य "मूल्यों" से है । "मूल्य" के अभाव में जीवन का कोई अर्थ नहीं है । अतः जीवन में मूल्यों का क्या स्थान है? क्या मूल्य शाश्वत है या अर्जित ? इनके प्रति दोनों की अवधारणा का अध्ययन करना भी हमारा लक्ष्य रहा है । हमने देखा है कि दोनों वैज्ञानिक विधि के समर्थक हैं । इसलिये दोनों प्रयोग पर "सत्य" की परख का मापदण्ड निर्धारित करते हैं । क्या व्यक्ति व समाज का अस्तित्व अलग-अलग है ? या वे एक दूसरे से सम्बन्धित है ? इस प्रश्न के समाधान में दोनों शिक्षाशास्त्री कैसा विचार रखते हैं । इसका अध्ययन करना हमारा लक्ष्य है ।

प्रजातंत्र क्या है ? इसकी सुरक्षा, व्यवस्था एवं स्थायित्व के लिए दोनों शिक्षाशास्त्रियों ने क्या विचार उद्भूत किये हैं तथा समाज की पुनर्रचना के कार्य में शिक्षा क्या सहयोग देती है । इसे भी हमने अपने अध्ययन का लक्ष्य बनाया है ।

जीवन अथवा व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में शिक्षा की क्या भूमिका है ? इस हेतु दोनों शिक्षाशास्त्री किस प्रकार की शैक्षिक प्रविधि का प्रतिपादन करते हैं, अनुभव, चिन्तन तर्क का जीवन में क्या महत्त्व है । इन सबके महत्त्व के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना भी इस शोध प्रबन्ध का लक्ष्य है ।

अतीत, वर्तमान तथा भविष्य के प्रति दोनों शिक्षा शास्त्रियों के विचारों में क्या समानता व विषमता है ? इस तथ्य का अध्ययन करना हमारा लक्ष्य है ।

सामाजिक सेवा, वैयक्तिक व सामूहिक "श्रम" द्वारा "आत्मानुभूति" करने के विषय में दोनों शिक्षाशास्त्रियों के विचारों में समानता व असमानता का अध्ययन करना भी इस अध्ययन का लक्ष्य है ।

प्रस्तुत अध्ययन इस हेतु भी किया गया है ताकि हम शिक्षा के प्रति दोनों की विचार धाराओं में उचित दृष्टि कोण व अन्तर्दृष्टि की खोज कर सकें ।

ज्ञानात्मक दृष्टि से इस अध्ययन में हमने जॉनडिवी तथा महात्मा गांधी के शैक्षिक विचारों की तुलना को शामिल किया है । दोनों की मौलिकता को खोजने का प्रयास किया गया है । दोनों के विचारों का शिक्षा क्षेत्र में क्या मौलिक योगदान है ? का अध्ययन किया गया है । इस अध्ययन का एक मुख्य लक्ष्य यह भी है कि भारतीय परिवेश में जॉन डिवी के विचारों की क्या संगति है ? और हम इससे किस प्रकार लाभान्वित हो सकते हैं ?

यह अध्ययन यह भी उद्घाटित करने के लिए किया गया है कि कोई विचारक जीवन के अनुभवों व समस्याओं के प्रति कैसी प्रतिक्रिया करता है ? इस अध्ययन ने हमें यह समझने की प्रेरणा दी है कि जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी ने जीवन

की घटनाओं के सम्बन्ध में असाधारण साहस के साथ अपने विचारों पर पहुँचने के लिए किस प्रकार प्रयास किया था । जिसका प्रतिफल यह हुआ कि दोनों वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों के प्रबल समर्थक हो गये ।

प्रस्तुत अध्ययन में प्रयुक्त विधि :-

प्रस्तुत अध्ययन ऐतिहासिक अनुसंधान का एक भाग है । किसी समाज का इतिहास प्रायः वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का आधार होता है । सामाजिक समस्याओं के समाधान में प्रयुक्त वैज्ञानिक विधि की अनुप्रयुक्ति ही ऐतिहासिक अन्वेषण है । हमने देखा है कि प्रस्तुत अध्ययन का लक्ष्य हमारे अतीत के शिक्षा शास्त्रियों की विचारधाराओं को वर्तमान के संदर्भ में मूल्यांकन करना है । इसलिए इस अध्ययन में ऐतिहासिक विधि का प्रयोग किया गया है । ऐतिहासिक विधि का तात्पर्य अतीत के अनुभवों का अध्ययन करना है तथा इसके द्वारा मानव विचार व व्यावहार के उन विकास क्रमों की खोज करना है जिससे किसी सामाजिक गतिविधि के आधार का पता लगता है । इस विधि का प्रयोग मनोविज्ञान व समाज शास्त्र में भी होता है । शिक्षा में इस विधि के प्रयोग का लक्ष्य शिक्षा सम्बन्धी दार्शनिक विचारधाराओं, पद्धतियों, आवश्यकताओं तथा आदर्शों की जानकारी उपलब्ध करना होता है तथा उनके संदर्भ में वर्तमान समय में शिक्षा जगत की समस्याओं एवं व्यवस्थाओं का संदर्भ निकालना होता है । जैसा कि प्रस्तुत अध्ययन का लक्ष्य जॉन डिवी तथा महात्मा

गांधी के विचारों का वर्तमान काल की आवश्यकताओं के संदर्भ में मूल्यांकन करना ही है । अत: ऐतिहासिक विधि का प्रयोग समीचीन है ।

प्रस्तुत अध्ययन में हमने अनेक साक्ष्यों, साधनों एवं अभिलेखों का प्रयोग किया है और इनके प्रयोग से हमें विशिष्ट जानकारी उपलब्ध हुई है और उसके सन्दर्भ में ही हमने वर्तमान का यथार्थ ज्ञान उपलब्ध करने का प्रयास किया है ।

अध्ययन के स्रोत :-

प्रस्तुत अध्ययन में हमने ऐतिहासिक विधि के दो स्रोतों का उपयोग किया है ।

1- प्राथमिक स्रोत :-

ये प्रदत्त के मूल व मौलिक स्रोत होते हैं । यह विषय वस्तु का मूल भण्डार होता है । किसी महत्वपूर्ण अवसर का मूल अभिलेख होता है । इसलिये हमने जॉन डिवी तथा महात्मा - गांधी की मौलिक कृतियों का आधार लिया है । इनके द्वारा लिखी हुई अनेक पुस्तकों, लेखों, अभि-भाषणों तथा अनेक पत्रि-काओं को अपने अध्ययन का मुख्य आधार माना है ।

2- अप्रमुख स्रोत :-

अप्रमुख स्रोत में हम उन साधनों को शामिल करते हैं जिनका लेखक, दार्शनिक व शिक्षा शास्त्री स्वयं निर्माता नहीं होता है बल्कि उनके विचारों व दार्शनिक चिन्तनों के प्रति अन्य व्यक्तियों के द्वारा विचार अभिव्यक्ति किये जाते हैं ।

इसलिये हमने उन महान आलोचकों एवं समालोचकों द्वारा जॉन डिवी व महात्मा गांधी के सम्बन्ध में लिखे गये ग्रन्थों को भी शामिल किया है । इन ग्रन्थों के अध्ययनोपरान्त ही हम प्रस्तुत अध्ययन की विषय वस्तु में समझ व अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर सके हैं, जिसका परिणाम यह शोध प्रबन्ध है ।

प्रस्तुत अध्ययन का क्षेत्र :-

1- प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में हमने जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के शैक्षिक विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन एवं मूल्यांकन करने के साथ ही दोनों के विचारों की समानता व असमानता के समालोचनात्मक दृष्टिकोण को शामिल किया है ।

2- इनके जीवन दर्शन और शिक्षा दर्शन के क्रमिक विकास में तत्कालीन परिस्थितियों का क्या प्रभाव पड़ा है ? और इस प्रभाव ने इनके विचारों को किस प्रकार प्रभावित एवं परिवर्तित करने में अहं भूमिका अदा की है, इस तथ्य की जॉच व खोज के प्रयास को भी हमने प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में शामिल किया है ।

3- उनके जीवनवृत्त तथा कृतित्व के विवरण को हमने अपने अध्ययन क्षेत्र में यह खोजने के लिये शामिल किया है कि किन पारिवारिक पृष्ठभूमि तथा किन प्राणियों के सम्पर्क व प्रभाव ने इनकी चिन्तन प्रक्रिया को प्रभावित किया है ।

4- प्रयोजनवाद के सामान्य दर्शन व जॉन डिवी के साधनवाद में क्या समानता, असमानता तथा संगति है? इस तथ्य

की खोज को भी हमने अपने अध्ययन में शामिल किया है जिसका सम्बन्ध हमारे अध्ययन के चतुर्थ अध्याय से है ।

5- हमने अपने अध्ययन क्षेत्र में महात्मा गांधी के मौलिक दार्शनिक विचारों को शामिल किया है ताकि जीवन के मूल्यों के प्रति इनकी क्या अवधारणा है, खोज की जा सके और वर्तमान भारत के संदर्भ में उनकी संगति बैठाई जा सके ।

6- हमारे जीवन के कौन-कौन से मूल्य हैं ? उनकी सामाजिक उपयोगिता क्या है ? उन्हें सामुदायिक जीवन में कैसे व्यावहार परक बनाया जाय ? बुद्धि, मन, आत्मा, सत्य शिव व सुन्दर क्या है ? इन समस्त तथ्यों को व्यावहार परक बनाने में जॉन डिवी एवं महात्मा गांधी ने किस व्यावहारिक प्रविधि को प्रस्तुत किया है ?इस खोज को भी हमने अपने अध्ययन में शामिल किया है ।

7- "श्रम", "कर्म" व व्यावसाय तथा उद्योग का हमारे जीवन में इन दार्शनिकों की दृष्टि से क्या महत्व है ? इनका शिक्षा जगत में प्रारूप किस प्रकार का होना चाहिये ? इनके शिक्षा में "कर्म के सिद्धान्त" का क्या तात्पर्य है ? आदि प्रश्नों के उत्तर सम्बन्धी तथ्यों की खोज को इस अध्ययन में शामिल किया गया है ।

8- जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के अनुसार शिक्षा और दर्शन में कैसा सम्बन्ध है ? शिक्षा की पुनर्रचना एवं पुनर्संगठन के सम्बन्ध में दोनों शिक्षाशास्त्रियों का क्या विचार है ? इस तथ्य की जानकारी प्राप्त करने सम्बन्धी तथ्यों की खोज को भी अध्ययन की विषय वस्तु में शामिल किया

गया है ।

9- जॉन डिवी तथामहात्मा गांधी के विचारों की तुलना तथा इन दार्शनिकों के विचारों की रूसो, पेस्टालजी, फ्रोबेल आदि शिक्षा शास्त्रियों के विचारों से तुलना को भी अध्ययन में इस कारण शामिल किया गया है ताकि इन सब के विचारों के समान व विरोधी तत्वों की खोज करके इनके दार्शनिक विचारों की मौलिकता की परख की जा सके ।

10-हमने इन दोनों शिक्षाशास्त्रियों के विचारों की विश्व दर्शन तथा भारतीय परिवेश में क्या संगति है ? की खोज को भी अपने अध्ययन क्षेत्र में शामिल किया है ।

11-शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, विद्यालय, अध्यापक एवं अनुशासन के प्रति इन दोनों शिक्षा शास्त्रियों के क्या विचार हैं ? और वे विचार हमारे लिए किस प्रकार लाभप्रद हैं ? की खोज को भी अध्ययन में शामिल किया गया है ।

12-लोकतंत्रात्मक राष्ट्र में शिक्षा का क्या स्वरूप होना चाहिये? लोकतंत्र क्या है ? जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के विचार लोकतंत्रात्मक समाज की शिक्षा के लिए कैसे हैं ? उनमें क्या समानता व असमानता है ? इस तथ्य की जानकारी को भी अध्ययन के लिए चुना गया है ।

इन तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने का भी इस अध्ययन में प्रयास किया गया है कि -

13-जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के विचारों की विश्व

विचार तथा भारत की शिक्षा में क्या संगति है ? तथा जॉन डिवी के विचार भारतीय परिवेश के किन क्षेत्रों में लाभप्रद हैं। हमें अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि जॉन डिवी के विचारों की हमारे लोकतंत्र व शिक्षा के क्षेत्रों में विशेष संगति है ।

हमें यह आवश्यक प्रतीत होता है कि हम यह इंगित करें कि हमारा यह प्रयास किससीमा तक ज्ञान के क्षेत्र में एक मौलिक योगदान है । इस प्रकार की प्रकृति के कार्य हेतु तथ्यों के प्रस्तुतीकरण में किसी भी व्यक्ति द्वारा मौलिकता का दावा नहीं किया जा सकता है, क्योंकि एक अन्वेषक को इस सम्बन्ध में प्रतिपादित किये गये विचारों एवं सिद्धान्तों पर ही आधारित रहना पड़ता है, किन्तु एक शोधकर्ता को इन विचारों एवं सिद्धान्तों को विभिन्न संदर्भों में मौलिक रूप में पुनर्विश्लेषित एवं पुनर्आकलित करना पड़ता है । इसी में उसकी मौलिकता निहित होती है । शोधकर्ता ने वास्तव में इस शोध प्रबन्ध में यही किया है और यह आशा की जाती है कि अध्येता को सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध में अनेक संगतपूर्ण स्थलों पर यह देखने को मिलेगा। षष्ठम्, सप्तम्, अष्टम, नवम्, दशम्, एकादश, एवं द्वादश अध्यायों में शोधकर्ता ने अपने दृष्टिकोण से विभिन्न संदर्भों में अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है । जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के शैक्षिक विचारों की भारत में शिक्षा हेतु संगति नामक अध्याय में शोधकर्ता स्व मौलिकता का दावा कर सकता है क्योंकि

व्यवस्थित रूप में इस प्रकार के औचित्यपूर्ण विचारों को अब तक प्रकट नहीं किया गया है ।

अध्याय द्वितीय तथा तृतीय

जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी का जीवन वृत तथा कृतित्वः

हमारे अध्ययन के द्वितीय तथा तृतीय अध्याय का सम्बन्ध जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के जीवन वृत तथा उनके कृतित्व से है । इन अध्यायों में हमने इनकी पारिवारिक स्थिति, शिक्षा तथा पारिवारिक पर्यावरण के प्रभाव के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत किया है और यह खोजने का प्रयास किया है कि इनके जीवन दर्शन के निर्माण में इनका क्या योगदान तथा प्रभाव रहा है ? साथ ही यह भी देखने का प्रयास किया गया है कि किन-किन प्राणियों के सम्पर्क व प्रभाव ने इन्हे चिन्तन करने व अपने विचारों को लिपिबद्ध करने की प्रेरणा दी । हमने देखा है कि दोनों शिक्षाशास्त्रियों का परिवार धार्मिक प्रवृत्ति का था।परिवार में सौहार्द्र तथा ममत्व था, जिसका प्रभाव दोनों दार्शनिकों पर पड़ा था । इसलिए दोनों धार्मिक प्रवृत्ति के थे, दोनों में समस्त मानव जाति के प्रति करूणा भरी हुई थी।

अध्याय-चतुर्थ

द्वितीय तथा तृतीय अध्यायों में क्रमशः जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के जीवन वृत तथा कृतित्व से सम्बन्धित तथ्यों के विश्लेषणोपरान्त चतुर्थ अध्याय का संयोजन जॉन डिवी के मौलिक दार्शनिक विचारों का विवरण प्रस्तुत करने में किया गया है ।

हमने देखा है कि जॉन डिवी के दर्शन को प्रयोजनवाद के शीर्षक में प्रायः रखा जाता है, किन्तु इन्होंने इसके लिए प्रयोग वाद अथवा "साधनवाद" शब्द का प्रयोग किया है । हमने देखा है कि पियर्स प्रयोजनवाद शब्द को एक तकनीकी "पद" के रूप में खोजा था । विलियम जेम्स के अनुसार प्रयोजनवाद चिन्तन की प्राचीन विधि है । पियर्स, जेम्स तथा जॉन डिवी तीनों इस वाद के अगुआ समझे जाते हैं । इस सम्बन्ध में पियर्स एवं जेम्स के विचारों को जानने के बाद हमने जॉन डिवी के दार्शनिक विचारों की विस्तार से व्याख्या प्रस्तुत की है ।

जॉन डिवी की स्वयं स्वीकृति है कि उन्होंने अनेक समकालीन तथा अतीत की दार्शनिक कृतियों का अध्ययन किया था । इसके साथ ही व्यक्तियों के सम्पर्क तथा स्वयं के अनुभवों ने भी उनके विचारों को उचित दिशा में मोड़ा था । उनकी पुस्तक जो सन् 1930 में प्रकाशित हुई थी, "फ्रॉम एब्सोल्युटिज्म टू एक्सपेरिमेन्टलिज्म" को उनकी बौद्धिक जीवनी की कृति मानी जाती है । यह पुस्तक उन प्रारम्भिक प्रभावों को उद्घाटित करती है जिसने उनके विचारों को स्थापित किया था ।

जॉन डिवी के दार्शनिक विचारों को "चार्ल्स डारविन", "टी०एच०हक्सले" और "ऑगस्ट कॉम्टे" की कृतियों ने उत्प्रेरित किया था । दर्शन में रूचि एच०ए०पी०टॉरी ने उत्पन्न की । जॉनडिवी डब्ल्यु०यू०टी० हेरिस तथा मॉरिस के सम्पर्क से न्यू हीगेलियन बने थे । जी०स्टेनलहॉल की प्रेरणा से नये मनोविज्ञान में उनकी

रूचि जगी । जिसके कारण दर्शन व मनोविज्ञान में सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हुये । सन् 1890 तक जॉन डिवी हिगेलियन साधनवादी हो गये थे तथा अपने दर्शन को प्रयोगवादी आदर्शवाद कहने लगे थे । सन् 1903 में जॉन डिवी अपने को भूतपूर्व आदर्शवादी के नाम से पुकारने लगे थे, क्योंकि हिगेल के आदर्शवादी प्रभाव को त्यागकर वे साधनवाद की ओर बढ़ने लगे थे । इस अध्याय में हमने जॉनडिवी पर पड़ने वाले हीगेल, डारविन तथा जेम्स के प्रभावों का विस्तार से वर्णन किया है ।

जॉन डिवी का साधनवाद :-

प्रारम्भ में साधनवाद का प्रयोग यह निश्चित करने के लिए किया गया था कि प्रयोगवाद में भविष्य के परिणामों को स्थिर करने में विचार कैसे कार्य करता है , परन्तु जॉन डिवी के अनुभव की अवधारणा ही साधनवादी दर्शन का केन्द्र है । हमने देखा है कि अनुभव अतीत से प्रारम्भ होकर वर्तमान से होता हुआ भविष्य की ओर निरन्तर चलता रहता है । इस प्रकार अनुभव गतिशील है, स्थिर नहीं है । अनुभव एक कार्य है । जॉन डिवी के अनुसार अनुभव करने वाले व्यक्ति द्वारा पर्यावरण से अनुकूलन स्थापित करने रूपी संघर्ष से बुद्धि की उपज होती है । जॉन डिवी के अनुसार दर्शन का उद्देश्य मानव को सार्वाधिक व्यवस्थित एवं बौद्धिक प्रसन्नता प्राप्त करना है । दर्शन अपने लक्ष्य में सैद्धान्तिक नहीं बल्कि व्यावहारिक है । जॉन डिवी समस्त प्रकार के द्वैत के विरोधी है । जैसे मन व पदार्थ, सत्य व आदर्श आदि में ।

साधनवादी दर्शन समस्त वस्तुओं को परिवर्तनशील मानता है । यहाँ तक कि मूल्य भी स्थिर नहीं है, वे भी परिवर्तित परिस्थितियों द्वारा सुधार के आधीन हैं ।

हमने देखा है कि जॉन डिवी परम्पराओं के विरोधी नहीं हैं बल्कि हमारी वर्तमान समस्याओं के हल के लिए परम्पराओं को समझने का प्रयास किया है । इस प्रकार हमें अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि जॉन डिवी के समस्त प्रयत्न "आत्मानुभूति के लिये ही है । इस तथ्य की पुष्टि राबर्ट जे०रॉथ ने भी की है, किन्तु जार्ज गीगर के अनुसार जॉन डिवी का मुख्य सम्बन्ध सौन्दर्यात्मक अनुभव की व्याख्या से रहा है । जॉन डिवी का दर्शन मानव को सामाजिक कार्यों में लगाना चाहता है । यही उनके दर्शन की प्रकृति है ।

जॉन डिवी का ज्ञानकेप्रति दृष्टिकोण :-

जॉन डिवी ने मानव के चैतन्य जीवन में मूर्त अनुभव के रूप में वर्तमान अनुभव को एक प्रयत्न माना है । प्रयोजनवादी ज्ञान के सिद्धान्त को आध्यात्मिक श्रेष्ठता से बचाने का प्रयास करते हैं । मूर्त अनुभव ही ज्ञान का साधन है । इस प्रकार जॉन डिवी ज्ञान को अर्जित मानते हैं । ज्ञान पूर्व निश्चित नहीं है, बल्कि अर्जित किया जाता है । ज्ञान का अर्जन व बनना सम्बन्धों पर आधारित है । जॉन डिवी के अनुसार जानने की प्रक्रिया के तीन स्तर है -- सन्देह, अन्वेषण तथा कार्य करने की योजना । हमने देखा है कि जॉन डिवी के अनुसार ज्ञान और जानना

सम्बन्धित परिस्थितियों में ही घटित होता है । विचार मन का क्रियाशीलन है । कार्य सदैव अनुभव प्रदान करता है और अनुभव ही ज्ञान का साधन है । इस प्रकार हम देखते हैं कि जॉन डिवी के अनुसार ज्ञान कार्य की उपज है । ज्ञान एक सामाजिक साधन है । ज्ञान एक प्रतीकात्मक व्यवस्था धारण करता है । ज्ञान सूचनाओं हेतु निर्माण का कार्य करता है । निर्णय के लिए तैयार करता है। इसलिए ज्ञान एक प्रतीक है। प्रतीक का तात्पर्य अर्थ है । अतः ज्ञान अर्थ ही है । जॉन डिवी के साधनवादी सिद्धान्त के अनुसार ज्ञान :-

1-- का कार्य एक अनुभव को दूसरे अनुभव के लिये सुलभ करना ।

2-- अपने सम्बन्धों के द्वारा किसी भी दिशा में संचरण करना ।

3-- के दो पहलू हैं एक नियन्त्रण का दूसरा अर्थ का

4-- के द्वारा अनुभव का अर्थ सिखाया जाता है ।

5-- के कोष का सम्बन्ध अतीत से है और ज्ञान का सम्बन्ध भविष्य के लिये है ।

6-- का प्रयोग ज्ञान की वैधता के परीक्षण के लिये है । और अंत में

7-- का प्रयोग सदैव होता रहता है ।

जॉन डिवी के साधनवादी सैद्धान्तिक ज्ञान का सार यह है कि वह जानने की निरन्तरता पर बल देता है ताकि उद्देश्य पूर्ण क्रियाशीलन पर्यावरण को संशोधित कर सके । समस्त ज्ञान निरन्तर पुनरावृत्ति के आधीन है ।

सत्य के प्रति विचार :-

जॉन डिवी सत्य को स्थिर व अन्तिम नहीं मानते हैं। जॉन डिवी के अनुसार जैसे जैसे आवश्यकतायें उत्पन्न होती हैं, वैसे वैसे हम सत्य का निर्माण करते हैं। दर्शन के क्षेत्र में प्रथम बार परिणाम को सत्य की कसौटी पर परखने के विचार को प्रतिपादित किया गया है। सत्य, देश, काल, परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। सत्य की प्रकृति अस्थिर है। सत्य पूर्व निश्चित तथा आध्यात्मिक नहीं है। साधनवाद का सम्बन्ध वर्तमान से है। अतीत मृत तथा भविष्य अनिश्चित है

मन व मूल्य :-

जॉन डिवी के अनुसार मन प्रक्रिया का एक हिस्सा है। मन द्रष्टा नहीं है। मन एक कार्य है। अन्त में हमने यह भी देखा है कि जॉन डिवी के अनुसार ज्ञान व्यावहारिक है। ज्ञान जीवन में सत्यं, शिवं तथा सुन्दरम् की प्राप्ति में सहायता करता है और मानव को पूर्ण बनाता है। सत्यं शिवं तथा सुन्दरम् स्थायी मूल्य नहीं है। इन्हें अर्जित किया जाता है, बनाया जाता है, ये परिवर्तनशील प्रकृति के हैं। साधनवादी विचारधारा में मूल्य आध्यात्मिक रूप में मान्य नहीं हैं। जीवन का शिवम् अस्थिर है और कल क्या होगा कोई नहीं जानता।

चिन्तन के प्रति जॉन डिवी के विचार :-

जॉन डिवी के अनुसार चिन्तन एक स्वाभाविक व्यवहार है। विचार व तर्क विशिष्ट शक्तियाँ नहीं हैं। इनके

अनुसार प्रत्येक चिन्तन की जड़ में एक समस्या सदैव रहती है । इन्होंने चिन्तन को एक कार्य के रूप में परिभाषित किया है । जिसमें वर्तमान तथ्य दूसरे तथ्य को इस प्रकार प्रस्तुत करता है मानों वह पूर्व तथ्य के आधार पर बाद वाले तथ्य पर विश्वास प्रकट कर रहा हो । जॉन डिवी के अनुसार समस्या विचारों के साध्य को निश्चित करती है और साध्य चिन्तन की प्रक्रिया को नियन्त्रित करता है । चिन्तन द्वारा मानसिक सन्तुलन एवं अनुशासन प्राप्त होता है। चिन्तन वह है जो हमारे भीतर घटित होता है । जॉन डिवी ने अपनी पुस्तक "हाऊ वी थिंक" में चिन्तन को चार प्रकार का बताया है । वे है मूर्त, अमूर्त, प्रयोग सिद्ध और वैज्ञानिक चिन्तन । महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि चिन्तन के प्रति जॉन डिवी का दृष्टिकोण उनके साधनवादी दर्शन से भिन्न नहीं है ।

अध्याय-पंचम्

महात्मा गांधी के मौलिक दार्शनिक विचार

महात्मा गांधी का सम्पूर्ण दर्शन जीवन की तात्कालिक समस्याओं के समाधान हेतु निरन्तर संलग्न रहा है । उनका यह निजी अनुभव था कि जीवन की तात्कालिक समस्याओं के समाधान के बिना सर्वोच्च अथवा अन्तिम लक्ष्य की उपलब्धि सार्थक व सम्भव नहीं है । महात्मा गांधी अतीत की अवधारणा को महत्व देते थे। अतीत को आधार मानकर वर्तमान का निर्माण करना चाहते थे । वर्तमान व भविष्य का निर्माण केवल विचार के प्रकटीकरण से ही

सम्भव नहीं है । इसलिए इसे व्यवहार परक बनाने के लिए प्रायोगीय परीक्षण नितान्त आवश्यक समझते थे । यही कारण था कि वे जीवन पर्यन्त अपने विचारों का प्रयोग करते रहे हैं । टालस्टॉय फार्म, फोनिक्स बस्ती तथा साबरमती आश्रम इनके विचारों की प्रयोगशालायें थीं । इन्हीं प्रयोगों एवं परीक्षणों की उपज ही इनका शिक्षा दर्शन है । समाज की समस्त समस्याओं के हल हेतु ही विचारों को वे महत्त्व प्रदान करते हैं ।

सामाजिक सेवा को धार्मिक कर्तव्य मानते हैं । वे भारतीय परम्परा व तात्कालिक प्रबोधन के प्रतीक हैं । वे प्राचीन संस्कृति के मूल सिद्धान्तों को मान्यता देते हैं । उनमें पीड़ित व्यक्तियों के प्रति असीम प्रेम था । जाति प्रथा, वर्ग भावना तथा अस्पृश्यता के वे विरोधी थे । इनके विचारों पर टालस्टॉय, रस्किन तथा रामचन्द्र भाई का विशेष प्रभाव पड़ा था । भारत के प्रत्येक क्षेत्र का उन्होंने भ्रमण किया था तथा देश की आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर चुके थे । इसलिए भारत की प्राचीन संस्कृति को नया रूप देना चाहते थे जो वर्तमान के पूर्ण अनुरूप हो सके । यही कारण था कि महात्मा गाँधी अपने सामाजिक संदर्भ में सदैव रूढ़िगत परम्परावादी विचारों की अपेक्षा नवीन विचारों के प्रवर्तक थे । इन्होंने हिन्दू विचार को समानतावादी सामाजिक व्यवस्था की ओर मोड़ने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है । भारतीय संस्कृति को नई दिशा दी है ।

"सत्य" के प्रति महात्मा गांधी के विचार :-

हमें अध्ययन से अवगत हुआ है कि महात्मा गांधी जी का दर्शन आध्यात्मिक एकता के सिद्धान्त से आविर्भूत हुआ है । इनके अनुसार मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य ईश्वरानुभूति, आत्मानुभूति तथा सत्य का साक्षात्कार करना है । वे अन्तिम सत्य का अनुभव करना ही शिक्षा तथा मानव जीवन का परम लक्ष्य मानते थे । इनके दर्शन का मौलिक तत्व मानव जीवन के लक्ष्य की व्याख्या करना और उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए मार्ग व विधि प्रतिपादित करना है ।

महात्मा गांधी जी अन्य की अपेक्षा "ईश्वर" की अवधारणा के प्रति भिन्न विचार रखते हैं, क्योंकि वे जानते थे कि ईश्वर की व्याख्यायें अनन्त हैं । इसलिए वे सत्य को ही ईश्वर मानते हैं । "ईश्वर सत्य है" कहने की अपेक्षा "सत्य ही ईश्वर है" कहना ज्यादा उपयुक्त समझते हैं । महात्मा गांधी पुराने सत्य पर नया प्रकाश डालना चाहते हैं । सत्य की अनुभूति समाज सेवा द्वारा ही सम्भव मानते हैं । महात्मा गांधी जी के अनुसार ईश्वर व मनुष्य में कोई विरोध नहीं है । उनका कथन है कि "मैं ईश्वर की एकता व पूर्णता में विश्वास करता हूँ। इसलिए मैं मानवता की एकता में भी विश्वास करता हूँ ।" वे पुन: कहते हैं - "मैं अद्वैत में विश्वास करता हूँ, उसी प्रकार सभी जीवित वस्तुओं में भी ।" इन्हीं विचारों के कारण महात्मा गांधी "विश्व में एकता है, एक व्यवस्था है, प्रत्येक अस्तित्व युक्त वस्तु तथा जीवित प्राणी को

शासित करने के लिए एक ही अपरिवर्तनीय नियम है ।" को मान्यता देते हैं । इस सत्य की अनुभूति के लिये अहिंसा ही साधन है । आध्यात्मिक एकता की अनुभूति विभाज्य साधनों से नहीं की जा सकती है । इसलिए साधन को साध्य के अनुरूप होना चाहिये । इसीलिये मानव की तात्कालिक सेवा अनुभूति के प्रयत्न का एक आवश्यक हिस्सा होना चाहिये क्योंकि ईश्वर की अनुभूति एवं प्राप्ति का एक मात्र रास्ता उसकी सृष्टि में उसे देखना है और उसी से एकाकार होना है । अतः समाज सेवा द्वारा ही मनुष्य ईश्वर की अनुभूति कर सकता है ।

महात्मा गांधी के अनुसार "सत्य" साध्य है और "अहिंसा" उस सत्य की अनुभूति का साधन है । इनकी प्रबल इच्छा थी "नवीन अहिंसक सामाजिक व्यवस्था का उद्विकास करना" । महात्मा गांधी जी एक क्रान्तिकारी दार्शनिक थे । इनके अनुसार एक राज्य विहीन लोकतंत्र एक आदर्श अहिंसक सामाजिक व्यवस्था है । इस प्रकार के लोकतंत्र की कल्पना इसके पहले किसी भी सामाजिक, राजनैतिक एवं शिक्षा दार्शनिक ने सम्भवतः नहीं की है । महात्मा गांधी जी का लोकतंत्र एक ऐसा बौद्धिक क्रान्ति सम्पन्न राज्य है जहाँ सामाजिक जीवन इतना पूर्ण होता है कि वह स्वयं नियमित एवं नियन्त्रित रहता है । अन्य महान दार्शनिकों की भाँति महात्मा गांधी ने शिक्षा को अपनी अवधारणा के नये समाज की व्यवस्था को उत्पन्न करने हेतु सर्व शक्तिशाली साधन माना है । इसी कारण दार्शनिक

विश्वासों का शिक्षा रचनात्मक पहलू है तथा जीवन के आदर्शों की अनुभूति का व्यावहारिक साधन है । महात्मा गांधी के दर्शन के मूल में सत्य, अहिंसा, प्रेम, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य निहित है । समाज को नये रूप में निरूपित करने के लिए वे प्रत्येक प्राणी को सत्य, अहिंसा व प्रेम को जीवन में धारण करने की प्रेरणा देते रहे हैं ।

मूल्य :-

महात्मा गांधी के अनुसार सत्यं शिवं एवं सुन्दरम् स्थायी मूल्य है । इन्हें निर्मित नहीं किया जाता है बल्कि अपने कार्यों द्वारा इसकी अनुभूति की जाती है । तात्कालिक परिस्थिति में भी जो सत्य" उपयोगी है,उसकी उपयोगिताकी अनुभूति हम अपने अन्तराल में ही करते हैं तभी वह उपयोगी प्रतीत होता है । अन्तस्थ सत्य, शिव एवं सुन्दर से जब हमारे वाहय कार्य अनुकूलता प्राप्त कर लेते हैं तभी इनकी अनुभूति होती है । एक लोकतंत्रात्मक समाज की शिक्षा निश्चित रूप से क्रियात्मक मूल्यों के आश्रयाधीन है, जिसे हम"वैल्यु कन्डीशन्ड एक्टिवटी" कहते हैं । जीवन में धारण करने वाले मूल्यों को हमें परिभाषित करना पड़ेगा तथा उन्हें अनुभव कराने की विधि भी प्रतिपादित करनी पड़ेगी ।

महात्मा गांधी जी का प्रादुर्भाव उस काल में हुआ था जब नैतिक मूल्य व मानव प्रतिष्ठा का अवमूल्यन हो रहा था, नैतिकता संकटापन्न थी, इसलिए इन्होंने नये मूल्यों को समाज में

प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता का अनुभव किया था । नये मूल्य को प्रतिष्ठित करने के लिये वे अकेले ही समाज में व्याप्त बुराईयों की सामूहिक शक्ति से संघर्ष करते रहे हैं, विरोध, धमकी तथा कलंक की परवाह के बिना सत्य, अहिंसा तथा प्रेम का दृढ़ता से संबल लिये हुये भारतीय राष्ट्र को पुनर्निरूपित करने के कार्य में संलग्न रहे हैं । वे भारत की स्वतंत्रता व लोकतंत्र की स्थापना के लक्ष्य को उपलब्ध करने में पूर्ण मनोयोग से लगे रहे और उसे प्राप्त करके ही चैन की सांस ली ।

ज्ञान :-

महात्मा गांधी के अनुसार ईश्वरानुभूति ही परम ज्ञान है । ज्ञान सत्याधीन है । सत्य महात्मा गांधी के अनुसार सापेक्ष व निरपेक्ष रूप में दो प्रकार का है । सापेक्ष सत्य प्रयोग व परीक्षण के आधीन परिणामाश्रयी है । इसलिये ज्ञान भी जो भौतिक दृष्टि सम्पन्न है वह अर्जित किया जा सकता है उसको सर्वजन सुलभ बनाया जा सकता है । वह प्रयोग की कसौटी पर कसा जा सकता है । उपयोगी परिणाम होने पर ग्रहण किया जा सकता है । महात्मा गांधी के अनुसार सापेक्ष सत्य, निरपेक्ष सत्य की प्राप्ति का साधन होना चाहिये । सांसारिक ज्ञान व आध्यात्मिक ज्ञान दोनों हमें प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि मानव केवल भौतिक ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक वृत्तियों से भी युक्त है । मानव इच्छा, क्रिया व ज्ञान शक्ति का प्रतीक है । "कर्म" हमारे जीवन का सार है । अत: हमें "गीता" के "कर्म" दर्शन को स्वीकार कर अपने जीवन को, समाज को, राष्ट्र को उन्नति के मार्ग पर ले चलना चाहिये ।

महात्मा गांधी के विचारों की रूसो, पेस्टालजी तथा फ्रोबेल आदि से भी तुलना की गई है ।

अध्याय-षष्ठम्

जॉन ड्विवी का शिक्षा सिद्धान्त

हमने देखा है कि जॉन ड्विवी का शिक्षा सिद्धान्त प्रत्यक्ष रूप से उनके दर्शन पर आधारित हैं । दोनों अविभाज्य है, क्योंकि बिना दर्शन के शिक्षा बौद्धिक निर्देशन नहीं प्राप्त कर सकती है और बिना शिक्षा के दर्शन व्यावहारिक प्रयोग में असफल रहता है ।

जॉन ड्विवी की शिक्षा की परिभाषाओं का केन्द्रिय विचार "अनुभव की निरन्तरता" और "सुन्दरतर विकास के लिए पुनर्रचना" है । शिक्षा विद्यालयीय अध्ययन के अर्थ में एक अनुभव का विशिष्ट रूप है । जॉन ड्विवी ने शिक्षा के सामाजिक पक्ष पर विशेष बल दिया है और शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया माना है । अध्ययन के समस्त विषय आपस में सम्बन्धित है और उनका सामाजिक महत्त्व है । विषयों का चुनाव सामुदायिक जीवन के अनुरूप करने पर जोर देते हैं । शिक्षा के केन्द्र जॉन ड्विवी बालक को ही मानते हैं ।

जॉन ड्विवी के अनुसार हमने देखा है कि शिक्षा के उद्देश्य शिक्षा की प्रक्रिया से बाहर नहीं होते हैं । शिक्षा का कोई उद्देश्य नहीं होता है । उद्देश्य तो माता-पिता, शिक्षक आदि के होते हैं । उद्देश्य को शिक्षित होने वाले की आवश्यकताओं और वास्तविक क्रियाओं पर आधारित होना चाहिये ।

उद्देश्य में क्रियाशीलनों को सहयोगी विधि में बदलने की क्षमता होनी चाहिये, क्योंकि एक वास्तविक उद्देश्य में क्रियाशीलन होता है । समस्यात्मक परिस्थितियों में उद्देश्य को स्वयं उत्पन्न होना चाहिये । उद्देश्य को लचीला होना चाहिये और दूसरे लक्ष्य के लिए कार्य करने के लिये स्वतंत्र होना चाहिये । हमने देखा है कि जॉन डिवी शिक्षा के केवल तात्कालिक उद्देश्य में विश्वास करते हैं । उन्होंने न तो शिक्षा के अनेक उद्देश्य माने हैं और न तो कोई अन्तिम उद्देश्य । "आत्मानुभूति" को केवल तात्कालिक उद्देश्यों के रूप में ही मान्यता देते हैं ।

जॉन डिवी के अनुसार एक वास्तविक पाठ्यक्रम जीवन प्रक्रिया को स्वतंत्र करने में सहयोग देता है । बालक की समस्त क्रियाओं को पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिये । पाठ्यक्रम को निश्चित करने में जॉन डिवी दो कारको को महत्त्व देते हैं - विद्यालय तथा पर्यावरण । पर्यावरण को मनोवैज्ञानिक तथा विद्यालय को सामाजिक कारक मानते हैं । जॉन डिवी के अनुसार पाठ्यक्रम के लिये विषय वस्तु का चुनाव विद्यार्थियों की प्रवृत्तियों, सामर्थ्य एवं समाज की सांस्कृतिक दशाओं को आधार मानकर करना चाहिये । पाठ्यक्रम में उन क्रियाओं को शामिल करने पर बल दिया है जिनसे बालको की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है । पाठ्यक्रम के संगठन व निर्माण में जॉन डिवी "उद्योग" को बहुत महत्त्व देते हैं ।

जॉन डिवी ने प्रचलित शिक्षण विधि के विरुद्ध आवाज

उठाई है । जॉन डिवी किसी भी विषय को पढ़ाने के लिए किसी सर्वोत्तम विधि को मान्यता नहीं देते हैं, इसी लिये समस्या समाधान विधि को वे सदैव महत्त्व देते रहे हैं । "जानने" की पूर्ण विधि केवल यही है । समस्या समाधान विधि जॉन डिवी के "करके सीखने", "स्वानुभव" द्वारा सीखने के सिद्धान्त को सुनि-श्चित करती है । जॉन डिवी मस्तिष्क की क्रिया को शिक्षण विधि के रूप में मानते हैं, क्योंकि मस्तिष्क ही समझता व तथ्यों को संगठित करता है । शिक्षण विधि कला की विधि है । विषयों को आपस में सम्बन्धित करके पढ़ाने पर जॉन डिवी बल देते हैं इसलिए "समवाय विधि" भी शिक्षण की एक विधि के रूप में इन्हे मान्य है ।

विद्यालय के प्रति जॉन डिवी की अवधारणा उनके व्यक्तिगत अनुभव एवं प्रत्यक्ष निरीक्षण का प्रतिफल है । जॉनडिवी के अनुसार विद्यालय एक विशिष्ट भाव में ही एक संस्था है । विद्यालय के पास कार्य की विधि होती है जो अनुभव के गुणों को प्रभावित करती है । विद्यालय विशिष्ट वस्तुओं के प्रशिक्षण का कार्य स्थल है । विद्यालय व्यवहार में आने वाली वस्तुओं की माँग के भीतर कार्य करता है । विद्यालयीय जीवन को सामाजिक जीवन से सम्बन्धित करने पर इन्होंने बहुत जोर दिया है । विद्या-लय को समाज की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को अपने में प्रतिबिम्बित करना चाहिये । विद्यालय समाज का लघु रूप हैं । उन्होंने ऐसे विद्यालय की कल्पना की है जहाँ बालक जिन्दा रह

सके और अपने लिए आनन्द की खोज कर सके । विद्यालय में घर का पर्यावरण होना चाहिये । इसलिए विद्यालय एक सामाजिक संस्था है ।

जॉन डिवी अनुशासन को व्यक्तित्व का गुण मानते हैं, अनुशासन एक परिणाम है । अनुशासन बाहर से लादने की वस्तु नहीं है । स्वतंत्रता और अनुशासन दोनों आपस में सम्बन्धित है और दोनों कार्य करने की शक्ति हैं । अनुशासनवस्वतंत्रता का दूसरा नाम विधेयात्मक एवं रचनात्मक शक्ति है । जॉन डिवी के अनुसार सबसे अच्छा अनुशासन वह है जो स्वतंत्रता से ग्रहण किया जाता है । अत: व्यक्ति को किसी भी आदेश के भीतर अपने को स्वेच्छा से रखने के लिये निश्चिय करना पड़ता है । अनुशासन रूचि पर आधारित है । दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है । शिक्षा का लक्ष्य जॉन डिवी के अनुसार बुद्धि का विकास करना, अनुशासित व्यक्ति का निर्माण करना, सामाजिक जीवन व सामाजिक सह-योग का विकास करना है । इस प्रकार हम देखते है कि जॉन-डिवी की अनुशासन की अवधारणा "सामाजीकृत व्यक्ति" ॥सोसलाइज्ड इन्डिविजुअल॥ का निर्माण करना है । परीक्षण व मूल्यांकन बालक में आत्म प्रेरणा उत्पन्न कर स्वानुशासन की ओर प्रेरित करता है । रूचि-क्रिया - आत्मानुभूति स्वीकारात्मक की जड़ हैं ।

हमने जॉन डिवी के विचारों की तुलना रूसो, पेस्टालजी तथा फोबेज से भी की है तथा यत्र तंत्र महात्मा गांधी के विचारों

से इनके विचारों की समता व विषमता की खोज भी की है । स्वतंत्रता, समानता, न्याय पर बल तथा पुस्तकीय शिक्षा का विरोध प्राय: रूसो, पेस्टालजी, फ्रोबेल, जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी सभी ने किया है ।

अध्याय सप्तम् तथा अष्टम्

महात्मा गांधी के शिक्षा सिद्धान्त का क्रमिक आविर्भाव तथा बेसिक शिक्षा के संदर्भ में शिक्षा सिद्धान्त :-

हमने देखा है कि महात्मा गांधी का शिक्षा सिद्धान्त देश की राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश की, जीवन के व्यक्तिगत विस्तृत अनुभव की, टालस्टॉय, रस्किन तथा रामचन्द्र भाई के विचारों के प्रभाव की तथा टॉलस्टॉय फार्म, फोनिक्स बस्ती, एवं साबरमती आश्रम आदि स्थानों में किये गये प्रयोगों एवं परीक्षणों की उपज है । इन्होंने भारत की तत्कालीन शिक्षा पद्धति में व्याप्त दोषों के विरोध में अपने शिक्षा सिद्धान्त की खोज की थी । उपर्युक्त तथ्यों का पूर्ण व विस्तृत विवरण हमने इस शोध प्रबन्ध के सप्तम अध्याय में प्रस्तुत किया है ।

अष्टम अध्याय में हमने महात्मा गांधी के बेसिक शिक्षा या बुनियादी शिक्षा के दार्शनिक विचारों की खोज की है और यह देखने का प्रयास किया गया है कि शिक्षा, शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, विद्यालय एवं अनुशासन के प्रति महात्मा गांधी के क्या विचार है ? बेसिक शिक्षा का दर्शन हमें यह बताता है कि इस योजना की नींव आधुनिक शिक्षा के दोषों

को दूर करने के लिए रखी गई है । यह उत्तम दर्शन और आधुनिक मनोवैज्ञानिक खोजों की विशिष्टताओं से युक्त एक पूर्ण शिक्षा योजना है । गाँधी दर्शन के अनुसार सच्ची शिक्षा का सम्बन्ध बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की क्षमताओं एवं योग्यताओं के विकास से होता है ।

हमने देखा है कि महात्मा गाँधी के अनुसार शिक्षा का तात्पर्य बालक के शरीर, मन तथा आत्मा में निहित क्षमताओं के सर्वोत्तम विकास से है । वे शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक के हस्त, मन तथा हृदय की संस्कृति को विकसित करना मानते हैं । वे बालक को चरित्रवान, नैतिक प्राणी एवं लोकतंत्र का सच्चा नागरिक बनाना चाहते हैं । इसलिए वे केवल साक्षरता को न तो शिक्षा का प्रारम्भ और न अन्त ही मानते हैं । किसी विद्यालय में केवल साक्षरता का प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति की अपेक्षा चरित्रवान नैतिक किन्तु अशिक्षित असभ्य ग्रामीण महात्मा गाँधी की दृष्टि में विश्व का उत्तमतर नागरिक है । महात्मा गाँधी व्यक्ति व समाज पर समान महत्व देते हैं । उनका कथन है कि मनुष्य एक महत्त्वपूर्ण विचारणीय प्राणी है तथा वह एक सामाजिक प्राणी भी है । यह हमें नहीं भूलना चाहिये । महात्मा गाँधी जी समस्त शिक्षा को जीवन की परिस्थितियों से प्रदान करने पर बल देते हैं । यही कारण है कि उन्होंने मुख्यतः दो ही उद्देश्य निर्धारित किये हैं । - 1- तात्कालिक उद्देश्य तथा
2- अन्तिम उद्देश्य । तात्कालिक उद्देश्य में जीविकोपार्जन का

उद्देश्य मुख्य है जिसमें शरीर श्रम को महत्व, किसी मूल उद्योग को केन्द्र में रखकर समस्त विषयों की शिक्षा उसी मूल उद्योग की प्रक्रिया से प्रदान की जाती है ताकि बालक स्वावलम्बी, आत्म निर्भर एवं उत्पादनोन्मुख शिक्षा प्राप्त कर समाज का उपयोगी सदस्य बन सके । महात्मा गांधी जी हस्तकला की शिक्षा द्वारा बालक के शरीर, मन व आत्मा का विकास करना चाहते हैं । हस्तकला की शिक्षा वे वैज्ञानिक विधि से देना चाहते हैं । वे चाहते थे कि किसी उत्पादक क्रियाशीलन से विषयों को सह-सम्बन्धित करके तथा मुख्य रूप से उसी उद्योग व हस्तकला के माध्यम से विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का समग्र रूप से विकास किया जाय । शिक्षा का लक्ष्य यह होना चाहिये कि वह बालक को एक उत्पादक इकाई के रूप में समाज को समर्पित करे । महात्मा गांधी की हस्तकला केन्द्रित शिक्षा का लक्ष्य श्रम कीप्रतिष्ठा वाले, विश्रम व ईमानदारी की आजीविका उपार्जित करने वाले, चरित्रवान, नैतिक, आत्म निर्भर व स्वावलम्बी नागरिक का निर्माण करना है । बेसिक शिक्षा का प्रथम सिद्धान्त यह है कि समग्र नागरिकों के लिए एक स्तर तक चाहे वे पुरुष हों या स्त्री शिक्षा अनिवार्य व सार्वजनिक होनी चाहिये । शिक्षण का माध्यम मातृभाषा हो । दूसरा सिद्धान्त समस्त शिक्षा किसी हस्तकला को केन्द्र में रखकर दी जाय ।

महात्मा गांधी के तात्कालिक उद्देश्य अनेक हैं, क्योंकि उनका सम्बन्ध जीवन के विभिन्न पहलुओं से है । अन्तिम उद्देश्य

के रूप में उन्होंने आत्मानुभूति, ईश्वरानुभूति अथवा सत्यानुभूति को मान्यता दी है । शिक्षा का आत्मानुभूति ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य है । समस्त अन्य उद्देश्य इस उद्देश्य के सहयोगी हैं, और इन सभी उद्देश्यों की पर्यवसति आत्मानुभूति में हो जाती है । शिक्षा के सामाजिक एवं वैयक्तिक उद्देश्य दोनों पर वे समान बल देते हैं । इनका समस्त शिक्षा सिद्धान्त प्रयोगाश्रयी है । महात्मा गांधी ने अपने प्रायोगीय व्यवहार से यह सिद्ध कर दिया है कि सामाजिक सेवा व आत्मानुभूति में कोई संघर्ष नहीं है बल्कि दोनों एक ही सत्य के दो पहलू हैं । शरीर श्रम शिक्षा का केन्द्र है ।

अध्ययनोपरान्त हमें यह ज्ञात हुआ कि महात्मा गांधी जी के शिक्षा दर्शन में प्रकृतिवाद, आदर्शवाद, प्रयोजनवाद, की दार्शनिक प्रवृतियाँ अन्तर्निहित है, किन्तु ये प्रवृतियाँ इनके दर्शन में अलग-अलग नहीं पाई जाती है बल्कि वे सभी एकता में आबद्ध है । इनका दर्शन मौलिक रूप में आदर्शवादी है । प्रकृति वाद तथा प्रयोजनवाद सहयोगी है ।

महात्मा गांधी क्रियाशील जिम्मेदार सत्याग्रही के निर्माण हेतु पाठ्यक्रम की उपादेयता समझते हैं, इसलिए साहित्यिक विषयों का प्राय: अभाव पाया जाता है । लाभप्रद शैक्षिक क्रिया शीलन पर बल दिया जाता है । पाठ्यक्रम में विषयों का आधार वे उपयोगियता को मानते हैं । महात्मा गांधी दो प्रकार की क्रियाओं को पाठ्यक्रम में स्थान देते है । प्रथम वह है जिसे विषय

रूप में नहीं रखा जा सकता बल्कि उसे सम्पूर्ण विद्यालयीय पर्यावरण में व्याप्त होना चाहिये । दूसरे वर्ग में मातृभाषा, कला, जैसे संगीत, हस्तकला, तथा विज्ञान, गणित, इतिहास, भूगोल आदि हैं । महात्मा गांधी का पाठ्यक्रम उद्योग केन्द्रित, समाज केन्द्रित व भौतिक पर्यावरण केन्द्रित है । इसी लिये भौतिक पर्यावरण को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम में उद्योगों के चुनाव पर बल दिया जाता है । बेसिक शिक्षा का पाठ्यक्रम क्रियाशीलन युक्त पाठ्यक्रम है । पाठ्यक्रम के विषय जीवन से सम्बन्धित होते हैं । जिनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप में भौतिक एवं परोक्ष रूप में आध्यात्मिक दोनों पर्यावरणों से होता है । क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम को प्रतिपादित करके महात्मा गांधी भौतिक उपयोगितावाद एवं आध्यात्मिक उपयोगितावाद दोनों का समर्थन करते हैं ।

महात्मा गांधी व्यावहारिक मनोविज्ञान के ज्ञाता थे इसलिये उन्होने क्रियात्मक विधि "करके सीखना, स्वानुभव द्वारा सीखना जैसी विधियों को महत्व दिया है । क्रिया द्वारा ज्ञान को विकसित करना उनकी शिक्षण विधि का मुख्य आधार है । महात्मा गांधी प्रकृतिवादियों एवं प्रयोजनवादियों की भाँति अधिगम की क्रियाशीलन विधि (एक्टीविटी मेथड) के पक्षधर है । महात्मा गांधी ने अन्य आदर्शवादियों की अपेक्षा शिक्षा की आधुनिक विधियों के निर्माण एवं खोज में विशेष योग दिया है । बेसिक शिक्षा की हस्तकला केन्द्रित विधि प्रयोजनवादी प्रोजेक्ट विधि के लगभग समान है । विषयों को सम्बन्धित करके पढ़ाने पर जोर देने के

कारण महात्मा गांधी समवाय विधि को भी महत्व देते हैं । निरीक्षण तथा आगमन निगमन विधि को सहायक विधि के रूप में मान्यता प्रदान करते हैं ।

बेसिक शिक्षा पद्धति में विद्यालय का स्वरूप आवासीय है । बुनियादी शिक्षालय वर्कशाप, प्रयोगशाला, के रूप में होता है। बेसिक शिक्षा हस्तकला केन्द्रित होने के कारण विद्यालय उद्योगशाला के रूप में ही होता है । महात्मा गांधी प्रचलित विद्यालयों की आलोचनाकरते हैं, क्योंकि प्रचानी शिक्षा प्रणाली पुस्तकीय थी। इसका जीवन से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था । बेसिक विद्यालय लाभप्रद क्रियाओं के सम्पादन का केन्द्र होता है । बालकों के अनुभव द्वारा सीखने का केन्द्र है, यहाँ का पर्यावरण गृह जैसा होता है । विद्यालय का ग्राम व समाज से सम्बन्ध रहता है । महात्मा गांधी चाहते हैं कि विद्यालय व समाज को एक जैवकीय हिस्सेदारी में प्रवेश करना चाहिये । समाज, आर्थिक व नैतिक लक्ष्य के लिये कार्य करने वाले स्वतंत्र व्यक्तियों का स्वतंत्र समुदाय है । विद्यालय को स्वतंत्र शिक्षक एवं शिक्षार्थियों की एक स्वतंत्र सभा के रूप में होना चाहिये । जहाँ पर प्रत्येक विद्यार्थी अपनी योग्यताओं को अधिक से अधिक उद्घाटित कर सके । महात्मा-गांधी के अनुसार स्वतंत्र व्यक्ति लाभप्रद व्यावसायों में भाग लेकर केवल शारीरिक व मानसिक योग्यता ही नहीं प्राप्त करता है, बल्कि न्याय, उत्तरदायित्व और पारस्परिक सहयोग के भाव को भी सीखता है । वह उस विद्यालयीय सामाजिक संस्था से नागरि-कता एवं नैतिकता का प्रशिक्षण हासिल करता है । वह विद्यालय में

साहित्य, कला, विज्ञान व सामाजिक विषयों के माध्यम से सत्यं शिवं सुन्दरम् जैसे शाश्वत मूल्यों को समझता है, अधिगम करता है और व्यवहार में उतारता है ।

महात्मा गांधी की अनुशासन के प्रति अवधारणा प्रभावात्मक सिद्धान्त पर आधारित है । इसमें अनुशासन का आधार नैतिकता है । बालक अध्यापक के व्यक्तित्व के गुणों से प्रभावित होकर स्वयं विनयी बनता है । महात्मा गांधी शारीरिक दंड को अनुशासन स्थापित करने में प्रयोग करने के विरोधी हैं । बालक अध्यापक के व्यवहार से प्रभावित हो स्वेच्छा से अनुशासित रहता है । अध्यापक को पिता की भाँति छात्रों से स्नेह व प्यार करना चाहिये । दोनों के मधुर सम्बन्ध पर ही अनुशासन सम्भव है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा गांधी की अनुशासन की अवधारणा, स्वक्रिया, स्वानुभूति एवं आत्म नियंत्रण पर आधारित है । महात्मा गांधी की बेसिक शिक्षा बाल केन्द्रित शिक्षा ही है, क्योंकि शिक्षा की समस्त प्रक्रिया बालक के लिये ही होती है ।

अध्याय-नवम्

जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन की तुलना :-

जॉन डिवी तथा महात्मा गांधी के विचारों की तुलना करने के लिये हमने अध्याय नवम् का संयोजन किया है । हमने देखा है कि महात्मा गांधी के अधिकांश विचार जॉन डिवी

के विचारों से साम्य रखते हैं परन्तु अधिकांश स्थलों पर महात्मा गांधी के विचार जॉन डिवी की अपेक्षा विशेष अर्थ युक्त हैं । प्रत्येक अध्याय में यत्र तत्र महात्मा गांधी व जॉन डिवी के शैक्षिक विचारों की आवश्यक स्थलों पर तुलना की गई है । दोनों सामाजिक समस्याओं के समाधान में ही शिक्षा का महत्व प्रतिपादित करते हैं, आत्म क्रियाशीलन, शरीर श्रम, स्वानुभूति तथा सामाजिक सेवा द्वारा आत्मानुभूति पर बल देते हैं । सत्य के प्रति दोनों के विचार एक प्रकार से समान हैं । दोनों सत्य को प्रायोगीय मानते हैं, परीक्षणीय मानते हैं । लाभप्रद परिणाम वाले कार्य ही सत्य हैं । सत्य परिवर्तनशील है, किन्तु महात्मा गांधी के अनुसार केवल सापेक्षिक सत्य ही प्रायोगीय, परीक्षणीय एवं परिवर्तनशील है , जॉन डिवी आध्यात्मिक सत्य रूपी ईश्वर के सम्बन्ध में विचार करना पसंद नहीं करते हैं । जबकि महात्मा गांधी का निरपेक्ष सत्य ईश्वर, वास्तव में, शाश्वत, चिरन्तन तथा अपरिवर्तनशील सत्य है । दोनों शिक्षा शास्त्री समवाय विधि, क्रियाशीलन पाठ्यक्रम, स्वानुभाव पर आधारित अनुशासन तथा सामाजिक एवं वैयक्तिकता के आपसी सम्बन्ध पर समान रूप से बल देते हैं । जॉन डिवी की प्रोजेक्ट विधि तथा महात्मा गांधी की हस्तकला केन्द्रित शिक्षण विधि में पर्याप्त समानता है । महात्मा गांधी हस्तकला के चुनाव के लिए विद्यालयीय स्थानीय व सामाजिक पर्यावरण पर विशेष बल देते हैं और ऐसे शैक्षिक सम्भावनाओं वाले उद्योगों को हस्तकला के रूप में मान्यता देते हैं जिसके माध्यम से समस्त विषय प्रायः पढ़ाये जा सके ।

अध्याय दशम, एकादश तथा द्वादस

अध्याय दशम् में हमने जाॅन डिवी के मौलिक योगदान तथा विश्व विचार में उनके स्थान की खोज की है । एकादश अध्याय में हमने जाॅन डिवी तथा महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचारों की वर्तमान भारत में शिक्षा हेतु संगति की विवेचना की है । द्वादस अध्याय सम्पूर्ण अध्यायों का संक्षेप में निष्कर्ष है । हमने इन अध्यायों में उन तत्वों की खोज करने का प्रयास किया है जिनसे जाॅन डिवी तथा महात्मा गाँधी के विचारों की भारत की शिक्षा में विशेष संगति है । वास्तव में यह विचार जाॅन डिवी के सम्बन्ध में विशेष अर्थपूर्ण है, क्योंकि जाॅन डिवी के विचार हमारी शिक्षा के लिए विशेष महत्त्व रखते हैं । हमने देखा है कि जाॅन डिवी के विचार हमारे लोकतंत्र, मूल्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में विशेष लाभप्रद हैं । हमने देखा है कि भारत के लोकतंत्र का भविष्य जाॅनडिवी तथा महात्मा गाँधी के विचारों की गहराई में निहित है, परन्तु यह भी निर्विवाद सत्य है कि लोकतंत्र का भविष्य इस तथ्य में निहित है कि हम उसे सुरक्षित व स्थायी बनाने के लिए किस प्रकार तैयार होते हैं । भारत के समाज तथा शिक्षा की पुनर्रचना एवं पुन-संगठन में दोनों शिक्षा शास्त्रियों के विचारों का विशेष योगदान है । शिक्षा व समाज की पुनर्रचना में बेसिक शिक्षा की विशेष संगति है । लोकतंत्र व मूल्यों के प्रति महात्मा गाँधी के विचार आध्यात्मिक भावना से युक्त है । जिन्हें इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है तथा इन्हें व्यवहार का रूप दिया जा सकता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जॉन डिवी (यू०एस०ए०) अमेरिका के तथा महात्मा गांधी भारत के सर्वाधिक प्रभावशाली एवं मौलिक शिक्षा दार्शनिक है । दोनों दार्शनिकों का सम्पूर्ण दर्शन जीवन की तात्कालिक समस्याओं के समाधान हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहा है ।
